बौद्धभारतीग्रन्थमाला-13

मिलिन्दपञ्हपालि

Questions of Milinda

[मिलिन्द-भिक्षुनागसेनसंवाद]

(हिन्दी-अनुवादसहित)



प्रधानसम्पादक

स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

ग्रन्थ के विषय में—

इतिहास की दृष्टि से, विशेषतः पालि-साहित्य के इतिहास की दृष्टि से मिलिन्दपञ्ह का यह महत्त्व है कि उसमें पालि-त्रिपिटक से नाना ग्रन्थों के नाम देकर, पाँच निकायों, अभिधम्मपिटक के सात ग्रन्थों और उनके भिन्न-भिन्न अंगों के निर्देशपूर्वक अनेक अंश उद्धृत किये गये हैं, जिनसे यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि पालि त्रिपिटक प्रथम शताब्दी ईस्वी पूर्व अपने उसी नामरूप में विद्यमान था, जिसमें वह आज है। इस प्रकार मिलिन्दपञ्ह का साक्ष्य अशोक के अभिलेखों द्वारा प्रदत्त साक्ष्य का समर्थन करता है।

मिलिन्दपञ्ह में अनेक स्थानों के वर्णन हैं, जैसे अलसन्द (अलेक्जेंड्रिया), यवन (यूनान, बैक्ट्रिया), भरुकच्छ (भड़ौंच), चीन (चीनदेश), गन्धार, कलिंग, कजंगला, कोसल, मथुरा सागल, साकेत, सौराष्ट्र (सोरट्ठ), वाराणसी, वंग, तक्कोल, उज्जैन आदि। इनसे तत्कालीन भारतीय भूगोल पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

सारांश यह है कि धर्म, दर्शन, साहित्य, इतिहास, भूगोल—सभी दृष्टियों से मिलिन्दपञ्ह का भारतीय वाङ्मय के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है और पालि अनुपिटक-साहित्य में तो उसके समान महत्त्वपूर्ण कोई दूसरा स्वतन्त्र ग्रन्थ है ही नहीं—यह तो निर्विवाद ही है।





बौद्धभारतीग्रन्थमाला-१३
Bauddha Bharati Series-13

मिलिन्दपञ्हपालि

(हिन्दीरूपान्तरसहिता)

प्रधानसम्पादक
स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

Bauddha Bharati Series-13

MILINDAPAÑHA PĀLI

[Questions of Milinda]

Edited & Translated By

Swāmī Dwārikādās Śāstrī

BAUDDHA BHĀRATĪ
VĀRĀNASĪ

बौद्धभारतीग्रन्थमाला-१३

मिलिन्दपञ्हपालि

[मिलिन्द-भिक्षुनागसेनसंवाद]

(समीक्षात्मक भूमिका एवं हिन्दीरूपान्तर सहित)

सम्पादक एवं अनुवादक

स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

बौद्धभारती

वाराणसी

बु० २५५०]   सन् २००६ ई०   [वि० २०६३

प्रकाशक :
बौद्धभारती
पञ्चशील एस १०/६ ए-२ए,
मकबूल आलम रोड, (जिला जेल के सामने)
वाराणसी-२२१ ००२
फोन : ०५४२-३२९८०४४,
मो० : ०९३३६९१२५४७
* * * * * * * * * * * *
पोस्ट बाक्स नं. : १०४९,
वाराणसी-२२१ ००१. (भारत)

Publisher :
Bauddha Bhāratī
S 10/6 A-2A, Maqbool Alam Road,
Opp. Distt. Jail, Varanasi-221 002
Ph. 0542-3298044,
Mo. 09336912547
* * * * * * * * * * * *
Post Box No. : 1049,
Varanasi-221 001 (India)

e-mail : bauddhabhrti@satyam.net.in

सहसम्पादक :
धर्मकीर्त्तिशास्त्री
चन्द्रकीर्त्तिशास्त्री

तृतीय संस्करण : २००६ ई०

Third Edition : 2006

मुद्रक :
साधना प्रेस
मकबूल आलम रोड,
वाराणसी-२२१ ००२

Printed By :
SĀDHANĀ PRESS
Maqbool Alam Road,
VARANASI- 221 002

प्रकाशकीय वक्तव्य

आज से अठारह वर्ष पूर्व सन् १९७९ में, भारतीय विश्वविद्यालयों के परीक्षापाठ्यक्रमों में निर्धारित महत्त्वपूर्ण पालिग्रन्थों की पुनः प्रकाशन–योजना में इस 'मिलिन्दपञ्ह' ग्रन्थ का 'छट्ठ सङ्गायन' के आधार पर शुद्ध एवं प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित किया गया था।

यद्यपि उस संस्करण के समय भी हमारी मान्यता थी कि इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशन ही 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' हो सकता है, परन्तु उस समय हम अपना यह सङ्कल्प पूरा नहीं कर पाये; क्योंकि तब १. आदरणीय भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा कृत इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद उपलब्ध था। किन्तु मूल (पालि) पाठ अनुपलब्ध था, अतः उसी का प्रकाशन सर्वप्रथम आवश्यक था। २. इसमें हिन्दी अनुवाद साथ लगाने से ग्रन्थ का कलेवर बढ़ जाने के कारण इसके मूल्य में विवशतः वृद्धि करनी पड़ती। इसलिये उस समय हम मूलपाठ देकर ही सन्तुष्ट रहे।

परन्तु आज हमारे सामने दो व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं– १. हमारा यह संस्करण बर्मा में हुए छट्ठ सङ्गायन के आधार पर आधृत था। इन दोनों संस्करणों में स्थान–स्थान पर इतना अन्तर है कि उक्त अनुवाद से जिज्ञासु को ग्रन्थ का सरलतया ज्ञान नहीं हो पाता था। इसलिये हमने यही उचित समझा कि इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद भी इसी संस्करण के साथ हो। २. दूसरी बात यह है कि स्थान–स्थान पर इस ग्रन्थ के कुछ ऐसे कठिन व दुरूह स्थल हैं, जिनका हिन्दी अनुवाद तत्काल उपलब्ध होना चाहिये, तभी जिज्ञासु को सन्तोष हो सकता है। इन दोनों कठिनाइयों को दूर करने के लिये हम यह संस्करण हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित कर रहे हैं।

'मिलिन्दपञ्हपालि' में प्रसङ्ग–प्रसङ्ग पर आये त्रिपिटक के उद्धरणों के पृष्ठांक भी इसमें उद्धृत कर दिये हैं; जो कि मूल पालि संस्करण में हम नहीं दे पाये थे।

विराम चिह्नों का प्रयोग बौद्धभारती–ग्रन्थमाला के अन्य ग्रन्थों की तरह ही किया गया है।

अथ च, ग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद में आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं, महापण्डित श्री राहुल सांकृत्यायन कृत पालिसाहित्य के ग्रन्थों के हिन्दी अनुवादों एवं पूज्य गुरुवर्य भिक्षु जगदीश काश्यप कृत हिन्दी अनुवाद का सहारा लिया गया है। एतदर्थ, हम इन तीनों महामनीषियों के प्रति प्रणतिपूर्वक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

आशा है, इस ग्रन्थ का यह संस्करण विद्वानों एवं छात्रों के लिये समान रूप से हितावह एवं प्रीति–प्रामोद्योत्पादक होगा।

वाराणसी
गुरुपूर्णिमा, २०५३ वि०
(३० जुलाई, १९९६ ई०)

अध्यक्ष, बौद्धभारती

पूर्वपीठिका

बुद्धं धम्मं च सङ्घं च, तथेव गुरुकस्सपं।
अभिवन्दिय भासिस्सं, अधिगन्थं यथामति॥

समृद्ध पालिसाहित्य

यद्यपि विषय की दृष्टि से पालिसाहित्य उतना विस्तृत या परिपूर्ण नहीं है, जितना संस्कृत साहित्य। संस्कृत की तरह नानाविध ज्ञानशाखाओं पर उसमें साहित्य का अभाव है; क्योंकि वस्तुतः पालिसाहित्य में बौद्ध धर्म, वह भी स्थविरवादी बौद्धधर्म, के अतिरिक्त ज्ञातव्य अत्यन्त स्वल्प है। विभिन्न ज्ञानशाखाओं की वह बहुमूल्य सम्पत्ति इसमें सर्वथा नहीं मिलती, जिससे हम इस साहित्य को समृद्ध कह सकें। तथापि इस साहित्य के दूसरे अनेक महत्त्वपूर्ण आकर्षण हैं, जिनसे परिपूर्ण होने के कारण इस साहित्य को भी समृद्ध कहने में हमें कोई संकोच नहीं होता।

पालिसाहित्य का विकास न केवल भारतवर्ष में ही, अपितु हमारे पड़ोसी देशों लंका, बर्मा, स्याम, कम्बोडिया आदि में भी अत्यधिक हुआ है। अतः स्वभावतः इस साहित्य ने सुदीर्घकाल तक इन देशों की भाषा एवं विचार-परम्परा को भी प्रभावित किया है। पालि भाषा में साहित्य की रचना बुद्धकाल से लेकर आजतक सतत प्रवाहरूप में होती चली आ रही है। इस तरह इसके विकास का, इसकी समृद्धि का कम से कम २५०० वर्ष का तो इतिहास है ही, अतः यही इसकी समृद्धि का उज्ज्वल प्रमाण है।

पालिसाहित्य का वर्गीकरण

सम्पूर्ण पालिवाङ्मय को कालक्रम या प्रवृत्ति की दृष्टि से विभक्त किया जा सकता है। कालक्रम से यह साहित्य पालिसाहित्य (पिटक-बुद्धवचन) और अनुपालि (अनुपिटक, अट्ठकथा या स्वतन्त्र व्याख्या) साहित्य रूप से द्विधा वर्गीकृत किया जा सकता है। पालि (पिटक) साहित्य का विकास बुद्ध के निर्वाणकाल से प्रथम शताब्दी ईस्वी पूर्व तक माना गया है। और अनुपालि (अनुपिटक) साहित्य का विकास प्रथम शताब्दी ईस्वी पूर्व से लगाकर अद्यावधि होता चला आ रहा है।

(क) पिटक-साहित्य

(क) इस पालि या पिटकसाहित्य को विद्वानों ने सर्वप्रथम तीन भागों में विभक्त किया है— १. विनयपिटक, २. सुत्तपिटक एवं ३. अभिधम्मपिटक।

१. विनयपिटक— यह पिटक अपने आप में परिपूर्ण है, परन्तु विषयवस्तु की दृष्टि से तीन भागों में यों विभक्त किया जा सकता है— (क) सुत्तविभङ्ग, (ख) खन्धक एवं (ग) परिवार। सुत्तविभङ्ग में दो ग्रन्थ हैं- १. पाराजिक एवं २. पाचित्तिय। खन्धक में भी दो ग्रन्थ हैं— १. महावग्ग एवं २. चुल्लवग्ग। परिवार या परिवारपालि अपने नाम से विख्यात है।

२. सुत्तपिटक— यह पिटक पाँच निकायों में विभाजित किया गया है— १. दीघनिकाय, २. मज्झिमनिकाय, ३. संयुत्तनिकाय, ४. अंगुत्तरनिकाय एवं ५. खुद्दकनिकाय। अन्तिम खुद्दकनिकाय में १५ छोटे-बड़े ग्रन्थ स्वतन्त्र रूप से सम्मिलित किये गये हैं।

३. अभिधम्मपिटक— इस पिटक में सात ग्रन्थ हैं— १. धम्मसङ्गणि, २. विभङ्ग, ३. धातुकथा, ४. पुग्गलपञ्ञत्ति, ५. यमक, ६. पट्ठान एवं ७. कथावत्थु।

(ख) पाँच निकाय— पिटकसाहित्य (त्रिपिटक) का उक्त वर्गीकरण तो प्रसिद्ध ही है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी समग्र त्रिपिटिक को पाँच निकायों में भी विभक्त करके दिखाया गया है। इनमें चार निकाय तो पूर्वोक्त दीघनिकायादिक ही हैं, पाँचवें खुद्दकनिकाय में उक्त १५ ग्रन्थों के अतिरिक्त विनयपिटक एवं अभिधम्मपिटक का भी संग्रह कर दिया गया है। परन्तु यह विभाजन स्वाभाविक एवं तर्कसम्मत नहीं लगता।

(ग) नौ अङ्ग— त्रिपिटक (बुद्धवचनों) का एक वर्गीकरण नौ अङ्गों के रूप में भी प्रसिद्ध है। वे नौ अङ्ग हैं— १. सुत्त (भगवान् द्वारा दिये गये वे धार्मिक उपदेश जो गद्यों में संगृहीत हुए हैं), २. गेय्य (भगवान् के वे उपदेश जो पद्यमिश्रित अर्थात् गाने योग्य हैं), ३. वेय्याकरण (व्याकरण, वह व्याख्यापरक साहित्य जो अभिधम्मपिटक आदि में सन्निहित है), ४. गाथा (श्लोक, पद्यबद्ध संग्रह), ५. उदान (भावातिरेक में बुद्ध या बुद्धशिष्यों के श्रीमुख से निकले उद्‌गार), ६. इतिवुत्तक (इत्युक्तकम्, 'ऐसा कहा गया' इस वाक्यांश के साथ भगवान् की छोटी-छोटी उक्तियों का संग्रह), ७. जातक (बुद्ध के पूर्वजन्मों से सम्बद्ध कथायें), ८. अब्भुतधम्म (अद्भुत धर्म, यौगिक सिद्धियों का वर्णन करने वाले त्रिपिटक के अंश) एवं ९. वेदल्ल (ज्ञानवर्धन के लिये प्रश्नोत्तर के रूप में लिखे गये उपदेश, जैसे चूळवेदल्लसुत्त, या महावेदल्लसुत्त)। इसीलिये कहा है— 'नवङ्गं बुद्धसासनं'। यह ध्यान रखना चाहिये कि बुद्धवचनों का यह नौ प्रकार का विभाजन भी विषय की दृष्टि से है, ग्रन्थों की दृष्टि से नहीं।

(घ) बुद्धवचनों का एक और वर्गीकरण ८४००० धर्मस्कन्धों के रूप में भी किया गया है, किन्तु यह बौद्ध विद्वानों की विश्लेषणप्रियता का एक आदर्श (नमूना) है, अतः यह औपचारिक है, व्यवहार में इसका उपयोग कम ही है।

सामान्यतः आज तक त्रिपिटक एवं उसके उपविभागों के रूप में ही बुद्धवचनों के अध्ययन की परिपाटी है।

(ख) अनुपिटक साहित्य

अनुपिटक साहित्य का वर्गीकरण करते समय भी हम कालक्रम को ही प्रधान मानेंगे। जैसा पहले कहा जा चुका है, इस अनुपिटक साहित्य की रचना त्रिपिटक के पूर्ण हो जाने के बाद से प्रारम्भ होकर वर्तमान काल तक होती चली आ रही है। किसी भी विद्वान् के लिये यह आश्चर्य की बात होगी कि इतने सुदीर्घ विकास-काल में भी इस साहित्य में इतनी विभिन्नता नहीं दिखायी देती जितनी कि अन्य किसी भी साहित्य में मिलती है। इसका एकमात्र कारण यह है कि इस साहित्य का सदा एक ही केन्द्रबिन्दु—स्थविरवादी बौद्ध धर्म का अध्ययन एवं विवेचन रहा है। अतः एक लक्ष्य होने के कारण नानारूपता आने का प्रश्न नहीं उठता। फिर भी, कालक्रम और प्रवृत्ति की दृष्टि से इस समग्र साहित्य को तीन युगों में बाँटा जा सकता है।

पहला युग प्रथम शताब्दी ईस्वीपूर्व से लगाकर चौथी शताब्दी ईस्वी तक अर्थात् बुद्धघोष के आविर्भावकाल (५०० वर्ष) तक मानना चाहिये। इस युग में नेत्तिपकरण, पेटकोपदेस, सुत्तसंगह और मिलिन्दपञ्ह, महावंस एवं दीपवंस आदि की रचना हुई। जिनमें मिलिन्दपञ्ह सर्वतोऽधिक प्रसिद्ध है। क्योंकि यह सारा साहित्य बुद्धघोष की उत्पत्ति से पूर्व लिखा गया, अतः इसको 'पूर्वबुद्धघोष युग का साहित्य' कहा जा सकता है।

दूसरा युग— बुद्धघोष के आविर्भावकाल से प्रारम्भ माना जाता है। बुद्धघोष के प्रसिद्ध ग्रन्थ *विसुद्धिमग्ग* एवं उनकी अट्ठकथाएँ, बुद्धदत्त और धर्मपाल आदि की अट्ठकथाएँ इसी युग में लिखी गयी। प्रसिद्ध इतिहास-ग्रन्थ *महावंस,* एवं व्याकरण शास्त्र में *कच्चायन व्याकरण* तथा अभिधर्म दर्शन पर *अभिधम्मत्थसंगह* भी इसी युग में लिखा गया। पालित्रिपिटक पर अट्ठकथाओं की रचना इस युग की मुख्य विशेषता है, जिसके प्रेरक आचार्य बुद्धघोष ही हैं। अतः इस युग को 'बुद्धघोष-युग' नाम से इतिहासकारों ने व्यवहृत किया है। इस युग की रचना-पंक्ति पाँचवी शताब्दी से लगाकर बारहवीं शताब्दी तक चलती है।

तीसरा युग— उक्त युग में जो अट्ठकथा-साहित्य लिखा गया, उसी की टीकाएँ, उपटीकाएँ, अनुटीकाएँ आगे की शताब्दियों में लिखी जाती रहीं। यह बारहवीं शताब्दी से आज तक का सुदीर्घ युग है। इस युग में प्रायः बुद्धघोष एवं उनके समकालिक आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट पद्धति पर या उनके ही उपजीव्य साहित्य की रचना होती रही है, अतः इस युग को 'बुद्धघोष युग की परम्परा' अथवा 'टीकाओं का युग' नाम दिया गया है।

मिलिन्दपञ्ह का गौरव

इतने विस्तृत वर्णन से यह सिद्ध हो जाता है कि पालिसाहित्य में मिलिन्दपञ्ह का क्या स्थान है। यह ग्रन्थ पूर्वबुद्धघोषयुग की सबसे प्रसिद्ध रचना है। इसलिये यह कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण अनुपिटक-साहित्य में इस ग्रन्थ की समता अन्य कोई ग्रन्थ नहीं कर पाया, न तो विषय के वर्णन की दृष्टि से, न ही भाषा की दृष्टि से और न शैली की दृष्टि से। आचार्य बुद्धघोष ने इस ग्रन्थ को अपनी अट्ठकथाओं में स्थान-स्थान पर त्रिपिटक के समान ही आदरपूर्वक स्मरण करते हुए उद्धृत किया है। यह इसकी महत्ता का सर्वोत्तम परिचायक है। साहित्य और दर्शन— दोनों ही दृष्टियों से 'मिलिन्दपञ्ह' एक गौरवशाली ग्रन्थ है। ग्रन्थ के इस गौरव पर पाश्चात्त्य विद्वान् इतने मुग्ध हैं कि उन्हें इस पर ग्रीक प्रभाव और प्लेटो के विचार की गन्ध आ गयी; क्योंकि उनकी दृष्टि में भारतीयों में ऐसा उत्कृष्ट ग्रन्थ लिखने की क्षमता कहाँ थी!

मिलिन्दपञ्ह का रचनाकाल

इस ग्रन्थ में, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, 'मिलिन्द' के 'प्रश्नों' का विवरण है। ('मिलिन्द' शब्द ग्रीक 'मेनान्डर' नाम का भारतीयकरण है।) कहना यह चाहिये कि इसमें मिलिन्द के प्रश्नों का विवरण ही नहीं, अपितु उसके उन प्रश्नों का समाधान इसका मुख्य विषय है। यह समाधान भदन्त नागसेन नामक बौद्ध भिक्षु ने किया था, अतः मिलिन्द एवं भदन्त नागसेन के संवाद के रूप में यह ग्रन्थ लिखा गया।

उक्त संवाद एक ऐतिहासिक तथ्य है। इतिहास में एतद्विषयक प्रभूत सामग्री उपलब्ध है। मिलिन्द को स्वयं इस ग्रन्थ में ही योनक (=यवनक, यूनान=ग्रीस) देश का राजा कहा गया है और उसकी राजधानी सागल (=स्यालकोट, वर्तमान में पाकिस्तान का एक नगर) बतलायी गयी है। हम इतिहास पढ़ने से जानते हैं कि भारत का उत्तर-पश्चिमी भाग दूसरी शताब्दी ई०पूर्व में कुछ समय के लिये ग्रीक शासकों के हाथों में चला गया था। ग्रीक शासक 'मेनान्डर' या 'मेनान्ड्रोस' ही 'मिलिन्दपञ्ह' का 'मिलिन्द' है। यह इतिहासवादियों का निश्चित मत है। किन्तु इस मिलिन्द के शासनकाल की निश्चित तिथि के विषय में उनका ऐकमत्य नहीं है। उनमें से कुछ इतिहासकार

मानते हैं कि मिलिन्द ने १५५ ई० पूर्व में भारत पर आक्रमण किया, कुछ का मत है कि मिलिन्द का शासनकाल प्रथम शताब्दी ईस्वी पूर्व था, एक विद्वान् कहते हैं कि ९० वर्ष ईस्वी पूर्व से पहले मिलिन्द का समय नहीं माना जा सकता। सब मिलाकर विद्वानों का बहुमत इसी पक्ष में है कि मिलिन्द का शासनकाल प्रथम शताब्दी ईस्वी पूर्व है। अतः अपने मूलरूप में 'मिलिन्दपञ्ह' इसी समय लिखा गया— यह निश्चित है।

ग्रन्थ की एतद्विषयक ऐतिहासिकता को प्रमाणित करते हुए इसी ग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद की भूमिका (पृष्ठ ५-६) में आदरणीय गुरुदेव भिक्षु श्री जगदीश काश्यप एक और दृढ़तर साक्ष्य उपस्थित करते हैं। वे लिखते हैं—

"मिलिन्दपञ्ह के अन्त में आता है कि राजा मिलिन्द भिक्षु बना और उसने अर्हत्-पद प्राप्त किया। इसमें ऐतिहासिक सत्य कहाँ तक है, कहा नहीं जा सकता। राजा मिलिन्द के विषय में सबसे प्रामाणिक जानकारी हमें प्राप्त होती है उसकी मुद्राओं से।

अभी तक राजा मिलिन्द की लगभग बाईस सुन्दर मुद्राएँ उपलब्ध हैं। अधिक में राजा मिलिन्द का नाम स्पष्टतया पढ़ा जाता है। आठ मुद्राओं में राजा की आकृति भी है। ये मुद्राएँ उत्तर-भारत के सुदूर प्रदेश में प्राप्त हुई हैं— पश्चिम में काबुल तक, पूर्व में मथुरा तक और उत्तर में काश्मीर तक। इससे पता चलता है कि मिलिन्द के राज्य का प्रसार बड़ा था। सिक्कों पर राजा की आकृति बहुत सुन्दर आयी है, लम्बी नाक के साथ मूर्ति बहुत ही सजीव ज्ञात पड़ती है। कुछ सिक्कों की आकृति तरुण अवस्था की है और कुछ की अत्यन्त वृद्धावस्था की। इससे पता चलता है कि मिलिन्द राजा का राज्य-काल भी बड़ा लम्बा रहा होगा। मुद्राओं के एक तरफ ग्रीक भाषा में और दूसरी तरफ उस समय की पालिभाषा में लेख है। इक्कीस सिक्कों पर है :

एक तरफ— **Basileos Soteros Menadrou**
दूसरी तरफ— महरजस तद्रतस मेनन्द्रस

कुछ मुद्राओं पर दौड़ते घोड़े, ऊँट, हाथी, सूअर, चक्र या ताड़ के पत्ते खुदे हैं। चक्र वाले सिक्के से यह प्रमाणित होता है कि राजा के ऊपर बौद्ध धर्म का प्रभाव अवश्य पड़ा होगा, क्योंकि चक्र (=धर्मचक्र) बुद्ध-धर्म का एक प्रधान चिह्न है। केवल एक मुद्रा ऐसी है जो दूसरों से सर्वथा भिन्न है और इस बात को बहुत सीमा तक पुष्ट करता है मिलिन्द राजा ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था। उसके एक तरफ लिखा है :

एक तरफ— Basileos Dikaiou Menadrou
दूसरी तरफ— महरजस धर्मिकस मेनन्द्रस

यहाँ 'धर्मिकस' का अर्थ है "धार्मिकस्य"। बौद्ध साहित्य में उपासक राजा के लिये बराबर 'धम्मराज' शब्द का प्रयोग होता है। अशोक का तो नाम ही हो गया था 'धर्माशोक'। अतः इस मुद्रा में जो 'धर्मिकस' पद का प्रयोग आया है उससे सिद्ध होता है कि मिलिन्द अन्त में अवश्य बौद्ध हो गया होगा।

प्लुटार्क भी अपने इतिहास में लिखता है कि मेनाण्डर बहुत न्यायी विद्वान् और जनप्रिय राजा था। उसकी मृत्यु के बाद उसके फूल (= भस्मावशेष) लेने के लिये लोगों में विवाद छिड़ गया था। लोगों ने उसके फूलों पर बड़े-बड़े स्तूप बनवाये। यह कहानी भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण

के समय जो बातें हुई थीं, उनसे बहुत मिलती है। फूलों के ऊपर स्तूप बनवाना बौद्धों की प्रचलित प्रथा थी। इसे भी यह ज्ञात होता है कि मिलिन्द अवश्य बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गया होगा।"

'मिलिन्दपञ्हो' के रचयिता : नागसेन

इस तरह ग्रीक राजा मिलिन्द एवं भदन्त नागसेन के संवाद के रूप में इस ग्रन्थ का लिखा जाना एक निश्चित ऐतिहासिक तथ्य सिद्ध होने पर अभी इन प्रश्नों पर विचार करना है कि इसका रचयिता कौन है? इसका मूल रूप क्या था, किस भाषा में था? बाद में एक बार या बार-बार इसमें कब और क्या क्या परिवर्तन-परिवर्धन हुए?

इसके रचना-स्थान के विषय में यह निश्चित समझ लेना चाहिये कि मूल रूप में यह ग्रन्थ उत्तर-पश्चिम भारत में द्वितीय या प्रथम शताब्दी ईस्वी पूर्व में हुए मिलिन्द व नागसेन के संवाद के रूप में उसी समय या कम से कम प्रथम शताब्दी ईस्वी पूर्व के निकट काल में, बौद्ध धर्म और दर्शन सम्बन्धी शङ्काओं के निवारणार्थ लिखा गया था।

इस ग्रन्थ के रचयिता के रूप में भदन्त नागसेन को माना जा सकता है। ग्रन्थ के नायक होने के साथ-साथ उनके इस ग्रन्थ का रचयिता होने में कोई विरोध नहीं है; क्योंकि हम भारतीय लेखकों की परम्परा में ऐसे अनेक उदाहरण देखते हैं कि वे ग्रन्थ के लेखक भी हैं और ग्रन्थ में पात्र (संवादक) भी। जैसे रामायणकार वाल्मीकि रामायण के रचयिता भी हैं और राम के उपदेशक के रूप में ग्रन्थ में भी स्थान-स्थान पर चर्चित हैं। इसी तरह महाभारतकार व्यास महाभारत में स्थान-स्थान पर एक विशिष्ट संवादक के रूप में उपलब्ध हैं। ऐसी स्थिति में नागसेन भी इस ग्रन्थ के रचयिता होते हुए संवादक भी क्यों नहीं हो सकते! आचार्य बुद्धघोष ने भी, जिनकी प्रामाणिता पालिवाङ्मय में असन्दिग्ध एवं सर्वोपरि है, अपनी अट्ठकथाओं में विशेषतः *अट्ठसालिनी* और *विसुद्धिमग्ग* में स्थान-स्थान भदन्त नागसेन को मिलिन्दपञ्ह के रचयिता के रूप में ही माना है।

श्रीमती रायस डेविस ने 'मिलिन्दपञ्हो' के अपने अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका में ग्रन्थ के रचयिता का नाम 'माणव' बतलाया है। परन्तु 'माणव' नामधारी किसी विद्वान् द्वारा 'मिलिन्दपञ्हो' जैसे उत्कृष्ट ग्रन्थ की रचना के बाद भी उसका नाम उससे पहले या बाद में कोई भी न ले— ऐसा कभी देखा या सुना नहीं गया। अतः इस 'माणव' नाम के पीछे ऐतिहासिकता के अभाव में इसे हम श्रीमती रायस डेविस का कल्पनाप्रसूत ही मानते हैं। विद्वानों को ऐसे भ्रमजाल में नहीं फँसना चाहिये।

मिलिन्दपञ्ह का मूल रूप

मिलिन्दपञ्ह के मूल रूप को लेकर भी पश्चिमी विद्वानों ने एक वाद खड़ा किया है। वे कहते हैं कि यह एक समय में बनी हुई समग्र रचना नहीं हैं। उनके अनुसार इसमें समय-समय पर परिवर्धन होते रहे हैं। परिच्छेदों और विषयवस्तु की भिन्नरूपता का आश्रय लेकर उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है! उनकी धारणा है कि मौलिक रूप में यह ग्रन्थ मिलिन्द-नागसेन के संवाद के संक्षिप्त विवरण के रूप में बहुत छोटा था, बाद में स्थविरवाद की दृष्टि से महत्वपूर्ण विषयों को इसमें समाविष्ट कर दिया गया।

इसमें वे लोग ग्रन्थ के अनेकरूपतामय आन्तरिक साक्ष्य के अतिरिक्त एक प्रभावशाली बाह्य साक्ष्य भी देते हैं। वह साक्ष्य है ३१७ और ४२० ई० के मध्य हुआ इस ग्रन्थ का चीनी भाषा

रूपान्तर, इसमें प्रारम्भ के केवल तीन परिच्छेदों (१. पूर्वयोग, २. लक्खणपञ्ह एवं ३. विमतिच्छेदनपञ्ह) का ही अनुवाद मिलता है। इस अनुवाद का नाम चीन में *नागसेन-सूत्र* है। इसमें चतुर्थ परिच्छेद (मेण्डकपञ्ह) से षष्ठ (ओपम्मकथापञ्ह) परिच्छेद तक का अनुवाद नहीं है। इस साक्ष्य के आधार पर सेनार्ट, बार्थ, गायगर और विन्टरनित्ज आदि विद्वान् इस ग्रन्थ का मौलिक रूप तृतीय परिच्छेद तक ही मानते हैं।

इस मत के समर्थन में वे अन्य कारण भी देते हैं।

१. सबसे बड़ा कारण है इस ग्रन्थ के तृतीय परिच्छेद के अन्त में ही ग्रन्थ-समाप्तिसूचक वाक्य लिख दिया गया है— 'मिलिन्दपञ्हपुच्छाविसज्जना निट्ठिता।' फिर चतुर्थ परिच्छेद के प्रारम्भ में नये क्रम से लिखा है—

"भस्सप्पवेदी वेतण्डी, अतिबुद्धि विचक्खणो।
मिलिन्दो ञाणभेदाय, नागसेनमुपागमि॥"

एक ही ग्रन्थ था तो जब पहले मिलिन्द के प्रश्न समाप्त कर दिये गये, तब पुनः इस तरह दोबारा विषयोत्थान करने की क्या आवश्यकता आ पड़ी?

२. दूसरा कारण देते हुए वे कहते हैं कि कितने आश्चर्य की बात है कि आचार्य बुद्धघोष भी मिलिन्दपञ्ह के जिन उद्धरणों को अपने ग्रन्थों में उद्धृत करते हैं, वे सब प्रायः प्रथम के तीन परिच्छेदों में से ही हैं। अतः निष्पक्ष समालोचक होने के कारण प्रथम तीन परिच्छेदों को ही प्रामाणिक (मूलरूप) मानना पड़ता है। यों, इन बाह्य और आन्तरिक साक्ष्यों के आधार पर पाश्चात्त्य विद्वानों ने मिलिन्दपञ्ह का मूलरूप प्रथम तीन परिच्छेद तक ही माना, उसके अवशिष्ट परिच्छेदों को वे बाद में मिलाया हुआ मानते हैं।

संक्षेप में इन विद्वानों ने ग्रन्थ के मौलिक रूप के उपर्युक्त निर्णय में चार हेतु दिये हैं— १. विषयवस्तु की भिन्नरूपता, २. ग्रन्थ का चीनी भाषान्तर, ३. बुद्धघोष द्वारा उद्धृत इस ग्रन्थ के उद्धरण एवं ४. ग्रन्थ के चौथे परिच्छेद से नये रूप में विषयावतरण।

पाश्चात्त्यमतखण्डन— हमारा इस वाद में इतना ही कहना है कि पाश्चात्त्य विद्वान् ग्रन्थ को सूक्ष्मेक्षिकया न पढ़ने के कारण और भारतीय लेखकों की शैली एवं भारतीय संस्कारों से अपरिचित होने के कारण ऐसी भूल कर बैठे! प्रत्येक ग्रन्थ की रचना के अनुबन्ध-चतुष्टय होते हैं— १. विषय, २. प्रयोजन, ३. अधिकारी एवं ४. सम्बन्ध। मिलिन्दपञ्ह के भी अनुबन्ध-चतुष्टय हैं। इसका साक्षात् अधिकारी है— मिलिन्द और प्रयोजन है मिलिन्द के बौद्ध दर्शन एवं धर्म के विषय में सञ्जात भ्रमों का निराकरण।

१. हम इतिहास से इस साक्षात् अधिकारी मिलिन्द के विषय में जानते हैं कि यह विद्वान् था, तार्किक था, परन्तु अभारतीय था। इसे भारतीय धर्म, दर्शन एवं शास्त्र के विषय में कोई श्रद्धा नहीं थी। वह अपने देश के विद्वानों, भारत और यूनान के बीच में पड़ने वाले देश के अन्य विद्वानों को अपनी तर्कबुद्धि से परास्त करा चुका था। भारत में भी यह नागसेन से संवाद होने से पूर्व पूरण काश्यप आदि अन्य भारतीय धर्मपीठाधीशों एवं दर्शनाचार्यों को, आयुपाल जैसे बौद्धों को अपनी अनुपम तर्कशक्ति से चुप कर चुका था। इस कारण इसे अपने तर्कबल का बहुत दम्भ हो गया था। वह कह बैठा— "तुच्छो बत, भो, जम्बुदीपो! नत्थि कोचि समणो वा ब्राह्मणो वा, यो मया सद्धिं सल्लपितुं उस्सहति, कङ्खं पटिविनेतुं"। (समग्र जम्बुद्वीप आज विद्याविहीन हो चुका है, इसमें ऐसा

कोई श्रमण या ब्राह्मण विद्वान् नहीं दिखायी देता, जो मेरे सामने आने का साहस कर सके! मेरे प्रश्नों का उत्तर देना तो बहुत दूर की बात है!) ऐसी परिस्थिति में वह नागसेन से मिला है। मिलते ही उसने यहाँ भी, पूर्व के विद्वानों की तरह नागसेन के सामने भी, वितण्डावाद के सहारे तत्त्वचर्चा प्रारम्भ की थी। परन्तु नागसेन जैसे सिद्ध विद्वान् के सामने उसकी एक युक्ति न चली और जब उसके सभी छोटे-बड़े प्रश्नों का शास्त्रानुकूल एवं तर्कसम्मत उत्तर मिलता गया, तब जीवन में पहली बार उसके दम्भ, दर्प व अभिमान विगलित हुए और वह हृदय से एक वास्तविक विद्वान् के सामने नतमस्तक हुआ। उसके मुख से अकस्मात् ये नम्रतामय उद्गार निकले— "आम, भणे, पण्डितो थेरो। एदिसो आचरियो भवेय्य, मादिसो च अन्तेवासी, नचिरस्सेव पण्डितो धम्मं आजानेय्या" ति। (योनकदेशवासियो! तुम ठीक ही कह रहे हो, भदन्त नागसेन विद्वान् हैं! ऐसा (नागसेन जैसा) आचार्य (उपदेष्टा) हो, और मेरे जैसा अन्तेवासी (शिष्य) जिज्ञासु, तभी वह धर्म की गुत्थियों को इतना शीघ्र सुलझा सकता है)। और वह भदन्त नागसेन का वस्तुतः अन्तेवासी बन गया।

अन्तेवासी बनकर उसने त्रिपिटक एवं स्थविरवाद दर्शन का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन किया। अध्ययन करने के बाद उसकी जन्मजात तर्कबुद्धि से त्रिपिटक में जो बातें उसे द्विविधापूर्ण (दुतरफा) लगीं, उनके विषय में भदन्त नागसेन से प्रश्न करके अपने भ्रम का निराकरण किया। 'मेण्डकपञ्ह' में ऐसे ही भ्रमात्मक प्रश्नों का उत्तर है।

इस तरह त्रिपिटक का सर्वथा विनीत अध्येता बनने पर भी मिलिन्द की पुरानी भावना प्रच्छन्न रूप से काम कर रही थी, उसी के आधार पर उसके द्वारा बाद में जो प्रश्न किये गये उनका अनुमान (तर्क, युक्ति) के बल पर भदन्त नागसेन द्वारा उत्तर दिया गया। 'अनुमानपञ्ह' में ऐसे ही प्रश्नों का उत्तर है।

उन्हीं में से कुछ प्रश्नों का उत्तर तर्क के आधार पर उपमा (उदाहरण) के सहारे 'ओपम्मकथापञ्ह' में दिया है, क्योंकि उपमा द्वारा कठिन से कठिन बात भी शीघ्र समझ में आ जाती है।

इस तरह साधारण पाठक ग्रन्थ के विषय की भिन्नरूपता का कारण समझ सकते हैं। इस वस्तुस्थिति के रहते यह कैसे माना जा सकता है, ग्रन्थ बार-बार कई व्यक्तियों द्वारा लिखा गया है!

२. अब चीनी भाषान्तर को लें। चीनी भाषान्तर तीन ही परिच्छेद तक मिलता है तो हम क्या करें! फिर हमारे पिछले तर्क के आधार पर हो सकता है चीनियों ने जितने अंश में सीधे शास्त्र पर प्रश्न किये गये थे, उतने का अनुवाद कर लिया। अवशिष्ट जिस अंश में स्थविरवादी दर्शन की चर्चा है उसका महायानवादी चीनी विद्वान् अनुवाद न करें तो इसमें ग्रन्थ का क्या दोष है? अथ च, यह भी हो सकता है, प्रारम्भ में पूरे ग्रन्थ का चीनी अनुवाद किया गया हो, बाद में किसी कारण से आगे का अंश लुप्त हो गया हो और फिर अनुवाद में भिन्नरूपता आ जाने के भय से या स्थविरवाद के प्रति उपेक्षा के कारण, वहाँ पुनः (दुबारा) अनुवाद न किया गया हो। अतः केवल चीनी भाषान्तर के दुर्बल साक्ष्य पर हम यह मानने को सन्नद्ध नहीं हैं कि मूलरूप में ग्रन्थ प्रारम्भ में तीन परिच्छेद तक ही लिखा गया था।

३. रह गयी बात आचार्य बुद्धघोष द्वारा उद्धृत उद्धरणांशों की। इस विषय में हमारा यह मत है कि ग्रन्थ में विमतिच्छेदपञ्हपर्यन्त एक विदेशी तर्कशास्त्री से शास्त्र के मुद्दों पर ही प्रधानतः चर्चा है। उधर बुद्धघोष को शास्त्र की अपनी व्याख्या (अट्ठकथा) में जहाँ-जहाँ अपने से अधिक

उद्भट विद्वान् के आश्रय की आवश्यकता पड़ी वहाँ उन्होंने त्रिपिटिक में उद्धरण न मिलने पर मिलिन्दपञ्ह से उद्धरण दिये। मेण्डकपञ्ह, अनुमानपञ्ह में शास्त्रप्रधान-चर्चा नहीं है, अतः उन्होंने उन प्रकरणों से उद्धरण नहीं दिये। परन्तु यह इससे यह कैसे सिद्ध किया जा सकता है कि मिलिन्दपञ्ह की, मूल रूप में, तीन ही परिच्छेद तक रचना हुई थी!

४. रही बात चतुर्थ परिच्छेद से नये रूप में विषयावतरण की, इसमें भी पाश्चात्त्यों को क्या उद्वेग है? हमारे भारतीय संस्कारों में ग्रन्थों के प्रत्येक परिच्छेद के प्रारम्भ में मङ्गलाचरण की परिपाटी देखी गयी है। जब कि मिलिन्दपञ्ह में तो चतुर्थ परिच्छेद नये परिवेश में प्रारम्भ किया जा रहा है, वहाँ पुनः मङ्गलाचरण करना स्वभाविक है। हम पीछे कह ही आये हैं कि तृतीय परिच्छेद तक भदन्त नागसेन के साथ उस मिलिन्द के संवाद हैं जो धृष्ट, उद्धत, वितण्डावादी एवं अभारतीय है। अब चतुर्थ परिच्छेद में वही भस्सप्पवेदी, वेतण्डी मिलिन्द भदन्त नागसेन का अन्तेवासी, उपासक, भारतीय दर्शन तथा बौद्ध धर्म के प्रति विनीत एवं श्रद्धालु बन चुका है, पाठकों को यह दिखाने के लिये ही नये रूप में विषय प्रारम्भ किया गया है। इससे यह कैसे सिद्ध हो सकता है कि यहाँ से यह ग्रन्थ शताब्दियों बाद किसी दूसरे रचनाकार ने लिखा है!

इन सब युक्तियों के आधार पर हम तो यह मानते हैं कि यह ग्रन्थ 'एक साथ, एक ही समय, एक ही लेखक द्वारा' लिखा गया है।

ग्रन्थ के कई पाठभेद मिलने की बात भी ऐसी ही है! जर्मन विद्वान् श्रेडर ने तो इस ग्रन्थ के सात पाठ-भेद खोज निकाले हैं, एक दो की बात कौन कहे! सचाई यह है कि इतने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के विषय में साधनाभाव में ऐसी ही सब कपोलकल्पनायें हुआ करती हैं।

क्या मिलिन्दपञ्ह मूलरूप में संस्कृत में था?

मिलिन्दपञ्ह की उत्कृष्ट रचना-शैली, जो कि उस काल के संस्कृत ग्रन्थों से मिलती-जुलती है, उसे देखकर गायगर जैसे कुछ पाश्चात्त्य मनीषियों ने और उनकी देखा-देखी यहाँ के विद्वानों ने मिलिन्दपञ्ह के विषय में यह धारणा फैलायी कि यह ग्रन्थ मूल रूप में संस्कृत में लिखा गया था, अनागत काल में किसी विद्वान् ने पालि भाषा में उसका अनुवाद कर दिया।

परन्तु यदि शैलीमात्र से हम इस ग्रन्थ के वर्तमान रूप को संस्कृत से अनूदित मानें तो भगवान् बुद्ध से लगाकर आचार्य बुद्धघोष तक का बहुत सा पालिसाहित्य संस्कृत से अनूदित मानना पड़ेगा। क्या दीघनिकाय, मज्झिमनिकाय और विसुद्धिमग्ग की भाषा और शैली मिलिन्दपञ्ह से कहीं भी दुर्बल है? यदि वे सब ग्रन्थ मूल रूप में पालि में ही लिखे गये माने जा सकते हैं तो मिलिन्दपञ्ह के विषय में यह विवाद किस तर्क के आधार पर खड़ा किया जा सकता है!

वस्तुसत्य यह है कि तीन शताब्दी ईस्वी पूर्व से प्रारम्भकर पाँचवीं, छठीं शताब्दी तक लिखित समग्र भारतीय साहित्य, फिर वह भले ही संस्कृत में लिखा गया हो, या पालि में या प्राकृत में, सबकी शैली समानतया उत्कृष्ट रही है। क्योंकि उस समय संस्कृत अधिक समृद्ध थी, अतः उसके नाम पर किसी भी ग्रन्थ के लिये यह भ्रम फैलाना सरल होता है कि वह मूलरूप में संस्कृत में लिखा गया होगा। वस्तुतः मिलिन्दपञ्ह मूलरूप में पालि में ही लिखा गया है।

एक बात और! स्थविरवाद का प्रतिपादन जिस सम्पन्नता एवं समृद्धि के साथ पालि भाषा में किया जा सकता था उतना संस्कृत में नहीं; क्योंकि उस समय तक संस्कृत के विद्वान् पालिभाषा में लिखना अपनी हीनता समझते थे और स्थविरवादी विद्वान् उस समय "अनुजानामि, भिक्खवे,

सकाय निरुत्तिया परियापुणितुं' भगवान् की इस आज्ञा का उल्लङ्घन करना पाप समझते थे! ऐसी स्थिति में मिलिन्दपञ्ह के संस्कृत में लिखे जाने की कल्पना उस समय की सामाजिक मान्यताओं से अपने आप को अपरिचित घोषित करना है।

अतः हम यही मानने में अपना और पालिसाहित्य का सम्मान समझते हैं कि मिलिन्दपञ्ह मूल रूप में पालिभाषा में ही निबद्ध हुआ है। प्रसिद्ध इतिहासविद् डॉ० भरतसिंह उपाध्याय भी हमारे इस मत के समर्थक हैं।

मिलिन्दपञ्ह के रचयिता नागसेन

यदि मिलिन्दपञ्ह के रचयिता के रूप में भदन्त नागसेन को ही माना जाता है, तो नागसेन का जीवनचरित्र हम ग्रन्थ की विषयवस्तु लिखते समय प्रारम्भ में ही लिखेंगे। सम्राट् मिलिन्द के विषय में, हमें जो कुछ इतिहास से ज्ञात हुआ, पीछे लिख चुके हैं।

मिलिन्दपञ्ह का त्रुटित अंश

मिलिन्दपञ्ह के अब तक हमको जितने भी संस्करण मिले हैं— रोमन, श्रीलंका, बर्मा या हिन्दी संस्करण— सभी त्रुटित मिले हैं। यहाँ तक कि छट्ठ संगायन (बर्मा) का नवीनतम संस्करण भी उतने अंश में त्रुटित ही है।

षष्ठ *ओपम्मकथापञ्ह* में *कुम्भवग्ग* की ६७वीं मातिका के बाद अवशिष्ट मातिकाओं का व्याख्यान किसी भी संस्करण में उपलब्ध नहीं हुआ, विवशतः इस संस्करण में हम भी उतनी मातिकाओं का व्याख्यान नहीं दे पाये। यद्यपि इतने अंश के नष्ट होने से मिलिन्दपञ्ह की पूर्णता पर कोई आंच नहीं आ पायी, क्योंकि उतने अंश की मातिकाएँ तो उपलब्ध हैं ही। इन मातिकाओं से भी जिज्ञासु का बहुत कुछ समाधान हो जाता है।

अनुमान ऐसा होता है कि ग्रन्थ का यह अंश बहुत पहले नष्ट हो गया था, बाद में भाषा में अनेकरूपता आ जाने के भय से किसी विद्वान् ने यह अंश पुनः अपनी भाषा में नहीं लगाया; क्योंकि इन प्राचीन ग्रन्थों के साथ पुण्यपाठ का लाभ भी श्रद्धालु जिज्ञासुओं के साथ जुड़ा हुआ है! भदन्त नागसेन के अतिरिक्त किसी अन्य द्वारा त्रुटित जोड़ देने से यह लाभ मिलना असम्भव था!

ग्रन्थ का साहित्यिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व

इस ग्रन्थ का साहित्य, इतिहास, भूगोल आदि की दृष्टि से जो महत्त्व हैं, उसके विषय में पालिसाहित्य के प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० भरतसिंह उपाध्याय अपने ग्रन्थ (पालि साहित्य का इतिहास) में लिखते हैं—

"मिलिन्दपञ्ह का दार्शनिक और धार्मिक दृष्टि से तो महत्त्व है ही, साथ ही इसका साहित्यिक या ऐतिहासिक मूल्य भी कम नहीं है। यद्यपि स्थविरवादी बौद्ध धर्म का यह कण्ठहार है, जिसकी प्रतिष्ठा यहाँ बुद्ध-वचनों के समान ही मान्य है, वह भारतीय साहित्य की भी अमूल्य निधि है। यह सत्य है कि लंका, बर्मा और स्याम देशों की तरह भारत में उसकी आधुनिक लोक-भाषाओं में 'मिलिन्दपञ्ह' सम्बन्धी प्रचुर साहित्य नहीं लिखा गया, किन्तु केवल इस कारण उसे उस गौरव से, जो मिलिन्दपञ्ह ने भारतीय साहित्य को दिया है, वञ्चित कर देना ठीक नहीं होगा।

यह ग्रन्थ प्रथम शताब्दी ईस्वी पूर्व की प्रभावशाली भारतीय गद्य शैली का सर्वोत्तम उदाहरण है। विवेचनात्मक विषयों के लिये उपयुक्त हिन्दी की गद्य शैली का विकास तो हमारे

साहित्य में अभी हुआ है। अंग्रेजी साहित्य में भी ऐसी परम्परा १००-१५० वर्ष से पहले नहीं जाती। संस्कृत में बाण और दण्डी का गद्य भी निश्चय ही इसके लिये उपयुक्त नहीं था। इस दृष्टि से 'मिलिन्दपञ्ह' की विचारात्मक गद्यबद्ध शैली कितनी महत्त्वपूर्ण है, इसका सम्यक् अनुमान ही नहीं किया जा सकता। लेखक का शब्दों पर अधिकार, उसकी शैली की प्रवहणशीलता, उसका ओजोमय शब्दचयन, कथन की प्रभावपूर्ण शैली, उपमाओं और युक्तियों द्वारा उसका स्वाभाविक अलंकारविधान, सबसे बढ़कर उसकी सरलता और प्रसाद गुण— ये सब विशेषताएँ उसे साहित्यिक गद्य के निर्माताओं की उस श्रेणी में बैठा देती हैं, जहाँ उसका तेज सर्वोपरि है।

प्राचीन भारतीय गद्यसाहित्य में 'मिलिन्दपञ्ह' के समान अन्य कोई रचना न पाकर ही सम्भवतः कुछ पाश्चात्त्य विद्वानों ने यह अनुमान लगा लिया है कि इस ग्रन्थ की शैली पर ग्रीक प्रभाव उपलक्षित है। परन्तु यह एक बड़ा भ्रम है। सत्य यह है कि भारतीय पराधीनता के युग में अधिकांश पश्चिमी विद्वान् यह विश्वास ही नहीं कर सकते थे कि भारत में भी विश्व-संस्कृति को कुछ मौलिक योगदान किया है। इसी कारण उन्होंने अनेक प्राचीन भारतीय विशेषतापूर्ण बातों पर भी पश्चिमी प्रभाव की कल्पना कर ली है। अफलातूं के संवादों के प्रभाव को 'मिलिन्दपञ्ह' की शैली पर बताने के समान और कोई निरर्थक बात नहीं कही जा सकती। पहले तो ग्रीक भाषा और विचार से नागसेन के परिचित होने का साक्ष्य नहीं दिया जा सकता, फिर उनके सामने प्राचीन उपनिषदों और स्वयं बुद्धवचनों के रूप में गम्भीर संवादों की परम्परा प्रस्तुत थी, तो वे उसे छोड़कर विदेश से उसे ग्रहण करने क्यों जाते? वह समय तो भारतीय संस्कृति के गौरव का था। और हम समझते हैं भारतीय ज्ञान का वह गौरव ही 'मिलिन्दपञ्ह' में प्रतिध्वनित हुआ है, जिससे नत होकर ही बुद्धिवादी मिलिन्द राजा बुद्धधर्म में उपासकत्व ग्रहण कर लेता है। यह भारतीय ज्ञान की उस ग्रीक ज्ञान पर महान् विजय का द्योतक है, जिसका पाश्चात्य जगत् बड़ा गर्व करता है और जिससे ही वास्तव में उसने सारा ज्ञान प्राप्त भी किया है। 'मिलिन्दपञ्ह' उस ज्ञानविजय अथवा धर्मविजय का स्मारक एवं परिचायक है, जिसे भारत ने उस समय के, अपने अतिरिक्त, सबसे अधिक ज्ञानसम्पन्न देश पर प्राप्त किया था। इस दृष्टि से वह भारतीय वाङ्मय के अमर रत्नों में से एक है।

जहाँ तक 'मिलिन्दपञ्ह' की शैली के स्रोतों या उसकी प्रेरणा का प्रश्न है, वह निश्चय ही त्रिपिटक के बुद्धवचनों में ही निहित है। दीघनिकाय के 'पायासिसुत्त' जैसे सुत्तों की जीवित संवाद-शैली उसकी प्रेरणा-स्वरूप मानी जा सकती है। 'कथावत्थु' के अप्रतिम आचार्य मोग्गलिपुत्त तिस्स के भी भदन्त नागसेन कम ऋणी नहीं है। यद्यपि इन दोनों ग्रन्थों का तुलनात्मक अध्ययन हम यहाँ विस्तार-भय से नहीं कर सकते, किन्तु यह तो निश्चित ही है कि मोग्गलिपुत्त के समाधानों पर ही नागसेन के अधिकांश 'प्रश्न-व्याकरण' (प्रश्नों के उत्तर) आधृत हैं और जिस मन्तव्य को वहाँ 'स्थविरवाद' के रूप में अपनाया गया वही मन्तव्य मिलिन्दपञ्हकार का भी है।

यद्यपि उपनिषदों की शैली का कोई स्पष्ट प्रभाव 'मिलिन्दपञ्ह' पर परिलक्षित नहीं होता, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि श्वेतकेतु आरुणेय और प्रवाहण जाबालि (जिनके संवाद छान्दोग्य १,८,३ और बृहदारण्यक ६,२,१ में आते हैं), आरुणि और श्वेतकेतु (छान्दोग्य ६,९) आदि अनेक ऋषियों के संवाद अपनी विचित्र विशेषताएँ रखते हुए भी मिलिन्द और नागसेन के प्रभावशाली संवादों में अपनी पूर्णता प्राप्त करते हैं।

इतिहास की दृष्टि से, विशेषतः पालि-साहित्य के इतिहास की दृष्टि से 'मिलिन्दपञ्ह' का

यह महत्त्व है कि उसमें पालि-त्रिपिटिक से नाना ग्रन्थों के नाम देकर, पाँच निकायों, अभिधम्मपिटक के सात ग्रन्थों और उनके भिन्न-भिन्न अंगों के निर्देशपूर्वक अनेक अंश उद्धृत किये गये हैं, जिनसे यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि पालि त्रिपिटक प्रथम शताब्दी ईस्वी पूर्व अपने उसी नामरूप में विद्यमान था, जिसमें वह आज है। इस प्रकार 'मिलिन्दपञ्ह' का साक्ष्य अशोक के अभिलेखों द्वारा प्रदत्त साक्ष्य का समर्थन करता है।

'मिलिन्दपञ्ह' में अनेक स्थानों के वर्णन हैं, जैसे अलसन्द (अलेक्जेड्रिया), यवन (यूनान, बैक्ट्रिया), भरुकच्छ (भडौंच), चीन (चीनदेश), गान्धार, कलिंग, कजंगला, कोसल, मथुरा, सागल, साकेत, सौराष्ट्र (सोरट्ठ), वाराणसी, बंग, तक्कोल्ल, उज्जैन आदि। इनसे तत्कालीन भारतीय भूगोल पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

सारांश यह है कि धर्म, दर्शन, साहित्य, इतिहास, भूगोल— सभी दृष्टियों से 'मिलिन्दपञ्ह' का भारतीय वाङ्मय के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है और पालि अनुपिटक-साहित्य में तो उसके समान महत्त्वपूर्ण कोई दूसरा स्वतन्त्र ग्रन्थ है ही नहीं— यह तो निर्विवाद ही है।

वर्तमान सम्पादन

१. हमें सम्पादन के समय इस ग्रन्थ के ये चार पूर्व संस्करण मिले हैं—

(क) रोमन लिपि में, वी० ट्रेन्कनर द्वारा सम्पादित एवं लन्दन से प्रकाशित, १८८० ई०।

(ख) श्रीलंका की लिपि में, श्री पियरतन, श्री गुणरतन एवं श्री रत्नसार थेर द्वारा सम्पादित, सीलोन से प्रकाशित, १९२७ ई०।

(ग) देवनागरी लिपि में, श्री आर० डी० वडेकर द्वारा सम्पादित, बम्बई विश्वविद्यालय से प्रकाशित, १९४० ई०।

(घ) बर्मी लिपि में, छट्ठ संगीति द्वारा संगायित, एवं बुद्ध-सासन-समिति रंगून द्वारा मुद्रापित, १९६० ई०। जिसमें इस ग्रन्थ (मिलिन्दपञ्हपालि) के मुखपृष्ठ पर ही अपनी बात स्पष्ट लिख दी है—

'छट्ठसङ्गीतियं थेरा, सङ्गीतिकारका यथा।
सङ्गायिसु, तथेवायं दुतियं पि सुमुद्दिता'॥

निष्पक्ष दृष्टि से देखा जाय तो उक्त चारों संस्करणों में अन्तिम चतुर्थ संस्करण ही सर्वोत्तम है— सम्पादन की दृष्टि से भी, प्रामाणिकता की दृष्टि से भी और मुद्रण की दृष्टि से भी।

अतः हमने भी इसी संस्करण को आदर्श माना है। मूलपाठ और विषयविभाजन हमने इसी के आधार पर रखा है। इस तरह हमारा यह संस्करण छट्ठसंगायन-संस्करण पर आधृत होने के कारण नालन्दा-परम्परा में प्रकाशित त्रिपिटक एवं अट्ठकथाओं के समान ही प्रामाणिक माना जाना चाहिये; क्योंकि उक्त 'नालन्दा का समग्र प्रकाशन' भी वर्तमान बौद्ध जगत् में आदर्शभूत छट्ठसंगायन को ही अपना आधार मानता है।

देवनागरी लिपि में प्रकाशित श्री वडेकर द्वारा सम्पादित संस्करण ट्रेन्कनर-संस्करण (रोमन) पर आधृत है। ट्रेन्कनर का संस्करण इतना पुराना और स्वल्प सामग्री पर आधृत था कि उसे कई तरह से अपूर्ण ही कहना चाहिये। उसमें मूलपाठ, विषयविभाजन आदि सब कुछ उस समय में उपलब्ध स्वल्प सामग्री के आधार पर दिया गया है, जो आज छट्ठसंगायन-संस्करण को देखने के बाद बहुत कुछ विद्वज्जनानुमोदित नहीं रह गया। फिर भी श्री वडेकर महोदय के हम भारतीय जन

इस अर्थ में अत्यन्त कृतज्ञ हैं कि जिस समय भारत में पालि-भाषा के अध्ययन-अध्यापन के साधन नहीं के समान थे, उस समय उन्होंने इतना महत्त्वपूर्ण एवं उत्कृष्ट ग्रन्थ पालि-अध्येताओं को देवनागरी लिपि में आधुनिक साज-सज्जा के साथ हस्तगत करा दिया।

२. यन्थ का पैराग्राफिंग तथा उसका क्रमाङ्क हमारा अपना है। पैराग्राफिंग के विषय में हम छट्ठसङ्गायन से सहमत हैं, पर क्रमाङ्क के सम्बन्ध में हमारा अपना दृष्टिकोण रहा है, तदनुसार हमने क्रमाङ्क विषयवस्तु के अनुसार प्रश्नोत्तर के रूप में दिये हैं। आशा है, विद्वज्जन इसका समर्थन करेंगे।

३. हम अपने प्रकाशन के अन्य ग्रन्थों की तरह, अनुसन्धाताओं की सुविधा के लिये इस ग्रन्थ में आये त्रिपिटक के उद्धरणों के अन्त में पृष्ठाङ्कसहित सम्बद्ध ग्रन्थों का नाम छात्रों के लिये बहुत अधिक उपयोगी होने के कारण उनको स्थान स्थान पर (   ) में दिया है। त्रिपिटक के ग्रन्थों का नाम भी भिन्न अक्षरों में दिया गया है, ताकि अध्येता की दृष्टि में तत्काल उस ग्रन्थ का नाम आ जाय।

४. पालि भाषा का साधारण पाठकों के लिये भी यह ग्रन्थ सुविधया पठनीय हो सके, इसके लिये हमने अनावश्यक सन्धिवाले पद पृथक् पृथक् रखे हैं, विशेषतः वगन्त (परसवर्ण) की सन्धिवाले पद। इससे ग्रन्थ की परम्परा सुरक्षित रहेगी और साधारण पाठकों के लिये भी ग्रन्थ सुग्राह्य होगा।

५. विराम आदि चिह्नों के लिये हमने नालन्दा-परम्परा को आदर्श माना है। उसी के अनुसार समग्र चिह्नों का प्रयोग किया गया है। राजा मिलिन्द और भदन्त नागसेन के प्रश्न-उत्तरों को सर्वत्र पृथक्-पृथक् डबल इन्वर्टेड कामा (" ") में बन्द किया है और उनके अन्तर्भूत अन्य ग्रन्थों के उद्धरणों को सिंगल इन्वर्टेड (' ') में। इस तरह छात्र सरलता से यह जान सकेंगे कि कितना अंश मिलिन्द के प्रश्न का है और कितना भदन्त नागसेन के उत्तर का। इससे ग्रन्थ को समझने में बहुत सुविधा मिलेगी—ऐसा हमारा विश्वास है।

६. इस तरह गुरुकृपा से अतीव परिश्रमपूर्वक इस ग्रन्थ का सम्पादन किया गया है। पूर्ण विश्वास है कि हमारा यह परिश्रम विद्वज्जन तथा छात्रगण दोनों का ही समान रूप से सुखकर एवं हितकर होगा।

७. इस ग्रन्थ के सम्पादन में जिन-जिन महानुभावों की अनुपम कृतियों का, रचनाओं का, ग्रन्थों का हमने आधार लिया है, उसके लिये हम हृदय से उन सज्जनों के प्रति कृतज्ञता स्वीकार करते हैं। इसके लिये उनका आभार मानना हम अपना प्रथम कर्तव्य समझते हैं।

बौद्धभारतीभवन
वाराणसी

विद्वज्जनवशंवद
स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

उत्तरपीठिका

मिलिन्दपञ्हगन्थस्स, कथेयं रट्ठभासया।
बालानं सुखबोधाय, सङ्खेपेन कथीयति॥

मिलिन्दपञ्ह का विषय-विभाजन

इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही 'गन्थकथावत्थु' शीर्षक से सागल नगर का विभूतिवर्णन एवं इस ग्रन्थ का छह प्रकरणों में विस्तार बताया है। यह विस्तार यों है—१. पुब्बयोग (बाहिरकथा), २. मिलिन्दपञ्ह, ३. लक्खणपञ्ह, ४. मेण्डकपञ्ह, ५. अनुमानपञ्ह, एवं ६. ओपम्मकथापञ्ह। वस्तुतः ग्रन्थ देखने से ज्ञात होता है कि लेखक के तीसरे अध्याय मिलिन्दपञ्ह को विषयवर्णन की सुविधा की दृष्टि से दो भागों में बाँटा है—(क) लक्खणपञ्ह एवं (ख) विमतिच्छेदनपञ्ह। मेण्डकपञ्ह को भी (क) महावग्ग एवं (ख) योगिकथापञ्ह रूप में विभक्त किया गया है।

यद्यपि अन्य संस्करणों में 'धुतङ्गपञ्हो' को भी एक पृथक् प्रकरण माना है, किन्तु हमने इसको इस संस्करण में, छट्ठसंगायन के आधार पर, अनुमानपञ्ह के अन्तर्गत ही रखा है।

१. पूर्वयोग

पूर्वजन्म—इस प्रकरण में सर्वप्रथम नागसेन एवं मिलिन्द की पूर्वजन्मकथा कहते हुए बताया गया कि काश्यप बुद्ध के समय किसी विहार में गुरु-शिष्य के रूप में रहने वाले दो भिक्षु परस्पर विवाद कर यह दृढ़ सङ्कल्प कर बैठे कि आगामी जन्म में हम अर्हत् बनें।

मिलिन्द—उनमें से शिष्य जम्बुद्वीप के सागल नगर में मिलिन्द नाम से राजा बना था जो कि प्रतापी सम्राट् होते हुए श्रुति, स्मृति, सांख्य-योग, राजनीति, न्यायशास्त्र, गणित, सङ्गीत, आयुर्वेद, पुराण, इतिहास, धनुर्वेद आदि शास्त्रों का भी योग्य पण्डित था। इसकी दूसरी मतों के विद्वानों से खोज-खोज कर शास्त्रार्थ करने की प्रवृत्ति थी। कहने का तात्पर्य है कि यह बल एवं विद्या में अपने समान किसी को नहीं समझता था। दूतों के बताने पर इसने उस समय के प्रसिद्ध विद्वान् एवं धर्मपीठाधीश पूरण एवं मक्खलि गोसाल आदि से उनके धर्म, दर्शन के विषय में विस्तार से चर्चा की, परन्तु उनसे यह सन्तुष्ट नहीं हुआ। अन्त में इसे अपनी विद्या का इतना दम्भ हो गया कि यह विद्वान् लोगों को त्रस्त करने लगा और वे उद्विग्न होकर इसका राज्य छोड़ कर अन्यत्र चले गये।

नागसेन का अवतार—ऐसे समय में बौद्धभिक्षुओं में भी हलचल मचना स्वाभाविक था। आयुष्मान् अश्वगुप्त के नेतृत्व में बौद्धों की सभा हुई। उसमें निश्चय किया गया कि मिलिन्द से शास्त्रार्थ करने के लिये तावतिंसलोकवासी महासेन देवपुत्र से निवेदन किया जाय। अश्वगुप्त ने जाकर इन्द्र को साथ ले महासेन देवपुत्र को इसके लिए सहमत किया।

महासेन हिमालय की तलहटी में बसे कजङ्गल नाम ग्राम में सोणुत्तर ब्राह्मण के घर 'नागसेन' नाम से अवतरित हुए। धीरे धीरे वे सात वर्ष के हो गये। पिता सोणुत्तर ने नागसेन को पहले ब्राह्मणों से वेद, शास्त्र पढ़ाये; बाद में उसे भिक्षु रोहण से पढ़ने के लिये भेजा। भिक्षु रोहण ने नागसेन को दीक्षित कर सम्पूर्ण त्रिपिटक पढ़ाया। वहीं नागसेन ने समग्र बौद्ध दर्शन भी हृदयङ्गम किया। भिक्षुओं द्वारा ली गयी परीक्षा में वह उत्तीर्ण हुआ। इससे नागसेन को कुछ दर्प हो गया कि मैं अपने आचार्य (रोहण) से अधिक विद्वान् हूँ। आचार्य रोहण ने उसके मन की बात जान ली, उन्होंने नागसेन को धिक्कारा और दण्डस्वरूप उसे आयुष्मान् अश्वगुप्त के पास भेजा। नागसेन

अश्वगुप्त के विहार में रहकर विनयपूर्वक धर्मोपदेश करने लगे। अन्त में नागसेन के व्यवहार से अश्वगुप्त प्रसन्न हो गये।

नागसेन का पाटलिपुत्रगमन—आयुष्मान् अश्वगुप्त ने नागसेन को बौद्ध दर्शन के गम्भीर अध्ययन के लिये धर्मरक्षित के पास पाटलिपुत्र के अशोकाराम में भेजा। मार्ग में उनको पाटलिपुत्र जाने वाले एक व्यापारी का साथ मिल गया। व्यापारी को नागसेन ने अभिधर्म का उपदेश किया। व्यापारी के ज्ञान-चक्षु खुल गये। इधर नागसेन भी अशोकाराम में पहुँच कर आयुष्मान् धर्मरक्षित के उपदेश से अर्हत्त्व प्राप्त कर गये।

नागसेन को हिमालयवासी भिक्षुओं का सन्देश—इसके बाद हिमालयवासी भिक्षुओं ने नागसेन को सन्देश भेजा कि धर्म के हित में आप से यहाँ बहुत आवश्यक परामर्श करना है, आप तत्काल आइये। नागसेन तत्काल हिमालय की भिक्षु-सभा में पहुँचे। उस सभा ने नागसेन को आदेश दिया कि वे इसी क्षण सागल नगर जाकर मिलिन्द का दर्प विखण्डित करें और उसको बौद्ध धर्म में विनीत करें।

मिलिन्द की बौद्ध धर्म के ज्ञान के प्रति उत्कण्ठा—उधर मिलिन्द ने सागल नगर के सङ्खेय्य परिवेण के महास्थविर आयुपाल से बौद्ध धर्म व दर्शन के प्रति उत्कण्ठा प्रकट की। आयुपाल स्थविर मिलिन्द की जिज्ञासा शान्त नहीं कर सके। तब मिलिन्द के दूतों ने उसको विद्वान् आयुष्मान् नागसेन की हिमालय में उपस्थिति की सूचना दी। कुछ समय बाद आयुष्मान् नागसेन स्वयं सङ्खेय्य परिवेण में पधारे।

मिलिन्द की नागसेन से पहली भेंट—ज्यों ही राजा मिलिन्द को नागसेन के आने का पता लगा, वह स्वयं उनके दर्शन करने के लिये सङ्खेय्य परिवेण में आया। नागसेन उस समय भिक्षु-परिषद् में धर्मोपदेश कर रहे थे। मिलिन्द उस सभा से बहुत प्रभावित हुआ। उसने नागसेन से बौद्धदर्शन पर संवाद करने की इच्छा प्रकट की। नागसेन ने कहा—संवाद हो सकता है, पर वह पण्डितवाद की पद्धति से होगा, न कि राजवाद के ढंग से। राजा ने स्वीकार किया। और उसने यथासमय नीचे आसन पर बैठ कर संवाद प्रारम्भ किया।

२. मिलिन्दपञ्ह

(क) लक्खणपञ्ह

ग्रन्थ में यह प्रकरण सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसमें बौद्ध धर्म के दो आधारभूत सिद्धान्तों अनात्मवाद और पुनर्जन्म का स्थविरवाद की दृष्टि से शास्त्रानुकूल एवं तर्कसम्मत विश्लेषण किया गया है।

अनात्मवाद—बात कुछ ऐसी बनी कि परस्पर कुशल-प्रश्न पूछने और परिचय प्राप्त करने में ही मिलिन्द और नागेसन में दार्शनिक संवाद प्रारम्भ हो गया। मिलिन्द नागसेन के सम्मुख बैठ गये, उन्होंने पूछा—"भन्ते, आपका नाम क्या है?" नागसेन ने उत्तर दिया "मुझे लोक में नागसेन नाम से बुलाया जाता है। पन्तु यह नाम केवल व्यवहार के लिये है, तात्त्विक दृष्टि से इस प्रकार का कोई व्यक्ति उपलब्ध नहीं होता।" मिलिन्द—"भन्ते, यदि यथार्थ में नागसेन कोई व्यक्ति नहीं है तो इन ऐन्द्रियिक विषयों का उपभोग, पाप-पुण्य का कर्त्ता यहाँ कौन है? ध्यान कौन लगाता है? आर्यमार्ग के फल निर्वाण का प्रत्यक्ष कौन करता है? तब तो आप का कोई गुरु भी नहीं, न आप उपसम्पन्न हैं? आप कहते हैं— 'मुझे नागसेन नाम से बुलाया जाता है' अन्ततः यह 'नागसेन' है

क्या ? क्या केश, नख, दाँत, त्वचा, मांस आदि से युक्त शरीर 'नागसेन' है, या फिर रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान 'नागसेन' है ? या इनसे अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु ?'' नागसेन ने सब का उत्तर एक 'ना' में दिया। वितण्डावादी मिलिन्द इस संक्षिप्त उत्तर से चकरा गया। उसे त्रस्त देखकर भदन्त नागसेन ने रथ की उपमा देकर अपने उत्तर का स्पष्टीकरण किया।

उन्होंने कहा—''राजन्! आप यहाँ जिस रथ से आये हैं उस रथ के बांस, धुरा, पहिये, जूआ और चाबुक आदि रथ नहीं होते, अपितु इन भिन्न-भिन्न अवयवों पर 'रथ' का अस्तित्व निर्भर है। 'रथ' एक शब्द है जो केवल व्यवहार के लिये है। उसी तरह व्यक्ति 'नागसेन' का अस्तित्व भी रूप, वेदना, संज्ञा, विज्ञान, संस्कार इन पांच स्कन्धों पर आधृत है। 'नागसेन' शब्द केवल व्यवहारमात्र है। परमार्थतः 'नागसेन' नामक कोई व्यक्ति उपलब्ध नहीं होता।'' साथ ही इस सिद्धान्त पर त्रिपिटक का निम्नलिखित प्रमाण दिया—

'' यथा हि अङ्गसम्भारा, होति सद्दो 'रथो' इति।
एवं खन्धेसु सन्तेसु, होति 'सत्तो' ति सम्मुती'' ति॥ (संयुत्त ५/१०/६)

पुनर्जन्म—'उपर्युक्त अनात्मवाद का सिद्धान्त मानते हुए भी बौद्ध फिर पुनर्जन्म को कैसे सिद्ध कर पायेंगे ?'—यह आशंका मिलिन्द के तर्कवादी मस्तिष्क में उठी। उसने अपना यह सन्देह भदन्त के सम्मुख रखा। उसने पूछा—'' भन्ते, कौन उत्पन्न होता है ? क्या उत्पन्न होने पर व्यक्ति वही रहता है या अन्य हो जाता है ?'' भदन्त ने कहा —''न तो वही, न अन्य ही।'' इस उत्तर से मिलिन्द की बुद्धि में कुछ नहीं पड़ा। वह भदन्त का मुँह देखता रह गया। तब भदन्त ने उदाहरण देते हुए समझाया कि पहले पुरुष बच्चा था, फिर तरुण हुआ, फिर युवा, फिर वृद्ध हुआ, क्या वह बच्चा, तरुण, युवा और वृद्ध एक ही हैं ? नहीं, एक नहीं पृथक् पृथक् हैं। हाँ (यह मानने पर) अब यह प्रश्न उठ सकता है कि तब तो न किसी को कोई पिता होगा, न कोई किसी की माता, न कोई आचार्य, न शिष्य, ऐसी स्थिति में लौकिक व्यवहार ही विखण्डित हो जायगा; क्योंकि तब यह लगेगा कि एक ही पुरुष के बचपन की माता दूसरी, युवावस्था की माता दूसरी। पढ़ने वाला विद्यार्थी दूसरा होगा, पढ़-लिख कर निकलने वाला दूसरा। पाप कोई करेगा, उसका फल भोगने वाला कोई अन्य होगा! यह एक ऐसी अनवस्था होगी, जिसका कोई उत्तर नहीं होगा। भदन्त ने इस गुत्थी को यों सुलझाया—''धर्म-सन्तति के निरन्तर प्रवाह से, उनके संघात रूप में आ जाने से एक उत्पन्न होता है, दूसरा निरुद्ध होता है। और यह सब ऐसे होता है जैसे सब कुछ युगपत् हो रहा हो। अतः न तो सर्वथा उसी की तरह, और न सर्वथा अन्य की तरह, वह जीवन की अन्तिम चेतनावस्था में पहुँच जाता है। मिलिन्द इस उत्तर से पूर्णतः सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसने फिर पूछा—''परन्तु भन्ते, वह है क्या, जो जन्म ग्रहण (सन्ततिप्रवाह) करता है ?'' भदन्त का उत्तर था —''नाम (सूक्ष्म चित्त चैतसिक धर्म) एवं रूप (पञ्च महाभूत) जन्म ग्रहण करता है।'' मिलिन्द—''क्या यही नाम-रूप जन्म ग्रहण करता है ?'' भदन्त—''महाराज! यही नाम रूप जन्म नहीं ग्रहण करता, अपितु इस नाम-रूप के द्वारा किये गये शुभाशुभ कर्मों से उत्पन्न अन्य नाम-रूप जन्म ग्रहण करता है।'' बात को और स्पष्ट करते हुए भदन्त ने कहा—''यद्यपि मृत्यु के समय जिसका अन्त होता है, वह एक अन्य नाम-रूप होता है और जो पुनर्जन्म ग्रहण करता है वह अन्य है; तो भी यह द्वितीय नाम- रूप उस प्रथम नाम-रूप से ही निकलता है। अतः राजन्! वस्तुसत्य यह है कि धर्मसन्तति ही संसरण करती है, धर्मसन्तति ही जन्म ग्रहण करती है।

इस तरह मिलिन्दपञ्ह में प्रतिपादित पुनर्जन्मवाद का यह संक्षिप्त विवरण हुआ।

इसके बाद इसी प्रकरण के विचारवर्ग में—भूत, भविष्यत् वर्तमान काल का मूल अविद्या है, (२) सृष्टि के आरम्भकाल का पता नहीं है, अर्थात् वह अनादि है, (३) 'आरम्भ' कहते हैं, भूतकाल को। अविद्यामिश्रित आरम्भ का ज्ञान हो सकता है, अविद्यारहित का नहीं, (४) संस्कार की उत्पत्ति और उससे मुक्ति, (५) भाव से भाव की उत्पत्ति, (६) हम लोगों के अन्दर कोई आत्मा नहीं है, (७) मनोविज्ञान के साथ ही स्पर्श, वेदना, संज्ञा, वितर्क, विचार-उत्पत्ति, (८) मनोविज्ञान के साथ ही स्पर्श, वेदना, संज्ञा, वितर्क, विचार आदि धर्म होते हैं—इन विषयों पर विचार किया गया है।

३. (ख) विमतिच्छेदनपञ्ह

इस प्रकरण को ग्रन्थकार ने चार वर्गों में बाँटा हैं—१. निब्बानवग्ग, २. बुद्धवग्ग, ३. सतिवग्ग एवं ४. अरूपधम्मववत्थानवग्ग। इस प्रकरण में बौद्धदर्शन से सम्बद्ध छोटे-छोटे अनेक विषयों पर हुए राजा मिलिन्द के सन्देहों (विमति) का निराकरण (छेदन) किया गया है। राजा के इन सन्देहों को वर्ग, क्रम से यों विभाजित किया जा सकता है—

१. निब्बानवग्ग—(क) क्या पञ्च आयतन (चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा एव त्वक्) नाना कर्मों के फल से हुए हैं या एक कर्म के फल से?, (ख) मनुष्य के नानास्वभाव में कर्म की प्रधानता, (ग) क्या पूर्वजन्म कृत कर्म फलों को भोगने के अतिरिक्त नये कर्म भी करने चाहिये?, (घ) स्वाभाविक अग्नि एवं नरकाग्नि में क्या अन्तर है?, (ङ) पृथ्वी का आधार क्या है?, (च) क्या निरोध हो जाना ही निर्वाण है?, (छ) क्या सभी लोग निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं? एवं (ज) क्या अज्ञानी निर्वाण-सुख को जानते हैं?

२. बुद्धवग्ग—इस वग्ग में (क) बुद्ध हुए थे कि नहीं?, (ख) बुद्ध का अनुत्तर (श्रेष्ठ) भाव, (ग) क्या उनके अनुत्तर भाव का ज्ञान हो सकता है?, (घ) धर्मज्ञान, (ङ) यदि संक्रमण नहीं होता है तो पुनर्जन्म कैसे होगा?, (च) इस शरीर में कोई अतिरिक्त ज्ञाता (आत्मा) है?, (छ) ऐसा कोई जीव है, जो इस शरीर से निकल कर दूसरे शरीर में प्रवेश करता है?, (ज) कर्मफल है या नहीं?, (झ) जन्म लेने वाला अपने जन्म के विषय में जानता है?, (ञ) क्या निर्वाण के बाद व्यक्तित्व का सर्वथा लोप हो जाता है?—इन पर विचार किया है।

३. सतिवग्ग—(क) क्या भिक्षुओं को अपना शरीर प्रिय होता है?, (ख) क्या बुद्ध के कोई गुरु थे?, (ग) बुद्ध में महापुरुषों के बत्तीस लक्षण थे?, (घ) बुद्ध की प्रव्रज्या हुई थी या नहीं?, (ङ) बुद्ध की उपसम्पदा हुई थी कि नहीं?, (च) अपने सम्बन्धी के वियोग में रुदन या धर्मप्रेम से रुदन में क्या अन्तर है?, (छ) रागी और विरागी में क्या भेद है?, (ज) प्रज्ञा कहाँ रहती है?, (झ) संसार क्या है?, (ञ) बीती हुई बातों को हम कैसे स्मरण करते हैं?, (ट) स्मृतियाँ मन से उत्पन्न होती हैं या बाह्य चीजों से?

४. अरूपधम्मववत्थानवग्ग—(क) स्मृत्युत्पाद के १६ प्रकार, (ख) क्या मृत्यु के समय बुद्ध के स्मरण से देवत्व लाभ हो सकता है?, (ग) क्या भिक्षु अतीत के दुःखों के प्रहाण के लिये प्रयास करते हैं?, (घ) ब्रह्मलोक यहाँ से कितना दूर है?, (ङ) मर कर दूसरी जगह उत्पन्न होने के लिये कितने समय की आवश्यकता है?, (च) बोध्यङ्ग कितने हैं?, (छ) पाप और पुण्य दोनों में कौन अधिक हैं?, (ज) ज्ञात अज्ञात पाप करने वालों में किसका पाप अधिक है?, (झ)

ऐसा कोई है जो इसी शरीर से देवलोक जा सकता हो ?, (ञ) सौ योजन लम्बी हड्डियाँ कैसे हो सकती हैं ?, (ट) श्वास-प्रश्वास का निरोध कैसे होता है ?, (ठ) 'समुद्र' नाम क्यों पड़ा ?, (ड) सम्पूर्ण समुद्र का जल लवणमय क्यों हैं ?, (ढ) क्या सूक्ष्म धर्मों का नाश भी सम्भव है ?, (ण) क्या विज्ञान, प्रज्ञा और जीवात्मा—ये तीनों शब्द अर्थ में पृथक्-पृथक् हैं या एकार्थक हैं ?

भदन्त नागसेन ने राजा के इन सब सन्देहों का बहुत ही मनोरम शैली में शान्ति एवं गम्भीरता के साथ उत्तर दिया है। यहाँ तक आकर प्रश्नकर्त्ता (मिलिन्द) और उत्तरदाता (नागसेन) दोनों ही अपने अपने प्रश्नोत्तरों से सन्तुष्ट हुए दिखायी पड़ते हैं। राजा को ऐसा लगता है कि जो कुछ मैंने पूछा, भदन्त ने उन सबका उत्तर दे दिया। और भदन्त भी ऐसा मानते हैं कि राजा ने जो कुछ पूछा उन सबका मैंने उत्तर दे दिया। इस तरह सन्तुष्ट होकर भदन्त अपने सङ्घाराम चले गये और राजा अपने साथियों के साथ पुनः अपने राजप्रासाद में लौट गया।

४. मेण्डकपञ्ह

शीर्षक का शब्दार्थ—पालि में 'मेण्डक' कहते हैं भेड़ को। जैसे भेड़ के दोनों सींग समानतया पैने (तीखे) होते हैं, इस प्रकरण में आये प्रश्न भी दोनों तरफ से तीखे, एक दूसरे के विरोधी, समानतया आपत्तिग्रस्त अतएव द्विविधात्मक (विरोधाभासात्मक) दिखायी देते हैं। भदन्त नागसेन ने बहुत कुशलता से तर्कपूर्वक स्थविरवादसम्मत इनके उत्तर दिये हैं। तात्पर्य यह है कि ऊपर से विरोधी दिखायी देने वाले त्रिपिटक के विभिन्न विवरणों एवं बुद्धवचनों के विरोध का परिहार और उनमें समन्वयस्थापन इस प्रकरण का लक्ष्य है। इसमें मिलिन्द के प्रश्नों के दो भाग हैं—(क) महावग्ग एवं (ख) योगिकथापञ्ह।

(क) महावग्ग

इस वग्ग में प्रसङ्गवश प्रारम्भ में ही धार्मिक मन्त्रणा के योग्य, अयोग्य व्यक्तियों एवं स्थानों का विवरण है। साथ ही आचार्य शिष्य के एक दूसरे प्रति कर्तव्य बताये गये हैं। इसके बाद—

(१) परिनिर्वृत्त बुद्ध की पूजा के विषय में मिलिन्द के प्रश्न का उत्तर देते हुए भदन्त नागसेन ने अग्नि, आँधी, ढोल, महापृथ्वी, रोग एवं नन्दक यक्ष की उपमा देते हुए बताया कि भगवान् तो मुक्त हो चुके हैं, वे अब किसी की पूजा को स्वीकार या अस्वीकार क्या करेंगे! देवता और मनुष्य भगवान् के कायरत्न की पूजा एवं उनके द्वारा बताये ज्ञानरत्न के अनुकूल आचरण करते हुए विविध सम्पत्ति प्राप्त करते हैं। फिर (२) क्या बुद्ध सर्वज्ञ थे ?, (३) भगवान् ने देवदत्त को उसका औद्धत्य ज्ञात रहते हुए भी, दीक्षा क्यों दी ?, (४) बड़े भूकम्प होने के कारण क्या हैं ?, (५) शिवि राजा द्वारा नेत्रदान, (६) गर्भाशय में आने के तीन प्रसिद्ध कारणों के अतिरिक्त शास्त्र में उल्लिखित अन्य कारणों (औपपातिक आदि) का समर्थन कैसे हो ?, (७) बौद्ध धर्म के अन्तर्धान के विषय में भगवान् के परस्पर विरोधी वचनों का समन्वय कैसे हो ?, (८) क्या बुद्ध निष्कलङ्क एवं निष्पाप हैं ?, (९) बुद्ध समाधि क्यों लगाते थे, जब कि वे मुक्त हो चुके थे ?, (१०) ऋद्धिबल का माहात्म्य ?—मिलिन्द के इन प्रश्नों के नागसेन ने शास्त्रानुकूल एवं तर्कसम्मत उत्तर दिये हैं, जो ग्रन्थ में यथास्थान विस्तार से देखे जा सकते हैं।

(ख) योगिकथापञ्ह

इस प्रकरण को चार वर्गों में बाँटा गया है—जैसे १. अभेज्जवग्ग, २.पणामितवग्ग, ३.सब्बञ्ञुतञाणवग्ग एवं, ४.सन्थववग्ग।

पहले अभेजवग्ग में (क) क्षुद्रानुक्षुद्र विनय-नियम, (ख) सर्वथा त्याग देने योग्य (अव्याकृत) प्रश्न; (ग) मृत्युभय, (घ) मृत्युभय से मुक्ति, (ङ) ऋद्धिबल-सम्पन्न बुद्ध को भी समय-समय पर किस अन्तराय से भिक्षा नहीं मिली ?, (च) विना जाने पापपुण्यों की गति ?, (छ) बुद्ध का भिक्षुओं के प्रति निरपेक्ष भाव, (ज) क्या कोई बौद्ध भिक्षुओं को बहका सकता है ?— मलिन्द के इन प्रश्नों का उत्तर दिया गया है।

दूसरे पणामितवग्ग में (क) उपासक द्वारा भिक्षुओं का आदर करना, (ख) बुद्ध द्वारा सभी प्राणियों का हित, (ग) संयत बुद्ध ने शैल ब्राह्मण को वस्त्रगुह्य का अवलोकन क्यों कराया ? (घ) क्या बुद्ध कटुभाषी थे ?, (ङ) क्या वृक्ष चेतन हैं ?, (च) बुद्ध का अन्तिम भोजन, (छ) बुद्ध (मूर्ति) पूजा भिक्षुओं के लिये भी सम्मत है ?, (ज) देवदत्त द्वारा फेंका गया पत्थर बुद्ध के पैर पर किस कारण लगा ?, (झ) श्रेष्ठ और मध्यम श्रमण कौन है ?, (ञ) क्या बुद्ध आत्मप्रशंसा सुन-सुनकर प्रसन्न होते हैं ?, (ट) अहिंसा द्वारा लौकिक निग्रह कैसे किया जा सकता है ?, (ठ) क्या बुद्ध ने सारिपुत्त-मोग्गल्लान को क्रुद्ध होकर अपनी धर्मपरिषद से निकाल दिया था ?—मिलिन्द के इन प्रश्नों का उत्तर भदन्त द्वारा दिया गया है।

तीसरे सब्बञ्ञुतञाणवग्ग में (क) ऋद्धिबलसम्पन्न होते हुए भी मोग्गल्लान डाकुओं की लाठियों से क्यों मारे गये ?, (ख) भिक्षुजन विनय-उपदेश दूसरों से छिपाकर क्यों करते हैं ?, (ग) मिथ्याभाषण का गौरव-लाघव क्या है ?, (घ) बोधिसत्त्व की धर्मता, (ङ) क्या बुद्ध ने आत्महत्या का अनुमोदन किया था ?, (च) मैत्री-भावना का माहात्म्य, (छ) सभी जन्मों में बुद्ध से देवदत्त के उच्च कुल में उत्पन्न होने पर सन्देह होता है कि कुशल-अकुशल कर्मों का विपाक सम है या विषम ?, (ज) अमरादेवी का पातिव्रत धर्म, (झ) क्या सभी अर्हत् निर्भय होते हैं ?, (ञ) क्या सर्वज्ञ बुद्ध को देवताओं द्वारा की गयी स्तुति में आयी उपमाओं का ज्ञान नहीं था ?—मिलिन्द के इन प्रश्नों का उत्तर दिया गया है।

चौथे सन्थववग्ग में (क) घर बनवाना, (ख) भोजन में संयम, (ग) भगवान् का नीरोग होना, (घ) अनुत्पन्न मार्ग को उत्पन्न करना, (ङ) लोमस काश्यप, (च) छद्दन्त, ज्योतिपाल (छ) घटीकार ब्रह्मा के विषय में, (ज) बुद्ध की क्या जाति है—ब्राह्मण या क्षत्रिय (राजा) ?, (झ) धर्मोपदेश के बाद भोजन न करना, (ञ) धर्मदेशना में बुद्ध का अनौत्सुक्य एवं (ट) बुद्ध का कोई आचार्य नहीं था—मिलिन्द के इन प्रश्नों पर भदन्त नागसेन ने गम्भीरता से विचार किया है।

५. अनुमानपञ्ह

इस पाँचवें प्रकरण को भदन्त नागसेन ने चार वर्गों में विभक्त किया है। इन वर्गों के नाम हैं—१. बुद्धवग्ग, २. निप्पपञ्चवग्ग, ३. वेस्सन्तरवग्ग, एवं ४. अनुमानवग्ग। इन सभी वर्गों में भदन्त ने मिलिन्द के प्रश्नों के उत्तर अनुमान (अकाट्य तर्क) के बल पर दिये है, अतः इस प्रकरण का उपर्युक्त नाम सार्थक है।

१. बुद्धवग्ग—इस वर्ग में मिलिन्द ने (क) दो बुद्धों का एक ही समय में अवतार, (ख) महाप्रजापती गोतमी द्वारा दिये गये वस्त्र को स्वयं न लेकर बुद्ध द्वारा सङ्घ को देने के विषय में अनुज्ञा, (ग) प्रव्रजित की गृहस्थ से विशेषता, (घ) स्वयं बुद्ध द्वारा क्लिष्ट तप से लक्ष्य-प्राप्ति में असफल होने पर भी भिक्षुओं को पुनः क्लिष्टचर्या का उपदेश, (ङ) बुद्धशासन में इतने गुण रहने पर भी अविवेकी भिक्षु द्वारा पुनः गृहस्थ-धर्म स्वीकार करना, (च) अर्हत् को शारीरिक मानसिक

वेदनाओं का अनुभव, (छ) पाराजिक आदि आपत्तियाँ गृहस्थ को भी होती है या नहीं ?, (ज) गृहस्थ और परिव्राजक के पापों में अन्तर, (झ) जल में प्राण हैं या नहीं ?—ये नौ प्रश्न किये हैं। इन नौ प्रश्नों का उत्तर भदन्त नागसेन ने बहुत ही कुशल तर्कों से दिया है।

२. निप्पपञ्चवग्ग—इस वर्ग में मिलिन्द ने (क) प्रपञ्च से छुटकारा पाने का उपाय, (ख) गृहस्थ की अर्हत्त्वप्राप्ति के बाद की दशा, (ग) अर्हत् के दोष, (घ) लोक में किन तीन चीजों का अभाव है ? (ङ) निर्गुण निर्वाण, (च) कर्मज क्या क्या हैं ? (छ) यक्षों में प्रेत होते हैं कि नहीं ? (ज) समग्र शिक्षापद भगवान् ने एक ही साथ क्यों नहीं कहे ? (झ) सूर्य की गर्मी घटती-बढ़ती क्यों है ? (ञ) हेमन्त ऋतु में सूर्य ग्रीष्म ऋतु की अपेक्षा क्यों अधिक प्रकाश देता है ?—ये प्रश्न किये हैं। भदन्त नागसेन ने इन सभी प्रश्नों का साङ्गोपाङ्ग उत्तर देकर राजा को सन्तुष्ट किया।

३. वेस्सन्तरवग्ग—इस वर्ग में भदन्त नागसेन राजा मिलिन्द के इन प्रश्नों का उत्तर दिया है—(क) वेस्सन्तर राजा के दान में क्या विशेषता थी ? (ख) अन्य बोधिसत्त्वों से गौतम की दुःखचर्या में क्या भेद था ? (ग) पाप और पुण्य में कौन बलवान् है ? (घ) मरे हुए लोगों को उनके निमित्त किये दान से उनको कोई लाभ होता है ? (ङ) स्वप्न क्यों आते हैं, और उन्हें कौन देखता है ? (च) कालमृत्यु और अकालमृत्यु क्या है ? (छ) किन चैत्यों में अलौकिकता होती है ? (ज) ज्ञान किसे होता है, किसे नहीं ? (झ) क्या निर्वाण एकान्तसुख ही है या दुःखमिश्रित भी ? (ञ) निर्वाण का रूप व संस्थान है ? (ट) नीरूप निर्वाण का साक्षात्कार कैसे होता है ? (ठ) निर्वाण की पहचान क्या है ?

४. अनुमानवग्ग—इस वर्ग में केवल दो प्रश्नों का उत्तर है। पहला प्रश्न मिलिन्द का यह है कि जब आपने बुद्ध को देखा नहीं तो कैसे आपकी बात मान ली जाय कि वे कभी अवतरित हुए थे और उन्होंने अनुपम धर्मोपदेश किया था ? भदन्त नागसेन ने मिलिन्द के पूर्वजों का सटीक उदाहरण देकर बुद्ध का अस्तित्व सिद्ध किया और साथ ही उनके द्वारा बसाये गये धर्मनगर का बहुत ही अच्छा काव्यमय वर्णन किया है।

राजा ने दूसरा प्रश्न किया कि यदि गृहस्थ रहकर भी ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है तो दुष्कर धुताङ्गव्रत पालन करने से क्या लाभ है ? भदन्त नागसेन ने उत्तर दिया कि यद्यपि गृहस्थ भी ज्ञानी हो सकते हैं, तथापि उक्त व्रतों के पालन के २८ गुण हैं, जो इन व्रतपालक तपस्वियों को ज्ञानी गृहस्थ से पृथक् श्रेणी में बैठा देते हैं। फिर इन धुताङ्गव्रतपालकों में १७ विशिष्ट गुण आ जाते हैं। इन कठोर व्रतों का पालन सामान्य जन के वश की बात नहीं, अपितु श्रद्धालु, दृढ़संकल्प वाले, पापकर्म से डरनेवाले आदि दस प्रकार के आध्यात्मिक वीरता वाले व्यक्ति ही इन व्रतों के पालन के अभ्यासी हो सकते हैं। जो व्यक्ति गृहस्थ रहते हुए इस जन्म में निर्वाण पा लेते हैं, उन्होंने भी पूर्वजन्मों में कभी न कभी धुताङ्गव्रतों का पालन अवश्य किया होगा। भदन्त नागसेन ने स्थविर सारिपुत्र का उदाहरण देते हुए निष्कर्ष निकाला है कि सारिपुत्र उक्त व्रतों का कठोरता से पालन करने के कारण ही बुद्ध के 'प्रथम शिष्य' पद पर पहुँचे थे। प्रसङ्गतः नागसेन ने तेरह धुताङ्ग व्रतों के नाम भी गिनाये हैं, जिन्हें ग्रन्थ में देखा जा सकता है। (इन व्रतों के विशेष ज्ञान के लिये *विसुद्धिमग्गो* के द्वितीय परिच्छेद का भी अनुशीलन करना चाहिये।)

६. ओपम्मकथापञ्ह

इस प्रकरण में उपमाओं के बल पर यह सिद्ध किया गया है कि जिज्ञासु को अर्हत्त्व-प्राप्ति

के लिये नाना गुणों का अधिग्रहण किस प्रकार करना चाहिये। भदन्त नागसेन कहते हैं कि इन नाना गुणों को प्राप्त करने में जिज्ञासु को किसी प्रकार का सङ्कोच नहीं करना चाहिये। जिज्ञासु को लोकचारिका करते हुए जहाँ से भी ये गुण मिलें उन्हें लेना चाहिये, यहाँ तक कि जिन पशु-पक्षियों को समाज हीनतम मानता है, जैसे गधा, कछुआ, मुर्गा, कौआ आदि। क्योंकि इन पशु-पक्षियों में भी अच्छाइयाँ हैं, सद्गुण हैं अत: उनसे वे अच्छाइयाँ ग्रहण करना, उन अच्छाइयों में उन पशु-पक्षियों का अनुकरण करना जिज्ञासु के लिये पारमिताओं के अभ्यास में नितान्त सहायक होता है।

पशु-पक्षियों तक से अच्छाई (गुण) ग्रहण करना, उन बातों में उन्हें अपना गुरुतुल्य मानना—यह श्रमणपरम्परा (सन्त-परम्परा) की अपनी विशेषता रही है। सन्त-परम्परा में शीलपारमिता की साधना के लिये इसे अत्यावश्यक माना गया है।

राजस्थान के प्रसिद्ध सन्त, महात्मा श्री दादूदयाल ने भी कहा है—

'दादू' सबही गुरु किये, पसु पंखी बनराइ।
तीन लोक गुण पंच सौं, सबही माँहि खुदाइ॥

कितने सुखद आश्चर्य की बात है कि २५०० वर्ष के सुदीर्घ काल के अन्तराल के बाद भी सन्तों का इस गुणग्राहकता में समान आग्रह है। यही श्रमण-परम्परा का वैशिष्ट्य है।

इस तरह मिलिन्दपञ्ह की विषय-वस्तु को समझाने के लिये हमने प्रत्येक प्रकरण का संक्षेप में यह परिचय दिया है। इन सभी विषयों का विस्तृत ज्ञान तो ग्रन्थ के गम्भीरतया अवगाहन से ही होगा। फिर भी, इस संक्षिप्त परिचय से जिज्ञासु को ग्रन्थ की विषयभूमि का साधारण ज्ञान तो हो ही जायगा।

गन्थागतवत्थुसूची

मिलिन्द-नागसेनानं, पुच्छा विसज्जना तथा।
तासं सूचीध निद्दिट्ठा, यथा गन्थम्हि आगता॥

मिलिन्दपञ्हपालि

(हिन्दीरूपान्तरसहित)

॥ नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स ॥

मिलिन्दपञ्हपालि

गन्थकथावत्थु

१. मिलिन्दो नाम सो राजा, सागलायं पुरुत्तमे।
उपगञ्छि नागसेनं, गङ्गा व यथ सागरं ॥ १ ॥
आसज्ज राजा चित्रकथिं, उक्काधारं तमोनुदं।
अपुच्छि निपुणे पञ्हे, ठानाठानगते पुथू॥ २ ॥
पुच्छाविसज्जना चेव, गम्भीरत्थूपनिस्सिता।
हदयङ्गमा कण्णसुखा, अब्भुता लोमहंसना॥ ३ ॥
अभिधम्मविनयोगाळ्हा, सुत्तजालसमत्थिता।
नागसेनकथा चित्रा, ओपम्मेहि नयेहि च॥ ४ ॥
तत्थ ञाणं पणिधाय, हासयित्वान मानसं।
सुणाथ निपुणे पञ्हे, कङ्खाठानविदालने ति॥ ५ ॥

२. तं यथानुसूयते—अत्थि योनकानं नानापुटभेदनं सागलं नाम नगरं नदीपब्बत-सोभितं रमणीयभूमिप्पदेसभागं आरामुय्यानोपवनतडागपोक्खरणीसम्पन्नं नदीपब्बतवन-रामणेय्यकं सुतवन्तनिम्मितं निहतपच्चत्थिकपच्चामित्तं अनुपपीळितं विविधविचित्रदळ्ह-

---

॥ उन भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध को प्रणाम है ॥

मिलिन्दप्रश्न

ग्रन्थावतरण

१. गङ्गा नदी जैसे समुद्र से जा मिलती है, उसी तरह सागल नामक उत्तम नगर में राजा मिलिन्द (यूनानी सम्राट्) स्थविर नागसेन के पास गया।। १।।

(अज्ञानरूपी) अन्धकार के नाशक, (ज्ञानरूपी) प्रकाश को धारण करनेवाले तथा विचित्र वक्ता (स्थविर नागसेन) के पास जाकर, राजा ने अनेक विषयों के सम्बन्ध में गूढ़ प्रश्न पूछे।। २।।

भदन्त नागसेन द्वारा उन प्रश्नों के दिये गये उत्तर गम्भीर अर्थों से युक्त, हृदयग्राह्य, कर्णप्रिय, अद्‌भुत, अत्यन्त रोमहर्षक, अभिधर्म और विनय के गाम्भीर्य से युक्त, सूत्रों के अनुकूल तथा उपमाओं और युक्तियों से चित्रित हैं।। ३–४।।

शङ्कानाशक–सन्देहनिवारक उन सूक्ष्म प्रश्नोत्तरों को मन लगाकर, प्रसन्नचित्त होकर आप लोग सुनें ।। ५।।

सागल नगर— २. ऐसा सुना जाता है—सागल (वर्तमान स्यालकोट) नामक नगर कभी यवनों के वाणिज्य–व्यवसाय का केन्द्र था। वह नगर नदी और पर्वतों से शोभित, रमणीय भूमिभाग पर बसा, आराम–उद्यान–उपवन–तड़ाग–पुष्करिणियों से सम्पन्न एवं नदी, पर्वत और वनों से अत्यन्त रमणीय था। उस नगर का कुशल कारीगरों ने निर्माण किया था। उसके सभी विरोधी शत्रुओं का दमन हो चुका

मट्टालकोट्ठकं वरगोपुरतोरणं गम्भीरपरिखापण्डरपाकारपरिक्खित्तन्तेपुरं सुविभत्तवीथिचच्चर-चतुक्कसिङ्घाटकं सुप्पसारितानेकविधवरभण्डपरिपूरितन्तरापणं विविधदानग्गसतसमुपसोभितं हिमगिरिसिखरसङ्कासवरभवनसतसहस्सप्पटिमण्डितं गजहयरथपत्तिसमाकुलं अभिरूपनरनारी-गणानुचरितं आकिण्णजनमनुस्सं पुथुखत्तियब्राह्मणवेस्ससुद्दं विविधसमणब्राह्मणसभाजनसङ्घटितं बहुविधविज्जावन्तनरवीरनिसेवितं कासिककोटुम्बरकादिनानाविधवत्थापणसम्पन्नं सुप्पसारित-रुचिरबहुविधपुप्फगन्धापणं गन्धगन्धितं आसिंसनियबहुरतनपरिपूरितं दिसामुखसुप्पसारितापणं सिङ्गारवाणिजगणानुचरितं कहापणरजतसुवण्णकंसपत्थरपरिपूरं पज्जोतमाननिधिनिकेतं पहूत-धनधञ्ञवित्तूपकरणं परिपुण्णकोसकोट्ठागारं बह्वन्नपानं बहुविधखज्जभोज्जलेय्यपेय्यसायनीयं उत्तरकुरुसङ्कासं सम्पन्नसस्सं आळकमन्दा विय देवपुरं।

एत्थ ठत्वा तेसं पुब्बकम्मं कथेतब्बं। कथेन्तेन च छद्धा विभजित्वा कथेतब्बं। सेय्यथीदं—१. पुब्बयोगो, २. मिलिन्दपञ्हं, ३. लक्खणपञ्हं, ४. मेण्डकपञ्हं, ५. अनुमानपञ्हं, ६. ओपम्मकथापञ्हं ति।

तत्थ मिलिन्दपञ्हो (क) लक्खणपञ्हो (ख) विमतिच्छेदनपञ्हो ति दुविधो। मेण्डकपञ्हो पि (क) महावग्गो (ख) योगिकथापञ्हो ति दुविधो।

था। प्रजा को किसी प्रकार की पीड़ा नहीं थी। उसमें अनेक प्रकार की विचित्र दृढ़ अट्टालिकाएँ (पक्के मकान) और कोठियाँ थी। नगर का सिंहद्वार विशाल और सुन्दर था। भीतरी गढ़ (=अन्तःपुर) गहरी खाई और पीले प्राकार से घिरा हुआ था। सड़कों, आँगन और चौराहों से वह अच्छी तरह बँटा था। वहाँ दुकानें अच्छी तरह सजी–सजाई एवं बहुमूल्य सामानों से भरी हुई थीं। स्थान–स्थान पर नाना प्रकार की सैकड़ों सुन्दर दान–शालायें बनी थीं। वहाँ हिमालय पर्वत की चोटियों की तरह सैकड़ों, हजारों ऊँचे–ऊँचे भवन थे। हाथी, घोड़े, रथ और पैदल चलने वाले लोगों से वहाँ निरन्तर चहल–पहल रहती थी। सुन्दर–सुन्दर स्त्री–पुरुष समूह रूप में घूमते दिखायी देते थे। वह नगर सभी प्रकार के मनुष्यों से आकीर्ण था। वहाँ क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, श्रमण, ब्राह्मण–संन्यासी तथा गणाचार्य सभी रहते थे। वह प्रतिभाशाली विद्वानों का केन्द्र था। वहाँ काशी, कोयम्बटूर आदि स्थानों में बने कपड़ों की बड़ी–बड़ी दुकानें थी। साथ ही अनेक प्रकार के फूल तथा सुगन्धित द्रव्यों की भी दुकानें थीं। मंडियों में अभिलषित रत्न भरे पड़े थे। सभी ओर शृङ्गार–वाणिज्य की दुकानें खुली रहती थीं। कार्षापण, चाँदी, सोना, काँसा और अमूल्य पत्थरों आदि से परिपूर्ण वह नगर मानों बहुमूल्य रत्नों का एक चमकता कोषागार था। भण्डार और कोष सभी प्रकार के धन, धान्य और उपकरणों से पूर्ण थे। वहाँ अनेक प्रकार के खाद्य, भोज्य और पेय उपलब्ध थे। वह नगर उत्तरकुरु के समान उपजाऊ तथा आळकमन्दा देवपुरी के समान शोभा–सम्पन्न था।

इस ग्रन्थ के छह भाग

उस नगर के शोभावर्णन की बात यहीं छोड़कर, उन दोनों (मिलिन्द और स्थविर नागसेन) के पूर्वजन्म की बातें कही जायँ। इस ग्रन्थ को छह भागों में बाँट कर कहना चाहिये। जैसे—१. पूर्वयोग, २. मिलिन्दप्रश्न, ३. लक्षणप्रश्न, ४. मेण्डकप्रश्न, ५. अनुमानप्रश्न तथा ६. उपमाकथाप्रश्न।

इनमें मिलिन्दप्रश्न के दो भाग हैं— (क) लक्षणप्रश्न और (ख) विमतिच्छेदनप्रश्न। इसी तरह मेण्डकप्रश्न के भी दो भाग हैं—(क) महावर्ग और (ख) योगिकथा।

१. पुब्बयोगो

(बाहिरकथा)

१. नागसेनस्स मिलिन्दस्स च पुब्बजातिकथा

३. 'पुब्बयोगो' ति तेसं पुब्बकम्मं।

अतीते किर कस्सपस्स भगवतो सासने वत्तमाने गङ्गाय समीपे एकस्मिं आवासे महाभिक्खुसङ्घो पटिवसति। तत्थ वत्तसीलसम्पन्ना भिक्खू पातो व उट्ठाय यट्ठिसम्मज्जनियो आदाय बुद्धगुणे आवज्जन्ता अङ्गणं सम्मज्जित्वा कचवरब्यूहं करोन्ति। अथेको भिक्खु एकं सामणेरं—"एहि, सामणेर, इमं कचवरं छड्डेही" ति आह। सो असुणन्तो विय गच्छति। सो दुतियं पि ततियं पि आमन्तियमानो असुणन्तो विय गच्छतेव। ततो सो भिक्खू—"दुब्बचो वतायं सामणेरो" ति कुद्धो सम्मज्जनिदण्डेन पहारं अदासि। ततो सो रोदन्तो भयेन कचवरं छड्डेन्तो—"इमिनाहं कचवरछड्डनपुञ्ञकम्मेन यावाहं निब्बानं पापुणामि एत्थन्तरे निब्बत्त-निब्बत्तट्ठाने मज्झन्हिकसुरियो विय महेसक्खो महातेजो भवेय्यं" ति पठमपत्थनं पट्ठपेसि। कचवरं छड्डेत्वा नहानत्थाय गङ्गातित्थं गतो गङ्गाय ऊमिवेगं गग्गरायमानं दिस्वा-"यावाहं निब्बानं पापुणामि एत्थन्तरे निब्बत्तनिब्बत्तट्ठाने अयं ऊमिवेगो विय ठानुप्पत्तिकपटिभानो भवेय्यं अक्खयपटिभानो" ति दुतियं पि पत्थनं पट्ठपेसि।

सो पि भिक्खू सम्मज्जनिसालाय सम्मज्जनिं ठपेत्वा नहानत्थाय गङ्गातित्थं गच्छन्तो सामणेरस्स पत्थनं सुत्वा—"एस मया पयोजितो पि ताव एवं पत्थेति, मय्हं किं न

---

१. पूर्वयोग

(बाह्यकथा)

१. नागसेन और मिलिन्द का पूर्वजन्म —३. 'पूर्वयोग' का अर्थ है, उनके पूर्वजन्म में किये गये कर्म।

अतीतकाल में भगवान् काश्यप (तीसरे बुद्ध) के शासन के समय, गङ्गा नदी के समीप एक आश्रम में बड़ा भिक्षुसङ्घ रहता था। उसमें व्रती और शीलसम्पन्न कुछ भिक्षु प्रातःकाल ही उठकर, झाड़ू लेकर, बुद्ध के गुणों का स्मरण करते-करते, आँगन को बुहारते हुए कूड़ा इकट्ठा करते थे।

एक दिन एक भिक्षु ने किसी श्रामणेर से कहा—"यहाँ आओ, इस कूड़े को फेंक दो।" वह श्रामणेर सुनकर भी अनसुनी करने लगा। दूसरी और तीसरी बार बुलाये जाने पर भी वह अनसुनी कर गया। इस पर उस भिक्षु ने—"यह श्रामणेर बड़ा अविनीत है"— यह विचार कर क्रुद्ध हो, उसे झाड़ू के डण्डे से मारा। तब श्रामणेर ने रोते-डरते कूड़ा फेंकते हुए—"इस कूड़ा फेंकने के पुण्यकर्म से जब तक मैं निर्वाण प्राप्त करूँ, इस बीच जहाँ जन्म ग्रहण करूँ, वहाँ मध्याह्न के सूर्य के समान तेजस्वी होऊँ"—ऐसा प्रथम सङ्कल्प किया। कूड़ा फेंक कर, वह नहाने के लिये नदी के घाट पर गया। गङ्गा की गरजती तरङ्गों को देख कर उसने फिर दूसरा सङ्कल्प किया—" ....पूर्ववत् .... जहाँ जन्म ग्रहण करूँ वहाँ इन तरङ्गों के वेग के समान प्रत्युत्पन्न-मति और प्रतिभाशाली होऊँ।"

उधर उस भिक्षु ने भी झाड़ू रखने के स्थान पर झाड़ू रखकर, स्नान के लिये गङ्गा घाट की ओर जाते हुए श्रामणेर का वह सङ्कल्प सुना। सुनकर विचारा—"यह (श्रामणेर) मुझ से प्रेरित होने पर

समिज्झिस्सती'' ति चिन्तेत्वा, ''यावाहं निब्बानं पापुणामि एत्थन्तरे निब्बत्तनिब्बत्तट्ठाने अयं गङ्गाऊमिवेगो विय अक्खयपटिभानो भवेय्यं, इमिना पुच्छितपुच्छितं सब्बं पञ्हपटिभानं विजटेतुं निब्बेठेतुं समत्थो भवेय्यं'' ति पत्थनं पट्ठपेसि।

ते उभो पि देवेसु च मनुस्सेसु च संसरन्ता एकं बुद्धन्तरं खेपेसुं। अथ अम्हाकं भगवता पि ''यथा मोग्गलिपुत्ततिस्सत्थेरो दिस्सति, एवमेते पि दिस्सन्ति, मम परिनिब्बानतो पञ्चवस्ससते अतिक्कन्ते एते उप्पज्जिस्सन्ति। यं मया सुखुमं कत्वा देसितं धम्मविनयं, तं एते पञ्हपुच्छनओपम्मयुत्तिवसेन निज्जटं निग्गुम्बं कत्वा विभजिस्सन्ती'' ति निद्दिट्ठा।

४. तेसु सामणेरो जम्बुदीपे सागलनगरे मिलिन्दो नाम राजा अहोसि पण्डितो ब्यत्तो मेधावी पटिबलो; अतीतानागतपच्चुप्पन्नानं मन्तयोगविधानकिरियानं करणकाले निसम्मकारी होति; बहूनि चस्स सत्थानि उग्गहितानि होन्ति; सेय्यथीदं—सुति, सम्मुति, संख्या, योगो, नीति, विसेसिका, गणिका, गन्धब्बा, तिकिच्छा, चतुब्बेदा, पुराणा, इतिहासा, जोतिसा, माया, केतु, मन्तना, युद्धा, छन्दसा, बुद्धवचनेन एकूनवीसति; वितण्डवादी दुरासदो दुप्पसहो पुथुतित्थकरानं अग्गमक्खायति। सकलजम्बुदीपे मिलिन्देन रञ्ञा समो कोचि नाहोसि यदिदं थामेन जवेन सूरेन पञ्ञाय, अड्ढो महद्धनो महाभोगो अनन्तबलवाहनो।

५. अथेकदिवसं मिलिन्दो राजा अनन्तबलवाहनं चतुरङ्गिनिं बलग्गसेनाब्यूहं दस्सनकम्यताय नगरा निक्खमित्वा बहिनगरे सेनङ्गदस्सनं कत्वा सारेत्वा सो राजा

यदि ऐसा सङ्कल्प करता है तो क्या मुझे इसका फल नहीं होगा?'' ऐसा विचार कर उसने भी सङ्कल्प किया—''जहाँ जन्म ग्रहण करूँ, वहाँ गङ्गा की इन तरङ्गों के वेग के समान प्रतिभाशाली होऊँ और इसके पूछे सभी प्रश्नों की गुत्थियाँ सुलझाने में समर्थ होऊँ!''

इस तरह देवलोक तथा मनुष्यलोक में जन्म ग्रहण करते हुए उन दोनों ने एक बुद्धान्तर बिता दिया। तब हमारे भगवान् बुद्ध ने भी उन लोगों को देखा और मोग्गलिपुत्त तिष्य स्थविर के समान उनके विषय में भविष्यवाणी की—''मेरे महापरिनिर्वाण के पाँच सौ वर्ष बाद ये दोनों जन्म ग्रहण करेंगे और जिस धर्मविनय का मैंने सूक्ष्मरूप से उपदेश किया है उसे ये प्रश्नोत्तर, उपमा और युक्तियों के सहारे असन्दिग्ध रूप से स्पष्ट करेंगे।''

४. उनमें वह श्रामणेर जम्बूद्वीप (भारतवर्ष) के सागल नामक नगर में मिलिन्द नाम का राजा हुआ। वह बड़ा पण्डित, चतुर, बुद्धिमान् और योग्य था। भूत, भविष्यत् और वर्तमान के सभी मन्त्र तथा योग–विधान में सावधान रहता था। उसने अनेक शास्त्र पढ़े थे, जैसे—(१) श्रुति, (२) स्मृति, (३) सांख्य, (४) योग, (५) न्याय, (६) वैशेषिक, (७) गणित, (८) सङ्गीत, (९) वैद्यक, (१०) चारों वेद, (११) सभी पुराण, (१२) इतिहास, (१३) ज्यौतिष, (१४) मन्त्रविद्या (माया), (१५) तर्क, (१६) तन्त्र–मन्त्र, (१७) युद्धविद्या, (१८) छन्द और (१९) बुद्धवचन। इन १९ विद्याओं में वह पारङ्गत था, वितण्डावाद में अद्वितीय और अजेय था। वह सभी तीर्थङ्करों, आचार्य एवं मण्डलेश्वरों में जिसे श्रेष्ठ समझता उसके पास जाता था। प्रज्ञा, बल, वेग, वीरता, धन, भोग किसी में भी मिलिन्द राजा के समान समग्र जम्बूद्वीप में दूसरा नहीं था। वह महासम्पत्तिशाली, उन्नतिशील था। तथा उसकी सेनाओं और वाहनों का कोई अन्त नहीं था।

५. तब एक दिन राजा मिलिन्द अपनी अनन्त चतुरङ्गिणी सेना के सैन्यकर्म देखने के लिये

भस्सप्पवादको लोकायतवितण्डजनसल्लापप्लवचित्तकोतूहलो विसारदो विजम्भको सूरियं ओलोकेत्वा अमच्चे आमन्तेसि–"बहु भणे, ताव दिवसावसेसो, किं करिस्साम इदानेव नगरं पविसित्वा! अत्थि को पि पण्डितो समणो वा ब्राह्मणो वा सङ्घी गणी गणाचरियो, अपि अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं पटिजानमानो, यो मया सद्धिं सल्लपितुं सक्कोति, कङ्खं पटिविनोदेतुं ? तं उपसङ्कमित्वा पञ्हं पुच्छिस्साम, कङ्खं पटिविनयिस्सामा" ति।

एवं वुत्ते पञ्चसता योनका राजानं मिलिन्दं एतदवोचुं- "अत्थि, महाराज, छ सत्थारो– पूरणो कस्सपो, मक्खलि गोसालो, निगण्ठो नाटपुत्तो, सञ्जयो बेलट्ठपुत्तो, अजितो केसकम्बलो, पकुधो कच्चायनो। ते सङ्घिनो गणिनो गणाचरियका ञाता यसस्सिनो तित्थकरा, साधुसम्मता बहुजनस्स। गच्छ त्वं, महाराज, ते पञ्हं पुच्छस्सु, कङ्खं पटिविनयस्सू" ति।

२. पूरणेन कस्सपेन रञ्ञो समागमो

६. अथ खो मिलिन्दो राजा पञ्चहि योनकसतेहि परिवुतो भद्रवाहनं रथवरमारुय्ह येन पूरणो कस्सपो तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा पूरणेन कस्सपेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो मिलिन्दो राजा पूरणं कस्सपं एतदवोच– "को, भन्ते कस्सप, लोकं पालेती" ति। "पथवी, महाराज, लोकं पालेती" ति। "यदि, भन्ते कस्सप, पथवी लोकं पालेति, अथ कस्मा अवीचिनिरयं गच्छन्ता सत्ता पथविं अतिक्कमित्वा गच्छन्ती" ति ? एवं वुत्ते पूरणो कस्सपो नेव सक्खि ओगिलितुं, नेव सक्खि उग्गिलितुं। अधोमुखो पत्तक्खन्धो तुण्हीभूतो पज्झायन्तो निसीदि।

नगर से बाहर गया। सेनाओं की व्यवस्था देखने के बाद उस वाद-प्रिय राजा ने लोकायत (जड़वादी) और वितण्डावादियों (सभा में दूसरे की कुछ भी न सुनकर अपनी ही कहने वाले) से तर्क करने की उत्सुकता से ऊपर आकाश में सूर्य की ओर देखा और अपने अमात्यों को सम्बोधित किया–"अभी बहुत समय बाकी है। नगर में लौट कर अभी क्या करेंगे? तब तक क्या करना चाहिए! क्या स्वयं को सम्यक्सम्बुद्ध मानने वाला ऐसा कोई पण्डित, श्रमण, ब्राह्मण-संन्यासी, मण्डलेश्वर या गणाचार्य है, जिसके साथ मैं जाकर वार्तालाप करूँ, जो मेरी शङ्काएँ दूर कर सके?"

ऐसा कहने पर पाँच सौ यवनों ने उससे कहा–"हाँ महाराज! ऐसे छह तीर्थङ्कर[1] हैं– १. पूरण कस्सप, २. मक्खलि गोसाल, ३. निगण्ठ नाटपुत्त, ४. सञ्जय वेलट्ठिपुत्त, ५. अजित केसकम्बली और ६. प्रकुध कच्चायन। वे सङ्घनायक, गणनायक, गणाचार्य, प्राज्ञ और तीर्थङ्कर हैं। लोगों में उनका बड़ा सम्मान है। महाराज! आप उनके पास जाँय, उनसे प्रश्न पूछे और अपनी शङ्काओं का निराकरण करें।"

२. पूरण कस्सप के साथ मिलिन्द की भेंट– ६. तब राजा मिलिन्द पाँच सौ यवनों के साथ, सुन्दर रथ पर सवार हो, जहाँ पूरण कस्सप था वहाँ पहुँचा, पहुँच कर पूरण कस्सप से कुशल-प्रश्न पूछा। कुशल-प्रश्न पूछने के बाद एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठ कर, वह पूरण कस्सप से यों बोला–"भन्ते कस्सप! संसार का पालन कौन करता है?" "पृथ्वी संसार का पालन करती है।" "भन्ते कस्सप! यदि पृथ्वी संसार का पालन करती है तो अवीचि नरक में जाने वाले जीव पृथ्वी का अतिक्रमण कर क्यों चले जाते हैं?" राजा के ऐसा कहने पर पूरण कस्सप इस विषय में न कुछ उगल सका, न निगल सका; मुख नीचा कर, कन्धों को गिरा कर, चुपचाप हतबुद्धि होकर बैठा रहा।

---

१. इन छह तीर्थङ्करों के विषय में विशेष ज्ञान के लिये द्रष्टव्य है– दीघनिकाय का सामञ्ञफलसुत्त (बौद्धभारतीसंस्करण)

३. मक्खलिगोसालेन मिलिन्दस्स समागमो

७. अथ खो मिलिन्दो राजा मक्खलिं गोसालं एतदवोच-"अत्थि, भन्ते गोसाल, कुसलाकुसलानि कम्मानि? अत्थि सुकतदुक्कटानं फलं विपाको" ति?

"नत्थि, महाराज, कुसलाकुसलानि कम्मानि। नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको। ये ते, महाराज, इध लोके खत्तिया, ते परलोकं गन्त्वापि पुन खत्तिया व भविस्सन्ति। ये ते ब्राह्मणा वेस्सा सुद्दा चण्डाला पुक्कुसा ते परलोकं गन्त्वापि पुन ब्राह्मणा वेस्सा सुद्दा चण्डाला पुक्कुसा व भविस्सन्ति। किं कुसलाकुसलेहि कम्मेही" ति!

"यदि, भन्ते गोसाल, इध लोके खत्तिया ब्राह्मणा वेस्सा सुद्दा चण्डाला पुक्कुसा ते परलोकं गन्त्वा पि पुन खत्तिया ब्राह्मणा वेस्सा सुद्दा चण्डाला पुक्कुसा व भविस्सन्ति, नत्थि कुसलाकुसलेहि कम्मेहि करणीयं; तेन हि, भन्ते गोसाल, ये ते इध लोके हत्थच्छिन्ना ते परलोकं गन्त्वा पि पुन हत्थच्छिन्ना व भविस्सन्ति, ये पादच्छिन्ना ते पादच्छिन्ना व भविस्सन्ति, ये हत्थपादच्छिन्ना ते हत्थपादच्छिन्ना व भविस्सन्ति, ये कण्णच्छिन्ना ते कण्णच्छिन्ना व भविस्सन्ति, ये नासच्छिन्ना ते नासच्छिन्ना व भविस्सन्ति, ये कण्णनासच्छिन्ना ते कण्णनासच्छिन्ना व भविस्सन्ती" ति ! एवं वुत्ते गोसालो तुण्ही अहोसि।

अथ खो मिलिन्दस्स रञ्ञो एतदहोसि-" तुच्छो बत भो जम्बुदीपो, पलापो बत भो जम्बुदीपो! नत्थि कोचि समणो वा ब्राह्मणो वा, यो मया सद्धिं सल्लपितुं सक्कोति, कङ्खं पटिविनोदेतुं" ति। अथ खो मिलिन्दो राजा अमच्चे आमन्तेसि-"रमणीया बत, भो, दोसिना रत्ति। कं नु ख्वज्ज समणं वा ब्राह्मणं वा उपसङ्कमेय्याम पञ्हं पुच्छितुं? को मया सद्धिं सल्लपितुं सक्कोति, कङ्खं पटिविनोदेतुं" ति? एवं वुत्ते अमच्चा तुण्हीभूता रञ्ञो मुखं ओलोकयमाना अट्ठंसु।

---

३. मक्खलि गोसाल के साथ राजा मिलिन्द की भेंट– ७. इसके बाद राजा मिलिन्द ने मक्खलि गोसाल के पास जा कर पूछा–"भन्ते गोसाल! क्या पाप और पुण्य कर्म हैं? क्या अच्छे और बुरे कर्मों के फल होते हैं?"

"नहीं, महाराज! पाप और पुण्य कर्म कुछ नहीं हैं। अच्छे और बुरे कर्मों के कोई फल नहीं होते। महाराज! जो यहाँ क्षत्रिय हैं, वे परलोक जा कर भी क्षत्रिय ही होंगे; जो यहाँ ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चण्डाल या पुक्कुस (वर्णसंकर) हैं, वे परलोक जाकर भी ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चण्डाल और पुक्कुस ही होंगे। पाप और पुण्य कर्मों से क्या होता है?"

"यदि, भन्ते गोसाल ! जो यहाँ क्षत्रिय हैं, वे परलोक जा कर भी क्षत्रिय ही होवेंगे और पाप–पुण्य कर्मों से कुछ होने–जाने का नहीं है तो जो इस लोक में लूले हैं वे परलोक जा कर भी लूले ही होंगे, जो लंगड़े हैं वे लंगड़े ही होंगे, जो कनकटे और नकटे हैं, वे कनकटे और नकटे ही होंगे?" राजा के ऐसा कहने पर गोसाल चुप हो गया।

तब राजा मिलिन्द के मन में ऐसा हुआ– "अरे, यह जम्बूद्वीप तो तुच्छ है! वृथा ही इसका इतना नाम है! यहाँ कोई भी श्रमण या ब्राह्मण ऐसा नहीं है, जो मेरे साथ बातचीत कर सके और मेरी शङ्काओं को दूर कर सके।" तब राजा मिलिन्द ने अमात्यों को सम्बोधित किया–"आज की रात बड़ी रमणीय है! ऐसे में किस श्रमण या ब्राह्मण के पास जा कर प्रश्न पूछूँ? कौन मेरे साथ बातचीत कर

तेन खो पन समयेन सागलनगरं द्वादसवस्सानि सुञ्ञं अहोसि समणब्राह्मणगहपतिपण्डितेहि। यत्थ समणब्राह्मणगहपतिपण्डिता पटिवसन्ती ति सुणाति, तत्थ गन्त्वा राजा ते पञ्हं पुच्छति। ते सब्बे पि पञ्हाविस्सज्जनेन राजानं आराधेतुं असक्कोन्ता येन वा तेन वा पक्कमन्ति। ये अञ्ञं दिसं न पक्कमन्ति ते सब्बे तुण्हीभूता अच्छन्ति। भिक्खू पन येभुय्येन हिमवन्तमेव गच्छन्ति।

४. आयस्मतो अस्सगुत्तस्स पुच्छा

८. तेन खो पन समयेन कोटिसता अरहन्तो हिमवन्ते पब्बते रक्खिततले पटिवसन्ति। अथ खो आयस्मा अस्सगुत्तो दिब्बाय सोतधातुया मिलिन्दस्स रञ्ञो वचनं सुत्वा युगन्धरमत्थके भिक्खुसङ्घं सन्निपातेत्वा भिक्खू पुच्छि—"अत्थावुसो, कोचि भिक्खू पटिबलो मिलिन्देन रञ्ञा सद्धिं सल्लपितुं, कङ्खं पटिविनेतुं" ति? एवं वुत्ते कोटिसता अरहन्तो तुण्ही अहेसुं। दुतियं पि ततियं पि खो पुट्ठा तुण्ही अहेसुं।

अथ खो आयस्मा अस्सगुत्तो भिक्खुसङ्घं एतदवोच—"अत्थावुसो, तावतिंसभवने वेजयन्तस्स प्राचीनतो केतुमती नाम विमानं, तत्थ महासेनो नाम देवपुत्तो पटिवसति। सो पटिबलो तेन मिलिन्देन रञ्ञा सद्धिं सल्लपितुं, कङ्खं पटिविनेतुं" ति।

५. सो महासेनं देवपुत्तं याचेसि

९. अथ खो कोटिसता अरहन्तो युगन्धरपब्बते अन्तरहिता तावतिंसभवने पातुरहेसुं। अद्दसा खो सक्को देवानमिन्दो ते भिक्खू दूरतो व आगच्छन्ते। दिस्वान येन आयस्मा अस्सगुत्तो तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं अस्सगुत्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं

सकता है? कौन मेरी शङ्काओं को दूर करेगा?" राजा के ऐसा कहने पर सभी अमात्य चुप हो, राजा के मुख की ओर देखते हुए खड़े रहे।

उस समय सागल नगर बारह वर्षों से श्रमण, ब्राह्मण या गृहस्थ पण्डितों से खाली सा हो गया था। जहाँ राजा सुनता कि कोई श्रमण, ब्राह्मण या गृहस्थ पण्डित वास करता है, वहाँ जाकर उनसे प्रश्न पूछता। वे राजा मिलिन्द को प्रश्नोत्तर से सन्तुष्ट न कर सकने पर जहाँ–तहाँ भाग जाते थे। जो किसी दूसरी जगह नहीं भाग पाते, वे सब चुप लगाये रहते। प्रायः सभी भिक्षु हिमालय पर्वत पर चले गये थे।

४. आयुष्मान् अस्सगुत्त का भिक्षुसङ्घ को बुलाना— ८. उस समय हिमालय पर्वत के रक्षित–तल में शतकोटि जीवन्मुक्त (ज्ञानी) वास करते थे। तब आयुष्मान् अस्सगुत्त ने अपनी दैवी श्रवण–शक्ति से राजा मिलिन्द की बातें सुनी। सुन कर उसने युगन्धर नामक पर्वत पर भिक्षुसङ्घ की एक बैठक की और भिक्षुओं से पूछा—"आयुष्मानो! क्या कोई भिक्षु ऐसा समर्थ है, जो राजा मिलिन्द के साथ बातचीत कर के उसकी शङ्काओं को दूर कर सके?" ऐसा पूछे जाने पर वे चुप ही रहे। दूसरी–तीसरी बार पूछे जाने पर भी वे चुप रहे।

तब आयुष्मान् अस्सगुत्त ने भिक्षुसङ्घ से कहा—"आयुष्मानो! तावतिंसभवन (लोकविशेष) में वैजयन्त से पूर्व की ओर केतुमती नाम का एक विमान (प्रासाद) है। वहाँ महासेन नामक एक देवपुत्र रहता है; वह राजा मिलिन्द के साथ बात–चीत करने तथा उसकी शङ्काओं को दूर करने में समर्थ है।"

५. महासेन देवपुत्र से मनुष्यलोक में आने की प्रार्थना— ९. तब वे शतकोटि अर्हत् युगन्धर पर्वत पर अन्तर्हित हो तावतिंस भवन में प्रकट हुए। देवाधिपति शक्र (इन्द्र) ने उन भिक्षुओं को दूर से ही आते देखा। देख कर वह आयुष्मान् अस्सगुत्त के निकट गया और कुशलसमाचार पूछ कर एक ओर खड़ा

ठितो खो सक्को देवानमिन्दो आयस्मन्तं अस्सगुत्तं एतदवोच—"महा खो, भन्ते, भिक्खुसङ्घो अनुप्पत्तो! अहं सङ्घस्स आरामिको, केनत्थो? किं मया करणीयं" ति?

अथ खो आयस्मा अस्सगुत्तो सक्कं देवानमिन्दं एतदवोच—"अयं खो, महाराज, जम्बुदीपे सागलनगरे मिलिन्दो नाम राजा वितण्डवादी दुरासदो दुप्पसहो पुथुतित्थकरानं अग्गमक्खायति। सो भिक्खुसङ्घं उपसङ्कमित्वा दिट्ठिवादेन पञ्हं पुच्छित्वा भिक्खुसङ्घं विहेठेती" ति।

अथ खो सक्को देवानमिन्दो आयस्मन्तं अस्सगुत्तं एतदवोच—"अयं खो, भन्ते, मिलिन्दो राजा इतो चुतो मनुस्सेसु उप्पन्नो। एसो खो, भन्ते, केतुमतीविमाने महासेनो नाम देवपुत्तो पटिवसति। सो तेन मिलिन्देन रञ्ञा सद्धिं पटिबलो सल्लपितुं, कङ्खं पटिविनेतुं। तं देवपुत्तं याचिस्साम मनुस्सलोकूपपत्तिया" ति।

अथ खो सक्को देवानमिन्दो भिक्खुसङ्घं पुरक्खत्वा केतुमतीविमानं पविसित्वा महासेनं देवपुत्तं आलिङ्गित्वा एतदवोच—"याचति तं, मारिस, भिक्खुसङ्घो मनुस्सलोकूपपत्तिया" ति। "न मे, भन्ते, मनुस्सलोकेनत्थो कम्मबहुलेन। तिब्बो मनुस्सलोको! इधेवाहं, भन्ते, देवलोके उपरूपरूपपत्तिको हुत्वा परिनिब्बायिस्सामी" ति। दुतियं पि....ततियं पि खो सक्केन देवानमिन्देन याचितो महासेनो देवपुत्तो एवमाह—"न मे, भन्ते, मनुस्सलोकेनत्थो कम्मबहुलेन। तिब्बो मनुस्सलोको! इधेवाहं, भन्ते, देवलोके उपरूपरूपपत्तिको हुत्वा परिनिब्बायिस्सामी" ति।

अथ खो आयस्मा अस्सगुत्तो महासेनं देवपुत्तं एतदवोच—"इध मयं, मारिस, सदेवकं लोकं अनुविलोकयमाना अञ्ञत्र तया मिलिन्दस्स रञ्ञो वादं भिन्दित्वा सासनं पग्गहेतुं

हो गया। देवाधिपति शक्र ने आयुष्मान् अस्सगुत्त से कहा—"भन्ते! बहुत बड़ा भिक्षुसङ्घ आया है! मैं सङ्घ की सेवा करने के लिये सन्नद्ध हूँ। किस चीज की आवश्यकता है? कहिये क्या सेवा करूँ?"

तब आयुष्मान् अस्सगुत्त ने देवाधिपति शक्र से कहा—"महाराज! जम्बूद्वीप के सागल नामक नगर में मिलिन्द नाम का राजा वादी, वाद करने में अद्वितीय और अपराजेय है। वह सभी तीर्थङ्करों में श्रेष्ठ समझा जाता है। वह भिक्षुसङ्घ के पास जा मिथ्यादृष्टिविषयक प्रश्न पूछ कर उन्हें त्रस्त करता है।"

देवाधिपति शक्र ने आयुष्मान् अस्सगुत्त से कहा—"भन्ते! राजा मिलिन्द तो यहीं से उतर कर मनुष्यलोक में उत्पन्न हुआ है। और भन्ते! केतुमती विमान में महासेन नाम का देवपुत्र वास करता है, जो उस मिलिन्द राजा के साथ शास्त्रार्थ करके उसकी शङ्काएँ दूर करने में समर्थ है। उसी देवपुत्र से हम लोग मनुष्यलोक में जन्म ग्रहण करने की प्रार्थना करें।"

तब, देवाधिपति शक्र भिक्षुसङ्घ को आगे कर केतुमती विमान में गया। वहाँ महासेन देवपुत्र को आलिङ्गन कर, यह बोला—"मार्ष! यह भिक्षुसङ्घ आपसे मनुष्यलोक में उत्पन्न होने की प्रार्थना करता है।" "नहीं, भन्ते! मुझे मनुष्यलोक से कोई कार्य नहीं। काम-काज के झंझटों से मनुष्यजीवन में चैन नहीं है। भन्ते! मैं देवलोक में ही क्रमशः ऊपर जन्म ग्रहण करते हुए मुक्त हो जाना चाहता हूँ।" दूसरी और तीसरी बार भी....शक्र के प्रार्थना करने पर महासेन देवपुत्र ने यही कहा—"नहीं, भन्ते....।"

तब, आयुष्मान् अस्सगुत्त महासेन देवपुत्र से यों बोले—"मार्ष! देवलोकसहित इस समग्र ब्रह्माण्ड में खोजने पर भी आपको छोड़ ऐसा कोई दूसरा हमारी दृष्टि में नहीं आता जो राजा मिलिन्द

समत्थं अञ्ञं कञ्चि न पस्साम। याचति तं, मारिस, भिक्खुसङ्घो—'साधु, सप्पुरिस, मनुस्सलोके निब्बत्तित्वा दसबलस्स सासनं पग्गण्हाही' '' ति।

एवं वुत्ते महासेनो देवपुत्तो—''अहं किर मिलिन्दस्स रञ्ञो वादं भिन्दित्वा बुद्धसासनं पग्गहेतुं समत्थो भविस्सामी'' ति हट्ठपहट्ठो उदग्गुदग्गो हुत्वा—''साधु, भन्ते, मनुस्सलोके उप्पज्जिस्सामी'' ति पटिञ्ञं अदासि।

६. रोहणस्स दण्डकम्मं

१०. अथ खो ते भिक्खू देवलोके तं करणीयं तीरेत्वा देवेसु तावतिंसेसु अन्तरहिता हिमवन्ते पब्बते रक्खिततले पातुरहेसुं।

अथ खो आयस्मा अस्सगुत्तो भिक्खुसङ्घं एतदवोच—''अत्थावुसो, इमस्मिं भिक्खुसङ्घे कोचि भिक्खु सन्निपातं अनागतो'' ति? एवं वुत्ते अञ्ञतरो भिक्खु आयस्मन्तं अस्सगुत्तं एतदवोच—''अत्थि, भन्ते, आयस्मा रोहणो इतो सत्तमे दिवसे हिमवन्तं पब्बतं पविसित्वा निरोधं समापन्नो''। ''तस्स सन्तिके दूतं पाहेथा'' ति। आयस्मा पि रोहणो तं खणञ्ञेव निरोधा वुट्ठाय—''सङ्घो मं पटिमानेती'' ति हिमवन्ते पब्बते अन्तरहितो रक्खिततले कोटिसतानं अरहन्तानं पुरतो पातुरहोसि।

अथ खो आयस्मा अस्सगुत्तो आयस्मन्तं रोहणं एतदवोच—''किं नु खो, आवुसो रोहण, बुद्धसासने भिज्जन्ते न पस्ससि सङ्घस्स करणीयानी'' ति? ''अमनसिकारो मे, भन्ते, अहोसी'' ति। ''तेन, हावुसो रोहण, दण्डकम्मं करोही'' ति। ''किं, भन्ते, करोमी'' ति? ''अत्थावुसो रोहण, हिमवन्तपब्बतपस्से कजङ्गलं नाम ब्राह्मणगामो। तत्थ सोणुत्तरो नाम ब्राह्मणो पटिवसति। तस्स पुत्तो उप्पज्जिस्सति नागसेनो नाम दारको। तेन हि त्वं, आवुसो

के तर्कों को काट कर शासन की रक्षा करने में समर्थ हो। भिक्षुसङ्घ आप से याचना करता है कि आप मनुष्यलोक में जन्म ग्रहण कर दशबल (बुद्ध) के शासन की रक्षा करें।"

यह सुन कर कि 'मैं राजा मिलिन्द के तर्क काट कर शासन की रक्षा कर सकूँगा'—महासेन ने अत्यधिक प्रहृष्ट एवं आनन्दित होकर ऐसा वचन दिया—"बहुत अच्छा, भन्ते! मैं मनुष्यलोक में जन्म ग्रहण करूँगा।"

६. अस्सगुत्त का रोहण को दण्डकर्म — १०. तब, वे भिक्षु देवलोक में यह कार्य कर त्रायस्त्रिंश लोक से अन्तर्धान हो, हिमालय पर्वत के 'रक्षिततल' प्रदेश में प्रकट हुए।

वहाँ आयुष्मान् अस्सगुत्त ने भिक्षुसङ्घ से पूछा—"आयुष्मन्! इस सङ्घ में क्या कोई ऐसा भिक्षु है, जो हम लोगों की बैठक में अनुपस्थित था?" यह पूछे जाने पर किसी भिक्षु ने कहा—"भन्ते! आयुष्मान् रोहण ने आज से सात दिन पहले ही हिमालयपर्वत में प्रवेश कर समाधि लगा ली है।" "उनके पास दूत भेजो।" आयुष्मान् रोहण भी उसी क्षण समाधि से उठे, और यह जान कर कि 'सङ्घ मुझे बुला रहा है' वहाँ से अन्तर्हित होकर रक्षिततल में कोटिशत अर्हतों के सामने प्रकट हुए।

तब, आयुष्मान् अस्सगुत्त ने आयुष्मान् रोहण से पूछा—"आयुष्मान् रोहण! बुद्धशासन के इस संकट में पड़े होने पर भी आप सङ्घ के कार्य की ओर ध्यान नहीं देते?" "भन्ते! मुझसे यह प्रमाद हुआ!" "आयुष्मान रोहण! हिमालय पर्वत के पास कजङ्गल नाम का एक ब्राह्मणों का ग्राम है। वहाँ सोणुत्तर नामक एक ब्राह्मण वास करता है। उस ब्राह्मण को नागसेन नाम का एक पुत्र उत्पन्न होगा। आप सात

रोहण, दसमासाधिकानि सत्त वस्सानि तं कुलं पिण्डाय पविसित्वा नागसेनं दारकं नीहरित्वा पब्बाजेहि। पब्बजिते व तस्मिं दण्डकम्मतो मुच्चिस्ससी'' ति। आयस्मा पि खो रोहणो ''साधू'' ति सम्पटिच्छि।

७. महासेनस्स मनुस्सलोके पातुभावो

११. महासेनो पि खो देवपुत्तो देवलोका चवित्वा सोणुत्तरब्राह्मणस्स भरियाय कुच्छिस्मिं पटिसन्धिं अग्गहेसि। सह पटिसन्धिग्गहणा तयो अच्छरिया अब्भुता धम्मा पातुरहेसुं— आवुधभण्डानि पज्जलिंसु, अग्गसस्सं अभिनिप्फन्नं, महामेघो अभिप्पवस्सि। आयस्मा पि खो रोहणो तस्स पटिसन्धिग्गहणतो पट्ठाय दसमासाधिकानि सत्त वस्सानि तं कुलं पिण्डाय पविसन्तो एकदिवसं पि कटच्छुमत्तं भत्तं वा उळुङ्कमत्तं यागुं वा अभिवादनं वा अञ्जलिकम्मं वा सामीचिकम्मं वा नालत्थ। अथ खो अक्कोसं येव परिभासं येव पटिलभति। ''अतिच्छथ, भन्ते'' ति वचनमत्तं पि वत्ता नाम नाहोसि। दसमासाधिकानं पन सत्तन्नं वस्सानं अच्चयेन एकदिवसं—''अतिच्छथ, भन्ते'' ति वचनमत्तं अलत्थ। तं दिवसमेव ब्राह्मणो पि बहिकम्मन्ता आगच्छन्तो पटिपथे थेरं दिस्वा—''किं, भो पब्बजित, अम्हाकं गेहं अगमित्था ?'' ति आह। ''आम, ब्राह्मण, अगमम्हा'' ति। ''अपि किञ्चि लभित्था'' ति ? ''आम, ब्राह्मण, लभिम्हा'' ति। सो अनत्तमनो गेहं गन्त्वा पुच्छि— ''तस्स पब्बजितस्स किञ्चि अदत्था'' ति ? ''न किञ्चि अदम्हा'' ति। ब्राह्मणो दुतियदिवसे घरद्वारे येव निसीदि-''अज्ज पब्बजितं मुसावादेन निग्गहेस्सामी'' ति। थेरो दुतियदिवसे ब्राह्मणस्स घरद्वारे सम्पत्तो।

ब्राह्मणो थेरं दिस्वा व एवमाह—''तुम्हे हिय्यो अम्हाकं गेहे किञ्चि अलभित्वा व 'लभिम्हा' ति अवोचुत्थ। वट्टति नु खो तुम्हाकं मुसावादो'' ति ? थेरो आह—''मयं, ब्राह्मण,

---

वर्ष और दश महीने उसके घर भिक्षाटन के लिये जाँय और नागसेन बालक को लाकर प्रव्रजित करें। जब वह प्रव्रजित हो जायगा, तब आप इस दण्डकर्म से मुक्त हो जाँयगे।'' आयुष्मान् रोहण ने भी—''बहुत अच्छा!'' कह कर, स्वीकार कर लिया।

७. महासेन का मनुष्यलोक में प्रादुर्भाव— ११. महासेन देवपुत्र ने भी देवलोक से उतर कर, सोणुत्तर ब्राह्मण की भार्या की कोंख में प्रतिसन्धि (गर्भ) ग्रहण की। प्रतिसन्धि ग्रहण करने के साथ ही तीन आश्चर्य (अद्भुत धर्म) प्रकट हुए—(१) सभी शस्त्रास्त्र प्रद्योतित हो उठे, (२) नये धान उग आये और (३) भारी वृष्टि होने लगी। आयुष्मान् रोहण भी उस प्रतिसन्धिग्रहण समय से लेकर सात वर्ष एवं दश महीने तक निरन्तर उस ब्राह्मण के घर भिक्षाटन के लिये गये; किन्तु किसी एक दिन भी कलछी भर भात या चम्मच भर कांजी या अभिवादन या नमस्कार या स्वागत के शब्द नहीं पा सके। बल्कि अपमान भरे कटु शब्द ही पाते रहे। ''भन्ते! आगे जाँय'' —इतना कहने वाला भी कोई नहीं था! सात वर्ष और दश महीने बीतने पर एक दिन ''भन्ते! आगे जाँय''— ऐसा किसी से सुना। उसी दिन ब्राह्मण भी कोई कार्य कर कहीं बाहर से लौट रहा था। बीच रास्ते में स्थविर को देखकर पूछा—''कहिये साधु जी! क्या मेरे घर गये थे?'' ''हाँ, ब्राह्मण! गया था।'' ''क्या कुछ मिला भी?'' ''हाँ ब्राह्मण, मिला।'' उसने असन्तुष्टमन हो, घर जाकर पूछा—''उस साधु को कुछ दिया था?'' ''नहीं, कुछ नहीं दिया।'' दूसरे दिन ब्राह्मण घर के दरवाजे पर ही बैठा—''आज उस भिक्षु को झूठ बोलने के अपराध में दोषी ठहराऊँगा।''

दूसरे दिन स्थविर ब्राह्मण के घर गये। ब्राह्मण ने स्थविर को देखकर कहा—''कल मेरे घर पर

तुम्हाकं गेहे पविसन्ता दसमासाधिकानि सत्तवस्सानि 'अतिच्छथा' ति वचनमत्तं पि अलभित्वा हिय्यो 'अतिच्छथा' ति वचनमत्तं लभिम्हा। अथेतं वाचापटिसन्थारं उपादाय एवमवोचुम्हा'' ति।

ब्राह्मणो चिन्तेसि—''इमे वाचा पटिसन्थारमत्तं पि लभित्वा जनमज्झे 'लभिम्हा' ति पसंसन्ति, अञ्ञं किञ्चि खादनीयं वा भोजनीयं वा लभित्वा कस्मा नप्पसंसन्ती'' ति पसीदित्वा अत्तनो अत्थाय पटियादितभत्ततो कटच्छुभिक्खं तदुपियं च ब्यञ्जनं दापेत्वा—''इमं भिक्खं सब्बकालं तुम्हे लभिस्सथा'' ति आह।

सो पुन दिवसतो पभुति उपसङ्कमन्तस्स थेरस्स उपसमं दिस्वा भिय्योसो मत्ताय पसीदित्वा थेरं निच्चकालं अत्तनो घरे भत्तविसग्गकरणत्थाय याचि। थेरो तुण्हीभावेन अधिवासेत्वा दिवसे दिवसे भत्तकिच्चं कत्वा गच्छन्तो थोकं थोकं बुद्धवचनं कथेत्वा गच्छति।

सा पि खो ब्राह्मणी दसमासच्चयेन पुत्तं विजायि। 'नागसेनो' स्स नाममकंसु। सो अनुक्कमेन वड्ढन्तो सत्तवस्सिको जातो।

८. नागसेनस्स दारकस्स सज्झायकालो

१२. अथ खो नागसेनस्स दारकस्स पिता नागसेनं दारकं एतदवोच—''इमस्मिं खो, तात नागसेन, ब्राह्मणकुले सिक्खानि सिक्खेय्यासी'' ति। ''कतमानि, तात, इमस्मिं ब्राह्मणकुले सिक्खानि नामा'' ति? ''तयो खो, तात नागसेन, वेदा सिक्खानि नाम, अवसेसानि सिप्पानि सिप्पं नामा'' ति। ''तेन हि, तात, सिक्खिस्सामी'' ति।

आप को कुछ नहीं मिला था, तो भी आपने 'मिला' ऐसा कह दिया। क्या आपको ऐसा झूठ बोलना चाहिये?'' स्थविर ने कहा—''ब्राह्मण, मैं तुम्हारे घर पर मैं सात वर्ष और दश महीने तक बराबर आ रहा हूँ; किन्तु किसी भी दिन 'आगे जाँय' इतना भी किसी ने नहीं कहा। कल 'आगे जाँय' इतना वचन तो मिला। उसी वचन को लक्ष्य कर मैंने वैसा कहा था।''

ब्राह्मण विचारने लगा—''यदि ये आचारवश कहे गये इन वचनों को ही पाकर 'मिला' ऐसी लोगों में प्रशंसा करते हैं, तो कोई दूसरी खाने-पीने की चीज पाकर तो कैसे प्रशंसा नहीं करेंगे!'' अतः, प्रसन्न हो अपने लिये बनाये गए भात में से कलछी भर भात और उसी के बराबर व्यञ्जन भिक्षा दिलवा कर कहा—''इतनी भिक्षा आप प्रतिदिन पाया करेंगे।''

उस दिन के बाद वह ब्राह्मण उन स्थविर के आने पर उनके शान्तभाव को देख बहुत प्रसन्न होता था। उसने स्थविर को सदा के लिये अपने घर पर ही भोजन करने की प्रार्थना की। स्थविर ने चुप रह कर स्वीकार किया। उसके बाद प्रतिदिन भोजन कर वापस जाते समय कुछ न कुछ भगवान् बुद्ध के उपदेश सुनाकर स्थविर रोहण जाते थे। (उस समय की ऐसी परिपाटी थी कि साधु-सन्त भोजन के बाद उपासक गृहस्थ को कुछ धर्मोपदेश किया करते थे।)

दश महीने बीतने पर उस ब्राह्मणी को पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम 'नागसेन' पड़ा। वह क्रमशः बढ़ते हुये सात वर्ष का हो गया।

८. बालक नागसेन का स्वाध्यायकाल— १२. तब पिता ने नागसेन से कहा—''प्रिय नागसेन! इस ब्राह्मणकुल की जो शिक्षायें हैं, उन्हें सीखो।'' ''तात! इस ब्राह्मणकुल की कौन सी शिक्षायें हैं?'' ''प्रिय नागसेन! तीनों वेदों के अध्ययन को 'शिक्षा' और अवशिष्ट दूसरे शिल्पों को 'शिल्प' कहते हैं।'' ''तात! तो मैं उन्हें सीखूँगा।''

अथ खो सोणुत्तरो ब्राह्मणो, आचरियब्राह्मणस्स आचरियभागं सहस्सं दत्वा अन्तोपासादे एकस्मिं गब्भे एकतो मञ्चकं पञ्ञपेत्वा, आचरियब्राह्मणं एतदवोच—"सज्झापेहि खो त्वं, ब्राह्मण, इमं दारकं मन्तानी" ति।

"तेन हि, तात दारक, उग्गण्हाहि मन्तानी" ति आचरियब्राह्मणे सज्झायति नागसेनस्स दारकस्स एकेनेव उद्देसेन तयो वेदा हदयङ्गता वाचुग्गता सूपधारिता सुववत्थापिता सुमनसिकता अहेसुं। सकिमेव चक्खुं उदपादि तीसु वेदेसु सनिघण्टु-केटुभेसु साक्खरप्पभेदेसु इतिहासपञ्चमेसु पदको वेय्याकरणो लोकायतमहापुरिसलक्खणेसु अनवयो अहोसि।

अथ खो नागसेनो दारको पितरं एतदवोच—"अत्थि नु खो, तात, इमस्मिं ब्राह्मणकुले इतो उत्तरिं पि सिक्खितब्बानि, उदाहु एत्तकानेवा" ति?

"नत्थि, तात नागसेन, इमस्मिं ब्राह्मणकुले इतो उत्तरिं सिक्खितब्बानि, एत्तकानेव सिक्खितब्बानी" ति।

अथ खो नागसेनो दारको आचरियस्स अनुयोगं दत्वा पासादा ओरुय्ह पुब्बवासनाय चोदितहदयो रहोगतो पटिसल्लीनो अत्तनो सिप्पस्स आदिमज्झपरियोसानं ओलोकेन्तो आदिम्हि वा मज्झे वा परियोसाने वा अप्पमत्तकं पि सारं अदिस्वा—"तुच्छा बत, भो इमे वेदा; पलापा बत, भो, इमे वेदा; असारा निस्सारा" ति विप्पटिसारी अनत्तमनो अहोसि।

९. आयस्मता रोहणेन नागसेनदारकस्स समागमो

१३. तेन खो पन समयेन आयस्मा रोहणो वत्तनिये सेनासने निसिन्नो नागसेनस्स दारकस्स चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय वत्तनिये सेनासने अन्तरहितो कजङ्गलब्राह्मणगामस्स पुरतो पातुरहोसि।

तब सोणुत्तर ब्राह्मण किसी ब्राह्मण आचार्य को, एक सहस्र मुद्रायें गुरु-दक्षिणा में दे, अपने भवन के एक योग्य स्थान में आसन लगवा कर बोला—"हे ब्राह्मण! आप नागसेन को वेद पढ़ावें।"

आचार्य उसे वेदमन्त्र पढ़ाने लगा। बालक नागसेन ने एक ही आवृत्ति में तीनों वेदों को कण्ठ कर लिया और भलीभाँति समझ भी लिया। तीनों वेदों में स्वयं ही उसे एक प्रत्यक्ष अन्तर्दृष्टि उत्पन्न हो गयी। शब्द-ज्ञान, छन्द-ज्ञान, भाषा-ज्ञान तथा इतिहास-इनमें कुछ भी बाकी नहीं बचा। वह पदों को जानने वाला, व्याकरण, लोकायत और महापुरुष-लक्षणशास्त्र में पूरा पण्डित हो गया।

तब नागसेन ने अपने पिता से पूछा—"पिता जी! इस ब्राह्मणकुल में इससे आगे भी कुछ शिक्षायें हैं या इतनी ही?"

"पुत्र नागसेन! .... इसके आगे कोई शिक्षा नहीं हैं; इतना ही सीखना था।"

तब नागसेन आचार्य से विदा ले प्रासाद से नीचे उतरा। वह अपने पूर्व संस्कारों से प्रेरित हो एकान्त में समाधि लगा, अपनी पढ़ी हुई विद्या के आदि मध्य और अवसान पर विचार करने लगा। वहां आदि, मध्य और अवसान में कहीं अल्पमात्र भी सार न पाकर बहुत असन्तुष्ट हुआ—'ये वेद तुच्छ हैं, खोखले हैं। इनमें न कोई सार है, न अर्थ और न तथ्य!'

९. नागसेन से आयुष्मान् रोहण की भेंट— १३. उस समय आयुष्मान् रोहण वत्तनीय आश्रम में बैठे नागसेन के चित्त की बातों को अपने ध्यानबल से जान गये। वे वस्त्र पहन कर पात्र-चीवर ले, वत्तनीय आश्रम में अन्तर्हित हो, कजङ्गल नामक ब्राह्मण ग्राम के सामने प्रकट हुए।

अद्दसा खो नागसेनो दारको अत्तनो द्वारकोट्ठके ठितो आयस्मन्तं रोहणं दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वान अत्तमनो उदग्गो पमुदितो पीतिसोमनस्सजातो—"अप्पेव नामायं पब्बजितो कञ्चि सारं जानेय्या" ति येनायस्मा रोहणो तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं रोहणं एतदवोच—"को नु खो त्वं, मारिस, एदिसो भण्डुकासाववसनो" ति? "पब्बजितो नामाहं, दारका" ति। "केन हि त्वं, मारिस, पब्बजितो नामासि?" "पापकानं मलानं पब्बाजेतुं पब्बजितो, तस्माहं, दारक, पब्बजितो नामा" ति।

"किङ्कारणा, मारिस, ते केसा न यथा अञ्ञेसं" ति? "सोळसिमे, दारक, पलिबोधे दिस्वा केसमस्सुं ओहारेत्वा पब्बजितो। कतमे सोळस? १. अलङ्कारपलिबोधो, २. मण्डनपलिबोधो, ३. तेलमक्खनपलिबोधो, ४. धोवनपलिबोधो, ५. मालापलिबोधो, ६. गन्धपलिबोधो, ७. वासनपलिबोधो, ८. हरीटकपलिबोधो, ९. आमलकपलिबोधो, १०. रङ्गपलिबोधो, ११. बन्धनपलिबोधो, १२. कोच्छपलिबोधो, १३. कप्पकपलिबोधो, १४. विजटनपलिबोधो, १५. ऊकापलिबोधो, १६. केसेसु विलूनेसु सोचन्ति किलमन्ति परिदेवन्ति उरत्ताळिं कन्दन्ति, सम्मोहं आपज्जन्ति। इमेसु खो, दारक, सोळसपलिबोधेसु पलिगुण्ठिता मनुस्सा सब्बानि अतिसुखुमानि सिप्पानि नासेन्ती" ति।

"किङ्कारणा, मारिस, वत्थानि पि तेन यथा अञ्ञेसं" ति? "कामनिस्सितानि खो, दारक, वत्थानि कमनीयानि गिहिब्यञ्जनानि। यानि कानिचि खो भयानि वत्थतो उप्पज्जन्ति, तानि कासाववसनस्स न होन्ति। तस्मा वत्थानि पि मे न यथा अञ्ञेसं" ति।

"जानासि खो त्वं, मारिस, सिप्पानि नामा" ति? "आम, दारक, जानामहं सिप्पानि।

बालक नागसेन ने अपने घर के दरवाजे पर खड़े–खड़े उन्हें दूर ही से आते देखा। उन्हें देख कर वह बहुत सन्तुष्ट, प्रमुदित और प्रीतिसौमनस्ययुक्त हो उठा। यह विचार कर कि शायद यह भिक्षु कुछ सार जानता होगा, वह उनके पास गया और बोला– "मार्ष! इस तरह सिर मुड़ाये और काषाय वस्त्र धारण किये आप कौन है?" "बालक! मैं भिक्षु हूँ।" "मार्ष ! आप भिक्षु क्यों हुए हैं?" "पापरूपी मलों को दूर करने के लिये मैं भिक्षु हुआ हूँ।"

"मार्ष! क्या कारण है कि आप के केश वैसे नहीं हैं जैसे दूसरे लोगों के?" "बालक उनमें सोलह बाधायें देखकर भिक्षु सिर और दाढ़ी मुड़वा लेता है।" "कौन सी सोलह?" "केश और दाढ़ी रखने से उसे (१) सँवारना होता है, (२) सजाना होता है, (३) तेल लगाना पड़ता है, (४) धोना पड़ता है, (५) माला पहनना होता है, (६) गन्ध लगाना पड़ता है, (७) सुगन्धित रखना होता है, (८) हर्रे का व्यवहार करना होता है, (९) आँवले का व्यवहार करना होता है, (१०) रंगना होता है, (११) बाँधना होता है, (१२) कंघी फेरना होता है, (१३) बार–बार नाई को बुलाना पड़ता है, (१४) जटाओं को सुलझाना पड़ता है, (१५) जूं पड़ जाती हैं और (१६) जब केश झड़ने लगते हैं तो लोग चिन्तित होते हैं, दुःखी होते हैं, पश्चात्ताप करते हैं, छाती पीट–पीट कर रोते हैं और मोह को प्राप्त होते हैं। बालक! इन सोलह बाधाओं में उलझे हुए मनुष्य विचारणीय सूक्ष्म बातों को भूल जाते हैं।"

"मार्ष! क्या करण है कि आपके वस्त्र भी वैसे नहीं हैं जैसे दूसरों के?" "बालक! गृहस्थों के सुन्दर वस्त्रों में कामवासनायें लगी रहती हैं। वस्त्र के कारण जिस भय की सम्भावना है, वह काषाय वस्त्र पहनने वाले को नहीं होता। इसीलिये मेरे वस्त्र भी वैसे नहीं हैं जैसे दूसरों के।"

"मार्ष! क्या आप ज्ञान की बातें जानते हैं?" "बालक! हाँ, मैं यथार्थ ज्ञान को जानता हूँ और

यं लोके उत्तमं मन्तं तं पि जानामी'' ति। ''मय्हं पि तं, मारिस, दातुं सक्का'' ति? ''आम, दारक, सक्का'' ति। ''तेन हि मे देही'' ति। ''अकालो खो, दारक; अन्तरघरं पिण्डाय पविट्ठुम्हा'' ति।

अथ खो नागसेनो दारको आयस्मतो रोहणस्स हत्थतो पत्तं गहेत्वा घरं पवेसेत्वा पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेत्वा सम्पवारेत्वा आयस्मन्तं रोहणं भुत्ताविं ओनीतपत्तपाणिं एतदवोच—''देहि मे दानि, मारिस, मन्तं'' ति!

''यदा खो त्वं, दारक, निप्पलिबोधो हुत्वा मातापितरो अनुजानापेत्वा मया गहितं पब्बजितवेसं गण्हिस्ससि तदा दस्सामी'' ति आह।

अथ खो नागसेनो दारको मातापितरो उपसङ्कमित्वा आह—''अम्म, तात, अयं पब्बजितो 'यं लोके उत्तमं मन्तं तं जानामी' ति वदति। न च अत्तनो सन्तिके अपब्बजितस्स देति। अहमेतस्स सन्तिके पब्बजित्वा तं मन्तं उगण्हिस्सामी'' ति। अथस्स मातापितरो—''पब्बजित्वापि नो पुत्तो मन्तं गण्हतु। गहेत्वा पुन आगच्छिस्सती'' ति मञ्ञमाना ''गण्ह, पुत्ता'' ति अनुजानिंसु।

१०. नागसेनस्स पब्बजा

१४. अथ खो आयस्मा रोहणो नागसेनं दारकं आदाय येन वत्तनियं सेनासनं येन विजम्भवत्थु तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा विजम्भवत्थुस्मिं सेनासने एकरत्तं वसित्वा येन रक्खित-तलं तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा कोटिसतानं अरहन्तानं मज्झे नागसेनं दारकं पब्बाजेसि।

पब्बजितो च पनायस्मा नागसेनो आयस्मन्तं रोहणं एतदवोच—''गहितो मे, भन्ते, तव वेसो, देथ मे दानि मन्तं'' ति। अथ खो आयस्मा रोहणो ''किम्हि नु खोहं नागसेनं

जो संसार में सबसे उत्तम मन्त्र है, उसे भी जानता हूँ।'' ''मार्ष! क्या मुझे भी सिखा सकते हैं?'' ''हाँ, सिखा सकता हूँ।'' ''तो मुझे सिखावें।'' ''बालक! उसके लिये यह उचित समय नहीं है। अभी मैं तुम्हारे घर भिक्षाटन के लिये आया हूँ।''

तब नागसेन आयुष्मान् रोहण के हाथ से पात्र ले, उन्हें घर के भीतर ले गया। वहाँ अपने हाथों से उत्तम-उत्तम भोजन परोस कर, उन्हें तृप्त किया, सन्तुष्ट किया। आयुष्मान् रोहण के भोजन कर चुकने और पात्र से हाथ हटा लेने पर उसने कहा—''मार्ष! अब आप मुझे मन्त्र सिखावें।''

आयुष्मान् रोहण बोले— ''बालक! जब तुम सभी बाधाओं से रहित हो, माँ–बाप की अनुमति ले, मेरे भिक्षुवेश को धारण कर लोगे तब मैं तुम्हें सिखाऊँगा।''

तब नागसेन अपने माता–पिता के पास जा कर बोला—''माता जी और पिता जी! यह भिक्षु संसार के सबसे उत्तम मन्त्र को जानने की बात कहता है; लेकिन जो भिक्षु नहीं है, उसे नहीं सिखाता। मैं उसके पास प्रव्रज्या ग्रहण कर उस मन्त्र को सीखूँगा।'' उसके माँ–बाप ने समझा— ''हम लोगों का पुत्र प्रव्रजित होकर मन्त्र सीखने के बाद लौट आयगा।'' अतः ''जाओ, सीखो''—ऐसी अनुमति दे दी।

१०. नागसेन की प्रव्रज्या— १४. तब आयुष्मान् रोहण नागसेन को ले वत्तनीय आश्रम में विजम्भवत्थु गये। विजम्भवत्थु में एक रात रह कर, जहाँ रक्षिततल था, वहाँ गये। जाकर कोटिशत अर्हतों के बीच नागसेन को प्रव्रजित किया।

प्रव्रज्या लेने के बाद आयुष्मान् नागसेन ने आयुष्मान् रोहण से कहा—''भन्ते! मैंने आपका वेश

विनेय्यं पठमं? विनये वा, सुत्तन्ते वा, अभिधम्मे वा?'' ति चिन्तेत्वा ''पण्डितो खो अयं नागसेनो, सक्कोति सुखेनेव अभिधम्मं परियापुणितुं'' ति पठमं अभिधम्मे विनेसि। आयस्मा च नागसेनो—'कुसला धम्मा, अकुसला धम्मा, अब्याकता धम्मा' ति तिकदुकपटिमण्डितं *धम्मसङ्गणिप्पकरणं*; खन्धविभङ्गादि अट्ठारसविभङ्गपटिमण्डितं *विभङ्गप्पकरणं*; 'सङ्गहो, असङ्गहो' ति आदिना चुद्दसविधेन विभत्तं *धातुकथाप्पकरणं*; 'खन्धपञ्ञत्तिआयतनपञ्ञत्ती' ति आदिना छब्बिधेन विभत्तं *पुग्गलपञ्ञत्तिप्पकरणं*; सकवादे पञ्चसुत्तसतानि, परवादे पञ्चसुत्तसतानी ति सुत्तसहस्सं समोधानेत्वा विभत्तं *कथावत्थुप्पकरणं*; मूलयमकं, खन्धयमकं ति आदिना दसविधेन विभत्तं *यमकप्पकरणं*; 'हेतुपच्चयो, आरम्मणपच्चयो' ति आदिना चतुवीसतिविधेन विभत्तं *पट्ठानप्पकरणं* ति सब्बं तं अभिधम्मपिटकं एकेनेव सज्झायेन पगुणं कत्वा—''तिट्ठथ, भन्ते, न पुन ओसारेथ, एत्तकेनेवाहं सज्झायिस्सामी'' ति आह।

अथ खो आयस्मा नागसेनो येन कोटिसता अरहन्तो तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा कोटिसते अरहन्ते एतदवोच—''अहं खो, भन्ते, 'कुसला धम्मा, अकुसला धम्मा, अब्याकता धम्मा' ति इमेसु तीसु पदेसु पक्खिपित्वा सब्बं तं अभिधम्मपिटकं वित्थरेन ओसारेस्सामी'' ति। ''साधु, नागसेन, ओसारेही'' ति।

अथ खो आयस्मा नागसेनो सत्तमासानि सत्तप्पकरणानि वित्थरेन ओसारेसि। पथवी उन्नदि। देवता साधुकारमदंसु। ब्रह्मानो अप्फोटेसुं। दिब्बानि चन्दनचुण्णानि, दिब्बानि च मन्दारवपुप्फानि अभिप्पवस्सिंसु।

११. नागसेनस्स दण्डकम्मं

१५. अथ खो कोटिसता अरहन्तो आयस्मन्तं नागसेनं परिपुण्णवीसतिवस्सं रक्खिततले उपसम्पादेसुं। उपसम्पन्नो च पनायस्मा नागसेनो तस्सा रत्तिया अच्चयेन पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा

धारण कर लिया। अब मुझे मन्त्र सिखावें।'' तब आयुष्मान् रोहण ने विचार किया—''इसे पहले क्या पढ़ाऊँ विनय, सूत्र या अभिधर्म?'' फिर यह सोच कर कि ''नागसेन पण्डित है, अभिधर्म आसानी से समझ लेगा''—पहले अभिधर्म ही पढ़ाया। उसमें कुशल, अकुशल और अव्याकृत (पुण्य, पाप और न पाप–न पुण्य) धर्मों को 'तीन प्रकार और दो प्रकार' के भेद से बताने वाली अभिधर्म की पहली पुस्तक *धम्मसङ्गणि*, स्कन्धविभङ्ग इत्यादि अट्ठारह विभङ्गों वाली दूसरी पुस्तक *विभङ्गप्पकरण*; संग्रह–असंग्रह इत्यादि चौदह प्रकार से विभक्त तीसरी पुस्तक *धातुकथाप्पकरण*; स्कन्धप्रज्ञप्ति, आयतनप्रज्ञप्ति इत्यादि छः प्रकार से विभक्त चौथी पुस्तक *पुग्गलपञ्ञत्ति*; अपने पक्ष के पाँच सौ सूत्र और विपक्ष के पाँच सौ सूत्र, इन्हीं एक हजार सूत्रों की पाँचवीं पुस्तक *कथावत्थुप्पकरण*; मूलयमक, स्कन्धयमक इत्यादि दश प्रकार से विभक्त छठी पुस्तक *यमकप्पकरण*; हेतुप्रत्यय इत्यादि चौबीस प्रकार से विभक्त सातवीं पुस्तक *पट्ठानप्पकरण*—इन सातों अभिधर्म की पुस्तकों को नागसेन श्रामणेर ने शीघ्र ही पढ़ डाला और कण्ठ भी कर लिया। फिर कहा—''भन्ते! बस करें! इतने ही से मैं स्वाध्याय करूँगा।''

तब, आयुष्मान् नागसेन ने जहाँ शतकोटि अर्हत् थे, वहाँ जाकर उनसे कहा—''भन्ते! मैं समग्र अभिधर्मपिटक को 'कुशल धर्म, अकुशल धर्म, और अव्याकृत धर्म'—इन्हीं तीन बातों में विभक्त कर विस्तार करूँगा।'' ''बहुत अच्छा नागसेन, विस्तार करो''।

तब आयुष्मान् नागसेन ने सात महीने में इन सातों प्रकरणों को विस्तारपूर्वक समझाया। उस

पत्तचीवरमादाय उपज्झायेन सद्धिं गामं पिण्डाय पविसन्तो एवरूपं परिवितक्कं उप्पादेसि— "तुच्छो बत मे उपज्झायो, बालो बत मे उपज्झायो। ठपेत्वा अवसेसं बुद्धवचनं पठमं मं अभिधम्मे विनेसी" ति।

अथ खो आयस्मा रोहणो आयस्मतो नागसेनस्स चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच—"अननुच्छविकं खो, नागसेन, परिवितक्कं वितक्केसि। न खो पनेतं, नागसेन, तवानुच्छविकं" ति।

अथ खो आयस्मतो नागसेनस्स एतदहोसि—"अच्छरियं बत भो, अब्भुतं बत भो! यत्र हि नाम मे उपज्झायो चेतसा चेतोपरिवितक्कं जानिस्सति! पण्डितो वत मे उपज्झायो। यन्नूनाहं उपज्झायं खमापेय्यं" ति। अथ खो आयस्मा नागसेनो आयस्मन्तं रोहणं एतदवोच— "खमथ मे, भन्ते! न पुन एवरूपं वितक्केस्सामी" ति।

अथ खो आयस्मा रोहणो आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच—"न खो त्याहं, नागसेन, एत्तावता खमामि। अत्थि खो, नागसेन, सागलं नाम नगरं। तत्थ मिलिन्दो नाम राजा रज्जं कारेति। सो दिट्ठिवादेन पञ्हं पुच्छित्वा भिक्खुसङ्घं विहेठेति। सचे त्वं तत्थ गन्त्वा तं राजानं दमेत्वा बुद्धसासने पसादेस्ससि, एवाहं तं खमिस्सामी" ति।

"तिट्ठतु, भन्ते, एको मिलिन्दो राजा! सचे, भन्ते, सकलजम्बुदीपे सब्बे राजानो आगन्त्वा मं पञ्हं पुच्छेय्युं, सब्बं तं विसज्जेत्वा सम्पदालेस्सामी ति, खमथ मे, भन्ते" ति

समय पृथ्वी में गर्जन होने लगा, देवताओं ने साधु–साधु कहा, ब्रह्मदेवों ने करतल–ध्वनि की और दिव्य चन्दन–चूर्ण तथा मन्दारपुष्पों की वर्षा होने लगी।

११. नागसेन का दण्डकर्म– १५. बीस साल की आयु हो जाने के बाद उन कोटिशत अर्हतों ने रक्षिततल में आयुष्मान् नागसेन की उपसम्पदा (प्रव्रज्या) की। उसके एक रात्रि बाद प्रातःकाल आयुष्मान् नागसेन पात्र और चीवर ले, अपने उपाध्याय (प्रव्रज्या–गुरु) के साथ भिक्षाटन के लिये गाँव में गये। उस समय उनके मन में यह बात उठी–"अरे! मेरा यह उपाध्याय तो तुच्छ है, मूर्ख है। भगवान् बुद्ध के अवशिष्ट उपदेशों को छोड़कर, उसने मुझे पहले अभिधर्म ही पढ़ाया!"

तब आयुष्मान् रोहण अपने ध्यान–बल से आयुष्मान् नागसेन के चित्त की बात जान कर बोले–"नागसेन! तुम्हारे मन में अनुचित वितर्क उठ रहा है। तुम्हारा ऐसा विचारना तुम्हारी शोभा के अनुरूप नहीं।"

तब आयुष्मान् नागसेन के मन में यह हुआ–"बहुत आश्चर्य की बात है! बहुत अद्भुत है!! मेरे आचार्य अपने ध्यानबल से दूसरों के मन की बातें भी जान लेते हैं। मेरे उपाध्याय बड़े पण्डित हैं। मुझे उनसे क्षमा माँगनी चाहिये।" यह सोच उन्होंने कहा–"भन्ते! क्षमा करें! फिर कभी ऐसी बात मन में नहीं आने दूँगा।"

आयुष्मान् रोहण बोले–"नागसेन! इतने से मैं नहीं क्षमा करता। सुनो! सागल नाम का एक नगर है, वहाँ मिलिन्द नाम का एक राजा राज्य करता है। वह मिथ्यादृष्टिविषयक प्रश्न पूछ कर भिक्षुसङ्घ को उद्विग्न करता है और नीचा दिखाता है। यदि तुम वहाँ जाकर उस राजा का दमन कर उसे सन्तुष्ट करो, तब मैं तुम्हें क्षमा कर दूँगा।"

"भन्ते! एक मिलिन्द राजा की तो बात ही क्या यदि जम्बूद्वीप के सभी राजा आकर एक साथ मुझ से प्रश्न पूछें तो भी मैं उन सब के प्रश्नों का उत्तर देकर उन्हें शान्त कर दूँगा, आप मुझे क्षमा कर

वत्वा "न खमामी" ति वुत्ते "तेन हि, भन्ते, इमं तेमासं कस्स सन्तिके वसिस्सामी" ति आह। "अयं खो, नागसेन, आयस्मा अस्सगुत्तो वत्तनिये सेनासने विहरति। गच्छ त्वं, नागसेन, येनायस्मा अस्सगुत्तो तेनुपसङ्कम। उपसङ्कमित्वा मम वचनेन आयस्मतो अस्सगुत्तस्स पादे सिरसा वन्द। एवञ्च नं वदेहि—'उपज्झायो मे, भन्ते, तुम्हाकं पादे सिरसा वन्दति, अप्पाबाधं अप्पातङ्कं लहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छति। उपज्झायो मे, भन्ते, इमं तेमासं तुम्हाकं सन्तिके वसितुं मां पहिणी' ति। 'कोनामो ते उपज्झायो ?' ति च वुत्ते 'रोहणत्थेरो नाम, भन्ते' ति वदेय्यासि। 'अहं को नामो ?' ति वुत्ते एवं वदेय्यासि—'मम उपज्झायो, भन्ते, तुम्हाकं नामं जानाती' " ति।

"एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा नागसेनो आयस्मन्तं रोहणं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पत्तचीवरमादाय अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन वत्तनियं सेनासनं येनायस्मा अस्सगुत्तो तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं अस्सगुत्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो आयस्मा नागसेनो आयस्मन्तं अस्सगुत्तं एतदवोच—"उपज्झायो मे, भन्ते, तुम्हाकं पादे सिरसा वन्दति, एवञ्च वदति—अप्पाबाधं अप्पातङ्कं लहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छति। उपज्झायो मे, भन्ते, इमं तेमासं तुम्हाकं सन्तिके वसितुं मां पहिणी" ति।

अथ खो आयस्मा अस्सगुत्तो आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच—"त्वं किन्नामोसी" ति ? "अहं, भन्ते, नागसेनो नामा" ति। "को नामो ते उपज्झायो" ति ? "उपज्झायो मे, भन्ते, रोहणो नामा" ति। "अहं कोनामो" ति ? "उपज्झायो मे, भन्ते, तुम्हाकं नामं जानाती" ति। "साधु, नागसेन, पत्तचीवरं पटिसामेही" ति।

"साधु, भन्ते" ति पत्तचीवरं पटिसामेत्वा पुनदिवसे परिवेणं सम्मज्जित्वा मुखोदकं दन्तपोणं उपट्ठपेसि। थेरो सम्मज्जितट्ठानं पटिसम्मज्जि। तं उदकं छड्डेत्वा अञ्ञं उदकं आहरि।

दें!" "ऐसे क्षमा नहीं करूँगा।" "तो भन्ते! इन तीन महीनों तक मैं कहाँ रहूँ?" "नागसेन! वत्तनीय आश्रम में आयुष्मान् अस्सगुत्त रहते हैं। तुम वहीं उनके पास जाओ और मेरी ओर से उनके चरणों में वन्दना कर कहो—'भन्ते! मेरे उपाध्याय आपके चरणों में सिर से प्रणाम करते हैं और आपका कुशल-क्षेम और स्वास्थ्य पूछते हैं। इन तीन महीनों तक आपकी सेवा में रहने के लिये मुझे भेजा है।' 'तुम्हारे उपाध्याय का क्या नाम है?'— यदि ऐसा पूछें तो कहना—'रोहण स्थविर'। और यदि पूछें— 'मेरा क्या नाम है?' तो कह देना—'भन्ते! आपका नाम मेरे उपाध्याय जानते हैं'।"

"बहुत अच्छा" कह, आयुष्मान् नागसेन आयुष्मान् रोहण को प्रणाम-प्रदक्षिणा कर, पात्र-चीवर ले, क्रमशः चारिका (रम्मत) करते हुए, वत्तनीय आश्रम में आयुष्मान् अस्सगुत्त के पास पहुँचे। उनके पास पहुँचकर, उन्हें प्रणाम कर एक ओर खड़े हो गये और उनसे यह कहा—"भन्ते! मेरे उपाध्याय आपके चरणों में सिर से प्रणाम करते हैं और आपका कुशल-मङ्गल पूछते हैं। मेरे उपाध्याय ने मुझे इन तीन महीनों तक आपके पास रहने के लिये भेजा है।"

आयुष्मान् अस्सगुत्त बोले—"तुम्हारा क्या नाम है?" "भन्ते! मेरा नाम नागसेन है"। "तुम्हारे उपाध्याय का क्या नाम है?" "भन्ते! मेरे उपाध्याय रोहण स्थविर हैं।" "मेरा क्या नाम है?" "भन्ते! आपका नाम मेरे उपाध्याय जानते हैं।" "नागसेन! बहुत अच्छा, अपने पात्र और चीवर रक्खो।"

"भन्ते ! बहुत अच्छा।" पात्र-चीवर रखने के बाद, दूसरे दिन परिवेण में झाड़ू दे, मुँह धोने के

तञ्च दन्तकट्ठं अपनेत्वा अञ्ञं दन्तकट्ठं गण्हि। न आलापसल्लापं अकासि। एवं सत्त दिवसानि कत्वा सत्तमे दिवसे पुन पुच्छित्वा पुन तेन तथेव वुत्ते वस्सावासं अनुजानि।

१२. नागसेनस्स धम्मदेसना

१६. तेन खो पन समयेन एका महाउपासिका आयस्मन्तं अस्सगुत्तं तिंसमत्तानि वस्सानि उपट्ठासि। अथ खो सा महाउपासिका तेमासच्चयेन येनायस्मा अस्सगुत्तो तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं अस्सगुत्तं एतदवोच—"अत्थि नु खो, तात, तुम्हाकं सन्तिके अञ्ञो भिक्खू" ति? "अत्थि, महाउपासिके, अम्हाकं सन्तिके नागसेनो नाम भिक्खू" ति। "तेन हि, तात अस्सगुत्त, अधिवासेहि नागसेनेन सद्धिं स्वातनाय भत्तं" ति। अधिवासेसि खो आयस्मा अस्सगुत्तो तुण्हीभावेन।

अथ खो आयस्मा अस्सगुत्तो तस्सा रत्तिया अच्चयेन पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय आयस्मता नागसेनेन सद्धिं पच्छासमणेन येन महाउपासिकाय निवेसनं तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। अथ खो सा महाउपासिका आयस्मन्तं अस्सगुत्तं आयस्मन्तं च नागसेनं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेसि सम्पवारेसि। अथ खो आयस्मा अस्सगुत्तो भुत्тाविं ओनीतपत्तपाणिं आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच—"त्वं, नागसेन, महाउपासिकाय अनुमोदनं करोही" ति इदं वत्वा उट्ठायासना पक्कामि।

अथ खो सा महाउपासिका आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच—"महल्लिका खोहं, तात नागसेन! गम्भीराय धम्मकथाय मय्हं अनुमोदनं करोही" ति। आयस्मा नागसेनो तस्सा

लिये जल और दतुवन उचित स्थान पर रख दिया (द्र० विनयपिटक, आगन्तुक भिक्षु का कर्तव्य) स्थविर ने झाड़ू दिये स्थान पर फिर से झाड़ू दिया; उस जल को छोड़कर दूसरा जल लिया, उस दतुवन को न ले दूसरी दतुवन ली; कुछ आलाप-संलाप भी नहीं किया। ऐसे ही सात दिन करके फिर पूछा। फिर भी नागसेन के वही उत्तर देने पर स्थविर ने वर्षावास की अनुमति दी।

१२. महाउपासिका को नागसेन का धर्मोपदेश— १६. उस समय कोई महाउपासिका आयुष्मान् अस्सगुत्त की तीस वर्षों से सेवा कर रही थी। वह महाउपासिका (चारिका के लिये निषिद्ध) *तेमासा* (वर्षावास के तीन महीने) बीतने पर आयुष्मान् अस्सगुत्त के पास आयी और बोली—"आपके साथ कोई दूसरा भिक्षु भी है।" "हाँ, महाउपासिके ! मेरे साथ नागसेन नाम का एक भिक्षु है।" "तो, भन्ते ! आयुष्मान् के साथ कल मेरे यहाँ भोजन करने का निमन्त्रण स्वीकार करें।" आयुष्मान् अस्सगुत्त ने मौन रहकर स्वीकार किया।

आयुष्मान् अस्सगुत्त उस रात्रि के बीतने पर सुबह वस्त्र पहन और पात्र-चीवर ले, आयुष्मान् नागसेन को पीछे कर, उस महाउपासिका के घर गये। जाकर बिछे आसन पर बैठे। महाउपासिका ने उन दोनों को अपने हाथों से अच्छा-अच्छा भोजन परोस कर खिलाया। भोजन कर चुकने तथा पात्र से हाथ हटा लेने के बाद आयुष्मान् अस्सगुत्त बोले— "नागसेन ! तुम महाउपासिका का दानानुमोदन (भोजन के बाद किया जाने वाला धर्मोपदेश) करो।" इतना कह उठ कर चले गये।

तब उस महाउपासिका ने आयुष्मान् नागसेन से कहा—"तात नागसेन! मैं बहुत वृद्ध हूँ, मुझे गम्भीर धर्म का उपदेश करें।" आयुष्मान् नागसेन ने भी उसे लोकोत्तर निर्वाण-सम्बन्धी अभिधर्म की गम्भीर बातों को कहा। इससे उस महाउपासिका को उसी क्षण उसी आसन पर राग-रहित निर्मल धर्म

महाउपासिकाय गम्भीराय धम्मकथाय लोकुत्तराय सुञ्ञताप्पटिसंयुत्ताय अनुमोदनं अकासि। अथ खो तस्सा महाउपासिकाय तस्मिं येव आसने विरजं वीतमलं धम्मचक्खुं उदपादि—"यं किञ्चि समुदयधम्मं सब्बं तं निरोधधम्मं" ति। आयस्मा पि खो नागसेनो तस्सा महाउपासिकाय अनुमोदनं कत्वा अत्तना देसितं धम्मं पच्चवेक्खन्तो विपस्सनं पट्ठपेत्वा तस्मिं येव आसने निसिन्नो सोतापत्तिफले पतिट्ठासि।

अथ खो आयस्मा अस्सगुत्तो मण्डलमाले निसिन्नो द्विन्नं पि धम्मचक्खुपटिलाभं ञत्वा साधुकारं पवत्तेसि—"साधु साधु, नागसेन! एकेन कण्डप्पहारेन द्वे महाकाया पदालिता" ति। अनेकानि च देवतासहस्सानि साधुकारं पवत्तेसुं।

१३. नागसेनस्स पाटलिपुत्तगमनं

१७. अथ खो आयस्मा नागसेनो उट्ठायासना येनायस्मा अस्सगुत्तो तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं अस्सगुत्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं नागसेनं आयस्मा अस्सगुत्तो एतदवोच—"गच्छ त्वं, नागसेन, पाटलिपुत्तं। पाटलिपुत्तनगरे असोकारामे आयस्मा धम्मरक्खितो पटिवसति। तस्स सन्तिके बुद्धवचनं परियापुणाही" ति। "कीव दूरे, भन्ते, इतो पाटलिपुत्तनगरं" ति? "योजनसतानि खो, नागसेना" ति।

"दूरो खो, भन्ते, मग्गो। अन्तरामग्गे भिक्खा दुल्लभा। कथाहं गमिस्सामी" ति? "गच्छ त्वं, नागसेन, अन्तरामग्गे पिण्डपातं लभिस्ससि सालीनं ओदनं विगतकाळकं अनेकसूपं अनेकब्यञ्जनं" ति।

"एवं भन्ते" ति खो आयस्मा नागसेनो आयस्मन्तं अस्सगुत्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पत्तचीवरमादाय येन पाटलिपुत्तं तेन चारिकं पक्कामि।

का ज्ञान हो गया—"जो उत्पन्न होता है, वह नष्ट होने वाला है।" आयुष्मान् नागसेन भी उस महाउपासिका को धर्मोपदेश करने के बाद अपनी कही गयी बातों पर विचार करते हुए यथार्थ ज्ञान का लाभ कर उसी आसन पर बैठे-बैठे स्रोतआपत्तिफल में प्रतिष्ठित हो गये।

तब आयुष्मान् अस्सगुत्त ने वृत्त मण्डप में बैठे-बैठे ही दोनों को धर्म ज्ञान उत्पन्न हुआ जानकर साधुवाद दिया—"साधु नागसेन! तुमने एक ही बाण से दो लक्ष्यों को बेधा है।" अनेक देवताओं ने भी साधुवाद दिया।

१३. नागसेन का पाटलिपुत्रगमन—१७. तब आयुष्मान् नागसेन आसन से उठ, आयुष्मान् अस्सगुत्त के पास जा प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। आयुष्मान् अस्सगुत्त आयुष्मान् नागसेन से बोले—"पाटलिपुत्र के अशोकाराम में आयुष्मान् धर्मरक्षित रहते हैं, तुम उनसे भगवान् बुद्ध के उपदेशों को पूरा-पूरा पढ़ लो।" "भन्ते! यहाँ से पाटलिपुत्र नगर कितनी दूर है?" "सौ योजन।"

"भन्ते! बहुत दूर है और बीच में भिक्षा मिलना भी दुर्लभ है; मैं कैसे जाऊँगा!" "नागसेन! जाओ, बीच में शालि चावल का भात, जिसमें से काले दाने चुन लिये गये हों तथा अनेक प्रकार के सूप और व्यञ्जन की भिक्षा मिलेगी।"

"बहुत अच्छा"—ऐसा कह, आयुष्मान् नागसेन आयुष्मान् अस्सगुत्त को प्रणाम और प्रदक्षिणा कर, पात्र चीवर लेकर पाटलिपुत्र की ओर चारिका के लिये चल पड़े।

१४. सेट्ठिस्स अभिधम्मदेसनं

१८. तेन खो पन समयेन पाटलिपुत्तको सेट्ठि पञ्चहि सकटसतेहि पाटलिपुत्तगाममग्गं पटिपन्नो होति। अद्दसा खो पाटलिपुत्तको सेट्ठि आयस्मन्तं नागसेनं दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वान येनायस्मा नागसेनो तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं नागसेनं अभिवादेत्वा— "कुहिं गच्छसि, ताता?" ति आह। "पाटलिपुत्तं, गहपती" ति। "साधु, तात, मयं पि पाटलिपुत्तं गच्छाम। अम्हेहि सद्धिं सुखं गच्छथा" ति।

अथ खो पाटलिपुत्तको सेट्ठि आयस्मतो नागसेनस्स इरियापथे पसीदित्वा आयस्मन्तं नागसेनं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेत्वा सम्पवारेत्वा आयस्मन्तं नागसेनं भुत्ताविं ओनीतपत्तपाणिं अञ्ञतरं नीचं आसनं गहेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो पाटलिपुत्तको सेट्ठि आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच—"किन्नामोसि त्वं, ताता" ति? "अहं, गहपति, नागसेनो नामा" ति। "जानासि खो त्वं, तात, बुद्धवचनं नामा" ति? "जानामि खोहं, गहपति, अभिधम्मपदानी" ति।

"लाभा नो, तात! सुलद्धं नो, तात! अहं पि खो, तात, आभिधम्मिको, त्वं पि आभिधम्मिको। भण, तात, अभिधम्मपदानी" ति। अथ खो आयस्मा नागसेनो पाटलिपुत्तकस्स सेट्ठिस्स अभिधम्मं देसेसि। देसेन्ते येव पाटलिपुत्तकस्स सेट्ठिस्स विरजं वीतमलं धम्मचक्खुं उदपादि—"यं किञ्चि समुदयधम्मं सब्बं तं निरोधधम्मं" ति।

अथ खो पाटलिपुत्तको सेट्ठि पञ्चमत्तानि सकटसतानि पुरतो उय्योजेत्वा सयं पच्छतो गच्छन्तो पाटलिपुत्तस्स अविदूरे द्वेधापथे ठत्वा आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच—"अयं खो, तात नागसेन, असोकारामस्स मग्गो। इदं खो, तात, अम्हाकं कम्बलरतनं सोळसहत्थं आयामेन, अट्ठहत्थं वित्थारेन। पटिग्गण्हाहि खो, तात, इमं कम्बलरतनं अनुकम्पं उपादाया" ति।

---

१४. श्रेष्ठी को अभिधर्मोपदेश— १८. उस समय पाटलिपुत्र का एक व्यापारी पाँच सौ गाड़ियों के साथ पाटलिपुत्र जाने वाली सड़क पर जा रहा था। उसने आयुष्मान् नागसेन को दूर से ही आते देखा। देख कर अपनी गाड़ियों को रोक, उनके पास जाकर प्रणाम किया और पूछा—"बाबा! आपको कहाँ जाना है?" "गृहपति! मैं पाटलिपुत्र जा रहा हूँ।" "बाबा! बहुत अच्छा ! हम लोग भी पाटलिपुत्र जा रहे हैं। हम लोगों के साथ आप भी सुखपूर्वक चलें।" तब वह पाटलिपुत्र का व्यापारी मार्ग में आयुष्मान् नागसेन का व्यवहार देखकर प्रसन्न हुआ। उसने आयुष्मान् नागसेन को अपने हाथों से भोजन खिलाया। उनके भोजन कर चुकने पर वह एक नीचा आसन लेकर बैठ गया और बोला—"बाबा, आप का क्या नाम है?" "गृहपति! मेरा नाम नागसेन है।" "बाबा, क्या आप भगवान् बुद्ध के उपदेशों को जानते हैं?" "गृहपति! मैं अभिधर्म की बातों को जानता हूँ।"

"बाबा, धन्य मेरा भाग्य! मैं भी आभिधर्मिक और आप भी! बाबा, आप मुझे अभिधर्म का प्रवचन करें।" तब, आयुष्मान् नागसेन ने उस व्यापारी को अभिधर्म का उपदेश किया। उपदेश सुनते-सुनते ही उसे यह निर्मल-निर्दोष धर्म-ज्ञान हो गया कि "जो उत्पन्न हुआ है वह नष्ट होने वाला है"।

वह....व्यापारी अपनी पाँच सौ गाड़ियों को आगे करके चला; पीछे-पीछे जाते हुए पाटलिपुत्र के निकट पहुँच, दो सड़कों के अलग होने की एक जगह रुककर, वह आयुष्मान् नागसेन से बोला—"बाबा! यही अशोकाराम का मार्ग है; और यह मेरा कीमती कम्बल है—सोलह हाथ लम्बा और आठ हाथ चौड़ा,

पटिग्गहेसि खो आयस्मा नागसेनो तं कम्बलरतनं अनुकम्पं उपादाय। अथ खो पाटलिपुत्तको सेट्ठि अत्तमनो उदग्गो पमुदितो पीतिसोमनस्सजातो आयस्मन्तं नागसेनं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि।

१५. नागसेनस्स अरहन्तभावो

१९. अथ खो आयस्मा नागसेनो येनासोकारामो येनायस्मा धम्मरक्खितो तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं धम्मरक्खितं अभिवादेत्वा अत्तनो आगतकरणं कथेत्वा आयस्मतो धम्मरक्खितस्स सन्तिके तेपिटकं बुद्धवचनं एकेनेव उद्देसेन तीहि मासेहि ब्यञ्जनतो परियापुणित्वा पुन तीहि मासेहि अत्थतो मनसाकासि।

अथ खो आयस्मा धम्मरक्खितो आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच—"सेय्यथापि, नागसेन, गोपालको गावो रक्खति, अञ्ञे गोरसं परिभुञ्जन्ति; एवमेव खो, त्वं नागसेन, पुथुज्जनो तेपिटकं बुद्धवचनं धारेन्तो पि न भागी सामञ्ञस्सा" ति। "होतु, भन्ते, अलं एत्तकेना" ति। तेनेव दिवसभागेन तेन रत्तिभागेन सह पटिसम्भिदाहि अरहत्तं पापुणि। सह सच्चप्पटिवेधेन आयस्मतो नागसेनस्स सब्बे देवा साधुकारमदंसु, पथवी उन्नदि, ब्रह्मानो अप्फोटेसुं, दिब्बानि चन्दनचुण्णानि दिब्बानि च मन्दारवपुप्फानि अभिप्पवस्सिंसु।

१६. नागसेनस्स सन्तिके दूतपेसनं

२०. तेन खो पन समयेन कोटिसता अरहन्तो हिमवन्ते पब्बते रक्खिततले सन्निपतित्वा आयस्मतो नागसेनस्स सन्तिके दूतं पाहेसुं—"आगच्छतु नागसेनो! दस्सनकामा मयं नागसेनं" ति। अथ खो आयस्मा नागसेनो दूतस्स वचनं सुत्वा असोकारामे अन्तरहितो हिमवन्ते पब्बते रक्खिततले कोटिसतानं अरहन्तानं पुरतो पातुरहोसि।

इसे आप कृपा कर स्वीकार करें!" आयुष्मान् नागसेन ने कृपा कर उस कम्बल को स्वीकार किया। तब, वह व्यापारी सन्तुष्ट, प्रीतियुक्त, और प्रमुदित होता हुआ आयुष्मान् नागसेन को प्रणाम–प्रदक्षिणा कर, पाटलिपुत्र की ओर चल दिया।

१५. नागसेन का अर्हत् पद— १९. आयुष्मान् नागसेन ने अशोकाराम में आयुष्मान् धर्मरक्षित के पास जा, प्रणाम कर अपने आने का प्रयोजन कहा और तीन ही महीनों में, एक आवृत्ति में ही, आयुष्मान् धर्मरक्षित से भगवान् बुद्ध के वचनों (तीनों पिटकों) को कण्ठस्थ कर लिया; फिर अगले तीन महीनों में उनके अर्थों को भी जान लिया।

तब, आयुष्मान् धर्मरक्षित ने आयुष्मान् नागसेन से कहा—"नागसेन! जैसे ग्वाला गौओं को केवल रखता है, दूध पीने वाले दूसरे ही होते हैं; उसी तरह तुम ने त्रिपिटक जान लिया तो क्या हुआ यदि श्रमणफल (मोक्ष) के भागी नहीं बने।" "भन्ते! बस करें, अधिक कहने की आवश्यकता नहीं।" उसी दिन रात्रि में उन्होंने प्रतिसंविदाओं[1] के साथ अर्हत् पद पा लिया। आयुष्मान् नागसेन के इस तरह सत्य में प्रतिष्ठित होते ही पृथ्वी कम्पित हो उठी, ब्रह्मदेवों ने करतल ध्वनि की, दिव्य चन्दनचूर्ण और मन्दार–पुष्पों की वर्षा होने लगी।

१६. नागसेन के पास दूतप्रेषण— २०. उस समय शतकोटि अर्हतों ने, हिमालय पर्वत के रक्षित–तल में इकट्ठे होकर, आयुष्मान् नागसेन के पास दूत द्वारा सन्देश भेजा—"नागसेन यहाँ आयें, हम लोग

---

१. प्रतिसंविदाएँ चार हैं, जैसे– १. अर्थप्रतिसंविदा, २. धर्मप्रतिसंविदा, ३. निरुक्तिप्रतिसंविदा एवं ४. प्रतिभानप्रतिसंविदा।

अथ खो कोटिसता अरहन्तो आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोचुं—"एसो खो, नागसेन, मिलिन्दो राजा भिक्खुसङ्घं विहेठेति वादप्पटिवादेन पञ्हपुच्छाय। साधु, नागसेन, गच्छ त्वं मिलिन्दं राजानं दमेही" ति। "तिट्ठतु, भन्ते, एको मिलिन्दो राजा; सचे, भन्ते, सकलजम्बुद्दीपे राजानो आगन्त्वा मं पञ्हं पुच्छेय्युं सब्बं तं विस्सज्जेत्वा सम्पदालेस्सामि! गच्छथ वो, भन्ते, अच्छम्भिता सागलनगरं" ति। अथ खो थेरा भिक्खू सागलनगरं कासावप्पज्जोतं इसिवातपटिवातं अकंसु।

१७. आयुपालेन सद्धिं मिलिन्दस्स समागमो

२१. तेन खो पन समयेन आयस्मा आयुपालो सङ्खेय्यपरिवेणे पटिवसति। अथ खो मिलिन्दो राजा अमच्चे एतदवोच—"रमणीया वत, भो, दोसिना रत्ति! कं नु ख्वज्ज समणं वा ब्राह्मणं वा उपसङ्कमेय्याम साकच्छाय पञ्हपुच्छनाय; को मया सद्धिं सल्लपितुं उस्सहति, कङ्खं पटिविनेतुं" ति? एवं वुत्ते पञ्चसता योनका राजानं मिलिन्दं एतदवोचुं—"अत्थि, महाराज, आयुपालो नाम थेरो तेपिटको बहुस्सुतो आगतागमो। सो एतरहि सङ्खेय्यपरिवेणे पटिवसति। गच्छ त्वं, महाराज, आयस्मन्तं आयुपालं पञ्हं पुच्छस्सू" ति। "तेन हि भणे, भदन्तस्स आरोचेय्या" ति।

अथ खो नेमित्तिको आयस्मतो आयुपालस्स सन्तिके दूतं पाहेसि—"राजा, भन्ते, मिलिन्दो आयस्मन्तं आयुपालं दस्सनकामो" ति। आयस्मा पि खो आयुपालो एवमाह—"तेन हि आगच्छतू" ति। अथ खो मिलिन्दो राजा पञ्चमत्तेहि योनकसतेहि परिवुतो रथवरमारुय्ह

आयुष्मान् नागसेन के दर्शन करना चाहते हैं।" तब, आयुष्मान् नागसेन दूत की बात सुन, अशोकाराम में अन्तर्हित हो, हिमालय पर्वत के रक्षित-तल में शतकोटि अर्हतों के सामने प्रकट हुए।

उन अर्हतों ने आयुष्मान् नागसेन से कहा—"नागसेन! राजा मिलिन्द वादचर्चा में नाना प्रकार के प्रश्न पूछ कर भिक्षुसङ्घ को उद्विग्न करता है और नीचा दिखाता है। तुम जाओ और उस राजा का दमन करो।" "भन्ते! अकेले राजा मिलिन्द की तो बात ही क्या! यदि जम्बूद्वीप के सभी राजा एक साथ आकर भी प्रश्न पूछें तो मैं सब का उत्तर दे उन्हें शान्त कर दूँगा! आप लोग निर्भय हो सागल नगर चलें!" तब, उन स्थविर भिक्षुओं ने सागल नगर को काषायवस्त्र की चमक से चमका कर, ऋषियों के अनुकूल वायुमण्डल पैदा किया।

१७. आयुष्मान् आयुपाल से राजा मिलिन्द की भेंट— २१. उस समय आयुष्मान् आयुपाल संखेय्य परिवेण (विद्यालय) में रहते थे। तब, राजा मिलिन्द ने अपने अमात्यों से कहा—"आज की रात बहुत रमणीय है। आज किस श्रमण या ब्राह्मण के पास धर्म-चर्चा करने तथा प्रश्न पूछने जाऊँ? कौन मेरे साथ बातचीत करके मेरी शङ्काओं को दूर करने का साहस रखता है?" राजा द्वारा यह पूछने पर पाँच सौ यवनों ने यह उत्तर दिया—"महाराज! आयुपाल नाम का एक स्थविर है, जो तीनों पिटकों को जानता है और बहुत बड़ा पण्डित है। वह इस समय संखेय्य परिवेण में रहता है। आप उसके पास जावें और प्रश्न पूछें।" "अच्छा, तो उन भदन्त आयुपाल को मेरे आने की सूचना दो।"

तब, आज्ञा पाकर सूचनाधिकारी ने आयुपाल के निकट दूत भेज कर कहलवाया—"भन्ते ! राजा मिलिन्द आप से मिलना चाहते हैं।" आयुष्मान् आयुपाल ने भी कहा—"तो आवें।" तब, राजा मिलिन्द पाँच सौ यवनों के साथ, अच्छे रथ पर सवार हो, संखेय्य परिवेण में आयुष्मान् आयुपाल के पास

येन सङ्खेय्यपरिवेणं येनायस्मा आयुपालो तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा आयस्मता आयुपालेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो मिलिन्दो राजा आयस्मन्तं आयुपालं एतदवोच—"किमत्थिया, भन्ते आयुपाल, तुम्हाकं पब्बज्जा? को च तुम्हाकं परमत्थो" ति? थेरो आह—"धम्मचरियसमचरियत्था खो, महाराज, पब्बज्जा, सामञ्ञफलं खो पन अम्हाकं परमत्थो" ति। "अत्थि पन, भन्ते, कोचि गिही पि धम्मचारी, समचारी" ति? "आम, महाराज, अत्थि गिही पि धम्मचारी समचारी। भगवतो खो, महाराज, बाराणसियं इसिपतने मिगदाये धम्मचक्कं पवत्तेन्ते अट्ठारसन्नं ब्रह्मकोटीनं धम्माभिसमयो अहोसि। देवतानं पन धम्माभिसमयो गणनपथं वीतिवत्तो। सब्बे ते गिहिभूता, न पब्बजिता। पुन च परं, महाराज, भगवतो खो *महासमय*सुत्तन्ते देसियमाने, *महामङ्गल*सुत्तन्ते देसियमाने, *समचित्तपरियाय*सुत्तन्ते देसियमाने, *राहुलोवाद*सुत्तन्ते देसियमाने, *पराभवसुत्*तन्ते देसियमाने गणनपथं वीतिवत्तानं देवतानं महाभिसमयो अहोसि। सब्बे ते गिहिभूता, न पब्बजिता" ति।

"तेन हि, भन्ते आयुपाल, निरत्थिका तुम्हाकं पब्बज्जा। पुब्बे कतस्स पापकम्मस्स निस्सन्देन समणा सक्यपुत्तिया पब्बजन्ति, धुतङ्गानि च परिहरन्ति। ये खो ते, भन्ते आयुपाल, भिक्खू एकासनिका, नून ते पुब्बे परेसं भोगहारका चोरा। ते परेसं भोगे अच्छिन्दित्वा तस्स कम्मस्स निस्सन्देन एतरहि एकासनिका भवन्ति। न लभन्ति कालेन कालं परिभुञ्जितुं। नत्थि तेसं सीलं, नत्थि तपो, नत्थि ब्रह्मचरियं। ये खो पन ते, भन्ते आयुपाल, भिक्खू अब्भोकासिका, नूनं ते पुब्बे ग्रामघातका चोरा। ते परेसं गेहानि विनासेत्वा तस्स कम्मस्स निस्सन्देन एतरहि अब्भोकासिका भवन्ति। न लभन्ति सेनासनानि परिभुञ्जितुं। नत्थि तेसं सीलं, नत्थि तपो,

---

गया। कुशल–क्षेम पूछने के बाद, एक ओर बैठ गया और बोला—"भन्ते! आप प्रव्रजित क्यों हुए? आपका परम उद्देश्य क्या था?" स्थविर बोले—"महाराज! धर्मपूर्वक तथा शान्तिपूर्वक रहने के लिए मैं प्रव्रजित हुआ हूँ।" "भन्ते! क्या कोई गृहस्थ भी है, जो धर्मपूर्वक और शान्तिपूर्वक रहता है?" "हाँ, महाराज! गृहस्थ भी धर्म और शान्तिपूर्वक रह सकता है। वाराणसी के ऋषिपतन मृगदाव (सारनाथ) में धर्मचक्र घुमाने (धर्मोपदेश) के बाद अट्ठारह करोड़ ब्रह्मदेवों तथा दूसरे बहुत से देवताओं को भी धर्मज्ञान हो गया था। उन देवताओं में कोई भी प्रव्रजित नहीं था, अपितु सभी गृहस्थ थे। और फिर भी भगवान् के महासमयसुत्त, महामंगलसुत्त, समचित्तपरियायसुत्त, राहुलोवादसुत्त तथा पराभवसुत्तों का उपदेश करने पर जिन देवताओं को धर्मज्ञान हुआ, उनकी गणना भी नहीं की जा सकती। वे सभी गृहस्थ ही थे, प्रव्रजित नहीं।"

"भन्ते आयुपाल! तब तो आप की प्रव्रज्या निरर्थक ही हुई। पूर्वजन्म में किये गये पापों से ही सभी बौद्ध भिक्षु प्रव्रजित हुए हैं और धुताङ्ग (द्र०–विसुद्धिमग्ग, द्वि० परि०) धारण करते हैं। भन्ते आयुपाल! जो भिक्षु एकासनिक धुताङ्ग धारण करते हैं, वे अवश्य अपने पूर्वजन्म में चोर (भोगहारक) रहे होंगे, दूसरों के भोगों को चुरा लेने के पाप के फल से ही वे ऐकासनिक हुए हैं। वे न कभी किसी एक जगह रह पाते हैं, न मन के अनुकूल कुछ खा पी सकते हैं। इसमें न उनका कुछ शील है, न तप और न ब्रह्मचर्य है। भन्ते आयुपाल! और जो भिक्षु अभ्यवकाशिक (सदा खुले स्थान ही में रहना) धुताङ्ग को धारण करते हैं, वे पहले जन्म में गाँव को नष्ट करने वाले चोर रहे होंगे, वे दूसरों के घर नष्ट करने

नत्थि ब्रह्मचरियं। ये खो पन ते, भन्ते आयुपाल, भिक्खू नेसज्जिका, नून ते पुब्बे पन्थदूसका चोरा। ते परेसं पथिके जने गहेत्वा बन्धित्वा निसीदापेत्वा तस्स कम्मस्स निस्सन्देन एतरहि नेसज्जिका भवन्ति। न लभन्ति सेय्यं कप्पेतुं। नत्थि तेसं सीलं, नत्थि तपो, नत्थि ब्रह्मचरियं'' ति आह।

एवं वुत्ते आयस्मा आयुपालो तुण्ही अहोसि। न किञ्चि पटिभासि। अथ खो पञ्चसता योनका राजानं मिलिन्दं एतदवोचुं—''पण्डितो, महाराज, थेरो। अपि च खो अविसारदो, न किञ्चि पटिभासती'' ति।

अथ खो मिलिन्दो राजा आयस्मन्तं आयुपालं तुण्हीभूतं दिस्वा अप्फोटेत्वा उक्कुट्ठिं कत्वा योनके एतदवोच— ''तुच्छो बत, भो, जम्बुदीपो! पलापो बत, भो, जम्बुदीपो! नत्थि कोचि समणो वा ब्राह्मणो वा यो मया सद्धिं सल्लपितुं उस्सहति, कङ्खं पटिविनेतुं'' ति।

१८. नागसेनस्स सागलनगरे आगमनं

२२. अथ खो मिलिन्दस्स रञ्ञो सब्बं तं परिसं अनुविलोकेन्तस्स अभीते अमङ्कुभूते योनके दिस्वा एतदहोसि—''निस्संसयं अत्थि मञ्ञे अञ्ञो कोचि पण्डितो भिक्खु यो मया सद्धिं सल्लपितुं उस्सहति, योनका न मङ्कुभूता'' ति। अथ खो मिलिन्दो राजा योनके एतदवोच— ''अत्थि, भणे, अञ्ञो कोचि पण्डितो भिक्खु यो मया सद्धिं सल्लपितुं उस्सहति, कङ्खं पटिविनेतुं'' ति?

तेन खो पन समयेन आयस्मा नागसेनो समणगणपरिवुतो सङ्घी गणी गणाचरियो

के पाप से ही इस जन्म में सदा खुले ही मैदान में रहते हैं, किसी घर के भीतर नहीं ठहर सकते। इसमें भी उनका कुछ शील, तप या ब्रह्मचर्य नहीं है। भन्ते आयुपाल! और जो भिक्षु सदा बैठे रहने का धुताङ्ग धारण करते हैं, वे पहले जन्म में मार्ग के लुटेरे रहे होंगे, वे यात्रियों को बाँध कर और बैठा कर छोड़ देते रहे, उसी पाप के फल से वे सदा एक स्थान पर बैठे ही रहते हैं, कभी सो नहीं सकते। उसमें भी उनका कोई शील, तप और ब्रह्मचर्य नहीं है।"

इस पर आयुष्मान् आयुपाल चुप हो गये। उन्हें कुछ नहीं सूझा। तब, पाँच सौ यवनों ने राजा मिलिन्द से कहा— "महाराज! यह स्थविर पण्डित तो है, किन्तु ऐसा निपुण (प्रखरमति) नहीं कि आपका उत्तर दे सके।"

आयुष्मान् आयुपाल को उसी तरह मौन देख कर राजा ताली बजाते हुए उच्च स्वर में यवनों से बोल उठा—"अरे, यह जम्बूद्वीप तो तुच्छ है, विद्वानों से सर्वथा रिक्त है! यहाँ कोई ऐसा श्रमण ब्राह्मण है ही नहीं, जो मेरे साथ बातचीत करके मेरी शङ्काएँ दूर कर सके।"

१८. नागसेन का सागलनगर में आगमन— २२. यह कह राजा ने सभा में बैठे यवनों की ओर देखा, किन्तु उन्हें फिर भी निर्भीक और निःशङ्क देख मन में विचारा—"ज्ञात होता है, अवश्य कोई दूसरा पण्डित भिक्षु है, जो मेरे साथ बातें करने का उत्साह करता है, तभी ये यवन निर्भीक और निःशङ्क है।" तब राजा मिलिन्द ने यवनों से पूछा—"क्या दूसरा भी कोई पण्डित भिक्षु है, जो मेरे साथ बातचीत करके मेरी शङ्काओं को दूर कर सकता है?"

उस समय श्रमणों के एक समूह के साथ गाँव, कस्बों और राजधानियों में भिक्षाटन (चारिका) करते आयुष्मान् नागसेन सङ्घनायक, गणनायक, गणाचार्य, ज्ञानी, यशस्वी, बहुत लोगों से सम्मानित, पण्डित, चतुर, बुद्धिमान्, निपुण, विज्ञ, अनुभवी, नम्र, कुशल, बहुश्रुत, तीनों पिटकों के ज्ञाता, वेदों में

ञातो यसस्सी साधुसम्मतो बहुजनस्स पण्डितो ब्यत्तो मेधावी निपुणो विञ्ञू विभावी विनीतो विसारदो बहुस्सुतो तेपिटको वेदगू पभिन्नबुद्धिमा आगतागमो पभिन्नपटिसम्भिदो नवङ्ग-सत्थुसासने परियत्तिधरो पारमिप्पत्तो जिनवचने धम्मत्थदेसनापटिवेधकुसलो अक्खयविचित्त-पटिभानो चित्तकथी कल्याणवाक्करणो दुरासदो दुप्पसहो दुरुत्तरो दुरावरणो दुन्निवारयो, सागरो विय अक्खोभो, गिरिराजा विय निच्चलो, रणञ्जहो तमोनुदो पभङ्करो महाकथी परगणिगणमथनो परतित्थियमद्दनो भिक्खूनं भिक्खुनीनं उपासकानं उपासिकानं राजूनं राजमहामत्तानं सक्कतो गरुकतो मानितो पूजितो अपचितो लाभी चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारानं लाभग्ग-यसग्गप्पत्तो, वुद्धानं विञ्ञूनं सोतावधानेन समन्नागतानं सन्दस्सेन्तो नवङ्गं जिनसासन-रतनं, उपदिसन्तो धम्ममग्गं, धारेन्तो धम्मप्पज्जोतं, उस्सापेन्तो धम्मयूपं, यजन्तो धम्मयागं, पग्गण्हन्तो धम्मद्धजं, उस्सापेन्तो धम्मकेतुं, धमेन्तो धम्मसङ्खं, आहनन्तो धम्मभेरिं, नदन्तो सीहनादं, गज्जन्तो इन्दगज्जितं, मधुरगिरगज्जितेन आणवरविज्जुजालपरिवेठितेन करुणाजलभरितेन महता धम्मामतमेघेन सकललोकमभितप्पयन्तो, गामनिगमराजधानीसु चारिकं चरमानो अनुपुब्बेन सागलनगरं अनुप्पत्तो होति।

तत्र सुदं आयस्मा नागसेनो असीतिया भिक्खुसहस्सेहि सद्धिं सङ्खेय्यपरिवेणे पटिवसति। तेनाहु पोराणा—

"बहुस्सुतो चित्रकथी, निपुणो च विसारदो।
सामयिको च कुसलो, पटिभाने च कोविदो॥
"ते च तेपिटका भिक्खू, पञ्चनेकायिका पि च।

पारङ्गत, स्थिरचित्त, लोक–कथाओं को जानने वाले, भगवान् बुद्ध के शासन की सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों के भी ज्ञाता, पर्याप्तिधर, पारमि–प्राप्त, भगवान् के धर्म के अनुकूल देशना करने में कुशल, कभी विफल न होने वाली विचित्र प्रत्युत्पन्नमति से युक्त थे। विचित्र वक्ता, शुभ बातें बोलने वाले, अद्वितीय और अपराजेय थे। उनके प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया जा सकता था। उन्हें तर्कों से नहीं फँसाया जा सकता था। सागर के समान शान्त, हिमालय जैसे निश्चल, विजयी, अज्ञानरूपी अन्धकार के नाशक, ज्ञान का प्रकाश फैलाने वाले, बड़े गम्भीर वक्ता, दूसरे मत वालों को पराजित करने वाले, दूसरे तैर्थिकों को हराने वाले, भिक्षु–भिक्षुणी, उपासक–उपासिका, राजा और राजमन्त्री सभी से सत्कार पाने वाले, पूजा किये जाने योग्य, चीवर, पिण्डपात, शयनासन और ग्लानप्रत्यय पाने वाले, उत्तम लाभ और यश पाने वाले, धर्मोपदेश सुनने की इच्छा से आये हुए कुशल और विज्ञ पुरुषों को बुद्ध–धर्म के नौ रत्नों[1] को दिखाने वाले, धर्ममार्ग के उपदेशक, धर्मज्योति को धारण करने वाले, धर्म–स्तम्भ को गाड़नेवाले, धर्म–यज्ञ करने वाले, धर्मध्वज को ऊपर उठाये, धर्म–शंख और धर्मभेरी बजाते, सिंहनाद करते, बिजली के समान कड़कते, मधुरवाणी बोलते, करुणारूपी बूँदों की सुखद वर्षा करते, अपने ज्ञानरूपी विद्युत् को चमकाते, बड़े भारी धर्म–रूपी मेघ से अमृत वर्षा कर लोगों को सन्तुष्ट करते हुए सागल नगर पहुँचे थे।

वहाँ आयुष्मान् नागसेन अस्सी हजार भिक्षुओं के साथ सङ्खेय्य परिवेण में ठहरे। कहा जाता है–

"बड़े पण्डित, वक्ता, निपुण और निर्भीक, सिद्धान्तों को जानने वाले, समझाने में चतुर नागसेन

---

१. नवरत्न—१. सुत्त, २. गेय्य, ३. वेय्याकरण, ४. गाथा, ५. उदान, ६. इतिवुत्तक, ७. जातक, ८. अभिधर्म, ९. वेदल्ल।

चतुनेकायिका चेव, नागसेनं पुरक्खरुं॥
"गम्भीरपञ्ञो मेधावी, मग्गामग्गस्स कोविदो।
उत्तमत्थं अनुप्पत्तो, नागसेनो विसारदो॥
"तेहि भिक्खूहि परिवुतो, निपुणेहि सच्चवादिहि।
चरन्तो गामनिगमं, सागलं उपसङ्कमि॥
"सङ्खेय्यपरिवेणस्मिं, नागसेनो तदा वसि।
कथेति सो मनुस्सेहि, पब्बते केसरो यथा" ति॥

१९. नागसेनेन मिलिन्दस्स पठमसमागमो

२३. अथ खो देवमन्तियो राजानं मिलिन्दं एतदवोच—"आगमेहि त्वं, महाराज! अत्थि, महाराज, नागसेनो नाम थेरो पण्डितो व्यत्तो मेधावी विनीतो विसारदो बहुस्सुतो चित्रकथी कल्याणपटिभानो अत्थधम्मनिरुत्तिपटिभानपटिसम्भिदासु पारमिप्पत्तो....।" सो एतरहि सङ्खेय्यपरिवेणे पटिवसति। गच्छ त्वं, महाराज, आयस्मन्तं नागसेनं पञ्हं पुच्छस्सु। उस्सहति सो तया सद्धिं सल्लपितुं, कङ्खं पटिविनेतुं" ति। अथ खो मिलिन्दस्स रञ्ञो सहसा 'नागसेनो' ति सद्दं सुत्वा व अहुदेव भयं, अहुदेव छम्भितत्तं, अहुदेव लोमहंसो। अथ खो मिलिन्दो राजा देवमन्तियं एतदवोच—"उस्सहति सो नागसेनो भिक्खु मया सद्धिं सल्लपितुं" ति? "उस्सहति, महाराज; अपि इन्दयमवरुणकुबेरप्रजापतिसुयामसन्तुसितलोकपालेहि पि पितुपितामहेन महाब्रह्मुना पि सद्धिं सल्लपितुं, किमङ्ग, पन मनुस्सभूतेना" ति!

अथ खो मिलिन्दो राजा देवमन्तियं एतदवोच— "तेन हि त्वं, देवमन्तिय, भदन्तस्स

को त्रिपिटक के जानने वाले, पाँच और चार निकायों के जानने वाले उन भिक्षुओं ने अपना ऊगुआ (अग्र) मान लिया था।

"गम्भीरप्रज्ञ, मेधावी, सन्मार्ग और कुमार्ग के ज्ञाता, निर्भय नागसेन ने परम तत्त्वज्ञान पा लिया था।

"वे उन निपुण सत्यवादी भिक्षुओं के साथ गाँव और जनपदों में घूमते हुए सागल नगर पहुँचे थे॥

उस समय नागसेन सङ्खेय्य परिवेण में ठहरे थे। वे पर्वत पर केसरी (सिंह) की तरह मनुष्यों के बीच शोभायमान थे" ॥

१९. आयुष्मान् नागसेन से राजा मिलिन्द की पहली भेंट— २३. तब देवमन्त्री (मन्त्रिप्रमुख) ने राजा मिलिन्द से कहा—"महाराज, आँवें! नागसेन नाम के एक स्थविर पण्डित ....पूर्ववत्.... हैं। वे इस समय संखेय्य परिवेण में ठहरे हैं। महाराज! आप उनके पास चलें और प्रश्न पूछें। आपके साथ बातें करके आपकी शङ्काएँ दूर करने के लिये वे सन्नद्ध हैं।" सहसा नागसेन का नाम सुनकर राजा मिलिन्द को भय होने लगा, उसके गात्र स्तब्ध हो गये और रोमाञ्च हो गया। तब, राजा मिलिन्द ने देवमन्त्री से पूछा— "वह नागसेन भिक्षु मेरे साथ बातें करने को तैयार है?" "हाँ, महाराज! तैयार हैं। यदि इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, प्रजापति, सुयाम, सन्तुषित देव, लोकपाल और पिता, पितामह आदि के साथ महाब्रह्मा भी आवें तो भी नागसेन उनसे बातें कर सकते हैं, मनुष्यों की तो बात ही क्या!!"

तब, राजा मिलिन्द ने देवमन्त्री से कहा—"तो देवमन्त्रिन्! उनके पास दूत भेज कर उन्हें

सन्तिके दूतं पेसेही'' ति। ''एवं, देवा'' ति खो देवमन्तियो आयस्मतो नागसेनस्स सन्तिके दूतं पाहेसि—''राजा, भन्ते, मिलिन्दो आयस्मन्तं दस्सनकामो'' ति। आयस्मा पि खो नागसेनो एवमाह—''तेन हि आगच्छतू'' ति।

अथ खो मिलिन्दो राजा पञ्चमत्तेहि योनकसतेहि परिवुतो रथवरमारुय्ह महता बलकायेन सद्धिं येन सङ्खेय्यपरिवेणं येनायस्मा नागसेनो तेनुपसङ्कमि। तेन खो पन समयेन आयस्मा नागसेनो असीतिया भिक्खुसहस्सेहि सद्धिं मण्डलमाले निसिन्नो होति। अद्दसा खो मिलिन्दो राजा आयस्मतो नागसेनस्स परिसं दूरतो व। दिस्वान देवमन्तियं एतदवोच— ''कस्सेसा, देवमन्तिय, महती परिसा'' ति? ''आयस्मतो खो, महाराज, नागसेनस्स परिसा'' ति।

अथ खो मिलिन्दस्स रञ्ञो आयस्मतो नागसेनस्स परिसं दूरतो व दिस्वा अहुदेव भयं, अहुदेव छम्भितत्तं, अहुदेव लोमहंसो। अथ खो मिलिन्दो राजा खग्गपरिवारितो विय गजो, गरुळपरिवारितो विय नागो, अजगरपरिवारितो विय कोत्थुको, महिंसपरिवुतो विय अच्छो, नागानुबन्धो विय मण्डूको, सद्दूलानुबद्धो विय मिगो, अहितुण्डिकसमागतो विय पन्नगो, मज्जारसमागतो विय उन्दूरो, भूतवेज्जसमागतो विय पिसाचो, राहुमुखगतो विय चन्दो, पन्नगो विय पेळन्तरगतो, सकुणो विय पञ्जरन्तरगतो, मच्छो विय जालन्तरगतो, वाळवन-मनुप्पविट्ठो विय पुरिसो, वेस्सवणापराधिको विय यक्खो, परिक्खीणायुको विय देवपुत्तो, भीतो उब्बिग्गो उत्रस्तो संविग्गो लोमहट्ठजातो विमनो दुम्मनो भन्तचित्तो विपरिणतमानसो ''मा मं अयं परियोजनो परिभवी'' ति सतिं उपट्ठपेत्वा देवमन्तियं एतदवोच— ''मा खो त्वं, देवमन्तिय, आयस्मन्तं नागसेनं मय्हं आचिक्खेय्यासि। अनक्खातञ्ञेवाहं नागसेनं जानिस्सामी'' ति। ''साधु, महाराज, त्वञ्ञेव जानाही'' ति।

सूचित कर दो कि मैं उनसे मिलना चाहता हूँ।'' ''देव ! बहुत अच्छा''—कह कर देवमन्त्री ने आयुष्मान् नागसेन के पास दूत भेजा—''भन्ते! राजा मिलिन्द आपसे मिलना चाहते हैं।'' आयुष्मान् नागसेन ने भी उत्तर दिया—''अच्छा तो राजा आवें।''

तब, राजा मिलिन्द पाँच सौ यवनों के साथ, अच्छे रथ पर सवार हो, भारी सेना के साथ संखेय्य परिवेण में आकर जहाँ आयुष्मान् नागसेन थे, वहाँ गया। उस समय आयुष्मान् नागसेन अस्सी हजार भिक्षुओं के साथ सभागृह (मण्डलमाल) में बैठे थे। राजा मिलिन्द ने आयुष्मान् नागसेन की परिषद् को देखा। दूर ही से देख देवमन्त्री से कहा— ''देवमन्त्रिन्! यह इतनी बड़ी परिषद् किसकी है?'' ''महाराज ! आयुष्मान् नागसेन की यह परिषद् है।''

तब, आयुष्मान् नागसेन की उस परिषद् को दूर से ही देख राजा मिलिन्द को भय होने लगा, उसके गात्र स्तब्ध हो गये और रोमाञ्च हो आया। गैंडों से घिरे हाथी की तरह, गरुड़ से घिरे साँप की तरह, अजगर से घिरे सियार की तरह, महिषों से घिरे भालू की तरह, साँप से पीछा किये गए मेंढ़क की तरह, सिंह द्वारा पीछा किये गये हरिण की तरह, सपेरे के हाथों में आये साँप की तरह, बिल्ली की पकड़ में आये हुए चूहे की तरह, ओझा से बाँधे गये भूत की तरह, राहु से ग्रसित चन्द्रमा की तरह, पिटारी में बन्द साँप की तरह, पिंजड़े में बन्द पक्षी की तरह, जाल में पड़ी मछली की तरह, हिंसक पशुओं से भरे जंगल में भटके मनुष्य की तरह, वैश्रवण (कुबेर) के प्रति अपराध किये यक्ष की तरह तथा आयु समाप्त हुए देवता की तरह राजा मिलिन्द घबरा कर, चिन्तित, उदास तथा खिन्न हो गया। ''मुझे यह कहीं हरा

तेन खो पन समयेन आयस्मा नागसेनो तस्सा भिक्खुपरिसाय पुरतो चत्तालीसाय भिक्खुसहस्सानं नवकतरो होति, पच्छतो चत्तालीसाय भिक्खुसहस्सानं वुड्ढतरो। अथ खो मिलिन्दो राजा सब्बं तं भिक्खुसङ्घं पुरतो च पच्छतो च मज्झतो च अनुविलोकेन्तो अद्दसा खो आयस्मन्तं नागसेनं दूरतो व भिक्खुसङ्घस्स मज्झे निसिन्नं केसरसीहं विय विगतभयभेरवं विगतलोमहंसं विगतभयसारज्जं। दिस्वान आकारेनेव अञ्ञासि— "एसो खो एत्थ नागसेनो" ति।

अथ खो मिलिन्दो राजा देवमन्तियं एतदवोच— "एसो खो, देवमन्तिय, आयस्मा नागसेनो" ति?

"आम, महाराज, एसो खो नागसेनो। सुट्ठु खो त्वं, महाराज, नागसेनं अञ्ञासी" ति। ततो राजा तुट्ठो अहोसि— "अनक्खातो व मया नागसेनो अञ्ञातो" ति! अथ खो मिलिन्दस्स रञ्ञो आयस्मन्तं नागसेनं दिस्वा व अहुदेव भयं, अहुदेव छम्भितत्तं, अहुदेव लोमहंसो। तेनाहु—

"चरणेन च सम्पन्नं, सुदन्तं उत्तमे दमे।
दिस्वा राजा नागसेनं, इमं वचनमब्रवि।
"कथिता मया बहू दिट्ठा, साकच्छा ओसटा बहू।
न तादिसं भयं आसि, अज्ज तासो यथा मम॥
"निस्संसयं पराजयो, मम अज्ज भविस्सति।
जयो च नागसेनस्स, यथा चित्तं न सण्ठितं ति॥

बाहिरकथा निट्ठिता॥

न दे"—ऐसे शङ्कित हो उसने देवमन्त्री से कहा— "देवमन्त्रिन्! आप मुझे न बतावें कि आयुष्मान् नागसेन कौन से हैं। बिना बताये ही मैं उन्हें जान लूँगा।" "महाराज! बहुत अच्छा! आप उन्हें स्वयं पहचानें।"

उस समय आयुष्मान् नागसेन सामने बैठे चालीस हजार भिक्षुओं से कम आयु के और पीछे बैठे चालीस हजार भिक्षुओं से अधिक आयु के थे। तब, राजा मिलिन्द ने सारे भिक्षुसङ्घ को आगे, पीछे और बीच में देखते हुए, आयुष्मान् नागसेन को भिक्षुसङ्घ के बीच में केसरी सिंह की तरह निर्भय होकर स्थिर भाव से बैठे देखा। उन्हें देख उनकी आकृति से ही जान लिया कि "यही आयुष्मान् नागसेन हैं।"

तब राजा मिलिन्द ने देवमन्त्रिन् से कहा— "देवमन्त्री! क्या ये ही आयुष्मान् नागसेन हैं?"

"जी हाँ, महाराज! आयुष्मान् नागसेन यही हैं। आपने नागसेन को ठीक पहचान लिया।" राजा को यह देख बहुत सन्तोष हुआ कि "बिना बताये मैंने नागसेन को पहचान लिया"। किन्तु आयुष्मान् नागसेन को देख राजा को भय होने लगा, गात्र स्तब्ध हो गये और रोमाञ्च हो आया। इसीलिये कहा है—

"ज्ञानसम्पन्न और उत्तम संयमों में अभ्यस्त आयुष्मान् नागसेन को देख राजा बोल उठा—

"मैंने बहुत वक्ताओं को देखा है, उनमें से अनेक से शास्त्रचर्चा भी की है, किन्तु मुझे ऐसा भय कभी नहीं हुआ, जैसा आज हो रहा है॥

"(अतः) आज अवश्य मेरी पराजय होगी और नागसेन जीत जाँयगें, क्योंकि मेरा चित्त चञ्चल हो रहा है॥"

बाह्यकथा समाप्त॥

२. मिलिन्दपञ्हे

(क) लक्खणपञ्हो

१. महावग्गो

१. रथूपमाय पुग्गलवीमंसनं

१. अथ खो मिलिन्दो राजा येनायस्मा नागसेनो तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा आयस्मता नागसेनेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। आयस्मा पि खो नागसेनो पटिसम्मोदनीयेनेव मिलिन्दस्स रञ्ञो चित्तं आराधेसि।

अथ खो मिलिन्दो राजा आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच—"कथं भदन्तो ञायति—किंनामोसि, भन्ते" ति? "नागसेनो ति खो अहं, महाराज, ञायामि। 'नागसेनो' ति खो मं, महाराज, सब्रह्मचारी समुदाचरन्ति। अपि च मातापितरो नामं करोन्ति—'नागसेनो' ति वा 'सूरसेनो' ति वा 'वीरसेनो' ति वा 'सीहसेनो' ति वा। अपि च खो, महाराज, सङ्खा समञ्ञा पञ्ञत्ति वोहारो नाममत्तं यदिदं नागसेनो' ति। न हेत्थ पुग्गलो उपलब्भती" ति।

अथ खो मिलिन्दो राजा एवमाह—"सुणन्तु मे, भोन्तो पञ्चसता योनका, असीतिसहस्सा च भिक्खू! अयं नागसेनो एवमाह—'न हेत्थ पुग्गलो उपलब्भती' ति। कल्लं नु खो तदभिनन्दितुं" ति? अथ खो मिलिन्दो राजा आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच—"सचे, भन्ते नागसेन, पुग्गलो नूपलब्भति, को चरहि तुम्हाकं चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारं देति? को तं परिभुञ्जति? को सीलं रक्खति? को भावनमनुयुञ्जति? को मग्गफलनिब्बानानि

---

२. मिलिन्दप्रश्न

(क) लक्षणप्रश्न

१. महावर्ग

१. पुद्गलप्रश्नमीमांसा— १. तब राजा मिलिन्द आयुष्मान् नागसेन के पास गया और उन्हें प्रणाम तथा अभिवादन करने के बाद, एक ओर बैठ गया। आयुष्मान् नागसेन ने भी उत्तर में राजा का अभिनन्दन किया। उससे राजा के चित्त को सान्त्वना मिली।

तब, राजा मिलिन्द ने नागसेन से पूछा—"भन्ते! आप किस नाम से जाने जाते हैं, आपका शुभ नाम?" "महाराज! 'नागसेन' नाम से मैं जाना जाता हूँ और मेरे सब्रह्मचारी (गुरुभाई) भी मुझे इसी नाम से पुकारते हैं। महाराज! यद्यपि माता-पिता नागसेन, शूरसेन, वीरसेन या सिंहसेन—ऐसा कुछ नाम दे देते हैं, किन्तु ये सभी केवल व्यवहार करने के लिये संज्ञामात्र हैं, क्योंकि यथार्थ में ऐसा कोई एक पुद्गल (आत्मा) नहीं है।"

तब, राजा मिलिन्द बोला—'मेरे पाँच सौ यवन और अस्सी हजार भिक्षुओ! आप लोग सुनें! आयुष्मान् नागसेन का कहना है—'यथार्थ में कोई एक पुद्गल नहीं है।'—क्या यह बात मानने योग्य है?" और फिर नागसेन से पूछा—"भन्ते नागसेन! यदि कोई एक पुद्गल नहीं है तो कौन आप को चीवर (वस्त्र), भिक्षा (पिण्डपात), शयनासन (वासस्थान) और ग्लानप्रत्यय (औषध) देता है? कौन उसका भोग

सच्छिकरोति ? को पाणं हनति ? को अदिन्नं आदियति ? को कामेसु मिच्छाचारं चरति ? को मुसा भणति ? को मज्जं पिवति ? को पञ्चानन्तरियकम्मं करोति ? तस्मा नत्थि कुसलं, नत्थि अकुसलं, नत्थि कुसलाकुसलानं कम्मानं कत्ता वा कारेता वा, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको। सचे, भन्ते नागसेन, यो तुम्हे मारेति, नत्थि तस्सापि पाणातिपातो। तुम्हाकं पि, भन्ते नागसेन, नत्थि आचरियो, नत्थि उपज्झायो, नत्थि उपसम्पदा। 'नागसेनो ति मं, महाराज, सब्रह्मचारी समुदाचरन्ती' ति यं वदेसि, कतमो एत्थ नागसेनो''?

''किन्नु खो, भन्ते, केसा नागसेनो'' ति? ''न हि, महाराजा'' ति। ''लोमा नागसेनो'' ति? ''न हि, महाराजा'' ति।

''नखा.... दन्ता.... तचो.... मंसं.... न्हारु.... अट्ठि.... अट्ठिमिञ्जं.... वक्कं.... हदयं.... यकनं.... किलोमकं.... पिहकं.... पप्फासं.... अन्तं.... अन्तगुणं.... उदरियं.... करीसं.... पित्तं.... सेम्हं.... पुब्बो.... लोहितं.... सेदो.... मेदो.... अस्सु.... वसा.... खेळो.... सिङ्घाणिका.... लसिका.... मुत्तं.... मत्थके मत्थलुङ्गं नागसेनो'' ति? ''न हि, महाराजा'' ति। ''किन्नु खो, भन्ते, रूपं नागसेनो'' ति? ''न हि, महाराजा'' ति। ''वेदना नागसेनो'' ति? ''न हि, महाराजा'' ति। ''सञ्ञा नागसेनो'' ति? ''न हि, महाराजा' ति। ''सङ्खारा नागसेनो'' ति? ''न हि, महाराजा'' ति। ''विञ्ञाणं नागसेनो'' ति? ''न हि, महाराजा'' ति। ''किं पन, भन्ते, रूपवेदनासञ्ञासङ्खारविञ्ञाणं नागसेनो'' ति?''न हि, महाराजा'' ति।''किं पन, भन्ते, अञ्ञत्र रूपवेदनासञ्ञासङ्खारविञ्ञाणं नागसेनो'' ति?''न हि, महाराजा'' ति। ''तमहं, भन्ते, पुच्छन्तो पुच्छन्तो न पस्सामि नागसेनं। नागसेनसद्दो येव नु खो, भन्ते,

---

करता है? कौन शील की रक्षा करता है? कौन ध्यान–भावना का अभ्यास करता है? कौन आर्यमार्ग (अष्टाङ्गिक मार्ग) के फल (निर्वाण) का साक्षात्कार करता है? कौन प्राणातिपात (हिंसा) करता है? कौन अदत्तादान (चोरी) करता है? कौन मिथ्या भोगों में अनुरक्त होता है? कौन मिथ्या भाषण करता है? कौन मद्य पीता है? कौन इन पाँच अन्तरायकारक (१. मातृवध, २. पितृवध, ३. अर्हत्–वध, ४. बुद्धशरीर से रक्त बहाना, ५. सङ्घ में फूट पैदा करना) कर्मों को करता है? तब तो न पाप है, न पुण्य और न पाप और पुण्य कर्मों का कोई करने वाला है और न कराने वाला; न पाप और पुण्य कर्मों के कोई फल होते हैं? भन्ते नागसेन! यदि आपको कोई मार डाले तो किसी का मारना नहीं हुआ। भन्ते नागसेन! तब आपके कोई आचार्य भी नहीं हुए, उपाध्याय भी नहीं हुए और न आपकी उपसम्पदा हुई! आप कहते हैं कि आपके सब्रह्मचारी आपको 'नागसेन' नाम से पुकारते हैं; तो यह नागसेन क्या है?

"भन्ते! ये केश नागसेन हैं?" "नहीं, महाराज!" "ये रोएँ नागसेन हैं?" "नहीं, महाराज!"

"ये नख, दाँत, चमड़ा, मांस, स्नायु, हड्डी, मज्जा, वृक्क, हृदय, यकृत, क्लोमक, प्लीहा(=तिल्ली), फुप्फुस, बड़ी आँत, पतली आँत, पेट, मल, पित्त, कफ, पीब, लोहू, पसीना, मेद, आँसू, चर्बी, लार, सिणक, लसीका, मस्तिष्क या मूत्र नागसेन है?" "नहीं, महाराज!" "भन्ते! तब क्या आपका रूप नागसेन है?" "नहीं, महाराज!" "क्या आपकी वेदनाएँ नागसेन हैं?" "नहीं, महाराज!" "आपकी संज्ञा नागसेन है?" "नहीं, महाराज!" "आपके संस्कार नागसेन हैं?" "नहीं, महाराज!" "आपका विज्ञान नागसेन है?" "नहीं, महाराज!" "भन्ते! क्या रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान सभी एक साथ नागसेन है?" "नहीं, महाराज!" "भन्ते! तो क्या इन रूपादि से भिन्न कोई नागसेन हैं?" "नहीं,

नागसेनो'' ति? ''न हि, महाराजा'' ति। ''को पनेत्थ नागसेनो? अलिकं त्वं, भन्ते, भाससि मुसावादं, नत्थि नागसेनो'' ति?

अथ खो आयस्मा नागसेनो मिलिन्दं राजानं एतदवोच—''त्वं खोसि, महाराज, खत्तियसुखुमालो अच्चन्तसुखुमालो। तस्स ते, महाराज, मज्झन्हिकसमयं तत्ताय भूमिया उण्हाय वालिकाय खराय सक्खरकथलिकाय मद्दित्वा पादेनागच्छन्तस्स पादा रुज्जन्ति, कायो किलमति, चित्तं उपहञ्ञति, दुक्खसहगतं कायविञ्ञाणं उप्पज्जति। किन्नु खो त्वं पादेनागतोसि, उदाहु वाहनेना'' ति?

''नाहं भन्ते, पादेनागच्छामि। रथेनाहं आगतोस्मी'' ति। ''सचे त्वं, महाराज, रथेनागतोसि, रथं मे आरोचेहि। किन्नु खो, महाराज, ईसा रथो'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''अक्खो रथो'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''चक्कानि रथो'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''रथपञ्जरं रथो'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''रथदण्डको रथो'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''युगं रथो'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''रस्मियो रथो'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''पतोदलट्ठि रथो'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''किन्नु खो, महाराज, ईसाअक्खचक्करथपञ्जररथदण्डयुगरस्मिपतोदा रथो'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''किं पन, महाराज, अञ्ञत्र ईसाअक्खचक्करथपञ्जररथदण्डयुगरस्मिपतोदा रथो'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति।

''तमहं, महाराज, पुच्छन्तो पुच्छन्तो न पस्सामि रथं। रथसद्दो येव नु खो, महाराज, रथो'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''को पनेत्थ रथो? अलिकं त्वं, महाराज, भाससि मुसावादं, नत्थि रथो। त्वंसि, महाराज सकलजम्बुदीपे अग्गराजा। कस्स पन त्वं भायित्वा मुसावादं भाससि? सुणन्तु मे, भोन्तो पञ्चसता योनका, असीतिसहस्सा च भिक्खू! अयं मिलिन्दो राजा

महाराज!" "भन्ते! मैं आपसे पूछते–पूछते थक गया, किन्तु 'नागसेन' क्या है—इसका पता नहीं लगा। तो क्या 'नागसेन' केवल शब्दमात्र है?" "नहीं, महाराज!" "अन्ततः नागसेन है कौन? भन्ते! आप झूठ बोलते हैं कि नागसेन कोई नहीं है।"

तब, आयुष्मान् नागसेन ने राजा मिलिन्द से कहा—"महाराज! आप क्षत्रिय बहुत ही सुकुमार होते हैं। इस दोपहर की तपी और गर्म बालू तथा कंकड़ों से भरी भूमि पर पैदल चल कर आने से आपके पैर दुख रहे होंगे, शरीर थक गया होगा, मन को कुछ भी अच्छा नहीं लगता होगा और अत्यधिक शारीरिक पीड़ा हो रही होगी? क्या आप पैदल चल कर यहाँ आये या किसी यान (सवारी) पर?"

"भन्ते! मैं पैदल नहीं, किन्तु रथ पर आया।" "महाराज! यदि आप रथ पर आये तो मुझे बतावें कि आपका रथ कहाँ है? महाराज! क्या ईषा (दण्ड) रथ है?" "नहीं, भन्ते!" "क्या अक्ष रथ है?" "नहीं, भन्ते!" "क्या चक्के रथ है?" "नहीं, भन्ते!" "क्या रथ की रस्सियाँ रथ है?" "नहीं, भन्ते!" "क्या लगाम रथ है?" "नहीं, भन्ते!" "क्या चाबुक रथ है?" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! ईषा इत्यादि सभी क्या एक साथ रथ हैं?" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! क्या ईषा इत्यादि के परे कहीं रथ हैं?" "नहीं, भन्ते!"

"महाराज! आपसे पूछते–पूछते मैं तो थक गया, किन्तु यह पता नहीं लगा कि रथ कहाँ है! क्या रथ केवल एक शब्दमात्र है?" "नहीं, भन्ते!" "अन्ततः यह रथ है क्या? महाराज आप झूठ बोलते हैं कि रथ नहीं है! महाराज! सारे जम्बूद्वीप में आप सब से बड़े राजा हैं; भला किस से डर कर आप

एवमाह—'रथेनाहं आगतोस्मी' ति। 'सचे त्वं, महाराज, रथेनागतोसि, रथं मे आरोचेही' ति वुत्तो समानो रथं न सम्पादेति। कल्लं नु खो तदभिनन्दितुं'' ति?

एवं वुत्ते, पञ्चसता योनका आयस्मतो नागसेनस्स साधुकारं दत्वा मिलिन्दं राजानं एतदवोचुं-''इदानि खो, त्वं, महाराज, सक्कोन्तो भासस्सू'' ति।

अथ खो मिलिन्दो राजा आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच— ''नाहं, भन्ते नागसेन, मुसा भणामि। ईसं च पटिच्च, चक्कानि च पटिच्च, रथपञ्जरं च पटिच्च, रथदण्डकं च पटिच्च 'रथो' ति सङ्खा समञ्ञा पञ्ञत्ति वोहारो नाममत्तं पवत्तती'' ति।

''साधु खो त्वं, महाराज, रथं जानासि। एवमेव खो, महाराज, मय्हं पि केसे च पटिच्च, लोमे च पटिच्च.... मत्थके मत्थलुङ्गं च पटिच्च, वेदनं च पटिच्च, सञ्ञं च पटिच्च, सङ्खारे च पटिच्च, विञ्ञाणं च पटिच्च, 'नागसेनो' ति सङ्खा समञ्ञा पञ्ञत्ति वोहारो नाममत्तं। परमत्थतो पनेत्थ पुग्गलो नूपलब्भति। भासितं पेतं, महाराज, वजिराय भिक्खुनिया भगवतो सम्मुखा-

'यथा हि अङ्गसम्भारा, होति सद्दो रथो इति।
एवं खन्धेसु सन्तेसु, होति सत्तो ति सम्मुति' '' ति॥ *(सं. नि. ५/१०/६)*

''अच्छरियं, भन्ते नागसेन, अब्भुतं भन्ते नागसेन! अतिचित्रानि पञ्हपटिभानानि विसज्जितानि। यदि बुद्धो तिट्ठेय्य साधुकारं ददेय्य—'साधु साधु, नागसेन, अतिचित्रानि पञ्हपटिभानानि विसज्जितानी' '' ति।

२. वस्सगणनपञ्हो

२. ''कतिवस्सो सि त्वं, भन्ते नागसेना'' ति? ''सत्तवस्सो हं, महाराजा'' ति। ''के ते, भन्ते, सत्त? त्वं वा सत्त, गणना वा सत्ता'' ति?

झूठ बोलते हैं? पाँच सौ यवनों और मेरे अस्सी हजार भिक्षुओ! आप लोग सुनें! राजा मिलिन्द ने कहा— 'मैं रथ पर यहाँ आया' ; किन्तु मेरे पूछने पर कि 'महाराज! आप रथ पर आये तो मुझे बतायें कि रथ कहाँ है?'— ये मुझे कुछ नहीं बता पाते। क्या इनकी बातें मानी जा सकती हैं?''

इस पर उन पाँच सौ यवनों ने आयुष्मान् नागसेन को साधुकार देकर राजा मिलिन्द से कहा— ''महाराज! यदि आप उत्तर दे सकें तो दें।''

तब, राजा मिलिन्द ने आयुष्मान् नागसेन से कहा—''भन्ते नागसेन! मैं झूठ नहीं बोलता। ईषा इत्यादि रथ के अवयवों के आधार पर केवल व्यवहार के लिये 'रथ' ऐसा एक नाम कहा जाता है। ''

''महाराज! बहुत ठीक, आपने जान लिया कि रथ क्या है! इसी तरह मेरे केश इत्यादि के आधार पर केवल व्यवहार के लिये 'नागसेन' ऐसा एक नाम कहा जाता है। किन्तु, परमार्थ में 'नागसेन' ऐसा कोई एक पुद्गल विद्यमान नहीं है। भिक्षुणी वज्रा ने भगवान् के सामने कहा था—

'जैसे अवयवों के आधार पर 'रथ' संज्ञा होती है, उसी तरह स्कन्धों के होने से एक सत्त्व (=जीव) समझा जाता है।'

''भन्ते नागसेन! यह तो बहुत आश्चर्य हुआ! बहुत अद्भुत हुआ!! इस जटिल प्रश्न को आपने बड़ी कुशलता से सुलझा दिया। यदि इस समय भगवान् बुद्ध स्वयं होते तो वे भी अवश्य साधुवाद देते— 'साधु, साधु नागसेन! तुम ने इस जटिल प्रश्न को बड़ी कुशलता के साथ सुलझा दिया'।''

तेन खो पन समयेन मिलिन्दस्स रञ्ञो सब्बाभरणपटिमण्डितस्स अलङ्कतपटियत्तस्स पथवियं छाया दिस्सति, उदकमणिके च छाया दिस्सति। अथ खो आयस्मा नागसेनो मिलिन्दं राजानं एतदवोच— "अयं ते, महाराज, छाया पथवियं उदकमणिके च दिस्सति। किं पन, महाराज, त्वं वा राजा, छाया वा राजा" ति? "अहं, भन्ते नागसेन, राजा, नायं छाया राजा। मं पन निस्साय छाया पवत्तती" ति। "एवमेव खो, महाराज, वस्सानं गणना सत्त। न पनाहं सत्त। मं पन निस्साय सत्त पवत्तति छायूपमं, महाराजा" ति। "अच्छरियं, भन्ते नागसेन, अब्भुतं, भन्ते नागसेन! अतिचित्रानि पञ्हपटिभानानि विसज्जितानी" ति।

३. वीमंसनपञ्हो

३. राजा आह—"भन्ते नागसेन, सल्लपिस्ससि मया सद्धिं" ति? "सचे त्वं, महाराज, पण्डितवादं सल्लपिस्ससि, सल्लपिस्सामि; सचे पन राजवादं सल्लपिस्ससि, न सल्लपिस्सामी" ति। "कथं, भन्ते नागसेन, पण्डिता सल्लपन्ती" ति? "पण्डितानं खो, महाराज, सल्लापे आवेठनं पि कयिरति, निब्बेठनं पि कयिरति, निग्गहो पि कयिरति, परिकम्मं पि कयिरति, विस्सासोपि कयिरति, पटिविस्सासो पि कयिरति। न च तेन पण्डिता कुप्पन्ति। एवं खो, महाराज, पण्डिता सल्लपन्ती" ति। "कथं पन, भन्ते, राजानो सल्लपन्ती" ति? "राजानो खो, महाराज, सल्लापे एकं वत्थुं पटिजानन्ति। यो तं वत्थुं विलोमेति, तस्स दण्डं आणापेन्ति—'इमस्स दण्डं पणेथा' ति। एवं खो, महाराज, सल्लपन्ती" ति।

---

२. आयुर्विषयक प्रश्न— २. "भन्ते नागसेन! आप कितने वर्ष के हैं?" "महाराज! मैं सात वर्ष (जन्म से नहीं, किन्तु भिक्षु होने के बाद से) का हूँ।" "भन्ते! यहाँ सात क्या है? क्या आप सात हैं या केवल गणना सात है?"

उस समय, सभी आभरणों से युक्त राजा मिलिन्द की छाया पृथ्वी पर पड़ रही थी और जलपात्र में भी प्रतिबिम्बित हो रही थी। उसे दिखा कर आयुष्मान् नागसेन ने पूछा—"महाराज! यह आपकी छाया पृथ्वी पर पड़ रही है और जलपात्र में प्रतिबिम्बित हो रही है। तो महाराज! क्या आप राजा हैं या छाया राजा है?" "भन्ते नागसेन! मैं राजा हूँ, यह छाया नहीं। किंतु छाया मेरे ही कारण पड़ रही है।" "महाराज! इस तरह, वर्षों की गिनती सात है, मैं सात नहीं; किन्तु मेरे कारण ही यह सात (वर्षों की) गिनती हुई, ठीक आपकी छाया की तरह।" "भन्ते नागसेन! आश्चर्य है! अद्भुत है!! आपने इस जटिल प्रश्न को भी अत्यधिक सरलता से सुलझा दिया।

३. शास्त्रचर्चापद्धतिनिर्णय— ३. राजा बोला—"भन्ते नागसेन! क्या आप मेरे साथ शास्त्रार्थ करेंगे?" "महाराज! यदि आप पण्डितों (पण्डितवाद) की तरह शास्त्रार्थ करेंगे तो अवश्य करूँगा; और यदि राजाओं (राजवाद) की तरह शास्त्रार्थ करेंगे तो नहीं करूँगा।" "भन्ते नागसेन! किस तरह पण्डित लोग शास्त्रार्थ करते हैं?" "महाराज! पण्डित शास्त्रार्थ में एक दूसरे को तर्कों से लपेट लेता है, एक दूसरे के निग्रह खोल देता है, एक दूसरे को तर्कों से पकड़ लेता है, एक दूसरे की पकड़ से छूट जाता है। एक दूसरे के सामने तर्क रखता है, दूसरा उसका खण्डन कर देता है। किन्तु, यह सब होने पर भी कोई क्रोध नहीं करता। महाराज! इस तरह पण्डित लोग शास्त्रार्थ करते है" "भन्ते! राजा लोग कैसे शास्त्रार्थ करते हैं?" "महाराज! राजाओं के शास्त्रार्थ में यदि कोई राजा का खण्डन करता है तो उसे तत्काल दण्ड दिया जाता है—इसे ऐसा दण्ड दो। महाराज! इसी तरह राजा लोग शास्त्रार्थ करते हैं।" "भन्ते! मैं पण्डितों की तरह शास्त्रार्थ करूँगा, राजाओं की तरह नहीं। आप विश्वासपूर्वक शास्त्रार्थ करें; जैसे

"पण्डितवादाहं, भन्ते, सल्लपिस्सामि, नो राजवादं; विस्सत्थो भदन्तो सल्लपितुं। यथा भिक्खुना वा सामणेरेन वा उपासकेन वा आरामिकेन वा सद्धिं सल्लपितुं, एवं विस्सत्थो भदन्तो सल्लपितु, मा भायतू" ति। "सुट्ठु, महाराजा" ति थेरो अब्भनुमोदि।

राजा आह—"भन्ते नागसेन, पुच्छिस्सामी" ति। "पुच्छ, महाराजा" ति। "पुच्छितोसि मे, भन्ते" ति। "विसज्जितं, महाराजा" ति। "किं पन, भन्ते, तया विसज्जितं" ति? "किं पन, महाराज, तया पुच्छितं" ति!

४. अनन्तकायपञ्हो

४. अथ खो मिलिन्दस्स रञ्ञो एतदहोसि—"पण्डितो खो अयं भिक्खु, पटिबलो मया सद्धिं सल्लपितुं। बहुकानि च मे ठानानि पुच्छितब्बानि भविस्सन्ति। याव अपुच्छितानि येव तानि ठानानि भविस्सन्ति। अथ सुरियो अत्थं गमिस्सति, यन्नूनाहं स्वे अन्तेपुरे सल्लपेय्यं" ति। अथ खो राजा देवमन्तियं एतदवोच—"तेन हि त्वं, देवमन्तिय, भदन्तस्स आरोचेय्यासि—'स्वे अन्तेपुरे रञ्ञा सद्धिं सल्लापो भविस्सती' " ति। इदं वत्वा मिलिन्दो राजा उट्ठायासना थेरं नागसेनं आपुच्छित्वा रथं अभिरूहित्वा 'नागसेनो, नागसेनो' ति सज्झायं करोन्तो पक्कामि। अथ खो देवमन्तियो आयस्मन्तं एतदवोच—"राजा, भन्ते, मिलिन्दो एवमाह—'स्वे अन्तेपुरे रञ्ञा सद्धिं सल्लापो भविस्सती" ति। "सुट्ठु" ति थेरो अब्भनुमोदि।

अथ खो तस्सा रत्तिया अच्चयेन देवमन्तियो च अनन्तकायो च मङ्कुरो च सब्बदिन्नो च येन मिलिन्दो राजा तेनुपसङ्कमिंसु। उपसङ्कमित्वा राजानं मिलिन्दं एतदवोचुं—"आगच्छतु, महाराज, भदन्तो नागसेनो" ति? "आम, आगच्छतू" ति। "कित्तकेहि भिक्खूहि सद्धिं आगच्छतू" ति? "यत्तके भिक्खू इच्छति तत्तकेहि भिक्खूहि सद्धिं आगच्छतू" ति।

आप किसी भिक्षु के साथ या श्रामणेर के साथ या उपासक के साथ या आराम (आश्रम) में रहने वाले किसी के साथ बातें करते हैं, उसी तरह पूरे विश्वास से मेरे साथ शास्त्रार्थ करें, डरें नहीं।" "बहुत अच्छा" कहकर स्थविर ने स्वीकार किया।

राजा बोला—"भन्ते! मैं पूछता हूँ!" "महाराज पूछें।" "भन्ते! मैंने तो पूछ लिया।" "महाराज! तो मैंने उसका उत्तर भी दे दिया।" "भन्ते! आपने क्या उत्तर दिया?" "महाराज! आपने क्या पूछा!"

४. अनन्तकायप्रश्न— ४. तब राजा मिलिन्द के मन में यह बात आयी—"अरे! यह भिक्षु तो पण्डित है, मुझसे शास्त्रार्थ कर सकता है। मुझे बहुत कुछ पूछना है; किन्तु शीघ्र ही सूरज डूबने वाला है। अच्छा हो, यदि कल मेरे राजमहल में ही शास्त्रार्थ हो।" यह विचार कर राजा मिलिन्द ने देवमन्त्री से कहा—"देवमन्त्रिन्! अब आप भन्ते से कह दें कि कल राजभवन में ही शास्त्रार्थ होगा।" यह कह राजा मिलिन्द आसन से उठ कर, स्थविर नागसेन से आज्ञा ले कर, रथ पर सवार हो, मन में नागसेन के ही विषय में सोचते हुए चला गया। तब, देवमन्त्री ने आयुष्मान् नागसेन से कहा—"भन्ते! राजा मिलिन्द की इच्छा है कि कल राज–भवन में ही शास्त्रचर्चा होगी।" "बहुत अच्छा"— कह स्थविर ने स्वीकार किया।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही देवमन्त्री, अनन्तकाय, मङ्कुर और सब्बदिन्न राजा मिलिन्द के पास गये और बोले— "महाराज! क्या आज भदन्त नागसेन आवें?" "हाँ आवें।" "कितने भिक्षुओं के साथ?" "जितने चाहे उतनों के साथ आवें।"

अथ खो सब्बदिन्नो आह—"आगच्छतु, महाराज, दसहि भिक्खूहि सद्धिं" ति? दुतियं पि खो राजा आह—"यत्तके भिक्खू इच्छति तत्तकेहि भिक्खूहि सद्धिं आगच्छतू" ति। दुतियं पि खो सब्बदिन्नो आह—"आगच्छतु, महाराज, दसहि भिक्खूहि सद्धिं" ति? ततियं पि खो राजा आह— "यत्तके भिक्खू इच्छति तत्तकेहि भिक्खूहि सद्धिं आगच्छतू" ति। ततियं पि खो सब्बदिन्नो आह— "आगच्छतु, महाराज, दसहि भिक्खूहि सद्धिं" ति। "सब्बो पनायं सक्कारो पटियादितो। अहं भणामि—'यत्तके भिक्खू इच्छति, तत्तकेहि भिक्खूहि सद्धिं आगच्छतू' ति। अयं, भणे, सब्बदिन्नो अञ्ञथा भणति। किन्नु मयं नप्पटिबला भिक्खूनं भोजनं दातुं" ति! एवं वुत्ते सब्बदिन्नो मङ्कु अहोसि।

अथ खो देवमन्तियो च अनन्तकायो च मङ्कुरो च येनायस्मा नागसेनो तेनुपसङ्कमिंसु। उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोचुं—"राजा, भन्ते, मिलिन्दो एवमाह—'यत्तके भिक्खू इच्छति, तत्तकेहि भिक्खूहि सद्धिं आगच्छतू" ति।

अथ खो आयस्मा नागसेनो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय असीतिया भिक्खुसहस्सेहि सद्धिं सागलं पाविसि।

अथ खो अनन्तकायो आयस्मन्तं नागसेनं निस्साय गच्छन्तो आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच— "भन्ते नागसेन, यं पनेतं ब्रूसि—'नागसेनो' ति, कतमो एत्थ नागसेनो" ति? थेरो आह— "को पनेत्थ 'नागसेनो' ति मञ्ञसी" ति? "यो सो, भन्ते, अब्भन्तरे वातो जीवो पविसति च निक्खमति च सो 'नागसेनो' ति मञ्ञामी" ति। "यदि पनेसो वातो निक्खमित्वा नप्पविसेय्य, पविसित्वा न निक्खमेय्य, जीवेय्य नु खो सो पुरिसो" ति? "न हि, भन्ते" ति। "ये पनिमे सङ्खधमका सङ्खं धमेन्ति, तेसं वातो पुन पविसती" ति? "न हि,

---

तब, सब्बदिन्न बोला— "महाराज! अच्छा हो, यदि दस भिक्षुओं के साथ आवें।" दूसरी बार भी राजा ने कहा— "जितने चाहें उतनों के साथ आवें।" फिर भी सब्बदिन्न बोला— "महाराज! अच्छा हो, यदि दस भिक्षुओं के साथ ही आवें।" तीसरी बार भी राजा ने कहा— "जितने चाहें उतनों के साथ आवें।" फिर भी सब्बदिन्न बोला— "महाराज! अच्छा हो, यदि दस भिक्षुओं के साथ आवें।" राजा ने कहा—"उनके स्वागत के लिये सभी व्यवस्था कर ली गयी है। मैं कहता हूँ—जितने चाहें उतने भिक्षुओं के साथ वे पधारे। सब्बदिन्न 'दस' ही क्यों कहते हैं ? क्या हम लोग भिक्षुओं को भोजन नहीं दे सकते?" तब, सब्बदिन्न चुप हो गये।

तब, देवमन्त्री, अनन्तकाय, मङ्कुर आयुष्मान् नागसेन के पास जाकर बोले—"भन्ते! राजा मिलिन्द ने कहा है कि आप जितने भिक्षुओं को चाहें उतनों को साथ लेकर पधारें।"

तब, आयुष्मान् नागसेन ने दूसरे दिन प्रातःकाल ही वस्त्र पहन और पात्र चीवर ले अस्सी हजार भिक्षुओं के साथ सागलनगर में प्रवेश किया।

उस समय आयुष्मान् के साथ चलते हुए अनन्तकाय ने पूछा—"भन्ते! जब मैं 'नागसेन' ऐसा कहता हूँ तो यह 'नागसेन' है क्या?" स्थविर बोले—"आप 'नागसेन' से क्या समझते हैं?" "भन्ते! जो जीव-वायु भीतर-बाहर जाती आती है, उसी को मैं 'नागसेन' समझता हूँ।" "यदि यह जीव वायु भीतर जा कर बाहर न आवे या बाहर आकर भीतर न जाय तो वह पुरुष जीयेगा या नहीं?" "नहीं, भन्ते!" "जो ये सङ्ख बजाने वाले सङ्ख बजाते हैं उनकी फूँक (वायु) क्या फिर भी उनके भीतर जाती है?"

भन्ते'' ति। ''ये पनिमे वंसधमका वंसं धमेन्ति, तेसं वातो पुन पविसती'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''ये पनिमे सिङ्गधमका सिङ्गं धमेन्ति, तेसं वातो पुन पविसती'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''अथ किस्स पन ते न मरन्ती'' ति? ''नाहं पटिबलो तया वादिना सद्धिं सल्लपितुं! साधु, भन्ते, अत्थं जप्पेही'' ति। ''नेसो जीवो। अस्सासपस्सासा नामेते कायसङ्खारा'' ति। थेरो अभिधम्मकथं कथेसि। अथ अनन्तकायो उपासकत्तं पटिवेदेसी'' ति।

५. पब्बज्जपञ्हो

५. अथ खो आयस्मा नागसेनो येन मिलिन्दस्स रञ्ञो निवेसनं तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। अथ खो मिलिन्दो राजा आयस्मन्तं नागसेनं सपरिसं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेत्वा सम्पवारेत्वा एकमेकं भिक्खुं एकमेकेन दुस्सयुगेन अच्छादेत्वा आयस्मन्तं नागसेनं तिचीवरेन अच्छादेत्वा आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच— ''भन्ते नागसेन, दसहि भिक्खूहि सद्धिं इध निसीदथ, अवसेसा गच्छन्तू'' ति।

अथ खो मिलिन्दो राजा आयस्मन्तं नागसेनं भुत्ताविं ओनीतपत्तपाणिं विदित्वा अञ्ञतरं नीचं आसनं गहेत्वा एकमन्तं निसिन्नो खो मिलिन्दो राजा आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच— ''भन्ते नागसेन, किम्हि होति कथासल्लापो'' ति? ''अत्थेन मयं, महाराज, अत्थिका। अत्थे होतु कथासल्लापो'' ति। राजा आह— ''किमत्थिया, भन्ते नागसेन, तुम्हाकं पब्बज्जा, को च तुम्हाकं परमत्थो'' ति? थेरो आह— ''किं ति, महाराज, 'इदं दुक्खं निरुज्झेय्य, अञ्ञं च दुक्खं न उप्पज्जेय्या' ति एतदत्था, महाराज, अम्हाकं पब्बज्जा। अनुपादा परिनिब्बानं खो पन अम्हाकं परमत्थो'' ति।

''किं पन, भन्ते नागसेन, सब्बे एतदत्थाय पब्बजन्ती'' ति? ''न हि, महाराज।

''नहीं, भन्ते!'' ''जो ये बँसी बजाने वाले बँसी बजाते हैं, उनकी फूँक (वायु) क्या फिर भी उनके भीतर जाती है?'' ''नहीं, भन्ते!'' ''जो ये तुरही बजाने वाले तुरही बजाते हैं, उनकी फूँक क्या फिर उनके भीतर जाती है।'' ''नहीं, भन्ते!'' ''तब, वे मर क्यों नहीं जाते?'' ''आप के साथ मैं शास्त्रार्थ नहीं कर सकता, कृपया बतावें कि बात क्या है!'' स्थविर बोले—''यह जीव–वायु कोई चीज नहीं हैं। साँस लेना और छोड़ना तो केवल इस शरीर का धर्म है।'' स्थविर ने अभिधर्म के अनुकूल इस बात को समझाया। अनन्तकाय समझ गया और उपासक बन गया।

५. प्रवज्याविषयक प्रश्न— ५. तब, आयुष्मान् नागसेन राजा मिलिन्द के आवास पर गये और बिछे आसन पर बैठे। राजा मिलिन्द ने आयुष्मान् नागसेन और उनकी सम्पूर्ण मण्डली को अच्छे से अच्छा भोजन अपने हाथों से परोस कर खिलाया और प्रत्येक भिक्षु को एक–एक जोड़ा तथा आयुष्मान् नागसेन को तीन चीवर देकर वह बोला— ''भन्ते! दस भिक्षु आपके साथ ठहरे और बाकी लौट जाँय!''

तब, राजा मिलिन्द आयुष्मान् नागसेन के भोजन कर चुकने तथा पात्र से हाथ खींच लेने पर एक ओर नीचा आसन लेकर बैठ गया और बोला—''भन्ते! किस विषय पर कथा–संलाप (शास्त्रचर्चा) हो?'' ''महाराज! हम लोगों को केवल आवश्यक बातों से प्रयोजन है, अतः आवश्यक बातों पर ही कथा–संलाप हो।'' राजा बोला—''भन्ते! किसलिये आपकी प्रव्रज्या हुई है? आपका परम–उद्देश्य क्या है?'' स्थविर बोले—''महाराज! यह दुःख रुक जाय और नया दुःख उत्पन्न न हो—इसीलिये हमारी प्रव्रज्या हुई है। फिर जन्म ग्रहण न हो, ऐसा परम निर्वाण पाना हमारा परम–उद्देश्य है।''

केचि एतदत्थाय पब्बजन्ति, केचि राजाभिनीता पब्बजन्ति, केचि चोराभिनीता पब्बजन्ति, केचि इणट्टा पब्बजन्ति, केचि आजीवकत्थाय पब्बजन्ति। ये पन सम्मा पब्बजन्ति, ते एतदत्थाय पब्बजन्ती'' ति।

''त्वं पन, भन्ते, एतदत्थाय पब्बजितोसी'' ति? ''अहं खो, महाराज, दहरको सन्तो पब्बजितो। न जानामि 'इमस्स नामत्थाय पब्बजामी' ति। अपि च खो मे एवं अहोसि— 'पण्डिता इमे समणा सक्यपुत्तिया ते मं सिक्खापेस्सन्ती' ति। स्वाहं तेहि सिक्खापितो जानामि च पस्सामि च— 'इमस्स नामत्थाय पब्बज्जा' '' ति।

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

६. पटिसन्धिपञ्हो

६. राजा आह—''भन्ते नागसेन, अत्थि कोचि मतो न पटिसन्दहती'' ति? थेरो आह—''कोचि पटिसन्दहति, कोचि न पटिसन्दहती'' ति।

''को पटिसन्दहति, को न पटिसन्दहती'' ति? ''सकिलेसो, महाराज, पटिसन्दहति, निक्किलेसो न पटिसन्दहती'' ति। ''त्वं पन, भन्ते नागसेन, पटिसन्दहिस्ससी'' ति? ''सचे, महाराज, सउपादानो भविस्सामि पटिसन्दहिस्सामि। सचे अनुपादानो भविस्सामि, न पटिसन्दहिस्सामी'' ति।

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

७. योनिसोमनसिकारपञ्हो

७. राजा आह—''भन्ते नागसेन, यो न पटिसन्दहति ननु सो योनिसो मनसिकारेन न

"भन्ते नागसेन! क्या सभी लोग इसीलिये प्रव्रजित होते हैं?" "नहीं, महाराज! कुछ तो इसके लिये, प्रव्रजित होते हैं और कुछ राजा के भय से प्रव्रजित होते हैं, कुछ चोरों के डर से...., कुछ कर्जे के बोझ से...., कुछ केवल पेट पालने के लिये....। किन्तु जो उचित रीति से प्रव्रजित होते हैं, वे इसी निर्वाण के लिये प्रव्रजित होते हैं।"

"भन्ते! क्या आप इसी के लिये प्रव्रजित हुए?" "महाराज! मैं बहुत छोटी ही आयु में प्रव्रजित हुआ था, नहीं जानता था कि किस लिये प्रव्रजित हो रहा हूँ। मेरे मन में यह बात आयी थी—'ये बौद्ध भिक्षु बड़े पण्डित होते हैं, मुझे भी शिक्षा देंगे।' सो मैं अब उन लोगों से सीख कर जानता हूँ और देखता हूँ कि 'प्रव्रज्या का यही अर्थ है।' "

"भन्ते! आपने बहुत ठीक कहा"।

६. जन्म-मृत्युविषयकप्रश्न— ६. राजा बोला—"भन्ते नागसेन! क्या ऐसे भी कोई हैं, जो मरने के बाद फिर जन्म नहीं ग्रहण करते?" स्थविर बोले— "कुछ ऐसे हैं, जो जन्म ग्रहण करते हैं और कुछ ऐसे भी हैं, जो जन्म नहीं ग्रहण करते।" "कौन जन्म ग्रहण करते हैं और कौन नहीं?" "जिनमें क्लेश (चित्तमल) लगा है, वे जन्म ग्रहण करते हैं और जो क्लेशरहित हो गये हैं वे जन्म नहीं ग्रहण करते।" "भन्ते! आप जन्म ग्रहण करेंगे या नहीं?" "महाराज! यदि संसार की ओर आसक्ति लगी रहेगी तो जन्म ग्रहण करूँगा और यदि आसक्ति छूट जायगी तो नहीं करूँगा।"

"भन्ते! आपने बहुत ठीक कहा"।

७. विवेकज्ञानविषयकप्रश्न— ७. राजा बोला—"भन्ते नागसेन! जो जन्म नहीं ग्रहण करते, क्या वे

पटिसन्दहती" ति? "योनिसो च, महाराज, मनसिकारेन पञ्ञाय च अञ्ञेहि च कुसलेहि धम्मेही" ति। "ननु, भन्ते, योनिसो मनसिकारो येव पञ्ञा" ति? "न हि, महाराज! अञ्ञो मनसिकारो, अञ्ञा पञ्ञा। इमेसं खो, महाराज, अजेळक-गोण-महिंस-ओट्ठ-गद्रभानं पि मनसिकारो अत्थि, पञ्ञा पन तेसं नत्थी" ति।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

८. मनसिकारलक्खणपञ्हो

८. राजा आह—"किंलक्खणो, भन्ते नागसेन, मनसिकारो; किंलक्खणा पञ्ञा" ति? "ऊहनलक्खणो खो, महाराज, मनसिकारो; छेदनलक्खणा पञ्ञा" ति। "कथं ऊहनलक्खणो मनसिकारो, कथं छेदनलक्खणा पञ्ञा— ओपम्मं करोही" ति?

"जानासि त्वं, महाराज, यवलावके" ति? "आम, भन्ते, जानामी" ति। "कथं, महाराज, यवलावका यवं लुनन्ती" ति? "वामेन, भन्ते, हत्थेन यवकलापं गहेत्वा दक्खिणेन हत्थेन दात्तं गहेत्वा दात्तेन छिन्दन्ती" ति।

"यथा, महाराज, यवलावको वामेन हत्थेन यवकलापं गहेत्वा दक्खिणेन हत्थेन दात्तं गहेत्वा यवं छिन्दति; एवमेव खो, महाराज, योगावचरो मनसिकारेन मानसं गहेत्वा पञ्ञाय किलेसे छिन्दति। एवं खो, महाराज, ऊहनलक्खणो मनसिकारो, एवं छेदनलक्खणा पञ्ञा" ति।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

९. सीललक्खणपञ्हो

९. राजा आह—"भन्ते नागसेन, यं पनेतं ब्रूसि—'अञ्ञेहि च कुसलेहि धम्मेही'

विवेक–लाभ करने से जन्म नहीं ग्रहण करते?" "महाराज! विवेक–लाभ करने से, ज्ञान से और दूसरे पुण्य–धर्मों के करने से।" "भन्ते! विवेक–लाभ और ज्ञान, दोनों तो एक ही हैं न?" "नहीं, महाराज! विवेक दूसरी चीज है और ज्ञान दूसरी चीज। इन भेड़–बकरी, गाय–बैल, ऊँट तथा गदहों को विवेक तो हैं किन्तु ज्ञान नहीं है।"

"भन्ते! बहुत ठीक कहा।"

८. विवेक(मनस्कार)लक्षणप्रश्न— ८. राजा बोला—"भन्ते! विवेक और ज्ञान का लक्षण क्या है?" "महाराज! 'बोध हो जाना' विवेक का लक्षण है और 'काटने की शक्ति का होना' ज्ञान का लक्षण है।" "यह कैसे? कृपया उपमा देकर समझायें।"

"महाराज! आपने जौ की कटनी होते हुए देखा है?" "हाँ, भन्ते!" "लोग कैसे जौ की कटनी करते हैं?"

"भन्ते! जैसे बायें हाथ से जौ की बालों को पकड़ कर दाहिने हाथ से हँसिया लेकर काटते हैं; महाराज! उसी तरह योगी विवेक से अपने मन को पकड़ ज्ञानरूपी हँसिया से क्लेशों को काट डालता है। इसी भाव से मैंने कहा है— बोध होना विवेक का लक्षण है और 'काट डालना' ज्ञान का लक्षण है"।

"भन्ते! आपने ठीक कहा है।"

९. शीलादिलक्षणप्रश्न— ९. राजा बोला—"भन्ते! आपने जो अभी कहा, 'कुशल (पुण्य) धर्मों के करने

ति, कतमे ते कुसला धम्मा'' ति? ''सीलं, महाराज, सद्धा, विरियं, सति, समाधि—इमे ते कुसला धम्मा'' ति।

''किंलक्खणं, भन्ते, सीलं'' ति? ''पतिट्ठानलक्खणं, महाराज, सीलं सब्बेसं कुसलानं धम्मानं। इन्द्रिय-बल-बोज्झङ्ग-मग्गङ्ग-सतिपट्ठान-सम्मप्पधान-इद्धिपाद-झान-विमोक्ख-समाधि-समापत्तीनं सीलं पतिट्ठं। सीले पतिट्ठितो खो, महाराज, योगावचरो सीलं निस्साय सीले पतिट्ठाय पञ्चिन्द्रियानि भावेति—'सद्धिन्द्रियं, विरियिन्द्रियं, सतिन्द्रियं, समाधिन्द्रियं, पञ्ञिन्द्रियं' ति; सब्बे कुसला धम्मा न परिहायन्ती'' ति।

''ओपम्मं करोही'' ति।

''यथा, महाराज, ये केचि बीजगामभूतगामा वुड्ढिं विरूळ्हिं वेपुल्लं आपज्जन्ति, सब्बे

से' तो यह कुशल धर्म क्या है?'' ''महाराज! शील, श्रद्धा, वीर्य, स्मृति और समाधि—ये ही कुशल धर्म है।''

''भन्ते! शील का लक्षण क्या है?'' ''महाराज! आधार होना शील की पहचान है। [1]इन्द्रिय, [2]बल, [3]बोध्यङ्ग, [4]मार्ग, [5]स्मृतिप्रस्थान, [6]सम्यक्प्रधान, [7]ऋद्धिपाद, [8]ध्यान, [9]विमोक्ष, समाधि और

---

१. इन्द्रिय—इन्द्रिय पाँच हैं; जैसे (१) श्रद्धा, (२) वीर्य, (३) स्मृति, (४) समाधि और (५) प्रज्ञा।

२. बल— बल पाँच हैं, जैसे—(१) श्रद्धाबल, (२) वीर्यबल, (३) स्मृतिबल, (४) समाधिबल और (५) प्रज्ञाबल।

३. बोध्यङ्ग— बोध्यङ्ग सात हैं; जैसे- (१) स्मृति-सम्बोध्यङ्ग, (२) धर्मविचय-सम्बोध्यङ्ग, (३) वीर्य-सम्बोध्यङ्ग, (४) प्रीति-सम्बोध्यङ्ग, (५) प्रश्रब्धि-सम्बोध्यङ्ग, (६) समाधि-सम्बोध्यङ्ग और (७) उपेक्षा-सम्बोध्यङ्ग।

४. आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग— (१) सम्यग्दृष्टि, (२) सम्यक्-संकल्प, (३) सम्यक्-वाक्, (४) सम्यक्-कर्मान्त, (५) सम्यक्-आजीव, (६) सम्यक्-व्यायाम, (७) सम्यक्-स्मृति और (८) सम्यक्-समाधि।

५. स्मृति प्रस्थान— स्मृतिप्रस्थान चार हैं; जैसे— (१) काया में कायानुपश्यी, (२) वेदना में वेदनानुपश्यी, (३) चित्त में चित्तानुपश्यी और (४) धर्म में धर्मानुपश्यी होना।

६. सम्यक्-प्रधान— सम्यक्-प्रधान चार हैं; जैसे—(१) अनुत्पन्न अकुशल (पाप) को उत्पन्न न होने देने के लिये रुचि पैदा करना, प्रयास करना और चित्त का निग्रह करना; (२) उत्पन्न हो गये अकुशल (पाप) के विनाश के लिये....; (३) अनुत्पन्न कुशल (पुण्य) धर्मों की उत्पत्ति के लिये .... और (४) उत्पन्न कुशल-धर्मों की स्थिति और वृद्धि के लिये भावना पूर्ण कर रुचि उत्पन्न करना, प्रयास करना और चित्त का निग्रह करना।

७. ऋद्धिपाद— ऋद्धिपाद चार हैं— (१) छन्द-समाधि-प्रधान-संस्कारयुक्त; (२) वीर्य-समाधि-प्रधान-संस्कारयुक्त; (३) चित्त-समाधि-प्रधान-संस्कारयुक्त और (४) विमर्श-समाधि-प्रधान-संस्कारयुक्त।

८. ध्यान— ध्यान चार हैं। (१) प्रथम-ध्यान, (२) द्वितीय-ध्यान, (३) तृतीय-ध्यान और (४) चतुर्थ-ध्यान।

९. विमोक्ष— विमोक्ष आठ हैं; जैसे— (१) रूपी (रूपवाला) रूपों को देखते हैं; (२) अध्यात्म अरूपसंज्ञी बाहर रूपों को देखते हैं; (३) शुभ ही अधिमुक्त होते हैं; (४) सर्वथा रूप-संज्ञा का अतिक्रमण कर प्रतिहिंसा के विचार के लुप्त होने, नानात्व के विचार को मन में न करने से 'आकाश-अनन्त हैं' इस आकाश-आनन्त्यायन को प्राप्त हो विहरते हैं; (५) सर्वथा आकाश-आनन्त्यायतन का अतिक्रमण कर 'विज्ञान-अनन्त है' इस विज्ञान-आनन्त्य-आयतन को प्राप्त हो विहरते हैं; (६) सर्वथा विज्ञान-आनन्त्यायतन का अतिक्रमण कर 'कुछ नहीं है'—इस आकिञ्चन्य-आयतन को प्राप्त हो साधना करते हैं; (७) सर्वथा आकिञ्चन्यायतन का अतिक्रमण कर नैवसंज्ञा-नअसंज्ञा-आयतन (-जिस समाधि का आभास न चेतना ही कहा जा सकता है न अचेतना ही) को प्राप्त हो कर साधना करते हैं; (८) सर्वथा नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतन का अतिक्रमण कर प्रज्ञा-वेदित-निरोध को प्राप्त हो विहरते हैं।

ते पथवियं पतिट्ठाय वुड्ढिं विरुळ्हिं वेपुल्लं आपज्जन्ति; एवमेव खो, महाराज, योगावचरो सीलं निस्साय सीले पतिट्ठाय पञ्चिन्द्रियानि भावेति—सद्धिन्द्रियं, विरियिन्द्रियं, सतिन्द्रियं, समाधिन्द्रियं, पञ्ञिन्द्रियं'' ति। (१)

''भिय्यो ओपम्मं करोही'' ति।

''यथा, महाराज, ये केचि बलकरणीया कम्मन्ता कयिरन्ति, सब्बे ते पथविं निस्साय पथवियं पतिट्ठाय कयिरन्ति; एवमेव खो, महाराज, योगावचरो सीलं निस्साय सीले पतिट्ठाय पञ्चिन्द्रियानि भावेति—सद्धिन्द्रियं, विरियिन्द्रयं, सतिन्द्रियं, समाधिन्द्रियं, पञ्चिन्द्रियं'' ति। (२)

''भिय्यो ओपम्मं करोही'' ति।

''यथा, महाराज, नगरवड्ढकी नगरं मापेतुकामो पठमं नगरट्ठानं सोधापेत्वा खाणुकण्टकं अपकड्ढापेत्वा भूमिं समं कारापेत्वा ततो अपरभागे वीथिचतुक्कसिङ्घाटकादिपरिच्छेदेन विभजित्वा नगरं मापेति; एवमेव खो, महाराज, योगावचरो सीलं निस्साय सीले पतिट्ठाय पञ्चिन्द्रियानि भावेति—सद्धिन्द्रियं, विरियिन्द्रियं, सतिन्द्रियं, समाधिन्द्रियं, पञ्ञिन्द्रियं'' ति। (३)

''भिय्यो ओपम्मं करोही'' ति।

"समापत्ति आदि सभी अच्छे धर्मों का आधार शील ही है। महाराज! शील के आधार पर खड़े किये जाने पर कोई कुशल (अच्छा) धर्म नहीं डिगता।"

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज! जैसे जितने जीव और पौधे हैं सभी पृथ्वी के आधार से ही पैदा होते और बड़े होते हैं; इसी तरह योगी शील के ही आधार पर, और शील पर ही दृढ़ हो इन पाँच इन्द्रियों की भावना करता है—(१) श्रद्धेन्द्रिय, (२) वीर्येन्द्रिय, (३) स्मृतीन्द्रिय, (४) समाधीन्द्रिय और (५) प्रज्ञेन्द्रिय।" (१)

"कृपया फिर दूसरी उपमा देकर समझावें।"

"महाराज! जैसे जितने बल (ताकत) से किये जाने वाले कार्य हैं, वे सभी पृथ्वी के आधार पर और पृथ्वी पर ही खड़े होकर किये जाते हैं, उसी तरह योगी शील के आधार पर....।" (२)

"कृपया फिर तीसरी उपमा देकर समझावें।"

"महाराज! जैसे कुशल कारीगर कोई नगर बसाने के लिये पहले उस स्थान को साफ-सुथरा कर, झाड़ और काँटों को दूरकर, समतल बना कर, फिर उसके बाद सड़कें और चौराहों का मानचित्र खींचकर नगर बसाता है, उसी तरह योगी शील के आधार पर....।" (३)

"कृपया फिर चौथी उपमा देकर समझावें।"

---

१०. समापत्ति—समापत्ति आठ हैं; जैसे—

(१) प्रथम-ध्यान *(२) द्वितीय-ध्यान* *(३) तृतीय-ध्यान* *(४) चतुर्थ-ध्यान*	} रूपावचर (४)
(५) आकाश-आनन्त्यायतन *(६) विज्ञान-आनन्त्यायतन* *(७) आकिञ्चन्य-आयतन* *(८) नैवसंज्ञा-नासंज्ञा-आयतन*	} अरूपावचर (४)

"यथा, महाराज, लङ्घको सिप्पं दस्सेतुकामो पथविं खणापेत्वा सक्खरकथलं अपकड्ढापेत्वा भूमिं समं कारापेत्वा मुदुकाय भूमिया सिप्पं दस्सेति; एवमेव खो महाराज, योगावचरो सीलं निस्साय सीले पतिट्ठाय पञ्चिन्द्रियानि भावेति—सद्धिन्द्रियं, विरियिन्द्रियं, सतिन्द्रियं, समाधिन्द्रियं, पञ्ञिन्द्रियं" ति। (४)

"भासितं पेतं, महाराज, भगवता—

'सीले पतिट्ठाय नरो सपञ्ञो, चित्तं पञ्ञं च भावयं।
आतापी निपको भिक्खु, सो इमं विजटये जटं' ति॥ *(सं. नि. १/१४)*

'अयं पतिट्ठा धरणीव पाणिनं, इदं च मूलं कुसलाभिवड्ढिया।
मुखं चिदं सब्बजिनानुसासने, यो सीलक्खन्धो वरपातिमोक्खियो' " ति॥

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

१०. (क) सम्पसादनलक्खणसद्धापञ्हो

१०. राजा आह—"भन्ते नागसेन, किंलक्खणा सद्धा" ति? "सम्पसादनलक्खणा च, महाराज, सद्धा सम्पक्खन्दनलक्खणा चा" ति। "कथं, भन्ते, सम्पसादनलक्खणा सद्धा" ति? "सद्धा खो, महाराज, उप्पज्जमाना नीवरणे विक्खम्भेति। विनीवरणं चित्तं होति अच्छं विप्पसन्नं अनाविलं। एवं खो, महाराज, सम्पसादनलक्खणा सद्धा" ति।

"ओपम्मं करोही" ति।

"यथा, महाराज, राजा चक्कवत्ती चतुरङ्गिनिया सेनाय सद्धिं अद्धानमग्गप्पटिपन्नो परित्तं उदकं तरेय्य, तं उदकं हत्थीहि च अस्सेहि च रथेहि च पत्तीहि च खुभितं भवेय्य

"महाराज! जैसे कोई कलाकार पहले पृथ्वी खोद कर कंकड़–पत्थरों दूर हटवा कर भूमि को बराबर करवा कर मृदु की गयी भूमि पर अपनी कला दिखाता है, उसी तरह योगी शील के आधार पर....।" (४)

"महाराज! भगवान् ने भी कहा है–'ज्ञानी मनुष्य शील पर दृढ़ हो अपने चित्त को भावना से वश में करता है, संयमी और बुद्धिमान् भिक्षु ही इस (तृष्णा रूपी) जटा को साफ कर सकता है।'

'पृथ्वी की तरह यह लोगों के गुणों का आधार है, कुशल की अभिवृद्धि का यह मूल है, सभी बुद्धों के शासन का यह मुख है, मोक्ष के लिये शील ही उत्तम मार्ग है'।"

"भन्ते नागसेन! आपने बहुत ठीक कहा"।

१०. श्रद्धालक्षणप्रश्न– १०. राजा बोला–"भन्ते! श्रद्धा का क्या लक्षण है?" "महाराज! मन में प्रसन्नता और तीव्र आकांक्षा पैदा कर देना ही श्रद्धा का लक्षण है।" (क) भन्ते! मन में प्रसन्नता पैदा कर देना कैसे श्रद्धा का लक्षण है?" "महाराज! श्रद्धा पैदा होने पर वह मार्ग में आने वाली सभी बाधाओं को दूर करती है। बाधाओं से रहित चित्त स्वच्छ, प्रसन्न और निर्मल हो जाता है। महाराज! इसीलिये 'चित्त में प्रसन्नता पैदा कर देना' श्रद्धा का लक्षण है।"

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज! कल्पना करें–कोई चक्रवर्ती[१] राजा अपनी चतुरङ्गिणी सेना के साथ रास्ते में जाते हुए किसी छिछली नदी को पार करे। उन हाथी, घोड़ों, रथों और पैदल सिपाहियों से उस नदी का जल

---

१. *द्र०—दीघनिकाय—चक्कवत्तीसुत्त।*

आविलं लुळितं कललीभूतं। उत्तिण्णो च राजा चक्कवती मनुस्से आणापेय्य—'पानीयं, भणे, आहरथ, पिविस्सामी' ति। रञ्ञो च उदकप्पसादको मणि भवेय्य। 'एवं देवा' ति खो ते मनुस्सा रञ्ञो चक्कवत्तिस्स पटिस्सुत्वा तं उदकप्पसादकं मणिं उदके पक्खिपेय्युं। तस्मिं उदके पक्खित्तमत्ते सङ्खसेवालपणकं विगच्छेय्य, कद्दमो च सन्निसीदेय्य, अच्छं भवेय्य उदकं विप्पसन्नं अनाविलं। ततो रञ्ञो चक्कवत्तिस्स पानीयं उपनामेय्युं—'पिवतु, देव, पानीयं' ति। यथा, महाराज, उदकं, एवं चित्तं दट्ठब्बं। यथा ते मनुस्सा, एवं योगावचरो दट्ठब्बो। यथा सङ्खसेवालपणकं कद्दमो च, एवं किलेसा दट्ठब्बा। यथा उदकप्पसादको मणि, एवं सद्धा दट्ठब्बा। यथा उदकप्पसादके मणिम्हि उदके पक्खित्तमत्ते सङ्खसेवालपणकं विगच्छेय्य,कद्दमो च सन्निसीदेय्य, अच्छं भवेय्य उदकं विप्पसन्नं अनाविलं; एवमेव खो, महाराज, सद्धा उप्पज्जमाना नीवरणे विक्खम्भेति, विनीवरणं चित्तं होति अच्छं विप्पसन्नं अनाविलं। एवं खो, महाराज, सम्पसादनलक्खणा सद्धा" ति।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

(ख) सम्पक्खन्दलक्खणसद्धापञ्हो

११. "कथं, भन्ते, सम्पक्खन्दनलक्खणा सद्धा" ति?

"यथा, महाराज, योगावचरो अञ्ञेसं चित्तं विमुत्तं पस्सित्वा सोतापत्तिफले वा

मथा जाकर मैला और गँदला हो जाय। पार जाने के बाद राजा नौकरों से कहे—जल ले आओ, मैं पीना चाहता हूँ।' राजा के पास जल साफ करने का पत्थर (फिटकरी आदि) हो। 'देव! बहुत अच्छा' कह कर वे नौकर उस पत्थर को जल में डाल दें, जिससे तत्काल ही सभी शङ्ख, सेवाल या गँदलापन हट जाय, मैल बैठ जाय और जल स्वच्छ तथा निर्मल हो जाय। तब, वे राजा के पास वह जल ले आवें और कहें—'देव, जल पीयें।' महाराज! यहाँ जल की तरह चित्त को समझना चाहिये। नौकरों की तरह योगी को समझना चाहिये। शङ्ख, सेवाल और मैल की तरह चित्त का क्लेश समझना चाहिये। और जल साफ करने के पत्थर की तरह श्रद्धा को समझना चाहिये। जैसे पत्थर के जल में डालते ही शङ्ख, सेवाल तथा मल सभी हट जाते हैं और जल स्वच्छ, प्रसन्न तथा निर्मल हो जाता है; उसी तरह श्रद्धा के आते ही मन की सभी बाधायें हट जाती हैं। चित्त बाधाओं से रहित हो कर स्वच्छ, प्रसन्न तथा निर्मल हो जाता है। महाराज! इसी तरह 'प्रसन्नता उत्पन्न कर देना' श्रद्धा की पहचान समझनी चाहिये।"

"भन्ते! आपने ठीक कहा।"

११. (ख) "भन्ते! प्रस्कन्दन (मन में तीव्र आकांक्षा पैदा कर देना) कैसे श्रद्धा का लक्षण है?"

"महाराज! योगी साधक दूसरों के चित्त को मुक्त देखकर स्रोतआपत्ति[1], सकृदागामी[2], अनागामि–

---

१. स्रोतआपत्ति= धारा में आ जाना। निर्वाण के मार्ग पर आरूढ़ हो जाना, जहाँ से गिरने की कोई सम्भावना नहीं रहती है। योग साधना करने वाला भिक्षु,जब (१)सत्कायदृष्टि, (२) विचिकित्सा और (३) शीलव्रतपरामर्श— इन तीन बन्धनों को तोड़ देता है तब स्रोतआपन्न कहा जाता है। अधिक से अधिक सात बार तक जन्म लेकर, वह निर्वाण पा लेता है।

२. सकृदागामी—एक बार आने वाला। स्रोतआपन्न भिक्षु उत्साह कर, (१) कामराग (इन्द्रियलिप्सा)और (२) प्रतिघ (द्वेष)-इन दो बन्धनों पर भी विजय पा कर सकृदागामी पद पर आरूढ़ हो जाता है। यदि वह इस जन्म में अर्हत् नहीं हो जाता तो अधिक से अधिक एक बार और जन्म लेता है।

सकदागामिफले वा अनागामिफले वा अरहत्ते वा सम्पक्खन्दति, योगं करोति अप्पत्तस्स पत्तिया, अनधिगतस्स अधिगमाय, असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय; एवं खो, महाराज, सम्पक्खन्दनलक्खणा सद्धा'' ति।

''ओपम्मं करोही'' ति।

''यथा, महाराज, उपरिपब्बते महामेघो अभिप्पवस्सेय्य। तं उदकं यथानिन्नं पवत्तमानं पब्बतकन्दरपदरसाखा परिपूरेत्वा नदिं परिपूरेय्य। सा उभतो कूलानि संविस्सन्दन्ती गच्छेय्य। अथ महाजनकायो आगन्त्वा तस्सा नदिया उत्तानतं वा गम्भीरतं वा अजानन्तो भीतो वित्थत्तो तीरे तिट्ठेय्य। अथञ्ञतरो पुरिसो आगन्त्वा अत्तनो थामं च बलं च सम्पस्सन्तो गाळ्हं कच्छं बन्धित्वा पक्खन्दित्वा तरेय्य, तं तिण्णं पस्सित्वा महाजनकायो पि तरेय्य। एवमेव खो, महाराज, योगावचरो अञ्ञेसं चित्तं विमुत्तं पस्सित्वा सोतापत्तिफले वा सकदागामिफले वा अनागामिफले वा अरहत्ते वा सम्पक्खन्दति, योगं करोति अप्पत्तस्स पत्तिया, अनधिगतस्स अधिगमाय, असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय। एवं खो, महाराज, सम्पक्खन्दनलक्खणा सद्धा'' ति।

''भासितं पेतं, महाराज, भगवता *संयुत्तनिकायवरे*—

'सद्धाय तरती ओघं, अप्पमादेन अण्णवं।
विरियेन दुक्खमच्चेति, पञ्ञाय परिसुज्झती' ति॥ *(सं. नि. १/१०/४)*

फल[1], या अर्हत्[2] पद पर आरूढ़ देख कर स्वयं भी वैसा होने की आकांक्षा करता है, उस अप्राप्त पद को प्राप्त करने के लिये तथा न देखे को देखने के लिये प्रयत्न तथा परिश्रम करता है। महाराज! इस तरह 'मन में तीव्र आकांक्षा पैदा कर देना' श्रद्धा का लक्षण समझनी चाहिए।''

''कृपया इसी बात को उपमा देकर समझायें।''

''महाराज! किसी पहाड़ पर बहुत जोर से जल बरसे। जल नीचे की ओर बहते हुए पहाड़ की कन्दराओं, गुफाओं और नालों को भर कर नदी को भी पूरा भर दे। नदी अपने दोनों किनारों को तोड़ती हुई आगे बढ़े। तब, वहाँ कुछ मनुष्यों का एक समूह पहुँचे जो नदी के पाट या गहराई को न जानने के कारण डर कर किनारे ही बैठा रहे। तब कोई एक दूसरा मनुष्य वहाँ आये जो अपने साहस और बल को देख, ठीक से कच्छा बाँध, तैर कर पार चला जाय। उसे पार गया देख दूसरे लोग भी साहस कर उसी तरह तैर कर पार चले जाँय; महाराज! इसी तरह एक योगी दूसरों के चित्त को मुक्त .... पूर्ववत् .... देखकर स्वयं भी उस पद को पाने की तीव्र आकांक्षा करता है और उसके लिये प्रयत्न तथा परिश्रम करता है। इसी तरह, 'मन में तीव्र आकांक्षा पैदा कर देना' श्रद्धा का लक्षण है।

---

१. अनागामी—फिर न जन्म लेने वाला। ऊपर के दो बन्धनों (कामराग और प्रतिघ) को सर्वथा काट कर योगावचर भिक्षु 'अनागामी' हो जाता है। इसके बाद वह न तो संसार और न दिव्य लोक में ही जन्म लेता हैं; क्योंकि उसके सभी कामराग शान्त हो गये हैं। इस शरीरपात के बाद वह शुद्धावास में रहता है।

२. अर्हत्—अन्त में भिक्षु के जो अवशिष्ट बन्धन हैं— (१) रूपराग, (२) अरूपराग, (३) मान, (४) औद्धत्य और (५) अविद्या— उन्हें भी काट कर गिरा देता है और अर्हत् हो जाता है। उसके सभी क्लेश दूर हो जाते हैं, सभी आश्रव क्षीण हो जाते हैं। जो करना था, सो कर लिया गया। समग्र दुःखस्कन्ध का अन्त हो गया। उपादान (संसार में बने रहने की इच्छा) मिट गया। निर्वाण का मार्ग निश्चित हो गया। तृष्णा के क्षीण हो जाने से संसार से सर्वथा अलिप्त रह कर वह परम शान्ति का अनुभव करता है। शरीरपात के बाद उसका आवागमन सदा के लिये बन्द हो जाता है— जीवन-स्रोत सदा के लिये सूख जाता है— दुःख का अन्त हो जाता है।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

११. विरियलक्खणपञ्हो

१२. राजा आह—"भन्ते नागसेन, किंलक्खणं विरियं" ति? "उपत्थम्भनलक्खणं, महाराज, विरियं। विरियुपत्थम्भिता सब्बे कुसला धम्मा न परिहायन्ती" ति।

"ओपम्मं करोही" ति।

"यथा, महाराज, पुरिसो गेहे पतन्ते अञ्ञेन दारुना उपत्थम्भेय्य, उपत्थम्भितं सन्तं एवं तं गेहं न पतेय्य; एवमेव खो, महाराज, उपत्थम्भनलक्खणं विरियं। विरियुपत्थम्भिता सब्बे कुसला धम्मा न परिहायन्ती" ति।

"भिय्यो ओपम्मं करोही" ति।

"यथा, महाराज, परित्तकं सेनं महती सेना भञ्जेय्य। ततो राजा अञ्ञमञ्ञं अनुस्सारेय्य, अनुपेसेय्य, अत्तनो परित्तकाय सेनाय बलं अनुपदं ददेय्य, ताय सद्धिं परित्तका सेना महतिं सेनं भञ्जेय्य; एवमेव खो, महाराज, उपत्थम्भनलक्खणं विरियं। विरियुपत्थम्भिता सब्बे कुसला धम्मा न परिहायन्ति। भासितं पेतं, महाराज, *भगवता*—'विरियवा खो, भिक्खवे, अरियसावको अकुसलं पजहति, कुसलं भावेति। सावज्जं पजहति, अनवज्जं भावेति; सुद्धमत्तानं परिहरती" (   ) ति।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

१२. सतिलक्खणपञ्हो

१३. राजा आह—"भन्ते नागसेन, किंलक्खणा सती" ति? "अपिलापनलक्खणा, महाराज, सति, उपग्गण्हनलक्खणा चा" ति। "कथं, भन्ते, अपिलापनलक्खणा सती" ति?

"*संयुक्तनिकाय* में भगवान् ने कहा भी है—

'श्रद्धा से बाढ़ पार कर जाता है; प्रयत्न में तत्पर रहने से सागर को पार कर जाता है; वीर्य से दुःखों का नाश कर देता है; और प्रज्ञा से सर्वथा मुक्त हो जाता है'।"

"भन्ते! आपने बहुत ठीक कहा।"

११. वीर्यलक्षणप्रश्न— १२. राजा बोला—"भन्ते! वीर्य का क्या लक्षण है?" "महाराज! 'दृढ़ कर देना' वीर्य का लक्षण है। जो कुशल धर्म वीर्य से दृढ़ कर दिये गये हैं, वे कभी नहीं डिगते।"

"कृपया इसे उपमा देकर समझाइये।"

"महाराज! जैसे कोई मनुष्य अपने घर को गिरता देख एक खम्भे का सहारा देकर उसे दृढ़ कर देता है, तब वह घर गिर नहीं पाता, उसी तरह वीर्य से दृढ़ किये गये सभी कुशल धर्म नहीं डिगते।"

"कृपया फिर दूसरी उपमा देकर समझाइये।"

"महाराज! जैसे किसी छोटी सेना को एक बड़ी सेना हरा दे। तब, हारा हुआ राजा कुछ और सिपाहियों को देकर उन्हें फिर से लड़ने को भेजे, जो जाकर उस बड़ी सेना को हरा दे। इसी तरह 'दृढ़ करना' भी वीर्य की लक्षण है। भगवान् ने कहा भी है—'भिक्षुओ! वीर्यवान् आर्यश्रावक पाप छोड़ कर पुण्य का ग्रहण करता है, दोषयुक्त को छोड़कर दोषरहित को ग्रहण करता है और अपने को शुद्ध कर देता है।'

"भन्ते! आपने ठीक कहा।"

१२. स्मृतिलक्षणप्रश्न—१२. राजा बोला—"भन्ते नागसेन! स्मृति का क्या लक्षण है?" "महाराज! १.

"सति, महाराज, उप्पज्जमाना कुसलाकुसलसावज्जानवज्जहीनप्पणीतकण्हसुक्कसप्पटिभाग-अप्पटिभागधम्मे अपिलापेति—इमे चत्तारो सतिपट्ठाना, इमे चत्तारो सम्मप्पधाना, इमे चत्तारो इद्धिपादा, इमानि पञ्चिन्द्रियानि, इमानि पञ्च बलानि, इमे सत्त बोज्झङ्गा, अयं अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो, अयं समथो, अयं विपस्सना, अयं विज्जा, अयं विमुत्ती ति; ततो योगावचरो सेवितब्बे धम्मे सेवति, असेवितब्बे धम्मे न सेवति; भजितब्बे धम्मे भजति, अभजितब्बे धम्मे न भजति। एवं खो, महाराज, अपिलापनलक्खणा सती" ति।

"ओपम्मं करोही" ति।

"यथा, महाराज, रञ्ञो चक्कवत्तिस्स भण्डागारिको राजानं चक्कवत्तिं सायम्पातं यसं सरापेति—'एत्तका, देव, ते हत्थी, एत्तका अस्सा, एत्तका रथा, एत्तका पत्ती, एत्तकं हिरञ्ञं, एत्तकं सुवण्णं, एत्तकं सापतेय्यं, तं देवो सरतू' ति रञ्ञो सापतेय्यं अपिलापेति एवमेव खो, महाराज, सति उप्पज्जमाना कुसलाकुसलसावज्जानवज्जहीनप्पणीतकण्हसुक्कसप्पटिभाग-अप्पटिभागधम्मे अपिलापेति—इमे चत्तारो सतिपट्ठाना, इमे चत्तारो सम्मप्पधाना, इमे चत्तारो इद्धिपादा, इमानि पञ्चिन्द्रियानि, इमानि पञ्च बलानि, इमे सत्त बोज्झङ्गा, अयं अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो, अयं समथो, अयं विपस्सना, अयं विज्जा, अयं विमुत्ती ति; ततो योगावचरो सेवितब्बे धम्मे सेवति, असेवितब्बे धम्मे न सेवति; भजितब्बे धम्मे भजति, अभजितब्बे धम्मे न भजति। एवं खो, महाराज, अपिलापनलक्खणा सती" ति। (१)

"कथं, भन्ते, उपग्गण्हनलक्खणा सती" ति? "सति, महाराज, उप्पज्जमाना हिताहितानं धम्मानं गतियो समन्वेति— 'इमे धम्मा हिता, इमे धम्मा अहिता, इमे धम्मा उपकारा, इमे धम्मा अनुपकारा' ति; ततो योगावचरो अहिते धम्मे अपनुदेति, हिते धम्मे

निरन्तर स्मरण रखना और २. स्वीकार करना स्मृति का लक्षण है।" (१) "भन्ते! 'स्मरण रखना' कैसे स्मृति का लक्षण है?" "महाराज! स्मृति निरन्तर स्मरण दिलाती रहती है कि यह कुशल, यह अकुशल, यह दोष–युक्त, यह दोष–रहित, यह बुरा, यह अच्छा और यह कृष्ण, यह शुक्ल है। यों साधक निरन्तर स्मरण रखता है– ये चार स्मृति–प्रस्थान, ये चार सम्यक् चेष्टाएँ, ये चार ऋद्धियाँ, ये पाँच इन्द्रियाँ, ये पाँच बल, ये सात बोध्यङ्ग, यह आर्य–अष्टाङ्गिकमार्ग, यह शमथ, यह विपश्यना, यह विद्या और यह विमुक्ति है। उस स्मृति के सहारे से योगी सेवनीय धर्मों का आचरण करता है, असेवनीय धर्मों का आचरण नहीं करता—यह स्मृति ही के कारण होता है। इसी प्रकार महाराज! 'निरन्तर स्मरण रखना' स्मृति का लक्षण है।

"कृपया उपमा देकर समझाइये।"

"महाराज! जैसे किसी चक्रवर्ती राजा का भाण्डागारिक नित्य प्रातः और सायं काल राजा को उसके यश की याद दिलाता रहे—'देव! आप के इतने हाथी, इतने घोड़े, इतने रथ, इतने पैदल सिपाही, इतना सोना और इतनी सम्पत्ति है; आप उसे स्मरण रखें'। उसी तरह स्मृति सदा स्मरण दिलाती रहती है—यह कुशल यह अकुशल....। महाराज! ऐसे ही 'निरन्तर स्मरण दिलाते रहना' स्मृति का लक्षण है।"

(२) "भन्ते! 'स्वीकार करना' कैसे स्मृति का लक्षण है?" "महाराज! स्मृति उत्पन्न होकर खोज करती है कि कौन धर्म हित के हैं, कौन धर्म अहित के; ये धर्म हित के या ये धर्म अहित के हैं, ये धर्म भलाई करने वाले और ये धर्म बुराई करने वाले हैं। उससे योगी (साधक) भी अहित धर्मों को

उपग्गण्हाति; अनुपकारे धम्मे अपनुदेति, उपकारे धम्मे उपग्गण्हाति। एवं खो, महाराज, उपग्गण्हनलक्खणा सती'' ति।

''ओपम्मं करोही'' ति।

''यथा, महाराज, रञ्ञो चक्कवत्तिस्स परिणायकरतनं रञ्ञो हिताहिते जानाति—'इमे रञ्ञो हिता, इमे अहिता, इमे उपकारा, इमे अनुपकारा' ति; ततो अहिते अपनुदेति, हिते उपग्गण्हाति, अनुपकारे अपनुदेति, उपकारे उपग्गण्हाति। एवमेव खो, महाराज, सति उप्पज्जमाना हिताहितानं धम्मानं गतियो समन्वेति— 'इमे धम्मा हिता, इमे धम्मा अहिता, इमे धम्मा उपकारा, इमे धम्मा अनुपकारा' ति; ततो योगावचरो अहिते धम्मे अपनुदेति, हिते धम्मे उपग्गण्हाति; अनुपकारे धम्मे अपनुदेति, उपकारे धम्मे उपग्गण्हाति। एवं खो, महाराज, उपग्गण्हनलक्खणा सति। भासितं पेतं, महाराज, भगवता— 'सति च ख्वाहं, भिक्खवे, सब्बत्थिकं वदामी' ( ) ति। (२)

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

१३. समाधिलक्खणपञ्हो

१४. राजा आह—''भन्ते नागसेन, किंलक्खणो समाधी'' ति?

''पमुखलक्खणो, महाराज, समाधि। ये केचि कुसला धम्मा सब्बे ते समाधिपमुखा होन्ति समाधिनिन्ना समाधिपोणा समाधिपब्भारा'' ति।

''ओपम्मं करोही'' ति।

''यथा, महाराज, कूटागारस्स या काचि गोपानसियो सब्बा ता कूटङ्गमा होन्ति कूटनिन्ना कूटसमोसरणा, कूटं तासं अग्गमक्खायति; एवमेव खो, महाराज, ये केचि कुसला धम्मा सब्बे ते समाधिप्पमुखा होन्ति समाधिनिन्ना समाधिपोणा समाधिपब्भारा'' ति।

छोड़ता है, हित धर्मों को स्वीकार करता है। बुराई करने वाले धर्मों को छोड़ता है और भलाई करने वाले धर्मों को स्वीकार करता है। महाराज! इस तरह 'स्वीकार करना' स्मृति का लक्षण बतायी गयी है।''

''कृपया उपमा देकर समझाइये।''

''महाराज! किसी चक्रवर्ती राजा का परिणायकरत्न (प्रधानमन्त्री) उसे इसके हिताहित के विषय में समझावे—'यह आपके लिये हितकर है, यह अहितकर; या यह भलाई के लिये और यह बुराई के लिये हैं'। तो फिर राजा अहितकर को छोड़ देता है, हितकर को ग्रहण करता है; बुराई छोड़ देता है, भलाई को ग्रहण करता है। महाराज! उसी तरह स्मृति उत्पन्न होकर गवेषणा (खोज) करती है कि कौन हितकर....। भगवान् ने कहा भी है—'भिक्षुओ! मैं स्मृति को सब धर्मों को सिद्ध करने वाली बताता हूँ'।''

''आपने ठीक समझाया, भन्ते!''

१३. समाधिलक्षणप्रश्न— १४. राजा बोला—''भन्ते! समाधि का क्या लक्षण है?''

''महाराज! 'प्रमुख (अग्रसर) होना' समाधि का लक्षण है। जितने कुशल धर्म हैं सभी समाधि के प्रमुख होने से होते हैं, इसी की ओर झुकते हैं, यहीं ले जाते हैं और इसी में आकर व्यवस्थित होते हैं।''

''कृपया इसे उपमा देकर समझायें।''

''महाराज! जैसे किसी ऊँची अट्टालिका की सभी सीढ़ियाँ सबसे ऊपर वाली मंजिल की ही

"भिय्यो ओपम्मं करोही" ति।

"यथा, महाराज, कोचि राजा चतुरङ्गिनिया सेनाय सद्धिं सङ्गामं ओतरेय्य। सब्बा व सेना हत्थी च अस्सा च रथा च पत्ती च तप्पमुखा भवेय्युं तन्निन्ना तप्पोणा तप्पब्भारा, तं येव अनुपरियायेय्युं; एवमेव खो, महाराज, ये केचि कुसला धम्मा सब्बे ते समाधिपमुखा होन्ति समाधिनिन्ना समाधिपोणा समाधिपब्भारा। एवं खो, महाराज, पमुखलक्खणो समाधि। भासितं पेतं, महाराज, भगवता— 'समाधिं, भिक्खवे, भावेथ। समाहितो, भिक्खवे, भिक्खु यथाभूतं पजानाती" *(सं० नि० २१/५)* ति।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

१४. पञ्ञालक्खणपञ्हो

१५. राजा आह—"भन्ते नागसेन, किंलक्खणा पञ्ञा" ति?

"पुब्बेव खो, महाराज, मया वुत्तं— 'छेदनलक्खणा पञ्ञा' ति। अपि च 'ओभासनलक्खणा पञ्ञा' " ति। "कथं भन्ते, ओभासनलक्खणा पञ्ञा" ति? "पञ्ञा, महाराज, उप्पज्जमाना अविज्जन्धकारं विधमेति, विज्जोभासं जनेति, ञाणालोकं विदंसेति, अरियसच्चानि पाकटानि करोति। ततो योगावचरो अनिच्चं ति वा दुक्खं ति वा अनत्ता ति वा सम्मप्पञ्ञाय पस्सती" ति।

"ओपम्मं करोही" ति।

"यथा, महाराज, पुरिसो अन्धकारे गेहे पदीपं पवेसेय्य। पविट्ठो पदीपो अन्धकारं विधमेति, ओभासं जनेति, आलोकं विदंसेति, रूपानि पाकटानि करोति; एवमेव खो, महाराज,

---

ओर प्रमुख (=ले जाने वाली) होती है, उसी ओर जाती है, वहीं जाकर समाप्त होती हैं और वही भाग सब से मुख्य समझा जाता है; वैसे ही जितने कुशल धर्म हैं सभी....।"

"कृपया फिर कोई दूसरी उपमा देकर समझायें।"

"महाराज! कोई राजा अपनी चतुरङ्गिणी सेना के साथ लड़ाई में जाय। सारी सेना, सभी हाथी, सभी घोड़े, सभी रथ और सभी पैदल सिपाही लड़ाई की ही ओर बढ़ें, उसी ओर झुकें और वहीं जाकर जूझें; महाराज! उसी तरह जितने कुशल धर्म हैं सभी....। इसी तरह 'प्रमुख होना' समाधि का लक्षण है। भगवान् ने भी कहा है—'भिक्षुओ! समाधि का अभ्यास करो, समाधि लग जाने से सच्चा ज्ञान होता है'।"

"भन्ते ! आपने ठीक कहा।"

१४. प्रज्ञालक्षणप्रश्न— १५. राजा बोला— "भन्ते! प्रज्ञा का क्या लक्षण है?" "महाराज! मैं कह चुका हूँ कि 'काटना' प्रज्ञा का लक्षण है और 'दिखा देना' भी उसका दूसरा लक्षण है।"

"भन्ते! 'दिखा देना' प्रज्ञा का लक्षण कैसे है?" "महाराज! प्रज्ञा उत्पन्न होने से अविद्यारूपी अंधकार दूर हो जाता है और विद्यारूपी प्रकाश पैदा होता है, जिसमें चारों आर्यसत्य साफ-साफ दिखायी देते हैं। तब योगी अनित्य, दुःख और अनात्म को भली-भाँति ज्ञान से जान लेता है।"

"कृपया उपमा देकर समझाइये।"

"महाराज! जैसे कोई आदमी हाथ में एक जलता दीपक लेकर किसी अंधेरे कमरे में जाय, उसके जाते ही अंधेरा हट जाय, पूरे कमरे में प्रकाश फैल जाय और सभी वस्तुएँ दीखने लगें; महाराज!

पञ्ञा उप्पज्जमाना अविज्जन्धकारं विधमेति, विज्जोभासं जनेति, ञाणालोकं विदंसेति, अरियसच्चानि पाकटानि करोति। ततो योगावचरो अनिच्चं ति वा दुक्खं ति वा अनत्ता ति वा सम्मप्पञ्ञाय पस्सति। एवं खो, महाराज, ओभासनलक्खणा पञ्ञा'' ति।

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

१५. नानाधम्मानं एककिच्चनिप्फादनपञ्हो

१६. राजा आह—''भन्ते नागसेन, इमे धम्मा नाना सन्ता एकं अत्थं अभिनिप्फादेन्ती'' ति? ''आम, महाराज, इमे धम्मा नाना सन्ता एकं अत्थं अभिनिप्फादेन्ति—किलेसे हनन्ती'' ति।

''कथं, भन्ते, इमे धम्मा नाना सन्ता एकं अत्थं अभिनिप्फादेन्ति—किलेसे हनन्ति? ओपम्मं करोही'' ति।

''यथा, महाराज, सेना नाना सन्ता हत्थी च अस्सा च रथा च पत्ती च एकं अत्थं अभिनिप्फादेन्ति—सङ्गामे परसेनं अभिविजिनन्ति; एवमेव खो, महाराज, इमे धम्मा नाना सन्ता एकं अत्थं अभिनिप्फादेन्ति—किलेसे हनन्ती'' ति।

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

(इमस्मिं वग्गे सोळस पञ्हा) *पठममहावग्गो निट्ठितो॥*

२. अद्धानवग्गो

१. धम्मसन्ततिपञ्हो

१. राजा आह—''भन्ते नागसेन, यो उप्पज्जति सो एव सो, उदाहु अञ्ञो'' ति? थेरो आह— ''न च सो, न च अञ्ञो'' ति।

''ओपम्मं करोही'' ति।

वैसे ही प्रज्ञा के उत्पन्न होने से अविद्यारूपी अंधेरा दूर हो जाता है और विद्यारूपी प्रकाश पैदा होता है, जिसमें चारों आर्यसत्य साफ–साफ दिखायी देते हैं। तब, योगी अनित्य, दुःख और अनात्म को भली–भाँति जान लेता है। महाराज! इसी तरह 'दिखा देना' ज्ञान का लक्षण कहा गया है।"

"भन्ते! आपनें ठीक कहा।"

१५. एककार्यनिष्पादनप्रश्न— १६. राजा बोला—"भन्ते! क्या ये सभी अनेक धर्म एक साथ मिलकर कोई काम करते हैं?" "हाँ, महाराज! ये सभी एक साथ मिलकर दुःखसमूह का नाश कर देते हैं।"

"भन्ते! यह कैसे....? कृपया उपमा देकर समझाइये।"

"महाराज! जैसे हाथी, घोड़े, रथ तथा पदाति (पैदल) सिपाही, अनेक प्रकार की सेना होने पर भी 'शत्रुपराजय' रूपी एक ही कार्य करती है; उसी तरह अनेक प्रकार के कुशल धर्म एक साथ मिलकर तृष्णासमूह का ही नाश करते हैं।"

"भन्ते! आपने ठीक कहा।"

(इस वर्ग में सोलह प्रश्न हैं।)

पहला महावर्ग समाप्त॥

२. अध्वानवर्ग (कालवर्ग)

१. धर्मसन्ततिप्रश्न (वस्तु का अस्तित्व)— १. राजा बोला— "भन्ते! जो उत्पन्न होता है, क्या वह वही व्यक्ति है या दूसरा?" स्थविर बोले— "न वही है, न दूसरा ही।"

"तं किं मञ्ञसि, महाराज, यदा त्वं दहरो तरुणो मन्दो उत्तानसेय्यको अहोसि, सो एव त्वं एतरहि महन्तो" ति? "न हि, भन्ते! अञ्ञो सो दहरो तरुणो मन्दो उत्तानसेय्यको अहोसि, अञ्ञो अहं एतरहि महन्तो" ति। "एवं सन्ते खो, महाराज, माता ति पि न भविस्सति, पिता ति पि न भविस्सति, आचरियो ति पि न भविस्सति, सिप्पवा ति पि न भविस्सति, सीलवा ति पि न भविस्सति, पञ्ञवा ति पि न भविस्सति। किं नु खो, महाराज, अञ्ञा येव कललस्स माता, अञ्ञा अब्बुदस्स माता; अञ्ञा पेसिया माता, अञ्ञा घनस्स माता; अञ्ञा खुद्दकस्स माता, अञ्ञा महन्तस्स माता; अञ्ञो सिप्पं सिक्खति, अञ्ञो सिक्खितो भवति; अञ्ञो पापकम्मं करोति, अञ्ञस्स हत्थपादा छिज्जन्ती" ति? "न हि, भन्ते! त्वं पन, भन्ते, एवं वुत्ते किं वदेय्यासी" ति? थेरो आह—"अहञ्ञेव खो, महाराज, दहरो अहोसिं तरुणो मन्दो उत्तानसेय्यको, अहञ्ञेव एतरहि महन्तो; इममेव कायं निस्साय सब्बे ते एकसङ्गहिता" ति। (१)

"भिय्यो ओपम्मं करोही" ति।

"यथा महाराज, कोचिदेव पुरिसो पदीपं पदीपेय्य। किं सो सब्बरत्तिं पदीपेय्या" ति? "आम, भन्ते, सब्बरत्तिं पदीपेय्या" ति। "किं नु खो, महाराज, या पुरिमे यामे अच्चि, सा मज्झिमे यामे अच्ची" ति? "न हि, भन्ते" ति। "या मज्झिमे यामे अच्चि, सा पच्छिमे यामे अच्ची" ति? "न हि, भन्ते" ति। "किं नु खो, महाराज, अञ्ञो सो अहोसि पुरिमे यामे पदीपो, अञ्ञो मज्झिमे यामे पदीपो, अञ्ञो पच्छिमे यामे पदीपो" ति? "न हि, भन्ते। तं येव निस्साय सब्बरत्तिं पदीपितो" ति। "एवमेव खो, महाराज, धम्मसन्तति सन्दहति—

"कृपया यह उपमा देकर समझाइये।"

"महाराज! जब आप बाल्यावस्था में शय्या पर चित ही लेट सकते थे, अब क्या इतने बड़े होकर भी वही हैं?" "नहीं, भन्ते! अब मैं दूसरा हो गया।" "महाराज! यदि आप वही (बच्चे) नहीं हैं तो अब आपकी कोई न माँ है, न कोई पिता, न कोई आचार्य, न कोई शिक्षक ही है, आप शीलवान् या प्रज्ञावान् भी नहीं हो सकते; क्योंकि, महाराज! तब तो गर्भ की भिन्न-भिन्न माताएँ होंगी.... बड़े हो जाने पर माता भी भिन्न हो जायगी। फिर, जो शिल्प सीखता है, वह दूसरा और जो सीख कर तैयार होता है, वह दूसरा होगा। यों, दोष करने वाला दूसरा होगा और किसी दूसरे का हाथ पैर काटा जायगा।" "नहीं, भन्ते!; किन्तु आप इससे क्या दिखाना चाहते हैं?" स्थविर बोले—"महाराज! मैं बचपन में दूसरा था और इस समय बड़ा होकर दूसरा हो गया हूँ, किन्तु वे सभी भिन्न अवस्थायें इस शरीर की ही होने से एक ही में मानी जाती है।" (१)

"कृपया आप इसे फिर से उपमा देकर समझायें।"

"महाराज! यदि कोई आदमी दीपक जलावे, तो क्या वह रात्रिपर्यन्त जलता रहेगा?" "हाँ, भन्ते! जलता रहेगा।" "महाराज! रात्रि के पहले प्रहर में जो दीपक की लौ थी, क्या वही दूसरे या तीसरे पहर में बनी रहती है?" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! तो क्या वह दीपक पहले पहर में दूसरा, दूसरे और तीसरे पहर में दूसरा हो जाता है?" "नहीं, भन्ते! वही दीपक सारी रात जलता रहता है।" "महाराज! ठीक इसी तरह किसी वस्तु के अस्तित्व के प्रवाह में एक अवस्था उत्पन्न और एक लीन होती है और इस तरह यह प्रवाह चलता रहता है। एक प्रवाह की दो अवस्थाओं में एक क्षण का भी अन्तर

अञ्ञो उप्पज्जति, निरुज्झति, अपुब्बं अचरिमं विय सन्दहति। तेन न च सो, न च अञ्ञो; पुरिमविञ्ञाणे पच्छिमविञ्ञाणं सङ्गहं गच्छती'' ति। (२)

''भिय्यो ओपम्मं करोही'' ति।

''यथा महाराज, खीरं दुय्हमानं कालन्तरेन दधि परिवत्तेय्य, दधितो नवनीतं, नवनीततो घतं परिवत्तेय्य। यो नु खो, महाराज, एवं वदेय्य—'यं येव दधि, तं येव नवनीतं, यं येव नवनीतं तं येव घतं' ति। सम्मा नु खो सो, महाराज, वदमानो वदेय्या'' ति? ''न हि, भन्ते, तं येव निस्साय सम्भूतं'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, धम्मसन्तति सन्दहति— अञ्ञो उप्पज्जति, अञ्ञो निरुज्झति; अपुब्बं अचरिमं विय सन्दहति। तेन न च सो, न च अञ्ञो; पुरिमविञ्ञाणे पच्छिमविञ्ञाणं सङ्गहं गच्छती'' ति। (३)

''कल्लोसि, भन्ते, नागसेना'' ति।

२. पटिसन्दहनपञ्हो

२. राजा आह—''भन्ते नागसेन, यो न पटिसन्दहति, जानाति सो—'न पटिसन्दहिस्सामी''' ति। ''कथं भन्ते, जानाती'' ति? ''यो हेतु यो पच्चयो, महाराज, पटिसन्दहनाय, तस्स हेतुस्स तस्स पच्चयस्स उपरमा जानाति सो— 'न पटिसन्दहिस्सामी' '' ति।

''ओपम्मं करोही'' ति।

''यथा, महाराज, कस्सको गहपतिको कसित्वा च वपित्वा च धञ्ञागारं परिपूरेय्य।

नहीं होता; क्योंकि एक के लीन होते ही दूसरी उत्पन्न हो जाती है। इसी कारण, जीव न वही रहता है और न दूसरा ही हो जाता है। एक जन्म के अन्तिम विज्ञान के लीन होते ही दूसरे जन्म का प्रथम विज्ञान उठ खड़ा होता है।" (२)

"कृपया इसे एक और उपमा देकर समझावें।"

"महाराज! दूध दुहे जाने पर कुछ समय के बाद वह जम कर दही हो जाता है; दही से मक्खन, मक्खन से घी बना लिया जाता है। तब कोई कहे 'जो दूध था वही दही था, जो दही था वही मक्खन था और जो मक्खन था वही घी भी था'। महाराज! ऐसा कहने वाला क्या ठीक कहता है?" "नहीं, भन्ते! " "दूध से ये चीजे बन गयीं।" "महाराज! ठीक इसी भाँति किसी वस्तु के अस्तित्व के प्रवाह में एक अवस्था उत्पन्न होती है, एक लीन होती है और इस तरह प्रवाह चलता रहता है। एक प्रवाह की दो अवस्थाओं में एक क्षण का भी अन्तर नहीं होता; क्योंकि एक के लीन होते ही दूसरा उत्पन्न हो जाता है। इसी कारण, न वही जीव रहता है और न दूसरा ही हो जाता है। (एक जन्म के अन्तिम.... पूर्ववत्.... का लय होते ही दूसरे जन्म का प्रथम विज्ञान उठ खड़ा होता है।)" (३)

"भन्ते! आपने ठीक कहा।"

२. प्रतिसन्धि(पुनर्जन्म)विषयक प्रश्न— २. राजा बोला— "भन्ते! जो इसके बाद जन्म नहीं लेता, क्या वह जानता है कि मैं फिर जन्म नहीं लूँगा?" "हाँ, महाराज! वह जानता है कि मैं फिर जन्म नहीं लूँगा।" "भन्ते! वह इस बात को कैसे जानता है?" "महाराज! पुनर्जन्म लेने के जो हेतु और प्रत्यय हैं, उनके शान्त तथा नष्ट हो जाने से वह इस बात को जान लेता है कि मैं फिर जन्म नहीं ग्रहण करूँगा।"

"कृपया इसे उपमा देकर समझाइये।"

"महाराज! जैसे कोई किसान जोत–बो कर अपने भण्डार को भर ले, फिर कुछ समय तक

सो अपरेन समयेन नेव कस्सेय्य, न वपेय्य; यथासम्भतं च धञ्ञं परिभुञ्जेय्य वा विसज्जेय्य वा यथापच्चयं वा करेय्य। जानेय्य सो, महाराज, कस्सको गहपतिको—'न मे धञ्ञागारं परिपूरेस्सती' '' ति। ''आम, भन्ते, जानेय्या'' ति। ''कथं जानेय्या'' ति? ''यो हेतु यो पच्चयो धञ्ञागारस्स परिपूरणाय, तस्स हेतुस्स तस्स पच्चयस्स उपरमा जानाति—'न मे धञ्ञागारं परिपूरेस्सती' '' ति।

''एवमेव खो, महाराज, यो हेतु यो पच्चयो पटिसन्दहनाय, तस्स हेतुस्स तस्स पच्चयस्स उपरमा जानाति—सो न पटिसन्दहिस्सामी'' ति।

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

३. ञाणपञ्ञापञ्हो

३. राजा आह—''भन्ते नागसेन, यस्स ञाणं उप्पन्नं तस्स पञ्ञा उप्पन्ना'' ति? ''आम, महाराज, यस्स ञाणं उप्पन्नं तस्स पञ्ञा उप्पन्ना'' ति। ''किं, भन्ते, यञ्ञेव ञाणं सा येव पञ्ञा'' ति। ''आम, महाराज, यञ्ञेव ञाणं सा येव पञ्ञा'' ति। ''यस्स पन, भन्ते, तं येव ञाणं सा येव पञ्ञा उप्पन्ना, किं सम्मुय्हेय्य सो, उदाहु न सम्मुय्हेय्या'' ति? ''कत्थचि, महाराज, सम्मुय्हेय्य, कत्थचि न सम्मुय्हेय्या'' ति। ''कुहिं, भन्ते, सम्मुय्हेय्या'' ति? ''अञ्ञातपुब्बेसु वा, महाराज, सिप्पट्ठानेसु, अगतपुब्बाय वा दिसाय, अस्सुतपुब्बाय वा नामपञ्ञत्तिया सम्मुय्हेय्या'' ति। ''कुहिं न सम्मुय्हेय्या'' ति? ''यं खो पन, महाराज, ताय पञ्ञाय कतं अनिच्चं ति वा दुक्खं ति वा अनत्ता ति वा, तहिं न सम्मुय्हेय्या'' ति। ''मोहो पनस्स, भन्ते, कुहिं गच्छती'' ति? ''मोहो खो, महाराज, ञाणे उप्पन्नमत्ते तत्थेव निरुज्झती'' ति।

''ओपम्मं करोही'' ति।

न जोते न बोये, एकत्र किये हुए अन्न को बैठ कर खाय, बाँट दे या अपने दूसरे कार्यों में खर्च करे। महाराज! तो क्या वह किसान नहीं जानेगा कि मेरा भण्डार अब भर नहीं रहा है (किन्तु खाली हो रहा है)?" "हाँ, भन्ते! वह अवश्य जानेगा।" "कैसे जानेगा?" "भण्डार के भरने के जो हेतु और प्रत्यय हैं, उनके बन्द हो जाने से।"

"महाराज! इसी तरह, पुनर्जन्म ग्रहण करने के जो हेतु और प्रत्यय हैं, उनके शान्त तथा नष्ट हो जाने से वह ज्ञानी भी इस बात को जानता है कि मैं फिर जन्म नहीं ग्रहण करूँगा।"

"भन्ते! आप ठीक कहते हैं।"

३. ज्ञान-प्रज्ञाविषयकप्रश्न—३. राजा बोला—"भन्ते! जिसको ज्ञान उत्पन्न होता है, उसको क्या प्रज्ञा भी उत्पन्न हो जाती है?" "हाँ महाराज! उसको प्रज्ञा भी उत्पन्न हो जाती है।" "भन्ते! क्या ज्ञान और प्रज्ञा दोनों एक ही चीज हैं?" "हाँ, महाराज! ज्ञान और प्रज्ञा दोनों एक ही चीज हैं।" "भन्ते! यदि ऐसी बात है तो उसे किसी विषय में मोह (मूढ़ता) होगा या नहीं?" "महाराज! उसे कुछ विषयों में मोह होगा और कुछ विषयों में नहीं होगा।" "किन विषयों में होगा?" "महाराज! जिन विद्याओं को उसने नहीं पढ़ा, जिन देशों में वह नहीं गया तथा जिन बातों को उसने नहीं सुना, उन विषयों में उसे मोह होगा।" "और किन विषयों में मोह नहीं होगा?" "महाराज! अपनी प्रज्ञा से जो उसने अनित्य, दुःख और अनात्म को जान लिया है, उनके विषयों में उसे कोई मोह नहीं होगा।" "भन्ते! इन विषयों में उसका मोह कहाँ चला जाता है?" "महाराज! ज्ञान के उत्पन्न होते ही उस विषय के सभी मोह नष्ट हो जाते हैं।"

"यथा, महाराज, कोचिदेव पुरिसो अन्धकारगेहे पदीपं आरोपेय्य, ततो अन्धकारो निरुज्झेय्य, आलोको पातुभवेय्य; एवमेव खो, महाराज, ञाणे उप्पन्नमत्ते मोहो तत्थेव निरुज्झती" ति। (१)

"पञ्ञा पन, भन्ते, कुहिं गच्छती" ति? "पञ्ञा पि खो, महाराज, सकिच्चयं कत्वा तत्थेव निरुज्झति। यं पन ताय पञ्ञाय कतं अनिच्चं ति वा दुक्खं ति वा अनत्ता ति वा तं न निरुज्झती" ति।

"भन्ते नागसेन, यं पनेतं ब्रूसि—'पञ्ञा सकिच्चयं कत्वा तत्थेव निरुज्झति। यं पन ताय पञ्ञाय कतं अनिच्चं ति वा दुक्खं ति वा अनत्ता ति वा तं न निरुज्झती' ति, तस्स ओपम्मं करोही" ति।

"यथा, महाराज, यो कोचि पुरिसो रत्तिं लेखं पेसेतुकामो लेखकं पक्कोसापेत्वा पदीपं आरोपेत्वा लेखं लिखापेय्य, लिखिते पन लेखे पदीपं विज्झापेय्य, विज्झापिते पि पदीपे लेखं न विनस्सेय्य; एवमेव खो, महाराज, पञ्ञा सकिच्चयं कत्वा तत्थेव निरुज्झति, यं पन ताय पञ्ञाय कतं अनिच्चं ति वा दुक्खं ति वा अनत्ता ति वा तं न निरुज्झती" ति। (२)

"भिय्यो ओपम्मं करोही" ति।

"यथा, महाराज, पुरत्थिमेसु जनपदेसु मनुस्सा अनुघरं पञ्च पञ्च उदकघटकानि ठपेन्ति आलिम्पनं विज्झापेतुं। घरे पदित्ते तानि पञ्च उदकघटकानि घरस्सूपरि खिपन्ति। ततो अग्गि विज्झायति। किन्नु खो, महाराज, तेसं मनुस्सानं एवं होति—पुन 'तेहि घटेहि घटकिच्चं करिस्सामा'' ति? "न हि, भन्ते! अलं तेहि घटेहि। किं तेहि घटेही" ति! "यथा, महाराज, पञ्च उदकघटकानि, एवं पञ्चिन्द्रियानि दट्ठब्बानि—सद्धिन्द्रियं, वीरियिन्द्रियं, सतिन्द्रियं,

---

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज! जैसे किसी अँधेरी कोठरी में कोई दीपक जला दे। उससे अँधेरा चला जाय और उजाला हो जाय; उसी तरह ज्ञान के उत्पन्न होते ही मोह चला जाता है।"

"भन्ते! और उसकी प्रज्ञा कहाँ चली जाती है?" "महाराज! प्रज्ञा भी अपना कार्य करके निरुद्ध हो जाती है। उस प्रज्ञा से 'सभी अनित्य है, सभी दुःख है, सभी अनात्म है'—यह चिन्तन करके उत्पन्न होता है, वहीं रह जाता है।" (१)

".... इसे स्पष्ट करने के लिये कृपया कोई उपमा दीजिये।"

"महाराज! जैसे कोई आदमी रात्रि के समय एक पत्र लिखाना चाहे। वह अपने लेखक को बुला कर और दीपक जलाकर पत्र लिखवाये। पत्र लिखा जाने पर दीपक बुझा दे। जिस तरह दीपक के बुझ जाने से पत्र का कुछ नहीं बिगड़ता; महाराज! इसी तरह प्रज्ञा भी अपना कार्य करके निरुद्ध हो जाती है। उस प्रज्ञा से जो 'सभी अनित्य है.... ऐसा चिन्तन करके उत्पन्न होता है, वहीं रह जाता है।" (२)

"कृपया कोई दूसरी उपमा देकर भी समझावें।"

"महाराज! पूर्व की ओर के लोगों में ऐसी प्रथा है—सभी अपने अपने घर के पास पाँच–पाँच जल से भरे घड़े रख छोड़ते हैं; जो कभी घर में अग्नि लगने पर बुझाने के कार्य में आते हैं। मान लें, एक बार घर में अग्नि लग गयी और पाँचों घड़े उसके बुझाने के कार्य में आ गये। महाराज! क्या वे लोग अग्नि बुझ जाने पर भी घड़ों को कार्य में लाते रहेंगे?" "नहीं, भन्ते! घड़ों का कार्य तो हो गया, अब

समाधिन्द्रियं, पञ्ञिन्द्रियं। यथा ते मनुस्सा, एवं योगावचरो दट्ठब्बो। यथा अग्गि, एवं किलेसा दट्ठब्बा। यथा पञ्चहि उदकघटकेहि अग्गि विज्झापियति, एवं पञ्चिन्द्रियेहि किलेसा विज्झापियन्ति। विज्झापिता पि किलेसा न पुन सम्भवन्ति। एवमेव खो, महाराज, पञ्ञा सकिच्चयं कत्वा तत्थेव निरुज्झति, यं पन ताय पञ्ञाय कतं अनिच्चं ति वा दुक्खं ति वा अनत्ता ति वा तं न निरुज्झती'' ति। (३)

''भिय्यो ओपम्मं करोही'' ति।

''यथा, महाराज, वेज्जो पञ्चमूलभेसज्जानि गहेत्वा गिलानकं उपसङ्कमित्वा तानि पञ्चमूलभेसज्जानि पिसित्वा गिलानकं पायेय्य, तेहि न दोसा निद्धमेय्युं। किं नु खो, महाराज, तस्स वेज्जस्स एवं होति—'पुन तेहि पञ्चमूलभेसज्जेहि भेसज्जकिच्चं करिस्सामी' '' ति?''न हि, भन्ते? अलं तेहि पञ्चमूलभेसज्जानि। किं तेहि पञ्चमूलभेसज्जेही'' ति! ''यथा, महाराज, पञ्चमूलभेसज्जानि एवं पञ्चिन्द्रियानि दट्ठब्बानि—सद्धिन्द्रियं, वीरियिन्द्रियं, सतिन्द्रियं, समाधिन्द्रियं, पञ्ञिन्द्रियं। यथा वेज्जो, एवं योगावचरो दट्ठब्बो। यथा व्याधि, एवं किलेसा दट्ठब्बा। यथा व्याधितो पुरिसो, एवं पुथुज्जनो दट्ठब्बो। यथा पञ्चमूलभेसज्जेहि गिलानस्स दोसा निद्धन्ता, दोसे निद्धन्ते गिलानो अरोगो होति; एवं पञ्चिन्द्रियेहि किलेसा निद्धमीयन्ति, निद्धमिता च किलेसा न पुन सम्भवन्ति। एवमेव खो, महाराज, पञ्ञा सकिच्चयं कत्वा तत्थेव निरुज्झति। यं पन ताय पञ्ञाय कतं अनिच्चं ति वा दुक्खं ति वा अनत्ता ति वा तं न निरुज्झती'' ति। (४)

''भिय्यो ओपम्मं करोही'' ति।

''यथा, महाराज, सङ्गामावचरो योधो पञ्च कण्डानि गहेत्वा सङ्गामं ओतरेय्य परसेनं

उनसे क्या करना है?" "महाराज! यहाँ पाँच जल के घड़ों की तरह पाँच इन्द्रियों को समझना चाहिये— श्रद्धेन्द्रिय, वीर्येन्द्रिय, स्मृतीन्द्रिय, समाधीन्द्रिय और प्रज्ञेन्द्रिय। अग्नि बुझाने वाले मनुष्य की तरह योगी को समझना चाहिये। जैसे वहाँ अग्नि है वैसे ही क्लेशों (तृष्णा) को समझिये। और जैसे वहाँ पाँच घड़ों से अग्नि बुझायी जाती है, वैसे ही यहाँ पाँच इन्द्रियों से क्लेश का बुझाना समझना चाहिये। एक बार क्लेशों के नष्ट हो जाने के बाद वे फिर पैदा नहीं होते।" "महाराज! इसी तरह प्रज्ञा अपना कार्य करने के बाद निरुद्ध हो जाती है....।" (३)

"कृपया फिर भी उपमा देकर समझाइये।"

"महाराज! जैसे कोई वैद्य पाँच जड़ी बूटियों को लाकर औषध तैयार करे और उस औषध को पिला कर रोगी को अच्छा कर दे। महाराज! रोगी के अच्छा हो जाने के बाद क्या फिर भी वैद्य उसे औषध पिलाना चाहेगा?" "नहीं, भन्ते! अब उन जड़ी बूटियों का क्या काम!" "महाराज! इन पाँच जड़ी बूटियों की तरह श्रद्धेन्द्रिय आदि पाँच इन्द्रियों को समझना चाहिये। वैद्य की जगह योगी को समझना चाहिये। रोगी की तरह क्लेशों को समझना चाहिये। रोगी के स्थान पर अज्ञानी जीव को समझना चाहिये। जैसे पाँच जड़ी–बूटियों से रोग दूर कर दिया गया, वैसे ही पाँच इन्द्रियों से क्लेश का नाश कर दिया जाता है। ये क्लेश एक बार नष्ट हो जाने पर पुनः पैदा नहीं होते। महाराज! इसी तरह प्रज्ञा अपना कार्य करके निरुद्ध हो जाती है....।" (४)

"इसे कृपया फिर कोई उपमा देकर समझावें।"

विजेतुं। सो सङ्गामगतो तानि पञ्च कण्डानि खिपेय्य। तेहि च परसेना भिज्जेय्य। किन्नु खो, महाराज, तस्स सङ्गामावचरस्स योधस्स एवं होति—'पुन तेहि कण्डेहि कण्डकिच्चं करिस्सामी'' ति? 'न हि, भन्ते! अलं तेहि कण्डेहि, किं तेहि कण्डेही'' ति! "यथा, महाराज, पञ्च कण्डानि, एवं पञ्चिन्द्रियानि दट्ठब्बानि—सद्धिन्द्रियं, वीरियिन्द्रियं, सतिन्द्रियं, समाधिन्द्रियं, पञ्ञिन्द्रियं। यथा, महाराज, सङ्गामावचरो योधो, एवं, महाराज, योगावचरो दट्ठब्बो। यथा परसेना, एवं किलेसा दट्ठब्बा। यथा पञ्चहि कण्डेहि परसेना भिज्जति, एवं पञ्चिन्द्रियेहि किलेसा भिज्जन्ति, भग्गा च किलेसा न पुन सम्भवन्ति। एवमेव खो, महाराज, पञ्ञा सकिच्चयं कत्वा तत्थेव निरुज्झति, यं पन ताय पञ्ञाय कतं अनिच्चं ति वा दुक्खं ति वा अनत्ता ति वा तं न निरुज्झती'' ति। (५)

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

४. पटिसन्दहनपुग्गलवेदियनपञ्हो

राजा आह—"भन्ते नागसेन, यो न पटिसन्दहति, वेदेति सो किञ्चि दुक्खं वेदनं'' ति? थेरो आह—"किञ्चि वेदेति, किञ्चि न वेदेती'' ति। "किं वेदेति, किं न वेदेती'' ति? "कायिकं महाराज, वेदनं वेदेति, चेतसिकं वेदनं न वेदेती'' ति। "कथं, भन्ते, कायिकं वेदनं वेदेति, कथं चेतसिकं वेदनं न वेदेती'' ति? "यो हेतु यो पच्चयो कायिकाय दुक्खवेदनाय उप्पत्तिया, तस्स हेतुस्स तस्स पच्चयस्स अनुपरमा कायिकं दुक्खवेदनं वेदेति; यो हेतु यो पच्चयो चेतसिकाय दुक्खवेदनाय उप्पत्तिया, तस्स हेतुस्स तस्स पच्चयस्स उपरमा चेतसिकं दुक्खवेदनं न वेदेति। भासितं पेतं, महाराज, *भगवता*—'सो एकं वेदनं वेदेति कायिकं, न चेतसिकं' '' (   ) ति।

"भन्ते नागसेन, यो दुक्खं वेदनं वेदेति, कस्मा सो न परिनिब्बायती'' ति? "नत्थि,

---

"महाराज! जैसे कोई योद्धा सिपाही पाँच तीर लेकर लड़ाई में जाय। वह उन पाँचों तीरों को छोड़े और उनसे शत्रुओं को हरा कर भगा दे। महाराज! शत्रुओं के भाग जाने पर क्या वह फिर भी तीरों को छोड़ना चाहेगा?" "नहीं, भन्ते! शत्रुओं के भाग जाने के पर तीर छोड़ने का क्या काम!" "महाराज! जैसे ये पाँच तीर हैं, वैसे ही पाँच इन्द्रियों को और सिपाही की जगह योगी को समझना चाहिये। जेसे शत्रु वैसे क्लेशों को समझना चाहिये। जैसे पाँच तीरों से शत्रु भगा दिये गये, वैसे ही पाँच इन्द्रियों से क्लेशों का नाश कर दिया जाता है। ये क्लेश एक बार नष्ट हो जाने पर पुनः पैदा नहीं होते। महाराज! इसी तरह प्रज्ञा अपना काम करके निरुद्ध हो जाती है....।" (५)

"भन्ते ! आपने ठीक समझाया।"

४. अर्हत्सम्बन्धी सुख–दुःखविषयक प्रश्न— ४. राजा बोला—"भन्ते! जो फिर जन्म लेने वाला नहीं है, वह क्या कोई वेदना (सुख या दुःख) अनुभव करता है?" स्थविर बोले—"कुछ को अनुभव करता है और कुछ को नहीं।" "किस को अनुभव करता है और किस को नहीं?" "शरीर में होने वाली वेदनाओं को अनुभव करता है और मन में होने वाली वेदनाओं को अनुभव नहीं करता।" "भन्ते! वह कैसे?" "शरीर में उत्पन्न होने वाली वेदनाओं के उत्पन्न होने के जो हेतु और प्रत्यय हैं, उनके उपरत (बन्द) न होने के कारण वह अनुभव करता है। चित्त में उत्पन्न होने वाली वेदनाओं के उत्पन्न होने के जो हेतु और प्रत्यय हैं उनके उपरत हो जाने के कारण वह उनका अनुभव नहीं करता। महाराज! भगवान् ने

महाराज, अरहतो अनुनयो वा पटिघो वा। न च अरहन्तो अपक्कं पातेन्ति। परिपाकं आगमेन्ति पण्डिता। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *सारिपुत्तेन* धम्मसेनापतिना–

'नाभिनन्दामि मरणं, नाभिनन्दामि जीवितं।
कालं च पटिकङ्खामि, निब्बिसं भतको यथा॥
'नाभिनन्दामि मरणं, नाभिनन्दामि जीवितं।
कालं च पटिकङ्खामि, सम्पजानो पटिस्सुतो' '' ति। ( )

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

५. वेदनापञ्हो

५. राजा आह–''भन्ते नागसेन, सुखा वेदना कुसला वा अकुसला वा अब्याकता वा'' ति? ''सिया, महाराज, कुसला, सिया अकुसला, सिया अब्याकता'' ति। ''यदि, भन्ते, कुसला न दुक्खा, यदि दुक्खा न कुसला, 'कुसलं दुक्खं' ति नुप्पज्जती'' ति? ''तं किं मञ्ञसि, महाराज, इध पुरिसस्स हत्थे तत्तं अयोगुळं निक्खिपेय्य, दुतिये हत्थे सीतं हिमपिण्डं निक्खिपेय्य। किं नु खो, महाराज, उभो पि ते दहेय्युं'' ति? ''आम, भन्ते, उभो पि ते दहेय्युं'' ति। ''किं नु खो ते, महाराज, उभो पि उण्हा'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''किं पन ते, महाराज, उभो पि सीतला'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति।

''आजानाहि निग्गहं। यदि तत्तं दहति, न च ते उभो पि उण्हा। तेन नुप्पज्जति। यदि सीतलं दहति, न च ते उभो पि सीतला। तेन नुप्पज्जति। किस्स पन ते, महाराज, उभो पि

भी कहा है–'जो एक ही प्रकार की वेदनाओं का अनुभव करता है–शरीर में उत्पन्न होने वाली को, चित्त में उत्पन्न होने वाली को नहीं'।''

''भन्ते नागसेन! वह दुःख–वेदनाओं को अनुभव करते हुए क्यों (ठहरा) रहता है? अपना शरीर क्यों नहीं छोड़ देता?'' ''महाराज! अर्हत् को न कोई इच्छा रहती है और न कोई अनिच्छा। वह कच्चे को तत्काल पका देना नहीं चाहते। पण्डित लोग पकने की प्रतीक्षा करते हैं। महाराज! धर्म–सेनापति सारिपुत्र ने भी कहा है–

'न मुझे मरने की इच्छा है और न जीने की। जैसे श्रमिक कार्य करने के बाद अपना वेतन पाने की प्रतीक्षा करता है, वैसे ही मैं अपने समय की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

'न मुझे मरने की चाह है, न जीने की। मैं तो ज्ञानपूर्वक सावधान हो, अपने समय की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।'

''भन्ते! आपने ठीक कहा।''

५. वेदनाविषयकप्रश्न– ५. राजा बोला–''भन्ते! क्या सुख–वेदना कुशल, अकुशल या अव्याकृत होती है?'' ''महाराज! तीनों हो सकती है!'' ''भन्ते! यदि जो कुशल हैं, वे दुःख देने वाली नहीं हैं और जो दुःख देने वाली हैं, वे कुशल नहीं हैं; तब ऐसा कोई कुशल हो ही नहीं सकता, जो दुःख देने वाला हो?'' ''महाराज! कोई आदमी अपने एक हाथ में लोहे का धधकता गोला रख ले और दूसरे हाथ में बर्फ का एक टुकड़ा; तो क्या दोनों उसे जलायेंगे?'' ''हाँ; भन्ते! दोनों उसे जलायेंगे।'' ''महाराज! क्या वे दोनों गर्म हैं?'' ''नहीं, भन्ते!'' ''तो क्या दोनों ठंडे हैं?'' ''नहीं, भन्ते!''

''तो, अब आप अपनी पराजय मान लें! यदि गर्म ही कष्ट देता है तो दोनों के गर्म न होने से

दहन्ति न च ते उभो पि उण्हा, न च ते उभो पि सीतला। एकं उण्हं, एकं सीतलं उभो पि ते दहन्ति। तेन नुप्पज्जती'' ति।

''नाहं पटिबलो तया वादिना सद्धिं सल्लपितुं। साधु, अत्थं जप्पेही'' ति।

ततो थेरो अभिधम्मसंयुत्ताय कथाय राजानं मिलिन्दं सञ्ञापेसि- ''छयिमानि, महाराज, गेहनिस्सितानि सोमनस्सानि, छ नेक्खम्मनिस्सितानि सोमनस्सानि; छ गेहनिस्सितानि दोमनस्सानि, छ नेक्खम्मनिस्सितानि दोमनस्सानि; छ गेहनिस्सिता उपेक्खा, छ नेक्खम्मनिस्सिता उपेक्खा ति इमानि छ छक्कानि। अतीता पि छत्तिंसविधा वेदना, अनागता पि छत्तिंसविधा वेदना, पच्चुप्पन्ना पि छत्तिंसविधा वेदना, तदेकज्झं अभिसञ्ञूहित्वा अभिसम्पिण्डेत्वा अट्ठसतं वेदना होन्ती'' ति।

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

६. नामरूपएकत्तनानत्तपञ्हो

६. राजा आह—''भन्ते नागसेन, को पटिसन्दहती'' ति? थेरो आह—''नामरूपं खो, महाराज, पटिसन्दहती'' ति। ''किं इमं येव नामरूपं पटिसन्दहती'' ति? ''न खो, महाराज, इमं येव नामरूपं पटिसन्दहति। इमिना पन, महाराज, नामरूपेन कम्मं करोति सोभनं वा पापकं वा। तेन कम्मेन अञ्ञं नामरूपं पटिसन्दहती'' ति। ''यदि, भन्ते, न इमं येव नामरूपं पटिसन्दहति, ननु सो मुत्तो भविस्सति पापकेहि कम्मेही'' ति? थेरो आह— ''यदि न पटिसन्दहेय्य मुत्तो भवेय्य पापकेहि कम्मेहि। यस्मा च खो, महाराज, पटिसन्दहति, तस्मा न मुत्तो पापकेहि कम्मेही'' ति।

''ओपम्मं करोही'' ति।

कष्ट होना ही नहीं चाहिये; और यदि ठंढा ही कष्ट देता है तो दोनों के ठंढा न होने से भी कष्ट नहीं होना चाहिये! महाराज! तब, वे दोनों कैसे कष्ट देते हैं? क्योंकि न दोनों गर्म हैं और न ठंढे! एक गर्म है एक ठंढा, तब भी दोनों कष्ट देते हैं— ऐसा नहीं हो सकता!"

"भन्ते! आप जैसे वादी के साथ मैं वाद नहीं कर सकता। कृपा कर बतावें बात क्या है।"

तब स्थविर ने अभिधर्म के अनुकूल व्याख्या कर राजा को समझाया— "महाराज! ये छह सांसारिक जीवन के सुख हैं और ये छह त्यागमय जीवन के; ये छह सांसारिक जीवन के दुःख हैं और ये छह त्यागमय जीवन के; ये छह सांसारिक जीवन की उपेक्षायें हैं और ये छह त्यागमय जीवन की। सब मिला कर इस तरह छह षट्क हुए। यों भूतकाल की ३६ वेदनायें, भविष्यत्काल की ३६ वेदनायें और वर्तमान काल की ३६ वेदनायें—इन सब को एक साथ सङ्कलित कर (जोड़) देने से कुल १०८ प्रकार की वेदनायें हुई!"

"भन्ते! आपने ठीक बताया।"

६. नाम—रूप में एकत्वनानात्व प्रश्न— ६. राजा बोला – "भन्ते! कौन जन्म ग्रहण करता है?" स्थविर बोले— "महाराज! नाम (मन) और रूप (भौतिक पदार्थ) जन्म ग्रहण करते हैं।" "भन्ते! क्या ये ही नाम—रूप जन्म ग्रहण करते हैं?" "महाराज! ये ही नाम और रूप जन्म नहीं ग्रहण करते। मनुष्य इस नाम और रूप से जो पाप या पुण्य कर्म करता है; उस कर्म के करने से दूसरे नाम और रूप ग्रहण करते हैं।" "भन्ते! तब तो पहला नाम और रूप अपने कर्मों से मुक्त हो गया?" स्थविर बोले—

"यथा, महाराज, कोचिदेव पुरिसो अञ्ञतरस्स पुरिसस्स अम्बं अवहरेय्य। तमेनं अम्बसामिको गहेत्वा रञ्ञो दस्सेय्य—'इमिना, देव, पुरिसेन मय्हं अम्बा अवहटा' ति। सो एवं वदेय्य—'नाहं, देव, इमस्स अम्बे अवहरामि। अञ्ञे ते अम्बा ये इमिना रोपिता, अञ्ञे ते अम्बा ये मया अवहटा। नाहं दण्डप्पत्तो' ति। किं नु खो सो, महाराज, पुरिसो दण्डप्पत्तो भवेय्या" ति? "आम, भन्ते, दण्डप्पत्तो भवेय्या" ति। "केन कारणेना" ति? "किञ्चा पि सो एवं वदेय्य—पुरिमं, भन्ते, अम्बं अप्पच्चक्खाय पच्छिमेन अम्बेन सो पुरिसो दण्डप्पत्तो भवेय्या" ति। "एवमेव खो, महाराज, इमिना नामरूपेन कम्मं करोति सोभनं वा पापकं वा। तेन कम्मेन अञ्ञं नामरूपं पटिसन्दहति, तस्मा न मुत्तो पापकेहि कम्मेही" ति। (१)

"भिय्यो ओपम्मं करोही" ति।

"यथा महाराज, कोचिदेव पुरिसो अञ्ञतरस्स पुरिसस्स सालिं अवहरेय्य ....पे०.... उच्छुं अवहरेय्य .... पे०.... यथा, महाराज, कोचि पुरिसो हेमन्तकाले अग्गिं जालेत्वा विसिब्बेत्वा अविज्झापेत्वा पक्कमेय्य। अथ खो सो अग्गि अञ्ञतरस्स पुरिसस्स खेत्तं डहेय्य। तमेनं खेत्तसामिको गहेत्वा रञ्ञो दस्सेय्य— 'इमिना, देव, पुरिसेन मय्हं खेत्तं दड्ढं' ति। सो एवं वदेय्य—'नाहं, देव, इमस्स खेत्तं झापेमि। अञ्ञो सो अग्गि यो मया अविज्झापितो, अञ्ञो सो अग्गि येनिमस्स खेत्तं दड्ढं। नाहं दण्डप्पत्तो' ति। किन्नु खो सो, महाराज, पुरिसो दण्डप्पत्तो भवेय्या" ति? "आम, भन्ते, दण्डप्पत्तो भवेय्या" ति। "केन कारणेना" ति? "किञ्चापि सो एवं वदेय्य—'पुरिमं, भन्ते, अग्गिं अप्पच्चक्खाय पच्छिमेन अग्गिना सो पुरिसो दण्डप्पत्तो भवेय्या" ति। "एवमेव खो, महाराज, इमिना नामरूपेन कम्मं करोति

"महाराज! यदि फिर जन्म न ग्रहण करे तो मुक्त हो गया; किन्तु क्योंकि वह फिर भी जन्म ग्रहण करता है, इसलिये (मुक्त) नहीं हुआ।"

"कृपया इसे उपमा देकर समझाइये।"

"महाराज! कोई आदमी किसी का आम चुरा ले। उसे आम का मालिक पकड़ कर राजा के पास ले जाय—'राजन्! इसने मेरा आम चुरा लिया है।' इस पर वह ऐसा कहे—'नहीं! मैंने इसके आम नहीं चुराये; क्योंकि इसने जो आम लगाये और मैंने जो लिये वे परस्पर दूसरे थे। अतः मुझे दण्ड नहीं मिलना चाहिये।' महाराज! अब आप बतावें कि उसे दण्ड मिलना चाहिये या नहीं?" "हाँ भन्ते! दण्ड मिलना चाहिये।" "सो क्यों?" "भन्ते! वह भले ही ऐसा कहे, किन्तु पहले आम को छोड़ दूसरे को ही चुराने के लिये उसे अवश्य दण्ड मिलना चाहिये।" "महाराज! इसी तरह मनुष्य इस नाम और रूप से पाप या पुण्य कर्मों को करता है। उन कर्मों से दूसरा नाम और रूप जन्म ग्रहण करता है। इसलिये वह अपने कर्मों से मुक्त नहीं हुआ।" (१)

"कृपया यहाँ कोई दूसरी उपमा भी दें।"

"महाराज! कोई आदमी किसी का धान.... या ईख चुरा ले और पकड़े जाने पर पूर्वोक्त आम के चोर की तरह ही कहे....। या महाराज! कोई आदमी जाड़े में अग्नि जला कर तापे और उसे बिना बुझाये छोड़ कर चला जाय। वह अग्नि किसी दूसरे आदमी का खेत जला दे। तब उसे पकड़कर खेत का स्वामी राजा के पास ले जाय—'राजन्! इसने मेरे खेत को जला दिया है।' इस पर वह ऐसा कहे—'मैंने इसके खेत को नहीं जलाया है। देव! वह तो दूसरी ही अग्नि थी, जो मैंने जलायी थी और यह दूसरी,

सोभनं वा पापकं वा, तेन कम्मेन अञ्ञं नामरूपं पटिसन्दहति; तस्मा न मुत्तो पापकेहि कम्मेही'' ति। (२-४)

''भिय्यो ओपम्मं करोही'' ति।

''यथा, महाराज, कोचिदेव पुरिसो पदीपं आदाय पासादं अभिरूहित्वा भुञ्जेय्य। पदीपो झायमानो तिणं झापेय्य, तिणं झायमानं घरं झापेय्य। घरं झायमानं गामं झापेय्य। गामजनो तं पुरिसं गहेत्वा एवं वदेय्य-'किस्स त्वं, भो पुरिसो, गामं झापेसी' ति? सो एवं वदेय्य—'नाहं, भो, गामं झापेसिं, अञ्ञो सो पदीपग्गि यस्साहं आलोकेन भुञ्जिं, अञ्ञो सो अग्गि येन गामो झापितो' ति। ते विवदमाना तव सन्तिके आगच्छेय्युं। कस्स त्वं, महाराज, अत्थं धारेय्यासी'' ति? ''गामजनस्स, भन्ते'' ति। ''किङ्कारणा'' ति? ''किञ्चापि सो एवं वदेय्य, अपि च ततो एव सो अग्गि निब्बत्तो'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, किञ्चापि अञ्ञं मारणन्तिकं नामरूपं, अञ्ञं पटिसन्धिस्मिं नामरूपं, अपि च ततो येव तं निब्बत्तं; तस्मा न मुत्तो पापकेहि कम्मेही'' ति। (५)

''भिय्यो ओपम्मं करोही'' ति।

''यथा, महाराज, कोचिदेव पुरिसो दहरिं दारिकं वारेत्वा सुङ्कं दत्वा पक्कमेय्य। सा अपरेन समयेन महती अस्स वयप्पत्ता, ततो अञ्ञो पुरिसो सुङ्कं दत्वा विवाहं करेय्य। इतरो आगन्त्वा एवं वदेय्य—'किस्स पन मे त्वं, अम्भो पुरिस, भरियं नेसी' ति? सो एवं वदेय्य— 'नाहं तव भरियं नेमि। अञ्ञा सा दारिका दहरी तरुणी, या तया वारिता च दिन्नसुङ्का च,

---

जिससे इसका खेत जल गया। मुझे दण्ड नहीं मिलना चाहिये।' महाराज! अब आप बतावें कि उसे दण्ड मिलना चाहिये या नहीं?'' ''हाँ, भन्ते! मिलना चाहिये।'' ''सो क्यों?'' ''भन्ते! भले ही वह ऐसा कहे, किन्तु उसी की जलायी हुई अग्नि ने ही बढ़ते-बढ़ते खेत को भी जला दिया।'' ''महाराज! इसी तरह मनुष्य इस नाम और रूप से पाप या पुण्य कर्मों को करता है....।'' (२-४)

''कृपया कोई और उपमा देकर भी समझावें।''

''महाराज! कोई आदमी दीपक ले कर अपने घर के ऊपरवाली छत पर जाय और भोजन करें। वह दीपक जलता हुआ कुछ तृणसमूह में लग जाय। वे तृण घर को अग्नि लगा दें और वह घर सारे गाँव को अग्नि लगा दे।'' गाँव वाले उस आदमी को पकड़ कर कहें— 'तुम ने गाँव में क्यों अग्नि लगा दी?' इस पर वह ऐसा कहे—'मैंने गाँव में अग्नि नहीं लगायी। उस दीपक की अग्नि दूसरी ही थी, जिसके प्रकाश में मैंने भोजन किया और वह अग्नि दूसरी ही थी जिससे गाँव जल गया।' इस तरह परस्पर कलह करते हुए आप के पास आवें, तब आप किसके पक्ष में फैसला देंगे?'' ''भन्ते! गाँव वालों केपक्ष में।'' ''सो क्यों?'' ''भले ही वह ऐसा कुछ कहता रहे, किन्तु अग्नि उसी ने लगायी।'' ''महाराज! इसी तरह यद्यपि मृत्यु के साथ अन्य नाम और रूप का लय होता है और जन्म के साथ दूसरा नाम और रूप उठ खड़ा होता है; किन्तु यह भी उसी से होता है। इसलिये वह अपने कर्मों से मुक्त नहीं हुआ।'' (५)

''कृपया फिर उपमा देकर समझायें।''

''महाराज! कोई आदमी एक छोटी लड़की से विवाह कर उसके लिये रुपये देकर कहीं दूर चला जाय। कुछ दिनों के बाद वह (लड़की) बढ़कर युवति हो जाय। तब, कोई दूसरा आदमी रुपये देकर उससे विवाह कर ले। इसके बाद पहला आदमी आकर कहे—'तुम मेरी स्त्री को क्यों ले जा रहे

अञ्ञायं दारिका महती वयप्पत्ता मया वारिता च दिन्नसुङ्का चा' ति। ते विवदमाना तव सन्तिके आगच्छेय्युं। कस्स त्वं, महाराज, अत्थं धारेय्यासी'' ति? ''पुरिमस्स, भन्ते'' ति। ''किं कारणा'' ति? ''किञ्चापि सो एवं वदेय्य, अपि च ततो एव सा महती निब्बत्ता'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, किञ्चापि अञ्ञं मारणन्तिकं नामरूपं, अञ्ञं पटिसन्धिस्मिं नामरूपं। अपि च ततो येव तं निब्बत्तं; तस्मा न परिमुत्तो कम्मेही'' ति। (६)

''भिय्यो ओपम्मं करोही'' ति।

''यथा, महाराज, कोचिदेव पुरिसो गोपालकस्स हत्थतो खीरघटं किणित्वा तस्सेव हत्थे निक्खिपित्वा पक्कमेय्य—'स्वे गहेत्वा गमिस्सामी' ति। तं अपरज्ज दधि सम्पज्जेय्य। सो आगन्त्वा एवं वदेय्य—'देहि मे खीरघटं' ति। सो दधिं दस्सेय्य। इतरो एवं वदेय्य—'नाहं तव हत्थतो दधिं किणामि, देहि मे खीरघटं' ति। सो एवं वदेय्य—'अजानतो ते खीरं दधिभूतं' ति। विवदमाना तव सन्तिके आगच्छेय्युं। कस्स त्वं, महाराज, अत्थं धारेय्यासी'' ति? ''गोपालकस्स, भन्ते'' ति। ''किङ्कारणा'' ति? ''किञ्चापि सो एवं वदेय्य—'अपि च ततो येव तं निब्बत्तं' '' ति।''एवमेव खो, महाराज, किञ्चापि अञ्ञं मारणन्तिकं नामरूपं, अञ्ञं पटिसन्धिस्मिं नामरूपं। अपि च ततो येव तं निब्बत्तं। तस्मा न परिमुत्तो पापकेही कम्मेही'' ति। (७)

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

७. थेरपटिसन्दहनापटिसन्दहनपञ्हो

७. राजा आह—''भन्ते नागसेन, त्वं पन पटिसन्दहिस्ससी'' ति? ''अलं, महाराज,

---

हो?' इस पर वह ऐसा उत्तर दे—'मैं तुम्हारी स्त्री को नहीं ले जा रहा हूँ। वह छोटी लड़की दूसरी ही थी, जिसके साथ तुमने विवाह किया था और जिसके लिए रुपये दिये थे। यह वयःप्राप्त तरुणी दूसरी ही है, जिसके साथ मैंने विवाह किया और जिसके लिये रुपये दिये हैं।' यदि वे दोनों इस तरह झगड़ते हुए आपके पास आवें तो आप किधर फैसला देंगे?'' ''भन्ते! पहले आदमी की ओर।'' ''सो क्यों?'' ''वह ऐसा कुछ भले ही क्यों न कहे, किन्तु वही लड़की तो बढ़कर तरुणी हुई।'' ''महाराज! इसी तरह यद्यपि मृत्यु के साथ अन्य नाम और रूप....पूर्ववत्....। इसलिये वह अपने कर्मों मुक्त नहीं हुआ।'' (६)

''कृपया दूसरी कोई उपमा देकर यह समझावें।''

''महाराज! कोई आदमी किसी ग्वाले से एक मटका दूध खरीदे और मटके को उसी के यहाँ छोड़ कर और ऐसा सोचकर चला जाय—'कल लौटते हुए इसे लेता जाउँगा।' वह दूध रात भर में जम कर दही हो जाय। दूसरे दिन वह आदमी आकर ग्वाले से अपना दूध का मटका माँगें। ग्वाला उस दही जमे हुए मटके को उसे दे। इस पर वह आदमी बोले—'मैं तुमसे दही लेना नहीं चाहता, मेरा दूध का मटका दो।' ग्वाला बोले—'यह तो स्वयं जम कर दही हो गया है।' महाराज! इस तरह वे दोनों झगड़ते हुए आपके पास आवें तो आप किधर फैसला देंगे?'' ''भन्ते! ग्वाले की ओर।'' ''सो क्यों?'' ''वह ऐसा भले ही क्यों न कहे, किन्तु दूध ही तो जम कर दही हुआ।'' ''महाराज! इसी तरह यद्यपि मृत्यु के साथ अन्य नाम और रूप....पूर्ववत्....। इसलिये वह अपने कर्मों से मुक्त नहीं हुआ।'' (७)

''भन्ते! आपने ठीक समझा दिया।''

७. नागसेन—पुनर्जन्मविषयकप्रश्न— ७. राजा बोला—''महाराज! आपका पुनर्जन्म होगा कि नहीं?''

किं ते तेन पुच्छितेन! ननु मया पटिगच्चेव अक्खातं—'सचे, महाराज, सउपादानो भविस्सामि, पटिसन्दहिस्सामि; सचे अनुपादानो भविस्सामि, न पटिसन्दहिस्सामी''' ति।

"ओपम्मं करोही" ति।

"यथा, महाराज, कोचिदेव पुरिसो रञ्ञो अधिकारं करेय्य, राजा तुट्ठो अधिकारं ददेय्य, सो तेन अधिकारेन पञ्चहि कामगुणेहि समप्पितो समङ्गीभूतो परिचरेय्य, सो चे जनस्स आरोचेय्य—'न मे किञ्चि पटिकरोती' ति। किं नु खो सो, महाराज, पुरिसो युत्तकारी भवेय्या" ति? "न हि, भन्ते" ति। "एवमेव खो, महाराज, किं ते तेन पुच्छितेन! ननु मया पटिगच्चेव अक्खातं—'सचे सउपादानो भविस्सामि पटिसन्दहिस्सामि; सचे अनुपादानो भविस्सामि, न पटिसन्दहिस्सामी' " ति।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

८. नामरूपपटिसन्दहनपञ्हो

८. राजा आह—"भन्ते नागसेन, यं पनेतं ब्रूसि—'नामरूपं' ति, तत्थ कतमं नामं, कतमं रूपं" ति। यं तत्थ, महाराज, ओळारिकं—एतं रूपं। ये तत्थ सुखुमा चित्तचेतसिका धम्मा—एतं नामं ति। "भन्ते नागसेन, केन कारणेन नामं येव न पटिसन्दहति, रूपं येव वा" ति? "अञ्ञमञ्ञूपनिस्सिता, महाराज, एते धम्मा एकतो व उप्पज्जन्ती" ति।

"ओपम्मं करोही" ति।

"यथा, महाराज, कुक्कुटिया कललं न भवेय्य, अण्डं पि न भवेय्य, यं च तत्थ कललं, यं च अण्डं—उभो पेते अञ्ञमञ्ञूपनिस्सिता, एकतो व नेसं उप्पत्ति होति; एवमेव खो, महाराज, यदि तत्थ नामं न भवेय्य, रूपं पि न भवेय्य, यञ्चेव तत्थ नामं, यञ्चेव तत्थ

"छोड़िये महाराज! यह पूछने से क्या लाभ? मैंने तो पहले ही कह दिया है कि यदि सांसारिक आसक्ति के साथ मरूँगा तो जन्म ग्रहण करूँगा, अन्यथा नहीं।"

"कृपया इसे उपमा देकर समझायें।"

"महाराज! जैसे कोई आदमी राजा की सेवा करे। राजा उससे प्रसन्न होकर उसे कोई बड़ा पद दे दे। वह पद पाकर वह सभी सुख भोगता हुआ सुख से रहे और लोगों से कहे— 'राजा ने मेरी कुछ भी भलाई नहीं की है'। तो क्या वह ठीक कहता है?" "नहीं भन्ते!" "महाराज! इसी तरह, इसके पूछने से क्या लाभ! मैंने तो पहले ही कह दिया है ....।"

"बहुत अच्छा, भन्ते!"

८. नाम–रूपपरस्परआश्रयणप्रश्न— ८. राजा बोला—"भन्ते! आप जो नाम और रूप के विषय में कह रहे थे, सो वह नाम क्या चीज है और रूप क्या चीज है?" "महाराज! जितने स्थूल पदार्थ हैं, सभी रूप हैं; और जितने सूक्ष्म मानसिक धर्म हैं, सभी नाम हैं।" "भन्ते! ऐसा क्यों नहीं होता कि या तो केवल नाम हो या फिर केवल रूप ही जन्म ग्रहण करे?" "महाराज! नाम और रूप दोनों परस्पर आश्रित हैं, वे एक दूसरे के बिना ठहर नहीं सकते। दोनों साथ ही होते हैं।"

"कृपया इसे उपमा देकर समझाइये।"

"महाराज! यदि मुर्गी के पेट में कलल (गर्भ) न हो तो अण्डा भी नहीं हो सकता, क्योंकि कलल और अण्डा दोनों एक दूसरे पर आश्रित हैं, दोनों एक ही साथ होते हैं; इसी तरह, महाराज! यदि वहाँ

रूपं—उभो पेते अञ्ञमञ्ञूपनिस्सिता। एकतो व नेसं उप्पत्ति होति। एवमेतं दीघमद्धानं सन्धावितं'' ति।

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

९. अद्धानपञ्हो

९. राजा आह—''भन्ते नागसेनं, यं पनेतं ब्रूसि—'दीघमद्धानं' ति, किमेतं अद्धानं नामा'' ति? ''अतीतो, महाराज, अद्धा, अनागतो अद्धा, पच्चुप्पन्नो अद्धा'' ति। ''किं पन, भन्ते, सब्बे अद्धा अत्थी'' ति? ''कोचि, महाराज, अद्धा अत्थि, कोचि नत्थी'' ति। ''कतमो पन, भन्ते, अत्थि, कतमो नत्थी'' ति? ''ये ते, महाराज, सङ्खारा अतीता विगता निरुद्धा विपरिणता, सो अद्धा नत्थि। ये धम्मा विपाका, ये च विपाकधम्मधम्मा, ये च अञ्ञत्र पटिसन्धि देन्ति, सो अद्धा अत्थि। ये सत्ता कालङ्कता अञ्ञत्र उप्पन्ना, सो च अद्धा अत्थि। ये च सत्ता परिनिब्बुता, सो च अद्धा नत्थि, परिनिब्बुतत्ता'' ति।

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

(इमस्मिं वग्गे नव पञ्हा।) *दुतियो अद्धानवग्गो निट्ठितो॥*

३. विचारवग्गो

१. अद्धानमूलपञ्हो

१. राजा आह—''भन्ते नागसेन, अतीतस्स अद्धानस्स किं मूलं, अनागतस्स अद्धानस्स किं मूलं, पच्चुप्पन्नस्स अद्धानस्स किं मूलं'' ति? ''अतीतस्स च, महाराज, अद्धानस्स

नाम न हो तो रूप भी नहीं होगा, क्योंकि नाम और रूप—दोनों अन्योन्याश्रित है। एक से ही उनकी उत्पत्ति होती है। यह अनन्त काल से होता चला आया है।''

''भन्ते! आप ने ठीक कहा।''

९. कालविषयकप्रश्न— ९. राजा बोला—''भन्ते नागसेन! आपने जो अभी कहा—'अनन्त काल से'—सो यह काल क्या वस्तु है?'' ''महाराज! काल तीन हैं—भूत, भविष्यत् और वर्तमान।'' ''भन्ते! क्या सचमुच काल नाम की वस्तु है?'' ''महाराज! काल कोई वस्तु है भी और नहीं भी।'' ''भन्ते! कौन सा काल है और कौन सा नहीं?'' ''महाराज! कुछ ऐसे संस्कार हैं जो बीत गये, नष्ट हो गये, अब नहीं रहे, लीन हो गये, सर्वथा परिवर्तित हो गये उनके लिये काल नहीं हैं। जो धर्म लय दिखा रहे हैं या कहीं न कही प्रतिसन्धि कर रहे हैं, उनके लिये काल है। जो प्राणी मरकर फिर भी जन्म ले रहे हैं, उनके लिये काल है। जो प्राणी कहीं मर कर फिर नहीं उत्पन्न होते उन (अर्हत्) के लिये काल नहीं है। जो यहाँ परम निर्वाण को प्राप्त हो गये उनके लिये भी काल नहीं है। निर्वाण पाने के बाद काल कैसा!''

''भन्ते नागसेन! आपने ठीक समझाया।''

द्वितीय अध्धानवर्ग समाप्त॥

(इस वर्ग में ९ प्रश्न हैं।)

३. विचारवर्ग

१. त्रिविध काल का मूल (अविद्या)— १. राजा बोला—''भन्ते! अतीत काल, भविष्यत् काल और वर्तमान काल का क्या मूल है ?'' ''महाराज! अतीत काल का मूल अविद्या है। अविद्या के होने से

अविज्जा मूलं। अविज्जापच्चया सङ्खारा, सङ्खारपच्चया विञ्ञाणं, विञ्ञाणपच्चया नामरूपं, नामरूपपच्चया सळायतनं, सळायतनपच्चया फस्सो, फस्सपच्चया वेदना, वेदनापच्चया तण्हा, तण्हापच्चया उपादानं, उपादानपच्चया भवो, भवपच्चया जाति, जातिपच्चया जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा सम्भवन्ति। एवमेतस्स केवलस्स अद्धानस्स पुरिमा कोटि न पञ्ञायती'' ति।

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

२. पुरिमकोटिपञ्हो

२. राजा आह—''भन्ते नागसेन, यं पनेतं ब्रूसि—'पुरिमा कोटि न पञ्ञायती' ति, तस्स ओपम्मं करोही'' ति।

''यथा, महाराज, पुरिसो परित्तं बीजं पठवियं निक्खिपेय्य, ततो अङ्कुरो उट्ठहित्वा अनुपुब्बेन वुड्ढिं विरूळ्हिं वेपुल्लं आपज्जित्वा फलं ददेय्य, ततो बीजं गहेत्वा पुन रोपेय्य, ततो पि अङ्कुरो उट्ठहित्वा अनुपुब्बेन वुड्ढिं विरूळ्हिं वेपुल्लं आपज्जित्वा फलं ददेय्य। एवमेतिस्सा सन्ततिया अत्थि अन्तो'' ति? ''नत्थि, भन्ते'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, अद्धानस्सा पि पुरिमा कोटि न पञ्ञायती'' ति। (१)

''भिय्यो ओपम्मं करोही'' ति।

''यथा, महाराज, कुक्कुटिया अण्डं भवेय्य, अण्डतो कुक्कुटी, कुक्कुटिया अण्डं ति, एवमेतिस्सा सन्ततिया अत्थि अन्तो'' ति? ''नत्थि, भन्ते'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, अद्धानस्सापि पुरिमा कोटि न पञ्ञायती'' ति। (२)

''भिय्यो ओपम्मं करोही'' ति।

संस्कार, संस्कार के होने से विज्ञान, विज्ञान के होने से नाम और रूप, नाम-रूप के होने से छह आयतन, छह आयतनों के होने से स्पर्श, स्पर्श होने से वेदना, वेदना के होने से तृष्णा, तृष्णा के होने से उपादान (ग्रहण की इच्छा),उपादान के होने से भव, भव के होने से जन्म, जन्म के होने से मरना, शोक, रोना-पीटना, दुःख, बेचैनी और उद्विग्नता होती है। इस प्रकार, इस दुःखों के क्रम का आरम्भ कहाँ से हुआ?—इसका पता नहीं[१]।'

"भन्ते! आपने ठीक कहा।"

२. काल का अज्ञात आरम्भ— २. राजा बोला—"भन्ते! आप कहते हैं— 'इसका आरम्भ कहाँ से हुआ इसका पता नहीं'—इसे कृपया उपमा देकर समझायें।"

"महाराज! जैसे कोई आदमी एक छोटे से बीज को जमीन में रोप दे। उस बीज से अंकुर फूटें और धीरे-धीरे-धीरे बड़ा होकर वृक्ष हो जाय। उस वृक्ष में फल लगें। उस फल के बीज को वह आदमी फिर रोप दे। उससे अंकुर फूटकर....फल लग जाँय। महाराज! तो आप बतावें, क्या इस प्रवाह का कहीं अन्त होगा?" "नहीं भन्ते!" "महाराज! इसी तरह काल का आरम्भ कहाँ से हुआ—इसका पता नहीं।" (१)

"कृपया फिर उपमा देकर समझाइये।"

"महाराज! जैसे मुर्गी से अण्डा, अण्डे से मुर्गी, मुर्गी से अण्डा—इस सातत्य का कोई अन्त नहीं है, उसी तरह अतीत काल का भी कोई आरम्भ नहीं है।" (२)

---

१. द्र०—प्रतीत्य-समुत्पाद, महावग्ग (वि० पि०), पृष्ठ १।

थेरो पठवियं चक्कं लिखित्वा मिलिन्दं राजानं एतदवोच—"अत्थि, महाराज, इमस्स चक्कस्स अन्तो" ति? "नत्थि, भन्ते" ति। "एवमेव खो, महाराज, इमानि चक्कानि वुत्तानि भगवता—'चक्खुं च पटिच्च रूपे च उप्पज्जति चक्खुविञ्ञाणं, तिण्णं सङ्गति फस्सो; फस्सपच्चया वेदना, वेदनापच्चया तण्हा, तण्हापच्चया उपादानं, उपादानपच्चया कम्मं, कम्मतो पुन चक्खुं जायती' ति एवमेतिस्सा सन्ततिया अत्थि अन्तो" ति? "नत्थि भन्ते" ति।

"सोतं च पटिच्च सद्दे च....पे०....मनं च पटिच्च धम्मे च उप्पज्जति मनोविञ्ञाणं, तिण्णं सङ्गति फस्सो; फस्सपच्चया वेदना, वेदनापच्चया तण्हा, तण्हापच्चया उपादानं, उपादान-पच्चया कम्मं, कम्मतो पुन मनो जायती ति एवमेतिस्सा सन्ततिया अत्थि अन्तो" ति? "नत्थि, भन्ते" ति। "एवमेव खो, महाराज, अद्धानस्सापि पुरिमा कोटि न पञ्ञायती" ति।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

३. पुरिमकोटिपञ्ञायनपञ्हो

३. राजा आह—"भन्ते नागसेन, यं पनेतं ब्रूसि—'पुरिमा कोटि न पञ्ञायती' ति, कतमा च सा पुरिमा कोटी" ति? "यो खो, महाराज, अतीतो अद्धा, एसा पुरिमा कोटी" ति।

"भन्ते नागसेन, यं पनेतं ब्रूसि—'पुरिमा कोटि न पञ्ञायती' ति, किं पन, भन्ते, सब्बा पि पुरिमा कोटि न पञ्ञायती" ति? "काचि, महाराज, पञ्ञायति, काचि न पञ्ञायती" ति।

"कतमा, भन्ते, पञ्ञायति, कतमा न पञ्ञायती" ति? "इतो पुब्बे, महाराज, सब्बेन सब्बं सब्बथा सब्बं अविज्जा नाहोसी ति एसा पुरिमा कोटि न पञ्ञायति, यं अहुत्वा सम्भोति हुत्वा पटिविगच्छति, एसा पुरिमा कोटि पञ्ञायती" ति।

"कृपया दूसरी कोई उपमा देकर समझाइये।"

स्थविर पृथ्वी पर एक गोल आकार खींच कर बोले— "महाराज! इस चक्र का कहीं अन्त है?" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! इसी तरह, भगवान् ने इसे चक्र बताया है। चक्षु और रूप के होने से चक्षुर्विज्ञान उत्पन्न होता है। जब ये तीनों एक साथ मिलते हैं तो स्पर्श होता है। स्पर्श से वेदना और वेदना से तृष्णा होती है। इस तृष्णा (देखने की इच्छा) से पुनः चक्षु उत्पन्न होता है। भला, इस क्रम का कहीं अन्त है?" "नहीं, भन्ते!"

"श्रोत्र (कान) और शब्दों के होने से .... । मन और धर्मों के होने से मनोविज्ञान उत्पन्न होता है। तीनों के एक साथ मिलने से स्पर्श होता है। स्पर्श से वेदना और वेदना से तृष्णा, तृष्णा से उपादान, उपादान से कर्म और कर्म से पुनः मन उत्पन्न होता है। भला, इस क्रम का कहीं अन्त है?" "नहीं भन्ते!" "महाराज! इसी तरह, काल का कब आरम्भ होता है इसका पता नहीं"। (३)

"भन्ते ! आपने ठीक समझाया।"

३. आरम्भ काल का ज्ञान— ३. राजा बोला—"भन्ते! आप जो कहते हैं—'आरम्भ कहाँ से होता है, इसका पता नहीं'—सो यह 'आरम्भ' क्या है?" "महाराज! जो भूतकाल है, वही आरम्भ है।"

"भन्ते! आप जो यह कहते है—'आरम्भ का पता नहीं लगता' तो क्या किसी भी आरम्भ का पता नहीं लगता?" "महाराज! किसी का पता लगता है और किसी का नहीं।"

"भन्ते! किसका पता लगता है और किसका नहीं?" "महाराज! पहले कभी अविद्या सर्वथा न

"भन्ते नागसेन, यं अहुत्वा सम्भोति, हुत्वा पटिविगच्छति, ननु तं उभतो छिन्नं अत्थं गच्छती" ति। "यदि, महाराज, उभतो छिन्नं अत्थं गच्छति, उभतो छिन्ना सक्का वड्ढेतुं" ति? "आम, सा पि सक्का वड्ढेतुं" ति। "नाहं, भन्ते, एतं पुच्छामि, कोटितो सक्का वड्ढेतुं ति?" "आम, सक्का वड्ढेतुं" ति। "ओपम्मं करोही" ति।

"थेरो तस्स रुक्खूपमं अकासि—खन्धा च केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स बीजानी' ति"।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

४. सङ्खारजायमानपञ्हो

४. राजा आह—"भन्ते नागसेन, अत्थि केचि सङ्खारा, ये जायन्ती" ति? "आम, महाराज, अत्थि सङ्खारा, ये जायन्ती" ति। "कतमे ते, भन्ते" ति? "चक्खुस्मिं च खो, महाराज, सति रूपेसु च चक्खुविञ्ञाणं होति, चक्खुविञ्ञाणे सति चक्खुसम्फस्सो होति, चक्खुसम्फस्से सति वेदना होति, वेदनाय सति तण्हा होति, तण्हाय सति उपादानं होति, उपादनने सति भवो होति, भवे सति जाति होति, जातिया सति जरामरणं सोकपरिदेवदुक्ख-दोमनस्सुपायासा सम्भवन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति।

"चक्खुस्मि च खो, महाराज, असति रूपेसु च असति चक्खुविञ्ञाणं न होति, चक्खु-विञ्ञाणे असति चक्खुसम्फस्सो न होति, चक्खुसम्फस्से असति वेदना न होति, वेदनाय असति तण्हा न होति, तण्हाय असति उपादानं न होति, उपादाने असति भवो न होति, भवे असति जाति न होति, जातिया असति जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा न होन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धन्स निरोधो होती" ति।

नहीं थी--ऐसे आरम्भ का पता नहीं लगता है। यदि कोई वस्तु न होकर हो जाती है और कोई होकर नष्ट हो जाती है तो ऐसे 'आरम्भ' का पता लगता है।"

"भन्ते! यदि कोई वस्तु न होकर हो जाती है और कोई होकर नष्ट हो जाती है तो इस तरह दोनों ओर से काटी जा कर क्या उसकी कोई स्थिति हुई?" "महाराज! हाँ, यदि वह दोनों ओर से काटी जा कर दोनों ओर बढ़ने लगे।" "भन्ते! मैं यह नहीं पूछता। वह आरम्भ से (जहाँ से कटा है वहाँ से) बढ़ सकता है या नहीं?" "हाँ, बढ़ सकता है।" "कृपया इसी बात को उपमा दे कर समझावें।"

"स्थविर ने उसी 'बीज और वृक्ष' की उपमा देकर कहा—"ये स्कन्ध दुःख-प्रवाह के बीज हैं।"

"भन्ते! आपने ठीक कहा।"

४. संस्कारजायमानप्रश्न— ४. राजा बोला— "भन्ते! क्या ऐसे संस्कार हैं, जो उत्पन्न होते हैं?" "हाँ, हैं।" "वे कौन से हैं?" "महाराज! चक्षु और रूपों के रहने से चक्षुर्विज्ञान उत्पन्न होता है। चक्षुर्विज्ञान के होने से चक्षुःस्पर्श होता है। उससे वेदना होती है, वेदना से तृष्णा एवं तृष्णा के होने से उपादान होता है। उपादान के होने से भव होता है, भव होने से जन्म होता है, जन्म से बुढ़ापा, मरना, शोक, रोना-कलपना, दुःख, बेचैनी और उद्विग्नता होती है। इस तरह केवल दुःख से ही दुःखसमुदय होता है।

"महाराज! चक्षु और रूपों के न रहने से चक्षुर्विज्ञान नहीं उत्पन्न होता। ....स्पर्श नहीं होता। .... वेदना। .... तृष्णा। .... उपादान....। भव....। ...जन्म....। ...बुढ़ापा, मरना.... नहीं होता। इस तरह, इस दुःख के सम्पूर्ण प्रवाह की निवृत्ति हो जाती है।"

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

५. अभवन्तसङ्खारजायमानपञ्हो

५. राजा आह— "भन्ते नागसेन, अत्थि केचि सङ्खारा ये अभवन्ता जायन्ती" ति? "नत्थि, महाराज, केचि सङ्खारा, ये अभवन्ता जायन्ति। भवन्ता येव खो, महाराज, सङ्खारा जायन्ती" ति।

"ओपम्मं करोही" ति।

"तं किं मञ्ञसि, महाराज, इदं गेहं अभवन्तं जातं, यत्थ त्वं निसिन्नो सी" ति? "नत्थि किञ्चि, भन्ते, इध अभवन्तं जातं, भवन्तं येव जातं। इमानि खो, भन्ते, दारूनि वने अहेसुं, अयं च मत्तिका पठवियं अहोसि, इत्थीनं च पुरिसानं च तज्जेन वायामेन एवमिदं गेहं निब्बत्तं" ति। "एवमेव खो, महाराज, नत्थि केचि सङ्खारा ये अभवन्ता जायन्ति, भवन्ता येव सङ्खारा जायन्ती" ति। (१)

"भिय्यो ओपम्मं करोही" ति।

"यथा, महाराज, ये केचि बीजगामभूतगामा पठवियं निक्खित्ता अनुपुब्बेन वुड्ढिं विरूळ्हिं वेपुल्लं आपज्जमाना पुप्फानि च फलानि च ददेय्युं, न ते रुक्खा अभवन्ता जाता, भवन्ता येव रुक्खा जाता। एवमेव खो, महाराज, नत्थि केचि सङ्खारा ये अभवन्ता जायन्ति; भवन्ता येव ते सङ्खारा जायन्ती" ति। (२)

"भिय्यो ओपम्मं करोही" ति।

"यथा, महाराज, कुम्भकारो पठविया मत्तिकं उद्धरित्वा नानाभाजनानि करोति, न

"हाँ, भन्ते! ठीक है।"

५. असत्संस्कारजायमानप्रश्न— ५. राजा बोला—"भन्ते! क्या ऐसे संस्कार हैं, जो न होकर भी उत्पन्न हो जाते हैं?" "महाराज! ऐसे कोई संस्कार नहीं हैं, जो न होकर भी पैदा हो जाते हों। वे ही संस्कार उत्पन्न होते हैं, जिनका प्रवाह पहले से चला आता है।"

"कृपया इसे उपमा दे कर समझावें।"

"महाराज! आप जिस घर में बैठे हैं, क्या यह न होकर हो गया है?" "भन्ते! ऐसी कोई भी चीज नहीं है, जो सर्वथा न होकर भी हो जाय। वे ही चीजें उत्पन्न होती है, जिनका प्रवाह पहले से चला आ रहा हो। घर की ये लकड़ियाँ पहले जंगल में उपस्थित थीं। यह मिट्टी पहले जमीन में थी। स्त्री और पुरुषों के परिश्रम से ही यह घर निर्मित हुआ है।" "महाराज! इसी तरह कोई भी संस्कार नहीं हैं, जो न होकर उत्पन्न हुये हों। वे ही संस्कार उत्पन्न होते हैं, जिनका सातत्य पहले से चला आता है।" (१)

"कृपया और कोई उपमा देकर समझावें।"

"महाराज! सभी पेड़–पौधे पृथ्वी से ही पैदा हो कर बढ़ते, बड़े होते और फूलते–फलते हैं। ये सभी पहले न होकर नहीं पैदा हो गये, अपितु इनकी स्थिति का प्रवाह पहले से ही चला आता है। महाराज! इसी तरह, ऐसी कोई भी चीज नहीं, जो सर्वथा न होकर हो जाती है। वही चीज उत्पन्न होती हैं, जिनका प्रवाह पहले से ही चला आता है।" (२)

"कृपया और कोई उपमा देकर भी समझाइये।"

"महाराज! कुम्हार जमीन से मिट्टी खोदकर उससे अनेक प्रकार के बर्तन गढ़ता है। वे बर्तन

तानि भाजनानि अभवन्तानि जातानि, भवन्तानि येव जातानि; एवमेव खो, महाराज, नत्थि केचि सङ्खारा ये अभवन्ता जायन्ति, भवन्ता येव सङ्खारा जायन्ती'' ति। (३)

''भिय्यो ओपम्मं करोही'' ति।

''यथा, महाराज, वीणाय पत्तं न सिया, चम्मं न सिया, दोणि न सिया, दण्डो न सिया, उपवीणो न सिया, तन्तियो न सियुं, कोणो न सिया, पुरिसस्स च तज्जो वायामो न सिया, जायेय्य सद्दो'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''यतो च खो महाराज, वीणाय पत्तं सिया, चम्मं सिया, दोणि सिया, दण्डो सिया, उपवीणो सिया, तन्तियो सियुं, कोणो सिया, पुरिसस्स तज्जो वायामो सिया, जायेय्य सद्दो'' ति? ''आम, भन्ते, जायेय्या'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, नत्थि केचि सङ्खारा, ये अभवन्ता जायन्ति। भवन्ता येव खो सङ्खारा जायन्ती'' ति। (४)

''भिय्यो ओपम्मं करोही'' ति।

''यथा, महाराज, अरणि न सिया, अरणिपोतको न सिया अरणिपोत्तकं न सिया, उत्तरारणिं न सिया, चोळकं न सिया, पुरिसस्स च तज्जो वायामो न सिया, जायेय्य सो अग्गी'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति ''यतो च खो, महाराज, अरणि सिया, अरणिपोतको सिया, अरणिपोत्तकं सिया, उत्तरारणि सिया, चोळकं सिया, पुरिसस्स च तज्जो वायामो सिया, जायेय्य सो अग्गी'' ति? ''आम, भन्ते, जायेय्या'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, नत्थि केचि सङ्खारा, ये अभवन्ता जायन्ति, भवन्ता येव खो सङ्खारा जायन्ती'' ति। (५)

''भिय्यो ओपम्मं करोही'' ति।

''यथा, महाराज, मणि न सिया, आतपो न सिया, गोमयं न सिया, जायेय्य सो अग्गी'' ति? ''नहि भन्ते'' ति। ''यतो च खो, महाराज, मणि सिया, आतपो सिया, गोमयं

न होकर नहीं हो जाते, अपितु उनकी स्थिति का प्रवाह प्रारम्भ से ही चला आता है। महाराज! इसी तरह, ऐसे कोई संस्कार नहीं हैं जो न होकर पैदा हो जाते हों। वही चीज....चला आता है।" (३)

"कृपया फिर उपमा देकर समझायें।"

"यदि वीणा का पत्र, चर्म, खोखला काठ, दण्ड, गला, तार (तन्त्री) या धनुही आदि कुछ भी न हो और न कोई बजाने वाला पुरुष ही हो, तो क्या कोई ध्वनि निकलेगी?" "नहीं, भन्ते!" "और, यदि ये सभी चीजें हों तब?" "भन्ते! तब ध्वनि निकलेगी।" "महाराज! इसी तरह, ऐसे कोई संस्कार नहीं, जो न होकर उत्पन्न हो जाते हों। वही चीजें....चला आता है।" (४)

"कृपया और कोई उपमा देकर समझावें।"

"महाराज! यदि अरणि न हो, अरणिपोतक न हो, मथने की रस्सी न हो, उत्तरारणि न हो, चिथड़ा (कपड़ा) न हो और अग्नि उत्पन्न करने वाला कोई आदमी भी न हो—तो क्या अग्नि निकलेगी?" "नहीं, भन्ते!" "और यदि ये सभी चीजें हों तब?" "भन्ते! तब अग्नि निकलेगी।" "महाराज! इसी तरह ऐसा कोई संस्कार नहीं, जो न होकर उत्पन्न हो जाता है। वही चीजें....चला आता है।" (५)

"कृपया फिर कोई अन्य उपमा देकर समझावें।"

"महाराज! यदि जलाने वाला शीशा न हो, सूरज की गर्मी भी न हो और सूखा कंडा (गोबर) भी नहीं हो तो क्या अग्नि निकलेगी?" "नहीं, भन्ते!" "और यदि सभी चीजें हों तब?" "भन्ते! तब अग्नि

सिया, जायेय्य सो अग्गी'' ति? ''आम, भन्ते, जायेय्या'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, नत्थि केचि सङ्खारा ये अभवन्ता जायन्ति, भवन्ता येव खो सङ्खारा जायन्ती'' ति। (६)

''भिय्यो ओपम्मं करोही'' ति।

''यथा, महाराज, आदासो न सिया, आभा न सिया, मुखं न सिया, जायेय्य अत्ता'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''यतो च खो, महाराज, आदासो सिया, आभा सिया, मुखं सिया, जायेय्य अत्ता'' ति? ''आम, भन्ते, जायेय्या'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, नत्थि केचि सङ्खारा ये अभवन्ता जायन्ति, भवन्ता येव खो, सङ्खारा जायन्ति'' ति। (७)

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

६. वेदगूपञ्हो

६. राजा आह—''भन्ते नागसेन, वेदगू उपलब्भती'' ति? ''को पनेस, महाराज, वेदगू नामा'' ति? ''यो, भन्ते, अब्भन्तरो जीवो चक्खुना रूपं पस्सति, सोतेन सद्दं सुणाति, घानेन गन्धं घायति, जिव्हाय रसं सायति, कायेन फोट्ठब्बं फुसति, मनसा धम्मं विजानाति; यथा मयं इध पासादे निसिन्ना येन येन वातपानेन इच्छेय्याम पस्सितुं, तेन तेन वातपानेन पस्सेय्याम—पुरत्थिमेन पि वातपानेन पस्सेयाम, पच्छिमेन पि वातपानेन पस्सेय्याम, उत्तरेन पि वातपानेन पस्सेय्याम, दक्खिणेन पि वातपानेन पस्सेय्याम; एवमेव खो, भन्ते, अयं अब्भन्तरे जीवो येन येन द्वारेन इच्छति पस्सितुं, तेन तेन द्वारेन पस्सती'' ति।

थेरो आह—''पञ्चद्वारं, महाराज, भणिस्सामि, तं सुणोहि, साधुकं मनसि करोहि। यदि अब्भन्तरे जीवो चक्खुना रूपं पस्सति, यथा मयं इध पासादे निसिन्ना येन येन वातपानेन इच्छेय्याम पस्सितुं, तेन तेन वातपानेन रूपं येव पस्सेय्याम—पुरत्थिमेन पि वातपानेन रूपं येव पस्सेय्याम, पच्छिमेन पि वातपानेन रूपं येव पस्सेय्याम, उत्तरेन पि वातपानेन रूपं येव

निकलेगी।'' ''महाराज! इसी तरह, ऐसा कोई संस्कार नहीं, जो न होकर हो जाता हो। वहीं चीजें.... चला आता है। (६)

''कृपया इसे फिर उपमा देकर समझाइये।''

''महाराज! यदि दर्पण न हो, प्रकाश न हो और मुख भी न हो तो क्या कोई प्रतिबिम्ब पड़ेगा?'' ''नहीं, भन्ते!'' ''और यदि ये सभी चीजें हों तब?'' ''भन्ते! तब प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ेगा।'' ''महाराज! इसी तरह, ऐसे कोई संस्कार नहीं हैं, जो न होकर पैदा हो जाते हैं। वही चीजें....चला आता है।'' (७)

''भन्ते! आपने सर्वथा समीचीन बताया।''

६. वेदगुप्रश्न— ६. राजा बोला—''भन्ते! जानने वाला (वेदगु=ज्ञाता) कोई (आत्मा) है या नहीं?'' ''महाराज! यह जानने वाला कौन है?'' ''भन्ते! जो जीव हम लोगों के भीतर रह कर आँख से रूप देखता है, कान से शब्द सुनता है, नाक से गन्ध लेता है, जीभ से स्वाद लेता है, शरीर से स्पर्श अनुभव करता है और मन से धर्मों को जानता है। जिस तरह हम लोग इस महल में बैठकर किसी जिस खिड़की से—पूर्व, पश्चिम, दक्षिण या उत्तर वाली से देखना चाहें देख सकते हैं।''

स्थविर बोले—''महाराज! पाँच दरवाजे कौन से हैं, उन्हें बता रहा हूँ, आप उसे मन लगाकर सुनें। यदि जीव इस शरीर में रहकर आँखों से रूप को देखता है, जैसे कि हम इस महल में बैठे हुये जिस किसी खिड़की से रूप को देख सकते हैं; पूर्व की खिड़की से भी, पश्चिम....दक्षिण....की खिड़की

पस्सेय्याम, दक्खिणेन पि वातपानेन रूपं येव पस्सेय्याम; एवमेतेन अब्भन्तरे जीवेन सोतेन पि रूपं येव पस्सितब्बं, घानेन पि रूपं येव पस्सितब्बं, जिव्हाय पि रूपं येव पस्सितब्बं, कायेन पि रूपं येव पस्सितब्बं, मनसा पि रूपं येव पस्सितब्बं; चक्खुना पि सद्दो येव सोतब्बो, घानेन पि सद्दो येव सोतब्बो, जिव्हाय पि सद्दो येव सोतब्बो, कायेन पि सद्दो येव सोतब्बो, मनसा पि सद्दो येव सोतब्बो; चक्खुना पि गन्धो येव घायितब्बो, सोतेन पि गन्धो येव घायितब्बो, जिव्हाय पि गन्धो येव घायितब्बो, कायेन पि गन्धो येव घायितब्बो, मनसा पि गन्धो येव घायितब्बो; चक्खुना पि रसो येव सायितब्बो, सोतेन पि रसो येव सायितब्बो, घानेन पि रसो येव सायितब्बो, कायेन पि रसो येव सायितब्बो, मनसा पि रसो येव सायितब्बो; चक्खुना पि फोट्ठब्बं येव फुसितब्बं, सोतेना पि फोट्ठब्बं येव फुसितब्बं, घानेन पि फोट्ठब्बं येव फुसितब्बं, जिव्हाय पि फोट्ठब्बं येव फुसितब्बं, मनसा पि फोट्ठब्बं येव फुसितब्बं; चक्खुना पि धम्मं येव विजानितब्बं, सोतेन पि धम्मं येव विजानितब्बं, घानेना पि धम्मं येव विजानितब्बं, जिह्वाय पि धम्मं येव विजानितब्बं, कायेना पि धम्मं येव विजानितब्बं" ति? "न हि, भन्ते" ति।

"न खो ते, महाराज, युज्जति पुरिमेन वा पच्छिमं, पच्छिमेन वा पुरिमं। यथा वा पन, महाराज, मयं इध पासादे निसिन्ना इमेसु जालवातपानेसु उग्घाटितेसु महन्तेन आकासेन बहिमुखा सुट्ठुतरं रूपं पस्साम; एवमेतेन अब्भन्तरे जीवेना पि चक्खुद्वारेसु उग्घाटितेसु महन्तेन आकासेन सुट्ठुतरं रूपं पस्सितब्बं, सोतेसु उग्घाटितेसु, घाने उग्घाटिते, जिव्हाय उग्घाटिताय, काये उग्घाटिते महन्तेन आकासेन सुट्ठुतरं सद्दो सोतब्बो, गन्धो घायितब्बो, रसो सायितब्बो, फोट्ठब्बो फुसितब्बो" ति? "न हि, भन्ते" ति।

"न खो ते, महाराज, युज्जति पुरिमेन वा पच्छिमं, पच्छिमेन वा पुरिमं। यथा वा पन,

---

से भी रूप को देख सकते हैं; इसी तरह इस शरीर में बैठे हुये जीव के द्वारा श्रोत्र....घ्राण....जिह्वा....काय.... मन से भी रूप को ही देखना चाहिये। चक्षु के द्वारा भी....घ्राण....जिह्वा.... काय.... मन के द्वारा भी शब्द को ही सुनना चाहिये। इसी तरह चक्षु....श्रोत्र....जिह्वा....काय....मन के द्वारा भी गन्ध का ग्रहण करना चाहिये। इसी तरह चक्षु से भी रस.... श्रोत्र से....घ्राण से.... काय से.... मन से भी रस का ही ग्रहण होना चाहिये। इसी तरह चक्षु से भी....श्रोत्र से भी....घ्राण से भी....जिह्वा से भी....और मन से भी स्पर्श का ही ग्रहण होना चाहिये। और इसी तरह चक्षु से भी.... श्रोत्र....घ्राण....जिह्वा....और काय से भी धर्म का ही ग्रहण होना चाहिये?" "भन्ते! ऐसी बात तो नहीं है।"

"महाराज! तब तो आप के पहले कहे हुए से पीछे का और पीछे कहे हुए से आगे का मेल नहीं खाता। महाराज! इन खिड़कियों को खोल देने से हम लोग यहीं बैठे-बैठे खुले आकाश की ओर होकर बाहर के सभी रूपों को स्पष्टतः देख सकते हैं। इसी तरह, क्या हम लोगों के भीतर रहने वाला जीव आँखों के खुल जाने से खुले आकाश की ओर होकर सभी रूपों को स्पष्टतः देख सकता है, कान, नाक, जीभ और काया के खुल जाने पर शब्दों को साफ-साफ सुन सकता है, गन्धों को सूँघ सकता है, रसों को चख सकता है और वस्तुओं को स्पर्श कर सकता है?" "नहीं, भन्ते!"

"महाराज! तब तो आप के पहले कहे हुए से पीछे का, और पीछे कहे हुए से पहले का मेल

महाराज, अयं दिन्नो निक्खमित्वा बहिद्वारकोट्ठके तिट्ठेय्य, जानासि त्वं, महाराज—'अयं दिन्नो निक्खमित्वा बहिद्वारकोट्ठके ठितो' " ति ? "आम, भन्ते, जानामी" ति।

"यथा वा पन, महाराज, अयं दिन्नो अन्तो पविसित्वा तव पुरतो तिट्ठेय्य, जानासि त्वं, महाराज—'अयं दिन्नो अन्तो पविसित्वा मम पुरतो ठितो' " ति ? "आम, भन्ते, जानामी" ति।

"एवमेव खो, महाराज, अब्भन्तरे सो जीवो जिव्हाय रसे निक्खित्ते जानेय्य अम्बिलत्तं वा लवणत्तं वा तित्तकत्तं वा कटुकत्तं वा कसायत्तं वा मधुरत्तं वा" ति ? "आम, भन्ते, जानेय्या" ति। "ते रसे अन्तोपविट्ठे जानेय्य अम्बिलत्तं वा लवणत्तं वा तित्तकत्तं वा कटुकत्तं वा कसायत्तं वा मधुरत्तं वा" ति ? "न हि, भन्ते" ति।

"न खो ते, महाराज, युज्जति पुरिमेन वा पच्छिमं, पच्छिमेन वा पुरिमं। यथा, महाराज, कोचिदेव पुरिसो मधुघटसतं आहरापेत्वा मधुदोणिं पूरापेत्वा पुरिसस्स मुखं पिदहित्वा मधुदोणिया पक्खिपेय्य। जानेय्य, महाराज, सो पुरिसो मधुं सम्पन्नं वा न सम्पन्नं वा" ति ? "न हि, भन्ते" ति। "केन कारणेना" ति ? "न हि तस्स, भन्ते, मुखे मधु पविट्ठं" ति। "न खो ते, महाराज, युज्जति पुरिमेन वा पच्छिमं, पच्छिमेन वा पुरिमं" ति। "नाहं, भन्ते, पटिबलो तया वादिना सद्धिं सल्लपितुं। साधु, भन्ते, अत्थं जप्पेही" ति।

थेरो अभिधम्मसंयुत्ताय कथाय राजानं मिलिन्दं सञ्ञापेसि—"इध, महाराज, चक्खुं च पटिच्च रूपे च उप्पज्जति चक्खुविञ्ञाणं। तंसहजाता फस्सो वेदना सञ्ञा चेतना एकग्गता जीवितिन्द्रियं मनसिकारो—ति एवमेते धम्मा पच्चयतो जायन्ति, न हेत्थ वेदगू उपलब्भति। सोतं च पटिच्च सद्दे च.... पे०.... मनञ्च पटिच्च धम्मे च उप्पज्जति मनोविञ्ञाणं, तंसहजाता

नहीं खाता।" महाराज! यदि दिन्न (राजा मिलिन्द का मंत्री) यहाँ से बाहर जाकर दरवाजे पर खड़ा हो जाय तो क्या आप इस बात को नहीं जानेंगे?" "हाँ, भन्ते! जानूँगा।"

"महाराज! यदि दिन्न फिर भीतर आकर आप के सामने खड़ा हो जाय तो क्या आप इस बात को नहीं जानेंगे?" "हाँ, भन्ते! जानूँगा।"

"महाराज! इसी तरह, हम लोगों के भीतर रहने वाला जीव जिह्वा से बाहर के रस को जानेगा—यह खट्टा है, नमकीन है, तीता है, कटु है, कसैला है या मीठा है?" "हाँ, भन्ते! जानेगा।" "तो क्या उन रसों के भीतर चले जाने पर वह जीव उनकी खटास, नमकीन, तीतापन, कडुआपन, कसैलापन या मिठास को जानेगा?" "नहीं, भन्ते! नहीं अनुभव करेगा।"

"महाराज! तब तो आपके पहले कहे हुए से पीछे का और पीछे कहे हुए से पहले का मेल नहीं खाता। महाराज! जैसे कोई आदमी सौ घड़े मधु मँगवा कर एक नाद भरवा दे। फिर, एक दूसरे आदमी का मुँह अच्छी तरह बँधवा कर उसमें डलवा दें, तो आप बतावें, क्या वह पुरुष जान सकेगा कि जिसमें वह डाल दिया गया है, सो मीठा है या नहीं?" "भन्ते! नहीं जान सकेगा।" "वह क्यों?" "क्योंकि मधु उसके मुँह में गया ही नहीं।" "महाराज! तब तो आप के पहले कहे हुए से पीछे का....।" "भन्ते! आप जैसे पण्डित के साथ मैं क्या वाद कर सकता हूँ। कृपा कर आप ही इसकी वास्तविकता बतावें।"

तब, स्थविर ने राजा मिलिन्द को अभिधर्म की कथा के अनुसार सब कुछ यों समझाया—"महाराज! चक्षु और रूपों के होने से चक्षुर्विज्ञान उत्पन्न होता है; उसके उत्पन्न होने से साथ ही स्पर्श, वेदना, संज्ञा, चेतना, एकाग्रता, जीवितेन्द्रिय एवं मनस्कार—ये सब एक पर एक उत्पन्न होते हैं। इसी

फस्सो वेदना सञ्ञा चेतना एकग्गता जीवितिन्द्रियं, मनसिकरोति, एवमेते धम्मा पच्चयतो जायन्ति। न हेत्थ वेदगू उपलब्भती'' ति।

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

७. चक्खुविञ्ञाणादिपञ्हो

७. राजा आह—''भन्ते नागसेन, यत्थ चक्खुविञ्ञाणं उप्पज्जति, तत्थ मनोविञ्ञाणं पि उप्पज्जती'' ति? ''आम, महाराज, यत्थ चक्खुविञ्ञाणं उप्पज्जति, तत्थ मनोविञ्ञाणं उप्पज्जती'' ति।

''किं नु खो, भन्ते नागसेन, पठमं चक्खुविञ्ञाणं उप्पज्जति, पच्छा मनोविञ्ञाणं; उदाहु मनोविञ्ञाणं पठमं उप्पज्जति, पच्छा चक्खुविञ्ञाणं'' ति? ''पठमं, महाराज, चक्खुविञ्ञाणं उप्पज्जति, पच्छा मनोविञ्ञाणं'' ति।

''किं नु खो, भन्ते नागसेन, चक्खुविञ्ञाणं मनोविञ्ञाणं आणापेति—'यत्थाहं उप्पज्जामि त्वं पि तत्थ उप्पज्जाही' ति, उदाहु मनोविञ्ञाणं चक्खुविञ्ञाणं आणापेति—'यत्थ त्वं उप्पज्जिस्ससि, अहं पि तत्थ उप्पज्जिसामी' '' ति? ''न हि, महाराज, अनालापो तेसं अञ्ञमञ्ञेही'' ति।

''कथं, भन्ते नागसेन, यत्थ चक्खुविञ्ञाणं उप्पज्जति, तत्थ मनोविञ्ञाणं पि उप्पज्जती'' ति? ''निन्नत्ता च, महाराज, द्वारत्ता च चिण्णत्ता च समुदाचरितत्ता चा'' ति।

(क) ''कथं, भन्ते नागसेन, निन्नत्ता यत्थ चक्खुविञ्ञाणं उप्पज्जति, तत्थ मनोविञ्ञाणं पि उप्पज्जति? ओपम्मं करोही'' ति।

''तं किं मञ्ञसि, महाराज, देवे वस्सन्ते कतमेन उदकं गच्छेय्या'' ति? ''येन,

---

तरह दूसरी श्रोत्र आदि इन्द्रियों के साथ भी इस त्रिक को समझ लेना चाहिये। ये धर्म एक दूसरे के होने ही से उत्पन्न होते हैं। कोई जानने वाला (=ज्ञाता आत्मा) नहीं है।"

"भन्ते! आपने ठीक कहा।"

७. चक्षुर्विज्ञानादिविषयक प्रश्न— ७. राजा बोला—"भन्ते! जहाँ चक्षुर्विज्ञान उत्पन्न होता है, वहाँ क्या मनोविज्ञान भी उत्पन्न होता है?" "हाँ महाराज! वहाँ मनोविज्ञान भी उत्पन्न होता है।"

"भन्ते! पहले कौन उत्पन्न होता है, चक्षुर्विज्ञान या मनोविज्ञान?" "महाराज! पहले चक्षुर्विज्ञान और बाद में मनोविज्ञान।"

"भन्ते! क्या चक्षुर्विज्ञान मनोविज्ञान को आज्ञा देता है कि, 'जहाँ मैं उत्पन्न होऊँ, वहाँ तुम भी उत्पन्न होना अथवा मनोविज्ञान चक्षुर्विज्ञान को सूचना देता है—'जहाँ जहाँ तुम उत्पन्न होगे, वहाँ वहाँ मैं भी उत्पन्न होऊँगा'?" "नहीं, महाराज! उन में ऐसी कोई आज्ञा का आदान–प्रदान नहीं होता।"

"भन्ते! तो क्या बात है कि जहाँ चक्षुर्विज्ञान उत्पन्न होता है, वहाँ मनोविज्ञान भी होता है?" "महाराज! उनमें ऐसा (क) ढालूपन होने से, (ख) द्वार होने से, (ग) स्वभाव होने से और (घ) समुदाचारता (साथीपन) होने से"।

(क) "भन्ते! ढालूपन होने से कैसे जहाँ चक्षुर्विज्ञान होता है, वहाँ मनोविज्ञान भी होता है? कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज! अच्छा आप बतावें कि वृष्टि होने पर जल किस ओर ढलक कर बहता है?"

भन्ते, निन्नं, तेन गच्छेय्या'' ति। ''अथापरेन समयेन देवो वस्सेय्य, कतमेन तं उदकं गच्छेय्या'' ति? ''येन, भन्ते, पुरिमं उदकं गतं, तं पि तेन गच्छेय्या'' ति। ''किं नु खो, महाराज, पुरिमं उदकं पच्छिमं उदकं आणापेति—'येनाहं गच्छामि त्वं पि तेन गच्छाही' ति, पच्छिमं वा उदकं पुरिमं उदकं आणापेति—'येन त्वं गच्छिस्ससि अहं पि तेन गच्छिस्सामी' '' ति? ''न हि, भन्ते, अनालापो तेसं अञ्ञमञ्ञेहि। निन्नत्ता गच्छन्ती'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, निन्नत्ता यत्थ चक्खुविञ्ञाणं उप्पज्जति, तत्थ मनोविञ्ञाणं पि उप्पज्जति। न चक्खुविञ्ञाणं मनोविञ्ञाणं आणापेति—'यत्थाहं उप्पज्जामि त्वं पि तत्थ उप्पज्जाही' ति। नापि मनोविञ्ञाणं चक्खुविञ्ञाणं आणापेति—'यत्थ त्वं उप्पज्जिस्ससि अहं पि तत्थ उप्पज्जिस्सामी' ति। अनालापो तेसं अञ्ञमञ्ञेहि। निन्नत्ता उप्पज्जन्ती'' ति।

(ख) ''कथं, भन्ते नागसेन, द्वारत्ता यत्थ चक्खुविञ्ञाणं उप्पज्जति, तत्थ मनोविञ्ञाणं पि उप्पज्जति? ओपम्मं करोही'' ति।

''तं किं मञ्ञसि, महाराज, रञ्ञो पच्चन्तिमं नगरं अस्स दळ्हपाकारतोरणं एकद्वारं। ततो पुरिसो निक्खमितुकामो भवेय्य, कतमेन निक्खमेय्या'' ति? ''द्वारेन, भन्ते, निक्खमेय्या'' ति। ''अथापरो पुरिसो निक्खमितुकामो भवेय्य, कतमेन सो निक्खमेय्या'' ति? ''येन, भन्ते, पुरिमो पुरिसो निक्खन्तो सो पि तेन निक्खमेय्या'' ति।

''किन्नु खो, महाराज, पुरिमो पुरिसो पच्छिमं पुरिसं आणापेति—'येनाहं गच्छामि त्वं पि तेन गच्छाही' ति, पच्छिमो वा पुरिसो पुरिमं पुरिसं आणापेति—'येन त्वं गच्छिस्ससि, अहं पि तेन गच्छिस्सामी' '' ति? ''न हि, भन्ते, अनालापो तेसं अञ्ञमञ्ञेहि। द्वारत्ता गच्छन्ती'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, द्वारत्ता यत्थ चक्खुविञ्ञाणं उप्पज्जति, तत्थ मनोविञ्ञाणं

"भन्ते! जिधर की पृथ्वी ढालू है उधर ही वह जल ढलक कर बहता है! फिर किसी दूसरे दिन वृष्टि होने पर वह जल किस ओर बहेगा?" "भन्ते! उसी ओर।" "भन्ते! क्या पहला जल दूसरे जल को आज्ञा देता है—'जिस ओर ढलक कर मैं बहूँ, उसी ओर तुम भी बहो?' या दूसरा जल पहले जल को सूचना देता है—'जिस ओर तुम बहोगे उसी ओर मैं भी बहूँगा'?" "नहीं भन्ते! उन में परस्पर ऐसी कोई बात नहीं होती। पृथ्वी के ढालू होने से ही दोनों जल उसी ओर बहते हैं।" "महाराज! इसी तरह, ढालूपना होने से जहाँ–जहाँ चक्षुर्विज्ञान उत्पन्न होता है, वहाँ–वहाँ मनोविज्ञान भी होता है। उनमें परस्पर किसी आज्ञा का आदान–प्रदान नहीं होता।"

(ख) "भन्ते द्वार होने से कैसे जहाँ चक्षुर्विज्ञान होता है, वहाँ मनोविज्ञान भी होता है? उपमा देकर समझावें।"

"महाराज! किसी राजा का सीमान्त में एक नगर हो, जो दृढ़ प्राकार से घिरा हो तथा जिसका द्वार भी बड़ा दृढ़ हो। उस नगर में वह एक ही द्वार हो। अब, कोई आदमी उस नगर से बाहर निकलना चाहे तो किस ओर से निकलेगा?" "भन्ते! उसी द्वार से निकलेगा।" "फिर, कोई दूसरा आदमी बाहर निकलना चाहे तो किस ओर से निकलेगा?" "भन्ते! उसी द्वार से।"

"महाराज! क्या यहाँ पहला आदमी दूसरे को आज्ञा देता है कि 'मैं जिस ओर से निकलूँ, उधर ही से तुम निकलो' या दूसरा आदमी पहले को आज्ञा देता है कि 'तुम जिधर से निकलोगे उधर ही से मैं भी निकलूँगा'?" "नहीं, भन्ते! उन लोगों के बीच ऐसा कोई समन्वय नहीं होता। द्वार के एक होने से

पि उप्पज्जति। न चक्खुविञ्ञाणं मनोविञ्ञाणं आणापेति—'यत्थाहं उप्पज्जामि त्वं पि तत्थ उपज्जाही' ति। नापि मनोविञ्ञाणं चक्खुविञ्ञाणं आणापेति—'यत्थ त्वं उप्पज्जिस्ससि, अहं पि तत्थ उप्पज्जिस्सामी' ति। अनालापो तेसं अञ्ञमञ्ञेहि। द्वारत्ता उप्पज्जन्ती'' ति।

(ग) ''कथं, भन्ते नागसेन, चिण्णत्ता यत्थ चक्खुविञ्ञाणं उप्पज्जति, तत्थ मनोविञ्ञाणं पि उप्पज्जति? ओपम्मं करोही'' ति।

''तं किं मञ्ञसि, महाराज, पठमं एकं सकटं गच्छेय्य, अथ दुतियं सकटं कतमेन गच्छेय्या'' ति। ''येन, भन्ते, पुरिमं सकटं गतं, तं पि तेन गच्छेय्या'' ति। ''किं नु खो, महाराज, पुरिमं सकटं पच्छिमं सकटं आणापेति—'येनाहं गच्छामि, त्वं पि तेन गच्छाही' ति। पच्छिमं वा सकटं पुरिमं सकटं आणापेति—'येन त्वं गच्छिस्ससि, अहं पि तेन गच्छिस्सामी' ति?'' ''न हि, भन्ते, अनालापो तेसं अञ्ञमञ्ञेहि। चिण्णत्ता गच्छन्ती'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, चिण्णत्ता यत्थ चक्खुविञ्ञाणं उप्पज्जति, तत्थ मनोविञ्ञाणं पि उप्पज्जति। न चक्खुविञ्ञाणं मनोविञ्ञाणं आणापेति—'यत्थाहं उप्पज्जामि त्वं पि तत्थ उप्पज्जाही' ति। नापि मनोविञ्ञाणं चक्खुविञ्ञाणं आणापेति—'यत्थ त्वं उप्पज्जिस्ससि अहं पि तत्थ उप्पज्जिस्सामी' ति। अनालापो तेसं अञ्ञमञ्ञेहि। चिण्णत्ता उप्पज्जन्ती'' ति।

(घ) ''कथं, भन्ते नागसेन, समुदाचरितत्ता यत्थ चक्खुविञ्ञाणं उप्पज्जति, तत्थ मनोविञ्ञाणं पि उप्पज्जति? ओपम्मं करोही'' ति।

''यथा, महाराज, मुद्दा-गणना-सङ्ख्या-लेखा-सिप्पट्ठानेसु आदिकम्मिकस्स दन्धायना भवति, अथापरेन समयेन निसम्मकिरियाय समुदाचरितत्ता अदन्धायना भवति; एवमेव खो, महाराज, समुदाचरितत्ता यत्थ चक्खुविञ्ञाणं उप्पज्जति, तत्थ मनोविञ्ञाणं पि उप्पज्जति। न चक्खुविञ्ञाणं मनोविञ्ञाणं आणापेति—'यत्थाहं उप्पज्जामि त्वं पि तत्थ उपज्जाही' ति।

ही जिधर से एक निकलता है, उधर से दूसरा भी निकलता है।'' ''महाराज! ऐसे ही, द्वार एक होने से जहाँ चक्षुर्विज्ञान उत्पन्न होता है, वहाँ मनोविज्ञान भी होता है ...उनकी आपस में कोई बात नहीं होती....।''

(ग) ''भन्ते स्वभाव होने से कैसे जहाँ चक्षुर्विज्ञान होता है, वहाँ मनोविज्ञान भी होता है? उपमा देकर समझावें।''

''महाराज! आगे एक बैलगाड़ी गयी हो, तो दूसरी गाड़ी किस ओर जायेगी?'' ''भन्ते! जिस ओर पहली गाड़ी होगी, उसी ओर दूसरी भी जायेगी'' ''महाराज! क्या पहली गाड़ी दूसरी गाड़ी को आज्ञा देती है.... या दूसरी गाड़ी पहली को आज्ञा देती है.... ?'' ''नहीं, भन्ते! उन में कोई ऐसी बात नहीं होती। (बैलों में) ऐसा स्वभाव पड़ जाने से ही वह एक दूसरे के पीछे-पीछे जाते हैं।'' ''महाराज! इसी तरह पीछे चलने के स्वभाव से ही जहाँ-जहाँ चक्षुर्विज्ञान होता है, वहाँ-वहाँ मनोविज्ञान भी उत्पन्न होता है। उनमें कोई परस्पर समझौता नहीं होता कि.... ।''

(घ) ''भन्ते! व्यवहार (समुदाचार) होने से कैसे जहाँ चक्षुर्विज्ञान होता है, वहाँ मनोविज्ञान भी होता है? कृपया उपमा देकर समझावें।''

''महाराज! मुद्रा, गणना, संख्या और लेखा इत्यादि शिल्पों में नवशिक्षित बार-बार प्रमाद (भूलें) करता है, परन्तु सावधानी से बार-बार व्यवहार करने पर उसकी भूलें जाती रहती हैं। इसी तरह, व्यवहार से जहाँ चक्षुर्विज्ञान उत्पन्न होता है, वहाँ मनोविज्ञान भी होता है....।''

नापि मनोविञ्ञाणं चक्खुविञ्ञाणं आणापेति—'यत्थ त्वं उप्पज्जिस्ससि अहं पि तत्थ उप्पज्जिस्सामी' ति। अनालापो तेसं अञ्ञमञ्ञेहि। समुदाचरितत्ता उप्पज्जती'' ति।

''भन्ते नागसेन, यत्थ सोतविञ्ञाणं उप्पज्जति, तत्थ मनोविञ्ञाणं पि उप्पज्जती ति .... पे० .... यत्थ घानविञ्ञाणं उप्पज्जति .... यत्थ जिव्हाविञ्ञाणं उप्पज्जति .... यत्थ कायविञ्ञाणं उप्पज्जति, तत्थ मनोविञ्ञाणं पि उप्पज्जती'' ति? ''आम, महाराज, यत्थ कायविञ्ञाणं उप्पज्जति, तत्थ मनोविञ्ञाणं पि उप्पज्जती'' ति।

''किं नु खो, भन्ते नागसेन, पठमं कायविञ्ञाणं उप्पज्जति पच्छा मनोविञ्ञाणं, उदाहु मनोविञ्ञाणं पठमं उप्पज्जति पच्छा कायविञ्ञाणं'' ति? ''कायविञ्ञाणं, महाराज, पठमं उप्पज्जति, पच्छा मनोविञ्ञाणं'' ति।

''किं नु खो, भन्ते नागसेन .... पे० .... अनालापो तेसं अञ्ञमञ्ञेहि। समुदाचरितत्ता उप्पज्जन्ती'' ति।

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

८. फस्सलक्खणपञ्हो

८. राजा आह— ''भन्ते नागसेन, यत्थ मनोविञ्ञाणं उप्पज्जति, फस्सो पि....वेदना पि तत्थ उप्पज्जती'' ति? ''आम महाराज, यत्थ मनोविञ्ञाणं उप्पज्जति, फस्सो पि तत्थ उप्पज्जति, वेदना पि तत्थ उप्पज्जति, सञ्ञा पि तत्थ उप्पज्जति, चेतना पि तत्थ उप्पज्जति, वितक्को पि तत्थ उप्पज्जति, विचारो पि तत्थ उप्पज्जति। सब्बे पि फस्सप्पमुखा धम्मा तत्थ उप्पज्जन्ती'' ति।

''भन्ते नागसेन, किंलक्खणो फस्सो'' ति? ''फुसनलक्खणो, महाराज, फस्सो'' ति।

''ओपम्मं करोही'' ति।

''यथा, महाराज, द्वे मेण्डा युज्झेय्युं। तेसु यथा एको मेण्डो एवं चक्खं दट्ठब्बं, यथा दुतियो मेण्डो एवं रूपं दट्ठब्बं, यथा तेसं सन्निपातो एवं फस्सो दट्ठब्बो'' ति। (१)

''भिय्यो ओपम्मं करोही'' ति।

''यथा, महाराज, द्वे पाणी वज्जेय्युं। तेसु यथा एको पाणि एवं चक्खु दट्ठब्बं, यथा दुतियो पाणि एवं रूपं दट्ठब्बं, यथा तेसं सन्निपातो एवं फस्सो दट्ठब्बो'' ति। (२)

"इसी भाँति दूसरी श्रोत्र आदि इन्द्रियों के विज्ञानों के साथ मनोविज्ञान उत्पन्न होता रहता है।"

"भन्ते! आपने यह ठीक समझाया।"

८. स्पर्शलक्षणप्रश्न— ८. राजा बोला—"भन्ते! जहाँ मनोविज्ञान उत्पन्न होता है, वहाँ क्या स्पर्श भी....वेदना भी होती हैं?" "हाँ महाराज! जहाँ मनोविज्ञान होता है वहाँ स्पर्श भी होता है, वेदना, संज्ञा, चेतना भी होती है, वितर्क विचार भी होते हैं। स्पर्श से होने वाले सभी धर्म वहाँ होते हैं।"

"भन्ते! स्पर्श का लक्षण क्या है?" "महाराज! 'छूना' स्पर्श का लक्षण है।"

"कृपया उपमा देकर समझाइये।"

"महाराज! दो भेड़ आपस में टक्कर खाँये। उनमें एक भेड़ को तो चक्षु समझना चाहिये और दूसरे को रूप। और उन दोनों का टकराना ही स्पर्श समझना चाहिये।" (१)

"भिय्यो ओपम्मं करोही" ति।

"यथा, महाराज, द्वे सम्मा वज्जेयुं। तेसु यथा एको सम्मो एवं चक्खु दट्ठब्बं, यथा दुतियो सम्मो एवं रूपं दट्ठब्बं, यथा तेसं सन्निपातो एवं फस्सो दट्ठब्बो" ति। (३)

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

९. वेदनालक्खणपञ्हो

९. "भन्ते नागसेन, किं लक्खणा वेदना" ति? "वेदयितलक्खणा, महाराज, वेदना, अनुभवनलक्खणा चा" ति।

"ओपम्मं करोही" ति।

"यथा महाराज, कोचिदेव पुरिसो रञ्ञो अधिकारं करेय्य। तस्स राजा तुट्ठो अधिकारं ददेय्य। सो तेन अधिकारेन पञ्चहि कामगुणेहि समप्पितो समङ्गीभूतो परिचरेय्य। तस्स एवमस्स—'मया खो पुब्बे रञ्ञो अधिकारो कतो, तस्स मे राजा तुट्ठो अधिकारं अदासि। स्वाहं ततोनिदानं इमं एवरूपं वेदनं वेदियामी' ति। यथा वा पन, महाराज, कोचिदेव पुरिसो कुसलं कम्मं कत्वा कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जेय्य। सो च तत्थ दिब्बेहि पञ्चहिं कामगुणेहि समप्पितो समङ्गीभूतो परिचरेय्य। तस्स एवमस्स—'स्वाहं खो पुब्बे कुसलं कम्मं अकासिं, सोहं ततोनिदानं इमं एवरूपं वेदनं वेदियामी' ति। एवमेव खो, महाराज, वेदयितलक्खणा वेदना, अनुभवनलक्खणा चा" ति।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

"कृपया दूसरी उपमा देकर समझाइये।"

"महाराज! कोई दो हाथों से ताली बजावे। उनमें एक हाथ को तो चक्षु और दूसरे को रूप समझना चाहिये और ये दोनों हाथों का मिलना वहाँ स्पर्श समझना चाहिये।" (२)

"कृपया फिर उपमा देकर समझाइये।"

"महाराज! कोई झाँझ (परस्पर टकरा कर बजाया जाने वाला वाद्य) बजावे। उसमें एक झाँझ को तो चक्षु और दूसरे को रूप समझना चाहिये। जो इन दोनों का आकर मिलना है, उसे स्पर्श समझना चाहिये।" (३)

"भन्ते! आपने ठीक कहा।"

९. वेदनालक्षणप्रश्न—९. "भन्ते! 'वेदना' का क्या लक्षण है?" "महाराज! 'अनुभव करना' वेदना का लक्षण है।"

"कृपया उपमा देकर समझाइये।"

"महाराज! कोई आदमी राजा की सेवा करे। राजा उससे प्रसन्न हो, उसे कोई बड़ा पद दे दे। वह उस पद को पा सभी भोग–विलास करते हुए बहुत सुख से रहे। अब, उसके मन में ऐसा हो—'मैंने पहले राजा की सेवा की, इसी कारण राजा ने मुझे यह पद दिया है। उसी समय से मैं इस भोग–विलास और सुख का अनुभव कर रहा हूँ'। अथवा, महाराज! कोई आदमी पुण्य–कर्म कर मरने के बाद स्वर्ग लोक में उत्पन्न होकर अच्छी गति को प्राप्त हो। वह वहाँ पाँच दिव्य कामगुणों का उपभोग करे। वहाँ उसके मन में ऐसा विचार हो— 'मैंने पहले पुण्य–कर्म किये, उसी से मैं इन पाँच दिव्य कामगुणों का अनुभव कर रहा हूँ।' महाराज! इसी तरह 'अनुभव होना', 'अनुभव करना' वेदना का लक्षण है।"

१०. सञ्ञालक्खणपञ्हो

१०. "भन्ते नागसेन, किंलक्खणा सञ्ञा" ति? "सञ्जाननलक्खणा, महाराज, सञ्ञा" ति।

"किं सञ्जानाती" ति?"नीलं पि सञ्जानाति, पीतं पि सञ्जानाति, लोहितं पि सञ्जानाति, ओदातं पि सञ्जानाति, मञ्जिट्ठं पि सञ्जानाति। एवमेव खो, महाराज, सञ्जाननलक्खणा सञ्ञा"।

"ओपम्मं करोही" ति।

"यथा, महाराज, रञ्ञो भण्डागारिको भण्डागारं पविसित्वा नीलपीतलोहितोदात–मञ्जिट्ठानि राजभोगानि रूपानि पस्सित्वा सञ्जानाति; एवमेव खो, महाराज, सञ्जाननलक्खणा सञ्ञा" ति।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

११. चेतनालक्खणपञ्हो

११. "भन्ते नागसेन, किंलक्खणा चेतना" ति? "चेतयितलक्खणा, महाराज, चेतना, अभिसङ्खरणलक्खणा चा" ति।

"ओपम्मं करोही" ति।

"यथा, महाराज, कोचिदेव पुरिसो विसं अभिसङ्खरित्वा अत्तना च पिवेय्य, परे च पायेय्य। सो अत्तना पि दुक्खितो भवेय्य, परे पि दुक्खिता भवेय्युं। एवमेव खो, महाराज, इधेकच्चो पुग्गलो अकुसलं कम्मं चेतनाय चेतयित्वा कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जेय्य। ये पि तस्स अनुसिक्खन्ति, ते पि कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जन्ति।

"यथा वा पन, महाराज, कोचिदेव पुरिसो सप्पि–नवनीत–तेल–मधु–फाणितं एकज्झं

"भन्ते! आपने ठीक कहा।"

१०. संज्ञालक्षणप्रश्न– १०. "भन्ते ! संज्ञा का क्या लक्षण है?" "महाराज! 'पहचानना' संज्ञा का लक्षण है।"

"क्या पहचानना?" "नीले, पीले, लाल, श्वेत और मँजीठ आदि रंग को पहचानना। महाराज! इस तरह, 'पहचानना' संज्ञा का लक्षण है।"

"कृपया उपमा देकर समझायें।"

"महाराज! राजा का भण्डारी भण्डार में जाकर नीला, पीला, लाल, उजला, मँजीठ सभी रंग वाले राजा के भोज्य पदार्थों को देखकर उन्हें पहचानता है और जानता है। महाराज इसी तरह, 'पहचानना' संज्ञा का लक्षण है।"

"भन्ते! आपने बहुत ठीक कहा।"

११. चेतनालक्षण–प्रश्न–११. "भन्ते नागसेन! चेतना का क्या लक्षण है?" "महाराज! 'समझना' और 'तत्पर होना' चेतना का लक्षण है।"

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज! कोई आदमी विष तैयार कर स्वयं पी ले और दूसरों को भी पिला दे। वह अपने भी दुःख भोगे और दूसरों को भी दुःख दे। महाराज! इसी तरह कोई आदमी पाप–कर्मों को चेतना करके

अभिसङ्खरित्वा अत्तना च पिवेय्य, परे च पायेय्य। सो अत्तना सुखितो भवेय्य, परे पि सुखिता भवेय्युं। एवमेव खो, महाराज, इधेकच्चो पुग्गलो कुसलं कम्मं चेतनाय चेतयित्वा कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति। ये पि तस्स अनुसिक्खन्ति, ते पि कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। एवमेव, खो महाराज, चेतयितलक्खणा चेतना, अभिसङ्खरणलक्खणा चा'' ति।

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

१२. विञ्ञाणलक्खणपञ्हो

१२. ''भन्ते नागसेन, किंलक्खणं विञ्ञाणं'' ति? ''विजाननलक्खणं, महाराज, विञ्ञाणं'' ति।

''ओपम्मं करोही'' ति।

''यथा, महाराज, नगरगुत्तिको मज्झे नगरसिङ्घाटके निसिन्नो पस्सेय्य पुरत्थिमदिसतो पुरिसं आगच्छन्तं, पस्सेय्य दक्खिणदिसतो पुरिसं आगच्छन्तं, पस्सेय्य पच्छिमदिसतो पुरिसं आगच्छन्तं, पस्सेय्य उत्तरदिसतो पुरिसं आगच्छन्तं; एवमेव खो, महाराज, यं च पुरिसो चक्खुना रूपं पस्सति तं विञ्ञाणेन विजानाति, यं च सोतेन सद्दं सुणाति तं विञ्ञाणेन विजानाति, यं च घानेन गन्धं घायति तं विञ्ञाणेन विजानाति, यं च जिव्हाय रसं सायति तं विञ्ञाणेन विजानाति, यं च कायेन फोट्ठब्बं फुसति तं विञ्ञाणेन विजानाति, यं च मनसा धम्मं विजानाति तं विञ्ञाणेन विजानाति। एवं, खो, महाराज, विजाननलक्खणं विञ्ञाणं'' ति।

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

मरने के बाद नरक में जाकर दुर्गति को प्राप्त होता है। जो उसके सिखाये होते हैं, वे भी.... दुर्गति को प्राप्त होते हैं।"

अथवा महाराज! जैसे कोई आदमी घी, मक्खन, तेल, मधु और शक्कर को एक साथ तैयार कर, स्वयं पी ले और दूसरों को भी पिला दे। वह स्वयं भी सुखी हो और दूसरे भी सुखी हों। महाराज! इसी तरह, कोई पुण्य कर्मों को चेतना से जगा करके मरने के बाद स्वर्गलोक में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त होता है। जो उसके सिखाये हैं वे भी.... सुगति को प्राप्त होते हैं। इसी तरह, महाराज! 'समझना' और 'तत्पर होना' चेतना का लक्षण है।"

"भन्ते! आपने ठीक कहा।"

१२. विज्ञानलक्षण–प्रश्न–"भन्ते! विज्ञान किसे कहते हैं?" "महाराज! 'जान लेना' विज्ञान का लक्षण है।"

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज! किसी नगर का रक्षक नगर के बीच किसी चौराहे पर बैठ चारों दिशाओं से आने वाले पुरुषों को देखे; इसी तरह, पुरुष जिस रूप को आँख से देखता है, उसे विज्ञान से जान लेता है; जिस शब्द को कान से सुनता है.... जिस गन्ध को नाक से सूँघता है....जिन धर्मों को मन से अनुभव करता है, उन्हें विज्ञान से जान लेता है। महाराज! इस तरह 'जान लेना' विज्ञान का लक्षण है।"

"भन्ते! आपने ठीक कहा।"

१३. वितक्कलक्खणपञ्हो

१३. "भन्ते नागसेन, किंलक्खणो वितक्को" ति? "अप्पनालक्खणो, महाराज, वितक्को" ति।

"ओपम्मं करोही" ति।

"यथा, महाराज, वड्ढकी सुपरिकम्मकतं दारुं सन्धिस्मिं अप्पेति; एवमेव खो, महाराज, अप्पनालक्खणो वितक्को" ति।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

१४. विचारलक्खणपञ्हो

१४. "भन्ते नागसेन, किंलक्खणो विचारो" ति।

"अनुमज्जनलक्खणो, महाराज, विचारो" ति।

"ओपम्मं करोही" ति।

"यथा, महाराज, कंसथालं आकोटितं पच्छा अनुरवति, अनुसद्दायति; यथा, महाराज, आकोटना एवं वितक्को दट्ठब्बो, यथा अनुरवना एवं विचारो" ति।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति॥

(इमस्मिं वग्गे चुद्दस पञ्हा) *ततियो विचारवग्गो निट्ठितो॥*

४. निब्बानवग्गो

१. फस्सादिविनिब्भुजनपञ्हो

१. राजा आह—"भन्ते नागसेन, सक्का इमेसं धम्मानं एकतो भावगतानं विनिब्भुजित्वा विनिब्भुजित्वा नानाकरणं पञ्ञापेतुं—'अयं फस्सो, अयं वेदना, अयं सञ्ञा, अयं चेतना, इदं

---

१३. वितर्कलक्षणप्रश्न— १३. "भन्ते! वितर्क का क्या लक्षण है?" "महाराज! 'कार्य में स्वयं लगना' वितर्क है।"

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज! जैसे बढ़ई अच्छी तरह से तैयार किये हुए काठ के टुकड़े को जोड़ (सन्धि) में लगा देता है; वैसे ही 'किसी काम में अपने को लगा देना' वितर्क का लक्षण है।"

"भन्ते! आपने ठीक कहा।"

१४. विचारलक्षणप्रश्न— १४. "भन्ते नागसेन! विचार का क्या लक्षण है? महाराज! 'वितर्क का अनुमज्जन' ही 'विचार' है।"

"कृपया उपमा देकर समझायें।"

"महाराज! काँसे की थाली को पीटने से ध्वनि निकलती है। यहाँ जिस तरह पीटना है, उसे 'वितर्क' और जो ध्वनि का निकलना है, उसे 'विचार' समझना चाहिये।"

"भन्ते! ठीक कहा।"

(इस वर्ग में १४ प्रश्न है) *तृतीय विचारवर्ग समाप्त॥*

४. निर्वाणवर्ग

१. स्पर्श आदि विनिर्भोग-प्रश्न— १. राजा बोला—"भन्ते! इस स्पर्श आदि धर्मों के एक साथ मिल जाने

विञ्ञाणं, अयं वितक्को, अयं विचारो' " ति? "न सक्का, महाराज, इमेसं धम्मानं एकतो भावगतानं विनिब्भुजित्वा विनिब्भुजित्वा नानाकरणं पञ्ञापेतुं— 'अयं फस्सो, अयं वेदना, अयं सञ्ञा, अयं चेतना, इदं विञ्ञाणं, अयं वितक्को, अयं विचारो' " ति।

"ओपम्मं करोही" ति।

"यथा, महाराज, रञ्ञो सूदो अरसं वा रसं वा करेय्य। सो तत्थ दधिं पि पक्खिपेय्य, लोणं पि पक्खिपेय्य, सिङ्गिवेरं पि पक्खिपेय्य, जीरकं पि पक्खिपेय्य, मरिचं पि पक्खिपेय्य, अञ्ञानि पि पकारानि पक्खिपेय्य; तमेनं राजा एवं वदेय्य— 'दधिस्स मे रसं आहर, लोणस्स मे रसं आहर, सिङ्गिवेरस्स मे रसं आहर, जीरकस्स मे रसं आहर, मरिचस्स मे रसं आहर, सब्बेसं मे पक्खित्तानं रसं आहरा' ति। सक्का नु खो, महाराज, तेसं रसानं एकतो भावगतानं विनिब्भुजित्वा विनिब्भुजित्वा रसं आहरितुं—अम्बिलत्तं वा, लवणत्तं वा, तित्तकत्तं वा, कटुकत्तं वा, कसायत्तं वा, मधुरत्तं वा" ति? "न हि, भन्ते; सक्का तेसं रसानं एकतो भावगतानं विनिब्भुजित्वा विनिब्भुजित्वा रसं आहरितुं—अम्बिलत्तं वा, लवणत्तं वा, तित्तकत्तं वा, कटुकत्तं वा, कसायत्तं वा, मधुरत्तं वा। अपि च खो पन सकेन सकेन लक्खणेन उपट्ठहन्ती" ति। "एवमेव खो, महाराज, न सक्का इमेसं धम्मानं एकतो भावगतानं विनिब्भुजित्वा विनिब्भुजित्वा नानाकरणं पञ्ञापेतुं— 'अयं फस्सो, अयं वेदना, अयं सञ्ञा, अयं चेतना, इदं विञ्ञाणं, अयं वितक्को, अयं विचारो' ति। अपि च खो पन सकेन सकेन लक्खणेन उपट्ठहन्ती" ति।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

२. नागसेनपञ्हो

२. थेरो आह— "लोणं, महाराज, चक्खुविञ्ञेय्यं" ति। "आम, भन्ते, चक्खुविञ्ञेय्यं" ति। "सुट्ठु खो, महाराज, जानाही" ति। "किं पन, भन्ते, जिव्हाविञ्ञेय्यं"

पर क्या उन्हें विनिर्भुक्त (अलग अलग बाँट) कर दिखाया जा सकता है—'यह स्पर्श है, यह वेदना है, यह संज्ञा है, यह चेतना है, यह विज्ञान है, यह वितर्क है, यह विचार है"? "महाराज! इस तरह नहीं दिखाया जा सकता।"

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज! जैसे राजा का रसोइया रसदार या सूखा व्यञ्जन तैयार करे। वह उस में दही, नमक, अदरक, जीरा, मिर्च इत्यादि अनेक मसाले डाले। तब राजा उसे कहे— 'दही का स्वाद अलग कर दो, नमक, अदरक, जीरे, मिर्च का और इसमें डाली हुई दूसरी चीजों के स्वाद को भी अलग-अलग निकाल दो। महाराज! तो उस चीजों के एक साथ मिल जाने के बाद क्या उनको अलग-अलग निकाल कर दिखाया जा सकता है— 'यह खट्टा है, यह नमकीन है, यह तिक्त है, यह कटु है, यह कसेला है या यह मीठा है'?" "नहीं, भन्ते! तो भी, सभी स्वाद उसमें अपनी-अपनी तरह से स्थित रहेंगे"। "महाराज! इसी तरह उन धर्मों के एक साथ मिल जाने के बाद उन्हें अलग-अलग निकाल कर नहीं दिखाया जा सकता— 'यह स्पर्श है, यह वेदना है, यह संज्ञा है, यह चेतना है, यह विज्ञान है, यह वितर्क है या यह विचार है।' फिर भी ये सभी धर्म अपने-अपने रूप में वहाँ रहते ही हैं।"

"भन्ते! आपने ठीक कहा।"

२. नागसेन-प्रश्न— २. "महाराज! क्या नमक आँख से देखकर पहचाना जा सकता है?" "हाँ, भन्ते!

ति? "आम, महाराज, जिव्हाविञ्ञेय्यं" ति। "किं पन, भन्ते, सब्बं लोणं जिव्हाय विजानाती" ति? "आम, महाराज, सब्बं लोणं जिव्हाय विजानाती" ति।

"यदि, भन्ते, सब्बं लोणं जिव्हाय विजानाति, किस्स पन तं सकटेहि बलीवद्दा आहरन्ति? ननु लोणमेव आहरितब्बं" ति?

"न सक्का, महाराज, लोणमेव आहरितुं। एकतो भावगता एते धम्मा गोचरनानत्तगता लोणं, गरुभावो चा" ति।

"सक्का पन, महाराज, लोणं तुलाय तुलयितुं" ति?

"आम, भन्ते, सक्का" ति।

"न सक्का, महाराज, लोणं तुलाय तुलयितुं, गरुभावो तुलाय तुलियती" ति।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

नागसेनपञ्हो निट्ठितो॥

पहचाना जा सकता है।" "महाराज! आप ठीक कह रहे हैं?" "भन्ते! क्या वह जीभ से पहचाना जाना चाहिये?" हाँ, महाराज! जीभ से पहचाना जाना चाहिये। "भन्ते! क्या सभी तरह के नमक जीभ से ही पहचाने जाते हैं?" हाँ, महाराज! सभी तरह के नमक जीभ से ही पहचाने जाते हैं।"

"भन्ते! यदि ऐसी बात है तो उसे बैल गाड़ियों पर लाद कर क्यों लाते हैं? केवल नमक ही न लाना चाहिये।"

"महाराज! केवल नमक लाना सम्भव नहीं। ये दो धर्म, नमकीन और भारीपन दोनों एक साथ ऐसे मिल गये हैं कि अलग नहीं किये जा सकते।"

"महाराज! नमक तराजू पर तौला जा सकता है?"

"हाँ भन्ते! तौला जा सकता है।"

"नहीं, महाराज! नमक तराजू पर नहीं तौला जा सकता; केवल उसका भारीपन तौला जाता है।"

"हाँ, भन्ते! यही ठीक है।"

नागसेन और मिलिन्द राजा के प्रश्न समाप्त॥

(ख) विमतिच्छेदनपञ्हो

३. पञ्चायतनकम्मनिब्बत्तपञ्हो

३. राजा आह— "भन्ते नागसेन, यानिमानि पञ्चायतनानि, किं नु तानि नानाकम्मेहि निब्बत्तानि, उदाहु एकेन कम्मेना" ति? "नानाकम्मेहि, महाराज, निब्बत्तानि, न एकेन कम्मेना" ति।

"ओपम्मं करोही" ति।

"तं किं मञ्ञसि, महाराज, एकस्मिं खेत्ते नानाबीजानि वप्पेय्युं, तेसं नानाबीजानं नानाफलानि निब्बत्तेय्युं" ति? "आम, भन्ते, निब्बत्तेय्युं" ति। "एवमेव खो, महाराज, यानि यानि पञ्चायतनानि तानि तानि नानाकम्मेहि निब्बत्तानि, न एकेन कम्मेना" ति।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

४. कम्मनानाकरणपञ्हो

४. राजा आह— "भन्ते नागसेन, केन कारणेन मनुस्सा न सब्बे समका। अञ्ञे अप्पायुका, अञ्ञे दीघायुका; अञ्ञे बव्हाबाधा, अञ्ञे अप्पाबाधा; अञ्ञे दुब्बण्णा, अञ्ञे वण्णवन्तो; अञ्ञे अप्पेसक्खा, अञ्ञे महेसक्खा; अञ्ञे अप्पभोगा, अञ्ञे महाभोगा; अञ्ञे नीचकुलीना, अञ्ञे महाकुलीना; अञ्ञे दुप्पञ्ञा, अञ्ञे पञ्ञवन्तो" ति?

थेरो आह—"कस्स पुन, महाराज, रुक्खा न सब्बे समका। अञ्ञे अम्बिला, अञ्ञे लवणा, अञ्ञे तित्तका, अञ्ञे कटुका, अञ्ञे कसावा, अञ्ञे मधुरा" ति? "मञ्ञामि,

---

(ख) विमतिच्छेदनप्रश्न

(निर्वाणवर्ग)

३. पञ्चायतनकर्मोत्पत्तिप्रश्न— ३. राजा बोला—"भन्ते! जो ये पञ्च आयतन (आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा) हैं, वे क्या नाना कर्मों के फल से हुए हैं या एक कर्म के फल से?" "महाराज! नाना कर्मों के फल से; एक कर्म के फल से नहीं।"

"कृपया उपमा देकर समझायें।"

"महाराज! कोई आदमी एक ही खेत में पाँच प्रकार के बीज बोये, तो क्या उन अनेक बीजों के फल भी अनेक नहीं होंगे?" "हाँ, भन्ते! अनेक प्रकार के बीजों के फल भी अनेक प्रकार के होंगे।" "महाराज! इसी तरह जो ये पञ्च आयतन हैं, वे दूसरे-दूसरे कर्मों के फल हैं, एक के नहीं।"

"भन्ते! आपने ठीक कहा।"

४. कर्म की प्रधानता—४. राजा बोला—"भन्ते! क्या कारण है कि सभी आदमी एक ही तरह (समान) नहीं होते; कोई कम आयु वाले, कोई दीर्घ आयु वाले; कोई बहुत रोगी, कोई नीरोग; कोई बहुत भद्दे, कोई बहुत सुन्दर; कोई प्रभावहीन, कोई प्रभावशाली; कोई निर्धन, कोई धनी; कोई नीच कुल वाले, कोई उच्च कुल वाले; कोई मूर्ख और कोई बुद्धिमान् क्यों होते हैं?"

स्थविर बोले—"महाराज! क्या कारण है कि सभी वनस्पतियाँ (वृक्ष) एक जैसी नहीं होती? कोई खट्टी, कोई नमकीन, कोई तीती, कोई कड़वी, कोई कसेली और कोई मीठी क्यों होती है?" "भन्ते! मैं

भन्ते, बीजानं नानाकरणेना'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, कम्मानं नानाकरणेन मनुस्सा न सब्बे समका। अञ्ञे अप्पायुका, अञ्ञे दीघायुका; अञ्ञे बव्हाबाधा, अञ्ञे अप्पाबाधा; अञ्ञे दुब्बण्णा, अञ्ञे वण्णवन्तो; अञ्ञे अप्पेसक्खा, अञ्ञे महेसक्खा; अञ्ञे अप्पभोगा, अञ्ञे महाभोगा; अञ्ञे नीचकुलीना, अञ्ञे महाकुलीना; अञ्ञे दुप्पञ्ञा, अञ्ञे पञ्ञवन्तो। भासितं पेतं, महाराज, भगवता—'कम्मस्सका, माणव, सत्ता, कम्मदायादा कम्मयोनी कम्मबन्धू कम्मपटिसरणा। कम्मं सत्ते विभजति, यदिदं हीनप्पणीतताया''' ति।

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

५. वायामकरणपञ्हो

५. राजा आह—''भन्ते नागसेन, तुम्हे भणथ—'किं ति इमं दुक्खं निरुज्झेय्य, अञ्ञञ्च दुक्खं नुप्पज्जेय्या' ति एतदत्था, महाराज, अम्हाकं पब्बज्जा' ति। किं पटिगच्चेव वायमितेन! ननु सम्पत्ते काले वायमितब्बं'' ति? थेरो आह—''सम्पत्ते काले, महाराज, वायामो अकिच्चकरो भवति। पटिगच्चेव वायामो किच्चकरो भवती'' ति।

''ओपम्मं करोही'' ति।

''तं किं मञ्ञसि, महाराज, यदा त्वं पिपासितो भवेय्यासि तदा त्वं उदपानं खणापेय्यासि, तळाकं खणापेय्यासि—पानीयं पिविस्सामी'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, सम्पत्ते काले वायामो अकिच्चकरो भवति, पटिगच्चेव वायामो किच्चकरो भवती'' ति। (१)

''भिय्यो ओपम्मं करोही'' ति।

समझता हूँ कि बीजों के भिन्न–भिन्न होने से ही वनस्पतियाँ भी भिन्नरस होती है।'' ''महाराज! इसी तरह, सभी मनुष्यों के अपने–अपने कर्म भिन्न–भिन्न होने से वे सभी एक ही तरह के नहीं है। कोई कम आयु वाले, कोई दीर्घ आयु वाले....पूर्ववत्..... होते हैं।'' ''महाराज! भगवान् ने भी कहा है–'हे माणव! सभी जीव अपने कर्मों के फल का ही भोग करते हैं, सभी जीव अपने कर्मों के आप स्वामी हैं, वे अपने कर्मों के अनुसार ही नाना योनियों में उत्पन्न होते हैं, अपना कर्म ही अपना बन्धु है, अपना कर्म ही अपना आश्रम है, कर्म ही से लोग ऊँचे और नीचे हुए हैं।''

''भन्ते! आपने ठीक कहा।''

५. प्रयत्नकरणप्रश्न– ५. राजा बोला–''भन्ते! आपने पहले कहा है–इस दुःख से छूटने और नये दुःख न उत्पन्न होने देने के लिये ही हम लोगों की प्रव्रज्या होती है।'' ''हाँ, ऐसा कहा था।'' ''भन्ते! किन्तु यह प्रव्रज्या पूर्वजन्मों के फल से होती है या इसके लिये इसी जन्म में प्रयत्न किया जा सकता है?'' स्थविर बोले– ''महाराज! समय पड़ने पर प्रयत्न करना कोई महत्त्व नहीं रखता। पूर्वजन्मों के कर्मों का फल स्वयं होता है।''

''कृपया उपमा देकर समझावें।''

''महाराज! जब आपको प्यास लगती है, क्या तब आप कूआ या तालाब खुदवाते हैं कि जल लेकर पीऊँगा?'' ''नहीं, भन्ते!'' ''महाराज! इसी तरह समय पड़ने पर प्रयत्न करना कोई महत्त्व नहीं रखता। पूर्वजन्म के कर्मों का फल तो स्वयं ही होता है।'' (१)

''कृपया फिर उपमा देकर समझावें।''

"तं किं मञ्ञसि, महाराज, यदा त्वं बुभुक्खितो भवेय्यासि, तदा त्वं खेत्तं कस्सापेय्यासि, सालिं रोपापेय्यासि, धञ्ञे अतिहरापेय्यासि—भत्तं भुञ्जिस्सामी" ति? "नहि, भन्ते" ति। "एवमेव खो, महाराज, सम्पत्ते काले वायामो अकिच्चकरो भवति, पटिगच्चेव वायामो किच्चकरो भवति" (२)

"भिय्यो ओपम्मं करोही" ति।

"तं किं मञ्ञसि, महाराज, यदा ते सङ्गामो पच्चुपट्ठितो भवेय्य, तदा त्वं परिखं खणापेय्यासि, पाकारं कारापेय्यासि, गोपुरं कारापेय्यासि, अट्टालकं कारापेय्यासि, धञ्ञे अतिहरापेय्यासि, तदा त्वं हत्थिस्मिं सिक्खेय्यासि, अस्सस्मिं सिक्खेय्यासि, रथस्मिं सिक्खेय्यासि, धनुस्मिं सिक्खेय्यासि, थरुस्मिं सिक्खेय्यासी" ति? "न हि, भन्ते" ति। "एवमेव खो, महाराज, सम्पत्ते काले वायामो अकिच्चकरो भवति, पटिगच्चेव वायामो किच्चकरो भवतति।" (३)

भासित पेतं, महाराज, भगवता—

'पटिगच्चेव तं कयिरा यं जञ्ञा हितमत्तनो।
न साकटिकचिन्ताय मन्ता धीरो परक्कमे॥
'यथा साकटिको मट्ठं समं हित्वा महापथं।
विसमं मग्गमारुय्ह अक्खच्छिन्नो व झायति॥
'एवं धम्मा अपक्कम्म अधम्ममनुवत्तिय।
मन्दो मच्चुमुखं पत्तो अक्खच्छिन्नो व झायती' " ति॥

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

"महाराज! आप क्या भूख लगने पर चावल खाने के लिये खेत जोतवाना, धान रोपवाना और कटवाना आरम्भ करते हैं? नहीं,भन्ते!" "महाराज! इसी तरह, समय पड़ने पर प्रयत्न करना कोई महत्त्व नहीं रखता–।" (२)

"कृपया फिर उपमा देकर समझावें।"

"महाराज! क्या किसी युद्ध के छिड़ जाने पर आप खाई खुदवाने लगते हैं, प्राकार (दीवार) बनवाने लगते हैं, फाटक बनवाने लगते हैं, अटारी (चौकी) उठवाने लगते हैं, सेना के लिये सामग्री जमा करने लगते हैं, हाथी, घोड़े, रथ, धनुष् और तलवार तैयार करने लगते हैं?" "नहीं भन्ते!" "इसी तरह, समय पड़ने पर प्रयत्न करना....।" (३)

भगवान् ने भी कहा है :–

'समय आ जाने पर बुद्धिमानों को वही कार्य करना चाहिये, जिसमें अपना हित समझें। उस मूर्ख गाड़ीवान की तरह न होकर दृढ़ता के साथ अपने काम में डटे रहना चाहिये।'

'जिस तरह, वह गाड़ीवान बड़ी और समतल सड़क को छोड़, ऊमड़–खाभड़ रास्ते में पड़कर गाड़ी के अक्ष के टूट जाने से विपत्ति में पड़ जाता है।'

'इसी तरह, धर्म को छोड़, अधर्म में पड़कर मूर्ख लोग मृत्यु के मुख में आकर हतोत्साह होकर शोक करने लगते हैं।'

"भन्ते! आपने बहुत ठीक कहा।"

६. नेरयिकग्गिउण्हभावपञ्हो

६. राजा आह—"भन्ते नागसेन, तुम्हे भणथ— 'पाकतिकअग्गितो नेरयिको अग्गि महाभितापतरो होति! खुद्दको पि पासाणो पाकतिके अग्गिम्हि पक्खित्तो दिवसं पि पच्चमानो न विलयं गच्छति, कूटागारमत्तो पि पासाणो नेरयिकग्गिम्हि पक्खित्तो खणेन विलयं गच्छती' ति। एतं वचनं न सद्दहामि। एवं च पन वदेथ— 'ये च तत्थ उप्पन्ना सत्ता ते अनेकानि पि वस्ससहस्सानि निरये पच्चमाना न विलयं गच्छन्ती' ति। तं पि वचनं न सद्दहामी" ति।

थेरो आह—"तं किं मञ्ञसि, महाराज, या ता सन्ति मकरिनियो पि सुंसुमारिनियो पि कच्छपिनियो पि मोरिनियो पि कपोतिनियो पि, किं नु ता कक्खळानि पासाणानि सक्खरायो च खादन्ती" ति? "आम, भन्ते, खादन्ती" ति। "किं पन तानि तासं कुच्छियं कोट्ठब्भन्तरगतानि विलयं गच्छन्ती" ति? "आम, भन्ते, विलयं गच्छन्ती" ति। "यो पन तासं कुच्छियं गब्भो सो पि विलयं गच्छती" ति? "न हि, भन्ते" ति। "केन कारणेना" ति? "मञ्ञामि, भन्ते, कम्माधिकतेन न विलयं गच्छती" ति। "एवमेव खो, महाराज, कम्माधिकतेन नेरयिका सत्ता अनेकानि पि वस्स-सहस्सानि निरये पच्चमाना न विलयं गच्छन्ति। भासितं पेतं, महाराज, भगवता—'सो न ताव कालङ्करोति, याव न तं पापकम्मं ब्यन्ती होती' " ति। (१)

"भिय्यो ओपम्मं करोही" ति।

"तं किं मञ्ञसि, महाराज, या ता सन्ति सीहिनियो पि ब्यग्घिनियो पि दीपिनियो पि कुक्कुरिनियो पि, किं नु ता कक्खळानि अट्ठिकानि मंसानि खादन्ती" ति? "आम, भन्ते, खादन्ती" ति। "किं पन तानि तासं कुच्छियं कोट्ठब्भन्तरगतानि विलयं गच्छन्ती" ति?

---

६. नरकाग्नि की उष्णता— ६. राजा बोला— "भन्ते! आप लोग कहते हैं— 'स्वाभाविक अग्नि से नरक की अग्नि कहीं अधिक तेज है। एक छोटा पत्थर भी स्वाभाविक अग्नि में डालकर दिन भर जला रहने से कभी-कभी नहीं गलता; किन्तु नरक की अग्नि में पड़ कर बड़े-बड़े चट्टान भी एक क्षण ही में गल जाते है'—इसे मैं किसी भी तरह नहीं मानता। आप लोग ऐसा भी कहते हैं— 'जो जीव वहाँ उत्पन्न होते है, वे उस नरक की आग में हजारों वर्ष तक पचते रहते हैं, किन्तु नहीं गलते'—इस बात को भी मैं सर्वथा नहीं मानता।"

स्थविर बोले— "महाराज! क्या मकर, कुम्भीलक, कछुए, मोर और कबूतर की मादाएँ कड़े पत्थर के कंकड़ों को नहीं चुग जातीं?" "हाँ, भन्ते! चुग जाती हैं।" "क्या वे कंकड़ उनके पेट में जाकर नहीं पच जाते?" "हाँ, भन्ते! पच जाते हैं।" "उनके पेट में जो बच्चे हैं, क्या वे भी पच जाते हैं?" "नहीं, भन्ते! बच्चे नहीं पच पाते।" "सो क्यों?" "भन्ते! मैं समझता हूँ कि अपने कर्मों के वैसा होने से वे नहीं पच पाते।" "महाराज! इसी तरह, अपने कर्मों के वैसा होने से नरक में उत्पन्न होने वाले जीव वहाँ की अग्नि में हजारों वर्ष तक पकते रहते हैं, किन्तु नहीं गलते। वहीं उत्पन्न होते हैं, वहीं बढ़ते हैं और वहीं मर भी जाते हैं।" भगवान् ने कहा भी है— 'वे उस नरक से नहीं छूटते, जब तक कि उनके पाप कर्म समाप्त नहीं होते'।" (१)

"कृपया फिर उदाहरण देकर समझावें।"

"महाराज! जो सिंह, बाघ, चीतों की मादाएँ और कुत्तियाँ है, वे कड़ी-कड़ी हड्डियों तथा कड़े-कड़े मांस-पिण्डों को नहीं चबा जाती हैं?" "हाँ भन्ते! चबा जाती हैं।" "क्या वे .... पच जाते हैं।" "नहीं,

"आम, भन्ते, विलयं गच्छन्ती" ति। "यो पन तासं कुच्छियं गब्भो सो पि विलयं गच्छती" ति ?" न हि, भन्ते" ति। "केन कारणेना" ति ? "मञ्ञामि, भन्ते, कम्माधिकतेन न विलयं गच्छती" ति। "एवमेव खो, महाराज, कम्माधिकतेन नेरयिका सत्ता अनेकानि पि वस्ससहस्सानि निरये पच्चमाना न विलयं गच्छन्ती" ति। (२)

"भिय्यो ओपम्मं करोही" ति।

"तं किं मञ्ञसि, महाराज, या ता सन्ति योनकसुखुमालिनियो पि खत्तियसुखुमालिनियो पि ब्राह्मणसुखुमालिनियो पि गहपतिसुखुमालिनियो पि, किं नु ता कक्खळानि खज्जकानि मंसानि खादन्ती" ति? "आम, भन्ते, खादन्ती" ति। "किं पन तानि तासं कुच्छियं कोट्ठब्भन्तरगतानि विलयं गच्छन्ती" ति? "आम, भन्ते, विलयं गच्छन्ती" ति। "यो पन तासं कुच्छियं गब्भो सोपि विलयं गच्छती" ति। "न हि, भन्ते" ति "केन कारणेना" ति? "मञ्ञामि, भन्ते, कम्माधिकतेन न विलयं गच्छती" ति। "एवमेव खो, महाराज, कम्माधिकतेन नेरयिका सत्ता अनेकानि पि वस्ससहस्सानि निरये पच्चमाना न विलयं गच्छन्ति। भासितं पेतं, महाराज, भगवता—'सो न ताव कालङ्करोति, याव न तं पापं कम्मं ब्यन्तीहोती' " ति। (३)

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

७. पथविसन्धारणकथा

७. राजा आह—"भन्ते नागसेन, तुम्हे भणथ—'अयं महापथवी उदके पतिट्ठिता, उदकं वाते पतिट्ठितं, वातो आकासे पतिट्ठितो' ति, एतं पि वचनं न सद्दहामी" ति। थेरो धम्मकरकेन उदकं गहेत्वा राजानं मिलिन्दं सञ्ञापेसि—"यथा, महाराज, इमं उदकं वातेन आधारितं, एवं तं पि उदकं वातेन आधारितं" ति।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

भन्ते! पेट के बच्चे नहीं पचते।" सो क्यों?" "भन्ते!" मैं समझता हूँ कि अपने कर्मों के वैसा होने से वे नहीं पच जाते।" "महाराज! इसी तरह, अपने कर्मों के वैसा होने से नरक में उत्पन्न होने वाले जीव वहाँ की अग्नि में हजारों वर्ष तक पकते रहते हैं, गलते नहीं।"

"कृपया पुनः कोई अन्य उदाहरण देकर समझावें।"

"महाराज! क्या सुकुमार यवन स्त्रियाँ, सुकुमार क्षत्राणियाँ, सुकुमार ब्राह्मणियाँ और सुकुमार वैश्य स्त्रियाँ कड़े–कड़े पदार्थ और मांस नहीं खाती?" "हाँ, भन्ते! खाती हैं।" "महाराज! उनके भीतर पेट में जाकर वे कड़ी–कड़ी चीजें भी नहीं पच जाती?" "हाँ भन्ते! पच जाती हैं।" "क्या उनके पेट के गर्भ भी पच जाते हैं?" "नहीं, भन्ते! गर्भ नहीं पचते"। "वह क्यों?" "भन्ते! मैं समझता हूँ कि अपने कर्मों के वैसा होने से वे नहीं पचते।" "महाराज! इसी तरह अपने कर्मों के वैसा होने से नरक में उत्पन्न होने वाले जीव वहाँ की अग्नि में हजारों वर्ष तक पचते रहते हैं, किन्तु गलते नहीं। भगवान् ने कहा भी है– "वे नरक से नहीं छूटते, जब तक कि उनके पाप समाप्त नहीं होते।"

"भन्ते! आपने ठीक समझाया।"

७. पृथ्वीसन्धारणकथा—७. राजा बोला– "भन्ते! आप लोग कहते हैं कि 'यह पृथ्वी जल पर ठहरी हुई है, जल वायु पर और वायु आकाश पर ठहरी हुई है'– इसे मैं नहीं मानता।" स्थविर ने धम्मकरक

८. निरोधनिब्बानपञ्हो

८. राजा आह—"भन्ते नागसेन, निरोधो निब्बानं" ति? "आम, महाराज, निरोधो निब्बानं" ति। "कथं, भन्ते नागसेन, निरोधो निब्बानं" ति? "सब्बे बालपुथुज्जना खो, महाराज, अज्झत्तिकबाहिरे आयतने अभिनन्दन्ति अभिवदन्ति, अज्झोसाय तिट्ठन्ति; ते तेन सोतेन वुय्हन्ति, न परिमुच्चन्ति जातिया जराय मरणेन सोकेन परिदेवेन दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि, न परिमुच्चन्ति दुक्खस्मा ति वदामि। सुतवा च खो, महाराज, अरियसावको अज्झत्तिकबाहिरे आयतने नाभिनन्दति, नाभिवदति नाज्झोसाय तिट्ठति। तस्सं तं अनभिनन्दतो अनभिवदतो अनज्झोसाय तिट्ठतो तण्हा निरुज्झति, तण्हानिरोधा उपादाननिरोधो, उपादाननिरोधा भवनिरोधो, भवनिरोधा जातिनिरोधो, जातिनिरोधा जरामरणसोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा निरुज्झन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होति। एवं खो, महाराज, निरोधो निब्बानं" ति।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

९. निब्बानलभनपञ्हो

९. राजा आह— "भन्ते नागसेन, सब्बेव लभन्ति निब्बानं" ति? "न खो, महाराज, सब्बेव लभन्ति निब्बानं ति; अपि च खो, महाराज, यो सम्मा पटिपन्नो अभिञ्ञेय्ये धम्मे अभिजानाति, परिञ्ञेय्ये धम्मे परिजानाति, पहातब्बे धम्मे पजहति, भावेतब्बे धम्मे भावेति, सच्छिकातब्बे धम्मे सच्छिकरोति, सो लभति निब्बानं" ति।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

(छोटे पात्र) में जल लेकर राजा को बतलाया— "महाराज! जिस तरह यह जल वायु पर ठहरा हुआ है, उसी तरह वह जल भी वायु पर ठहरा है।"

"भन्ते! बहुत ठीक कहा।"

८. निरोध–निर्वाण–प्रश्न—८. राजा बोला—"भन्ते! क्या 'निरोध होना' ही निर्वाण है?" "हाँ, महाराज! निरोध होना (= रुक जाना) ही निर्वाण है।" "भन्ते! 'निरोध होना' ही निर्वाण कैसे है?" "महाराज! सभी संसारी अज्ञानी जीव इन्द्रियों, विषयों के उपभोग में लगे रहते हैं, उसी में आनन्द लेते हैं और उसी में डूबे रहते हैं। वे उसी की धारा में पड़े रहते हैं। बार–बार जन्म लेते, बूढ़े होते, मरते, शोक करते, रोते–कलपते, दुःख, बेचैनी और उद्वेग से नहीं छूटते। दुःख ही में पड़े रहते हैं। महाराज! किन्तु ज्ञानी आर्यश्रावकजन इन्द्रियों और विषयों के उपभोग में नहीं लगे रहते, उसमें आनन्द नहीं लेते और उसी में डूबे नहीं रहते। इससे उनकी तृष्णा का निरोध हो जाता है। तृष्णा के निरोध हो जाने से उपादान का निरोध हो जाता है। उपादान के निरोध से भव का निरोध हो जाता है। भव के निरोध होने से पुनर्जन्म का निरोध हो जाता है। पुनर्जन्म के निरोध होने से बूढ़ा होना, मरना, शोक, रोना, पीटना, दुःख, बेचैनी और परेशानी आदि सभी दुःख निरुद्ध हो जाते हैं। इस तरह इस समग्र दुःखस्कन्ध का निरोध हो जाता है।"

"भन्ते! आपने ठीक कहा।"

९. निर्वाणलाभ–प्रश्न—९. राजा बोला—"भन्ते! क्या सभी जीव निर्वाण प्राप्त करेंगे?" "नहीं महाराज! सभी निर्वाण नहीं पायेंगे। जो पुण्य करने वाले, स्वीकार करने योग्य, धर्मों को ही मानने वाले, जानने योग्य धर्मों को जानने वाले, अनुचित धर्मों को छोड़ देने वाले, अभ्यास में लाने योग्य धर्मों को अभ्यास में लाने वाले और साक्षात्कार करने योग्य धर्मों का साक्षात्कार करने वाले हैं, वे ही निर्वाण पाते हैं।"

१०. निब्बानसुखजाननपञ्हो

१०. राजा आह—"भन्ते नागसेन, यो न लभति निब्बानं, जानाति सो— 'सुखं निब्बानं' " ति? "आम, महाराज, यो न लभति निब्बानं, जानाति सो— 'सुखं निब्बानं' " ति। "कथं, भन्ते नागसेन, अलभन्तो जानाति— 'सुखं निब्बानं' " ति? "तं किं मञ्ञसि, महाराज, येसं नच्छिन्ना हत्थपादा, जानेय्युं ते, महाराज— 'दुक्खं हत्थपादच्छेदनं' " ति? "आम, भन्ते, जानेय्युं" ति। "कथं जानेय्युं" ति? "अञ्ञेसं, भन्ते, छिन्नहत्थपादानं परिदेवितसद्दं सुत्वा जानन्ति— 'दुक्खं हत्थपादछेदनं' " ति। "एवमेव खो, महाराज, येसं दिट्ठं निब्बानं तेसं सद्दं सुत्वा जानाति— 'सुखं निब्बानं' " ति।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति॥

(इमस्मिं वग्गे दस पञ्हा)

चतुत्थो निब्बानवग्गो निट्ठितो॥

५. बुद्धवग्गो

१. बुद्धस्स अत्थिनत्थिभावपञ्हो

१. राजा आह— "भन्ते नागसेन, बुद्धो तया दिट्ठो" ति? "न हि, महाराजा" ति। "अथ ते आचरियेहि बुद्धो दिट्ठो" ति? "न हि, महाराजा" ति। "तेन हि, भन्ते नागसेन, नत्थि बुद्धो" ति। "किं पन, महाराज, हिमवति ऊहा नदी तया दिट्ठा" ति? "न हि, भन्ते" ति। "अथ ते पितरा ऊहा नदी दिट्ठा" ति? "न हि, भन्ते" ति। "तेन हि, महाराज, नत्थि ऊहा नदी" ति? "अत्थि, भन्ते; किञ्चा पि तया ऊहा नदी न दिट्ठा, पितरा पि ते ऊहा नदी न दिट्ठा, अपि च अत्थि ऊहा नदी" ति। "एवमेव, खो, महाराज, किञ्चा पि मया भगवा न दिट्ठो, आचरियेहि पि मे भगवा न दिट्ठो; अपि च अत्थि भगवा" ति।

"भन्ते! बहुत अच्छा।"

१०. निर्वाणसुखज्ञान–प्रश्न— १०. राजा बोला—"भन्ते! जो निर्वाण नहीं पाता, क्या वह जानता है कि निर्वाण सुख है?" "हाँ, महाराज! जो निर्वाण नहीं पाता, वह भी जानता है कि निर्वाण सुख है।" "भन्ते! स्वयं उसे नहीं पाकर कैसे जानता है कि वह सुख है?" "महाराज! जिनके हाथ या पैर कभी काटे नहीं गये, वे क्या जानते हैं कि हाथ या पैर के काटे जाने से दुःख होता है?" "हाँ, भन्ते! जानते हैं।" "कैसे जानते हैं?" "भन्ते! हाथ या पैर काटे गये दूसरे लोगों का रोना–पीटना सुन कर जानते हैं कि उससे दुःख होता है"। "महाराज! इसी तरह निर्वाणप्राप्त लोगों के सन्तोष और प्रीतिपूर्ण वाक्यों को सुनकर वे भी, जिन्होंने इसे नहीं पाया है, जान सकते हैं कि निर्वाण सुख है।"

"भन्ते! आपने ठीक समझाया।"

(इस वर्ग में दस प्रश्न है)

चतुर्थ निर्वाणवर्ग समाप्त॥

५. बुद्धवर्ग

१. बुद्ध के होने में शंका— १. राजा बोला— "भन्ते! आपने भगवान् बुद्ध को देखा है?" "नहीं, महाराज!" "क्या आपके आचार्यों ने भगवान् बुद्ध को देखा है?" "नहीं महाराज!" "भन्ते! तब भगवान् बुद्ध हुए ही नहीं?" "महाराज! हिमालय पर्वत पर आपने 'ऊहा' नाम की नदी को देखा है?" "नहीं भन्ते!" "क्या आपके पिता ने उसे देखा था?" "नहीं, भन्ते?" "महाराज! तो क्या 'ऊहा' नदी नहीं है?"

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

२. बुद्धस्स अनुत्तरभावपञ्हो

२. राजा आह— "भन्ते नागसेन, बुद्धो अनुत्तरो" ति? "आम, महाराज, भगवा अनुत्तरो" ति। "कथं भन्ते नागसेन, अदिट्ठापुब्बं जानासि—बुद्धो अनुत्तरो" ति? "तं किं मञ्ञसि, महाराज, येहि अदिट्ठापुब्बो महासमुद्दो, जानेय्युं ते, महाराज—महन्तो खो महासमुद्दो गम्भीरो अप्पमेय्यो दुप्परियोगाहो, यत्थिमा पञ्च महानदियो सततं समितं अप्पेन्ति, सेय्यथीदं— गङ्गा, यमुना, अचिरवती, सरभू, मही। नेव तस्स ऊनत्तं वा पूरत्तं वा पञ्ञायती" ति? "आम, भन्ते, जानेय्युं" ति। "एवमेव खो, महाराज, सावके महन्ते परिनिब्बुते पस्सित्वा जानामि— भगवा अनुत्तरो" ति।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

३. बुद्धस्स अनुत्तरभावजाननपञ्हो

३. राजा आह— "भन्ते नागसेन, सक्का जानितुं—बुद्धो अनुत्तरो" ति? "आम, महाराज, सक्का जानितुं— भगवा अनुत्तरो" ति।

"कथं, भन्ते नागसेन, सक्का जानितुं—बुद्धो अनुत्तरो" ति? "भूतपुब्बं, महाराज, तिस्सत्थेरो नाम लेखाचरियो अहोसि। बहूनि वस्सानि अब्भतीतानि कालङ्कतस्स, कथं सो ञायती" ति? "लेखेन, भन्ते" ति। "एवमेव खो, महाराज, यो धम्मं पस्सति सो भगवन्तं पस्सति। धम्मो हि, महाराज, भगवता देसितो" ति।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

"है, भन्ते! यद्यपि मैं या मेरे पिता ने उसे नहीं देखा; तो भी वह नदी है।" "महाराज! उसी तरह, यद्यपि मैं या मेरे आचार्यों ने भगवान् बुद्ध को नहीं देखा, तो भी वे हुए हैं।"

"भन्ते! आपने ठीक समझाया।"

२. भगवान् की श्रेष्ठताविषयक प्रश्न— २. राजा बोला— "भन्ते! क्या भगवान् बुद्ध अनुत्तर (परमश्रेष्ठ) हैं?" "हाँ, महाराज! भगवान् अनुत्तर हैं।" "भन्ते! आप उन्हें बिना देखे भी कैसे जानते हैं कि वे अनुत्तर हैं?" "महाराज! जिन्होंने महासमुद्र को नहीं देखा, क्या वे नहीं जानते कि वह बहुत विशाल, गम्भीर और अगाध है, जिसमें गङ्गा, यमुना, अचिरवती, सरयू (सरभु) और गंडक पाँचों बड़ी–बड़ी नदियाँ जाकर गिरती हैं तो भी वह न कम न अधिक होता है?" "हाँ, भन्ते! जानते हैं।" "महाराज! इसी तरह, निर्वाण प्राप्त किये उनके बड़े–बड़े श्रावकों को देखकर मैं जानता हूँ कि भगवान् अनुत्तर हैं।"

"भन्ते! आपने ठीक कहा।"

३. बुद्ध के अनुत्तर होने का ज्ञान— ३. राजा बोला— "भन्ते! क्या यह जाना जा सकता है कि बुद्ध अनुत्तर हैं?" "हाँ, महाराज! जाना जा सकता है।"

"भन्ते! वह किस तरह?" "महाराज! अतीत काल में एक बड़े भारी लेखक हो गये हैं, जिनका नाम था तिष्य स्थविर। उनका देहपात हुए बहुत साल हो गये, तो भी लोग उन्हें कैसे जानते हैं?" "भन्ते! उनके लिखे हुए ग्रन्थ देखकर।" "महाराज! उसी तरह, जो धर्म को जानता है, वह भगवान् को जानता है; क्योंकि भगवान् ने ही उसका उपदेश किया है।"

"भन्ते! आपने ठीक कहा।"

४. धम्मदिट्ठपञ्हो

४. राजा आह— "भन्ते नागसेन, धम्मो तया दिट्ठो" ति? "बुद्धनेत्तिया, खो, महाराज, बुद्धपञ्ञत्तिया यावजीवं सावकेहि वत्तितब्बं" ति।

"कल्लोसि, भन्ते, नागसेना" ति।

५. असङ्कमनपटिसन्दहनपञ्हो

५. राजा आह— "भन्ते नागसेन, न च सङ्कमति पटिसन्दहति चा" ति? "आम, महाराज, न च सङ्कमति पटिसन्दहति चा" ति।

"कथं, भन्ते नागसेन, न च सङ्कमति पटिसन्दहति च? ओपम्मं करोही" ति।

"यथा, महाराज, कोचिदेव पुरिसो पदीपतो पदीपं पदीपेय्य, किं नु खो सो, महाराज, पदीपो पदीपम्हा सङ्कन्तो" ति? "न हि, भन्ते" ति। "एवमेव खो, महाराज, न च सङ्कमति पटिसन्दहति चा" ति। (१)

"भिय्यो ओपम्मं करोही" ति।

"अभिजानासि नु त्वं, महाराज, दहरको सन्तो सिलोकाचरियस्स सन्तिके कञ्चि सिलोकं गहितं" ति? "आम, भन्ते" ति।

"किं नु खो, महाराज, सो सिलोको आचरियम्हा सङ्कन्तो" ति? "न हि, भन्ते" ति। "एवमेव खो, महाराज, न च सङ्कमति पटिसन्दहति चा" ति। (२)

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

६. वेदगूपञ्हो

६. राजा आह—"भन्ते नागसेन, वेदगू उपलब्भती" ति? थेरो आह—"परमत्थेन खो, महाराज, वेदगू नूपलब्भती" ति।

---

४. धर्मदर्शन-प्रश्न— ४. राजा बोला— "भन्ते! आपने धर्म को जान लिया है?" "महाराज! भगवान् के उपदेशों से श्रावकों को धर्म समझने का यत्न करना चाहिये।"

"भन्ते! आपने ठीक कहा।"

५. असंक्रमण से प्रतिसन्धान— ५. राजा बोला—"भन्ते! यदि आत्मा का एक शरीर से निकल कर दूसरे शरीर में जाना संक्रमण नहीं होता तो पुनर्जन्म कैसे होता है?" "हाँ, महाराज! बिना संक्रमण हुए पुनर्जन्म होता है।"

"भन्ते! सो कैसे होता है? कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज! यदि कोई एक दीपक से दूसरा दीपक जला लें तो क्या यहाँ एक दीपक दूसरे में संक्रमण करता है?" "नहीं भन्ते!" "महाराज! इसी तरह विना संक्रमण हुए पुनर्जन्म होता है। (१)

"कृपया फिर उपमा देकर समझावें।"

"महाराज! क्या आपको कोई श्लोक स्मरण है, जिसे आपने अपने गुरु के मुख से सीखा था?" "हाँ, स्मरण है।"

"महाराज! क्या वह श्लोक आचार्य के मुख से निकल के आपके मुख में प्रविष्ट हो गया है।" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! इसी तरह, विना संक्रमण हुए पुनर्जन्म होता है।" (२)

"भन्ते! आपने ठीक समझाया।"

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

७. अञ्ञकायसङ्कमनपञ्हो

७. राजा आह—"भन्ते नागसेन, अत्थि कोचि सत्तो यो इमम्हा काया अञ्ञं कायं सङ्कमती" ति? "न हि, महाराजा" ति। "यदि, भन्ते नागसेन, इमम्हा काया अञ्ञं कायं सङ्कमन्तो नत्थि, ननु मुत्तो भविस्सति पापकेहि कम्मेही" ति? "आम, महाराज, यदि न पटिसन्दहेय्य, मुत्तो भविस्सति पापकेहि कम्मेही ति। यस्मा च खो, महाराज, पटिसन्दहति, तस्मा न परिमुत्तो पापकेहि कम्मेही" ति।

"ओपम्मं करोही" ति।

"यथा, महाराज, कोचिदेव पुरिसो अञ्ञतरस्स पुरिसस्स अम्बं अवहरेय्य। किं सो दण्डप्पत्तो भवेय्या" ति? "आम, भन्ते, दण्डप्पत्तो भवेय्या" ति। "न खो सो, महाराज, तानि अम्बानि अवहरि, यानि तेन रोपितानि, कस्मा दण्डप्पत्तो भवेय्या" ति? "तानि, भन्ते, अम्बानि निस्साय जातानि, तस्मा दण्डप्पत्तो भवेय्या" ति। "एवमेव खो, महाराज, इमिना नामरूपेन कम्मं करोति—सोभनं वा असोभनं वा, तेन कम्मेन अञ्ञं नामरूपं पटिसन्दहति, तस्मा न परिमुत्तो पापकेही कम्मेहि" ति।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

८. कम्मफलअत्थिभावपञ्हो

८. राजा आह— "भन्ते नागसेन, इमिना नामरूपेन कम्मं कतं कुसलं वा अकुसलं वा, कुहिं तानि कम्मानि तिट्ठन्ती" ति? "अनुबन्धेय्युं खो, महाराज, तानि कम्मानि छाया व अनपायिनी" ति। "सक्का पन, भन्ते, तानि कम्मानि दस्सेतुं—'इध वा इध वा तानि कम्मानि

---

६. वेदगुप्रश्न— ६. राजा बोला—"भन्ते! कोई वेदगु (=ज्ञाता = पुरुष या आत्मा) है या नहीं?" स्थविर बोले— "महाराज! परमार्थ में ऐसा वेदगु कोई नहीं है।"

"भन्ते! ठीक कहा।"

७. अन्यकायसंक्रमणविषयकप्रश्न—७. राजा बोला—"भन्ते! ऐसा कोई जीव है, जो इस शरीर से निकल कर दूसरे में प्रवेश करता है?" "नहीं, महाराज!" "भन्ते! यदि इस शरीर से निकल कर दूसरे शरीर में जाने वाला कोई नहीं है, तब तो वह अपने पाप कर्मों से मुक्त हो गया।" "हाँ, महाराज! यदि उसका पुनर्जन्म नहो तब तो वह अपने पाप कर्मों से मुक्त हो गया और यदि फिर जन्म ग्रहण करे तो मुक्त नहीं हुआ।"

"कृपया इसे उपमा देकर समझावें।"

"महाराज! यदि कोई आदमी किसी दूसरे का आम चुरा ले तो दण्ड का भागी होगा या नहीं?" "हाँ, भन्ते! होगा।" "महाराज! उस आम को तो उसने रोपा नहीं था जिसे उसने लिया, फिर दण्ड का भागी कैसे होगा?" "भन्ते! उसके रोपे हुये आम से ही यह भी पैदा हुआ, इसलिए वह दण्ड का भागी होगा।" "महाराज! इसी तरह, एक पुरुष इस नाम–रूप से पाप–पुण्य कर्म करता है। उन कर्मों के प्रभाव से दूसरा नाम–रूप जन्म लेता है। इसलिये वह अपने पाप कर्मों के प्रभाव से ही मुक्त नहीं हुआ।"

"भन्ते! आपने ठीक समझाया।"

८. कर्मफलविषयकप्रश्न—८. राजा बोला—"भन्ते! जब नाम–रूप से अच्छे या बुरे कर्म किये जाते हैं तो वे कर्म कहाँ ठहरते हैं?" "महाराज! कभी भी पीछा न छोड़ने वाली छाया की भाँति वे कर्म उसका

तिट्ठन्ती''' ति? ''न सक्का, महाराज, तानि कम्मानि दस्सेतुं—'इध वा इध वा तानि कम्मानि तिट्ठन्ती' '' ति।

''ओपम्मं करोही'' ति।

''तं किं मञ्ञसि, महाराज, यानिमानि रुक्खानि अनिब्बत्तफलानि, सक्का तेसं फलानि दस्सेतुं—'इध वा इध वा तानि फलानि तिट्ठन्ती' '' ति?''न हि, भन्ते'' ति।''एवमेव खो, महाराज, अब्भोच्छिन्नाय सन्ततिया न सक्का तानि कम्मानि दस्सेतुं—'इध वा इध वा तानि कम्मानि तिट्ठन्ती' '' ति।

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

९. उप्पज्जतिजाननपञ्हो

९. राजा आह—''भन्ते नागसेन, यो उप्पज्जति जानाति सो—'उप्पज्जिस्सामी' '' ति? ''आम, महाराज, यो उप्पज्जति जानाति सो— 'उप्पज्जिस्सामि' '' ति।

''ओपम्मं करोही'' ति।

''यथा, महाराज, कस्सको गहपतिको बीजानि पथवियं निक्खिपित्वा सम्मा देवे वस्सन्ते जानाति 'धञ्ञं निब्बत्तिस्सती' ''ति?''आम, भन्ते, जानेय्या'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, यो उप्पज्जति जानाति सो—'उप्पज्जिस्सामी' '' ति।

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

१०. बुद्धनिदस्सनपञ्हो

१०. राजा आह—''भन्ते नागसेन, बुद्धो अत्थी'' ति? ''आम, महाराज, भगवा अत्थी'' ति।

''सक्का पन, भन्ते नागसेन, बुद्धो निदस्सेतुं—इध वा इध वा'' ति?

पीछा करते रहते हैं?" "भन्ते! क्या वे कर्म दिखाये जा सकते हैं कि वे यहाँ या वहाँ ठहरे हैं?" "महाराज! वे इस तरह दिखाये नहीं जा सकते।"

"कृपया इसे उपमा देकर समझाइये।"

"महाराज! क्या कोई वृक्ष के उन फलों को दिखा सकता है, जो अभी लगे ही नहीं—वे यहाँ हैं, वे वहाँ हैं?" "महाराज! इसी तरह कर्मों के इस सतत (अटूट) प्रवाह में वे नहीं दिखाये जा सकते कि ये यहाँ हैं या वहाँ है।"

"भन्ते! आपने ठीक समझाया।"

९. जन्मज्ञानविषयकप्रश्न— ९. राजा बोला— "भन्ते! जो जन्म लेता है, वह क्या पहले से जानता है कि मैं जन्म लूँगा?" "हाँ, महाराज! वह जानता है।"

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज! क्या कोई किसान बीजों को बोकर अच्छी वृष्टि हो जाने के बाद नहीं जानता कि अच्छी खेती होगी?" "हाँ भन्ते! जानता है।" "महाराज! इसी तरह, जो जन्म लेता है वह पहले से जानता है कि मैं जन्म लूँगा।"

"भन्ते! आपने ठीक समझाया।"

१०. बुद्धनिदर्शनप्रश्न— १०. राजा बोला— "भन्ते ! क्या बुद्ध हुए हैं!" "हाँ, महाराज! हुए हैं।"

"परिनिब्बुतो, महाराज, भगवा अनुपादिसेसाय निब्बानधातुया। न सक्का भगवा निदस्सेतुं—'इध वा इध वा' " ति।

"ओपम्मं करोही" ति।

"तं किं मञ्ञसि, महाराज, महतो अग्गिक्खन्धस्स जलमानस्स या अच्चि अत्थङ्गता, सक्का सा अच्चि दस्सेतुं—'इध वा इध वा' " ति? "न हि, भन्ते, निरुद्धा सा अच्चि अप्पञ्ञत्तिं गता" ति। "एवमेव खो, महाराज, भगवा अनुपादिसेसाय निब्बानधातुया परिनिब्बुतो अत्थङ्गतो, न सक्का भगवा निदस्सेतुं—'इध वा इध वा' ति। धम्मकायेन पन खो, महाराज, सक्का भगवा निदस्सेतुं। धम्मो हि, महाराज, भगवता देसितो" ति।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति॥

(इमस्मिं वग्गे दस पञ्हा)

पञ्चमो बुद्धवग्गो निट्ठितो॥

६. सतिवग्गो

१. कायपियायनपञ्हो

१. राजा आह—"भन्ते नागसेन, पियो पब्बजितानं कायो" ति? "न खो, महाराज, पियो पब्बजितानं कायो" ति। "अथ किस्स नु खो, भन्ते, केलायथ ममायथा" ति। "किं पन ते, महाराज, कदाचि करहचि सङ्गामगतस्स कण्डप्पहारो होती" ति? "आम, भन्ते, होति"। "किं नु खो, महाराज, सो वणो आलेपेन च आलिम्पीयति, तेलेन च मक्खीयति, सुखुमेन च चोळपट्टेन पलिवेठीयती" ति? "आम, भन्ते, आलेपेन च आलिम्पीयति, तेलेन च मक्खीयति, सुखुमेन च चोळपट्टेन पलिवेठीयती" ति। "किं नु खो, महाराज, पियो ते

"भन्ते! क्या आप दिखा सकते हैं, वे कहाँ हैं?"

"महाराज! भगवान् परम निर्वाण को प्राप्त हो गये, जिसके बाद उनके व्यक्तित्व को बनाये रखने के लिये कुछ भी नहीं रह जाता। इसलिये वे अब यहाँ या वहाँ दिखाये नहीं जा सकते।"

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज! क्या जलती हुई अग्नि की लपट जो जल कर बुझ गई, वह दिखाई जा सकती है—यह यहाँ है?" "नहीं भन्ते! वह लपट तो बुझ गयी।" "महाराज! इसी तरह, भगवान् परम निर्वाण को प्राप्त हो गये, जिसके बाद उनके व्यक्तित्व के बनाये रखने के लिये कुछ भी नहीं रह जाता। इसलिये वे अब यहाँ—वहाँ दिखाये नहीं जा सकते। हाँ, वे अपने धर्मकाय से दिखाये जा सकते हैं। उनका बताया धर्म ही उनके विषय में बता रहा है।"

"भन्ते ! आपने ठीक कहा।"

(इस वर्ग में दस प्रश्न है)

पञ्चम बुद्धवर्ग समाप्त॥

६. स्मृतिवर्ग

१. कायस्पृहाप्रश्न— १. राजा बोला—"भन्ते! भिक्षुओं को अपना शरीर प्रिय होता है या नहीं?" "नहीं, महाराज! वे शरीर से स्पृहा (प्यार) नहीं रखते।" "भन्ते! तब, आप अपने शरीर की इतनी देख-रेख और आदर क्यों करते हैं?" "महाराज! लड़ाई में जाने पर कभी आपको तीर लगता है या नहीं?" "हाँ लगता है।" "महाराज! आप उस व्रण पर क्या लेप लगवाते हैं, तेल डलवाते हैं और उसे पतले वस्त्र

वणो, आलेपेन च आलिम्पीयति, तेलेन च मक्खीयति, सुखुमेन च चोळपट्टेन पलिवेठीयती'' ति। ''न मे, भन्ते, पियो वणो, अपि च मंसस्स रूहनत्थाय आलेपेन च आलिम्पीयति, तेलेन च मक्खीयति, सुखुमेन च चोळपट्टेन पलिवेठीयती'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, अप्पियो पब्बजितानं कायो। अथ च पब्बजिता अनज्झोसिता कायं परिहरन्ति ब्रह्मचरियानुग्गहाय। अपि च खो, महाराज, वणूपमो कायो वुत्तो भगवता। तेन पब्बजिता वणमिव कायं परिहरन्ति अनज्झोसिता। भासितं पेतं, महाराज, भगवता—

'अल्लचम्मप्पटिच्छन्नो नवद्वारो महावणो।
समन्ततो पग्घरति असुचि पूतिगन्धियो' '' ति॥

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

२. सब्बञ्ञुभावपञ्हो

२. राजा आह—''भन्ते नागसेन, बुद्धो सब्बञ्ञू सब्बदस्सावी'' ति? ''आम, महाराज, भगवा सब्बञ्ञू सब्बदस्सावी'' ति। ''अथ किस्स नु खो, भन्ते नागसेन, सावकानं अनुपुब्बेन सिक्खापदं पञ्ञापेसी'' ति? ''अत्थि पन ते, महाराज, कोचि वेज्जो यो इमिस्सं पठवियं सब्बभेसज्जानि जानाती'' ति? ''आम, भन्ते, अत्थी'' ति। ''किन्नु खो, महाराज, सो वेज्जो गिलानकं सम्पत्ते काले भेसज्जं पायेति, उदाहु असम्पत्ते काले'' ति? ''सम्पत्ते काले, भन्ते, गिलानकं भेसज्जं पायेति, नो असम्पत्ते काले '' ति? ''एवमेव खो, महाराज, भगवा सब्बञ्ञू सब्बदस्सावी न असम्पत्ते काले सावकानं सिक्खापदं पञ्ञापेति, सम्पत्ते काले सावकानं सिक्खापदं पञ्ञापेति यावजीवं अनतिक्कमनीयं'' ति।

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

से बँधवा देते हैं?'' ''हाँ, भन्ते! हम ऐसा करते हैं।'' ''महाराज!आपको अपना वह व्रण क्या बहुत प्यारा होता है, जो आप उसमें लेप लगवाते, तेल डलवाते और उसे पतले वस्त्र से बँधवा देते हैं?'' ''भन्ते! मुझे व्रण प्यारा नहीं हैं, किन्तु उस व्रण को भरने के लिये ही ये लेप आदि उपचार किये जाते हैं।'' ''महाराज! इसी तरह भिक्षुओं को अपना शरीर प्रिय नहीं है, किन्तु वे विना इसमें आसक्त हुए, ब्रह्मचर्य-पालन करने के लिये ही इसकी इतनी देख-रेख करते हैं भगवान् ने भी शरीर को व्रण के जैसा बताया है। उन्होंने कहा है—

'गीले चर्म से ढका यह शरीर नौ मुख वाला एक बड़ा व्रण है, जिससे सदा दुर्गन्धमय मल बहता रहता है।'

''भन्ते! आपने ठीक समझाया।''

२. सर्वज्ञभावप्रश्न— २. राजा बोला— ''भन्ते! क्या बुद्ध सर्वज्ञ और सर्वद्रष्टा थे?'' ''हाँ, महाराज!'' ''भन्ते! तब उन्होंने क्यों क्रमशः जैसे-जैसे उनकी आवश्यकता हुई, वैसे-वैसे शिक्षापदों (विनय) का उपदेश किया? एक ही बार सारे विनय का उपदेश क्यों नहीं कर दिया?'' ''महाराज! आपका कोई वैद्य है, जो सभी ओषधियों को जानता है?'' ''हाँ, भन्ते! है।'' ''महाराज! क्या वह रुग्ण होने ही पर ओषधि देता है या बिना रुग्ण हुए ही?'' ''भन्ते! वह रुग्ण होने पर ही देता है।'' ''महाराज! इसी तरह, भगवान् सर्वज्ञ और सर्वद्रष्टा होने पर भी, विना उचित अवसर आये, श्रावकों को समग्र शिक्षापदों का उपदेश नहीं देते थे। उचित अवसर आने पर ही वे उन (शिक्षाओं) को आजीवन पालन करने का उपदेश देते थे।''

३. महापुरिसलक्खणपञ्हो

३. राजा आह—"भन्ते नागसेन, बुद्धो द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणेहि समन्नागतो असीतिया च अनुब्यञ्जनेहि परिरञ्जितो सुवण्णवण्णो कञ्चनसन्निभत्तचो ब्यामप्पभो" ति? "आम, महाराज, भगवा द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणेहि समन्नागतो, असीतिया च अनुब्यञ्जनेहि परिरञ्जितो, सुवण्णवण्णो, कञ्चनसन्निभत्तचो, ब्यामप्पभो" ति।

"किं पनस्स, भन्ते, मातापितरो पि द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणेहि समन्नागता असीतिया च अनुब्यञ्जनेहि परिरञ्जिता सुवण्णवण्णा कञ्चनसन्निभत्तचा ब्यामप्पभा" ति? "नो चस्स, महाराज, मातापितरो द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणेहि समन्नागता असीतिया च अनुब्यञ्जनेहि परिरञ्जिता, सुवण्णवण्णा कञ्चनसन्निभत्तचा ब्यामप्पभा" ति।

"एवं सन्ते खो, भन्ते नागसेन, न उप्पज्जति—बुद्धो द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणेहि समन्नागतो, असीतिया च अनुब्यञ्जनेहि परिरञ्जितो, सुवण्णवण्णो, कञ्चनसन्निभत्तचो, ब्यामप्पभो ति। अपि च मातुसदिसो वा पुत्तो होति मातुपक्खो वा, पितुसदिसो वा पुत्तो होति पितुपक्खो वा" ति। थेरो आह—"अत्थि पन, महाराज, किञ्चि पदुमं सतपत्तं" ति? "आम, भन्ते, अत्थी" ति। "तस्स पन, कुहिं सम्भवो" ति? "कद्दमे जायति, उदके आसीयती" ति। "किन्नु खो, महाराज, पदुमं कद्दमेन सदिसं वण्णेन वा गन्धेन वा रसेन वा" ति? "न हि, भन्ते" ति। "अथ उदकेन सदिसं वण्णेन वा रसेन वा" ति? "न हि, भन्ते" ति। "एवमेव खो, महाराज, भगवा द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणेहि समन्नागतो असीतिया च अनुब्यञ्जनेहि परिरञ्जितो, सुवण्णवण्णो, कञ्चनसन्निभत्तचो, ब्यामप्पभो ति। नो चस्स मातापितरो द्वत्तिंस-महापुरिसलक्खणेहि समन्नागता असीतिया च अनुब्यञ्जनेहि परिरञ्जिता सुवण्णवण्णा कञ्चन-सन्निभत्तचा ब्यामप्पभा" ति।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

"भन्ते! आपने ठीक कहा।"

३. महापुरुषलक्षणप्रश्न —३. राजा बोला— "भन्ते! क्या बुद्ध सचमुच महापुरुषों के ३२ लक्षणों से युक्त तथा ८० अनुव्यञ्जनों से शोभित और वर्ण वाले थे तथा उनसे एक व्याम (दो हाथ वृत्त) तक चारों ओर प्रकाश फैलता रहता था?" "हाँ, महाराज! वे वस्तुतः वैसे.... ही थे।"

"भन्ते ! क्या उनके माता-पिता भी बत्तीस लक्षणों वाले.... थे?" "नहीं, महाराज! वे वैसे.... नहीं थे।"

"भन्ते! तब बुद्ध भी वैसे नहीं हो सकते; क्योंकि लड़का या तो अपनी माँ के समान या अपने पिता के समान होता है।" स्थविर बोले—"महाराज! क्या आप कमल का फूल जानते हैं?" "हाँ भन्ते! जानता हूँ।" "वह कहाँ उत्पन्न होता है?" "कीचड़ में उत्पन्न होता है और जल में बढ़ता है।" "महाराज! तो क्या कमल का फूल अपने रंग, गन्ध और रस में कीचड़ के जैसा होता है?" "नहीं, भन्ते!" "तो क्या जल जैसा?" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! इसी तरह, यद्यपि भगवान् वैसे .... थे, किन्तु माता-पिता वैसे .... नहीं थे।"

"भन्ते! आपने ठीक कहा।"

---

१. द्र०— दी० नि०, लक्खणसुत्त।

४. भगवतो ब्रह्मचारिपञ्हो

४. राजा आह—"भन्ते नागसेन, बुद्धो ब्रह्मचारी" ति? "आम, महाराज, भगवा ब्रह्मचारी" ति। "तेन हि, भन्ते नागसेन, बुद्धो ब्रह्मुनो सिस्सो" ति? "अत्थि पन ते, महाराज, हत्थिपामोक्खो" ति? "आम, भन्ते, अत्थी" ति। "किं नु खो, महाराज, सो हत्थी कदाचि करहचि कोञ्चनादं नदती" ति? "आम, भन्ते, नदती" ति। "तेन हि, महाराज, सो हत्थी कोञ्चसकुणस्स सिस्सो" ति?"न हि, भन्ते" ति। "किं पन, महाराज, ब्रह्मा सबुद्धिको अबुद्धिको" ति? "सबुद्धिको, भन्ते" ति। "तेन हि, महाराज, ब्रह्मा भगवतो सिस्सो" ति!

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

५. बुद्धस्स उपसम्पदापञ्हो

५. राजा आह—"भन्ते, नागसेन उपसम्पदा सुन्दरी" ति? "आम, महाराज, उपसम्पदा सुन्दरी" ति। "अत्थि पन, भन्ते, बुद्धस्स उपसम्पदा, उदाहु नत्थी" ति? "उपसम्पन्नो खो, महाराज, भगवा बोधिरुक्खमूले सह सब्बञ्ञुतञाणेन, नत्थि भगवतो उपसम्पदा अञ्ञेहि दिन्ना। यथा सावकानं, महाराज, भगवा सिक्खापदं पञ्ञापेति यावजीवं अनतिक्कमनीयं" ति।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

६. अस्सुभेसज्जाभेसज्जपञ्हो

६. राजा आह—"भन्ते नागसेन, यो च मातरि मताय रोदति, यो च धम्मपेमेन रोदति, उभिन्नं तेसं रोदन्तानं कस्स अस्सु भेसज्जं, कस्स न भेसज्जं" ति? "एकस्स खो,

---

४. भगवद्ब्रह्मचर्यप्रश्न— ४. राजा बोला—"भन्ते! भगवान् बुद्ध ब्रह्मचारी थे न?" "हाँ महाराज! वे ब्रह्मचारी थे।" "भन्ते! तब तो वे ब्रह्मा के शिष्य हुए?" "महाराज! क्या आपका कोई अपना राजकीय हाथी है?" "हाँ, भन्ते! है।" "महाराज! क्या वह हाथी कहीं कभी क्रौंच-नाद करता है?" "हाँ, भन्ते! करता है।" "महाराज! तब तो वह क्रौंच (पक्षिविशेष) का शिष्य हुआ।" "नहीं, भन्ते।" "महाराज! अच्छा, आप बतावें—ब्रह्मा को बुद्धि है या नहीं?" "भन्ते! है तो।" "महाराज! तब तो ब्रह्मा भगवान् बुद्ध के शिष्य हुए।"

"भन्ते नागसेन! आपने ठीक कहा।"

५. बुद्धउपसम्पदाप्रश्न— ५. राजा बोला— "भन्ते! क्या उपसम्पदा (भिक्षु बनने का संस्कार) अच्छी चीज है?" "हाँ, महाराज! उपसम्पदा अच्छी चीज है।" "भन्ते! भगवान् बुद्ध की उपसम्पदा हुई थी या नहीं?" "महाराज! बोधिवृक्ष[1] के नीचे जो भगवान् ने बुद्धत्व पाया था, वही उनकी उपसम्पदा थी। उन्होंने दूसरों से कोई उपसम्पदा नहीं पायी थी जैसे कि उनके श्रावक लोक पाते हैं। भगवान् ने ही इसका नियम बना दिया है, "जो हम लोगों के लिये जीवन भर अनुल्लङ्घनीय है।"

"भन्ते! आप ठीक कहते हैं।"

६. अश्रुविषयकप्रश्न— ६. राजा बोला—"भन्ते! जो अपनी माँ के मर जाने पर रोता है और जो केवल धर्म-प्रेम से रोता है, उन दोनों के अश्रुओं में कौन ठीक है और कौन नहीं?" "महाराज! पहला अश्रु

---

१. बोधगया में पीपल का वृक्ष, जिसके नीचे बैठकर भगवान् ने बुद्धत्व पाया था, वह 'बोधिवृक्ष' कहलाता है।

महाराज, अस्सु रागदोसमोहेहि समलं उण्हं, एकस्स पीतिसोमनस्सेन विमलं सीतलं। यं खो, महाराज, सीतलं तं भेसज्जं; यं उण्हं तं न भेसज्जं'' ति।

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

७. सरागवीतरागनानाकरणपञ्हो

७. राजा आह—''भन्ते नागसेन, किं नानाकरणं सरागस्स च वीतरागस्स चा'' ति? ''एको खो, महाराज, अज्झोसितो, एको अनज्झोसितो'' ति। ''किं एतं, भन्ते, अज्झोसितो अनज्झोसितो नामा'' ति? ''एको खो, महाराज, अत्थिको, एको अनत्थिको'' ति। ''पस्सामहं, भन्ते, एवरूपं यो च सरागो यो च वीतरागो, सब्बो पेसो सोभनं येव इच्छति खादनीयं वा भोजनीयं वा, न कोचि पापकं इच्छती'' ति। ''अवीतरागो खो, महाराज, रसपटिसंवेदी च रसरागप्पटिसंवेदी च भोजनं भुञ्जति, नो च खो रसरागपटिसंवेदी'' ति।

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

८. पञ्ञापतिट्ठानपञ्हो

८. राजा आह—''भन्ते नागसेन, पञ्हा कुहिं पटिवसती'' ति? ''न कत्थचि, महाराजा'' ति। ''तेन हि, भन्ते नागसेन, नत्थि पञ्ञा'' ति। ''वातो, महाराज, कुहिं पटिवसती'' ति? ''न कत्थचि, भन्ते'' ति। ''तेन हि, महाराज, नत्थि वातो'' ति।

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

९. संसारपञ्हो

९. राजा आह—''भन्ते नागसेन, यं पनेतं ब्रूसि—'संसारो' ति, कतमो सो संसारो'' ति? ''इध, महाराज, जातो इधेव मरति, इध मतो अञ्ञत्र उप्पज्जति, तहिं जातो तहिं येव मरति, तहिं मतो अञ्ञत्र उप्पज्जत। एवं खो, महाराज, संसारो होती'' ति।

राग, द्वेष और मोह के कारण गरम और मलिन होता है और दूसरा प्रीति तथा मन के पवित्र होने से ठण्ढा और निर्मल होता है। महाराज! जो ठंढा है वह ठीक है और जो गरम है वह गलत।"

"भन्ते! आपने अच्छा समझाया।"

७. राग–विरागभेदविषयकप्रश्न– ७. राजा बोला–"भन्ते! राग वाले और विना राग वाले चित्तों में क्या भेद है?" "महाराज! उनमें पहला तो तृष्णा में डूबा है और दूसरा नहीं।" "भन्ते! इसका क्या तात्पर्य है?" "महाराज! उनमें एक तृष्णा (राग) से मुक्त है और दूसरा नहीं।" "भन्ते! मैं तो देखता हूँ कि राग वाले और विना राग वाले दोनों एक ही तरह खाने की अच्छी चीजों को चाहते हैं, कोई बुरी को नहीं।" "महाराज! राग वाले पुरुष भोजन का स्वाद लेते हैं, उसमें राग भी करते हैं; विना राग वाले पुरुष भोजन का स्वाद तो लेते हैं; किन्तु उसमें राग नहीं करते।"

"भन्ते! आपने बहुत ठीक समझाया।"

८. प्रज्ञाप्रतिष्ठानप्रश्न– ८. राजा बोला –"भन्ते! प्रज्ञा कहाँ रहती है?" "महाराज! कहीं भी नहीं।" "भन्ते! तब प्रज्ञा है ही नहीं।" "महाराज! हवा कहाँ रहती है?" "भन्ते! कहीं भी नहीं।" "महाराज! तो हवा है ही नहीं।"

"भन्ते! यह तो आपने अच्छा उत्तर दिया!"

९. संसारविषयकप्रश्न– ९. राजा बोला–"भन्ते! आप लोग जो 'संसार–संसार' कहा करते हैं, यह

"ओपम्मं करोही" ति।

"यथा, महाराज, कोचिदेव पुरिसो पक्कं अम्बं खादित्वा अट्ठिं रोपेय्य। ततो महन्तो अम्बरुक्खो निब्बत्तित्वा फलानि ददेय्य। अथ सो पुरिसो ततो पि पक्कं अम्बं खादित्वा अट्ठिं रोपेय्य। ततो पि महन्तो अम्बरुक्खो निब्बत्तित्वा फलानि ददेय्य। एवमेतेसं रुक्खानं कोटि न पञ्ञायति। एवमेव खो, महाराज, इध जातो इधेव मरति, इध मतो अञ्ञत्र उप्पज्जति। तहिं जातो तहिं येव मरति, तहिं मतो अञ्ञत्र उप्पज्जति; एवं खो, महाराज, संसारो होती" ति।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

१०. चिरकतसरणपञ्हो

१०. राजा आह—"भन्ते नागसेन, केन अतीतं चिरकतं सरती" ति? "सतिया, महाराजा" ति। "ननु, भन्ते नागसेन, चित्तेन सरति, नो सतिया" ति। "अभिजानासि नु त्वं, महाराज, किञ्चिदेव करणीयं कत्वा पमुट्ठं" ति? "आम, भन्ते" ति। "किं नु खो त्वं, महाराज, तस्मिं समये अचित्तको अहोसी" ति? "न हि, भन्ते, सति तस्मिं समये नाहोसी" ति।

"अथ कस्मा त्वं, महाराज, एवमाह—'चित्तेन सरति, नो सतिया' " ति!

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

११. अभिजानन्तसतिपञ्हो

११. राजा आह—"भन्ते नागसेन, सब्बा सति अभिजानन्ता उप्पज्जति, उदाहु कटुमिका व सती" ति? "अभिजानन्ता पि, महाराज, सति उप्पज्जति, कटुमिका पि सती" ति। "एवं खो, भन्ते नागसेन, सब्बा सति अभिजानन्ता, नत्थि कटुमिका सती" ति। "यदि नत्थि,

---

संसार है क्या?" "महाराज! यहाँ जन्म लेकर यहीं मरता है, यहाँ मर कर कहीं दूसरी जगह पैदा होता है; वहाँ पैदा होकर वहीं मर जाता है, वहाँ मर कर फिर कहीं दूसरी जगह पैदा होता है—यही संसार है।"

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज! जैसे कोई आदमी पके आम खा कर उसकी गुठली रोप दे। उससे एक बड़ा वृक्ष पैदा हो और उसमें फल लगे। तब, वह आदमी उसके भी पके फल को खा, गुठली रोप दे। उससे भी एक बड़ा वृक्ष पैदा हो, उसमें भी फल लगें। इसी प्रकार इस प्रवाह के अन्त का कहीं पता नहीं।" "महाराज! इसी तरह यहाँ जन्म लेकर यहीं मरता है.... यही संसार है।"

"भन्ते! आपने ठीक समझाया।"

१०. चिरकृतस्मरणप्रश्न— १०. राजा बोला— "भन्ते! बीती हुई बातों को हम लोग कैसे स्मरण करते हैं?" "महारार! स्मृति से।" "भन्ते! स्मृति से नहीं, चित्त से स्मरण करते हैं?" "महाराज! क्या आपने कभी किसी ऐसी बात को भुला दिया है, जिसे स्वयं पहले कर चुके हैं?" "हाँ, भन्ते!" "महाराज उस समय क्या आप विना चित्त के हो गये थे?" "नहीं, भन्ते! उस समय स्मृति नहीं थी।"

"महाराज! तब आपने कैसे कहा—चित्त से स्मरण करते हैं, स्मृति से नहीं!"

"भन्ते! अब मैं ठीक समझ गया।"

११. स्मृत्युत्पत्तिविषयकप्रश्न— ११. राजा बोला—"भन्ते! सभी स्मृतियाँ मन से ही उत्पन्न होती हैं या बाहर की चीजों से भी?" "महाराज! मन से भी उत्पन्न होती हैं और बाहर की चीजों से भी।" "भन्ते!

महाराज, कटुमिका सति, नत्थि किञ्चि सिप्पिकानं कम्मायतनेहि वा सिप्पायतनेहि वा विज्जाट्ठानेहि वा करणीयं, निरत्थिका आचरिया। यस्मा च खो, महाराज, अत्थि कटुमिका सति, तस्मा अत्थि कम्मायतनेहि वा सिप्पायतनेहि वा विज्जाट्ठानेहि वा करणीयं, अत्थो च आचरियेही'' ति।

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

(इमस्मिं वग्गो एकादस पञ्हा)

छट्ठो सतिवग्गो निट्ठितो॥

७. अरूपधम्मववत्थानवग्गो

१. सतिउप्पज्जनपञ्हो

१. राजा आह— ''भन्ते नागसेन, कतिहाकारेहि सति उप्पज्जती'' ति? ''सत्तर-सहाकारेहि, महाराज, सति उप्पज्जती'' ति। ''कतमेहि सत्तरसहाकारेही'' ति? ''अभिजानतो पि, महाराज, सति उप्पज्जति, कटुमिकाय पि सति उप्पज्जति, ओळारिकविञ्ञाणतो पि सति उपज्जति, हितविञ्ञाणतो पि सति उप्पज्जति, अहितविञ्ञाणतो पि सति उप्पज्जति, सभागनिमित्ततो पि सति उप्पज्जति, विसभागनिमित्ततो पि सति उप्पज्जति, कथाभिञ्ञाणतो पि सति उप्पज्जति, लक्खणतो पि सति उप्पज्जति, सारणतो पि सति उप्पज्जति, मुद्दतो पि सति उप्पज्जति, गणनातो पि सति उप्पज्जति, धारणतो पि सति उप्पज्जति, भावनातो पि सति उप्पज्जति, पोत्थकनिबन्धनतो पि सति उप्पज्जति, उपनिक्खेपतो पि सति उप्पज्जति, अनुभूततो पि सति उप्पज्जती'' ति।

''कथं अभिजानतो सति उप्पज्जति? यथा, महाराज, आयस्मा च आनन्दो खुज्जुत्तरा

किन्तु सभी स्मृतियाँ मन से ही होती हैं, बाहर से नहीं।" "महाराज! यदि बाहर से स्मृतियाँ नहीं होती तो शिल्पों को दूसरे से सीखना, पढ़ना और गुरु सभी निरर्थक हो जायँगे। किन्तु व्यवहार में ऐसी बात नहीं है।"

"भन्ते! आपने ठीक समझाया।"

(इस वर्ग में ११ प्रश्न हैं)

षष्ठ स्मृतिवर्ग समाप्त॥

७. अरूपधर्मव्यवस्थानवर्ग

१. सप्तदशस्मृत्युत्पादविषयकप्रश्न— १. राजा बोला—'भन्ते! स्मृति कितने प्रकार से उत्पन्न होती है?" "महाराज! सत्तरह प्रकार से स्मृति उत्पन्न होती है।" "वे सत्तरह प्रकार कौन से हैं?" "१. अभिज्ञा से, २. बाहर की बातों से, ३. किसी बड़ी घटना की स्मृति से, ४. अतीत की सुखानुभूति से, ५. अतीत की दुःखानुभूति से, ६. दो वस्तुओं की समानता से, ७. दों वस्तुओं की असमानता से, ८. दूसरों के स्मरण दिलाने से ९. किसी चिह्न को देखने से, १०. विस्मृत बात को प्रयत्नपूर्वक स्मरण करने से, ११. विचार करने से, १२. गणना (हिसाब) करने से, १३. कण्ठस्थ कर लेने से, १४. भावना (ध्यान) करने से, १५. ग्रन्थों को देखने से, १६ धरोहर रूप में रखी हुई वस्तुओं को देखने से और १७. तद्विषयक पूर्वानुभव से भी उसकी स्मृति हो जाती है।"

१. "कैसे अभिज्ञा (जानने) से स्मृति उत्पन्न होती है? जैसे महाराज! आयुष्मान् आनन्द,

च उपासिका। ये वा पनञ्ञे पि केचि जातिस्सरा जातिं सरन्ति, एवं अभिजानतो सति उप्पज्जति। (१)

"कथं कटुमिकाय सति उप्पज्जति? यो पकतिया मुट्ठस्सतिको, परे च तं सरापनत्थं निबन्धन्ति, एवं कटुमिकाय सति उप्पज्जति। (२)

"कथं ओळारिकविञ्ञाणतो सति उप्पज्जति? यदा रज्जे वा अभिसित्तो होति, सोतापत्तिफलं वा पत्तो होति, एवं ओळारिकविञ्ञाणतो सति उप्पज्जति। (३)

"कथं हितविञ्ञाणतो सति उप्पज्जति? यम्हि सुखापितो 'अमुकस्मिं एवं सुखापितो' ति सरति, एवं हितविञ्ञाणतो सति उप्पज्जति। (४)

"कथं अहितविञ्ञाणतो सति उप्पज्जति? यम्हि दुक्खापितो 'अमुकस्मिं एवं दुक्खापितो' ति सरति, एवं अहितविञ्ञाणतो सति उप्पज्जति। (५)

"कथं सभागनिमित्ततो सति उप्पज्जति? सदिसं पुग्गलं दिस्वा मातरं वा पितरं वा भातरं वा भगिनिं वा सरति; ओट्ठं वा गोणं वा गद्रभं वा दिस्वा अञ्ञं तादिसं ओट्ठं वा गोणं वा गद्रभं वा सरति, एवं सभागनिमित्ततो सति उप्पज्जति। (६)

"कथं विसभागनिमित्ततो सति उप्पज्जति? अमुकस्स नाम वण्णो एदिसो, सद्दो एदिसो, गन्धो एदिसो, रसो एदिसो, फोट्ठब्बो एदिसो ति सरति, एवं विसभागनिमित्ततो पि सति उप्पज्जति। (७)

"कथं कथाभिञ्ञाणतो सति उप्पज्जति? यो पकतिया मुट्ठस्सतिको होति तं परे सरापेन्ति, तेन सो सरति, एवं कथाभिञ्ञाणतो सति उप्पज्जति। (८)

उपासिका खुज्जुत्तरा या कोई अन्य जिनकी स्मृति अच्छी थी, वे सब अपने पूर्वजन्म की बातों को स्मरण कर लेते थे। (१)

"कैसे बाहर की बातों से भी स्मृति उत्पन्न होती है? जैसे, किसी भुलक्कड़ आदमी को स्मरण दिलाने के लिये कोई दूसरा उसके वस्त्र में गाँठ बाँध दे। (२)

"कैसे किसी बड़ी घटना के घटने पर स्मृति उत्पन्न होती है? जैसे, राजा के अभिषेक की तैयारी या अपने स्रोतआपत्तिफल पर प्रतिष्ठित होने की बात को सभी स्मरण रखते हैं। ये बड़ी घटनायें हैं। (३)

"कैसे कोई आनन्द पाने से भी उसकी बात स्मरण हो जाती है? उस स्थान पर उस बात में बहुत आनन्द आया था—ऐसी जो स्मृति होती है। (४)

" कैसे कोई दुःख पाने से भी उसकी बात स्मरण हो जाती है? उस स्थान उस बात से बहुत दुःख झेलना पड़ा था—ऐसी जो स्मृति होती है। (५)

"कैसे दो वस्तुओं में समानता होने से एक को देखने पर दूसरी की भी स्मृति हो आती है? जैसे माँ–बाँप, भाई या बहन के समान किसी दूसरे को देख उसकी स्मृति हो आती है, अथवा किसी ऊँट, बैल या गदहे को देख कर उन्हीं के समान किसी दूसरे ऊँट, बैल या गदहे की स्मृति हो जाती है। (६)

"कैसे दो असमान वस्तुओं में एक को देखने से दूसरे की भी स्मृति हो जाती है? जैसे किसी का ऐसा रूप, ऐसा शब्द, ऐसा गन्ध, ऐसा रस, ऐसा स्पर्श है—इत्यादि का स्मरण होता है। (७)

"कथं लक्खणतो सति उप्पज्जति? यो पकतिया बलीवद्दानं अङ्केन जानाति, लक्खणेन जानाति, एवं लक्खणतो सति उप्पज्जति। (९)

"कथं सारणतो सति उप्पज्जति? यो पकतिया मुट्ठस्सतिको होति, यो तं— 'सराहि, भो, सराहि भो' ति पुनप्पुनं सरापेति, एवं सारणतो सति उप्पज्जति। (१०)

"कथं मुद्दातो सति उप्पज्जति? लिपिया सिक्खितत्ता जानाति— 'इमस्स अक्खरस्स अनन्तरं इमं अक्खरं कातब्बं' ति, एवं मुद्दातो सति उप्पज्जति। (११)

"कथं गणनातो सति उप्पज्जति? गणनाय सिक्खितत्ता गणका बहुं पि गणेन्ति, एवं गणनातो सति उप्पज्जति। (१२)

"कथं धारणतो सति उप्पज्जति? धारणाय सिक्खितत्ता धारणका बहुं पि धारेन्ति, एवं धारणतो सति उप्पज्जति। (१३)

"कथं भावनातो सति उप्पज्जति? इध भिक्खु अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति, सेय्यथीदं—एकं पि जातिं, द्वे पि जातियो.... पे०.... इति साकारं सउद्देसं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति, एवं भावनातो सति उप्पज्जति। (१४)

"कथं पोत्थकनिबन्धनतो सति उप्पज्जति? राजानो अनुसासनियं अस्सरन्ता 'एकं पोत्थकं आहरथा' ति, तेन पोत्थकेन अनुस्सरन्ति, एवं पोत्थकनिबन्धनतो सति उप्पज्जति। (१५)

"कैसे दूसरे के कहने से भी स्मृति हो आती है? जैसे, किसी दूसरे के कहने से किसी बात की स्मृति हो आती है। (८)

"कैसे किसी चिह्न को देखकर भी स्मृति हो आती है? जैसे किसी चिह्न को देख कर किसी बैल को पहचान लिया जाय। (९)

"कैसे भूली हुई बात व्यवहार करने से याद हो आती है? जैसे कोई भुलक्कड़ आदमी किसी दूसरे के 'स्मरण करो, स्मरण करो'—यह बार–बार कहने पर प्रयत्न करता है और उसे स्मरण हो आता है। (१०)

"कैसे विचार करने से भी स्मृति हो जाती है? जैसे जो पुरुष लेखन में कुशल है, वह तत्काल जान लेता है कि इस अक्षर के बाद यह अक्षर आना चाहिये। (११)

"कैसे हिसाब (गणना) लगाने से भी किसी बात की स्मृति हो जाती है? जैसे गणना को जानने वाले बड़े से बड़े हिसाब को भी लगा लेते हैं। (१२)

"कैसे कण्ठस्थ बात भी तत्काल स्मरण हो आती है? जैसे लोग बार–बार रट कर किसी चीज को कण्ठ कर लेते हैं। (१३)

"कैसे भावना (ध्यान) करने से भी स्मृति हो आती है? जैसे, कोई भिक्षु साधना के बल से अपने पूर्व जन्मों की बातें स्मरण करता है। एक जन्म की बातें, दो जन्मों की बातें.... आकार–प्रकार से याद करता है। (१४)

"कैसे ग्रन्थ देखने से भी किसी बात की स्मृति हो आती है? जैसे कोई न्यायाधीश किसी विधान को ठीक से स्मरण करने के लिये कहता है, 'उस पुस्तक को ले आओ।' पुस्तक देखने पर उसे वह विधान स्मरण हो आता है। (१५)

"कैसे धरोहर में रखी गयी चीजों को देखकर भी स्मृति आ जाती है? धरोहर में रखी गयी वस्तु को देखकर धरोहर के समय की गयी सभी बातें याद आ जाती है। (१६)

"कथं उपनिक्खेपतो सति उप्पज्जति? उपनिक्खित्तं भण्डं दिस्वा सरति, एवं उपनिक्खेपतो सति उप्पज्जति। (१६)

"कथं अनुभूततो सति उप्पज्जति? दिट्ठत्ता रूपं सरति, सुतत्ता सद्दं सरति, घायितत्ता गन्धं सरति, सायितत्ता रसं सरति, फुट्ठत्ता फोट्ठब्बं सरति, विञ्ञातत्ता धम्मं सरति, एवं अनुभूततो सति उप्पज्जति। इमेहि खो, महाराज, सत्तरसहाकारेहि सति उप्पज्जती" ति।(१७)

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

२. बुद्धगुणसतिपटिलाभपञ्हो

२. राजा आह— "भन्ते नागसेन, तुम्हे एवं भणथ— 'यो वस्ससतं अकुसलं करेय्य, मरणकाले च एकं बुद्धगुणं सतिं पटिलभेय्य, सो देवेसु उप्पज्जेय्या' ति, एतं न सद्दहामि। एवं च पन वदेथ— 'एकेन पाणातिपातेन निरये उप्पज्जेय्या' ति, एतं पि न सद्दहामी" ति।

"तं किं मञ्ञसि, महाराज, खुद्दको पि पासाणो विना नावाय उदके उप्पिलवेय्या" ति? "न हि, भन्ते" ति। "किं नु खो, महाराज, वाहसतं पि पासाणानं नावाय आरोपितं उदके उप्पिलवेय्या" ति? "आम, भन्ते" ति। "यथा, महाराज, नावा, एवं कुसलानि कम्मानि दट्ठब्बानी" ति।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

३. दुक्खनिरोधवायामपञ्हो

३. राजा आह—"भन्ते नागसेन, किं तुम्हे अतीतस्स दुक्खस्स पहानाय वायमथा" ति? "न हि, महाराजा" ति। "किं पन, भन्ते, अनागतस्स दुक्खस्स पहानाय वायमथा"

"कैसे पहले अनुभव किये हुये से भी उसकी स्मृति हो जाती है? पहले देखी गयी चीजों के आकार को स्मृति हो जाती है, सुने गये शब्दों की स्मृति हो आती है, सूँघी गयी गंधों की स्मृति हो जाती है, चखे गये स्वादों की स्मृति हो जाती है, किये गये स्पर्शों की स्मृति हो जाती है, जाने हुए धर्मों की स्मृति हो जाती है। महाराज! इन्हीं १७ प्रकारों से स्मृति उत्पन्न होती है। (१७)

"भन्ते! आपका कथन ठीक ही है।"

२. बुद्धगुणस्मृतिलाभप्रश्न— २. राजा बोला—"भन्ते! आप लोग कहते हैं कि 'सौ वर्षों तक भी पापमय जीवन बिताने पर यदि मरते समय 'बुद्ध' के एक गुण की भी स्मृति हो जाय तो वह देवलोक में उत्पन्न होता है'— मैं इसे नहीं मानता। आप लोग ऐसा भी कहते हैं कि 'एक जीव की हत्या से नरक में उत्पत्ति होती है'—इसे भी मैं नहीं मानता।"

"महाराज! क्या एक छोटा पत्थर का टुकड़ा भी बिना नाव के पानी में तैर सकता है?" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! और क्या सौ गाड़ी पत्थर के टुकड़े नाव पर लाद दिये जाने से पानी में नहीं तैर सकते?" "हाँ, भन्ते! तैर सकते हैं।" "महाराज! सभी पुण्यमय कर्मों को नाव के जैसा समझना चाहिये।"

"भन्ते! आपने ठीक समझाया।"

३. दुःख-प्रहाणहेतु उद्योगविषयकप्रश्न— ३. राजा बोला—"भन्ते! क्या आप लोग अतीत (भूत) काल के दुःखों का नाश करने के लिये उद्योग करते हैं?" "नहीं, महाराज!" "तो क्या अनागत (भविष्यत्) काल

ति?"न हि, महाराजा" ति। "किं पन पच्चुप्पन्नस्स दुक्खस्स पहानाय वायमथा" ति? "न हि, महाराजा" ति।

"यदि तुम्हे न अतीतस्स दुक्खस्स पहानाय वायमथ, न अनागतस्स दुक्खस्स पहानाय वायमथ, न पच्चुप्पन्नस्स दुक्खस्स पहानाय वायमथ, अथ किमत्थाय वायमथा" ति? "थेरो आह—'किन्ति, महाराज, इदं च दुक्खं निरुज्झेय्य, अञ्ञं च दुक्खं नुप्पज्जेय्या' ति, एतदत्थाय वायमामा" ति।

"अत्थि पन ते, भन्ते नागसेन, अनागतं दुक्खं" ति? "नत्थि, महाराजा" ति। "तुम्हे खो, भन्ते नागसेन, अतिपण्डिता, ये तुम्हे असन्तानं अनागतानं दुक्खानं पहानाय वायमथा" ति। "अत्थि पन ते, महाराज, केचि पटिराजानो पच्चत्थिका पच्चामित्ता पच्चुपट्ठिता होन्ती" ति? "आम, भन्ते, अत्थी" ति।

"किं नु खो, महाराज, तदा तुम्हे परिखं खणापेय्याथ, पाकारं चिनापेय्याथ, गोपुरं कारापेय्याथ, अट्टालकं कारापेय्याथ, धञ्ञं अतिहरापेय्याथा" ति? "न हि, भन्ते, पटिगच्चेव तं पटियत्तं होती" ति।

"किं तुम्हे, महाराज, तदा हत्थिस्मिं सिक्खेय्याथ, अस्सस्मिं सिक्खेय्याथ, रथस्मिं सिक्खेय्याथ, धनुस्मिं सिक्खेय्याथ, थरुस्मिं सिक्खेय्याथा" ति? "न हि, भन्ते, पटिगच्चेव तं सिक्खितं होती" ति। "किस्सत्थाया" ति? "अनागतानं, भन्ते, भयानं पटिबाहनत्थाया" ति। "किं नु खो, महाराज, अत्थि अनागतं भयं" ति? "नत्थि, भन्ते" ति। "तुम्हे च खो, महाराज, अतिपण्डिता, ये तुम्हे असन्तानं अनागतानं भयानं पटिबाहनत्थाय पटियादेथा" ति!

"भिय्यो ओपम्मं करोही" ति।

के दुःखों का नाश करने के लिए उद्योग करते हैं?" "नहीं, महाराज!" "तो क्या वर्तमान काल के दुःखों का नाश करने के लिए प्रयत्न करते हैं।" "नहीं, महाराज!"

"यदि आप लोग अतीत, अनागत और वर्तमान— तीनों में से किसी काल के भी दुःखों का नाश करने के लिये प्रयत्न नहीं करते तो फिर किस लिये प्रयत्न करते हैं?" (स्थविर बोले—) "जिसमें यह दुःख रुक जाय और नया दुःख न पैदा हो, इसीलिये उद्योग करते हैं?"

"भन्ते! क्या अनागत दुःख भी हैं?" "नहीं, महाराज!" "भन्ते! तब तो आप लोग तो बड़े पण्डित हैं, जो उन दुःखों को नाश करने का उद्योग करते हैं, जो हैं ही नहीं!" "महाराज! क्या कभी आप के शत्रु राजा आप के विरुद्ध उठ खड़े हुए थे?" "हाँ, भन्ते!"

"महाराज! आप क्या उस समय खाई खुदवाने, प्राकार उठवाने, फाटक बनवाने, अग्रिम चौकी बनवाने और रसद इकट्ठा करने लगे?" "नहीं, भन्ते! सभी चीजें पहले से ही तैयार थीं।"

"तो क्या, महाराज! आप उस समय हाथी, घोड़े, रथ.... की शिक्षा आरम्भ करते हैं?" "नहीं, भन्ते!" "वे सब पहले से ही सीखे रहते हैं।" "पहले से ही तैयार और सीखे क्यों रहते हैं?" "भन्ते! अनागत काल में कभी होने वाले संकट से रक्षा के लिये।" "महाराज! क्या अनागत (जो आया ही नहीं है) भय भी होता है?" "भन्ते! नहीं होता है।" "महाराज! तब तो आप बड़े पण्डित लगते हैं, जो उस भय से बचने की तैयारी करते हैं, जो है ही नहीं!" (१)

"कृपया दूसरी उपमा देकर समझाइये।"

"तं किं मञ्ञसि, महाराज, यदा त्वं पिपासितो भवेय्यासि तदा त्वं उदपानं खणापेय्यासि, पोक्खरणिं खणापेय्यासि, तळाकं खणापेय्यासि— 'पानीयं पिविस्सामी' " ति? "न हि, भन्ते, पटिगच्चेव तं पटियत्तं होती" ति। "किस्सत्थाया" ति? "अनागतानं, भन्ते, पिपासानं पटिबाहनत्थाय पटियत्तं होती" ति। "अत्थि पन, महाराज, अनागता पिपासा" ति? "नत्थि, भन्ते" ति। "तुम्हे खो, महाराज, अतिपण्डिता, ये तुम्हे असन्तानं अनागतानं पिपासानं पटिबाहनत्थाय तं पटियादेथा" ति!

"भिय्यो ओपम्मं करोही" ति।

"तं किं मञ्ञसि, महाराज, यदा त्वं बुभुक्खितो भवेय्यासि तदा त्वं खेत्तं कसापेय्यासि, सालिं वपापेय्यासि— 'भत्तं भुञ्जिस्सामी' " ति? "न हि, भन्ते, पटिगच्चेव तं पटियत्तं होती" ति। "किस्सत्थाया" ति? "अनागतानं, भन्ते, बुभुक्खानं पटिबाहनत्थाया" ति। "अत्थि पन, महाराज, अनागता बुभुक्खा" ति? "नत्थि, भन्ते" ति। "तुम्हे खो, महाराज, अतिपण्डिता ये तुम्हे असन्तानं अनागतानं बुभुक्खानं पटिबाहनत्थाय पटियादेथा" ति!

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

४. ब्रह्मलोकपञ्हो

४. राजा आह— "भन्ते नागसेन, कीवदूरो इतो ब्रह्मलोको" ति? "दूरो खो, महाराज, इतो ब्रह्मलोको—कूटागारमत्ता सिला तम्हा पतिता अहोरत्तेन अट्ठचत्तालीसयोजन-सहस्सानि भस्समाना चतूहि मासेहि पथवियं पतिट्ठहेय्या" ति।

"भन्ते नागसेन, तुम्हे एवं भणथ—'सेय्यथापि बलवा पुरिसो सम्मिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं सम्मिञ्जेय्य; एवमेव इद्धिमा भिक्खु चेतोवसिप्पत्तो जम्बुदीपे अन्तरहितो ब्रह्मलोके पातुभवेय्या' ति, एतं वचनं न सद्दहामि; एवं अतिसीघं ताव बहूनि योजनसतानि गच्छिस्सती" ति?

"महाराज! आप क्या प्यास लगने पर जल लेने के लिये कूआ या तालाब खुदवाने लगते हैं?" "नहीं, भन्ते! वह पहले से ही तैयार रहता है।" "पहले से तैयार क्यों रहता है?" "आगे आने वाले पिपासुओं की प्यास बुझाने के लिये।" "क्या अनागत काल की भी प्यास होती है?" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! तब तो आप बड़े पण्डित हैं, जो उस प्यास को बुझाने की तैयारी करते हैं जो लगी ही नहीं है!" (२)

"कृपया फिर कोई उपमा देकर समझायें।"

"महाराज! जब आप को भूख लगती है तो क्या आप नये सिरे से खेती करवाना प्रारम्भ करते हैं कि चावल खाऊँगा?....।" (३)

"भन्ते! आपने ठीक कहा।"

४. ब्रह्मलोकदूरताविषयकप्रश्न— ४. राजा बोला—"भन्ते! यहाँ से ब्रह्मलोक कितना दूर है?" "महाराज! बहुत दूर! यदि घर के गुम्बद जितना बड़ा एक पत्थर वहाँ से फेंका जाय तो वह दिन-रात अड़तालीस हजार योजन चलते हुए चार महीने में पृथ्वी पर पहुँचेगा।"

"भन्ते! आप फिर भी कैसे कहते हैं कि कोई संयमी भिक्षु अपनी ऋद्धिबल से बलवान् पुरुष की तरह पसारी बाँह को समेटते और समेटी बाँह को पसारते ही जम्बूद्वीप में अन्तर्धान हो ब्रह्मलोक में प्रकट हो सकता है? मैं इसे नहीं मानता कि इतनी जल्दी वह इतने सौ योजन पार कर सकेगा।"

थेरो आह—"कुहिं पन, महाराज, तव जातभूमी" ति? "अत्थि, भन्ते, अलसन्दो नाम दीपो, तत्थाहं जातो" ति। "कीव दूरो, महाराज, इतो अलसन्दो होती" ति? "द्विमत्तानि, भन्ते, योजनसतानी" ति। "अभिजानासि नु त्वं, महाराज, तत्थ किञ्चिदेव करणीयं करित्वा सरिता" ति? "आम, भन्ते, सरामी" ति। "लहु खो त्वं, महाराज, गतोसि द्विमत्तानि योजनसतानी" ति!

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

५. द्विन्नं लोकुप्पन्नानं समकभावपञ्हो

५. राजा आह—"भन्ते नागसेन, यो इध कालङ्कतो ब्रह्मलोके उप्पज्जेय्य, यो च इध कालङ्कतो कस्मीरे उप्पज्जेय्य, को चिरतरं, को सीघतरं" ति? "समकं, महाराजा" ति।

"ओपम्मं करोही" ति।

"कुहिं पन, महाराज, तव जातनगरं" ति? "अत्थि, भन्ते, कलसिगामो नाम, तत्थाहं जातो" ति। "कीव दूरो, महाराज, इतो कलसिगामो होती" ति? "द्विमत्तानि, भन्ते, योजनसतानी" ति। "कीव दूरं, महाराज, इतो कस्मीरं होती" ति? "द्वादस, भन्ते, योजनानी" ति। "इङ्घ त्वं, महाराज, कलसिगामं चिन्तेही" ति। "चिन्तितो, भन्ते" ति। "इङ्घ त्वं, महाराज, कस्मीरं चिन्तेही" ति। "चिन्तितं, भन्ते" ति। "कतमं नु खो, महाराज, चिरेन चिन्तितं, कतमं सीघतरं" ति? "समकं, भन्ते" ति। "एवमेव खो, महाराज, यो इध कालङ्कतो ब्रह्मलोके उप्पज्जेय्य, यो च इध कालङ्कतो कस्मीरे उप्पज्जेय्य, समकं येव उप्पज्जन्ती" ति।

"भिय्यो ओपम्मं करोही" ति।

स्थविर बोले—"महाराज! आप की जन्मभूमि कहाँ है?" "भन्ते! अलसन्द नाम का एक द्वीप है जहाँ मेरा जन्म हुआ था।" "महाराज! यहाँ से अलसन्द कितनी दूर है?" "भन्ते! करीब दो सौ योजन!" "महाराज! यहाँ अभी आपको कोई बात स्मरण है, जो आप ने वहाँ की थी?" "हाँ, स्मरण है।" "महाराज! आप इतना शीघ्र कैसे दो सौ योजन चले गये!"

"भन्ते! मैं समझ गया।"

५. लोकद्वय में समकालिकोत्पत्तिविषयकप्रश्न—"भन्ते! यदि कोई यहाँ मरकर ब्रह्मलोक में उत्पन्न हो, और दूसरा यहाँ मरकर काश्मीर में उत्पन्न हो, तो दोनों में कौन पहले पहुँचेगा?" "महाराज! दोनों साथ ही।"

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज! आपका जन्म किस नगर में हुआ था?" "भन्ते! कलसी नाम का एक गाँव है, वहीं मेरा जन्म हुआ था।" "यहाँ से कलसी गाँव कितनी दूर है।" "करीब दो सौ योजन।" "अच्छा, यहाँ से काश्मीर कितनी दूर है?" "केवल बारह योजन।" "महाराज! अब आप कलसी गाँव के विषय में स्मरण करें।" "भन्ते! किया।" "और अब काश्मीर के विषय में स्मरण करें।" "भन्ते! वह भी स्मरण किया।" "महाराज! अब आप बतावें कि दोनों स्थानों में किसका स्मरण शीघ्र आया?" "भन्ते! दोनों स्थानों का स्मरण एक ही तरह से समान समय में हुआ।" "महाराज! वैसे ही यहाँ मर कर ब्रह्मलोक या काश्मीर—कहीं भी एक ही समान जन्म होता है।" (१)

"कृपया फिर भी उपमा देकर समझाइये।"

"तं किं मञ्ञसि, महाराज, द्वे सकुणा आकासेन गच्छेय्युं। तेसु एको उच्चे रुक्खे निसीदेय्य, एको नीचे रुक्खे निसीदेय्य। तेसं समकं पतिट्ठितानं कतमस्स छाया पठमतरं पथवियं पतिट्ठहेय्य, कतमस्स छाया चिरेन पथवियं पतिट्ठहेय्या" ति? "समकं, भन्ते" ति। "एवमेव खो, महाराज, यो इध कालङ्कतो ब्रह्मलोके उप्पज्जेय्य, यो च इध कालङ्कतो कस्मीरे उप्पज्जेय्य, समं येव उप्पज्जन्ती" ति।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

६. बोज्झङ्गपञ्हो

६. राजा आह—"कति नु खो, भन्ते नागसेन, बोज्झङ्गा" ति? "सत्त खो, महाराज, बोज्झङ्गा" ति। "कतिहि पन, भन्ते, बोज्झङ्गेहि बुज्झती" ति? "एकेन खो, महाराज, बोज्झङ्गेन बुज्झति धम्मविचयसम्बोज्झङ्गेना" ति। "अथ किस्स नु खो, भन्ते, वुच्चन्ति—'सत्त बोज्झङ्गा' " ति? "तं किं मञ्ञसि, महाराज, असि कोसिया पक्खित्तो अग्गहितो हत्थेन उस्सहति छेज्जं छिन्दितुं" ति? "न हि, भन्ते" ति। "एवमेव खो, महाराज, धम्मविचयसम्बोज्झङ्गेन विना छहि बोज्झङ्गेहि न बुज्झती" ति।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

७. पापपुञ्ञानं अप्पानप्पभावपञ्हो

७. राजा आह—"भन्ते नागसेन, कतरं नु खो बहुतरं पुञ्ञं वा अपुञ्ञं वा" ति? "पुञ्ञं खो, महाराज, बहुतरं, अपुञ्ञं थोकं" ति।

"केन कारणेना" ति? "अपुञ्ञं खो, महाराज, करोन्तो विप्पटिसारी होति—'पापकम्मं मया कतं' ति, तेन पापं न वड्ढति। पुञ्ञं खो, महाराज, करोन्तो अविप्पटिसारी होति, अविप्पटिसारिनो पामोज्जं जायते, पमुदितस्स पीति जायति, पीतिमनस्स कायो पस्सम्भति,

---

"महाराज! आकाश में मँडराते दो पक्षियों में से एक आकर किसी ऊँचे वृक्ष पर बैठे और दूसरा किसी झाड़ी पर। यदि वे एक ही साथ बैठें तो किसकी छाया जमीन पर पहले आयगी?" "भन्ते! दोनों की छाया साथ आयगी।" "महाराज! इसी तरह, यदि कोई यहाँ मरकर ब्रह्म–लोक में उत्पन्न हो, या कोई दूसरा यहाँ मर कर काश्मीर में उत्पन्न हो तो भी वे दोनों साथ ही उत्पन्न होंगे।" (२)

"भन्ते ! आपने ठीक समझाया।"

६. बोध्यङ्गविषयकप्रश्न—राजा बोला—"भन्ते! बोध्यङ्ग कितने हैं?" "महाराज! सात (७) हैं।" "भन्ते! कितने बोध्यङ्गों से धर्म का ज्ञान होता है?" "धर्मविचयसम्बोध्यङ्ग नामक एक ही बोध्यङ्ग से हो सकता है।" "भन्ते! तब सात किस लिये बताये गये?" "महाराज! यदि कोई तलवार म्यान में रखी रहे और निकाली की जाय तो क्या उससे जिसको चाहें काट सकते हैं?" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! उसी तरह, विना धर्मविचयसम्बोध्यङ्ग के दूसरे बोध्यङ्गों से कुछ भी धर्मज्ञान नहीं हो सकता।"

"भन्ते! आपने ठीक कहा।"

७. पाप–पुण्य के अल्पत्व–आधिक्य के विषय में प्रश्न—७. "भन्ते! पाप और पुण्य इन दोनों में कौन अधिक है?" "महाराज! पुण्य अधिक है।"

"किस कारण?" "महाराज! पाप करने वालों को बहुत पश्चात्ताप होता है कि,मैंने बहुत पाप किया है, यों पाप नहीं बढ़ पाता। किन्तु पुण्य करने वाले को कोई भी पश्चात्ताप नहीं होता । कोई भी

पस्सद्धकायो सुखं वेदेति, सुखिनो चित्तं समाधियति, समाहितो यथाभूतं पजानाति, तेन कारणेन पुञ्ञं वड्ढति। पुरिसो खो, महाराज, छिन्नहत्थपादो भगवतो एकं उप्पलहत्थं दत्वा एकनवुतिकप्पानि विनिपातं न गच्छिस्सति। इमिना पि, महाराज, कारणेन भणामि—'पुञ्ञं बहुतरं अपुञ्ञं थोकं' '' ति।

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

८. जानन्ताजानन्तपापकरणभावपञ्हो

८. राजा आह—''भन्ते नागसेन, यो जानन्तो पापकम्मं करोति, यो अजानन्तो पापकम्मं करोति, कस्स बहुतरं अपुञ्ञं'' ति? थेरो आह—''यो खो, महाराज, अजानन्तो पापकम्मं करोति, तस्स बहुतरं अपुञ्ञं'' ति। ''तेन हि, भन्ते नागसेन, यो अम्हाकं राजपुत्तो वा राजमहामत्तो वा अजानन्तो पापकम्मं करोति, तं मयं दिगुणं दण्डेमा'' ति? ''तं किं मञ्ञसि, महाराज, तत्तं अयोगुळं आदित्तं सम्पज्जलितं सजोतिभूतं एको अजानन्तो गण्हेय्य, एको जानन्तो गण्हेय्य, कतमो बलवतरं डहेय्या'' ति? ''यो खो, भन्ते, अजानन्तो गण्हेय्य सो बलवतरं डय्हेय्या'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, यो अजानन्तो पापकम्मं करोति, तस्स बहुतरं अपुञ्ञं'' ति।

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

९. उत्तरकुरुकादिगमनपञ्हो

९. राजा आह—''भन्ते नागसेन, अत्थि कोचि, यो इमिना सरीरेन उत्तरकुरुं वा गच्छेय्य, ब्रह्मलोकं वा, अञ्ञं वा पन दीपं'' ति? ''अत्थि, महाराज, यो इमिना चातुम्महाभूतिकेन कायेन उत्तरकुरुं वा गच्छेय्य, ब्रह्मलोकं वा, अञ्ञं वा दीपं'' ति।

पश्चात्ताप न होने से एक प्रमोद (हर्ष) होता है, प्रमोद होने से प्रीति होती है, प्रीतियुक्त मनुष्य का शरीर शान्त रहता है, शरीर शान्त रहनेसे चित्त की समाधि (एकाग्रता) होती है, और चित्त के समाहित हो जाने से यथार्थ ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार पुण्य अधिक ही होता जाता है। महाराज! कोई लँगड़ा और लूला आदमी भी यदि भगवान् को एक मुट्ठी कमल-फूल भेंट करे तो वह इक्यानवे (९१) कल्पों तक विनिपात (दुर्गति=नरक) को नहीं प्राप्त होगा।'' ''महाराज! इसीलिये कहा है कि पाप से पुण्य अधिक है।''

''भन्ते! आपने ठीक कहा।''

८. ज्ञाताज्ञातपापकरणप्रश्न—''भन्ते! जो जानते हुए पाप कर्म करता है और जो अज्ञान में पाप कर बैठता है; उन दोनों में किसका पाप अधिक है?'' ''स्थविर बोले—''महाराज! जो विना जाने पाप कर्म करता है, उसी का पाप अधिक है।'' ''भन्ते! तब तो जो मेरे राजपुत्र या मन्त्री विना जाने पाप करते हैं, उनके लिये मुझे दुगना दण्ड देना चाहिये?'' ''महाराज! यदि कोई एक लोहे के दहकते लाल गोले को जानते हुए छुए और दूसरा उसे विना जाने हुए छू दे, तो दोनों में कौन अधिक जलेगा?'' ''भन्ते! जो विना जाने छू दे वही।'' ''महाराज! इसी तरह जो विना जाने पाप करता है, उसे अधिक पाप लगता है?''

''भन्ते! आपने ठीक कहा।''

९. इसी जन्म में ही देवलोकगमनविषयकप्रश्न—९. राजा बोला—''भन्ते! क्या ऐसा कोई है, जो इसी शरीर से उत्तरकुरु, ब्रह्मलोक या दूसरे चार द्वीपों में से कहीं जा सकता है?'' ''हाँ महाराज! ऐसे भी लोग है, जो इसी....।''

"कथं, भन्ते नागसेन, इमिना चातुम्महाभूतिकेन कायेन उत्तरकुरुं वा गच्छेय्य, ब्रह्मलोकं वा, अञ्ञं वा पन दीपं" ति? "अभिजानासि नु त्वं, महाराज, इमिस्सा पथविया विदत्थिं वा रतनिं वा लङ्घिता" ति? "आम, भन्ते, अभिजानामि—'अहं, भन्ते नागसेन, अट्ठ पि रतनियो लङ्घेमी' " ति। "कथं त्वं, महाराज, अट्ठ पि रतनियो लङ्घेसी" ति? "अहं हि, भन्ते, चित्तं उप्पादेमि—'एत्थ निपतिस्सामी' ति। सह चित्तुप्पादेन कायो मे लहुको होती" ति। "एवमेव खो, महाराज, इद्धिमा भिक्खु चेतोवसिप्पत्तो कायं चित्ते समारोपेत्वा चित्तवसेन वेहासं गच्छती" ति।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

१०. दीघट्ठिपञ्हो

१०. राजा आह—"भन्ते नागसेन, तुम्हे एवं भणथ—'अट्ठिकानि दीघानि योजनसतिकानि पी' ति। रुक्खो पि ताव नत्थि योजनसतिको। कुतो पन अट्ठिकानि दीघानि योजनसतिकानि भविस्सन्ती" ति?

"तं किं मञ्ञसि, महाराज, सुतं ते महासमुद्दे पञ्चयोजनसतिका पि मच्छा अत्थी" ति? "आम, भन्ते, सुतं" ति। "ननु, महाराज, पञ्चयोजनसतिकस्स मच्छस्स अट्ठिकानि दीघानि भविस्सन्ति योजनसतिकानि पी" ति।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

११. अस्सासपस्सासनिरोधपञ्हो

११. राजा आह—"भन्ते नागसेन, तुम्हे एवं भणथ—'सक्का अस्सासपस्सासे निरोधेतुं'" ति? "आम, महाराज, सक्का अस्सासपस्सासे निरोधेतुं" ति। "कथं, भन्ते नागसेन, सक्का अस्सासपस्सासे निरोधेतुं" ति? "तं किं मञ्ञसि, महाराज, सुतपुब्बो ते कोचि काकच्छमानो"

"भन्ते! वे कैसे जाते हैं?" "महाराज! क्या आप पृथ्वी पर ही एक बित्ता या एक हाथ लाँघ सकते हैं?" "हाँ भन्ते! मैं आठ हाथ भी लाँघ सकता हूँ।" "महाराज! आप आठ हाथ कैसे लाँघ लेते हैं?" "भन्ते! मैं मन में इस तरह लाँघने की इच्छा करता हूँ कि वहाँ जा कर गिरूँगा। मन में ऐसी इच्छा करते ही मेरा शरीर हल्का मालूम होने लगता है और मैं लाँघ जाता हूँ।" "महाराज! इसी तरह, ऋद्धिप्राप्त संयमी भिक्षु ऐसा चित्त उत्पन्न करता है, जिससे वह आकाश में जा सकता है।"

"भन्ते! ठीक है।"

१०. दीर्घास्थिप्रश्न—१०. राजा बोला—"भन्ते! आप लोग यों कहते हैं कि हड्डियाँ एक सौ योजन लम्बी भी हैं। उतना लम्बा तो कोई वृक्ष भी नहीं होता, हड्डियाँ कैसे हो सकती हैं?"

"महाराज! क्या आपने सुना है कि महासमुद्र में पाँच सौ योजन लम्बी भी मछलियाँ है?" "हाँ, भन्ते! सुना है।" "यदि ऐसी बात है तो क्या उनकी हड्डियाँ एक सौ योजन लम्बी नहीं हो सकती?"

"भन्ते! हो सकती हैं। आपने ठीक समझाया।"

११. श्वास-प्रश्वासनिरोधप्रश्न—११. राजा बोला—"भन्ते! आप लोग ऐसा कहते है कि साँस के लेने और छोड़ने को रोका जा सकता है?" "हाँ महाराज! सचमुच रोका जा सकता है।" "भन्ते! किस तरह?" "महाराज! क्या आपने कभी किसी को खर्राटा लेते हुए सुना है?" "हाँ भन्ते! सुना है।" "महाराज! यदि वह अपने शरीर को हिलावे या मोड़े तो क्या खर्राटा लेना कुछ रुक नहीं जाता?" "हाँ

ति ? "आम, भन्ते, सुतपुब्बो" ति। "किं नु, महाराज, सो सद्दो काये नमिते विरमेय्या" ति ? "आम, भन्ते, विरमेय्या" ति। "सो हि नाम, महाराज, सद्दो अभावितकायस्स अभावितसीलस्स अभावितचित्तस्स अभावितपञ्ञस्स काये नमिते विरमिस्सति, किं पन भावितकायस्स भावितसीलस्स भावितपञ्ञस्स चतुत्थज्झानं समापन्नस्स अस्सासपस्सासा न निरुज्झिस्सन्ती" ति।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

१२. समुद्दपञ्हो

१२. राजा आह—"भन्ते नागसेन, 'समुद्दो समुद्दो' ति वुच्चति, केन कारणेन उदकं 'समुद्दो' ति वुच्चती" ति ? थेरो आह—"यत्तकं, महाराज, उदकं तत्तकं लोणं, यत्तकं लोणं तत्तकं उदकं, तस्मा 'समुद्दो' ति वुच्चती" ति।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

१३. समुद्दएकरसपञ्हो

१३. राजा आह—"भन्ते नागसेन, केन कारणेन समुद्दो एकरसो लोणरसो" ति ? "चिरसण्ठितत्ता खो, महाराज, उदकस्स समुद्दो एकरसो लोणरसो" ति।

"कल्लोसि, भन्ते नागसेना" ति।

१४. सुखुमपञ्हो

१४. राजा आह—"भन्ते नागसेन, सक्का सब्बं सुखुमं छिन्दितुं" ति ? "आम, महाराज, सक्का सब्बं सुखुमं छिन्दितुं" ति। "किं पन, भन्ते, सब्बं सुखुमं" ति ? "धम्मो खो, महाराज, सब्बसुखुमो। न खो, महाराज, धम्मा सब्बे सुखुमा, 'सुखुमं' ति वा 'थूलं' ति वा

भन्ते! रुक जाता है।" "महाराज! जब उस अभावित (अनभ्यस्त), असमाहित-काय, अभावितचित्त, अभावितशील और अभावित प्रज्ञा वाले मनुष्य का खर्राटा लेना अपने शरीर के सिकोड़ने या मोड़ने भर से रुक जाता है, तो इसमें क्या आश्चर्य है कि यदि भावित (अभ्यस्त) काय, भावितचित्त, भावितप्रज्ञ भिक्षु का श्वास लेना और छोड़ना चतुर्थ ध्यान में पहुँचने पर रुक जाय।"

"भन्ते! आपने ठीक कहा।"

१२. समुद्रविषयकप्रश्न—राजा बोला—"भन्ते! सभी लोग 'समुद्र' 'समुद्र' ऐसा कहा करते हैं। जल की इस राशि का नाम 'समुद्र' क्यों पड़ा?" स्थविर बोले—"महाराज! क्योंकि उसमें सम (बराबर) उदक (जल) और सम (लवण) नमक है। इसलिए उसका नाम समुद्र पड़ा।"

"भन्ते! आपने ठीक कहा।"

१३. समुद्र की एक रसता क्यों—१३. राजा बोला—"भन्ते क्या करण है कि सारे समुद्र का रस नमकीन ही है?" "महाराज! बहुत समय से जल के एक ही जगह ठहरने के कारण सारे समुद्र का रस नमकीन ही है।"

"भन्ते! ठीक है।"

१४. सूक्ष्मधर्मविषयकप्रश्न—१४. राजा बोला—"भन्ते! क्या सबसे सूक्ष्म वस्तु भी काटी जा सकती है?" "हाँ, महाराज! काटी जा सकती है।" "भन्ते! सबसे सूक्ष्म चीज क्या है?" "महाराज! धर्म ही सब से सूक्ष्म चीज है। किन्तु सभी धर्मों में ऐसी बात नहीं है। सूक्ष्म या स्थूल होना धर्म का ही विशेषण है। किन्तु

धम्मानमेतमधिवचनं। यं किञ्चि छिन्दितब्बं सब्बं तं पञ्ञाय छिन्दति, नत्थि दुतियं पञ्ञाय छेदनं'' ति।

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

१५. विञ्ञाणनानत्तपञ्हो

१५. राजा आह—''भन्ते नागसेन, 'विञ्ञाणं' ति वा 'पञ्ञा' ति वा 'भूतस्मिं जीवो' ति वा, इमे धम्मा नानत्था चेव नानाव्यञ्जना च, उदाहु एकत्ता, ब्यञ्जनमेव नानं'' ति? ''विजाननलक्खणं, महाराज, विञ्ञाणं। पजाननलक्खणा पञ्ञा। भूतस्मिं जीवो नूपलब्भती'' ति। ''यदि जीवो नूपलब्भति अथ को चरहि चक्खुना रूपं पस्सति, सोतेन सद्दं सुणाति, घानेन गन्धं घायति, जिव्हाय रसं सायति, कायेन फोट्ठब्बं फुसति, मनसा धम्मं विजानाती'' ति? थेरो आह—''यदि जीवो चक्खुना रूपं पस्सति ....पे०.... मनसा धम्मं विजानाति, सो जीवो चक्खुद्वारेसु उप्पाटितेसु महन्तेन आकासेन बहिमुखो सुट्ठुतरं रूपं पस्सेय्य, सोतेसु उप्पाटितेसु .... घाने उप्पाटिते .... जिव्हाय उप्पाटिताय .... काये उप्पाटिते महन्तेन आकासेन सुट्ठुतरं सद्दं सुणेय्य, गन्धं घायेय्य, रसं सायेय्य, फोट्ठब्बं फुसेय्या'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''तेन हि, महाराज, भूतस्मिं जीवो नूपलब्भती'' ति।

''कल्लोसि, भन्ते नागसेना'' ति।

१६. अरूपधम्मववत्थानदुक्करपञ्हो

१६. राजा आह—''भन्ते नागसेन, दुक्करं नु खो भगवता कतं'' ति? थेरो आह—''दुक्करं, महाराज, भगवता कतं'' ति। ''किं पन, भन्ते नागसेन, दुक्करं भगवता कतं'' ति?

जो कुछ काटा जा सकता है, प्रज्ञा से ही काटा जा सकता है; और ऐसा कोई दूसरा नहीं है; जो प्रज्ञा को काटे।"

"भन्ते! आपने बहुत अच्छा समझाया।"

१५. विज्ञान–नानात्वविषयकप्रश्न– १५. राजा बोला–"भन्ते! विज्ञान, प्रज्ञा और जीव–क्या ये तीन शब्द अक्षर और अर्थ दोनों से पृथक्–पृथक् हैं, या एक ही अर्थ के भिन्न–भिन्न नाम हैं?" "महाराज! 'जान लेना' विज्ञान का लक्षण है; 'ठीक से समझ लेना' प्रज्ञा का लक्षण है; और 'जीव' ऐसी कोई वस्तु नहीं है।" "भन्ते! यदि जीव (आत्मा) कोई वस्तु ही नहीं है तो हम लोगों में वह क्या है, जो चक्षु से रूप देखता है, कान से शब्द सुनता है, नाक से गंध सूँघता है, जीभ से स्वाद चखता है, शरीर से स्पर्श करता है, और मन से धर्म को जानता है?" "महाराज! यदि शरीर से भिन्न कोई जीव (आत्मा) है, जो हम लोगों के भीतर रह कर चक्षु से रूप देखता है, तो चक्षु निकाल लेने पर बड़े छेद से उसे और भी अच्छी तरह देखना चाहिये! कान काट लेने पर उसे और भी अच्छी तरह सुनना चाहिये! नाक काट देने पर उसे और भी अच्छी तरह सूँघना चाहिये! जीभ काट देने पर उसे और भी अच्छी तरह स्वाद लेना चाहिये तथा शरीर काट देने पर उसे और भी तरह स्पर्श करना चाहिये!" "नहीं, भन्ते! ऐसी बात नहीं है।" "महाराज! तो हम लोगों के भीतर कोई भी जीव नहीं है!"

"भन्ते! आपने बहुत अच्छा समझाया।"

१६. अरूपधर्मदुष्करताविषयकप्रश्न–१६. राजा बोला–"भन्ते! क्या भगवान् ने कोई दुष्करचर्या की थी?" स्थविर बोले–"महाराज! भगवान् ने एक बड़ा कठिन कार्य किया है।" "भन्ते! वह क्या?"

"दुक्करं, महाराज, भगवता कतं—इमेसं अरूपीनं चित्तचेतसिकानं धम्मानं एकारम्मणे वत्तमानानं ववत्थानं अक्खातं—'अयं फस्सो, अयं वेदना, अयं सञ्ञा, अयं चेतना, इदं चित्तं' " ति।

"ओपम्मं करोही" ति।

"यथा, महाराज, कोचिदेव पुरिसो नावाय महासमुद्दं अज्झोगाहेत्वा हत्थपुटेन उदकं गहेत्वा जिव्हाय सायित्वा जानेय्य नु खो, महाराज, सो पुरिसो— 'इदं गङ्गाय उदकं, इदं यमुनाय उदकं, इदं अचिरवतिया उदकं, इदं सरभुया उदकं, इदं महिया उदकं' " ति? "दुक्करं, भन्ते, जानितुं" ति। "इतो दुक्करतरं खो, महाराज, भगवता कतं इमेसं अरूपीनं चित्तचेतसिकानं धम्मानं एकारम्मणे वत्तमानानं ववत्थानं अक्खातं—अयं फस्सो, अयं वेदना, अयं सञ्ञा, अयं चेतना, इदं चित्तं" ति।

"सुट्ठु, भन्ते" ति राजा अब्भनुमोदी ति॥

(इमस्मिं वग्गे सोळस पञ्हा) *सत्तमो वग्गो निट्ठितो॥*

"महाराज! एक ही वस्तु के आलम्बन पर होने वाले रूपरहित चित्त और चैतसिक धर्मों का विश्लेषण करना। उन्होंने पृथक्–पृथक् करके बताया—यह स्पर्श है, यह वेदना है, यह संज्ञा है, यह चेतना है और यह चित्त है।"

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज! जैसे कोई आदमी नाव पर सवार होकर समुद्र में जाय और अञ्जलि में समुद्र का जल ले उसे चख कर बता दे कि यह गंगा नदी से आया हुआ जल है, यह जमुना से, यह अचिरवती से, यह सरयू से और यह मही नदी से?"

"भन्ते! ऐसा बताना तो बहुत कठिन है।" "महाराज! इसी तरह एक ही वस्तु के आलम्बन पर होने वाले रूप–रहित चित्त और चैतसिक धर्मों का विश्लेषण करना उससे भी कठिन है।"

"भन्ते! ठीक कहा—राजा ने अनुमोदन किया।"

सप्तम अरूपधर्मव्यवस्थानवर्ग समाप्त॥

(इस वर्ग में सोलह प्रश्न हैं)

॥ राजा मिलिन्द के प्रश्नों को समाप्ति ॥

मिलिन्दपञ्हपुच्छाविसज्जना

थेरो आह—"जानासि खो, महाराज, सम्पति का वेला" ति ? "आम, भन्ते, जानामि; सम्पति पठमो यामो अतिक्कन्तो, मज्झिमो यामो पवत्तति; उक्का पदीपियन्ति, चत्तारि पटाकानि आणत्तानि, गमिस्सन्ति भण्डतो राजदेय्यानी" ति।

योनका एवमाहंसु—"कल्लोसि, महाराज, पण्डितो थेरो" ति।

"आम, भणे, पण्डितो थेरो। एदिसो आचरियो भवेय्य, मादिसो च अन्तेवासी; न चिरस्सेव पण्डितो धम्मं आजानेय्या" ति!

तस्स पञ्हवेय्याकरणेन तुट्ठो राजा थेरं नागसेनं सतसहस्सग्घनकेन कम्बलेन अच्छादेत्वा—"भन्ते नागसेन, अज्जतग्गे ते अट्ठसतं भत्तं पञ्ञापेमि, यं किञ्चि अन्तेपुरे कप्पियं तेन च पवारेमी" ति आह। "अलं, महाराज; जीवामी" ति।

"जानामि, भन्ते नागसेन, जीवसि। अपि च अत्तानं च रक्ख, ममं च रक्खाहीति। कथं अत्तानं रक्खसि ? 'नागसेनो मिलिन्दं राजानं पसादेसि, न च किञ्चि अलभी ति परापवादो आगच्छेय्या' ति एवं अत्तानं रक्ख। कथं ममं रक्खसि ? 'मिलिन्दो राजा पसन्नो पसन्नाकारं न करोती ति परापवादो आगच्छेय्या' ति एवं ममं रक्खाही" ति। "तथा होतु, महाराजा" ति। "सेय्यथापि, भन्ते, सीहो मिगराजा सुवण्णपञ्जरे पक्खित्तो पि बहिमुखो येव होति; एवमेव खो अहं, भन्ते, किञ्चापि अगारं अज्झावसामि बहिमुखो येव पन अच्छामि। सचे अहं, भन्ते, अगारस्मा अनगारियं पब्बजेय्यं, न चिरं जीवेय्यं, बहू मे पच्चत्थिका" ति।

राजा मिलिन्द के प्रश्नों की समाप्ति

स्थविर बोले—"महाराज! क्या आप जानते हैं कि अभी क्या समय हुआ है?" "हाँ भन्ते! जानता हूँ। रात का पहला पहर बीत गया, दूसरा पहर आरम्भ हुआ है, मशाल (उल्का) जला दिये गये हैं, चारों पताकायें फहरा देने के लिये आज्ञा दे दी गयी है, अब दान देने की वस्तुएँ भण्डार से ले जायी जायँगी।"

यवनों ने कहा—"महाराज! यह भिक्षु तो बड़े भारी पण्डित हैं!"

"हाँ, स्थविर बड़े भारी पण्डित हैं। इन्हीं के ऐसा गुरु और मेरे जैसा शिष्य होना चाहिये, जो पण्डित हो और धर्म की सूक्ष्मताओं को समझ सकें।"

उनके उत्तरों से सन्तुष्ट हो कर राजा ने स्थविर नागसेन को एक बड़ा मूल्यवान् चीवर देकर कहा— "भन्ते! मेरे यहाँ आठ सौ दिनों तक भोजन करने का निमन्त्रण स्वीकार करें। आपके योग्य अन्तःपुर में बनने योग्य जो कुछ भी भोज्य पदार्थ हैं मैं उन्हें बनवाने के लिए तैयार हूँ।" "रहने दें, महाराज! मेरा जीवनयापन (गुजारा) तो हो ही रहा है।"

"भन्ते! मैं जानता हूँ कि आपका जीवनयापन हो रहा है, किन्तु कृपया मुझे और अपने—दोनों को अपवाद से बचावें। अपने को इससे बचावें कि 'राजा को सन्तुष्ट करके भी कुछ नहीं पाया।' और मुझे इस से बचावें कि 'स्थविर से सन्तुष्ट होकर भी राजा ने कुछ भेंट नहीं चढ़ायी।" "अच्छा महाराज! यही हो।" "भन्ते! जैसे सोने के पिंजड़े में भी डाल दिये जाने से मृगराज सिंह बाहर की ही ओर ताकता रहता है, वैसे ही मैं भी इस राज–भवन में रहते हुए (घर छोड़कर भिक्षु बन जाने के लिये) बाहर की ओर ही दृष्टि किये हूँ। किन्तु, भन्ते! यदि अभी मैं घर छोड़ भिक्षु बन जाऊँ तो भी अधिक दिनों तक नहीं बच सकूँगा; क्योंकि मेरे शत्रु बहुत हैं, जो अवसर पाकर मुझे मार डालेंगे।"

अथ खो आयस्मा नागसेनो मिलिन्दस्स रञ्ञो पञ्हं विसज्जेत्वा उट्ठायासना सङ्घारामं अगमासि। अचिरपक्कन्ते च आयस्मन्ते नागसेने मिलिन्दस्स रञ्ञो एतदहोसि—"किं मया पुच्छितं, किं भदन्तेन नागसेनेन विसज्जितं" ति? अथ खो मिलिन्दस्स रञ्ञो एतदहोसि—"सब्बं मया सुपुच्छितं, सब्बं भदन्तेन नागसेनेन सुविसज्जितं" ति।

आयस्मतो पि नागसेनस्स सङ्घारामगतस्स एतदहोसि—"किं मिलिन्देन रञ्ञा पुच्छितं, किं मया विसज्जितं" ति। अथ खो आयस्मतो नागसेनस्स एतदहोसि—"सब्बं मिलिन्देन रञ्ञा सुपुच्छितं सब्बं मया सुविसज्जितं" ति।

अथ खो आयस्मा नागसेनो तस्सा रत्तिया अच्चयेन पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन मिलिन्दस्स रञ्ञो निवेसनं तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। अथ खो मिलिन्दो राजा आयस्मन्तं नागसेनं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो मिलिन्दो राजा आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच—"मा खो भदन्तस्स एवं अहोसि—'नागसेनो मया पञ्हं पुच्छितो ति तेनेव सोमनस्सेन तं रत्तावसेसं वीतिनामेसी' ति, न ते एवं दट्ठब्बं। तस्स मय्हं, भन्ते, तं रत्तावसेसं एतदहोसि—'किं मया पुच्छितं, किं भदन्तेन विस्सज्जितं ति? सब्बं मया सुपुच्छितं भदन्तेन सुविसज्जितं' " ति।

थेरो पि एवमाह—"मा खो महाराजस्स एवं अहोसि—'मिलिन्दस्स रञ्ञा मया पञ्हो विसज्जितो ति तेनेव सोमनस्सेन तं रत्तावसेसं वीतिनामेसी' ति, न ते एवं दट्ठब्बं। तस्स मय्हं महाराज, तं रत्तावसेसं एतदहोसि—'किं मिलिन्देन रञ्ञा पुच्छितं, किं मया विस्सज्जितं। सब्बं मिलिन्देन रञ्ञा सुपुच्छितं, सब्बं मया सुविसज्जितं' " ति।

इति ह ते महानागा अञ्ञमञ्ञस्स सुभासितं समनुमोदिंसू ति।

मिलिन्दपञ्हपुच्छाविसज्जना निट्ठिता।।

इस तरह राजा मिलिन्द के प्रश्नों का उत्तर दे, आयुष्मान् नागसेन आसन से उठकर अपने आश्रम को चले गये। नागसेन के चले जाने के बाद राजा मिलिन्द अपने ही आप उन प्रश्नों और उत्तरों पर विचार करने लगा। उसने देखा—"मेरे सभी प्रश्न अच्छे थे और उनके उत्तर भी वैसे ही बहुत समीचीन थे।" सङ्घाराम पहुँचने पर आयुष्मान् नागसेन को भी यही विचार हुए।....

दूसरे दिन प्रातःकाल ही वस्त्र धारण कर अपना पात्र चीवर ले आयुष्मान् नागसेन राजा के महल आये और बिछे आसन पर बैठ गये। राजा मिलिन्द भी उन्हें प्रणाम कर आदर के साथ एक ओर बैठ गया और बोला— "भन्ते! आप ऐसा न समझें कि रात भर मैं इसी हर्ष (खुशी) में जागा रहा कि आयुष्मान् नागसेन से मैंने बहुत जटिल प्रश्न पूछे; किन्तु मैं यह विचार करता रहा कि 'क्या मेरे प्रश्न उचित और उनके उत्तर सन्तोषजनक थे?' अन्त में मैंने उन्हें वस्तुतः वैसा ही पाया।"

स्थविर बोले— "महाराज! आप भी ऐसा न समझें कि रातभर मैं इसी हर्ष में जागा रहा कि राजा के प्रश्नों का मैंने कठिन उत्तर दिया! मैं भी आप ही की तरह विचारता रहा और वैसा ही पाया।"

इस तरह उन दोनों गजराज के सदृश विद्वानों ने एक दूसरे के कथन (सुभाषित) का अनुमोदन किया।।

राजा मिलिन्द के प्रश्नों का उत्तर समाप्त।।

४. मेण्डकपञ्हो

मेण्डकपञ्हारम्मणकथा

१. भस्सप्पवेदी वेतण्डी, अतिबुद्धि विचक्खणो।
मिलिन्दो ञाणभेदाय, नागसेनमुपागमि॥ १॥
वसन्तो तस्स छायाय, परिपुच्छि पुनप्पुनं।
पभिन्नबुद्धि हुत्वान, सो पि आसि तिपेटको॥ २॥
नवङ्गमनुमज्जन्तो, रत्तिभागे रहोगतो।
अद्दक्खि मेण्डके पञ्हे, दुन्निवेठे सनिग्गहे॥ ३॥
परियायभासितं अत्थि, अत्थि सन्धायभासितं।
सभावभासितं अत्थि, धम्मराजस्स सासने॥ ४॥
तेसमत्थं अविञ्ञाय, मेण्डके जिनभासिते।
अनागतम्हि अद्धाने, विग्गहो तत्थ हेस्सति॥ ५॥
हन्द कथिं पसादेत्वा, छेज्जापेस्सामि मेण्डके।
तस्स निद्दिट्ठमग्गेन, निद्दिसिस्सन्त्यनागते ति॥ ६॥

२. अथ खो मिलिन्दो राजा पभाताय रत्तिया उग्गते अरुणे सीसं न्हात्वा सिरसि अञ्जलिं पग्गहेत्वा अतीतानागतपच्चुप्पन्ने सम्मासम्बुद्धे अनुस्सरित्वा अट्ठ वत्तपदानि समादियि—

---

४. मेण्डकप्रश्न[1]

१. मेण्डकप्रश्न–आरम्भकथा– १. "वक्ता, तर्कप्रिय, विचक्षण और अत्यन्त बुद्धिमान् राजा मिलिन्द नागसेन के ज्ञान की परीक्षा करने के लिये आया। (१)

उनके निकट बैठ, अपनी सारी बुद्धि समाप्त न हो जाने तक बार–बार प्रश्न करता रहा। अन्त में उसने भी त्रिपिटक के सिद्धान्तों को मान लिया। (२)

रात्रि के समय एकान्त में धर्म के नये आयामों पर (या शासन के नौ अङ्गों पर) विचार करते हुए उसे मेण्डक नाम के कुछ द्विविधा (उलझन) में डाल देने वाले अत्यन्त जटिल प्रश्न सूझे। (३)

उसने सोचा– धर्मराज (बुद्ध) के शासन (उपदेश) में कुछ बातें तो पर्याय (बार–बार) से कही गयी हैं; कुछ किसी विशेष प्रसङ्ग को सामने रखकर तथा कुछ केवल साधारण बातों को समझाने के लिये। (४)

उनका यथाभूत अर्थ न समझने के कारण आगे चलकर मतभेद पैदा होगा। (५)

अतः मैं इन जटिल प्रश्नों को आयुष्मान् नागसेन से पूछकर सुलझाऊँगा, जिससे भविष्य में धर्मविषयक लोगों को सम्यक् ज्ञान रहे।" (६)

२. तब, राजा मिलिन्द ने दूसरे दिन प्रातः अरुणिम वेला में, पूर्ण स्नान कर, हाथ जोड़, भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल के बुद्धों को प्रणाम कर, आठ गुणों के पालन करने का व्रत लिया–

---

१. 'मेण्डक' का अर्थ है 'भेड़'। भेड़ के दो नोकीले सींगों की तरह इस प्रकरण में सर्वत्र प्रश्नों में ऐसे दो विकल्प रखे गये हैं, जिनमें दोनों समान रूप से आपत्तिग्रस्त हैं।

"इतो मे अनागतानि सत्त दिवसानि अट्ठ गुणे समादियित्वा तपो चरितब्बो भविस्सति। सोहं चिण्णतपो समानो आचरियं आराधेत्वा मेण्डके पञ्हे पुच्छिस्सामी" ति।

अथ खो मिलिन्दो राजा पकतिदुस्सयुगं अपनेत्वा, आभरणानि च ओमुञ्चित्वा, कासायं निवासेत्वा, मुण्डकपटिसीसकं सीसे पटिमुञ्चित्वा, मुनिभावमुपगन्त्वा अट्ठगुणे समादियि— "इमं सत्ताहं मया (१) न राजत्थो अनुसासितब्बो, (२) न रागूपसंहितं चित्तं उप्पादेतब्बं, (३) न दोसूपसंहितं चित्तं उप्पादेतब्बं, (४) न मोहूपसंहितं चित्तं उप्पादेतब्बं, (५) दासकम्मकरपोरिसे जने पि निवातवुत्तिना भवितब्बं। (६) कायिकं वाचसिकं अनुरक्खितब्बं, (७) छ पि आयतनानि निरवसेसतो अनुरक्खितब्बानि, (८) मेत्ताभावनाय मानसं पक्खिपितब्बं" ति। इमे अट्ठगुणे समादियित्वा तेस्वेव अट्ठसु गुणेसु मानसं पतिट्ठपेत्वा बहि अनिक्खमित्वा सत्ताहं वीतिनामेत्वा अट्ठमे दिवसे पभाताय रत्तिया पगेव पातरासं कत्वा ओक्खित्तचक्खु मितभाणी सुसण्ठितेन इरियापथेन अविक्खित्तेन चित्तेन हट्ठेन उदग्गेन विप्पसन्नेन थेरं नागसेनं उपसङ्कमित्वा थेरस्स पादे सिरसा वन्दित्वा एकमन्तं ठितो इदमवोच—

३. "अत्थि मे, भन्ते नागसेन, कोचि पञ्हो तुम्हेहि सद्धिं मन्तयितब्बो, न तत्थ अञ्ञो कोचि ततियो इच्छितब्बो, सुञ्ञे ओकासे पविवित्ते अरञ्ञे अट्ठगुणूपगते समणसारुप्पे। तत्थ सो पञ्हो पुच्छितब्बो भविस्सति, तत्थ मे गुय्हं न कातब्बं न रहस्सकं, अरहामहं रहस्सकं सुणितुं सुमन्तने उपगते। उपमाय पि सो अत्थो उपपरिक्खितब्बो। यथा किं विय ? यथा नाम, भन्ते नागसेन, महापथवी निक्खेपं अरहति निक्खेपे उपगते; एवमेव खो, भन्ते नागसेन, अरहामहं रहस्सकं सुणितुं सुमन्तने उपगते" ति॥

"आज से सात दिन तक आठ गुणों के पालन का व्रत लेता हूँ। मैं इस व्रत–पालन से आचार्य को प्रसन्न कर उनसे मेण्डक प्रश्न पूछूँगा।"

तब, राजा मिलिन्द अपने स्वाभाविक राज–वस्त्र तथा आभूषण उतारकर सिर पर एक कपड़ा डालकर काषाय वस्त्र धारण कर, तपस्वी के समान रहने लगा तथा ये आठ व्रत पालन करने लगा। जैसे—१. उस सप्ताह उसने कोई राज्य–कार्य नहीं किया। (२-३-४) मन में किसी प्रकार का राग, द्वेष और मोह भी नहीं आने दिया। (५) नौकर–चाकरों के प्रति भी नम्र और प्रसन्न रहा। (६) अपने शरीर और वाणी पर पूरा संयम रखते हुए उसने (७) छह आयतनों (इन्द्रियों) की भी पूरी–पूरी रक्षा की तथा (८) चित्त में सदा मैत्री–भावना का अभ्यास करता रहा। सप्ताह भर बाहर कहीं न जाकर इन्हीं आठ गुणों का चिन्तन करता रहा। आठवें दिन रात्रि के बीतने पर प्रातःकाल जलपान कर, कुछ न बोलते हुए, नीची दृष्टि किये हुए शान्त–भाव तथा स्थिर–चित्त से आनन्दपूर्वक स्थविर नागसेन के पास गया। उनके श्रीचरणों में प्रणाम कर एक ओर खड़ा हो गया और बोला—

३. "भन्ते! मैं आपके साथ एकान्त में कुछ धर्मविषयक प्रश्न करना चाहता हूँ। वहाँ कोई तीसरा न रहने पावे। आठ अङ्गों से युक्त मुनियों के रहने योग्य किसी निर्जन और एकान्त जंगल में ही मैं अपनी बातें इस तरह कहना चाहता हूँ कि हम लोगों में कुछ भी छिपा न रहे, कुछ भी रहस्य न रहे। प्रसङ्ग चलने पर अतिरहस्यमय बातों को मैं सुनना चाहता हूँ। अपने मन के भाव उपमाओं से भी स्पष्ट किये जा सकते हैं। कैसे? भन्ते! जैसे इस पृथ्वी में पूरे विश्वास के साथ खजाना गाड़ कर छिपाया जा सकता है; वैसे ही मैं भी आप से अतिरहस्यमय बातों को सुन कर उन्हें ग्रहण करूँगा।"

१. अट्ठ मन्तपरिवज्जनियठानानि

४. गरुना पि सह पविवित्तपवनं पविसित्वा इदमवोच— "भन्ते नागसेन, इध पुरिसेन मन्तयितुकामेन अट्ठट्ठानानि परिवज्जयितब्बानि भवन्ति, न तेसु ठानेसु विञ्ञू पुरिसो अत्थं मन्तेति, मन्तितो पि अत्थो परिपतति, न सम्भवति। कतमानि अट्ठ ठानानि? १. विसमट्ठानं परिवज्जनियं, २. सभयं परिवज्जनियं, ३. अतिवातट्ठानं परिवज्जनियं, ४. पटिच्छन्नट्ठानं परिवज्जनियं, ५. देवट्ठानं परिवज्जनियं, ६. पन्थो परिवज्जनियो, ७. सङ्कमो परिवज्जनियो, ८. उदकतित्थं परिवज्जनीयं— इमानि अट्ठट्ठानानि परिवज्जनीयानी" ति।

थेरो आह— "को दोसो विसमट्ठाने, सभये, अतिवाते, पटिच्छन्ने, देवट्ठाने, पन्थे, सङ्कमे, उदकतित्थे" ति? "१. विसमे, भन्ते नागसेन, मन्तितो अत्थो विकिरति विधमति पग्घरति न सम्भवति। २. सभये मनो सन्तसति, सन्तासितो न सम्मा अत्थं समनुपस्सति। ३. अतिवाते सद्दो अविभूतो होति। ४. पटिच्छन्ने उपस्सुतिं तिट्ठन्ति। ५. देवट्ठाने मन्तितो अत्थो गरुकं परिणमति। ६. पन्थे मन्तितो अत्थो तुच्छो भवति। ७. सङ्कमे चलाचलो भवति। ८. उदकतित्थे पाकटो भवति। भवतीह—

'विसमं सभयमतिवातो, पटिच्छन्नं देवनिस्सितं।
पन्थो च सङ्कमो तित्थं, अट्ठेते परिवज्जया" ति॥

२. अट्ठ मन्तविनासकपुग्गला

५. "भन्ते नागसेन, अट्ठिमे पुग्गला मन्तियमाना मन्तितं अत्थं व्यापादेन्ति। कतमे अट्ठ? रागचरितो, दोसचरितो, मोहचरितो, मानचरितो, लुद्धो, अलसो, एकचिन्ती, बालो ति।

---

१. धार्मिक मन्त्रणा के अयोग्य आठ स्थान— ४. तब, राजा मिलिन्द अपने गुरु (नागसेन) के साथ वैसे ही किसी स्थान में पहुँचकर बोला— "भन्ते ! धर्म के गूढ़ तत्त्वों पर मन्त्रणा करने वालों को आठ स्थानों से पृथक् रहना चाहिये। इन आठ स्थानों में कोई भी बुद्धिमान् पुरुष वैसी मन्त्रणा नहीं करता, क्योंकि वहाँ मन्त्रणा करने पर सभी व्यर्थ होता है, उसका कोई परिणाम भी नहीं निकलता। ये आठ स्थान कौन-कौन हैं ? १. असम (ऊबड़-खाबड़) एवं २. भयावह स्थान, ३. जहाँ बहुत तेज हवा चलती हो, ४. जो बहुत छिपा हुआ हो, ५. देवस्थल, ६. चहल-पहल वाली सड़कें, ७. पुल और ८. नदी का घाट।"

स्थविर बोले— "महाराज! इन स्थानों में क्या दोष हैं?" राजा बोला— "भन्ते! १. ऊबड़-खाबड़ स्थान में मन्त्रणा करने से बातें नहीं जमती, बिखर जाती हैं, और कोई परिणाम भी नहीं निकलता। २. भयावह स्थान में मन डरा रहता है, जिससे बातें ठीक-ठीक समझ में नहीं आतीं। ३. जहाँ बहुत तेज हवा चलती है, वहाँ एक दूसरे के शब्द दब जाते हैं, साफ-साफ सुनायी नहीं देते। ४. बहुत गुप्त स्थान में कोई दूसरा छिप कर सुन सकता है। ५. देवस्थल में मन्त्रणा करने से बातें गुरु (भारी) हो जाती हैं। ६. चहल-पहल वाली सड़कों पर मन्त्रणा करने से बातें हल्की हो जाती हैं। ७. पुल पर मन्त्रणा करने से बातें चञ्चल हो जाती हैं। ८. घाट पर मन्त्रणा करने से सभी बातें साधारण जनता में (समय से पूर्व) प्रकट हो जाती हैं।

इसलिये कहा गया है कि धार्मिक विषयों पर मन्त्रणा करने के लिये ये आठ स्थान छोड़ देने चाहियें।"

२. धार्मिक मन्त्रणा के अयोग्य आठ पुरुष— ५. "भन्ते नागसेन! आठ प्रकार के लोगों के साथ मन्त्रणा

इमे अट्ठ पुग्गला मन्तितं अत्थं ब्यापादेन्ती'' ति। थेरो आह— ''तेसं को दोसो'' ति? ''रागचरितो, भन्ते नागसेन, रागवसेन मन्तितं अत्थं ब्यापादेति, दोसचरितो दोसवसेन मन्तितं अत्थं ब्यापादेति, मोहचरितो मोहवसेन मन्तितं अत्थं ब्यापादेति, मानचरितो मानवसेन मन्तितं अत्थं ब्यापादेति, लुद्धो लोभवसेन मन्तितं अत्थं ब्यापादेति, अलसो अलसताय मन्तितं अत्थं ब्यापादेति, एकचिन्ती एकचिन्तिताय मन्तितं अत्थं ब्यापादेति, बालो बालताय मन्तितं अत्थं ब्यापादेति। भवतीह—

'रत्तो दुट्ठो च मूळ्हो च, मानी लुद्धो तथालसो।
एकचिन्ती च बालो च, एते अत्थविनासका' '' ति॥

३. नव गुय्हमन्तविधंसका

६. ''भन्ते नागसेन, नविमे पुग्गला मन्तितं गुय्हं विवरन्ति न धारेन्ति। कतमे नव? रागचरितो, दोसचरितो, मोहचरितो, भीरुको, आमिसगरुको, इत्थी, सोण्डो, पण्डको, दारको'' ति। थेरो आह— ''तेसं को दोसो'' ति? ''रागचरितो, भन्ते नागसेन, रागवसेन मन्तितं गुय्हं विवरति न धारेति। दुट्ठो दोसवसेन मन्तितं गुय्हं विवरति न धारेति। मूळ्हो मोहवसेन मन्तितं गुय्हं विवरति न धारेति। भीरुको भयवसेन गुय्हं विवरति न धारेति। आमिसगरुको आमिसहेतु मन्तितं गुय्हं विवरति न धारेति। इत्थी पञ्ञाय इत्तरताय मन्तितं गुय्हं विवरति न धारेति। सोण्डिको सुरालोलताय मन्तितं गुय्हं विवरति न धारेति। पण्डको अनेकंसिकताय मन्तितं गुय्हं विवरति न धारेति। दारको चपलताय मन्तितं गुय्हं विवरति न धारेति। भवतीह—

'रत्तो दुट्ठो च मूळ्हो च, भीरु आमिसचक्खुको।
इत्थी सोण्डो च पण्डको, नवमो भवति दारको॥
नवेते पुग्गला लोके, इत्तरा चलिता चला।
एतेहि मन्तितं गुय्हं, खिप्पं भवति पाकटं' '' ति॥

करने से वे समग्र अर्थ को नष्ट कर देते हैं।" "वे आठ प्रकार के लोग कौन से हैं?" "१. रागयुक्त, २. द्वेषयुक्त, ३. मोहयुक्त, ४. अभिमानयुक्त, ५. लोभयुक्त, ६. आलस्ययुक्त, ७. किसी एक मत पर आग्रह करने वाला और ८. मूर्ख। इन आठ प्रकार के लोगों के साथ मन्त्रणा करने से वे समग्र अर्थ को बिगाड़ देते हैं।" स्थविर बोले—"इन आठ व्यक्तियों में क्या दोष है?" "भन्ते! रागयुक्त व्यक्ति राग के कारण, द्वेषयुक्त व्यक्ति द्वेष के कारण, मोहयुक्त व्यक्ति मोह के कारण, अभिमानयुक्त व्यक्ति अभिमान के कारण, लोभयुक्त व्यक्ति लोभ के कारण, आलस्ययुक्त व्यक्ति आलस्य के कारण, किसी एक मत पर आग्रही व्यक्ति अपने हठ के कारण और मूर्ख लोग अपनी मूर्खता के कारण समग्र अर्थ को बिगाड़ देते हैं। इसलिये कहा गया है—

'रागी द्वेषी मुग्ध नर, लोभी मानप्रवीण।
हठी आलसी बालमति, करैं मन्त्र अति क्षीण।।

३. गुप्त मन्त्रणा न करने योग्य नौ प्रकार के व्यक्ति — ६. "भन्ते! नौ प्रकार के ऐसे व्यक्ति हैं जिनसे कोई गुप्त बात कहने पर वे प्रकट कर देते हैं, पचा नहीं सकते।" "वे नौ प्रकार के व्यक्ति कौन हैं और उनमें क्या दोष होते हैं?" "१. राग–युक्त व्यक्ति अपने राग के कारण, २. द्वेषयुक्त व्यक्ति अपने द्वेष के कारण, ३. मोहयुक्त व्यक्ति अपने मोह के कारण, ४. भयभीत व्यक्ति अपने भय के कारण, ५. उत्कोच लेनेवाला

४. अट्ठ पञ्ञापटिलाभकारणानि

७. "भन्ते नागसेन, अट्ठहि कारणेहि बुद्धि परिणमति परिपाकं गच्छति। कतमेहि अट्ठहि ? १. वयपरिणामेन बुद्धि परिणमति परिपाकं गच्छति। २. यसपरिणामेन बुद्धि परिणमति परिपाकं गच्छति। ३. परिपुच्छाय बुद्धि परिणमति परिपाकं गच्छति। ४. तित्थसंवासेन बुद्धि परिणमति परिपाकं गच्छति। ५. योनिसोमनसिकारेन बुद्धि परिणमति परिपाकं गच्छति। ६. साकच्छाय बुद्धि परिणमति परिपाकं गच्छति। ७. स्नेहूपसेवनेन बुद्धि परिणमति परिपाकं गच्छति। ८. पतिरूपदेसवासेन बुद्धि परिणमति परिपाकं गच्छति। भवतीह—

'वयेन यस-पुच्छाहि, तित्थवासेन योनिसो।
साकच्छा स्नेहसंसेवा, पतिरूपवसेन च॥
एतानि अट्ठ ठानानि, बुद्धिविसदकारणा।
येसं एतानि सम्भोन्ति, तेसं बुद्धि पभिज्जती' " ति॥

८. "भन्ते नागसेन, अयं भूमिभागो अट्ठमन्तदोसविवज्जितो, अहं च लोके परमो मन्तिसहायो, गुय्हमनुरक्खी चाहं। यावाहं जीविस्सामि ताव गुय्हमनुरक्खिस्सामि। अट्ठहि च मे कारणेहि बुद्धि परिणामं गता, दुल्लभो एतरहि मादिसो अन्तेवासी।"

५. पञ्चवीसति आचरियगुणा

९. "सम्मापटिपन्ने अन्तेवासिके, ये आचरियानं पञ्चवीसति आचरियगुणा तेहि गुणेहि आचरियेन सम्मा पटिपज्जितब्बं। कतमे पञ्चवीसति गुणा ? इध, भन्ते नागसेन, आचरियेन अन्तेवासिम्हि सततं समितं आरक्खा उपट्ठपेतब्बा, असेवनसेवना जानितब्बा, पमत्तापमत्तता जानितब्बा, सेय्यावकासो जानितब्बो, गेलञ्ञं जानितब्बं, भोजनस्स लद्धालद्धं जानितब्बं,

---

व्यक्ति घूस के कारण, ६. स्त्रियाँ अपने दुर्बल स्वभाव के कारण, ७. मद्यप मद्य पीने के लोभ में, ८. नपुंसक व्यक्ति अपनी अपूर्णता के कारण और ९. बालक अपनी चपलता के कारण मन्त्रणा की गयी गुप्त बातों को प्रकट कर देते हैं, पचा नहीं सकते।"

४. बुद्धि-परिपक्वता के आठ कारण— ७. "भन्ते! इन आठ कारणों से बुद्धि परिपक्व हो जाती है। किन आठ कारणों से? १. आयु बढने से, २. यश फैलने से, ३. बार-बार प्रश्नों के पूछने से, ४. गुरु के साथ रहने से, ५. स्वयं ही अच्छी तरह विचार (मनन) करने से, ६. अच्छे लोगों के साथ संवाद करने से, ७. मन में प्रेम भाव बढ़ाने से और ८. अनुकूल स्थान में वास करने से मनुष्य की बुद्धि परिपक्व हो जाती है।"

८. "भन्ते! यह भूमिप्रदेश इन आठ मन्त्रदोषों से रहित है, मेरे मन्त्री भी लोक में प्रतिष्ठा-प्राप्त हैं और मैं भी गोपनीय को गुप्त रखने में चतुर हूँ। मैं जीवनपर्यन्त गोपनीय की रक्षा करूँगा। उपर्युक्त आठ कारणों से मेरी बुद्धि परिपक्व हो चुकी है, अतः मेरे जैसा शिष्य इस समय आपको कठिनता से ही मिलेगा।"

५. आचार्य के पचीस गुण—९. "ऐसा योग्य शिष्य मिलने पर, आचार्य को भी इन पचीस गुणों से युक्त होना चाहिये। किन पचीस गुणों से? भन्ते! १. आचार्य को शिष्य के विषय में सदा पूर्ण ध्यान रखना चाहिये, २. उसको कर्तव्य और अकर्तव्य का सदा उपदेश देते रहना चाहिये, ३. किसमें सावधान रहे और किसमें नहीं—इसका उपदेश देते रहना चाहिये, ४. उसके शयन आदि के विषय में ध्यान रखना

विसेसो जानितब्बो, पत्तगतं संविभजितब्बं, अस्सासेतब्बो—'मा भायि, अत्थो ते अभिक्कमती' ति, 'इमिना पुग्गलेन पटिचरती' ति पटिचारो जानितब्बो, गामे पटिचारो जानितब्बो, न तेन हासो वादो कातब्बो, न तेन सह आलापो कातब्बो, न तेन सह सल्लापो कातब्बो। छिद्दं दिस्वा अधिवासेतब्बं, सक्कच्चकारिना भवितब्बं, अखण्डकारिना भवितब्बं, अरहस्सकारिना भवितब्बं, निरवसेसकारिना भवितब्बं, 'जनेमिमं सिप्पेसू' ति जनकचित्तं उपट्ठपेतब्बं, 'कथं अयं न परिहायेय्या' ति वुड्ढिचित्तं उपट्ठपेतब्बं, 'बलवं इमं करोमि सिक्खाबलेना' ति चित्तं उपट्ठपेतब्बं, मेत्तं चित्तं उपट्ठपेतब्बं, आपदासु न विजहितब्बं, करणीये न पमज्जितब्बं, खलिते धम्मेन पग्गहेतब्बो ति। इमे खो, भन्ते, पञ्चवीसति आचरियस्स आचरियगुणा, तेहि गुणेहि मयि सम्मा पटिपज्जस्सु। संसयो मे, भन्ते, उप्पन्नो, अत्थि मेण्डकपञ्हा जिनभासिता, अनागते अद्धाने तत्थ विग्गहो उप्पज्जिस्सति, अनागते च अद्धाने दुल्लभा भविस्सन्ति तुम्हादिसा बुद्धिमन्तो, तेसु मे पञ्हेसु चक्खुं देहि परवादानं निग्गहाया'' ति।

६. दस उपासकगुणा

१०. थेरो 'साधू' ति सम्पटिच्छित्वा दस उपासकस्स उपासकगुणे परिदीपेसि—''दस इमे, महाराज, उपासकस्स उपासकगुणा। कतमे दस? इध, महाराज, उपासको सङ्घेन समानसुखदुक्खो होति, धम्माधिपतेय्यो होति, यथाबलं संविभागरतो होति, जिनसासनपरिहानिं दिस्वा अभिवड्ढिया वायमति सम्मादिट्ठिको होति, अपगतकोतूहलमङ्गलिको जीवितहेतु पि न

चाहिये, ५. रोगी होने पर उसका ध्यान रखना चाहिये, ६. उसने क्या भोजन पाया है और क्या नहीं—इसका भी ध्यान रखना चाहिये, ७. उसके विशेष चरित्र (स्वभाव) को जानना चाहिये, ८. भिक्षा-पात्र में जो मिले उसे बाँट कर खाना चाहिये, ९. उसे सदा उत्साहित करते रहना चाहिये —'घबराओ नहीं इस बात को तत्काल समझ लोगे', १०. 'अमुक आदमी की संगति कर सकते हो'—ऐसा बता देना चाहिये, ११. अमुक गाँव में जा सकते हो.... १२. अमुक विहार में जा सकते हो...., १३. उसके साथ गप्प नहीं मारनी चाहिये, १४. उसके दोषों को क्षमा कर देना चाहिये, १५. पूरे उत्साह के साथ सिखाना चाहिये, १६. बिना किसी अवकाश के पढ़ाना चाहिये, १७-१८. उसे सब कुछ और बिना छिपाये हुए बता देना चाहिये, १९. 'विद्या से इसको पुनः जन्म दे रहा हूँ' —ऐसा विचार कर उसके प्रति पुत्रवत् स्नेह रखना चाहिये, २०. 'वह अपने उद्देश्य से फ़िसलने न पावें' —ऐसा यत्न करना चाहिये, २१. 'इसे सभी शिक्षाओं को देकर बड़ा बना रहा हूँ' — ऐसा ध्यान रखना चाहिये, २२. उसके साथ मैत्री भाव रखना चाहिये, २३. आपत्ति पड़ने पर उसे छोड़ना नहीं चाहिये, २४. सिखाने योग्य बातों को सिखाने में कभी चूकना नहीं चाहिये, २५. धर्म से गिरते (प्रमाद करते) देख उसकी रक्षा करनी चाहिये। भन्ते! अच्छे आचार्यों के ये पचीस गुण हैं, जिनसे वे अपने शिष्य के साथ व्यवहार करते हैं। आप इन पचीस गुणों से मेरे प्रति व्यवहार करें। (द्र०—म०व०, वि०पि०) भन्ते! मुझे कुछ सन्देह उत्पन्न हो रहे हैं। भगवान् बुद्ध के द्वारा दिये गये उपदेशों में जो मेण्डक (द्विपक्षीय) प्रश्न हैं, उनके विषय में आगे चलकर लोगों में मतभेद हो जायेगा। भविष्य में आपके जैसे बुद्धिमान् पण्डित का होना कठिन है। अतः आप इन विवादास्पद प्रश्नों पर प्रकाश डालें, ताकि विरोधियों का निग्रह किया जा सके।''

६. उपासक के दस गुण— १०. स्थविर ने ''बहुत अच्छा'' कह कर उपासक के दस गुणों को बताया। महाराज! उपासक में ये दस गुण होने चाहिये। कौन से दस? महाराज! १. उपासक भिक्षुओं के साथ सहानुभूति रखता है, २. धर्म को सबसे ऊँचा समझता है, ३. यथाशक्ति दान देता है, ४. धर्म को गिरते

अञ्ञं सत्थारं उद्दिसति, कायिकं वाचसिकं चस्स रक्खितं होति, समग्गारामो होति समग्गरतो, अनुसूयको होति न च कुहनवसेन सासने चरति। बुद्धं सरणं गतो होति, धम्मं सरणं गतो होति, सङ्घं सरणं गतो होति। इमे खो, महाराज, दस उपासकस्स उपासकगुणा। ते सब्बे गुणा तयि संविज्जन्ति, तं ते युत्तं वत्तं अनुच्छविकं पतिरूपं यं त्वं जिनसासनपरिहानिं दिस्वा अभिवड्ढिं इच्छसि, करोमि ते ओकासं, पुच्छ मं त्वं यथासुखं'' ति।

मेण्डकपञ्हारम्भणकथा निट्ठिता ।।

(क) महावग्गो

१. इद्धिबलवग्गो

१. कताधिकारसफलपञ्हो

११. अथ खो मिलिन्दो राजा कतावकासो निपच्च गरुनो पादे सिरसि अञ्जलिं कत्वा एतदवोच—''भन्ते नागसेन, इमे तित्थिया एवं भणन्ति—(क) यदि बुद्धो पूजं सादियति न परिनिब्बुतो बुद्धो, संयुत्तो लोकेन अन्तोभविको लोकस्मिं लोकसाधारणो, तस्मा तस्स कतो अधिकारो वञ्झो भवति अफलो। (ख) यदि परिनिब्बुतो, विसंयुत्तो लोकेन निस्सटो सब्बभवेहि, तस्स पूजा नुप्पज्जति, परिनिब्बुतो न किञ्चि सादयति, असादियन्तस्स कतो अधिकारो वञ्झो भवति अफलो' ति। उभतोकोटिको एसो पञ्हो, नेसो विसयो अप्पत्तमानसानं, महन्तानं

देख उसे उठाने का पूरा उद्योग करता है, ५. सत्य-धारणा वाला होता है, ६. कुतूहल के लिये जीवनपर्यन्त दूसरे मतों के जाल में नही फँसता, ७. शरीर और वचन का पूरा संयम करता है, ८. शान्ति चाहने वाला होता है, ९. एकताप्रिय होता है, १०. केवल दिखाने के लिये धर्म का आडम्बर नहीं करता, किन्तु यथार्थ में बुद्ध, धर्म और सङ्घ की शरण में आया होता है। महाराज! ये उपासक के सभी दस गुण आप में विद्यमान हैं। यह आपके लिये बहुत ही उचित और योग्य है कि आप धर्म को इस तरह गिरते देख उसे उठाने का यत्न करना चाहते हैं। मैं आप को पूर्ण अवसर देता हूँ—जो चाहें पूछ सकते हैं!''

मेण्डकप्रश्नारम्भकथा समाप्त ।।

(क) महावग्गो

१. ऋद्धिबलवर्ग

१. बुद्ध-पूजाविषयकप्रश्न—११. राजा मिलिन्द ने आयुष्मान् नागसेन से आज्ञा ले, उनके चरणों में शिर झुका कर प्रणाम किया और बोला—''भन्ते! दूसरे मत वाले कहते हैं कि—(क) 'यदि बुद्ध अपनी पूजा स्वीकार करते हैं तो उन्होंने निर्वाण नहीं पाया। अब भी अवश्य वे इस संसार में रहते होंगे; और उनकी स्थिति इस संसार में कहीं न कहीं होगी ही। यदि ऐसी बात है तो वे केवल एक साधारण जीव हुए और उनके प्रति की गयी पूजायें व्यर्थ हैं।' (ख) और यदि वे परिनिर्वाण पा चुके (संसार से सर्वथा छुटकारा पा चुके) और सारी स्थितियों से मुक्त हो गये हैं; तब भी उनकी पूजा (सम्मान) करना व्यर्थ हैं; क्यों कि जब वे हैं ही नहीं तो पूजा किसकी! इस तरह दोनों स्थितियों में चाहे बुद्ध परिनिर्वाण पा चुके हों या नहीं, उनकी पूजा करने का कोई प्रयोजन नहीं है। यह प्रश्न मन्दबुद्धि वालों की समझ के बाहर है। बुद्धिमान् लोगों का ही यह विषय है। आप कृपा कर इस मिथ्या तर्क को काट दें। इस द्विविधा को दूर करें। आप

येवेसो विसयो, भिन्देतं दिट्ठिजातं, एकंसे ठपय, तवेसो पञ्हो अनुप्पत्तो, अनागतानं जिनपुत्तानं चक्खुं देहि परप्पवादनिग्गहाया'' ति?

थेरो आह—''परिनिब्बुतो, महाराज, भगवा। न च भगवा पूजं सादियति, बोधिमूले येव तथागतस्स सादियना पहीना, किं पन अनुपादिसेसाय निब्बानधातुया परिनिब्बुतस्स! भासितं पेतं, महाराज, थेरेन सारिपुत्तेन धम्मसेनापतिना—

'पूजियन्ता असमसमा, सदेवमानुसेहि ते।
न सादियन्ति सक्कारं, बुद्धानं एस धम्मता' '' ति॥

१२. राजा आह—''भन्ते नागसेन, पुत्तो वा पितुनो वण्णं भासति, पिता वा पुत्तस्स वण्णं भासति। न चेतं कारणं परप्पवादानं निग्गहाय, पसादप्पकासनं नामेतं, इङ्घ मे त्वं तत्थ कारणं सम्मा ब्रूहि सकवादस्स पतिट्ठापनाय दिट्ठिजालविनिवेठनाया'' ति?

थेरो आह—''परिनिब्बुतो, महाराज, भगवा। न च भगवा पूजं सादियति, असादियन्तस्सेव तथागतस्स देवमनुस्सा धातुरतनं वत्थुं करित्वा तथागतस्स ञाणरतनारम्मणेन सम्मापटिपत्तिं सेवन्ता तिस्सो सम्पत्तियो पटिलभन्ति।''

''यथा, महाराज, महतिमहाअग्गिक्खन्धो पज्जलित्वा निब्बायेय्य, अपि नु खो सो, महाराज, अग्गिक्खन्धो सादियति तिणकट्ठुपादानं'' ति? ''जलमानो पि सो, भन्ते, महाअग्गिक्खन्धो तिणकट्ठुपादानं न सादियति, किं पन निब्बुतो उपसन्तो अचेतनो सादियिस्सती'' ति! ''तस्मिं पन, महाराज, अग्गिक्खन्धे उपरते उपसन्ते लोके अग्गि सुञ्ञो

के सामने यह प्रश्न रक्खा गया है। भविष्यत्काल में उत्पन्न होने वाले श्रावकों को इस दुविधा से निकलने के लिये आप मार्ग बता दें; जिससे कि वे दूसरे मत वालों के कुतर्कों का मुँह-तोड़ उत्तर दे सकें।''

स्थविर बोले—''महाराज! भगवान् परिनिर्वाण पा चुके हैं। भगवान् किसी पूजा को स्वीकार या अस्वीकारनहीं करते। बोधिवृक्ष के नीचे ही भगवान् बुद्ध इस प्रश्न से दूर हो गये थे। अब संसार से सर्वथा मोह त्याग कर निर्वाण पा लेन पर तो कहना ही क्या है! ''महाराज! धर्मसेनापति स्थविर शारिपुत्र ने भी कहा है:—

''संसार में अपनी समता न रखने वाले बुद्ध देवता और मनुष्य दोनों से पूजा पा कर भी न उसे स्वीकार करते हैं, न अस्वीकार। बुद्धों की ऐसी ही धर्मता (स्वभाव) है।''

१२. राजा बोला— ''भन्ते! यदि पुत्र पिता की या पिता पुत्र की प्रशंसा करे तो यह कोई युक्ति नहीं कहीं जा सकती। यह तो उनके अपने अपने मन का केवल उत्साह (उमङ्ग) है! अत: अब आप झूठे मतों के भ्रम को दूर करने तथा अपने सच्चे धर्म को प्रकाश में लाने के लिये अन्य युक्तियों से इसे ठीक-ठीक समझायें।''

स्थविर बोले— ''महाराज! भगवान् तो मुक्त हो चुके हैं। वे अब किसी की पूजा को कैसे स्वीकार या अस्वीकार करेंगे! देवता और मनुष्य उन भगवान् के शरीर-भस्म रूपी रत्न की पूजा करते हुये तथा उनके बताये ज्ञान-रत्न के अनुकूल आचरण कर तीनों सम्पत्तियाँ प्राप्त करते हैं।''

१. अग्नि की उपमा— ''महाराज! जैसे कोई तेज अग्नि जलाकर पीछे बुझा दिये जाने पर क्या वह सूखी घास, लकड़ी या और कोई ईंधन स्वीकार करेगी?'' ''नहीं, भन्ते! जलती रहने पर भी वह अचेतन अग्नि घास या लकड़ी स्वयं स्वीकार नहीं करती है! बुझ कर ठंढी हो जाने पर तो कहना ही क्या है!!''

होती'' ति ? ''न हि, भन्ते, कट्ठं अग्गिस्स वत्थु होति उपादानं, ये केचि मनुस्सा अग्गिकामा ते अत्तनो थामबलविरियेन पच्चत्तपुरिसकारेन कट्ठं मन्थयित्वा अग्गं निब्बत्तेत्वा तेन अग्गिना अग्गिकरणीयानि कम्मानि करोन्ती'' ति। ''तेन हि, महाराज, तित्थियानं वचनं मिच्छा भवति—'असादियन्तस्स कतो अधिकारो वञ्झो भवति अफलो' ति।''

''यथा, महाराज, महतिमहाअग्गिक्खन्धो पज्जलि, एवमेव भगवा दससहस्सिया लोकधातुया बुद्धसिरिया पज्जलि।''

''यथा, महाराज, महतिमहाअग्गिक्खन्धो पज्जलित्वा, निब्बुतो; एवमेव भगवा दससहस्सिया रोकधातुया बुद्धसिरिया पज्जलित्वा अनुपादिसेसाय निब्बानधातुया परिनिब्बुतो। यथा, महाराज, निब्बुतो अग्गिक्खन्धो तिणकट्ठुपादानं न सादियति; एवमेव खो लोकहितस्स सादियना पहीना उपसन्ता। यथा, महाराज, मनुस्सा निब्बुते अग्गिक्खन्धे अनुपादाने अत्तनो थामबलविरियेन पच्चत्तपुरिसकारेन कट्ठं मन्थयित्वा अग्गिं निब्बत्तेत्वा तेन अग्गिना अग्गिकरणीयानि कम्मानि करोन्ति; एवमेव खो देवमनुस्सा तथागतस्स परिनिब्बुतस्स असादियन्तस्सेव धातुरतनं वत्थुं करित्वा तथागतस्स ञाणरतनारम्मणेन सम्मापटिपत्तिं सेवन्ता तिस्सो सम्पत्तियो पटिलभन्ति। इमिना पि, महाराज, कारणेन तथागतस्स परिनिब्बुतस्स असादियन्तस्सेव कतो अधिकारो अवञ्झो भवति सफलो।'' (१)

१३. ''अपरं पि, महाराज, उत्तरिं कारणं सुणोहि, येन कारणेन तथागतस्स परिनिब्बुतस्स असादियन्तस्सेव कतो अधिकारो अवञ्झो भवति सफलो। यथा, महाराज, महतिमहावातो वायित्वा उपरमेय्य, अपि नु खो सो, महाराज, उपरतो वातो सादियति पुन निब्बत्तापनं''

''महाराज! उस तेज अग्नि के बुझ जाने पर क्या संसार अग्नि से खाली हो जाता है?'' ''नहीं, भन्ते! अग्नि तो सूखी लकड़ियों में रहती है। कोई आदमी जो अग्नि पैदा करना चाहता है, अरणि को बल से मथ कर उसे पैदा कर सकता है। उस अग्नि से कोई भी काम चला सकता है।'' ''महाराज! तो दूसरे मत वालों का यह तर्क व्यर्थ है कि स्वीकार न करने वालों के प्रति किये गये व्यवहारों का कोई प्रयोजन नहीं निकलता।''

''महाराज! जैसे वह तेज अग्नि जलायी गयी, वैसे ही भगवान् अपने तेज से दस हजार लोकों में प्रदीप्त रहे।

''महाराज! जैसे वह अग्नि बुझ कर ठंढी हो गयी, वैसे ही भगवान् निर्वाण कर संसार से सर्वथा दूर हो गये। जैसे अग्नि बुझ कर ठंढी हो जाने पर कोई घास या लकड़ी नहीं ग्रहण करती, वैसे ही संसार का उपकार करने वाले भगवान् भी पूजा के स्वीकार और अस्वीकार करने के प्रश्न से सर्वथा मुक्त हैं। जैसे अग्नि बुझ जाने के बाद कोई आदमी, जो अग्नि पैदा करना चाहता है, अरणि को अपने बल से मथ कर उसे पैदा कर सकता है, वैसे ही देवता और मनुष्य भगवान् के शरीर-धातु रूपी रत्न की पूजा करते हुए तथा उनके बताये ज्ञानरत्न के अनुकूल आचरण करते हुए तीनों सम्पत्तियाँ प्राप्त कर लेते हैं। इसलिये भी भगवान् द्वारा परिनिर्वाण पा लेने पर भी उनके प्रति की गयी पूजा अचूक और सफल होती है।'' (१)

२. आँधी की उपमा— १३. ''महाराज! एक दूसरा भी कारण सुनें, जिससे कि भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण पा लेने पर भी उनके प्रति की गयी अचूक और सफल होती है— ''महाराज! जैसे बहुत तेज आँधी उठे और फिर धीरे धीरे वह दब जाय। तो क्या दब जाने के बाद वह आँधी फिर भी उठना चाहती

ति? "न हि, भन्ते, उपरतस्स वातस्स आभोगो वा मनसिकारो वा पुन निब्बत्तापनाय। किङ्कारणं? अचेतना सा वायोधातू" ति। "अपि नु तस्स, महाराज, उपरतस्स वातस्स 'वातो' ति समञ्ञा अपगच्छती ति?" "न हि, भन्ते, तालवण्टविधूपनानि वातस्स उप्पत्तिया पच्चया ये केचि मनुस्सा उण्हाभितत्ता परिळाहपरिपीळिता ते तालवण्टेन वा विधूपनेन वा अत्तनो थामबलविरियेन पच्चत्तपुरिसकारेन वा तं निब्बत्तेत्वा तेन वातेन उण्हं निब्बापेन्ति परिळाहं वूपसमेन्ती" ति। "तेन हि, महाराज, तित्थियानं वचनं मिच्छा भवति—असादियन्तस्स कतो अधिकारो वञ्झो भवति अफलो'।" यथा, महाराज, महतिमहावातो वायि, एवमेव भगवा दससहस्सिया लोकधातुया सीतलमधुरसन्तसुखुममेत्तावातेन उपवायि। यथा, महाराज, महतिमहावातो वायित्वा उपरतो; एवमेव भगवा सीतलमधुरसन्तसुखुममेत्तावातेन उपवायित्वा अनुपादिसेसाय निब्बानधातुया परिनिब्बुतो। यथा, महाराज, उपरतो वातो पुन निब्बत्तापनं न सादियति; एवमेव लोकहितस्स सादियना पहीना उपसन्ता। यथा, महाराज, ते मनुस्सा उण्हाभितत्ता परिळाहपरिनिब्बुता; एवमेव देवमनुस्सा तिविधग्गिसन्तापपरिळाहपरिपीळिता। यथा तालवण्टविधूपनानि वातस्स निब्बत्तिया पच्चया होन्ति; एवमेव तथागतस्स धातुं च ञाणरतनं च पच्चयो होति तिस्सन्नं सम्पत्तीनं पटिलाभाय। यथा मनुस्सा उण्हाभितत्ता परिळाहपरिपीळिता तालवण्टेन वा विधूपनेन वा वातं निब्बत्तेत्वा उण्हं निब्बापेन्ति परिळाहं वूपसमेन्ति; एवमेव देवमनुस्सा तथागतस्स परिनिब्बुतस्स असादियन्तस्सेव धातुं च ञाणरतनं च पूजेत्वा कुसलं निब्बत्तेत्वा तेन कुसलेन तिविधग्गसन्तापपरिळाहं निब्बापेन्ति वूपसमेन्ति। इमिना पि, महाराज, कारणेन तथागतस्स परिनिब्बुतस्स असादियन्तस्सेव कतो अधिकारो अवञ्झो भवति सफलो ति। (२)

१४. "अपरं पि, महाराज, उत्तरिं कारणं सुणोहि परवादानं निग्गहाय। यथा, महाराज,

---

है?" "नहीं, भन्ते! दब गयी आँधी को फिर उठने की चाह नहीं हो सकती; क्योंकि आँधी (वायु धातु) अचेतन है, उसे चाह (आभोग) नहीं होती।" "महाराज! और क्या दब जाने पर भी उसे 'आँधी' ही के नाम से पुकारेंगे?" "नहीं, भन्ते! किन्तु पंखा वायु को पैदा करने का प्रत्यय (सहारा) है। कोई आदमी जिसे गरमी लग रही हो, या बुखार आया हो, पंखा झलकर वायु पैदा कर सकता है। उस वायु से गर्मी या बुखार को कुछ दूर कर सकता है"। "महाराज! तब तो दूसरे मत वालों की यह युक्ति व्यर्थ हो जाती है कि स्वीकार न करने वालों के प्रति किये गये व्यवहारों का कोई प्रयोजन नहीं निकलता।" "महाराज! जैसे वह तेज आँधी चली, वैसे ही भगवान् भी दस हजार लोकों पर अत्यन्त ठंढी, मीठी, धीमी और सुखद मैत्री रूपी वायु से बहते रहे! जैसे आँधी उठकर दब गयी, वैसे ही भगवान् निवार्ण प्राप्त कर संसार से सर्वथा मुक्त हो गये। जैसे दब गयी आँधी फिर उठने की चाह नहीं करती; वैसे ही संसार का उपकार करने वाले भगवान् को स्वीकार अस्वीकार करने की चाह नहीं रही। जैसे वे आदमी गर्मी और बुखार से तप रहे थे; वैसे ही देवता और मनुष्य लोग राग, द्वेष और मोह रूपी अग्नि से तप रहे हैं। जैसे पंखा वायु पैदा करने का सहारा है, वैसे भगवान् के शरीर, धातु और ज्ञानरत्न तीनों सम्पत्तियों के लाने के हेतु (प्रत्यय) हैं। जैसे गर्मी और बुखार से तपने वाले लोग पंखा झल कर वायु पैदा करते और ताप को दूर करते हैं; वैसे ही देवता और मनुष्य लोग बुद्ध के शरीरधातु की पूजा कर भगवान् के बताये ज्ञान-रत्न के अनुसार आचरण करते हुए बहुत पुण्य कमाते हैं जिससे अपने राग, द्वेष और मोह रूपी अग्नि के ताप

पुरिसो भेरिं आकोटेत्वा सद्दं निब्बत्तेय्य, यो सो भेरसिद्दो पुरिसेन निब्बत्तितो सो सद्दो अन्तरधायेय्य, अपि नु खो सो, महाराज, सद्दो सादियति पुन निब्बत्तापनं'' ति? ''न हि, भन्ते; अन्तरहितो सो सद्दो, न हि तस्स पुनरुप्पादाय आभोगो वा मनसिकारो वा। सकिं भेरिसद्दे अन्तरहिते भेरिसद्दो समुच्छिन्नो होति। भेरी पन, भन्ते, पच्चयो होति सद्दस्स निब्बत्तिया, अथ पुरिसो पच्चये सति अत्तजेन वायामेन भेरिं आकोटेत्वा सद्दं निब्बत्तेती'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, भगवा सीलसमाधिपञ्ञाविमुत्तिविमुत्ति-ञाणदस्सनपरिभावितं धातुरतनं च धम्मं च विनयं च अनुसिट्ठं च सत्थारं ठपयित्वा सयं अनुपादिसेसाय निब्बानधातुया परिनिब्बुतो। न च परिनिब्बुते भगवति सम्पत्तिलाभो उपच्छिन्नो होति। भवदुक्खपटिपीळिता सत्ता धातुरतनं च धम्मविनयं च पच्चयं करित्वा सम्पत्तिकामा सम्पत्तियो पटिलभन्ति। इमिना पि, महाराज, कारणेन तथागतस्स परिनिब्बुतस्स असादियन्तस्सेव कतो अधिकारो अवञ्झो भवति सफलो ति। (३)

''दिट्ठं चेतं, महाराज, भगवता अनागतमद्धानं कथितं च भणितं च आचिक्खितं च—'सिया खो पनानन्द, तुम्हाकं एवमस्स—अतीतसत्थुकं पावचनं, नत्थि नो सत्था ति। न खो पनेतं, आनन्द, एवं दट्ठब्बं; यो वो, आनन्द, मया धम्मो च विनयो च देसितो पञ्ञत्तो, सो वो ममच्चयेन सत्था' ति। परिनिब्बुतस्स तथागतस्स असादियन्तस्स कतो अधिकारो वञ्झो भवति अफलो ति तं तेसं तित्थियानं वचनं मिच्छा अभूतं वितथं विफलं अलीकं विरुद्धं विपरीतं दुक्खदायकं दुक्खविपाकं अपायगमनीयं ति।

को दूर कर सकते हैं। महाराज! इस कारण भी, भगवान् बुद्ध के द्वारा परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने पर भी उनके प्रति की गयी पूजा अचूक और सफल होती है। (२)

(३) ढोल की उपमा—१४. ''महाराज ! एक और कारण सुनें जिस से बुद्ध द्वारा परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने पर भी उनके प्रति की गयी पूजा सर्वथा अचूक और सफल होती है। महाराज! जैसे कोई आदमी ढोल पीटे, जिसकी ध्वनि निकल कर शान्त हो जाय। तो क्या वह शान्त हो गयी ध्वनि फिर निकलना चाहेगी?'' ''नहीं, भन्ते! वह ध्वनि तो शान्त हो गयी; फिर निकलने की उसे कैसे इच्छा होगी! ढोल की ध्वनि एक बार निकल कर शान्त हो जाने के बाद सदा के लिये उच्छिन्न हो जाती है। किन्तु हाँ, ध्वनि निकालने के लिये ढोल एक सहारा है। जो ऐसी ध्वनि निकालना चाहे तो वह ढोल पीट कर निकाल सकता है।'' ''महाराज! इसी तरह, भगवान् शील, समाधि, प्रज्ञा, विमुक्ति, ज्ञान और दर्शन से परिभावित शरीरधातु, ज्ञानरत्न, धर्म एवं विनय को देकर स्वयं निर्वाण प्राप्त कर संसार से मुक्त हो गये। किन्तु भगवान् के मुक्त हो जाने से तीनों सम्पत्तियों का लाभ नहीं रुक गया। संसार के दुःखों से पीड़ित हो जो प्राणी उन्हें(=तीन सम्पत्तियाँ) पाना चाहे, वह भगवान् की शरीर-धातु की पूजा कर , उनके बताये ज्ञान-रत्न और धर्म-विनय के अनुसार आचरण करते हुए पा सकता है। महाराज! इस कारण से भी, भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने पर भी, उनके प्रति की गयी पूजा अचूक और सफल होती है।'' (३)

''महाराज! भगवान् ने भविष्य में होने वाले इस प्रवाद को पहले ही समझ लिया था। उन्होंने आनन्द को कहा और समझाया भी था—'आनन्द! तुम लोगों में से किसी को ऐसा विचार उत्पन्न हो सकता है—उपदेश देने वाले शास्ता (बुद्ध) चले गये। अब हम लोगों का मार्गोपदेष्टा कोई नहीं है। किन्तु ऐसी, बात नहीं है। आनन्द! इस तरह पछताने का कोई कारण नहीं है। मेरे उपदिष्ट धर्म और भिक्षुओं

१५. "अपरं पि, महाराज, उत्तरिं कारणं सुणोहि, येन कारणेन तथागतस्स परिनिब्बुतस्स असादियन्तस्सेव कतो अधिकारो अवञ्झो भवति सफलो। सादियति नु खो, महाराज, अयं महापठवी 'सब्बबीजानि मयि संविरूहन्तू' " ति? "न हि भन्ते" ति। "किस्स पन तानि, महाराज, बीजानि असादियन्तिया महापठविया संविरूहित्वा दळ्हमूलजयपतिट्ठिता खन्धसारसाखापरिवित्थिण्णा पुप्फफलधरा होन्ती" ति? "असादियन्ती पि, भन्ते, महापठवी तेसं बीजानं वत्थु होति पच्चयं देति विरूहनाय, तानि बीजानि तं वत्थुं निस्साय तेन पच्चयेन समविरूहित्वा दळ्हमूलजटापतिट्ठिता खन्धसारसाखापरिवित्थिण्णा पुप्फफलधरा होन्ती' "ति। "तेन हि, महाराज, तित्थिया सके वादे नट्ठा होन्ति हता विरुद्धा, सचे ते भणन्ति— 'असादियन्तस्स कतो अधिकारो वञ्झो भवति अफलो' " ति।

"यथा, महाराज, महापठवी एवं तथागतो अरहं सम्मासम्बुद्धो। यथा, महाराज, महापठवी न किञ्चि सादियति, एवं तथागतो न किञ्चि सादियति। यथा, महाराज तानि बीजानि पठविं निस्साय विरूहित्वा दळ्हमूलजटापतिट्ठिता खन्धसारसाखापरिवित्थिण्णा पुप्फफलधरा होन्ति, एवं देवमनुस्सा तथागतस्स परिनिब्बुतस्स असादियन्तस्सेव धातुं च ञाणरतनं च निस्साय दळ्हकुसलमूलपतिट्ठिता समाधिक्खन्धधम्मसारसीलसाखापरिवित्थिण्णा विमुत्तिपुप्फसामञ्ञफलधरा होन्ति। इमिना पि, महाराज, कारणेन तथागतस्स परिनिब्बुतस्स असादियन्तस्सेव कतो अधिकारो अवञ्झो भवति सफलो ति। (४)

१६. "अपरं पि, महाराज, उत्तरिं कारणं सुणोहि, येन कारणेन तथागतस्स परिनिब्बुतस्स

के नियम ही मेरे पीछे तुम्हे मार्ग दिखावेंगे।' इसलिये 'भगवान् परिनिर्वाण प्राप्त कर चुके और अब नहीं रहे, उनके प्रति की गई पूजा सफल नहीं हो सकती' विपक्ष वालों का ऐसा कहना झूठा, अनुचित, अयथार्थ और विरुद्ध ठहरता है। उनका यह कथन दुःख देने वाला और नरक को ले जाने वाला है।"

४. महापृथ्वी की उपमा—१५. "महाराज! एक और कारण सुनें जिससे भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने पर भी उनके प्रति की गई पूजा अचूक और सफल होती है—"महाराज! क्या महापृथ्वी को ऐसी इच्छा होती है कि मुझ में सभी प्रकार के बीज बोये जायँ?" "नहीं, भन्ते!" "पृथ्वी की विना आज्ञा पाये भी कि 'मजबूत जम कर गड़े रहो, वृक्ष होकर बड़े स्कन्ध और लम्बी लम्बी फैली शाखाओं वाले हो जाओ, फलो और फूलो'—उसमें क्यों बीज रोप दिये जाते हैं?" "भन्ते! यद्यपि पृथ्वी कोई ऐसी आज्ञा नहीं देती तो भी उन बीजों के जमने और बढ़ने का वह आधार होती है। उसी में बोये–जाकर वे बीज जमते हैं और बड़े बड़े स्कन्ध तथा फल और फूलों से लदी शाखाओं वाले वृक्ष तैयार हो जाते हैं"। "महाराज! तब तो दूसरे मत वालों का यह तर्क उन्हीं की बातों से निरर्थक और झूठा ठहरा कि स्वीकार न करने वालों के प्रति किये गये व्यवहारों का कोई प्रयोजन नहीं निकलता।"

"महाराज! भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध को महापृथ्वी की तरह समझना चाहिये; क्योंकि वे भी इसी पृथ्वी की तरह कुछ स्वीकार या अस्वीकार नहीं करते। पृथ्वी के आधार पर जैसे बीज जमकर बड़े–बड़े वृक्ष हो जाते हैं, वैसे ही देवता और मनुष्य लोग भगवान् की शरीर–धातु की पूजा....के आधार पर पुण्यरूपी जड़ों को ठीक से पकड़, समाधि–स्कन्ध, धर्म–सार, और शील–शाखाओं वाले बड़े–बड़े वृक्ष हो जाते हैं। उन वृक्षों में विमुक्तिरूपी फूल और श्रामण्यरूपीफल लगते हैं। महाराज! इसलिये बुद्ध द्वारा परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने पर भी उनकी पूजा अचूक और सफल होती है।" (४)

असादियन्तस्सेव कतो अधिकारो अवञ्झो भवति सफलो। सादियन्ति नु खो, महाराज, इमे ओट्ठा, गोणा, गद्रभा, अजा, पसू, मनुस्सा अन्तोकुच्छिस्मिं किमिकुलानं सम्भवं'' ति ? ''न हि, भन्ते'' ति। ''किस्स पन ते, महाराज, किमयो तेसं असादियन्तानं अन्तोकुच्छिस्मिं सम्भवित्वा बहुपुत्तनत्ता वेपुल्लत्तं पापुणन्ती'' ति ? ''पापस्स, भन्ते, कम्मस्स बलवताय असादियन्तानं येव तेसं सत्तानं अन्तोकुच्छिस्मिं किमयो सम्भवित्वा बहुपुत्तनत्ता वेपुल्लत्तं पापुणन्ती ति; एवमेव खो, महाराज, तथागतस्स परिनिब्बुतस्स असादियन्तस्सेव धातुस्स च ञाणारम्मणस्स च बलवताय तथागते कतो अधिकारो अवञ्झो भवति सफलो'' ति। (५)

१७. ''अपरं पि, महाराज, उत्तरिं कारणं सुणोहि, येन कारणेन तथागतस्स परिनिब्बुतस्स असादियन्तस्सेव कतो अधिकारो अवञ्झो भवति सफलो। सादियन्ति नु खो, महाराज, इमे मनुस्सा—इमे अट्ठनवुतिरोगा काये निब्बत्तन्तू''? ति। ''न हि, भन्ते'' ति। ''किस्स पन ते, महाराज, रोगा असादियन्तानं काये निपतन्ती'' ति ? ''पुब्बे कतेन, भन्ते, दुच्चरितेना'' ति। ''यदि, महाराज, पुब्बे कतं अकुसलं इध वेदनीयं होति, तेन हि महाराज, पुब्बे कतं पि इध कतं पि कुसलाकुसलं कम्मं अवञ्झं भवति सफलं ति। इमिना पि, महाराज, कारणेन तथागतस्स परिनिब्बुतस्स, असादियन्तस्सेव कतो अधिकारो अवञ्झो भवति सफलो'' ति। (६)

१८. ''सुतपुब्बं तया, महाराज, नन्दको नाम यक्खो थेरं सारिपुत्तं आसादयित्वा पठविं पविट्ठो'' ति। ''आम, भन्ते, सूयति, लोके पाकटो एसो'' ति। ''अपि नु खो, महाराज, थेरो सारिपुत्तो सादियि नन्दकस्स यक्खस्स महापठवीगिलनं'' ति। ''उब्बत्तियन्ते पि, भन्ते, सदेवके लोके, पतमाने पि छमायं चन्दिमसुरिये, विकिरन्ते पि सिनेरुपब्बतराजे

---

(५) पेट के कीड़ों की उपमा—१६. ''महाराज! एक और भी कारण सुनें ....क्या ऊँट, बैल, गदहे, बकरे, दूसरे पशु या मनुष्य अपने पेट में कीड़ों को पैदा होने की अनुमति देते हैं?'' ''नहीं, भन्ते!'' ''महाराज! तो यह कैसी बात है कि वे कीड़े बिना उनकी अनुमति के उनके पेट में उत्पन्न हो जाते और उनकी सन्तति–परम्परा इतनी बढ़ जाती है?'' ''भन्ते! उनके बुरे कर्मों के कारण।'' ''महाराज! इसी तरह, भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण पा लेने और संसार से सर्वथा छुटकारा पा जाने पर भी उनकी पूजा अचूक और सफल होती है।'' (५)

(६) रोग की उपमा—१७. ''महाराज! एक और कारण सुनें .... महाराज! क्या मनुष्य लोग ऐसी अनुमति देते हैं कि उनके शरीर में अट्ठानवें (९८) प्रकार के रोग प्रविष्ट हों?'' ''नहीं, भन्ते!'' ''तब उनके शरीर में रोग क्यों आते हैं?'' ''पूर्वजन्म के पापकर्मों से।'' ''महाराज! यदि पूर्व–जन्म में किये गये पापों के फल इस जन्म में मिलते हैं, तो पूर्व जन्म या इसी जन्म में किये गये पाप और पुण्य अवश्य अचूक और फल देने वाले होंगे। इसलिये भगवान् के प्रति की गयी पूजा अवश्य अचूक और सफल होगी, भले ही वे परिनिर्वाण पाकर संसार से सर्वथा मुक्त हो गये हैं। (६)

(७) नन्दक यक्ष की उपमा—१८. ''महाराज! एक और कारण सुनें ....'' ''महाराज! क्या आप ने सुना है कि नन्दक नाम का एक यक्ष स्थविर सारिपुत्र को छूते ही जमीन में धँस गया?'' ''हाँ, भन्ते! लोग ऐसा कहते हैं।'' ''महाराज! क्या स्थविर सारिपुत्र ने उसे ऐसा निर्देश किया था?'' ''भन्ते! देवताओं के साथ इस सारे लोक के उलट जाने, सूर्य और चन्द्र के पृथ्वी पर टूट पड़ने तथा पर्वतराज सुमेरु के चूर–

थेरो सारिपुत्तो न परस्स दुक्खं सादियेय्य, तं किस्स हेतु''? ''येन हेतुना थेरो सारिपुत्तो कुज्झेय्य वा दुस्सेय्य वा सो हेतु थेरस्स सारिपुत्तस्स समूहतो समुच्छिन्नो, हेतुनो समुग्घातितत्ता, भन्ते, थेरो सारिपुत्तो जीवितहारके पि कोपं न करेय्या'' ति। ''यदि, महाराज, थेरो सारिपुत्तो नन्दकस्स यक्खस्स पठवीगिलनं न सादियति, किस्स पन नन्दको यक्खो पठविं पविट्ठो'' ति?'' अकुसलस्स, भन्ते, कम्मस्स बलवताया'' ति।''यदि, महाराज, अकुसलस्स कम्मस्स बलवताय नन्दको यक्खो पठविं पविट्ठो, असादियन्तस्सा पि कतो अपराधो अवञ्झो भवति सफलो ति। तेन हिं, महाराज, अकुसलस्सापि कम्मस्स बलवताय असादियन्तस्स कतो अधिकारो अवञ्झो भवति सफलो ति। इमिना पि, महाराज, कारणेन तथागतस्स परिनिब्बुतस्स असादियन्तस्सेव कतो अधिकारो अवञ्झो भवति सफलो ति। (७)

१९. ''कति नु खो ते, महाराज, मनुस्सा ते एतरहि महापठविं पविट्ठा, अत्थि ते तत्थ सवणं'' ति? ''आम, भन्ते, सूयती'' ति। ''इङ्घ त्वं, महाराज, सावेही'' ति? ''चिञ्चा माणविका, भन्ते, सुप्पबुद्धो च सक्को, देवदत्तो च थेरो, नन्दको च यक्खो, नन्दो च माणवको ति। सुतमेतं, भन्ते, इमे पञ्चजना महापठविं पविट्ठा'' ति। ''कस्मिं ते, महाराज, अपरद्धा'' ति? ''भगवति च, भन्ते, सावकेसु चा'' ति। ''अपि नु खो, महाराज, भगवा वा सावका वा सादियिंसु इमेसं महापठविपविसनं'' ति। ''न हि, भन्ते'' ति। ''तेन हिं, महाराज, तथागतस्स परिनिब्बुतस्स असादियन्तस्सेव कतो अधिकारो अवञ्झो भवति सफलो'' ति। (८)

''सुविञ्ञापितो, भन्ते नागसेन, पञ्हो गम्भीरो उत्तानीकतो, गुय्हं विदंसितं, गण्ठि

चूर हो जाने पर भी स्थविर सारिपुत्र किसी को दुःख देने की इच्छा मन में नहीं ला सकते थे।" "क्यों नहीं?" "भन्ते! क्योंकि क्रोध उत्पन्न करने के जितने कारण हैं, वे सभी उनमें शान्त और निर्मूल हो गये थे। इसीलिये अपने वध करने की इच्छा से आये हुए के प्रति भी उन्होंने क्रोध नहीं किया।" "महाराज! तो विना सारिपुत्र के आदेश करने पर भी नन्दक नाम का यक्ष जमीन में क्यों धँस गया?" "अपने पाप के कारण।" "महाराज! देखा आपने, शाप न देने पर भी सारिपुत्र के प्रति किये गये पाप का फल उसे भोगना पड़ा! यदि पाप–कर्मों की जब ऐसी बात है तो पुण्य कर्मों की कैसी होगी! महाराज! इसी कारण भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण पा लेने तथा संसार से सर्वथा मुक्त हो जाने पर भी उनके प्रति की गयी पूजा अचूक और सफल होती है। (७)

१९. "महाराज! और कितने लोग हैं जो इसी तरह जमीन में धँस गये हैं—आपने उनके विषय में कुछ सुना है?" "हाँ, भन्ते! सुना है।" "अच्छा तो उन्हें बतावें।" "भन्ते! १. चिञ्चा नाम की एक लड़की, २. सुप्पबुद्ध नाम का शाक्य, ३. स्थविर देवदत्त, ४. नन्दक नाम का यक्ष और ५. नन्द नाम का ब्राह्मण—ये पाँच इसी तरह जीते जी जमीन में धँस गये थे।" "महाराज! किसके प्रति उन लोगों ने अपराध किया था?" "भन्ते! भगवान् और उनके भिक्षुओं के प्रति।" "क्या भगवान् और उन भिक्षुओं ने उन्हें जमीन में धँस जाने का आदेश दिया था?" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! इससे सिद्ध होता है कि भगवान् के परिनिर्वाण पाकर संसार से सर्वथा दूर हो जाने पर और उनके न स्वीकार करने पर भी उनके प्रति किये गये व्यवहार अचूक और अवश्य ही फल देने वाले होते हैं।" (८)

"भन्ते नागसेन! आपने इस जटिल प्रश्न को भलीभाँति सुलझा दिया। सर्वथा स्पष्ट कर दिया। आपने रहस्य को खोल दिया, गाँठ को ढीला कर दिया, जंगल में एक खुली जगह निकाल दी, विपक्षी

भिन्ना, गहनं अगहनं कतं, नट्ठा परवादा, भग्गा कुदिट्ठी, निप्पभा जाता कुतित्थिया, त्वं गणिवरपवरमासज्जा'' ति।

२. सब्बञ्ञुभावपञ्हो

२०. ''भन्ते नागसेन, बुद्धो सब्बञ्ञू'' ति ? ''आम, महाराज, भगवा सब्बञ्ञू। न च भगवतो सततं समितं ञाणदस्सनं पच्चुपट्ठितं, आवज्जनपटिबद्धं भगवतो सब्बञ्ञुतञाणं, आवज्जित्वा यदिच्छितं जानाती'' ति। ''तेन हि, भन्ते नागसेन, बुद्धो असब्बञ्ञू, यदि तस्स परियेसनाय सब्बञ्ञुतञाणं होती'' ति ? ''वाहसतं खो, महाराज, वीहीनं, अड्ढचूळं च वाहा वीहिसत्तम्मणानि द्वे च तुम्बा एकच्छराक्खणे पवत्तचित्तस्स एत्तका वीही लक्खं ठपियमाने परिक्खयं परिदानं गच्छेय्युं।

२१. ''तत्रिमे सत्तविधा चित्ता पवत्तन्ति। ये ते, महाराज, सरागा सदोसा समोहा सकिलेसा अभावितकाया अभावितसीला अभावितचित्ता अभावितपञ्ञा तेसं तं चित्तं गरुकं उप्पज्जति दन्धं पवत्तति, किङ्कारणं? अभावितत्ता चित्तस्स। यथा, महाराज, वंसनालस्स विततस्स विसालस्स वित्थिण्णस्स संसिब्बितविसिब्बितस्स साखाजटाजटितस्स आकड्ढियन्तस्स गरुकं होति आगमनं दन्धं, किङ्कारणा ? संसिब्बितविसिब्बितत्ता साखानं; एवमेव खो, महाराज, ये ते सरागा सदोसा समोहा सकिलेसा अभावितकाया अभावितसीला अभावितचित्ता अभावितपञ्ञा तेसं तं चित्तं गरुकं उप्पज्जति दन्धं पवत्तति, किङ्कारणं ? संसिब्बितविसिब्बितत्ता किलेसेहि। इदं *पठमं चित्तं*।

''तत्रिदं दुतियं चित्तं विभत्तिमापज्जति— ये ते, महाराज, सोतापन्ना पिहितापाया

वादियों को मुँहतोड़ उत्तर भी दे दिया! मिथ्या विश्वास झूठा दिखायी देने लगा, दूसरे मत वालों का सारा तेज जाता रहा, वे निष्प्रभ हो गये, आप तो गणाचार्यों में सर्वश्रेष्ठ हैं।''

२. सर्वज्ञभावप्रश्न— २०. ''भन्ते नागसेन! क्या बुद्ध सर्वज्ञ थे?'' ''हाँ महाराज! बुद्ध सर्वज्ञ थे। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वे प्रतिक्षण संसार की सभी बातों की जानकारी सर्वथा बनाये रखते थे। उनकी सर्वज्ञता इसी में थी कि ध्यान करके वे किसी भी गतिविधि को जान सकते थे।'' ''भन्ते! यदि भगवान् ध्यान में कर के ही किसी गतिविधि को जान सकते थे, तो सर्वज्ञ नहीं हुए?'' ''महाराज! क्या आप सौ गाड़ी, आधा चूल, सात अर्म्मण और दो तुम्बे धानों की क्या संख्या है? उसे चुटकी बजाने भर समय में ध्यान कर के बता सकते हैं कि कितने लाख धान हैं?''

(१) संक्लेश चित्त—२१. ''महाराज ! सात प्रकार के चित्त होते हैं, जो राग–द्वेष–मोह–युक्त, क्लेशों से युक्त हैं तथा जिन्होंने शरीर, शील, चित्त और प्रज्ञा की भावना नहीं की है—उनका चित्त भारी, मोटा और मन्द होता है। सो क्यों ? चित्त के अभावित होने से! महाराज! बहुत फैल कर पसरी घनी शाखाओं के एक दूसरे में गुँथ कर फँसे हुये बाँस की झाड़ी में से कुछ काट कर निकालना बड़ा कठिन और धीरे–धीरे होता है। सो क्यों? शाखाओं के एक दूसरे में गुँथकर बँध जाने से! महाराज! इसी तरह, जो रागयुक्त ....पुरुष हैं उनका चित्त भारी, मोटा और मन्द होता है। सो क्यों? क्लेशों में गुँथकर फँस जाने से। यही उन सात प्रकार के चित्तों में पहला चित्त है।

(२) स्रोतआपन्न चित्त—''दूसरे प्रकार का चित्त इससे पृथक् ही है। महाराज! जो स्रोतापन्न हो गये हैं, जो गलत मार्ग की ओर नहीं जा सकते, जो सच्चे सिद्धान्त को जान चुके हैं तथा बुद्ध के धर्म को जानते

दिट्ठिप्पत्ता विञ्ञातसत्थुसासना, तेसं तं चित्तं तीसु ठानेसु लहुकं उप्पज्जति, लहुकं पवत्तति। उपरिभूमिसु गरुकं उप्पज्जति, दन्धं पवत्तति। किङ्कारणा? तीसु ठानेसु चित्तस्स परिसुद्धत्ता, उपरि किलेसानं अप्पहीनत्ता। यथा, महाराज, वंसनालस्स तिपब्बगण्ठिपरिसुद्धस्स उपरि साखाजटाजटितस्स आकड्ढियन्तस्स याव तिपब्बं ताव लहुकं एति, ततो उपरि थद्धं। किङ्कारणं? हेट्ठा परिसुद्धता, उपरि साखाजटाजटितत्ता; एवमेव खो, महाराज, ये ते सोतापन्ना पिहितापाया दिट्ठिप्पत्ता विञ्ञातसत्थुसासना तेसं तं चित्तं तीसु ठानेसु लहुकं उप्पज्जति, लहुकं पवत्तति, उपरिभूमिसु गरुकं उप्पज्जति दन्धं पवत्तति। किङ्कारणा? तीसु ठानेसु चित्तस्स परिसुद्धत्ता, उपरि किलेसानं अप्पहीनत्ता। इदं *दुतियं चित्तं*।

''तत्रिदं ततियं चित्तं विभत्तिमापज्जति— ये ते, महाराज, सकदागामिनो, येसं रागदोसमोहा तनुभूता, तेसं तं चित्तं पञ्चसु ठानेसु लहुकं उप्पज्जति लहुकं पवत्तति, उपरिभूमिसु गरुकं उप्पज्जति दन्धं पवत्तति। किङ्कारणं? पञ्चसु ठानेसु चित्तस्स परिसुद्धत्ता उपरि किलेसानं अप्पहीनत्ता। यथा, महाराज, वंसनाळस्स पञ्चपब्बगण्ठिपरिसुद्धस्स उपरि साखाजटाजटितस्स आकड्ढियन्तस्स याव पञ्चपब्बं ताव लहुकं एति, ततो उपरिथद्धं, किङ्कारणं? हेट्ठा परिसुद्धत्ता उपरिसाखाजटाजटितत्ता; एवमेव खो, महाराज, ये ते सकदागामिनो, येसं रागदोसमोहा तनुभूता, तेसं तं चित्तं पञ्चसु ठानेसु लहुकं उप्पज्जति लहुकं पवत्तति। उपरिभूमिसु गरुकं उप्पज्जति दन्धं पवत्तति। किङ्कारणं? पञ्चसु ठानेसु चित्तस्स परिसुद्धत्ता, उपरि किलेसानं अप्पहीनत्ता। इदं *ततियं चित्तं*।

''तत्रिदं चतुत्थं चित्तं विभत्तिमापज्जति— ये ते, महाराज, अनागामिनो, येसं

हैं, उनका चित्त तीन भ्रममूलक विषयों (संयाजनों) में हलका और तेज होता है। तो भी, ऊपर की भूमि में (आर्यमार्ग में) भारी मोटा और मंद होता है। सो क्यों? उन तीन विषयों में चित्त के शुद्ध हो जाने तथा बाकी क्लेशों के बने रहने से। महाराज! जैसे, किसी बाँस की झाड़ी को तीन पोर तक साफ कर दिया गया हो किन्तु ऊपर शाखाओं को आपस में गुँथा हुआ फँसा छोड़ दिया गया हो, तो उसमें से कुछ काट कर तीन पोर तो खींच लेना आसान होगा, किन्तु ऊपर फिर फँस कर रुक जायगा। यह क्यों? क्योंकि नीचे काटकर साफ कर दिया गया और ऊपर घना ही छोड़ दिया गया है। महाराज! इसी तरह जो स्रोतआपन्न हो चुके हैं....उनका चित्त तीन भ्रममूलक विषयों में हलका और तेज होता है, तो भी ऊपर की बातों में भारी, मोटा और मन्द होता है, क्योंकि वे तीन भ्रम तो दूर हो जाते हैं तथा बाकी क्लेश बने रहते हैं। यह दूसरे प्रकार का चित्त है। (२)

(३) सकृदागामी का चित्त— "तीसरे प्रकार का चित्त इन दोनों से भी पृथक् है। महाराज! जो सकृदागामी हो गये हैं और जिनमें राग, द्वेष और मोह नाममात्र के रह गये हैं, उनका चित्त पाँच स्थानों में हलका और तेज होता है, तो भी दूसरी ऊपर की बातों में भारी और मन्द ही रहता है, क्योंकि यद्यपि उन पाँच और स्थानों में चित्त परिशुद्ध हो जाता है; किन्तु ऊपर के क्लेश बने रहते हैं। महाराज! जैसे किसी बाँस की झाड़ी को पाँच पोर तक साफ करके ऊपर की शाखाओं को आपस में गुँथा हुआ छोड़ देने से उसमें से कुछ काट कर पाँच पोर तक तो आसानी से खींचा जा सकता है, किन्तु ऊपर जा कर फँस जाता है; क्योंकि नीचे साफ करने पर भी ऊपर घना ही छोड़ दिया गया है।" "महाराज! इसी तरह, जो सकृदागामी हो गये हैं....उनका चित्त....पाँच स्थानों में हलका और तेज होता है, तो भी दूसरी ऊपर की बातों में भारी और मन्द होता है....। यह तीसरे प्रकार का चित्त है।

पञ्चोरम्भागियानि संयोजनानि पहीनानि, तेसं तं चित्तं दससु ठानेसु लहुकं उप्पज्जति लहुकं पवत्तति। उपरिभूमिसु गरुकं उप्पज्जति दन्धं पवत्तति। किङ्कारणं? दससु ठानेसु चित्तस्स परिसुद्धत्ता, उपरि किलेसानं अप्पहीनत्ता। यथा, महाराज, वंसनाळस्स दसपब्बगण्ठिपरिसुद्धस्स उपरिसाखाजटाजटितस्स आकड्डियन्तस्स याव दसपब्बं ताव लहुकं एति, ततो उपरि थद्धं, किङ्कारणं? हेट्ठापरिसुद्धत्ता उपरिसाखाजटाजटितत्ता; एवमेव खो, महाराज, ये ते अनागामिनो, येसं पञ्चोरम्भागियानि संयोजनानि पहीनानि, तेसं तं चित्तं दससु ठानेसु लहुकं उप्पज्जति लहुकं पवत्तति, उपरिभूमिसु गरुकं उप्पज्जति; दन्धं पवत्तति। किङ्कारणं? दससु ठानेसु चित्तस्स परिसुद्धत्ता, उपरि किलेसानं अप्पहीनत्ता। इदं *चतुत्थं चित्तं।*

''तत्रिदं पञ्चमं चित्तं विभत्तिमापज्जति— ये ते, महाराज, अरहन्तो खीणासवा धोतमला वन्तकिलेसा वुसितवन्तो कतकरणीया ओहितभारा अनुप्पत्तसदत्था परिक्खीणभवसंयोजना पत्तपटिसम्भिदा सावकभूमिसु परिसुद्धा, तेसं तं चित्तं सावकविसये लहुकं उप्पज्जति लहुकं पवत्तति। पच्चेकबुद्धभूमिसु गरुकं उप्पज्जति दन्धं पवत्तति। किङ्कारणं? परिसुद्धत्ता सावकविसये, अपरिसुद्धत्ता पच्चेकबुद्धविसये। यथा, महाराज, वंसनाळस्स सब्बपब्बगण्ठिपरिसुद्धस्स आकड्डियन्तस्स लहुकं होति आगमनं अदन्धं, किङ्कारणं? सब्ब पब्बगण्ठिपरिसुद्धत्ता, अगहनत्ता वंसस्स; एवमेव खो, महाराज, ये ते अरहन्तो खीणासवा धोतमला वन्तकिलेसा वुसितवन्तो कतकरणीया ओहितभारा अनुप्पत्तसदत्था परिक्खीण-भवसंयोजना पत्तपटिसम्भिदा सावकभूमिसु परिसुद्धा, तेसं तं चित्तं सावकविसये लहुकं उप्पज्जति लहुकं पवत्तति, पच्चेकबुद्धभूमिसु गरुकं उप्पज्जति दन्धं पवत्तति। किङ्कारणं? परिसुद्धत्ता सावकविसये, अपरिसुद्धत्ता च पच्चेकबुद्धविसये। इदं *पञ्चमं चित्तं।*

---

(४) अनागामी का चित्त—''चौथे प्रकार का चित्त इन तीनों से पृथक् ही है। महाराज! जो अनागामी हो गये हैं और जिनके नीचे के पाँच बन्धन कट गये हैं, उनका चित्त दस स्थानों में हलका और तेज होता है, किन्तु उससे ऊपर की भूमियों में भारी और मन्द होता है। सो क्यों? उन दस स्थानों में चित्त के परिशुद्ध होने तथा बाकी क्लेशों (चित्त मलों) के बने रहने से। महाराज! जैसे किसी बाँस की झाड़ी को दस पोर तक साफ कर....। महाराज! इसी तरह, जो अनागामी हो गये हैं.... उनका चित्त दस स्थानों में हलका और तेज होता है, किन्तु ऊपर की भूमियों में भारी और मंद होता है। सो क्यों? दस स्थानों में चित्त के परिशुद्ध होने किन्तु अवशिष्ट क्लेशों के बने रहने से। यही चौथे प्रकार का चित्त है।

(५) अर्हत् का चित्त—''पाँचवें प्रकार का चित्त इन चारों से पृथक् ही है। महाराज! जो अर्हत् हो गये, जिनके आस्रव क्षीण हो गये, जिनके सभी मैल धुल गये, जिनके सभी क्लेश हट गये, जिनके ब्रह्मचर्य-वास (धर्मसाधना) पूरे हो गये हैं, जिनको जो कुछ करना था सब कुछ कर चुके, जिनके सभी भार उतर गये, जो सच्चे ज्ञान तक पहुँच गये, जिनके भव-बन्धन सर्वथा क्षीण हो गये तथा जिनके चित्त पूर्णतः शुद्ध हो गये हैं; उनका चित्त किसी भी श्रावक के करने तथा जानने वाली सभी बातों में हलका और तेज होता है, किन्तु प्रत्येकबुद्ध-भूमि में भारी और मन्द होता है; क्योंकि श्रावक-भूमि में उनका चित्त शुद्ध हो गया है तो भी प्रत्येकबुद्धभूमि में गमन हेतु शुद्ध नहीं हुआ है। महाराज! जैसे किसी बाँस की झाड़ी को सर्वथा साफ कर देने से उसमें से जो कुछ भी काट कर आसानी से खींचा जा सकता है, वैसे ही। वह क्यों? क्योंकि वह बाँस की झाड़ी अच्छी तरह साफ कर दी गयी है। महाराज! इसी तरह, जो अर्हत् हो

"तत्रिदं छट्ठं चित्तं विभत्तिमागच्छति—ये ते, महाराज, पच्चेकबुद्धा सयम्भुनो अनाचरियका, एकचारिनो खग्गविसाणकप्पा, सकविषये परिसुद्धविमलचित्ता, तेसं तं चित्तं सकविसये लहुकं उप्पज्जति लहुकं पवत्तति, सब्बञ्ञुबुद्धभूमीसु गरुकं उप्पज्जति दन्धं पवत्तति। किङ्कारणं? परिसुद्धत्ता सकविसये, महन्तत्ता सब्बञ्ञुबुद्धविसयस्स। यथा, महाराज, पुरिसो सकविसयं परित्तं नदिं रत्तिं पि दिवा पि यदिच्छकं अच्छम्भितो ओतरेय्य, अथ परतो महासमुद्दं गम्भीरं वित्थतं अगाधमपारं दिस्वा भायेय्य, दन्धायेय्य न विसहेय्य ओतरितुं; किङ्कारणं? तिण्णत्ता सकविसयस्स, महन्तत्ता च महासमुद्दस्स; एवमेव खो, महाराज, ये ते पच्चेकबुद्धा, सयम्भुनो, अनाचरियका, एकचारिनो खग्गविसाणकप्पा, सकविषये परिसुद्धत्ता तेसं तं चित्तं सकविसये लहुकं उप्पज्जति लहुकं पवत्तति, सब्बञ्ञुबुद्धभूमीसु गरुकं उप्पज्जति दन्धं पवत्तति, किङ्कारणं? परिसुद्धत्ता सकविसयस्स, महन्तत्ता सब्बञ्ञुबुद्धविसयस्स। इदं *छट्ठं चित्तं*॥

"तत्रिदं सत्तमं चित्तं विभत्तिमापज्जति— ये ते, महाराज, सम्मासम्बुद्धा सब्बञ्ञुनो दसबलधरा चतुवेसारज्जविसारदा, अट्ठारसहि बुद्धधम्मेहि समन्नागता, अनन्तजिना अनावरण–

गये हैं.... उनका चित्त किसी भी श्रावक से करने तथा जानने वाली उचित भूमि में हलका और तेज होता है, किन्तु ऊपर प्रत्येकबुद्ध की भूमियों में भारी और मन्द होता है....। यही पाँचवें प्रकार का चित्त है। (५)

(६) प्रत्येकबुद्ध का चित्त— "छठे प्रकार का चित्त इन पाँचों से भी पृथक् है। महाराज! जो प्रत्येकबुद्ध हो गये हैं, जो अपने स्वामी स्वयं हैं, जिनको किसी आचार्य की आवश्यकता नहीं रही, जो गैंड़े की सींग की तरह अकेले रहने वाले हैं और जो अपने जीवन में परिशुद्ध तथा निर्मल हो गये हैं; उनका चित्त अपने विषय में हलका और तेज होता है, किन्तु सर्वज्ञ बुद्ध की भूमियों में भारी और मन्द होता है, क्योंकि यद्यपि वे अपने विषय में सर्वथा परिशुद्ध और निर्मल हो गये हैं; तो भी सर्वज्ञ बुद्ध की भूमियाँ विशाल हैं। महाराज! जैसे कोई आदमी अपने ही स्थान में बहने वाली किसी छोटी नदी को दिन या रात जब चाहे तभी विना किसी डर के पार कर जाय; किन्तु बहुत गम्भीर, विशाल, अथाह और अपार महासमुद् को देखकर डर जाय और उसकी पार करने की सारी शक्ति चली जाय, वैसे ही। सो क्यों? क्योंकि वह अपनी नदी से परिचित है; और महासमुद्र बहुत विशाल है....। यह छठे प्रकार का चित्त है।

(७) बुद्धचित्त— "सातवाँ चित्त इन छहों से भी पृथक् है। महाराज! जो सम्यक्सम्बुद्ध हुए हैं वे सर्वज्ञ, दश बलों[1]

---

१. सम्यक्सम्बुद्ध के दश बल-

१. बुद्ध स्थान को स्थान के रूप में और अस्थान को अस्थान के रूप में यथार्थत: जानते हैं।

२. बुद्ध अतीत, वर्तमान और भविष्य के कर्मविपाक को स्थान और हेतुपूर्वक ठीक से जानते हैं।

३. बुद्ध सर्वत्रगामिनी प्रतिपद् (=मार्ग, ज्ञान) को ठीक से जानते हैं।

४. बुद्ध अनेक धातु (= ब्रह्माण्ड) नाना धातु वाले लोकों को ठीक से जानते हैं।

५. बुद्ध नाना अधिमुक्ति (स्वभाव) वाले सत्त्वों (= प्राणियों) को ठीक से जानते हैं।

६. बुद्ध दूसरे सत्त्वों की इन्द्रियों के परत्व-अपरत्व (= प्रबलता, दुर्बलता) को ठीक से जानते हैं।

७. बुद्ध ध्यान, विमोक्ष, समाधि, समापत्ति के संक्लेश (= मल), व्यवदान (= निर्मलकरण) और उत्थान को ठीक से जानते हैं।

८. बुद्ध अपने पूर्व जन्मों की बात को स्मरण कर लेते हैं।

९. बुद्ध अमानुष विशुद्ध दिव्यचक्षु से प्राणियों को उत्पन्न होते मरते....स्वर्ग लोक को प्राप्त हुए देखते हैं।

१०. बुद्ध आस्रवों के क्षय से आश्रव-रहित चित्त की विमुक्ति (= मुक्ति) एवं प्रज्ञा से विमुक्ति का साक्षात्कार कर लेते हैं।

ञाणा, तेसं तं चित्तं सब्बत्थ लहुकं उप्पज्जति लहुकं पवत्तति, किङ्कारणं? सब्बत्थ परिसुद्धत्ता। अपि नु खो, महाराज, नाराचस्स सुधोतस्स विमलस्स निग्गण्ठिस्स सुखुमधारस्स अजिम्हस्स अवङ्कस्स अकुटिलस्स दळ्हचापसमारूळ्हस्स खोमसुखुमे वा कप्पाससुखुमे वा कम्बलसुखुमे वा बलवनिपातितस्स दन्धायितत्तं वा लग्गनं वा होती'' ति?'' न हि, भन्ते''।'' किङ्कारणं''? ''सुखुमत्ता नाराचस्स, निपातस्स च बलवत्ता'' ति।'' एवमेव खो, महाराज, ये ते सम्मासम्बुद्धा सब्बञ्ञुनो दसबलधरा चतुवेसारज्जविसारदा, अट्ठारसहि बुद्धधम्मेहि समन्नागता, अनन्तजिना, अनावरणञाणा, तेसं तं चित्तं सब्बत्थ लहुकं उप्पज्जति लहुकं पवत्तति, किङ्कारणं? सब्बत्थ परिसुद्धत्ता। इदं *सत्तमं चित्तं*।

२२. ''तत्र, महाराज, यदिदं सब्बञ्ञुबुद्धानं चित्तं तं छन्नं पि चित्तानं गणनं अतिक्कमित्वा असङ्खेय्येन गुणेन परिसुद्धं च लहुकं च। यस्मा च भगवतो चित्तं परिसुद्धं च लहुकं च, तस्मा, महाराज, भगवा यमकपाटिहीरं दस्सेसि। यमकपाटिहीरे, महाराज, ञातब्बं बुद्धानं भगवन्तानं चित्तं एवं लहुपरिवत्तं ति, न तत्थ सक्का उत्तरिं कारणं वत्तुं। ते पि, महाराज, पाटिहीरा

को धारण करने वाले, चार प्रकार के वैशारद्यों[1] से युक्त, अट्ठारह बुद्ध-धर्मों से सम्पन्न है, जिन्होंने इन्द्रियों को पूरा जीत लिया है, जिनके ज्ञान कहीं नहीं रुकते— उनका चित्त सभी जगह हलका और तेज रहता है। सो क्यों? क्योंकि वे सर्वथा शुद्ध हो गये हैं। महाराज! अच्छी तरह माँजा हुआ, निर्मल, गाँठ से रहित, तेज धार वाला, सीधा और निर्दोष बाण किसी शक्तिशाली धनुष्....पर रखा जाय। और उसे कोई बलवान् आदमी किसी पतले रेशम के कपड़े या मलमल, या पतल ऊनी कपड़े पर छोड़े, तो क्या उसकी गति में किसी प्रकार की रुकावट आवेगी?" "नहीं, भन्ते!" "सो क्यों?" "क्योंकि कपड़ा इतना पतला और कोमल है और बाण इतना तेज है; तथा उस पर छोडने वाला इतना बलवान् है।" "महाराज! उसी तरह बुद्धत्वप्राप्त जनविशेष का चित्त सभी विषयों में हलका और तेज होता है। सो क्यों? क्योंकि वे सभी तरह से शुद्ध हो गये हैं। यही सातवें प्रकार का चित्त है। (७)

२२. "महाराज! जो यह सातवाँ सर्वज्ञबुद्धों का चित्त है; वह बाकी छह चित्तों से सभी तरह श्रेष्ठ है। वह अपरिमित गुणों से शुद्ध और हलका है। महाराज! अपने चित्त के इतना शुद्ध और हलका होने से ही भगवान् दोनों प्रकार की ऋद्धि-शक्तियों को दिखा सकते थे। इसी से उनके चित्त की शुद्धता

---

१. सम्यक्सम्बुद्ध के चार वैशारद्य (मज्झिम निकाय के 'महासीहनादसुत्त' से)—

"सारिपुत्र! यह चार तथागत (बुद्ध) के वैशारद्य हैं, जिन वैशारद्यों को प्राप्त कर तथागत....परिषद में सिंहनाद करते हैं— । कौन से चार?

१. 'अपने को सम्यक्-सम्बुद्ध कहने वाले मैंने इन धर्मों का नहीं बोध किया है, सो उनके विषय में कोई श्रमण, ब्राह्मण, देव, मार, ब्रह्मा या लोक में कोई दूसरा धर्मानुसार पूछ न बैठे— मैं ऐसा कोई कारण, सारिपुत्र! नहीं देखता। सारिपुत्र ऐसे किसी कारण को न देखते हुए मैं क्षेम, अभय एवं वैशारद्य को प्राप्त हो विहरता हूँ।

२. 'अपने को क्षीणाश्रव (अर्हत्) कहने वाले मेरे ये आश्रव (= चित्तमल) क्षीण नहीं हुए, उनके विषय में कोई श्रमण....धर्मानुसार पूछ न बैठे'— मैं ऐसा कोई कारण नहीं देखता.... ।

३. 'जो अन्तराय-धर्म कहे गये हैं उन्हें करने से ये....अन्तराय (= विघ्न) नहीं कर सकते....यहाँ उनके विषय में कोई श्रमण.... धर्मानुसार न पूछ बैठे'— ऐसा कोई कारण नहीं देखता.... ।

४. 'जिस के लिये धर्म-उपदेश किया वह ऐसा करने वाले को भली प्रकार दुःखक्षय की ओर नहीं ले जाता— इसके विषय में कोई श्रमण.... धर्मानुसार न पूछ बैठे'— ऐसा कोई कारण सारिपुत्र! मैं नहीं देखता। सारिपुत्र! ऐसे किसी कारण को न देखते हुए मैं क्षेम को, अभय एवं वैशारद्य को प्राप्त हो कर विहरता हूँ।"

सब्बञ्ञुबुद्धानं चित्तं उपादाय गणनं पि सङ्खं पि कलं पि कलभागं पि न उपेन्ति। आवज्जन-पटिबद्धं, महाराज, भगवतो सब्बञ्ञुतञाणं आवज्जित्वा यदिच्छकं जानाति।

"यथा, महाराज, पुरिसो हत्थे ठपितं यं किञ्चि दुतिये हत्थे ठपित्वा विवटेन मुखेन वाचं निच्छारेय्य, मुखगतं भोजनं गिलेय्य, उम्मीलेत्वा वा निमीलेय्य, निमीलेत्वा वा उम्मीलेय्य, सम्मिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं सम्मिञ्जेय्य; चिरतरं एतं, महाराज, लहुतरं भगवतो सब्बञ्ञुतञाणं, लहुतरं आवज्जनं, आवज्जित्वा यदिच्छकं जानाति, आवज्जन-विकलमत्तकेन न तावता बुद्धा भगवन्तो असब्बञ्ञुनो नाम होन्ती" ति।

२३. "आवज्जनं पि, भन्ते नागसेन, परियेसनाय कातब्बं। इङ्घ मं तत्थ कारणेन सञ्ञापेही" ति? "यथा, महाराज, पुरिसस्स अड्ढस्स सालिवीहियवतण्डुलतिलमुग्गमास-पुब्बण्णापरण्णसप्पितेलनवनीतखीरदधिमधुगुळफाणिता च खळोपिकुम्भिपीठरकोट्ठभाजनगता भवेय्युं, तस्स पुरिसस्स पाहुनको आगच्छेय्य भत्तारहो भत्ताभिकङ्खी, तस्स च गेहे यं रन्धं भोजनं तं परिनिट्ठितं भवेय्य, कुम्भितो तण्डुले नीहरित्वा भोजनं रन्धेय्य; अपि नु खो सो, महाराज, तावतकेन भोजनवेकल्लमत्तकेन अधनो नाम कपणो नाम भवेय्या" ति? "न हि भन्ते, चक्कवत्तिरञ्ञो घरे पि, भन्ते, अकाले भोजनवेकल्लं होति, किं पन गहपतिकस्सा" ति। "एवमेव खो, महाराज, तथागतस्स आवज्जनविकलमत्तकं सब्बञ्ञुतञाणं, आवज्जित्वा यदिच्छकं जानाति।

और हलकेपन का पता चलता है। उन ऋद्धि–शक्तियों का और कोई दूसरा कारण नहीं बताया जा सकता। वे ऋद्धि–शक्तियाँ भी भगवान् की सर्वज्ञता आवर्जन–प्रतिबद्ध[1] (चाहने पर निर्भर) थीं। भगवान् की सर्वज्ञता इसी में थी कि वे जो कुछ जानना चाहते थे ध्यान करके उसे जान सकते थे।

"महाराज! जैसे कोई पुरुष (अनायास) किसी चीज को अपने एक हाथ से दूसरे में दे दे या मुँह के खुल जान पर बात बोले या मुँह में पड़े हुए ग्रास को निगल जाय या आँख को खोले या बन्द करे या मोड़े हुए हाथ को पसार दे या पसारे हुए हाथ को मोड़ ले, वैसे ही या उससे भी जल्दी और सरलता से भगवान् अपनी सर्वज्ञता से जो कुछ जानना चाहे जान सकते थे। यद्यपि बुद्ध ध्यान करके ही किसी बात को जान सकते हैं; तो भी, वैसा कोई ध्यान न करने के समय भी उन्हें सर्वज्ञ छोड़ दूसरा कुछ नहीं कहा जा सकता।"

२३. "भन्ते! किन्तु उसी बात को जानने के लिये ही तो साधक ध्यान करते हैं, जिसका ज्ञान पहले से ठीक–ठीक नहीं रहता। हाँ, तो मुझे उस बात को समझावें?" "महाराज! जैसे एक सम्पत्तिशाली धनी पुरुष हो। सोना, चाँदी और बहुमूल्य रत्नों से उसका कोष (खजाना) भरा हो। उसके भण्डार में घड़े, हाँडी, नाद तथा और भी दूसरे वर्तनों में सभी प्रकार के चावल, गेहूँ, धान, जौ, अनाज, तिल, मूँग, उड़द, घी, तेल, मक्खन, दूध, दही, मधु, सक्कर, गुड़ इत्यादि सभी चीजें भरी हों। अब कोई अतिथि, आतिथ्य सत्कार पाने की आशा से उसके घर आवे। उस समय घर में तैयार किया भोजन समाप्त हो जाने के कारण लोग उस अतिथि के लिये भोजन पकाने के विचार से भण्डार में चावल लाने जाँय। महाराज! तो क्या केवल इस कारण से वह पुरुष निर्धन और दरिद्र कहा जायगा?" "नहीं, भन्ते! जो चक्रवर्ती

---

१. *आवर्जन प्रतिबद्ध सर्वज्ञता— भगवान् हर समय संसार की सभी बातें जानते नहीं रहते थे। उनकी सर्वज्ञता इसी में थी कि जब वे जिस बात को जानना चाहते थे, उस पर ध्यान देते ही उसे जान लेते थे। इसी को 'आवर्जन प्रतिबद्ध सर्वज्ञता' कहते हैं।*

"यथा वा पन, महाराज, रुक्खो अस्स फलितो ओणतविनतो पिण्डिभारभरितो, न किञ्चि तत्थ पतितं फलं भवेय्य। अपि नु खो सो, महाराज, रुक्खो तावतकेन पतित-फलवेकल्लमत्तकेन अफलो नाम भवेय्या' ति? "न हि, भन्ते, पतनपटिबद्धानि तानि रुक्खफलानि, पतिते यदिच्छकं लभती" ति। "एवमेव खो, महाराज, तथागतस्स आवज्जनपटिबद्धं सब्बञ्ञुतञाणं आवज्जेत्वा यदिच्छकं जानाती" ति।

"भन्ते नागसेन, आवज्जेत्वा आवज्जेत्वा बुद्धो यदिच्छकं जानाती" ति? "आम, महाराज, भगवा आवज्जेत्वा आवज्जेत्वा यदिच्छकं जानाती ति। यथा, महाराज, चक्कवत्ती राजा यदि चक्करतनं सरति—'उपेतु मे चक्करतनं ति, सरिते चक्करतनं उपेति; एवमेव खो, महाराज, तथागतो आवज्जेत्वा आवज्जेत्वा यदिच्छकं जानाती" ति।

"दळ्हं, भन्ते नागसेन, कारणं बुद्धो सब्बञ्ञू। सम्पटिच्छाम—'बुद्धो सब्बञ्ञू' " ति॥

३. देवदत्तपब्बज्जपञ्हो

२४. "भन्ते नागसेन, देवदत्तो केन पब्बाजितो" ति? "छयिमे, महाराज, खत्तिय-कुमारा—भद्दियो च, अनुरुद्धो च, आनन्दो च, भगु च, किम्बिलो च, देवदत्तो च उपालिकप्पको सत्तमो अभिसम्बुद्धे सत्थरि सक्यकुलानन्दजनने भगवन्तं अनुब्बजन्ता निक्खमिंसु, ते भगवा पब्बाजेसी" ति। "ननु, भन्ते, देवदत्तेन पब्बजित्वा सङ्घो भिन्नो" ति? "आम, महाराज, देवदत्तेन पब्बजित्वा सङ्घो भिन्नो। न गिही सङ्घं भिन्दति, न भिक्खुनी, न सिक्खमाना, न सामणेरो, न सामणेरी सङ्घं भिन्दति; भिक्खु पकतत्तो समानसंवासको समानसीमायं ठितो

राजा हैं, उनके घर में भी समय बेसमय तैयार किया हुआ भोजन समाप्त हो जाता है, दूसरे गृहस्थों के घर की तो बात ही क्या?" "महाराज! उसी तरह, बुद्धों की सर्वज्ञता आवर्जन–प्रतिबद्ध होती है। जिस बात को वे जानना चाहते हैं; उस बात पर ध्यान करते ही उसे जान लेते हैं।"

"महाराज! जैसे एक वृक्ष हो जिसकी शाखाएँ फलों के भार से लदी हों, किन्तु उसके नीचे एक भी फल गिरा न हो। महाराज! तो क्या केवल इस कारण से वह वृक्ष बाँझ और फलों से रहित कहा जायगा?" "नहीं, भन्ते! वे फल तो कभी न कभी गिरेंगे ही; तब कोई भी उन्हें मन भर खा सकता है।" "महाराज! इसी तरह, बुद्धों की सर्वज्ञता आवर्जन–प्रतिबद्ध होती है....।"

"भन्ते नागसेन! क्या बुद्ध जिस बात को जानना चाहते हैं, उसको ध्यान करते ही जान लेते हैं?" "हाँ महाराज! जैसे चक्रवती राजा अपने स्मरणमात्र से जहाँ चाहे वही अपने चक्र–रत्न को उपस्थित कर देता है; (द्र०—दी०नि०, च०व०सुत्त) वैसे ही बुद्ध जिस बात को जानना चाहते हैं, उसको ध्यान करते ही जान लेते हैं।"

"भन्ते! भगवान् की सर्वज्ञता सिद्ध करने के लिये जो आपने तर्क दिए हैं वे बहुत दृढ़ (पक्के) हैं। मैं मान लेता हूँ कि भगवान् यथार्थ में सर्वज्ञ थे।"

३. देवदत्त–प्रव्रज्याविषयक प्रश्न—२४. "भन्ते! देवदत्त को किसने प्रव्रज्या दी थी?" "महाराज! १ भद्दिय, २. अनुरुद्ध, ३. आनन्द, ४. भृगु, ५. किम्बिल, ६. देवदत्त ये छः क्षत्रियपुत्र तथा सातवाँ ७. उपालि नाई—भगवान् के बुद्धत्व प्राप्त करने पर अपनी ही उमङ्ग (उत्साह) से शाक्य कुलों को छोड़ बुद्ध के पीछे–पीछे हुये। उन्हें भगवान् ने प्रव्रज्या दे दी थी।" "भन्ते! देवदत्त ने प्रव्रज्या लेकर सङ्घ को फोड़ दिया था न?" "हाँ, महाराज! दूसरा कोई गृहस्थ, भिक्षुणी, उपासिका, श्रामणेर या श्रामणेरी संघ को नहीं

सङ्घं भिन्दती'' ति। ''सङ्घभेदको, भन्ते, पुग्गलो किं कम्मं फुसती'' ति? ''कप्पट्ठितिकं महाराज, कम्मं फुसती'' ति।

''किं पन, भन्ते नागसेन, बुद्धो जानाति—'देवदत्तो पब्बजित्वा सङ्घं भिन्दिस्सति, सङ्घं भिन्दित्वा कप्पं निरये पचिस्सती' '' ति? ''आम, महाराज, तथागतो जानाति—'देवदत्तो पब्बजित्वा सङ्घं भिन्दिस्सति, सङ्घं भिन्दित्वा कप्पं निरये पचिस्सती' '' ति। ''यदि, भन्ते नागसेन, बुद्धो जानाति—'देवदत्तो पब्बजित्वा सङ्घं भिन्दिस्सति, सङ्घं भिन्दित्वा कप्पं निरये पचिस्सती' ति; तेन हि, भन्ते नागसेन, 'बुद्धो कारुणिको अनुकम्पको हितेसी सब्बसत्तानं अहितं अपनेत्वा हितमुपदहती' ति यं वचनं तं मिच्छा? यदि तं अजानित्वा पब्बाजितो ति, तेन हि बुद्धो असब्बञ्ञू? अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो तवानुप्पत्तो। विजटेहि एतं महाजटं, भिन्द परप्पवादं, अनागते अद्धाने तया सदिसा बुद्धिमन्तो भिक्खू दुल्लभा भविस्सन्ति, एत्थ तव बलं पकासेही'' ति?

२५. ''कारुणिको, महाराज, भगवा सब्बञ्ञू च। कारुञ्ञेन, महाराज, भगवा सब्बञ्ञुतञाणेन देवदत्तस्स गतिं ओलोकेन्तो अद्दसा देवदत्तं आपायिकं कम्मं आयूहित्वा अनेकानि कप्पकोटिसतसहस्सानि निरयेन निरयं विनिपातेन विनिपातं गच्छन्तं। तं भगवा सब्बञ्ञुतञाणेन जानित्वा 'इमस्स अपरियन्तकतं कम्मं मम सासने पब्बजितस्स परियन्तकतं भविस्सति, पुरिमं उपादाय परियन्तकतं दुक्खं भविस्सति, अपब्बजितो पि अयं मोघपुरिसो कप्पट्ठियमेव कम्मं आयूहिस्सती' ति कारुञ्ञेन देवदत्तं पब्बाजेसी'' ति। (१)

फोड़ सकती समान–संवासक[1] और समान सीमा[2] में रहने वाला कोई प्रकृतात्म[3] भिक्षु ही सङ्घ को फोड़ सकता है।" "भन्ते! सङ्घ फोड़ने वाले व्यक्ति का कैसा कर्म होता है?" "महाराज! उसका कर्म कल्प भर स्थिर रहता है। (उस पाप–कर्म के फल से वह एक कल्प तक घोर नरक में पचता रहता है, टिकने वाला होता है।)"

"भन्ते नागसेन! क्या भगवान् को पहले से ज्ञात था कि देवदत्त प्रव्रजित होकर सङ्घ में फूट डाल देगा और उस कर्म के फल से कल्प भर नरकाग्नि में पचता रहेगा?" "हाँ, महाराज! भगवान् को यह ज्ञात था।" "भन्ते नागसेन! (क) तब तो लोगों का यह कहना सर्वथा अनुचित है कि बुद्ध करुणाशील, दूसरों के प्रति अनुकम्पा रखने वाले, सभी जीवों के हितैषी तथा अहित को दूर कर हित करने वाले थे। (ख) और यदि उन्होंने विना जाने देवदत्त को प्रव्रज्या दे दी थी तो वे सर्वज्ञ नहीं हुए। भन्ते! आप के सामने यह दुविधा रक्खी गयी है, इसे आप सुलझा दें....। यहाँ अपना बुद्धिबल दिखावें?"

२५. "महाराज! भगवान् महाकारुणिक और सर्वज्ञ दोनों थे। अपनी करुणा और सर्वज्ञता से देवदत्त की क्या गति होगी? यह उन्होंने जान लिया था। अपने अनेक कर्मों के इकट्ठे हो जाने के कारण देवदत्त का अनेक सहस्र और करोड़ कल्पों तक एक से दूसरे नरक में गिर–गिर कर पचना ही लिखा था। भगवान् ने अपनी करुणा और सर्वज्ञता से देखा कि देवदत्त मेरे शासन में प्रव्रजित हो थोड़ा बहुत

१–२. समानसंवासक और समान सीमा में रहने वाला— भिक्षु अपने गाँव, कस्बा या मोहल्ले में सीमा नियत कर के रहते हैं। उस नियत सीमा में रहने वाले सभी भिक्षु उपोसथ–कर्म के लिये एक स्थान पर इकट्ठे होते हैं। वे भिक्षु 'समान संवासक' और 'समान सीमा में रहने वाले' कहे जाते हैं।

३. प्रकृतात्म भिक्षु— जिसने कोई भारी आपत्ति (पाप) नहीं की हो।

"तेन हि, भन्ते नागसेन, बुद्धो वधित्वा तेलेन मक्खेति, पपाते पातेत्वा हत्थं देति, मारेत्वा जीवितं परियेसति, यं सो पठमं दुक्खं दत्वा पच्छा सुखं उपदहती" ति? "वधेति पि, महाराज, तथागतो सत्तानं हितवसेन, पातेति पि सत्तानं हितवसेन, मारेति पि सत्तानं हितवसेन; वधित्वा पि, महाराज, तथागतो सत्तानं हितमेव उपदहति, पातेत्वा पि सत्तानं हितमेव उपदहति, मारेत्वा पि सत्तानं हितमेव उपदहति। यथा, महाराज, मातापितरो नाम वधित्वा पि पातयित्वा पि पुत्तानं हितमेव उपदहन्ति; एवमेव खो, महाराज, तथागतो वधेति पि सत्तानं हितवसेन, पातेति पि सत्तानं हितवसेन, मारेति पि सत्तानं हितवसेन; वधित्वा पि, महाराज, तथागतो सत्तानं हितमेव उपदहति, पातेत्वा पि सत्तानं हितमेव उपदहति, मारेत्वा पि सत्तानं हितमेव उपदहति। येन येन योगेन सत्तानं गुणवड्ढि होति, तेन तेन योगेन सब्बसत्तानं हितमेव उपदहति। सचे, महाराज, देवदत्तो न पब्बजेय्य, गिहिभूतो समानो निरयसंवत्तनिकं बहुं पापकम्मं कत्वा अनेकानि कप्पकोटिसतसहस्सानि निरयेन निरयं विनिपातेन विनिपातं गच्छन्तो बहुं दुक्खं वेदयिस्सति। तं भगवा जानमानो कारुञ्ञेन देवदत्तं पब्बाजेसि। 'मम सासने पब्बजितस्स दुक्खं परियन्तकतं भविस्सती' ति कारुञ्ञेन गरुकं दुक्खं लहुकं अकासि। (२)

"यथा वा, महाराज, धनयससिरिञातिबलेन बलवा पुरिसो अत्तनो ञातिं वा मित्तं वा रञ्ञा गरुकं दण्डं धारेन्तं अत्तनो बहुविस्सत्थभावेन समत्थताय गरुकं दण्डं लहुकं कारेति; एवमेव खो, महाराज, भगवा बहूनि कप्पकोटिसतसहस्सानि दुक्खं वेदयमानं देवदत्तं पब्बाजेत्वा सीलसमाधिपञ्ञाविमुत्तिबलसमत्थभावेन गरुकं दुक्खं लहुकमकासि। (३)

"यथा वा, पन, महाराज, कुसलो भिसक्को सल्लकत्तो गरुकं रोगं बलवोसधबलेन

पुण्य अर्जित कर सकता है, जिससे उसकी नरक में पचने की अवधि कम हो जायगी। यही देख उन्होंने उसे प्रव्रज्या दे दी थी।" (१)

"भन्ते नागसेन! तब तो भगवान् बुद्ध पहले चोट देकर पीछे उसकी चिकित्सा करते हैं, पहले पहाड़ से ढकेल कर पीछे बचाने के लिये हाथ बढ़ाते हैं, पहले जान से मार देते और पीछे जीवन भी देते हैं, पहले कष्ट देते हैं और पीछे कुछ सुखी भी कर देते हैं?" "महाराज! जीवों के हित के लिये ही भगवान् बुद्ध उन्हें मारते, ढकेलते या पीटते हैं। महाराज! जैसे माँ–बाप बच्चे की भलाई करने के विचार से ही उसे पीटते और धमकाते हैं, वैसे ही भगवान् बुद्ध लोगों के पुण्य बढ़ाने के विचार से ही सब कुछ करते हैं। महाराज! यदि देवदत्त प्रव्रजित न हो कर गृहस्थ ही रहता तो और भी अधिक पाप करता; जिसके कारण हजारों और करोड़ों वर्ष तक एक नरक से दूसरे नरक में गिर कर पचता रहता। भगवान् ने अपनी सर्वज्ञता से इस बात को जान लिया था। उन्होंने देखा कि इस धर्म–विनय के अनुसार प्रव्रजित होने से देवदत्त के दुःख कुछ सीमित हो जायँगे। अतः उसी के हित के लिये उस पर करुणा करके उसे प्रव्रज्या दे दी थी। (२)

"महाराज! जैसे, कोई धन, यश, पद, और ऊँचे कुल से बहुत बड़ा आदमी अपने प्रभाव से राजा को विश्वास दिला कर अपने किसी सम्बन्धी या मित्र का बहुत कठोर दण्ड कुछ हल्का करा ले, वैसे ही भगवान् ने देवदत्त को प्रव्रजित कर शील, समाधि, प्रज्ञा और विमुक्ति के बल से उसके दुःखों की बहुत बड़ी अवधि को कम कर दिया। अन्यथा अनेक करोड़ वर्षों तक एक नरक से दूसरे नरक में गिर–गिर कर पचते रहना उसके भाग्य में लिखा था। (३)

लहुकं करोति; एवमेव खो, महाराज, बहूनि कप्पकोटिसतसहस्सानि दुक्खं वेदियमानं देवदत्तं भगवा रोगञ्ञुताय पब्बाजेत्वा कारुञ्ञबलो पत्थद्धधम्मोसधबलेन गरुकं दुक्खं लहुकमकासि। अपि नु खो सो, महाराज, भगवा बहुवेदनीयं देवदत्तं अप्पवेदनीयं करोन्तो किञ्चि अपुञ्ञं आपज्जेय्या'' ति? ''न किञ्चि, भन्ते, अपुञ्ञं आपज्जेय्य अन्तमसो गद्दूहनमत्तं पी'' ति! ''इमं पि खो, महाराज, कारणं अत्थतो सम्पटिच्छ, येन कारणेन भगवा देवदत्तं पब्बाजेसि।(४)

२६. ''अपरं पि, महाराज, उत्तरिं कारणं सुणोहि येन कारणेन भगवा देवदत्तं पब्बाजेसि। यथा, महाराज, चोरं आगुचारिं गहेत्वा रञ्ञो दस्सेय्युं—'अयं खो, देव, चोरो आगुचारी, इमस्स यं इच्छसि तं दण्डं पणेही' ति, तमेनं राजा एवं वदेय्य—'तेन हि, भणे, इमं चोरं बहिनगरं नीहरित्वा आघातने सीसं छिन्दथा' ति। 'एवं, देवा' ति खो ते रञ्ञो पटिस्सुत्वा तं बहिनगरं नीहरित्वा आघातनं नयेय्युं। तमेनं पस्सेय्य कोचिदेव पुरिसो रञ्ञो सन्तिका लद्धवरो लद्धयसधनभोगो आदेय्यवचनो बलविच्छितकारी, सो तस्स कारुञ्ञं कत्वा ते पुरिसे एवं वदेय्य—'अलं, भो, किं तुम्हाकं इमस्स सीसच्छेदनेन, तेन हि, भो, इमस्सं हत्थं वा पादं वा छिन्दित्वा जीवितं रक्खथ, अहमेतस्स कारणा रञ्ञो सन्तिके पटिवचनं करिस्सामी' ति। ते तस्स बलवतो वचनेन तस्स चोरस्स हत्थं वा पादं वा छिन्दित्वा जीवितं रक्खेय्युं। अपि नु खो सो, महाराज, पुरिसो एवङ्कारी तस्स चोरस्स किच्चकारी अस्सा'' ति? ''जीवितदायको खो, भन्ते, तस्स चोरस्स; जीविते दिन्ने किं तस्स अकतं नाम अत्थी'' ति। ''या पन तस्स हत्थपादच्छेदने वेदना सो ताय वेदनाय किञ्चि अपुञ्ञं आपज्जेय्या'' ति? ''अत्तना कतेन

''महाराज! जैसे कोई चतुर वैद्य या शल्यचिकित्सक अपनी तेज औषधि से किसी गम्भीर रोग को कम कर दे, वैसे ही भगवान् ने उचित बात को जानते हुए देवदत्त को प्रव्रजित कर उसे करुणाबल से तीक्ष्ण धर्म–रूपी औषधि दे उसके दुःखों की बहुत बड़ी अवधि को कम कर दिया। नहीं तो अनेक हजार और अनेक करोड़ वर्षों तक एक नरक से दूसरे नरक में गिर–गिर कर जलते रहना ही उसके भाग्य में था। महाराज! देवदत्त के उस दुःख–पुञ्ज को कम करके क्या भगवान् ने कुछ गलती की थी?'' ''नहीं भन्ते! कुछ भी नहीं, कभी नहीं.... ''महाराज! आप इस कारण को भी समझ लें, जिससे भगवान् ने देवदत्त को प्रव्रज्या दी।'' (४)

२६. ''महाराज! एक और कारण सुनें जिससे भगवान् ने देवदत्त को प्रव्रज्या दी। महाराज! जैसे किसी चोर को पकड़ कर लोग राजा के पास ले आवें और कहें—'देव! यह चोर है, इसे जो चाहें दण्ड दें'। उस पर राजा बोले—'हाँ, इसे नगर के बाहर ले जाओ और वध्यभूमि में इसका सिर काट डालो।' राजा की आज्ञा पा कर उसके अनुसार सैनिक उसे वध्यभूमि की ओर ले जाँय। तब कोई राजा का ऊँचा अधिकारी सैनिक उसे देखे, जिसे राजा की ओर से बहुत नाम, धन और भोग मिल चुके हों, जिसकी बात राजा भी सुनता हो और जो राजा से कुछ करा सकता हो। उसे देख उसको बड़ी दया आ जाय और लोगों को कहे—'आप लोग ठहरें! इसका सिर काट देने से आप लोगों को क्या मिलेगा? अतः प्राण न लें! केवल इसका हाथ या पैर काट कर उसे छोड़ दें। इस विषय में मैं राजा से कह दूँगा।' आप बतावें कि वह अधिकारी उस चोर की भलाई करने वाला हुआ या नहीं?'' ''भन्ते! जब उसने उसका जीवन बचा दिया तो क्या नहीं किया!'' ''महाराज! उस मनुष्य के हाथ पैर कट जाने से उसे जो दुःख हुआ क्या उसका पाप उसे नहीं लगा?'' ''भन्ते! उस चोर ने तो अपनी ही करनी से दुःख पाया। उस

सो, भन्ते, चोरो दुक्खवेदनं वेदियति, जीवितदायको पन पुरिसो न किञ्चि अपुञ्ञं आपज्जेय्या'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, भगवा कारुञ्ञेन देवदत्तं पब्बाजेसि—'मम सासने पब्बजितस्स दुक्खं परियन्तकतं भविस्सती' ति। परियन्तकतं च, महाराज, देवदत्तस्स दुक्खं। देवदत्तो, महाराज, मरणकाले—

'इमेहि अट्ठीहि तमग्गपुग्गलं, देवातिदेवं नरदम्मसारथिं।
समन्तचक्खुं सतपुञ्ञलक्खणं, पाणेहि बुद्धं सरणं उपेमी'॥ ति

पाणुपेतं सरणमगमासि। देवदत्तो, महाराज, छ कोट्ठासे कते कप्पे, अतिक्कन्ते पठमकोट्ठासे सङ्घं भिन्दि, पञ्चकोट्ठासे निरये पच्चित्वा ततो मुच्चित्वा अट्ठिस्सरो नाम पच्चेकबुद्धो भविस्सति। अपि नु खो सो, महाराज, भगवा एवङ्कारी देवदत्तस्स किच्चकारी अस्सा'' ति? ''सब्बददो, भन्ते नागसेन, तथागतो देवदत्तस्स, यं तथागतो देवदत्तं पच्चेकबोधिं पापेस्सति, किं तथागतेन देवदत्तस्स अकतं नाम अत्थी'' ति! ''यं पन, महाराज, देवदत्तो सङ्घं भिन्दित्वा निरये दुक्खवेदनं वेदयति, अपि नु खो, महाराज, भगवा ततोनिदानं किञ्चि अपुञ्ञं आपज्जेय्या'' ति? ''नहि, भन्ते। अत्तना कतेन, भन्ते, देवदत्तो कप्पं निरये पच्चति, दुक्खपरियन्तकारको सत्था न किञ्चि अपुञ्ञं आपज्जती'' ति। ''इमं पि खो त्वं, महाराज, कारणं अत्थतो सम्पटिच्छ, येन कारणेन भगवा देवदत्तं पब्बाजेसि। (४)

२७. ''अपरं पि, महाराज, उत्तरिं कारणं सुणोहि, येन कारणेन भगवा देवदत्तं पब्बाजेसि। यथा, महाराज, कुसलो भिसक्को सल्लकत्तो वातपित्तसेम्हसन्निपातउतुपरिणामविसमपरिहार-ओपक्कमिकोपक्कन्तं पूतिकुणपदुग्गन्धाभिसञ्छन्नं अन्तोसल्लं सुसिरगतं पुब्बरुधिरसम्पुण्णं वणं

मनुष्य ने, जिसने जीवन बचा दिया, उसकी कुछ भी बुराई नहीं की।'' ''महाराज! उसी तरह, भगवान् ने देवदत्त के दुःखों को कम करने के विचार से ही उसे प्रव्रज्या दी थी। महाराज! देवदत्त के दुःख उससे कट गये, क्योंकि मरते समय उसने अपने प्राणों से बुद्ध की शरण ले ली थी। उसने कहा था—

'मैं अपने प्राणों से बुद्ध की शरण लेता हूँ, जो उत्तमों से भी उत्तम, देवों के देव, देवता और मनुष्य सभी को मार्ग दिखाने वाले, सर्वद्रष्टा और सौ शुभ लक्षणों से युक्त हैं।'

''महाराज! एक कल्प को छह भागों में बाँटने से पहले भाग के अन्त के समय में देवदत्त ने सङ्घ में फूट डाली थी। बाकी पाँच भागों तक नरक में पचता रहेगा। बाद में वहाँ से अस्थीश्वर नाम का प्रत्येकबुद्ध होगा। महाराज! तब बतायें कि क्या भगवान् देवदत्त के उपकार करने वाले हुए या नहीं?'' ''भन्ते! भगवान् देवदत्त के लिये सब कुछ करने वाले हुए। उन्होंने उसे प्रत्येकबुद्ध के पद तक पहुँचा दिया। उन्होंने उसका क्या नहीं किया!'' ''महाराज! सङ्घ फोड़ने के पाप से जो देवदत्त नरक में यातनाएँ सह रहा है; उसके लिये भगवान् किसी तरह दोषी ठहरे क्या?'' ''नहीं, भन्ते! अपने ही कर्मों से देवदत्त कल्प भर नरक में रहेगा। भगवान् ने तो उसके दुःखों की अवधि कम की है। वे किसी प्रकार दोषी नहीं ठहराये जा सकते।'' ''महाराज! आप इस कारण को भी समझ लें, जिससे.... प्रव्रज्या दी।'' (४)

२७. ''महाराज! एक और भी कारण सुनें जिससे भगवान् ने देवदत्त को प्रव्रजित किया था— ''महाराज! किसी आदमी को पीब और रक्त से भरा एक व्रण हो जाय। उसका मांस रूड़ जाने के कारण उसमें बहुत दुर्गन्ध हो। उस में नासूर हो जाय और वह बहुत पीड़ा दे। वात, पित्त, कफ तथा सन्निपात से पीड़ित हो धीरे-धीरे उसकी स्थिति खराब हो जाय। तब कोई योग्य वैद्य या शल्यचिकित्सक आकर

वूपसमेन्तो वणमुखं कक्खळतिखिणखारकटुकेन भेसज्जेन अनुलिम्पति परिपच्चनाय, परिपच्चित्वा मुदुभावमुपगतं सत्थेन विकन्तयित्वा डहति सलाकाय, दड्ढे खारलवणं देति, भेसज्जेनानुलिम्पति वणरूहनाय, व्याधितस्स सोत्थिभावमनुप्पत्तिया। अपि नु खो सो, महाराज, भिसक्को सल्लकत्तो अहितचित्तो भेसज्जेनानुलिम्पति, सत्थेन विकन्तति, डहति सलाकाय, खारलवणं देती'' ति? ''नहि, भन्ते। हितचित्तो सोत्थिकामो तानि किरियानि करोती'' ति। ''या पनस्स भेसज्जकिरियाकरणेन उप्पन्ना दुक्खवेदना ततोनिदानं सो भिसक्को सल्लकत्तो किञ्चि अपुञ्ञं आपज्जेय्या'' ति?''हितचित्तो, भन्ते, सोत्थिकामो भिसक्को सल्लकत्तो तानि किरियानि करोति, किं सो ततोनिदानं अपुञ्ञं आपज्जेय्य; सग्गगामी सो, भन्ते, भिसक्को सल्लकत्तो'' ति!''एवमेव खो, महाराज, कारुञ्ञेन भगवा देवदत्तं पब्बाजेसि दुक्खपरिमुत्तिया। (५)

२८. ''अपरं पि, महाराज, उत्तरिं कारणं सुणोहि, येन कारणेन भगवा देवदत्तं पब्बाजेसि। यथा, महाराज, पुरिसो कण्टकेन विद्धो अस्स, अथञ्ञतरो पुरिसो तस्स हितकामो सोत्थिकामो तिण्हेन कण्टकेन वा सत्थमुखेन समन्ततो छिन्दित्वा पग्घरन्तेन लोहितेन तं कण्टकं नीहरेय्य। अपि नु खो सो, महाराज, पुरिसो अहितकामो तं कण्टकं नीहरती'' ति? ''नहि, भन्ते। हितकामो सो, भन्ते, पुरिसो सोत्थिकामो तं कण्टकं नीहरति। सचे सो, भन्ते, तं कण्टकं न नीहरेय्य, मरणं वा सो तेन पापुणेय्य मरणन्तिकं वा दुक्खं'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, तथागतो कारुञ्ञेन देवदत्तं पब्बाजेसि दुक्खपरिमुत्तिया। सचे, महाराज, भगवा देवदत्तं न पब्बाजेय्य, कप्पकोटिसतसहस्सं पि देवदत्तो भवपरम्पराय निरये पच्चेय्या'' ति। (६)

उस पर एक तीक्ष्ण (बहुत तेज लगने वाली औषध) का लेप चढ़ा दे। उससे वह व्रण पक कर तैयार हो जाय। फिर वैद्य छुरी से नस्तर लगा कर उस व्रण को सलाई से दाग दे और उस पर कुछ नमक छिड़ककर किसी औषधि का लेप चढ़ा दे। उससे वह व्रण अच्छा होकर धीरे-धीरे भर जाय और आदमी बिलकुल स्वस्थ हो जाय। महाराज! क्या वह वैद्य या शल्यचिकित्सक का अहित करने के विचार से उसे औषधि का लेप देता है, छुरी से नस्तर लगाता है, सलाई से दागता है और नमक छिड़कता है?" "नहीं, भन्ते! अपितु उसे स्वस्थ करके उसका हित करने के विचार से ही वह वैद्य ये कार्य करता है।" "महाराज! चिकित्सा कराने में जो आदमी को दुःख उठाने पड़े उसके लिये क्या वैद्य दोषी ठहराया जा सकता है?" "नहीं, भन्ते! वैद्य ने तो उस पुरुष को स्वस्थ करके उसका हित करने के लिये ही सारी चिकित्सा की। उसके लिये वह दोषी कैसे ठहराया जायगा! उसने तो बहुत पुण्य का कार्य किया।" "महाराज! इसी तरह,भगवान् ने करुणा करके देवदत्त के दुःखों को कम करने के लिये ही उसे प्रव्रज्या दी। (५)

२८. "महाराज! एक और कारण सुनें, जिससे भगवान् ने देवदत्त को प्रव्रज्या दी—"महाराज! किसी आदमी को एक काँटा गड़ जाय, उसका कोई हितचिन्तक उसे स्वस्थ करने के विचार से गड़े हुए काँटे को आगे पीछे कुरेद कर रक्त बहते रहने पर भी उसे किसी काँटे या छुरी की नोक से निकाल दे। महाराज! तो क्या वह पुरुष उसका अहित चाहने वाला समझा जायगा?" "नहीं, भन्ते! वह तो उसका हित करने वाला हुआ। यदि वह काँटा नहीं निकालता तो वह आदमी मर भी सकता था या मरण के समान दुःख उठा सकता था।" "महाराज! इसी तरह, भगवान् ने बहुत करुणा करके देवदत्त के दुःखों को कम करने के लिये ही उसे प्रव्रजित किया था। यदि वे उसे प्रव्रजित न करते तो वह हजारों, करोड़ों कल्पों तक एक नरक से दूसरे नरक में गिरता, जलता पचता रहता।" (६)

"अनुसोतगामिं, भन्ते नागसेन, देवदत्तं तथागतो पटिसोतं पापेसि, विपन्थपटिपन्नं देवदत्तं पन्थे पटिपादेसि, पपाते पतितस्स देवदत्तस्स पतिट्ठं अदासि, विसमगतं देवदत्तं तथागतो समं आरोपेसि। इमे च, भन्ते नागसेन, हेतू इमानि च कारणानि न सक्का अञ्ञेन सन्दस्सेतुं अञ्ञत्र तवादिसेन बुद्धिमता" ति।

४. पथविचलनपञ्हो

२९. "भन्ते नागसेन, भासितं पेतं भगवता—'अट्ठिमे, भिक्खवे, हेतू अट्ठ पच्चया महतो भूमिचालस्स पातुभावाया' ति। असेसवचनं इदं, निस्सेसवचनं इदं निप्परियायवचनं इदं, नत्थञ्ञो नवमो हेतु भवेय्य महतो भूमिचालस्स पातुभावाय। यदि, भन्ते नागसेन, अञ्ञो नवमो हेतु भवेय्य महतो भूमिचालस्स पातुभावाय, तं पि हेतुं भगवा कथेय्य। यस्मा च खो, भन्ते नागसेन, नत्थञ्ञो नवमो हेतु महतो भूमिचालस्स पातुभावाय, तस्मा अनाचिक्खितो भगवता। अयं च नवमो हेतु दिस्सति महतो भूमिचालस्स पातुभावाय, यं वेस्सन्तरेन रञ्ञा महादाने दीयमाने सत्तक्खत्तुं महापथवी कम्पिता। यदि, भन्ते नागसेन, अट्ठेव हेतू अट्ठ पच्चया महतो भूमिचालस्स पातुभावाय, तेन हि 'वेस्सन्तरेन रञ्ञा महादाने दीयमाने सत्तक्खत्तुं महापथवी कम्पिता' ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि वेस्सन्तरेन रञ्ञा महादाने दीयमाने सत्तक्खत्तुं महापथवी कम्पिता, तेन हि 'अट्ठेव हेतू अट्ठ पच्चया महतो भूमिचालस्स पातुभावाया' ति तं पि वचनं मिच्छा। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो सुखुमो दुन्निवेठियो अन्धकरणो चेव गम्भीरो च, सो तवानुप्पत्तो, नेसो इत्तरपञ्ञेन सक्का विस्सज्जेतुं अञ्ञत्र तवादिसेन बुद्धिमता" ति?

३०. "भासितं, पेतं, महाराज, भगवता—'अट्ठिमे, भिक्खवे, हेतू अट्ठ पच्चया महतो

"हाँ भन्ते! भगवान् ने भव-धारा में बहे जाते देवदत्त को पार लगा दिया। कुमार्ग में पड़े देवदत्त को सच्ची राह दिखा दी। पहाड़ से लुढ़कते देवदत्त को रुकने का सहारा दे दिया। गड़हे में गिरे देवदत्त को बाहर निकाल दिया! भन्ते! आप जैसे बुद्धिमान् को छोड़ भला और कौन दूसरा इन बातों को बता सकता था!!"

४. भूकम्पनविषयकप्रश्न— २९. "भन्ते नागसेन! भगवान् ने यह भी कहा है—'भिक्षुओ! किसी बड़े भूकम्पन के आठ कारण या प्रत्यय (हेतु) होते हैं, बात सर्वत्र चरितार्थ होती है, कोई ऐसा स्थान नहीं जहाँ यह बात झूठी ठहरे। इस पर और कुछ समालोचना नहीं की जा सकती। किसी बड़े भूकम्प के इन आठ कारणों या प्रत्ययों को छोड़ नवाँ कारण नहीं हो सकता। भन्ते! यदि कोई नौवाँ कारण होता तो उसे भी भगवान् अवश्य कहते। कोई नौवाँ कारण नहीं है इसीलिये भगवान् ने नहीं कहा। किन्तु, मैं समझता हूँ कि एक नौवाँ कारण भी है। वह यह कि वेस्सन्तर राजा के सब कुछ दान दे डालने के समय पृथ्वी सात बार काँप उठी थी। भन्ते! (क) यदि किसी बड़े भूकम्पन के आठ ही कारण होते तो यह बात झूठी ठहरती है कि वेस्सन्तर राजा के सब कुछ दान दे डालने के समय पृथ्वी सात बार काँप उठी थी? (ख) और यदि यह बात सत्य है कि वेस्सन्तर राजा के सब कुछ दान दे डालने के समय पृथ्वी सात बार काँप उठी थी; तो यह बात असत्य ठहरती है कि किसी बड़े भूकम्प के आठ ही कारण हैं। भन्ते! यह भी सूक्ष्म, भ्रम में डालने वाली, गम्भीर और सुलझाने में कठिन द्विविधा आपके सामने उपस्थित है। आप जैसे बुद्धिमान् व्यक्ति को छोड़ दूसरे किसी अल्प बुद्धि वाले द्वारा यह द्विविधा नहीं खोली जा सकती?"

३०. "महाराज! भगवान् ने जो यह कहा—'भिक्षुओ! किसी बड़े भूकम्प होने के आठ कारण या

भूमिचालस्स पातुभावाया' ति। यं वेस्सन्तरेन पि रञ्ञा महादाने दीयमाने सत्तक्खत्तुं महापथवी कम्पिता, तं च पन अकालिकं कदाचुप्पत्तिकं अट्ठहि हेतूहि विप्पमुत्तं, तस्मा अगणितं अट्ठहि हेतूहि। यथा, महाराज, लोके तयो येव मेघा गणीयन्ति—वस्सिको, हेमन्तिको, पावुसिको ति। यदि ते मुञ्चित्वा अञ्ञो मेघो पवस्सति न सो मेघो गणीयति सम्मतेहि मेघेहि, अकालमेघो त्वेव सङ्खं गच्छति। एवमेव खो, महाराज, वेस्सन्तरेन रञ्ञा महादाने दीयमाने यं सत्तक्खत्तुं महापथवी कम्पिता, अकालिकं एतं कदाचुप्पत्तिकं, अट्ठहि हेतूहि विप्पमुत्तं, न तं गणीयति अट्ठहि हेतूहि।

"यथा वा पन, महाराज, हिमवन्ता पब्बता पञ्च नदीसतानि सन्दन्ति, तेसं, महाराज, पञ्चन्नं नदीसतानं दसेव नदीगणनाय गणीयन्ति, सेय्यथीदं—गङ्गा, यमुना, अचिरवती, सरभू, मही, सिन्धु, सरस्सती, वेत्रवती, वीतंसा, चन्दभागा। अवसेसा नदियो नदीगणनाय अगणिता, किंकारणा? न ता नदियो धुवसलिला। एवमेव खो, महाराज, वेस्सन्तरेन रञ्ञा महादाने दीयमाने यं सत्तक्खत्तुं महापथवी कम्पिता अकालिकं एतं कदाचुप्पत्तिकं, अट्ठहि हेतूहि विप्पमुत्तं, न तं गणीयति अट्ठहि हेतूहि।

३१. "यथा वा पन, महाराज, रञ्ञो सतं पि द्विसतं पि तिसतं पि अमच्चा होन्ति, तेसं छ येव जना अमच्चगणनाय गणीयन्ति, सेय्यथीदं—सेनापति, पुरोहितो, अक्खदस्सो, भण्डागारिको, छत्तग्गाहको, खग्गग्गाहको। एते येव अमच्चगणनाय गणीयन्ति, किंकारणा? युत्तत्ता राजगुणेहि। अवसेसा अगणिता, सब्बे अमच्चा त्वेव सङ्खं गच्छन्ति। एवमेव खो,

---

प्रत्यय होते हैं'— सो ठीक है। तथा वेस्सन्तर राजा के सर्वस्व दान देने के समय जो सात बार पृथ्वी काँप उठी, वह साधारण नियम के अन्तर्गत नहीं था, संयोगवश हो गया था तथा उपर्युक्त आठ कारणों का अपवादस्वरूप था। इसीलिये आठ कारणों में उस की गणना नहीं की गयी।" "महाराज! लोग साधारणतः वर्षा के तीन समय गिनते हैं—१. वर्षाऋतु का, २. जाड़े का और ३. आषाढ़ तथा सावन महीनों का। यदि इसके अतिरिक्त कभी जल बरस जाय तो लोग उसे असमय का जल कहते हैं; उसे साधारण ऋतु का नहीं गिनते। इसी तरह महाराज! वेस्सन्तर राजा द्वारा किये महादान के पश्चात् जो सात बार भूकम्पन हुआ था, वह असमय और उक्त आठ कारणों से पृथक् ही था। अतः इन आठ कारणों में उसकी गणना नहीं होती।

"महाराज! हिमालय पर्वत से पाँच सौ नदियाँ निकलती हैं, किन्तु उनमें साधारणतः केवल दस की ही गणना होती है—१. गङ्गा, २. यमुना, ३. अचिरवती, ४. सरयू, ५. मही, ६. सिन्धु, ७. सरस्वती, ८. वेत्रवती, ९. वितमसा (व्यास) और १०. चन्द्रभागा। दूसरी नदियों की गणना इन में नहीं की जाती। वह क्यों? क्योंकि वे नदियाँ छोटी और छिछली हैं। इसी तरह महाराज! वेस्सन्तर राजा.... पूर्ववत्.... गणना नहीं होती।"

३१. "महाराज! राजा की शासनपरिषद् में सौ या दो सौ अधिकारी रहते हैं; किन्तु उनमें केवल छह की गणना होती है—१. सेनापति, २. प्रधानमन्त्री, ३. प्रधान न्यायकर्ता, ४. प्रधान कोषाध्यक्ष, ५. राजछत्र उठाने वाला (छत्रधारक) और ६. अंगरक्षक। इन्हीं छह की गणना होती है। वह क्यों? क्योंकि ये ही राजगुणों से युक्त हैं। बाकी की गणना नहीं होती, उन्हें केवल अधिकारी का नाम दे दिया जाता है। महाराज! इसी तरह, वेस्सन्तर राजा के सब कुछ दान दे डालने के समय पृथ्वी काँप उठी थी, वह

महाराज, वेस्सन्तरेन रञ्ञा महादाने दीयमाने यं सत्तक्खत्तुं महापथवी कम्पिता अकालिकं एतं कदाचुप्पत्तिकं अट्ठहि हेतूहि विप्पमुत्तं, न तं गणीयति अट्ठहि हेतूहि।

३२. "सूयति नु खो, महाराज, एतरहि जिनसासने कताधिकारानं दिट्ठधम्मसुख-वेदनीयकम्मं, कित्ति च येसं अब्भुग्गता देवमनुस्सेसू" ति? "आम, भन्ते, सूयति एतरहि जिनसासने कताधिकारानं दिट्ठधम्मसुखवेदनियकम्मं कित्ति च येसं अब्भुग्गता देवमनुस्सेसु, सत्त ते जना" ति। "के ते, महाराजा" ति? "सुमनो च, भन्ते, मालाकारो, एकसाटको च ब्राह्मणो, पुण्णो च भतको, मल्लिका च देवी, गोपालमाता च देवी, सुप्पिया च उपासिका, पुण्णा च दासी ति। इमे सत्त दिट्ठधम्मसुखवेदनीया सत्ता। कित्ति च इमेसं अब्भुग्गता देवमनुस्सेसू" ति। "अपरे पि सूयन्ति नु खो अतीते मानुसकेनेव सरीरदेहेन तिदसभवनं गता" ति? "आम, भन्ते, सूयन्ती" ति। "के च ते, महाराजा" ति? "गुत्तिलो च गन्धब्बो, साधीनो च राजा, निमि च राजा, मन्धाता च राजा ति इमे चत्तारो जना सूयन्ति तेनेव मानुसकेन सरीरदेहेन तिदसभवनं गता" ति। "सुचिरं पि कतं सूयति सुकतदुक्कटं ति। सुतपुब्बं पन तया, महाराज, अतीते वा अद्धाने वत्तमाने वा अद्धाने इत्थन्नामस्स दाने दीयमाने सकिं वा द्विक्खत्तुं वा तिक्खत्तुं महापथवी कम्पिता' ति?" "नहि, भन्ते" ति। "अत्थि मे, महाराज, आगमो, अधिगमो, परियत्ति, सवणं, सिक्खाबलं, सुस्सूसा, परिपुच्छा, आचरियुपासनं, मयापि न सुतपुब्बं—'इत्थन्नामस्स दाने दीयमाने सकिं व द्विक्खत्तुं वा तिक्खत्तुं वा महापथवी कम्पिता' ति, ठपेत्वा वेस्सन्तरस्स राजवसभस्स दानवरं। भगवतो च, महाराज, कस्सपस्स भगवतो च सक्यमुनिनो ति द्विन्नं बुद्धानं अन्तरे गणनपथं वीतिवत्ता वस्सकोटियो अतिक्कन्ता। तत्थ पि मे

साधारण नियम के विपरीत संयोगवश हो गया था, तथा बताये गये आठ कारणों का अपवादस्वरूप था। इसीलिये उन आठ कारणों में उसकी गिनती नहीं की गयी।

३२. "महाराज! आपने क्या बुद्ध–धर्म में किये गये अभ्यासों के फल को इसी जन्म में पाते सुना है, जिसकी ख्याति देवताओं तक भी पहुँच चुकी है?" "हाँ, भन्ते! सुना है।" "वे सात लोग कौन हैं?" "१. सुमन नाम का माली, २. एकसाटक नाम का ब्राह्मण, ३. पूर्ण नाम का भृत्य, ४. मल्लिका नाम की रानी, ५. रानी गोपाल माता, ६. सुप्रिया उपासिका और ७. पूर्णा नाम की नौकरानी! इन सातों ने धर्म–कर्म किये थे, जिनका फल इसी जन्म में मिल गया और जिनकी कीर्ति देवताओं तक पहुँच गयी।" "महाराज! क्या आपने दूसरे उन लोगों के विषय में सुना है, जो इसी मनुष्य–शरीर से स्वर्ग चले गये थे?" "हाँ, भन्ते! उनके विषय में भी सुना है।" "वे कौन थे?" "१. गुत्तिल नाम का गन्धर्व, २. स्वाधीन राजा, ३. निमि राजा तथा ४. मान्धाता नाम का राजा—ये चार। बहुत ही पुराने समय में उन लोगों ने यह कठिन और घोर तप किया था!" "महाराज! क्या आपने कभी इस समय या पुराने समय में पृथ्वी को किसी एक के दान देते समय काँपते हुये सुना है?" "नहीं, भन्ते! नहीं सुना है।" "महाराज! मैंने भी उस पुण्यात्मा वेस्सन्तर राजा के विषय को छोड़ और किसी दूसरे के दान देते समय पृथ्वी को काँपते नहीं सुना, यद्यपि मैंने सभी पुराणों को पढ़ा है, सभी विद्याओं का अध्ययन किया है, बहुत धर्म सुने हैं, बहुत कण्ठ किये हैं, सदा नई बातों के सीखने के क्रम में बहुत खोज की है, प्रश्नों के पूछने और उत्तर देने में तत्परता दिखायी है तथा आचार्यों से सीखते रहने की इच्छा रखी है, तो भी मैंने नहीं सुना कि अमुक नाम के व्यक्ति द्वारा दान दिये जाने पर एक, दो या तीन बार भूकम्पन हुआ हो।

सवणं नत्थि— 'इत्थन्नामस्स दाने दीयमाने सकिं वा द्विक्खत्तुं वा तिक्खत्तुं वा महापथवी कम्पिता' ति। न, महाराज, तावतकेन वीरियेन तावतकेन परक्कमेन महापथवी कम्पति। गुणभारभारिता, महाराज, सब्बसोचेय्यकिरियगुणभारभारिता धारेतुं न विसहन्ती महापथवी चलति कम्पति पवेधति।

"यथा, महाराज, सकटस्स अतिभारभरितस्स नाभियो च नेमियो च फलन्ति, अक्खो भिज्जति; एवमेव खो, महाराज, सब्बसोचेय्यकिरियगुणभारभरिता महापथवी धारेतुं न विसहन्ती चलति कम्पति पवेधति।

"यथा वा पन, महाराज, गगनं अनिलजलवेगसञ्छादितं उस्सन्नजलभारभरितं अतिवातेन फुटितत्ता नदति, रवति, गळगळायति; एवमेव खो महापथवी रञ्ञो वेस्सन्तरस्स दानबलविपुलउस्सन्नभारभरिता धारेतुं न विसहन्ती चलति कम्पति पवेधति। नहि, महाराज, रञ्ञो वेस्सन्तरस्स चित्तं रागवसेन पवत्तति, न दोसवसेन पवत्तति, न मोहवसेन पवत्तति, न मानवसेन पवत्तति, न दिट्ठिवसेन पवत्तति, न किलेसवसेन पवत्तति, न वितक्कवसेन पवत्तति, न अरतिवसेन पवत्तत्ति, अथ खो दानवसेन बहुलं पवत्तति। किं ति? 'अनागता याचका मम सन्तिके आगच्छेय्युं, आगता च याचका यथाकामं लभित्वा अत्तमना भवेय्युं' ति सततं समितं दानं पति मानसं ठपितं होति। रञ्ञो, महाराज, वेस्सन्तरस्स सततं समितं दससु ठानेसु मानसं ठपितं होति—दमे समे खन्तियं संवरे यमे नियमे अक्कोधे अविहिंसायं सच्चे सोचेय्ये। रञ्ञो, महाराज, वेस्सन्तरस्स कामेसना पहीना, भवेसना पटिप्पस्सद्धा, ब्रह्मचरियेसनाय येव उस्सुक्कं आपन्नो। रञ्ञो, महाराज, वेस्सन्तरस्स अत्तरक्खा पहीना, सब्बसत्तरक्खाय उस्सुक्कं आपन्नो। किं ति? 'इमे सत्ता समग्गा अस्सु अरोगा सधना दीघायुका' ति बहुलं येव मानसं पवत्तति।

महाराज! भगवान् काश्यप और शाक्यमुनि इन दो बुद्धों के समयों के बीच न जाने कितने करोड़ वर्ष बीत गये, इस बीच मैंने ऐसी कोई दूसरी घटना नहीं सुनी।" "महाराज! पृथ्वी का काँपना कोई सरल कार्य या परिहास का विषय थोड़े ही है! महाराज! पुण्यों के भार से लदी, शुद्ध धर्मों के बोझ से दबी, उसे सँभाल न सकने के कारण, यह महापृथ्वी डोल जाती है और काँपने लगती है।

"महाराज! जैसे गाड़ी पर बहुत भार लाद देने से उसकी नाभि और नेमि खसक जाती है और धुरा टूट जाता है, वैसे ही पुण्यों के भार से....काँपने लगती है।

"महाराज! जैसे आकाश आँधी और पानी के वेग से भर जाता है, मेघ हवा से टक्कर खाकर गरजते और कड़कते हैं तथा वृष्टि होती है; वैसे ही वेस्सन्तर राजा के प्रताप और पुण्य के भार को नहीं सँभाल सकने के कारण पृथ्वी डोल गयी और काँपने लगी; क्योंकि वेस्सन्तर राजा का चित्त न तो राग द्वेष या मोह से, न अभिमान, न अविद्या, न पाप, न वैर और न असन्तोष से युक्त था, अपितु दानशीलता से किनारों तक भरा था। उन्होंने सोचा—'जिन लोगों को कुछ भी आवश्यकता है, वे मेरे पास आने पर यथेच्छ वस्तु पाकर सन्तुष्ट होंगे।' इस तरह उनकी बुद्धि दानशीलता की ओर झुकी थी। महाराज! वेस्सन्तर राजा का चित्त इन्हीं दस बातों में लगा था—१. आत्मसंयम, २. आध्यात्मिक शान्ति, ३. क्षान्ति (क्षमा), ४. संवर, ५. यम, ६. नियम, ७. अक्रोध, ८. अहिंसा, ९. सत्य और १०. शुद्धता। महाराज! उन्होंने विषय-भोगों को सर्वथा छोड़ दिया था। भव-तृष्णा को जीत लिया था। उनके सभी प्रयत्न ऊपर ही उठने के थे। महाराज! उन्होंने स्वार्थ को पूर्णतः छोड़ दिया था। वे केवल परार्थ में लगे थे। उनका

ददमानो च, महाराज, वेस्सन्तरो राजा तं दानं न भवसम्पत्तिहेतु देति, न धनहेतु देति, न पटिदानहेतु देति, न उपलापनहेतु देति, न आयुहेतु देति, न वण्णहेतु देति; न सुखहेतु देति, न बलहेतु देति, न यसहेतु देति, न पुत्तहेतु देति, न धीतुहेतु देति; अथ खो सब्बञ्ञुतञाणहेतु सब्बञ्ञुतञाणरतनस्स कारणा एवरूपे अतुलविपुलानुत्तरे दानवरे अदासि। सब्बञ्ञुतं पत्तो च इमं गाथं अभासि—

'जालि कण्हाजिनं धीतं, मद्दीदेविं पतिब्बतं।
चजमानो न चिन्तेसिं, बोधिया येव कारणा' ति॥

"वेस्सन्तरो, महाराज, राजा अक्कोधेन कोधं जिनाति, असाधुं साधुना जिनाति, कदरियं दानेन जिनाति, अलीकवादिनं सच्चेन जिनाति, सब्बं अकुसलं कुसलेन जिनाति।

३३. "तस्स एवं ददमानस्स धम्मानुगतस्स धम्मसीसकस्स दाननिस्सन्दबलवविरिय-विपुलविप्फारेन हेट्ठा महावाता सञ्चलन्ति, सणिकं सणिकं सकिं सकिं आकुलाकुला वायन्ति, ओनमन्ति उन्नमन्ति विनमन्ति, छिन्नपत्ता पादपा पपतन्ति, गुम्बं गुम्बं वलाहका गगने सन्धावन्ति, रजोसञ्चिता वाता दारुणा होन्ति, गगनं उप्पीळिता वाता वायन्ति, सहसा धमधमायन्ति, महाभीमो सद्दो निच्छरति, तेसु वातेसु उदकं सणिकं सणिकं चलति, उदके चलिते खुब्भन्ति मच्छकच्छपा, दिस्सन्ति यमकयमका ऊमियो, तसन्ति जलचरा सत्ता, जलवीचि युनगद्धो वत्तति, वीचिनादो पवत्तति, घोरा बुब्बुळा उट्ठहन्ति, फेणमाला सवन्ति, उत्तरति महासमुद्दो, दिसाविदिसं धावति उदकं, उद्धंसोतपटिसोतमुखा सन्दन्ति सलिलधारा, तसन्ति असुरा गरुळा नागा यक्खा,

---

चित्त इसी पर दृढ़ता के साथ लगा था कि—कैसे मैं सभी जीवों को सुखी, स्वस्थ, धनी और दीर्घजीवी बना दूँ! महाराज! वे दान इस विचार से नहीं देते थे कि दूसरे जन्म में इसका अच्छा फल मिलेगा। दान करने के पुण्य के बदले में कुछ पाने की आशा उनके मन में न थी। न वे किसी चापलूसी में आकर दान देते थे। न अपने लड़के लड़कियों के दीर्घ-जीवन, अच्छा कुल, सुख, शक्ति या यश पाने की आशा से। अपितु उन्हें जो सच्चा ज्ञान पैदा हो गया था, उसी से प्रेरित होकर उन्होंने इतना बड़ा, अपरिमित और अद्वितीय दान दिया। उस सत्य ज्ञान को पा कर उन्होंने कहा था—

'बुद्धत्व पाने के लिए मैंने अपने पुत्र जालि, अपनी लड़की कृष्णाजिना, अपनी रानी माद्री—सभी को, बिना कुछ मन में विचार लाये दान कर दिया।'

"महाराज! वेस्सन्तर राजा दूसरों के क्रोध को प्रेम से, दूसरों की बुराई को उसकी भलाई करके, दूसरों की कृपणता को दानशीलता से, झूठ को सच से और पापों को पुण्य से जीतने वाले थे।"

३३. "महाराज! वेस्सन्तर राजा धर्म की ही खोज में लगे रहते थे; धर्म ही उनका परम उद्देश्य था। जब वे वह महादान दे रहे थे, तब उनकी दानशीलता के प्रभाव से उस वायु में एक चञ्चलता पैदा हो गयी, जिस पर यह पृथ्वी ठहरी है। धीरे-धीरे वह महावायु जोर से चलने लगी। ऊपर, नीचे तथा सभी दिशाओं में पृथ्वी डोलने लगी। बड़े-बड़े सुदृढ़ वृक्ष हिल गये। आकाश में बड़े-बड़े बादलों के समूह छा गये। धूल भरी एक भारी आँधी उठी। दिशायें एक दूसरे से टकराने लगीं। झंझावात जोरों से चलने लगा। सारी प्रकृति में एक भीषण कोलाहल उठ खड़ा हुआ। हवा के उन झकोरों से जल धीरे-धीरे हटने लगा, जिसके कारण मछलियाँ और दूसरे जलजीव व्याकुल हो उठे। पानी की बड़ी-बड़ी लहरें एक दूसरे से टकराने लगीं। इससे सभी जल के प्राणी भयभीत हो गये। समुद्र जोरों से गरजने

उब्बिज्जन्ति—'किन्नु खो कथं नु खो सागरो विपरिवत्तती' ति। गमनपथमेसन्ति भीतचित्ता, खुभिते लुळिते जलधरे पकम्पति महापथवी सनगा ससागरा, परिवत्तति सिनेरुगिरि कूटसेलसिखरो विनममानो होति। विमना होन्ति अहिनकुलबिळारकोत्थुकसूकरमिगपक्खिनो, रुदन्ति यक्खा अप्पेसक्खा, हसन्ति यक्खा महेसक्खा कम्पमानाय महापथविया।

३४. "यथा, महाराज, महतिमहापरियोगे उद्धनगते उदकसम्पुण्णे आकिण्णतण्डुले हेट्ठतो अग्गि जलमानो पठमं ताव परियोगं सन्तापेति, परियोगो सन्तत्तो उदकं सन्तापेति, उदकं सन्तत्तं तण्डुलं सन्तत्तं उम्मुज्जति, निमुज्जति, बुब्बुलकजातं होति, फेणमाला उत्तरति; एवमेव खो, महाराज, वेस्सन्तरो राजा यं लोके दुच्चजं तं चजि, तस्स दुच्चजं चजन्तस्स दानस्स सभावनिस्सन्देन हेट्ठा महावाता धारेतुं न विसहन्ता परिकुप्पिसु। महावातेसु परिकुपितेसु उदकं कम्पि, उदके कम्पिते महापथवी कम्पि, इति तदा महावाता च उदकं च महापथवी चा ति इमे तयो एकमना विय अहेसुं महादाननिस्सन्देन विपुल-बलविरियेन—'नत्थेदिसो, महाराज, अञ्ञस्स दानानुभावो यथा वेस्सन्तरस्स रञ्ञो महादानानुभावो'। यथा, महाराज, महिया बहुविधा मणयो विज्जन्ति, सेय्यथीदं— इन्दनीलो, महानीलो, जोतिरसो, वेळुरियो, उम्मापुप्फो, सिरीसपुप्फो, मनोहरो, सुरियकन्तो, चन्दकन्तो, वजिरा, खज्जोपनको, फुस्सरागो, लोहितङ्गो, मसारगल्लो ति। एते सब्बे अतिक्कम्म चक्कवत्तिमणि अग्गमक्खायति। चक्कवत्तिमणि, महाराज, समन्ता योजनं ओभासेति; एवमेव खो, महाराज, यं किञ्चि महिया दानं विज्जति अपि असदिसदानं

लगा। फेन की मालायें उठने लगीं। समुद्र में भारी उथल-पुथल मच गयी। असुर, गरुड़, यक्ष, नाग सभी डर के मारे घबरा गये—अरे यह क्या! क्या समुद्र उलट जायगा! और धड़कते हुए हृदय से बचने का मार्ग खोजने लगे। जल में विक्षोभ होने से पृथ्वी भी हिलने लगी; क्योंकि वह उसी पर ठहरी है। पहाड़ों की बड़ी-बड़ी चोटियाँ तथा सुमेरु झुक गये। पृथ्वी के काँपने से साँप, नेवले, बिल्लियाँ, सियार, भालू, हरिण और पक्षी—सभी व्याकुल हो गये। निम्न श्रेणी के यक्ष रोने लगे; किन्तु उच्च श्रेणी के यक्ष बहुत प्रसन्न हुए।

३४. "महाराज! कोई बड़ी कड़ाही पानी से भर कर चूल्हे पर रख दी जाय, उसमें अधिक चावल छोड़ दिया जाय। फिर, चूल्हे में जलती हुई अग्नि पहले कड़ाही के पेंदे को तपावे, उसके बाद जल गरम होकर खौलने लगे। जल के खौलने से चावल के दाने ऊपर-नीचे होने लगे। उनके ऊपर बहुत बुलबुले छूटने लगें और फेन का ताँता बँध जाय। महाराज! उसी तरह, वेस्सन्तर राजा ने अपनी प्रिय से प्रिय चीजों का भी दान कर डाला, जिनका देना बड़ा कठिन समझा जाता है। उनकी दानशीलता के प्रभाव से महावायु में विक्षोभ हुए विना नहीं रह सका। वायु के चञ्चल होने से जल भी चञ्चल हो उठा। और जल के चञ्चल होने से महापृथ्वी काँपने लगी। मानों उस महादानशीलता के प्रभाव से वायु, जल और पृथ्वी—तीनों पृथक्-पृथक् हो गये हों। महाराज! वेस्सन्तर राजा के उस महादान के समान किसी दूसरे ने दान नहीं किया। महाराज! इस पृथ्वी में नाना प्रकार के रत्न हैं, जैसे—इन्द्रनील, महानील, ज्योतिरस, वैदूर्य, ऊर्मापुष्प, शिरीषपुष्प, मनोहर, सूर्यकान्त, चन्द्रकान्त, वज्र, खाद्योपनक, स्पर्शराग, लोहिताङ्ग, मसारगल्ल इत्यादि। किन्तु, चक्रवर्ती-रत्न[1] इन सभी से बढ़कर समझा जाता है। महाराज! चक्रवर्ती-रत्न चारों ओर योजन भर अपने प्रकाश को फैलाता है। महाराज! इसी तरह, इस पृथ्वी पर

---

१. द्र०— दी० नि०, 'चक्रवर्ती सूत्र।'

परमं, तं सब्बं अतिक्कम्म वेस्सन्तरस्स रञ्ञो महादानं अग्गमक्खायति। वेस्सन्तरस्स, महाराज, रञ्ञो महादाने दीयमाने सत्तक्खत्तुं महापथवी कम्पिता'' ति।

३५. ''अच्छरियं, भन्ते नागसेन, बुद्धानं, यं तथागतो बोधिसत्तो समानो असमो लोकेन एवंखन्ति एवंचित्तो एवंअधिमुत्ति एवंअधिप्पायो। बोधिसत्तानं, भन्ते नागसेन, परक्कमो दक्खापितो, पारमी च जिनानं भिय्यो ओभासिता, चरियं चरतो पि ताव तथागतस्स सदेवके लोके सेट्ठभावो अनुदस्सितो। साधु, भन्ते नागसेन, थोमितं जिनसासनं, जोतिता जिनपारमी, छिन्ना तित्थियानं वादगण्ठि, भिन्ना परप्पवादकुम्भा, पञ्हो गम्भीरो उत्तानीकतो, गहनं अगहनं कतं, सम्मा लद्धं जिनपुत्तानं निब्बाहनं, एवमेतं गणिवरपवर, तथा सम्पटिच्छामी'' ति।

५. सिविराजचक्खुदानपञ्हो

३६. ''भन्ते नागसेन, तुम्हे एवं भणथ— 'सिविराजेन याचकस्स चक्खानि दिन्नानि, अन्धस्स सतो पन दिब्बचक्खूनि उप्पन्नानी' ति। एतं पि वचनं सकसटं सनिग्गहं सदोसं। 'हेतुसमुग्घाते अहेतुस्मिं अवत्थुस्मिं नत्थि दिब्बचक्खुस्स उप्पादो' ति सुत्ते वुत्तं। यदि, भन्ते नागसेन, सिविराजेन याचकस्स चक्खूनि दिन्नानि, तेन हि 'पुन दिब्बचक्खूनि उप्पन्नानी' ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि दिब्बचक्खूनि उप्पन्नानि, तेन हि 'सिविराजेन याचकस्स चक्खूनि दिन्नानी' ति यं वचनं तं पि मिच्छा? अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो गण्ठितो पि गण्ठितरो, वेठतो पि वेठतरो, गहनतो पि गहनतरो, सो तवानुप्पत्तो। तत्थ छन्दमभिजनेहि निब्बाहनाय, परवादानं निग्गहाया'' ति?

आज तक जितने बड़े–बड़े दान किये गये हैं, उनमें वेस्सन्तर राजा का महादान सर्वश्रेष्ठ है! महाराज! वेस्सन्तर राजा के महादान देते समय पृथ्वी सात बार काँप उठी थी।''

३५. ''भन्ते नागसेन! बुद्धों की बातें आश्चर्यमयी हैं, अद्भुत हैं। क्षान्ति, चित्त, अधिमुक्ति तथा अभिप्राय में भगवान् बोधिसत्व रहते हुए ही अद्वितीय थे। भन्ते! बोधिसत्वों के पराक्रम को आपने दिखला दिया, उन जितेन्द्रियों की पारमिताओं को प्रकाश में ला दिया। भगवान् के वीर्य की श्रेष्ठता को भी बता दिया। भन्ते! आपने अच्छा समझाया! बुद्ध–धर्म ऊँचा करके दिखा दिया। बुद्ध–पारमिताओं की कीर्ति फैला दी। विपक्षी मतों के कुतर्कों की गुत्थियाँ सुलझा दीं। सभी झूठे सिद्धान्तों का भण्डाफोड़ कर दिया। इतनी जटिल द्विविधा स्पष्ट कर दी। जंगल काट कर साफ कर दिया। बुद्ध के पुत्रों ने अपनी यथेच्छ वस्तु पा ली। भन्ते! आप गणाचार्यों में श्रेष्ठ हैं। आप ने सर्वथा ठीक कहा, मैं भी ऐसा मान लेता हूँ।''

५. शिवि राजा का नेत्रदान— ३६. ''भन्ते नागसेन! आप लोग कहा करते हैं— 'शिवि राजा ने याचकों को अपनी आँखें भी दान में दे डालीं। अपने अंधे हो जाने के बाद उनकी आँखें फिर दिव्य प्रभाव से जम गयीं'— यह बात नहीं जँचती। इसे कहने वाला दुविधा में डाला जा सकता है। ऐसा कहना मिथ्या है। सूत्रों में कहा गया है— 'हेतु के सर्वथा नष्ट हो जाने पर, किसी हेतु या आधार के न रहने पर दिव्य चक्षु नहीं उत्पन्न हो सकता।' (क) भन्ते! यदि शिवि राजा ने यथार्थ में अपनी आँखें दान कर डालीं, तो यह बात झूठ ठहरती है कि उनकी आँखें फिर भी दिव्य प्रभाव से जम गयीं; और (ख) यदि यथार्थ में उनकी आँखें दिव्य प्रभाव से जमीं थी तो यह बात झूठी ठहरती है कि उन्होंने याचकों को अपनी आँखें भी दान कर डालीं। भन्ते! यह दुविधा गाँठ से भी अधिक जकड़ी हुई है, तीर से भी अधिक तेज है और घने

---

१. द्र०— *'शिवि-जातक'*।

"दिन्नानि, महाराज, सिविराजेन याचकस्स चक्खूनि, तत्थ मा विमतिं उप्पादेहि। पुन दिब्बानि च चक्खूनि उप्पन्नानि, तत्थापि च मा विमतिं जनेही" ति। "अपि नु खो, भन्ते नागसेन, हेतुसमुग्घाते अहेतुस्मिं अवत्थुम्हि दिब्बचक्खु उप्पज्जती" ति? "नहि, महाराजा" ति। "किं पन, भन्ते, एत्थ कारणं येन कारणेन हेतुसमुग्घाते अहेतुस्मिं अवत्थुस्मिं दिब्बचक्खु उप्पज्जति—इङ्घ ताव कारणेन मं सञ्ञापेही" ति।

३७. "किं पन, महाराज, अत्थि लोके सच्चं नाम येन सच्चवादिनो सच्चकिरियं करोन्ती ति"? "आम, भन्ते, अत्थि लोके सच्चं नाम। सच्चेन, भन्ते नागसेन, सच्चवादिनो सच्चकिरियं कत्वा देवं वस्सापेन्ति, अग्गिं निब्बापेन्ति, विसं पटिहनन्ति, अञ्ञं पि विविधं कत्तब्बं करोन्ती" ति। "तेन हि, महाराज, युज्जति समेति— 'सिविराजस्स सच्चबलेन दिब्बचक्खूनि उप्पन्नानी' ति। सच्चबलेन, महाराज, अवत्थुम्हि दिब्बचक्खु उप्पज्जति, सच्चं येव तत्थ वत्थु भवति दिब्बचक्खुस्स उप्पादाय।

"यथा, महाराज, ये केचि सिद्धा सच्चमनुगायन्ति— 'महामेघो पवस्सतू' ति, तेसं सह सच्चमनुगीतेन महामेघो पवस्सति। अपि नु खो, महाराज, अत्थि आकासे वस्सहेतु सन्निचितो येन हेतुना महामेघो पवस्सती" ति? "नहि, भन्ते; सच्चं येव तत्थ हेतु भवति महतो मेघस्स पवस्सनाया" ति। "एवमेव खो, महाराज, नत्थि तस्स पकतिहेतु, सच्चं येवेत्थ वत्थु भवति दिब्बचक्खुस्स उप्पादाया" ति।

जंगलों से भी अधिक घनी है। यह आपके सामने रक्खी गयी है। इस द्विविधा को आप खोल दें, जिससे विपक्षी मतों के झूठे तर्क न चलने पावें।"

"महाराज! शिवि राजा ने माँगने वालों को अपनी आँखें दान कर डाली थीं, इसमें आप कोई भी सन्देह न करें। उसके बदले दिव्य प्रभाव से उनकी आँखें फिर जम गयी थीं, इसमें भी कोई सन्देह न करें।" "भन्ते नागसेन! हेतु के सर्वथा नष्ट हो जाने और कोई हेतु या आधार के न रहने पर भी क्या दिव्य–चक्षु उत्पन्न हो सकता है?" "नहीं, महाराज!" "भन्ते ! तब, उसके सर्वथा नष्ट हो जाने तथा कोई हेतु या आधार न रहने पर भी उनकी आँखें पुन: कैसे जम गयी? अब आप इस बात को मुझे समझावें?"

३७. "महाराज! क्या इस लोक में सत्य नाम की भी कोई वस्तु है, जिसके अनुसार सत्य बोलने वाले लोग अपना सत्य–कर्म करते हैं?" "हाँ, भन्ते! सत्य नाम की वस्तु है। इसी के सहारे सत्यवादी लोग....जल भी बरसा सकते हैं, धधकती अग्नि को भी बुझा सकते हैं, विष को भी शान्त कर सकते हैं तथा इसी तरह और जो भी चाहें कर सकते हैं।" "महाराज! तब तो यही बात शिवि राजा के साथ भी घटती है। यह सत्य का ही प्रताप था कि शिवि राजा को आँखें फिर मिल गयीं थीं। किसी हेतु के उपस्थित न रहने पर भी सत्य ही के प्रताप से ऐसा हुआ था। यहाँ पर तो सत्य ही को उसका हेतु समझना चाहिये।

"महाराज ! जो बड़े–बड़े सिद्ध पुरुष हैं, उनके 'जल बरसे'— इतना कहने मात्र से उनके सत्य–बल से जल बरसने लगता है। तो क्या उस समय आकाश में वर्षा होने के सभी लक्षण पहले से रहते हैं, जिसके कारण जल बरस जाता है?" "नहीं, भन्ते! वहाँ उनका सत्य–बल ही जल बरसा देने का कारण होता है।" "महाराज! इसी तरह शिवि राजा के विषय में कोई साधारण प्राकृतिक कारण नहीं था; वहाँ तो सत्य का प्रताप ही एकमात्र कारण था।"

३८. "यथा वा पन, महाराज, ये केचि सिद्धा सच्चमनुगायन्ति— 'जलितपज्जलितमहाअग्गिक्खन्धो पटिनिवत्ततू' ति, तेसं सह सच्चमनुगीतेन जलितपज्जलितमहाअग्गिक्खन्धो खणेन पटिनिवत्तति। अपि नु खो, महाराज, अत्थि तस्मिं जलितपज्जलिते महाअग्गिक्खन्धे हेतु सन्निचितो तेन हेतुना जलितपज्जलितमहाअग्गिक्खन्धो खणेन पटिनिवत्तती' ति? "नहि, भन्ते, सच्चं येव तत्थ वत्थु होति तस्स जलितपज्जलितस्स महाअग्गिक्खन्धस्स खणेन पटिनिवत्तनाया" ति। "एवमेव खो, महाराज, नत्थि तस्स पकतिहेतु, सच्चं येव तत्थ वत्थु भवति दिब्बचक्खुस्स उप्पादाया ति।

३९. "यथा वा पन, महाराज, ये केचि सिद्धा सच्चमनुगायन्ति— 'विसं हलाहलं अगदं भवतू' ति, तेसं सह सच्चमनुगीतेन विसं हलाहलं खणेन अगदं भवति। अपि नु खो, महाराज, अत्थि तस्मिं हलाहलविसे हेतु सन्निचितो येन हेतुना विसं हलाहलं खणेन अगदं भवती" ति? "नहि, भन्ते; सच्चं येव तत्थ हेतु भवति विसस्स हलाहलस्स खणेन पटिघाताया" ति। "एवमेव, खो, महाराज, विना पकतिहेतुं सच्चं येवेत्थ वत्थु भवति दिब्बचक्खुस्स उप्पादाया ति।

४०. "चतुन्नं पि, महाराज, अरियसच्चानं पटिवेधाय नत्थञ्ञं वत्थु, सच्चं वत्थुं कत्वा चत्तारि अरियसच्चानि पटिविज्झन्ती ति।

"अत्थि, महाराज, चीनविसये चीनराजा। सो महासमुद्दे बलिं कीळितुकामो चतुमासे चतुमासे सच्चकिरियं कत्वा सह रथेन अन्तोमहासमुद्दे योजनं पविसति, तस्स रथसीसस्स पुरतो पुरतो महावारिक्खन्धो पटिक्कमति, निक्खन्तस्स पुन ओत्थरति। अपि नु खो महाराज, सो महासमुद्दो सदेवमनुस्सेन पि लोकेन पकतिकायबलेन सक्का पटिक्कमापेतुं'" ति? "अतिपरित्ते पि, भन्ते, तळाके उदकं न सक्का सदेवमनुस्सेन पि लोकेन पकतिकायबलेन पटिक्कमापेतुं, किं

---

३८. "महाराज! जो बड़े-बड़े सिद्ध पुरुष हैं, उनके 'अग्नि बुझ जाय'—इतना कहने मात्र से तेज धधक कर जलती लकड़ियों का ढेर भी क्षण भर में बुझ कर ठंढा हो जाता है। तो क्या, महाराज! पहले से ही ऐसे लक्षण उपस्थित रहते हैं, जिनके कारण अङ्गारसमूह क्षण भर में बुझकर ठंढा हो जाता है?" "नहीं, भन्ते! वहाँ उनका केवल सत्य-बल ही अग्नि के बुझ जाने का कारण होता है।" "महाराज! इसी तरह शिवि राजा के विषय में भी....उनके सत्य का प्रताप ही एक कारण था।

३९. "महाराज! जो बड़े-बड़े सिद्ध पुरुष हैं, उनके 'हलाहल विष शान्त हो जाय'— इतना कहने मात्र से तीक्ष्ण से तीक्ष्ण विष भी दब जाता है। तो क्या यहाँ विष के दबने के लक्षण पहले से ही रहते हैं?" "नहीं, भन्ते! उनके सत्य का प्रताप ही यहाँ कारण होता है।" "महाराज! इसी तरह, शिवि राजा के विषय में भी....सत्य का प्रताप ही एकमात्र कारण था।

४०. "महाराज! चार आर्यसत्यों के साक्षात्कार करने का भी कोई दूसरा कारण नहीं होता; इसी सत्य के आधार पर उनका भी साक्षात्कार होता है।

"महाराज! चीन देश में चीनी लोगों का एक राजा रहता है। वह समुद्र को बाँध देने की इच्छा से, कभी-कभी चार महीनों का अन्तर देकर एक सत्य-व्रत का पालन करता है। उसके बाद अपने रथ में सिंहों को जोतकर समुद्र के अन्दर योजन भर जाता है। उस समय उसके रथ के आगे से समुद्र की लहरें तो पीछे हट जाती हैं। जब वह रथ लौटा लेता है, तो लहरें फिर अपनी जगहों पर लौट आती

पन महासमुद्दे उदकं'' ति।''इमिना पि, महाराज, कारणेन सच्चबलं ञातब्बं—नत्थि तं ठानं यं सच्चेन न पत्तब्बं ति।

४१. ''नगरे, महाराज, पाटलिपुत्ते असोको धम्मराजा सनेगमजानपदअमच्चभटबल-महामत्तेहि परिवुतो गङ्गानदिं नवसलिलसम्पुण्णं समतित्थिकं सम्भरितं पञ्चयोजनसतायामं योजनपुथुलं सन्दमानं दिस्वा अमच्चे एवमाह— 'अत्थि कोचि, भणे, समत्थो इमं महानदिं पटिसोतं सन्दापेतुं' ति? अमच्चा आहंसु—'दुक्करं, देवा' ति।

''तस्मिं येव गङ्गाकूले ठिता बिन्दुमती नाम गणिका अस्सोसि—रञ्ञा किर एवं वुत्तं: 'सक्का नु खो महागङ्गं पटिसोतं सन्दापेतुं' ति। सा एवमाह—'अहं हि नगरे पाटलिपुत्ते गणिका रूपूपजीविनी अन्तिमजीविका, मम ताव राजा सच्चकिरियं पस्सतू' ति। अथ सा सच्चकिरियं अकासि। सह तस्सा सच्चकिरियाय खणेन सा महागङ्गा गळगळन्ती पटिसोतं सन्दित्थ, महतो जनकायस्य पस्सतो।

''अथ राजा गङ्गाय आवट्टऊमिवेगजनितं हलाहलसद्दं सुत्वा विम्हितो अच्छरिय-ब्भुतजातो अमच्चे एवमाह—'किस्सायं, भणे, महागङ्गा पटिसोतं सन्दती' ति? 'बिन्दुमती, महाराज, गणिका तव वचनं सुत्वा सच्चकिरियं अकासि, तस्सा सच्चकिरियतो महागङ्गा उद्धमुखा सन्दती' ति। अथ संविग्गहदयो राजा सयं गन्त्वा तं गणिकं पुच्छि—'सच्चं किर,

---

हैं। क्या समुद्र देवता और मनुष्यों की साधारण शक्ति से बाँधा जा सकता है?'' ''भन्ते! समुद्र की बात तो छोड़ दें, एक छोटे सरोवर के जल को भी इस तरह वश में नहीं लाया जा सकता।'' ''महाराज! इतने से ही आप सत्य के बल को समझ लें! संसार में कोई भी ऐसा नहीं है, जहाँ सत्य-बल की पहुँच न हो।

४१. ''महाराज! एक दिन पाटलिपुत्र में धर्मराज अशोक अपने गाँव-नगर-वासियों, अधिकारियों, नौकरों और मन्त्रियों के साथ गङ्गा नदी देखने गये। उस समय गङ्गा नदी नया जल आ जाने से किनारों तक भरी हुई थी। उस पाँच सौ योजन लम्बी और एक योजन चौड़ी बढ़ी हुई नदी को देखकर धर्मराज अशोक बोले—'क्या तुम लोगों में कोई ऐसा है, जो गङ्गा नदी की धारा को उल्टी बहा दे?' अधिकारियों ने कहा—'देव! भला ऐसा कौन हो सकता है?'

''उसी समय विन्दुमती नाम की एक गणिका भी वहीं (गङ्गा नदी के किनारे) आयी हुई थी। उसने राजा का प्रश्न सुना। वह अपने मन में बोली—'मैं तो इस पाटलिपुत्र नगर में अपने रूप को बेच कर जीने वाली एक गणिका हूँ। मेरी जीविका बहुत ही नीच कोटि की है तो भी राजा आज मेरे सत्यबल को देख लें!' तब उसने अपना सत्यबल लगाया। उसके सत्यबल लगाते ही गङ्गा नदी उलटी धार हो गड़गड़ाते हुये बहने लगी। सभी लोग देखते रह गये।

''गङ्गा की तरङ्गों के आपस में टकराने से बहुत भारी शब्द हो उठा, उसे सुन राजा आश्चर्य से भर गये; और चकित होकर अपने अधिकारियों से पूछने लगे—'अरे! यह गङ्गा नदी उलटी धारा में कैसे बहने लगी?' 'महाराज! आप के प्रश्न को सुनकर विन्दुमती गणिका ने अपना सत्यबल लगाया है, उसी से यह गङ्गा नदी अब ऊपर की ओर बह रही हैं। राजा को बहुत विस्मय हुआ। वे तत्काल स्वयं उस गणिका के पास गये और बोले—'जे'[1]! क्या सचमुच तुम्हारे सत्यबल लगाने से ही यह गङ्गा नदी उलटी

---

१. पालि भाषा में यह शब्द स्त्री को सम्बोधन करने के लिये प्रचलित था। आजकल मगध में इसका रूपान्तर 'अगे' है।

जे, तया सच्चकिरियाय अयं गङ्गा पटिसोतं सन्दापिता' ति? 'आम देवा' ति। राजा आह— 'किं ते तत्थ बलं अत्थि को वा ते वचनं आदियति अनुम्मत्तो, केन त्वं बलेन इमं महागङ्गं पटिसोतं सन्दापेसी' ति? सा आह—'सच्चबलेनाहं, महाराज, इमं महागङ्गं पटिसोतं सन्दापेसिं' ति। राजा आह—'किं ते सच्चबलं अत्थि चोरिया धुत्तिया असतिया छिन्निकाय पापिया भिन्नसीलाय हिरिअतिक्कन्तिकाय अन्धजनपलोभिकाया' ति? 'सच्चं, महाराज, तादिसिका अहं; तादिसिकाय पि मे, महाराज, सच्चकिरिया अत्थि, यायाहं इच्छमाना सदेवकं पि लोकं परिवत्तेय्यं' ति। राजा आह—'कतमा पन सा होति सच्चकिरिया, इङ्घ मं सावेही' ति? 'यो मे, महाराज, धनं देति खत्तियो वा ब्राह्मणो वा वेस्सो वा सुद्दो वा अञ्ञो वा कोचि, तेसं समकं येव उपट्ठहामि। खत्तियो ति विसेसो नत्थि, सुद्दो ति अतिमञ्ञना नत्थि, अनुनयपटिघविप्पमुत्ता धनसामिकं परिचरामि, एसा मे, देव, सच्चकिरिया, यायाहं इमं महागङ्गं पटिसोतं सन्दापेसिं' ति।

४२. "इति पि, महाराज, सच्चे ठिता न किञ्चि अत्थं न विन्दन्ति। दिन्नानि च, महाराज, सिविराजेन याचकस्स चक्खूनि, दिब्बचक्खूनि च उप्पन्नानि, तं च सच्चकिरियाय। यं पन सुत्ते वुत्तं— 'मंसचक्खुस्मिं नट्ठे अहेतुस्मिं अवत्थुम्हि नत्थि दिब्बचक्खुस्स उप्पादो' ति, 'तं भावनामयं चक्खुं सन्धाय वुत्तं' ति एवमेतं, महाराज, धारेही" ति।

"साधु, भन्ते नागसेन, सुनिब्बेठितो पञ्हो, सुनिद्दिट्ठो निग्गहो, सुमद्दिता परवादा, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी" ति।

धारा में बह रही हैं?' 'हाँ, महाराज!' राजा बोले— 'तुम्हें सत्य-बल कहाँ से आया? या, किसी ने तुम से यह सुनकर यों ही आकर मुझसे कह दिया? तुमने कैसे गङ्गा नदी को उलटी धारा में बहा दिया?' वह बोली—'महाराज! अपने सत्यबल से।' राजा बोल उठे—'अरे, तुम जैसी चोर, ठगनी, बुरी, छिनाल, पापिनी, बुरे से बुरे कर्म करने वाली, काम से अन्धे बने लोगों को लूटकर जीने वाली स्त्री को सत्यबल कैसा?' 'महाराज! आप ठीक ही कहते हैं। मैं ठीक वैसी ही स्त्री हूँ। किन्तु, वैसी होती हुई भी मुझ में सत्यबल का इतना तेज है कि मैं उससे देवताओं और मनुष्यों के साथ इस लोक को भी उलट सकती हूँ।' राजा बोले—'वह सत्यबल क्या है मुझे सुनाओ तो सही!' 'महाराज! चाहे क्षत्रिय हो या ब्राह्मण, वैश्य हो या शूद्र, जो भी मुझे एक बार धन दे देता है, मैं उन सभी को समान समझ कर सेवा करती हूँ। न क्षत्रियों को ऊँचा और न शूद्रों को नीचा समझती हूँ। ऊँच-नीच का भाव सर्वथा छोड़कर जो मुझे धन देता है मैं उसकी सेवा करती हूँ। महाराज! मेरा सत्यबल यही है। इसी सत्यबल से मैंने गङ्गा नदी को उलटी धारा में बहा दिया।'

४२. यह कथा कहकर आयुष्मान् नागसेन बोले— "महाराज! इसी तरह, ऐसा कोई भी कार्य नहीं, जो सत्य पर दृढ़ रहने वाले न कर सकें। महाराज! शिवि राजा ने माँगने वालों को अपनी आँखें भी दे डाली और उनके सत्यबल से उनकी आँखें फिर मिल गयी! यह केवल उनके सत्य का प्रताप था। महाराज! जो सूत्रों में कहा गया है—'इस भौतिक चक्षु (मांस-चक्षु) के नष्ट हो जाने तथा उसके कारण और आधार के सर्वथा चले जाने पर कोई दिव्य चक्षु की उत्पत्ति नहीं होती'—वह भावनामय-चक्षु के विषय में कहा गया है। महाराज! इसे ऐसा ही समझें।"

"भन्ते नागसेन! आपने ठीक कहा। आप ने इस द्विविधा को अच्छी तरह खोल दिया। विपक्षी वक्ताओं का मुँह तोड़ दिया। आप के कथन को मैं मान लेता हूँ।"

६. गब्भावक्कन्तिपञ्हो

४३. "भन्ते नागसेन, भासितं पेतं भगवता—'तिण्णं खो पन, भिक्खवे, सन्निपाता गब्भस्स अवक्कन्ति होति, इध मातापितरो च सन्निपतिता होन्ति, माता च उतुनी होति, गन्धब्बो च पच्चुपट्ठितो होति। इमेसं खो, भिक्खवे, तिण्णं सन्निपाता गब्भस्स अवक्कन्ति होती' ति। *(अं० नि०, ति० नि०)* असेसवचनमेतं, निस्सेसवचनमेतं, निप्परियायवचनमेतं, अरहस्स-वचनमेतं, सदेवमनुस्सानं मज्झे निसीदित्वा भणितं। अयं च द्विन्नं सन्निपाता गब्भस्स अवक्कन्ति दिस्सति—दुकूलेन तापसेन पारिकाय तापसिया उतुनीकाले दक्खिणेन हत्थङ्गुट्ठेन नाभि परामट्ठा, तस्स तेन नाभिपरामसनेन सामकुमारो निब्बत्तो। मातङ्गेना पि इसिना ब्राह्मणकञ्ञाय उतुनीकाले दक्खिणेन हत्थङ्गुट्ठेन नाभि परामट्ठा, तस्स तेन नाभिपरामसनेन मण्डब्यो माणवको निब्बत्तो ति। यदि, भन्ते नागसेन, भगवता भणितं—'तिण्णं खो पन, भिक्खवे, सन्निपाता गब्भस्स अवक्कन्ति होती' ति, तेन हि 'सामो च कुमारो मण्डब्यो च माणवको उभो पि ते नाभिपरामसनेन निब्बत्ता' ति यं वचनं, तं मिच्छा? यदि, भन्ते नागसेन, भणितं—'सामो च कुमारो मण्डब्यो च माणवको नाभिपरामसनेन निब्बत्ता' ति, तेन हि 'तिण्णं खो पन, भिक्खवे, सन्निपाता गब्भस्स अवक्कन्ति होती' ति यं वचनं तं मिच्छा। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो सुगम्भीरो सुनिपुणो विसयो बुद्धिमन्तानं, सो तवानुप्पत्तो, छिन्द विमतिपथं, धारेहि ञाणवरप्पज्जोतं" ति?

४४. "भासितं पेतं, महाराज, भगवता— 'तिण्णं खो पन, भिक्खवे, सन्निपाता गब्भस्स अवक्कन्ति होति— इध मातापितरो च सन्निपतिता होन्ति, माता च उतुनी होति, गन्धब्बो च पच्चुपट्ठितो होति; एवं तिण्णं सन्निपाता गब्भस्स अवक्कन्ति होती' ति। भणितं

---

६. गर्भावक्रान्तिविषयक प्रश्न— ४३. "भन्ते नागसेन! भगवान् ने कहा है—'तीन बातों के मिलने से ही गर्भ–धारण होता है—१. माता–पिता का मिलना, २. माता का ऋतुनी होना और ३. गन्धर्व। इन तीनों के मिलने से ही गर्भ–धारण होता है।' यह बात सभी जगह चरितार्थ होती है। कोई ऐसी जगह नहीं है जहाँ यह झूठी ठहरे। इस पर और कुछ समालोचना नहीं की जा सकती। यह बात अर्हत् द्वारा कही गयी है। उन्होंने देवताओं और मनुष्यों के बीच में बैठकर कहा था— 'दो (स्त्री और पुरुष) के संयोग होने से ही गर्भ होता है।' दुकूल नामक तापस ने पारिका नामक तापसी की नाभि को उसके ऋतुमती होने के समय में अपने दाहिने हाथ के अंगूठे से छू दिया था। उस स्पर्शमात्र से उसे माण्डव्य नाम का लड़का पैदा हो गया। भन्ते नागसेन! (क) यदि भगवान् की ऊपर वाली कही गयी बात सच है तो साम और माडव्य के उस तरह पैदा होने की बात झूठी ठहरती है। (ख) और यदि भगवान् ने यह यथार्थ में कहा है कि 'साम और माण्डव्य इन दो लड़कों का जन्म उस प्रकार केवल नाभि के स्पर्शमात्र से हो गया था' तो उनकी यह बात झूठी ठहरती है कि 'उन तीनों के संयोग से ही गर्भ–धारण होता है'! भन्ते! यह दुविधा भी बड़ी गम्भीर और सूक्ष्म है। यह बुद्धिमानों के ही समझने योग्य है। अतः यह दुविधा आपके सामने रखी गयी है। कृपया विपक्षी मतों का खण्डन करते हुए ज्ञान के उत्तम प्रकाश को फैलावें।"

४४. "महाराज! भगवान् ने यह ठीक ही कहा है— 'भिक्षुओ! तीन बातों के मिलने से ही गर्भ धारण होता है— १. माता पिता का संयोग, २. माता का ऋतुनी होना और ३. गन्धर्व (काम)। इन तीनों के मिलने से ही गर्भधारण होता है'। महाराज! भगवान् ने यह भी यथार्थ कहा है कि 'साम और माण्डव्य

च— 'सामो च कुमारो, मण्डब्यो च माणवको नाभिपरामसनेन निब्बत्ता' '' ति। ''तेन हि, भन्ते नागसेन, येन कारणेन पञ्हो सुविनिच्छितो होति तेन कारणेन मं सञ्ञापेही'' ति? ''सुतपुब्बं पन तया, महाराज, सङ्किच्चो च कुमारो इसिसिङ्गो च तापसो थेरो च कुमारकस्सपो— इमिना नाम ते निब्बत्ता'' ति? ''आम, भन्ते, सूयति। अब्भुग्गता तेसं जाति— द्वे मिगधेनुयो ताव उतुनीकाले द्विन्नं तापसानं पस्सावट्ठानं आगन्त्वा ससम्भवं पस्सावं पिविंसु, तेन पस्सावसम्भवेन सङ्किच्चो च कुमारो इसिसिंगो च तापसो निब्बत्ता। थेरस्स उदायिस्स भिक्खुनुपस्सयं उपगतस्स रत्तचित्तेन भिक्खुनिया अङ्गजातं उपनिज्झायन्तस्स सम्भवं कासावे मुच्चि। अथ खो आयस्मा उदायि तं भिक्खुनिं एतदवोच— 'गच्छ, भगिनि, उदकं आहर, अन्तरवासकं धोविस्सामी' ति। 'आहर, अय्य, अहमेव धोविस्सामी' ति। ततो सा भिक्खुनी उतुनीसमये तं सम्भवं एकदेसं मुखेन अग्गहेसि, एकदेसं अङ्गजाते पक्खिपि, तेन थेरो कुमारकस्सपो निब्बत्तो ति एवं जनो आहा'' ति।

''अपि नु खो त्वं, महाराज, सद्दहसि तं वचनं'' ति? ''आम, भन्ते, बलवं तत्थ मयं कारणं उपलभाम, येन मयं कारणेन सद्दहाम— 'इमिना कारणेन निब्बत्ता' '' ति। ''किं पनेत्थ, महाराज, कारणं'' ति? ''सुपरिकम्मकते, भन्ते, कलले बीजं निपतित्वा खिप्पं संविरूहती'' ति। ''आम, महाराजा'' ति। ''एवमेव खो, भन्ते, सा भिक्खुनी उतुनी सामाना सण्ठिते कलले रुहिरे पच्छिन्नवेगे ठिताय धातुया तं सम्भवं गहेत्वा तस्मिं कलले पक्खिपि, तेन तस्सा गब्भो सण्ठासि। एवं तत्थ कारणं पच्चेम तेसं निब्बत्तिया'' ति। ''एवमेतं,

---

का जन्म केवल नाभि के स्पर्श मात्र से हो गया था'।'' ''भन्ते! कृपया इसे स्पष्ट करते हुए मुझे समझावें।'' ''महाराज! क्या आपने पहले कभी सुना है कि सांकृत्य (संकिच्च) कुमार, इसिसिङ्ग तापस और स्थविर कुमारकाश्यप का जन्म कैसे हुआ था?'' ''हाँ, भन्ते! सुना है। उनके जन्म के विषय में भला कौन नहीं जानता? दो हिरनियाँ ऋतुनी होने के समय दो तपस्वियों के मूत्रस्थान पर गयी और उन तपस्वियों का मूत्र पी गयीं। उस से सांकृत्य कुमार और ऋष्यशृङ्ग तापस का जन्म हुआ था। एक समय उदायि स्थविर भिक्षुओं के आश्रम में गये हुए थे। उस समय उनके चित्त में काम उत्पन्न हो गया और वे भिक्षुणियों के गुह्य स्थानों को ध्यान में लाने लगे। उससे उनको शुक्र-मोचन हो गया। तब, उन्होंने उस भिक्षुणी से कहा— 'बहन! थोड़ा पानी ला दो। मैं अपने नीचे के कपड़े (अन्तरवासक) को धोऊँगा।'' भिक्षुणी बोली— 'मुझे दें! मैं ही धो दूँगी।' भिक्षु ने अपना कपड़ा दे दिया। वह भिक्षुणी उस समय ऋतुमती थी, सो वह भिक्षु के शुक्र को कुछ तो मुँह में डालकर निगल गयी और कुछ उसने अपने गुह्येन्द्रिय में डाल लिया, उसी से स्थविर कुमारकाश्यप का जन्म हुआ। लोग इस कथा को इसी तरह बताते हैं।''

''महाराज! आप इसे ठीक मानते हैं या नहीं?'' ''हाँ, भन्ते! इसके लिए एक बड़ा प्रमाण है जिससे मुझे मानना पड़ता है।'' ''वह कौन सा प्रमाण है?'' ''भन्ते! जब जल से खेत कीचड़ (गीला) होकर तैयार हो जाता है, तो उसमें जो बीज बोया जाता है, बहुत जल्दी जम जाता है न?'' ''हाँ, महाराज!'' ''भन्ते! इसी तरह, उस ऋतुनी भिक्षुणी ने कलल के संस्थित हो जाने, रक्त के रुक जाने तथा धातु के स्थिर हो जाने पर उस शुक्र को लेकर कलल में छोड़ दिया था। इसी से उसे गर्भ रह गया। यही एक बड़ा प्रमाण है।'' ''महाराज! मैं भी इसे मान लेता हूँ। तो आप कुमारकाश्यप के गर्भ-धारण के विषय में कही जाने वाली इस कथा को स्वीकार करते हैं न?'' ''हाँ भन्ते! स्वीकार करता हूँ।''

महाराज, तथा सम्पटिच्छामि—'योनिप्पवेसेन गब्भो सम्भवती' ति। सम्पटिच्छसि पन त्वं, महाराज, थेरस्स कुमारकस्सपस्स गब्भावक्कमनं'' ति?'' आम, भन्ते'' ति।''साधु, महाराज, पच्चागतोसि मम विसयं, एकविधेनपि गब्भावक्कन्तिं कथयन्तो ममानुबलं भविस्ससि। अथ या पन ता द्वे मिगधेनुयो पस्सावं पिवित्वा गब्भं पटिलभिंसु, तासं त्वं सद्दहसि गब्भस्सावक्कमनं'' ति? ''आम, भन्ते। यं किञ्चि भुत्तं पीतं खायितं लेहितं सब्बं तं कललं ओसरति, ठानगतं वुड्ढिमापज्जति। यथा, भन्ते नागसेन, या काचि सरिता नाम सब्बा ता महासमुद्दं ओसरन्ति, ठानगता वुड्ढिमापज्जन्ति; एवमेव खो, भन्ते नागसेन, यं किञ्चि भुत्तं पीतं खायितं लेहितं सब्बं तं कललं ओसरति, ठानगतं वुड्ढिमापज्जति। तेनाहं कारणेन सद्दहामि— मुखगतेन पि गब्भस्सावक्कन्ति होती'' ति।''साधु, महाराज, गाळ्हतरं उपगतोसि मम विसयं, मुखपानेन पि द्वयसन्निपातो भवति। सङ्किच्चस्स च, महाराज, कुमारस्स इसिसिङ्गस्स तापसस्स थेरस्स च कुमारकस्सपस्स गब्भावक्कमनं सम्पटिच्छसी'' ति?''आम, भन्ते, सन्निपातो ओसरती'' ति।

४५. ''सामो पि, महाराज, कुमारो मण्डब्यो च माणवको तीसु सन्निपातेसु अन्तोगधा एकरसा येव पुरिमेन, तत्थ कारणं वक्खामि। दुकूलो च, महाराज, तापसो पारिका च तापसी— उभोपि ते अरञ्ञवासा पविवेकाधिमुत्ता उत्तमत्थगवेसका, तपतेजेन ताव ब्रह्मलोकं सन्तापेसुं। तेसं तदा सक्को देवानमिन्दो सायपातं उपट्ठानं आगच्छति। सो तेसं गरुकतमेत्तताय उपधारेन्तो अद्दस अनागतमद्धाने द्विन्नं पि तेसं चक्खूनं अन्तरधानं, दिस्वा ते एवमाह— 'एकं मे भोन्तो वचनं करोथ, साधु, एकं पुत्तं जनेय्याथ, सो तुम्हाकं उपट्ठाको भविस्सति आलम्बनो चा' ति। 'अलं, कोसिय, मा एवं भणो' ति। ते तस्स तं वचनं न सम्पटिच्छिंसु। अनुकम्पको अत्थकामो

''ठीक है, महाराज! आप मेरे रास्ते पर आ गये। आपने जो एक तरह से गर्भ–धारण का सम्भव होना मान लिया उससे मुझे अत्यधिक बल मिल गया। अच्छा! अब यह बतावें कि जो उन दो हिरनियों को पेशाब पीने से गर्भ रह गया, उस पर विश्वास करते हैं या नहीं?'' ''हाँ, भन्ते! जो कुछ खाया, पीया या चाटा जाता है, सभी कलल ही में जाता है और अपने स्थान पर आ कर बढ़ने लगता है। भन्ते! जैसे सभी नदियाँ समुद्र ही में जाकर गिरती हैं; वैसे ही जो कुछ खाया–पीया या चाटा जाता है, सभी कलल ही में जाता है। इसी कारण, मैं यह भी मान लेता हूँ कि मुँह से भी जाकर गर्भ धारण हो सकता है।'' ''ठीक है, महाराज! आप तो सर्वथा मुझ से सहमत हो गये। तो आप सांकृत्य कुमार, माण्डव्य माणवक तापस और कुमार काश्यप के जन्म के विषय में कही जाने वाली कथा को भी स्वीकार करते हैं?'' ''हाँ भन्ते! स्वीकार करता हूँ।''

४५. ''महाराज! साम कुमार और माण्डव्य माणवक के जन्म में भी तीनों बातें सम्मिलित हैं। उनका जन्म भी ऊपर वाले से मिलता जुलता है। मैं उसका कारण बताता हूँ—दुकूल नाम का तापस और पारिका नाम की तापसी दोनों जंगल में रहते थे! दोनों का ध्यान विवेक, उत्तम अर्थ की खोज में लगा था। उन लोगों की तपस्या के तेज से ब्रह्मलोक भी गर्म हो उठा। उस समय स्वयं इन्द्र भी प्रातः सायं दोनों समय उनकी सेवा के लिये उपस्थित रहता था। इन्द्र ने उन दोनों के विषय में मैत्री–भावना करते समय देखा—'आगे चलकर ये दोनों अन्धे हो जायँगे।' यह देख इन्द्र ने उन दोनों से कहा— 'कृपा कर आप लोग मेरी एक बात स्वीकार कर लें। मेरी बड़ी इच्छा हो रही है कि आप लोगों का एक पुत्र होता। वह पुत्र आप लोगों की सेवा करता और बहुत सहारा देता।' 'हे इन्द्र! हम लोगों को पुत्र से प्रयोजन नहीं

सक्को देवानमिन्दो दुतियं पि....ततियं पि ते एवमाह—'एकं मे भोन्तो वचनं करोथ, साधु, एकं पुत्तं जनेय्याथ। सो तुम्हाकं उपट्ठाको भविस्सति आलम्बनो चा' ति। ततियं पि ते आहंसु—'अलं कोसिय, मा त्वं खो अम्हे अनत्थे नियोजेहि, कदायं कायो न भिज्जिस्सति, भिज्जतु अयं कायो भेदनधम्मो, भिज्जन्तिया पि पठविया, विदलितेसु पब्बतेसु, विनट्ठे चन्दिमसुरिये नेव मयं लोकधम्मेहि मिस्सयिस्साम। मा त्वं अम्हाकं सम्मुखभावं उपगच्छ। उपगतस्स ते एसो विस्सासो, अनत्थचरो त्वं मञ्ञे' ति।

"ततो सक्को देवानमिन्दो तेसं मनं अलभमानो गरुकतो पञ्जलिको पुन याचि—'यदि मे वचनं न उस्सहथ कातुं, यदा तापसी उतुनी होति पुप्फवती तदा त्वं, भन्ते, दक्खिणेन हत्थङ्गुट्ठेन नाभिं परामसेय्यासि, तेन सा गब्भं लच्छति, सन्निपातो येवेस गब्भावक्कन्तिया' ति। 'सक्कोमहं, कोसिय, तं वचनं कातुं, न तावतकेन अम्हाकं तपो भिज्जति, 'होतू' ति सम्पटिच्छिंसु।' ताय च पन वेलाय देवभवने अत्थि देवपुत्तो उस्सन्नकुसलमूलो खीणायुको, आयुक्खयप्पत्तो यदिच्छकं समत्थो ओक्कमितुं, अपि चक्कवत्तिकुले पि। अथ सक्को देवानमिन्दो तं देवपुत्तं उपसङ्कमित्वा एवमाह—'एहि खो, मारिस, सुप्पभातो ते दिवसो, अत्थसिद्धि उपगता यमहं ते उपट्ठानमागमिं, रमणीये ते ओकासे वासो भविस्सति, पतिरूपे कुले पटिसन्धि भविस्सति, सुन्दरेहि मातापितूहि वड्ढेतब्बो भविस्ससि। एहि, मे वचनं करोही' ति याचि। दुतियं पि....ततियं पि याचि सिरसि पञ्जलिकतो।

है। आप ऐसी प्रार्थना न करें। इसे हम लोग नहीं स्वीकार कर सकते।' उन लोगों की भलाई चाहने वाले इन्द्र ने दूसरी और तीसरी बार भी कहा— 'मेरी यह एक बात कृपा कर मान लें! आप लोगों का एक पुत्र होता तो बड़ी अच्छी बात होती। वह आप लोगों की बहुत सेवा करेगा और वृद्धावस्था में बड़ा सहारा होगा।' तीसरी बार भी उन दोनों ने कहा—'रहने दें इन्द्र! हम लोगों को आप अनर्थ में न लगावें। भला यह शरीर कब नहीं नष्ट हो सकता है! तो नष्ट हो जाय, नष्ट होना तो इसका स्वभाव ही है! पृथ्वी के टूक-टूक हो जाने पर भी, पहाड़ों के ढह जाने पर भी, शून्य आकाश के फट जाने पर भी तथा चन्द्र और सूर्य के टूट कर गिर पड़ने पर भी हम लोग सांसारिक कामों में नहीं फँस सकते। अब आप हम लोगों के सामने न आवें। आपके आने पर कुछ विश्वास हुआ था, किन्तु अब ज्ञात हुआ है कि आप हम लोगों का अहित चाहने वाले हैं।'

"तब देवेन्द्र उन लोगों को सहमत न कर कर सकने पर फिर विनयपूर्वक हाथ जोड़ कर बोला—'यदि आप मेरी बात पर तैयार नहीं होते हैं तो केवल इतना ही करें कि तापसी के ऋतुमती तथा पुष्पवती होने पर उसकी नाभि को अपने दाहिने हाथ के अंगूठे से छू दें। इतने से भी उसे गर्भ धारण हो जायगा। गर्भ धारण के लिये इतना ही पर्याप्त होगा।' 'हाँ इन्द्र! मैं इतना तो कर सकता हूँ। इसके करने मात्र से हम लोगों का तप नहीं टूटेगा।'—इतना कहकर उसने इन्द्र की बात को स्वीकार कर लिया। उस समय देवलोक में एक पुण्यवान् देवपुत्र रहता था। अपने पुण्य समाप्त हो जाने से वहाँ उसकी आयु भी समाप्त हो चली थी। अपनी इच्छा के अनुसार कहीं भी वह जन्म ग्रहण करने में समर्थ था। यदि वह चाहता तो चक्रवती राजा के कुल में भी उत्पन्न हो सकता था। तब देवेन्द्र ने उस देवपुत्र के पास जाकर यों कहा— "मार्ष! सुनें! आप का भाग्य जग गया। आपने बड़ी भारी सिद्धि पा ली है। मैं आज आपकी एक सहायता करना चाहता हूँ। आपका जन्म बड़े रमणीय स्थान में होगा। बड़े ही अनुकूल कुल

४६. ''ततो सो देवपुत्तो एवमाह—'कतमं तं, मारिस, कुलं यं त्वं अभिक्खणं कित्तयसि पुनप्पुनं' ति? 'दुकूलो च तापसो, पारिका च तापसी' ति। सो तस्स वचनं सुत्वा तुट्ठो सम्पटिच्छि—'साधु, मारिस, यो तव छन्दो सो होतु। आकङ्खमानो अहं, मारिस, पत्थिते कुले उप्पज्जेयं, किम्हि कुले उप्पज्जामि—अण्डजे वा जलाबुजे वा संसेदजे वा ओपपातिके वा' ति? 'जलाबुजाय, मारिस, योनिया उप्पज्जाही' ति।

''अथ सक्को देवानमिन्दो उप्पत्तिदिवसं विगणेत्वा दुकूलस्स तापसस्स आरोचेसि—'अमुकस्मिं नाम दिवसे तापसी उतुनी भविस्सति पुप्फवती, तदा त्वं, भन्ते, दक्खिणेन हत्थङ्गुट्ठेन नाभिं परामसेय्यासी' ति। तस्मिं, महाराज, दिवसे तापसी च उतुनी पुप्फवती अहोसि, देवपुत्तो च तत्थुपगतो पच्चुपट्ठितो अहोसि, तापसो च दक्खिणेन हत्थङ्गुट्ठेन तापसिया नाभिं परामसि। इति ते तयो सन्निपाता अहेसुं। नाभिपरामसनेन तापसिया रागो उदपादि। सो पनस्सा रागो नाभिपरामसनं पटिच्च, मा त्वं सन्निपातं अज्झाचारमेव मञ्ञि। ऊहसनं पि सन्निपातो, उल्लपनं पि सन्निपातो, उपनिज्झायनं पि सन्निपातो। पुब्बभागभावतो रागस्स उप्पादाय आमसनेन सन्निपातो जायति, सन्निपाता ओक्कमनं होती ति।

''अनज्झाचारे पि, महाराज, परामसनेन गब्भावक्कन्ति होति। यथा, महाराज, अग्गि जलमानो अपरामसनो पि उपगतस्स सीतं व्यपहन्ति; एवमेव खो, महाराज, अनज्झाचारे पि परामसनेन गब्भावक्कन्ति होति।

४७. ''चतुन्नं, महाराज, वसेन सत्तानं गब्भावक्कन्ति होति—कम्मवसेन, योनिवसेन,

---

में आप उत्पन्न होंगे। सुन्दर माता–पिता से आप पाले–पोसे जायँगे। मार्ष, आप मेरी बात मानें।' दूसरी और तीसरी बार भी देवेन्द्र ने हाथ जोड़ कर उस देवपुत्र से यह प्रार्थना की।

४६. ''तब देवपुत्र ने कहा—'मार्ष! वह कौन सा कुल है जिसकी आप बार बार इतनी प्रशंसा कर रहे हैं?' 'दुकूल नामक तापस और पारिका नामक तापसी—इन्हीं के कुल की प्रशंसा कर रहा हूँ।' देवपुत्र ने देवेन्द्र की बात से सन्तुष्ट हो स्वीकार कर लिया—'बहुत अच्छा मार्ष! जो आपकी इच्छा है, वही होगा। मार्ष! मैं आप के बताये गये कुल में जन्म लूँगा। किस कुल में जन्म लूँ—अण्डज, जरायुज, संस्वेदज या औपपातिक (जिनका जन्म माता–पिता के संयोग के बिना केवल मनःसंकल्प मात्र से हो जाता है) कुल में?' 'मार्ष! आप जरायुज योनि में जन्म लें।'

''तब, देवेन्द्र ने उसके उत्पत्ति–दिवस को गिन कर दुकूल तापस को बताया—'अमुक दिन तापसी ऋतुमती तथा पुष्पवती होगी, सो आप उस दिन उसकी नाभि को अपने दाहिने हाथ के अंगूठे से छू दें।' महाराज! ठीक उसी दिन तापसी ऋतुमती हो गयी। देवपुत्र भी उसके गर्भ में प्रतिसन्धि ग्रहण करने के लिये तैयार था। तापस ने भी तापसी की नाभि को अपने दाहिने हाथ के अंगूठे से छू दिया। उस छूने भर से तीनों बातें हो गयीं। नाभि के छूने से तापसी को काम–राग उत्पन्न हो आया। किन्तु यह नाभि का स्पर्श मैथुन नहीं था; परन्तु परिहास की बातें करना, आँखे लड़ाना, आपस में स्पर्श करना—इन सभी बातों से या किसी एक कारण से गर्भ का सञ्चार हो जाता है।

''महाराज! मैथुन क्रिया को छोड़ इस प्रकार भी गर्भधारण होता है। महाराज! जैसे अग्नि दूर ही रह कर बिना छुए ही किसी ठंढी चीज को गर्म कर देती है, उसी तरह विना मैथुन धर्म के सेवन किये ही स्पर्शमात्र से भी गर्भ हो जाता है।''

४७. ''महाराज! इन चार बातों से गर्भ–धारण होता है—१. अपने कर्म के वश से, २. योनि के

कुलवसेन, आयाचनवसेन। अपि च सब्बे पेते सत्ता कम्मसम्भवा कम्मसमुट्ठाना। कथं, महाराज, कम्मवसेन सत्तानं गब्भावक्कन्ति होति? उस्सन्नकुसलमूला, महाराज, सत्ता यदिच्छकं उप्पज्जन्ति—खत्तियमहासालकुले वा ब्राह्मणमहासालकुले वा गहपतिमहासालकुले वा देवेसु वा अण्डजाय वा योनिया जलाबुजाय वा योनिया संसेदजाय वा योनिया ओपपातिकाय वा योनिया। यथा, महाराज, पुरिसो अड्ढो महद्धनो महाभोगो पहूतजातरूपरजतो पहूतवित्तूपकरणो पहूतधनधञ्ञो पहूतञातिपक्खो दासिं वा दासं वा खेत्तं वा वत्थुं वा गामं वा निगमं वा जनपदं वा यं किञ्चि मनसा अभिपत्थितं, यदिच्छकं द्विगुणतिगुणं पि धनं दत्वा किणाति; एवमेव खो, महाराज, उस्सन्नकुसलमूला सत्ता यदिच्छकं उपज्जन्तिखत्तियमहासालकुले वा ब्राह्मण-महासालकुले वा गहपतिमहासालकुले वा, देवेसु वा, अण्डजाय वा योनिया, जलाबुजाय वा योनिया, संसेदजाय वा योनिया, ओपपातिकाय वा योनिया। एवं कम्मवसेन सत्तानं गब्भावक्कन्ति होति। (क)

४८. "कथं योनिवसेन सत्तानं गब्भावक्कन्ति होति? कुक्कुटानं, महाराज, वातेन गब्भावक्कन्ति होति, बलाकानं मेघसद्देन गब्भावक्कन्ति होति, सब्बे पि देवा अगब्भसेय्यका सत्ता येव, तेसं नानावण्णेन गब्भावक्कन्ति होति। यथा, महाराज, मनुस्सा नानावण्णेन महिया चरन्ति—केचि पुरतो पटिच्छादेन्ति, केचि पच्छतो पटिच्छादेन्ति, केचि नग्गा होन्ति, केचि भण्डू होन्ति सेतपटधरा; केचि मोळिबद्धा होन्ति, केचि भण्डू कासाववसना होन्ति, केचि कासाववसना मोळिबद्धा होन्ति, केचि जटिनो वाकचीरा होन्ति, केचि चम्मवसना होन्ति, केचि रस्मियो निवासेन्ति; सब्बे पेते मनुस्सा नानावण्णेन महिया चरन्ति। एवमेव खो, महाराज, सत्ता येव ते सब्बे, तेसं नानावण्णेन गब्भावक्कन्ति होन्ति। एवं योनिवसेन सत्तानं गब्भावक्कन्ति होति। (ख)

वश से, ३. कुल के वश से एवं ४. प्रार्थना के वश से। किन्तु सभी जीव कर्मों के ही अनुकूल जन्म ग्रहण करते हैं। महाराज! कर्मों के कारण जीवों का गर्भ–धारण कैसे होता है? महाराज! बहुत पुण्यवान् लोग बड़े–बड़े क्षत्रिय, ब्राह्मण, गृहपति, देवता, अण्डज, जरायुज, संस्वेदज या औपपातिक–जिस कुल में जन्म लेना चाहते हैं उसी में ले सकते हैं। महाराज! जैसे कोई बड़ा धनी आदमी, जिसके पास काफी सोना–चाँदी हो, बहुत सम्पत्ति हो और जिसके बन्धु–बान्धव भी बहुत हों वह दासी, नौकर, खेत , गाँव, कस्बा या जिला जिसको लेना चाहे दुगना–तिगुना धन देकर भी खरीद सकता है। उसी तरह, बहुत पुण्यवान् लोग .... जिस कुल में जन्म लेना चाहते हों उसी में ले सकते है। इसी तरह कर्म के कारण जीवों का गर्भ धारण होता है। (क)

४८. "योनि के प्रभाव से जीवों का गर्भधारण कैसे होता है? महाराज! मुर्गी को हवा चलने से और बगुलों को मेघ के गरजने से ही गर्भ रह जाता है। देवता लोग गर्भाशय में आते ही नहीं। अन्य जीवों का जन्म नाना प्रकार से होता है। जैसे, महाराज! भिन्न–भिन्न मनुष्यों का भिन्न–भिन्न रहन–सहन है–कोई आगे, कोई पीछे वस्त्र पहनते हैं, कोई नंगे रहते हैं, कोई सिर मुँड़वाते हैं, कोई उजले कपड़े पहनते हैं, कोई पगड़ी बाँधते हैं, कोई सिर मुँड़वाते हैं, कोई काषाय वस्त्र पहनते हैं, कोई जटा बढ़ाते, कोई वल्कल धारण करते हैं, कोई चर्म ओढ़ते हैं, कोई मोटे कपड़े पहनते हैं; उसी तरह भिन्न–भिन्न जीव नाना प्रकार से गर्भधारण करते हैं। इस तरह योनि के प्रभाव से जीवों का गर्भधारण होता हैं। (ख)

४९. ''कथं कुलवसेन सत्तानं गब्भावक्कन्ति होति? कुलं नाम, महाराज, चत्तारि कुलानि—अण्डजं, जलाबुजं, संसेदजं, ओपपातिकं। यदि तत्थ गन्धब्बो यतो कुतोचि आगन्त्वा अण्डजे कुले उप्पज्जति सो तत्थ अण्डजो होति....पे०....जलाबुजे कुले.... संसेदजे कुले ....ओपपातिके कुले उप्पज्जति सो तत्थ ओपपातिको होति, तेसु तेसु कुलेसु तादिसा येव सत्ता सम्भवन्ति। यथा, महाराज, हिमवतो नेरुपब्बतं केचि मिगपक्खिनो उपेन्ति, सब्बे ते सकवण्णं विजहित्वा सुवण्णवण्णा होन्ति; एवमेव खो, महाराज, यो कोचि गन्धब्बो यतो कुतो चि आगन्त्वा अण्डजं योनिं उपगन्त्वा सभाववण्णं विजहित्वा अण्डजो होति ....पे०....जरायुजं....संसेदजं....ओपपातिकं योनिं उपगन्त्वा सभाववण्णं विजहित्वा ओपपातिको होति। एवं कुलवसेन सत्तानं गब्भावक्कन्ति होति। (ग)

५०. ''कथं आयाचनवसेन सत्तानं गब्भावक्कन्ति होति? इध, महाराज, कुलं होति अपुत्तकं बहुसापतेय्यं सद्धं पसन्नं सीलवन्तं कल्याणधम्मं तपनिस्सितं, देवपुत्तो च उस्सन्नकुसलमूलो चवनधम्मो होति, अथ सक्को देवानमिन्दो तस्स अनुकम्पाय तं देवपुत्तं आयाचति—'पणिदेहि, मारिस, अमुकस्स महेसिया कुच्छिं' ति। सो तस्स आयाचनहेतु तं कुलं पणिधेति। यथा, महाराज, मनुस्सा पुञ्ञकामा समणं मनोभावनीयं आयाचित्वा गेहं उपनेन्ति—'अयं उपगन्त्वा सब्बस्स कुलस्स सुखावहो भविस्सति'; एवमेव खो, महाराज, सक्को देवानमिन्दो तं देवपुत्तं आयाचित्वा तं कुलं उपनेति। एवं आयाचनवसेन सत्तानं गब्भावक्कन्ति होति। (घ)

५१. ''सामो, महाराज कुमारो सक्केन देवानमिन्देन आयाचितो पारिकाय तापसिया कुच्छिं ओक्कन्तो। सामो, महाराज, कुमारो कतपुञ्ञो, मातापितरो सीलवन्तो, कल्याणधम्मो,

---

४९. ''कुल के सम्बन्ध से जीवों का गर्भधारण कैसे होता है? महाराज! अण्डज, जरायुज, संस्वेदज और औपपातिक के भेद से चार कुल होते हैं। अपने–अपने कर्मों के अनुसार जीव इन कुलों में जन्म लेते हैं। उन–उन कुलों में उनके समान ही जीव उत्पन्न होते हैं। जैसे, जितने भी पशु या पक्षी हिमालय के सुमेरु पर्वत पर पहुँच जाते हैं, सभी अपने–अपने रंग को छोड़ सोने के रंग के हो जाते हैं, वैसे ही जो जीव जहाँ कहीं से भी आकर जिस किसी कुल में पैदा होते हैं, उसी के समान हो जाते हैं। इस तरह कुल के सम्बन्ध से जीवों का जन्म होता है। (ग)

५०. ''प्रार्थना के प्रभाव से जीवों का गर्भधारण कैसे होता है? महाराज! कोई–कोई कुल सन्तानहीन होता है। उस कुल में बड़ी सम्पत्ति होती है। कुलवाले बड़े श्रद्धा–प्रसन्न, शीलवान्, कल्याणधर्म–परायण और तपःपरायण होते हैं। उस समय कोई देवपुत्र अपने पुण्य क्षीण हो जाने के कारण देवलोक से च्युत होता है। तब देवेन्द्र उस कुल पर दया कर उस देवपुत्र से प्रार्थना करता है–'हे भार्गव! आप अमुक कुल में जन्म लें।' वह देवपुत्र देवेन्द्र की प्रार्थना को मान उसी कुल में जन्म लेता है। महाराज! जैसे पुण्य की इच्छा रखने वाले मनुष्य किसी शीलवान् भिक्षु को प्रार्थना कर अपने घर पर ले जाते हैं कि उसके आने से कुल का कल्याण होगा; इसी प्रकार इन्द्र देवपुत्र को प्रार्थना करके उस कुल में ले जाते हैं। यों, इस तरह प्रार्थना के प्रभाव से भी जीवों का गर्भधारण होता है। (घ)

५१. ''महाराज! देवेन्द्र द्वारा प्रार्थना किये जाने पर साम कुमार ने पारिका तापसी की कोख में जन्म ग्रहण कर किया। महाराज! साम कुमार बड़ा पुण्यवान् था। उसके माता–पिता भी बड़े शीलवान्

आयाचको सक्को, तिण्णं चेतोपणिधिया सामो कुमारो निब्बत्तो। इध, महाराज, नयकुसलो पुरिसो सुकट्ठे अनूपखेत्ते बीजं रोपेय्य, अपि नु तस्स बीजस्स अन्तरायं विवज्जेन्तस्स वुड्ढिया कोचि अन्तरायो भवेय्या'' ति? ''नहि, भन्ते। निरुपघातं, भन्ते, बीजं खिप्पं संविरूहेय्या'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, सामो कुमारो मुत्तो उप्पन्नन्तरायेहि तिण्णं चेतोपणिधिया निब्बत्तो।

५२. ''अपि नु खो, महाराज, सुतपुब्बं तया इसीनं मनोपदोसेन इद्धो फीतो महाजनपदो सजनो समुच्छिन्नो'' ति? ''आम, भन्ते, सुय्यति—महिया दण्डकारञ्ञं, मेज्झारञ्ञं, कालिङ्गारञ्ञं, मातङ्गारञ्ञं, सब्बं तं अरञ्ञं अरञ्ञभूतं, सब्बे पेते जनपदा इसीनं मनोपदोसेन खयं गता'' ति। ''यदि, महाराज, तेसं मनोपदोसेन सुसमिद्धा जनपदा उच्छिज्जन्ति, अपि नु खो तेसं मनोपसादेन किञ्चि निब्बत्तेय्या'' ति? ''आम, भन्ते'' ति। ''तेन हि, महाराज, 'सामो कुमारो तिण्णं बलवन्तानं चेतोपसादेन निब्बत्तो—इसिनिम्मितो देवनिम्मितो पुञ्ञनिम्मितो' ति एवमेतं, महाराज, धारेहि। तयो इमे, महाराज, देवपुत्ता सक्केन देवानं इन्देन आयाचितं कुलं उप्पन्ना। कतमे तयो? सामो कुमारो, महापनादो, कुसराजा— तयो पेते बोधिसत्ता'' ति।

''सुनिद्दिट्ठा, भन्ते नागसेन, गब्भावक्कन्ति, सुकथितं कारणं, अन्धकारे आलोको कतो, जटा विजटिता, निच्छुद्धा परवादा, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी'' ति।

७. सद्धम्मन्तरधानपञ्हो

५३. ''भन्ते नागसेन, भासितं पेतं भगवता—'पञ्चेव दानि, आनन्द, वस्ससतानि

और कल्याणधर्मा थे। उस पर भी प्रार्थना करने वाला स्वयं देवेन्द्र जैसा योग्य व्यक्ति था। इन तीनों के चित्त मिल जाने से साम कुमार का जन्म हुआ। जैसे महाराज! कोई कुशल पुरुष अच्छी तरह तैयार किये गये खेत में बीज रोपे। यदि बीज में कोई बाधा न हो तो क्या उस बीज के बढ़ने में कोई बाधा होगी?" "नहीं, भन्ते! कोई बाधा न होने से बीज अवश्य शीघ्र ही बढ़ेगा।" "महाराज! इसी तरह किसी भी बाधा के न होने से और तीनों का चित्त मिल जाने से सामकुमार ने जन्म ग्रहण किया।"

५२. "महाराज! क्या आपने पहले सुना है कि ऋषियों के मन में क्रोध आ जाने से फलता–फूलता सर्वसाधन–सम्पन्न देश भी नष्ट हो जाता है?" "हाँ, भन्ते! ऐसा सुनने में आता है कि दण्डकारण्य, मेध्यारण्य, कालिङ्गारण्य और मातङ्गारण्य सभी पहले मनुष्यों से भरे–पूरे नगर थे, बाद में ऋषियों के शाप से ही वे जंगल हो गये।" "महाराज! यदि उन ऋषियों के क्रोध करने से नगर के नगर जंगल हो जाते हैं, तो क्या उनके प्रसन्न होने से कोई अच्छी बात नहीं हो सकती!" "हाँ, भन्ते! अवश्य हो सकती है!" "महाराज! तो इसी तरह तीन महाबलशाली व्यक्तियों के चित्त मिल जाने से साम कुमार का जन्म हुआ। ऋषि के निमित्त से, देव के निमित्त से और पुण्य के निमित्त से साम कुमार जन्मे—महाराज! इसे ऐसा ही समझें। महाराज! ये तीन देवपुत्र देवेन्द्र से प्रार्थना किये जाने पर शुभ कुल में उत्पन्न हुए। वे तीन कौन से? १ साम कुमार, २. पनाद और ३. कुश राजा— ये तीनों बोधिसत्त्व हैं।"

"भन्ते नागसेन! मैंने समझ लिया कि गर्भ–धारण कैसे होता है। आपने इसके कारण भी ठीक समझा दिये। मानो अन्धकार में प्रकाश कर दिया। उलझनों को सुलझा दिया। विपक्ष वालों का मुँह फीका कर दिया। आपने जैसा बताया उसे मैं मान लेता हूँ।"

७. सद्धर्म–अन्तर्धानविषयकप्रश्न—५३. "भन्ते नागसेन! भगवान् ने कहा है—'मेरा धर्म पाँच सौ वर्षों तक

सद्धम्मो ठस्सती' ति। पुन च परिनिब्बानसमये सुभद्देन परिब्बाजकेन पञ्हं पुट्ठेन भगवता भणितं—'इमे च, सुभद्द, भिक्खू सम्मा विहरेय्युं, असुञ्ञो लोको अरहन्तेहि अस्सा' ति। अनवसेसवचनमिदं निस्सेसवचनमिदं, निप्परियायवचनमिदं। यदि, भन्ते नागसेन, तथागतेन भणितं—'पञ्चेव दानि वस्ससतानि सद्धम्मो ठस्सती' ति, तेन हि—'असुञ्ञो लोको अरहन्तेहि अस्सा' ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि तथागतेन भणितं—'असुञ्ञो लोको अरहन्तेहि अस्सा' ति, तेन हि—'पञ्चेव दानि, आनन्द, वस्ससतानि सद्धम्मो ठस्सती' ति तं पि वचनं मिच्छा? अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो गहनतो पि गहनतरो, बलवतो पि बलवतरो, गण्ठितो पि गण्ठितरो, सो तवानुप्पत्तो; तत्थ ते ञाणबलविप्फारं दस्सेहि मकरो विय सागरब्भन्तरगतो'' ति?

५४. ''भासितं पेतं, महाराज, भगवता—'पञ्चेव दानि, आनन्द, वस्ससतानि सद्धम्मो ठस्सती' ति। परिनिब्बानसमये च सुभद्दस्स परिब्बाजकस्स भणितं—'इमे च, सुभद्द, भिक्खू सम्मा विहरेय्युं, असुञ्ञो लोको अरहन्तेहि अस्सा' ति। तं च पन, महाराज, भगवतो वचनं नानत्थं चेव होति नानब्यञ्जनं च। अयं सासनपरिच्छेदो, अयं पटिपत्तिपरिदीपना ति दूरं विवज्जिता ते उभो अञ्ञमञ्ञं। यथा, महाराज, नभं पथवितो दूरं विवज्जितं, निरयं सग्गतो दूरं विवज्जितं, कुसलं अकुसलतो दूरं विवज्जितं, सुखं दुक्खतो दूरं विवज्जितं; एवमेव खो, महाराज, ते उभो अञ्ञमञ्ञं दूरं विवज्जिता।

५५. ''अपि च, महाराज, मा ते पुच्छा मोघा अस्स, रसतो ते संसन्देत्वा कथयिस्सामि। 'पञ्चेव दानि, आनन्द, वस्ससतानि सद्धम्मो ठस्सती' ति यं वचनं भगवा आह, तं खयं परिदीपयन्तो सेसकं परिच्छिन्दि—'वस्ससहस्सं, आनन्द, सद्धम्मो तिट्ठेय्य सचे भिक्खुनियो न पब्बाजेय्युं,

---

ही रहेगा!' साथ ही अपने परिनिर्वाण के समय सुभद्र नामक परिव्राजक द्वारा पूछे जाने पर भगवान् ने यह भी कहा—'सुभद्र! यदि भिक्षुगण धर्म के अनुसार रहें तो यह संसार अर्हतों से कभी खाली नहीं होगा'। सर्वत्र अनुस्यूत होने वाली यह बात है। कोई ऐसी जगह नहीं है, जहाँ यह झूठी ठहरे। इस पर और कुछ समालोचना भी नहीं की जा सकती। (क) भन्ते! भगवान् ने यदि यह ठीक कहा है—'आनन्द! मेरा धर्म पाँच सौ वर्षों तक रहेगा' तो यह बात झूठी ठहरती है कि '.... संसार अर्हतों से कभी खाली नहीं होगा'। (ख) और यदि भगवान् ने यही ठीक कहा है कि '.... यह संसार अर्हतों से खाली नहीं होगा' तो यह बात झूठी ठहरती है कि 'पाँच सौ वर्षों तक ही धर्म रह सकेगा'! भन्ते! यह भी द्विविधा में डाल देने वाला प्रश्न है। यह आप के सामने रखा गया है। यह प्रश्न गूढ़ से भी गूढ़, कठिन से भी कठिन और जटिल से भी जटिल है। यहाँ आप अपना ज्ञानबल दिखायें जैसे समुद्र में रहकर मकर दिखाता है।''

५४. ''महाराज! भगवान् ने ऊपर की दोनों ही बातें यथार्थ में कही हैं। किन्तु, भगवान् की बातें भाव और शब्द—दोनों में भिन्न–भिन्न होती हैं। इन में से पहली तो यह बताती है कि बुद्धधर्म का शासन कितने दिनों तक रहेगा और दूसरी यह कि धर्म का फल कैसे सदा एक ही तरह से मिलता है। ये दोनों बातें एक दूसरे से सर्वथा पृथक् हैं। जैसे आकाश, पृथ्वी, स्वर्ग–नरक, पाप–पुण्य तथा सुख–दुःख आपस में एक दूसरे से सर्वथा पृथक् हैं, वैसे ही ऊपर की दोनों बातें भी परस्पर पृथक् हैं।

५५. ''तो भी, जिसमें आप का पूछना व्यर्थ न जाय, मैं इस विषय में कुछ विशेष व्याख्या करूँगा। महाराज! जो भगवान् ने कहा था—'आनन्द! मेरा धर्म पाँच सौ वर्षों तक रहेगा' वह केवल

पञ्चेव दानि, आनन्द, वस्ससतानि सद्धम्मो ठस्सती' ति। अपि नु खो, महाराज, भगवा एवं वदन्तो सद्धम्मस्स अन्तरधानं वा वदेति अभिसमयं वा पटिक्कोसती' ति?" "नहि, भन्ते" ति। "नट्ठं, महाराज, परिकित्तयन्तो सेसकं परिदीपयन्तो परिच्छिन्दि। यथा, महाराज, पुरिसो, नट्ठायिको सब्बसेसकं गहेत्वा जनस्स परिदीपेय्य—'एत्तकं मे भण्डं नट्ठं इदं सेसकं' ति; एवमेव खो, महाराज, भगवा नट्ठं परिदीपयन्तो सेसकं देवमनुस्सानं कथेसि—'पञ्चेव दानि, आनन्द, वस्ससतानि सद्धम्मो ठस्सती' ति। यं पन, महाराज, भगवता भणितं—'पञ्चेव दानि, आनन्द, वस्ससतानि सद्धम्मो ठस्सती' ति, सासनपरिच्छेदो एसो।

५६. "यं पन परिनिब्बानसमये सुभद्दस्स परिब्बाजकस्स समणे परिकित्तयन्तो आह—'इमे च, सुभद्द, भिक्खू सम्मा विहरेय्युं, असुञ्ञो लोको अरहन्तेहि अस्सा' ति, पटिपत्तिपरिदीपना एसा। त्वं पन तं परिच्छेदं च परिदीपनं च एकरसं करोसि। यदि पन ते छन्दो, एकरसं कत्वा कथयिस्सामि, साधुकं सुणोहि मनसिकरोहि अविक्खित्तमानसो।

"इध, महाराज, तळाको भवेय्य नवसलिलसम्पुण्णो सम्मुखमुत्तरियमानो परिच्छिन्नो परिवटुमकतो, अपरियादिण्णेयेव तस्मिं तळाके उदकूपरि महामेघो अपरापरं अनुप्पबन्धन्तो अभिवस्सेय्य, अपि नु खो, महाराज, तस्मिं तळाके उदकं परिक्खयं परियादानं गच्छेय्या" ति?"नहि, भन्ते" ति। "केन कारणेन, महाराजा" ति? "मेघस्स, भन्ते, अनुप्पबन्धनताया" ति। "एवमेव खो, महाराज, जिनसासनवरसद्धम्मतळाको आचारसीलगुणवत्तपटिपत्तिविमल-

---

शासन की स्थायिता की अवधि बतायी गयी थी कि इतने वर्षों के बाद शासन नष्ट हो जायेगा; क्योंकि उन्होंने कह दिया था कि 'आनन्द! यदि स्त्रियाँ प्रव्रजित न होतीं तो मेरा शासन एक हजार वर्षों तक रहता, किन्तु अब केवल पाँच सौ वर्षों तक रहेगा।' महाराज! इस तरह कह कर भगवान् केवल शासन के टिकने की अवधि बताते हैं या धर्म को बुरा बताकर उसकी निन्दा करते हैं?" "नहीं, भन्ते! निन्दा नहीं करते।" "महाराज! नष्ट हो जाने का यह निर्देश–मात्र था। जो बच गया है वह कब तक टिकेगा?' इसी का कथन था। ठीक वैसे ही जैसे एक आदमी जिसकी आय बहुत घट गयी हो, लोगों को बता दे कि उसके पास क्या रह गया है और वह तब तक चलेगा। उसी तरह ऐसा बताते हुए भगवान् ने केवल धर्म के रहने की अवधि बतायी थी।

५६. "और, जो अपने परिनिर्वाण के समय सुभद्र नामक परिव्राजक के सामने श्रमणों की प्रशंसा करते हुए भगवान् ने कहा था–'सुभद्र! यदि भिक्षुजन धर्म के अनुसार ठीक से रहें तो संसार अर्हतों से कभी खाली नहीं हो सकता', यह धर्मपालन करने का फल दिखलाया था। किसी चीज की स्थिरता की अवधि और उसके स्वरूप का वर्णन–इन दोनों को आप ने एक में मिला कर गड़बड़ कर दिया। किन्तु, यदि आप पूछते हैं तो मैं समझा सकता हूँ कि उन दोनों में क्या सम्बन्ध है? आप ठीक से ध्यान दे कर सुनें–

तड़ाग–उपमा– "महाराज! स्वच्छ और शीतल जल से भरा हुआ एक तालाब हो। उसके चारों ओर सुन्दर घाट बँधा हो। उस तालाब का जल कभी घटने न पाता हो; उस पर एक बड़े भारी मेघों की घटा छा जाय। मूसलाधार वर्षा होने लगे तो क्या तालाब का जल उससे कम या समाप्त हो जायेगा?" "नहीं, भन्ते!" "क्यों नहीं?" "मूसलाधार वर्षा होने के कारण।" "महाराज! उसी तरह, भगवान् का बताया हुआ सद्धर्म एक तालाब है। विनय, शील, और पुण्य के स्वच्छ शीतल जल से सदा यह ऊपर तक भरा रहता है। यह संसार के किनारे तक ऊँचा रहता है। यदि इसमें बुद्धपुत्र सदा

नवसलिलसम्पुण्णो उत्तरियमानो भवग्गमभिभवित्वा ठितो। यदि तत्थ बुद्धपुत्ता आचारसील-गुणवत्तपटिपत्तिमेघवस्सं अपरापरं अनुप्पबन्धापेय्युं अभिवस्सापेय्युं, एवमिदं जिनसासनवर-सद्धम्मतळाको चिरं दीघमद्धानं तिट्ठेय्य, अरहन्तेहि लोको असुञ्ञो भवेय्य। इममत्थं भगवता सन्धाय भासितं—'इमे च, सुभद्द, भिक्खू सम्मा विहरेय्युं, असुञ्ञो लोको अरहन्ते हि अस्सा' ति। (१)

"इध पन, महाराज, महति महाअग्गिक्खन्धे जलमाने अपरापरं सुक्खतिणकट्ठगोमयानि उपसंहरेय्युं, अपि नु खो, महाराज, अग्गिक्खन्धो निब्बापेय्या" ति? "नहि, भन्ते! भिय्यो भिय्यो सो अग्गिक्खन्धो जलेय्य, भिय्यो भिय्यो पभासेय्या" ति। "एवमेव खो, महाराज, दससहस्सिया लोकधातुया जिनसासनवरं पि आचारसीलगुणवत्तपटिपत्तिया जलति, पभासति। यदि पन, महाराज, तदुत्तरिं बुद्धपुत्ता पञ्चहि पधानियङ्गेहि समन्नागता सततमप्पमत्ता पदहेय्युं, तीसु सिक्खासु छन्दजाता सिक्खेय्युं, चारित्तं च सीलं समत्तं परिपूरेय्युं, एवमिदं जिनसासनवरं भिय्यो भिय्यो चिरं दीघमद्धानं तिट्ठेय्य, 'असुञ्ञो लोको अरहन्तेहि अस्सा' ति इममत्थं भगवता सन्धाय भासितं—'इमे च, सुभद्द, भिक्खू सम्मा विहरेय्युं, असुञ्ञो लोको अरहन्तेहि अस्सा' ति। (२)

"इध पन, महाराज, सिनिद्धसमसुमज्जितसप्पभासविमलादासं सण्हसुखुमगेरुकचुण्णेन अपरापरं मज्जेय्युं। अपि नु खो, महाराज, तस्मिं आदासे मलकद्दमरजोजल्लं जायेय्या" ति? "नहि, भन्ते। अञ्ञदत्थु विमलतरंयेव भवेय्या" ति। "एवमेव खो, महाराज, जिनसासनवरं पकतिनिम्मलं ब्यपगतकिलेसमलरजोजल्लं। यदि तं बुद्धपुत्ता आचारसीलगुणवत्तपटिपत्ति-सल्लेखधुतगुणेन जिनसासनवरं सल्लक्खेय्युं, एवमिदं जिनसासनवरं चिरं दीघमद्धानं तिट्ठेय्य,

---

विनय–पालन, शील–रक्षा, पुण्य और पवित्रता की वृष्टि करते रहें तो यह बहुत दिनों तक बना रहेगा। तब संसार अर्हतों से भी खाली नहीं होगा। भगवान् का यही अभिप्राय था जब उन्होंने कहा था—'सुभद्र! यदि भिक्षु लोग धर्म के अनुसार ठीक से रहें तो संसार कभी भी अर्हतों से खाली नहीं होगा।'

अग्नि–उपमा— "महाराज! यदि लोग किसी एक बड़े अग्नि के पुञ्ज में सूखा गोबर, सूखी लकड़ियाँ और सूखे पत्ते डालते रहें तो क्या वह अग्निपुञ्ज बुझ जायगा?" "नहीं, भन्ते! वह तो और भी धधक कर तथा लपटें ले ले कर जलेगा।" "महाराज! ठीक इसी तरह, विनय और शील के पालन करने से दस हजार लोकों से भी ऊपर तक भगवान् के दिव्य सद्धर्म की ज्वाला उठती है। महाराज! इस पर यदि बुद्धपुत्र दृढ़ वीर्यता के साथ ध्यान में तत्पर हो, ध्यान–सुख का अनुभव करते, तीन प्रकार की शिक्षाओं का पालन करते हुए अपने को पूरा संयमी बनाना सीखें तो बुद्धशासन बहुत समय तक बना रहेगा। तब संसार अर्हतों से कभी खाली नहीं होगा। महाराज! भगवान् का यही अभिप्राय था जब....नहीं होगा।"

दर्पण–उपमा—"महाराज! किसी चिकने समतल अच्छी तरह स्वच्छ किये, चमकाये निर्मल दर्पण को कोई चिकने सूक्ष्म गेरु के चूर्ण से बार–बार मले तो वह दर्पण क्या दाग और धूल से भर कर मैला होने पायगा?" "नहीं, भन्ते! वह तो और अधिक चमक उठेगा।" "महाराज! इसी तरह, प्रथमतः बुद्धधर्म स्वयं ही क्लेशरूपी मलों को दूर कने से निर्मल है; यदि बुद्धपुत्र उसे अपने विनय–शीलादि गुणों से और भी साफ करते रहें तो वह बहुत वर्षों तक ठहर सकेगा। संसार अर्हतों से कभी रिक्त नहीं होगा।

'असुञ्ञो च लोको अरहन्तेहि अस्सा' ति इममत्थं भगवता सन्धाय भासितं—'इमे च सुभद्द, भिक्खू सम्मा विहरेय्युं, असुञ्ञो लोको अरहन्तेहि अस्सा' ति। पटिपत्तिमूलकं, महाराज, सत्थुसासनं पटिपत्तिकारणं, पटिपत्तिया अनन्तरहिताय तिट्ठती'' ति। (३)

''भन्ते नागसेन, 'सद्धम्मन्तरधानं' ति यं वदेसि, कतमं तं सद्धम्मन्तरधानं'' ति? ''तीणिमानि, महाराज, सासनन्तरधानानि, कतमानि तीणि? अधिगमन्तरधानं, पटिपत्तन्तरधानं, लिङ्गन्तरधानं। अधिगमे, महाराज, अन्तरहिते सुप्पटिपन्नस्सा पि धम्माभिसमयो न होति, पटिपत्तिया अन्तरहिताय सिक्खापदपञ्ञत्ति अन्तरधायति, लिङ्गं येव तिट्ठति, लिङ्गे अन्तरहिते पवेणुपच्छेदो होति। इमानि खो, महाराज, तीणि अन्तरधानानी'' ति।

''सुविञ्ञापितो, भन्ते नागसेन, पञ्हो, गम्भीरो उत्तानीकतो, गण्ठि भिन्नो, नट्ठा परवादा भग्गा, निप्पभा कता, त्वं गणिवरवसभमासज्जा'' ति।

८. अकुसलच्छेदनपञ्हो

५७. ''भन्ते नागसेन, तथागतो सब्बं अकुसलं झापेत्वा सब्बञ्ञुतं पत्तो, उदाहु सावसेसे अकुसले सब्बञ्ञुतं पत्तो'' ति? ''सब्बं, महाराज, अकुसलं झापेत्वा भगवा सब्बञ्ञुतं पत्तो। नत्थि भगवतो सेसकं अकुसलं'' ति।

''किं पन, भन्ते, दुक्खा वेदना तथागतस्स काये उप्पन्नपुब्बा'' ति? ''आम, महाराज, राजगहे भगवतो पादो सकलिकाय खतो, लोहितपक्खन्दिकाबाधो उप्पन्नो, काये अभिसन्ने जीवकेन विरेको कारितो, वाताबाधे उप्पन्ने उपट्ठाकेन थेरेन उण्होदकं परियिट्ठं'' ति।

महाराज! इसी अभिप्राय से भगवान् ने कहा था....। महाराज! भगवान् के धर्म का मूल अभ्यास में ही है। अभ्यास ही उसका सार है।''

''भन्ते! जो आप कहते हैं कि सद्धर्म का लोप हो जायगा, तो उसका क्या तात्पर्य है?'' ''महाराज! किसी धर्म का लोप तीन तरह से होता है। कैसे तीन तरह से? १. उसके ठीक–ठीक अभिप्राय को भूल जाने से, २. उसके अनुसार किसी के भी चलते न रहने से और ३. उसके सभी चिह्नों (पारम्परिक उत्सव आदि बाह्य चिह्नों) के लुप्त हो जाने से। धर्म के ठीक–ठीक अभिप्राय को भूल जाने से उसके पालन करने वाले को भी उसका बोध नहीं होता। धर्म के अनुसार किसी के न चलने से भी शिक्षापदों का लोप होकर केवल उसका चिह्न मात्र रह जाता है। यों धर्म की परम्परा नष्ट हो जाती है. इन्हीं तीन तरह से किसी भी धर्म का लोप होता है।''

''भन्ते नागसेन! आपने अच्छा समझाया। इस गम्भीर दुविधा को खोल कर सर्वथा साफ–साफ दिशा दे दी। ग्रन्थि (गिरह) को काट दिया। विपक्षी मतों का खण्डन कर दिया और उन्हें फीका कर दिया। आप गणाचार्यों में वृषभतुल्य (श्रेष्ठ) है।।''

८. अकुशलच्छेदनप्रश्न— ५७. ''भन्ते नागसेन! क्या भगवान् ने बुद्ध होकर अपने सारे पापों को जला दिया था या कुछ उनमें शेष भी रहे थे?'' ''महाराज! अपने सभी पापों को जला कर ही भगवान् बुद्ध हुए थे। उन में कुछ भी पाप शेष नहीं रहा था।''

''भन्ते! उन्हें क्या कोई शारीरिक कष्ट हुआ था?'' ''हाँ महाराज! १. राजगृह में भगवान् के पैर में एक पत्थर का टुकड़ा चुभ गया था। २. एक बार उन्हें लाल आँव भी पड़ने लगा था। ३. पेट में गड़बड़ हो जाने से जीवक वैद्य ने उन्हें एक बार विरेचन (जुलाब) भी दी थी। ४. एक बार वायु के विकृत हो जाने से स्थविर आनन्द ने उन्हें गरम जल लाकर दिया था।''

"यदि, भन्ते नागसेन, तथागतो सब्बं अकुसलं झापेत्वा सब्बञ्ञुतं पत्तो, तेन हि 'भगवतो पादो सकलिकाय खतो, लोहतपक्खन्दिका च आबाधो उप्पन्नो' ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि तथागतस्स पादो सकलिकाय खतो, लोहितपक्खन्दिका च आबाधो उप्पन्नो, तेन हि—'तथागतो सब्बं अकुसलं झापेत्वा सब्बञ्ञुतं पत्तो' ति तं पि वचनं मिच्छा। नत्थि, भन्ते, विना कम्मेन वेदयितं, सब्बं तं वेदयितं कम्ममूलकं, तं कम्मेनेव वेदियति। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो तवानुप्पत्तो, सो तया निब्बाहितब्बो" ति?

५८. "न हि, महाराज, सब्बं तं वेदयितं कम्ममूलकं। अट्ठहि, महाराज, कारणेहि वेदयितानि उप्पज्जन्ति, येहि कारणेहि पुथुसत्ता वेदना वेदियन्ति। कतमेहि अट्ठहि? वातसमुट्ठानानि पि खो, महाराज, इधेकच्चानि वेदयितानि उप्पज्जन्ति, पित्तसमुट्ठानानि पि खो, महाराज....पे०...., सेम्हसमुट्ठानानि पि खो, महाराज .... पे० ...., सन्निपातिकानि पि खो, महाराज ....पे०...., उतुपरिणामजानि पि खो, महाराज....पे०...., विसमाहारजानि पि खो, महाराज....पे०...., ओपक्कमिकानि पि खो, महाराज....पे०...., कम्मविपाकजानि पि खो, महाराज, इधेकच्चानि वेदयितानि उप्पज्जन्ति। इमेहि खो, महाराज, अट्ठहि कारणेहि पुथुसत्ता वेदना वेदयन्ति। तत्थ ये ते पुग्गला 'सत्ते कम्मं विबाधन्ती' ति वदेय्युं ते इमे सत्ता सत्तकारणं पटिबाहन्ति, तेसं तं वचनं मिच्छा" ति? "भन्ते नागसेन, यञ्च वातिकं यञ्च पित्तिकं यञ्च सेम्हिकं यञ्च सन्निपातिकं यञ्च उतुपरिणामजं यञ्च विसमाहारजं यञ्च ओपक्कमिकं सब्बे ते कम्मसमुट्ठाना येव, कम्मेनेव ते सब्बे सम्भवन्ती" ति।

"यदि, महाराज, ते पि सब्बे धम्ममुट्ठाना व आबाधा भवेय्युं, न तेसं कोट्ठासतो लक्खणानि भवेय्युं। वातो खो, महाराज, कुप्पमानो दसविधेन कुप्पति—सीतेन, उण्हेन, जिघच्छाय, पिपासाय, अतिभुत्तेन, ठानेन, पधानेन, आधावनेन, उपक्कमेन, कम्मविपाकेन।

(क) "भन्ते! यदि भगवान् ने अपने सभी पापों को जला दिया था तो यह बात झूठी ठहरती है कि उन्हें ये शारीरिक कष्ट उठाने पड़े थे। (ख) और यदि उन्हें यथार्थ में ये शारीरिक कष्ट उठाने पड़े थे तो यह बात झूठी ठहरती है कि उन्होंने अपने सभी पापों को जला दिया था। भन्ते! विना कर्मों के अवशिष्ट रहे सुख या दुःख नहीं हो सकता। कर्मों के होने ही से सुख या दुःख होते हैं। यह भी एक द्विविधा आपके सामने रखी गयी है। इसे खोलकर समझावें।"

५८. "नहीं, महाराज! सभी वेदनाओं का मूल कर्म ही नहीं है। वेदनाओं के होने के आठ कारण हैं, जिनसे संसार के सभी जीव सुख–दुःख भोगते हैं। वे आठ कौन से हैं? १. वायु का कुपित हो जाना, २. पित्त का प्रकुपित होना, ३. कफ का बढ़ जाना, ४. सन्निपात (त्रिदोषज) दोष हो जाना, ५. ऋतुओं का बदलना, ६. खाने–पीने में प्रतिकूलता होना, ७. बाह्य–प्रकृति के दूसरे प्रभाव और ८. अपने कर्मों का फल होना—महाराज! इन्हीं आठ कारणों से प्राणी नाना प्रकार के सुख–दुःख भोगते हैं। महाराज! जो ऐसा मानते हैं कि कर्म ही के कारण लोग सुख–दुःख भोगते हैं, इसके अतिरिक्त कोई दूसरा कारण नहीं है। उनका मानना मिथ्या है!" "भन्ते नागसेन! फिर भी इन दूसरे कारणों का मूल कर्म ही है, क्योंकि वे सभी कर्म के ही कारण उत्पन्न होते हैं।"

"महाराज! यदि दुःख कर्म के ही कारण उत्पन्न होते हैं तो उनको भिन्न–भिन्न प्रकारों में बाँटा जा सकता है। (क) महाराज! वायु बिगड़ जाने के दस कारण होते हैं—१. सर्दी, २. गर्मी, ३. प्यास, ४.

तत्र ये ते नवविधा, न ते अतीते न अनागते, वत्तमानके भवे उप्पज्जन्ति, तस्मा न वत्तब्बा— 'कम्मसम्भवा सब्बा वेदना' ति। पित्तं, महाराज, कुप्पमानं तिविधेन कुप्पति–सीतेन, उण्हेन, विसमभोजनेन। सेम्हं, महाराज, कुप्पमानं तिविधं कुप्पति—सीतेन, उण्हेन, अन्नपानेन। यो च, महाराज, वातो, यञ्च पित्तं, यञ्च सेम्हं, तेहि तेहि कारणेहि कुप्पित्वा मिस्सीहुत्वा सकं सकं वेदनं आकड्ढति। उतुपरिणामजा, महाराज, वेदना उतुपरिणाममेन उप्पज्जति, विसमाहारजा वेदना, विसमाहारेन उप्पज्जति। ओपक्कमिका, महाराज, वेदना अत्थि किरिया, अत्थि कम्म-विपाका, कम्मविपाकजा वेदना पुब्बे कतेन कम्मेन उप्पज्जति। इति खो, महाराज, अप्पं कम्मविपाकजं, बहुतरं अवसेसं। तत्थ बाला 'सब्बं' कम्मविपाकजं येवा ति अतिधावन्ति। तं सब्बं न सक्का विना बुद्धञाणेन ववत्थानं कातुं।

"यं पन, महाराज, भगवतो पादो सकलिकाय खतो, तं वेदयितं नेव वातसमुट्ठानं, न पित्तसमुट्ठानं, न सेम्हसमुट्ठानं, न सन्निपातिकं, न उतुपरिणामजं, न विसमाहारजं, न कम्मविपाकजं, ओपक्कमिकं येव। देवदत्तो हि, महाराज, बहूनि जातिसतसहस्सानि तथागते आघातं बन्धि। सो तेन आघातेन महतिं गरुं सिलं गहेत्वा—'मत्थके पातेस्सामी' ति मुञ्चि। अथञ्ञे द्वे सेला आगन्त्वा तं सिलं तथागतं असम्पत्तं येव सम्पटिच्छिंसु, तासं पहारेन पपटिका भिज्जित्वा भगवतो पादे रुहिरं उप्पादेसि। कम्मविपाकतो वा, महाराज, भगवतो एसा वेदना निब्बत्ता, किरियतो वा, तदुद्धं नत्थञ्ञा वेदना।

"यथा, महाराज, खेत्तदुट्ठताय वा बीजं न सम्भवति बीजदुट्ठताय वा; एवमेव खो,

---

अतिभोजन, ५. भूख, ६. अधिक खड़ा रहना, ७. अधिक परिश्रम करना, ८. बहुत तेज चलना, ९. बाह्य प्रकृति के दूसरे प्रभाव और १०. अपने कर्म का फल। इन दस कारणों में पहले नौ पूर्व जन्म या दूसरे जन्म में कार्य नहीं करते, किन्तु इसी जन्म में करते हैं। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि सभी सुख–दुःख कर्म के ही कारण होते हैं।" (ख) महाराज! पित्त के कुपित होने के तीन कारण है—१. सर्दी, २. गर्मी और ३. असमय में भोजन करना। (ग) महाराज! कफ बढ़ने के तीन कारण हैं—१. सर्दी, २. गर्मी और ३. खान–पान में व्यतिक्रम। इन तीनों दोषों में किसी के बिगड़ने से पृथक्–पृथक् कष्ट होते हैं। ये भिन्न–भिन्न प्रकार के कष्ट अपने–अपने कारणों से ही उत्पन्न होते हैं। महाराज! इस तरह, कर्म के फल से होने वाले कष्ट अल्प ही हैं, अधिक तो दूसरे–दूसरे कारणों से होने वाले हैं। मूर्ख लोग सभी कष्टों को कर्म के फल से ही होने वाले समझ लेते हैं। भगवान् बुद्ध को छोड़ कर कोई दूसरा यह बता नहीं सकता कि किस का कर्मफल कहाँ तक है?

"महाराज! भगवान् का पैर जो एक पत्थर के टुकड़े से कट गया था, उसका कष्ट न वायु के बिगडने से, न पित्त या कफ के प्रकोप से .... किन्तु संयोगवश किसी घटना के घट जाने से ही हुआ था। महाराज! कई सौ (हजारों) वर्षों से भगवान् के प्रति देवदत्त का वैर चला आता था। उस वैर के कारण उसने पहाड़ की ढाल से एक बड़ी चट्टान लुढ़का दी। बीच में दूसरी चट्टानों के पड़ जाने के कारण वह उसी से टकरा कर भगवान् तक पहुँचने के पहले ही रुक गयी। उनके टक्कर खाने से एक पत्थर का टुकड़ा छटका और भगवान् के पैर में जा लगा, जिससे रक्त बहने लगा। महाराज! भगवान् का यह कष्ट या तो अपने कर्मफल के कारण या किसी के करने से ही हुआ होगा; तीसरी बात नहीं हो सकती।

"जैसे, या तो जमीन के अच्छी न होने से या बीज ही में कोई दोष होने से पौधा नहीं उगता।

महाराज, कम्मविपाकतो वा भगवतो एसा वेदना निब्बत्ता, किरियतो वा, तदुद्धं नत्थञ्ञा वेदना। यथा वा पन, महाराज, कोट्ठदुट्ठताय वा भोजनं विसमं परिणमति, आहारदुट्ठताय वा; एवमेव खो, महाराज, कम्मविपाकतो वा भगवतो एसा वेदना निब्बत्ता, किरियतो वा, तदुद्धं नत्थञ्ञा वेदना। अपि च, महाराज, नत्थि भगवतो कम्मविपाकजा वेदना, नत्थि विसमाहारजा वेदना, अवसेसेहि समुट्ठानेहि भगवतो वेदना उप्पज्जति। ताय च पन वेदनाय न सक्का भगवन्तं जीविता वोरोपेतुं।

५९. "निपतन्ति, महाराज, चातुमहाभूतिके काये इट्ठानिट्ठा सुभासुभवेदना। इध, महाराज, आकासे खित्तो लेड्डु महापथविया निपतति, अपि नु खो सो, महाराज, लेड्डु पुब्बे कतेन महापथविया निपतती" ति? "न हि, भन्ते। नत्थि सो, भन्ते, हेतु महापथविया, येन हेतुना महापथवी कुसलाकुसलविपाकं पटिसंवेदेय्य। पच्चुप्पन्नेन, भन्ते, अकम्मकेन हेतुना सो लेड्डु महापथवियं निपती" ति। "यथा, महाराज, महापथवी, एवं तथागतो दट्ठब्बो, यथा लेड्डु पुब्बे अकतेन महापथवियं निपतति; एवमेव खो, महाराज, तथागतस्स पुब्बे अकतेन सा सकलिका पादे निपतिता।

"इध पन, महाराज, मनुस्सा महापथविं भिन्दन्ति च खणन्ति च, अपि नु खो ते, महाराज, मनुस्सा पुब्बे कतेन महापथविं भिन्दन्ति च खणन्ति चा" ति? "न हि, भन्ते" ति। "एवमेव खो, महाराज, या सा सकलिका भगवतो पादे निपतिता न सा सकलिका पुब्बे कतेन भगवतो पादे निपतिता। यो पि, महाराज, भगवतो लोहितपक्खन्दिकाबाधो उप्पन्नो सो पि आबाधो न पुब्बे कतेन उप्पन्नो, सन्निपातिकेन उप्पन्नो। ये केचि, महाराज, भगवतो कायिका आबाधा उप्पन्ना न ते कम्माभिनिब्बत्ता, छन्नं एतेसं समुट्ठानानं अञ्ञतरतो निब्बत्ता।

अथवा, जैसे पेट में कुछ गड़बड़ होने या भोजन विपरीत होने से ही पचने में कुछ कमी होती है; महाराज! उसी तरह, भगवान् का यह कष्ट या तो अपने कर्मफल के कारण या किसी के करने से ही हुआ होगा; तीसरी बात नहीं हो सकती। वैसे महाराज! कर्मफल के कारण खान-पान में गड़बड़ होने के कारण भगवान् को कभी कष्ट नहीं हुआ था। हाँ, शेष छह कारणों से उन्हें कभी-कभी कष्ट हो जाया करता था। किन्तु उन कष्टों में इतना बल नहीं था कि भगवान् के प्राणों को भी हर लें। अथ च महाराज! चार महाभूतों से बने इस शरीर में सुख और दुःख तो होते ही रहते हैं।

५९. "महाराज! आकाश में ढेला (पत्थर का टुकड़ा) फेंकने से वह जमीन पर आ गिरता है तो क्या वह पृथ्वी के प्रति पहले किये हुए कर्म के फल ही उस पर इस तरह वेग से गिर पड़ता है?" "नहीं, भन्ते! उसके अच्छे या बुरे कर्म क्या रहेंगे, जिस से वह सुख या दुःख भोगेगी! वह पृथ्वी के कर्म के फल से नहीं, किन्तु किसी के द्वारा ऊपर फेंके जाने से ही उस तरह आ गिरता है।" "महाराज! इसी तरह भगवान् को पृथ्वी समझना चाहिये। जैसे पृथ्वी पर विना किसी कर्मफल के कारण ही ढेला आकर गिर पड़ता है, महाराज! वैसे ही भगवान् के किसी कर्मफल के विना ही उनके पैर पर वह पत्थर आ पड़ा था।"

"महाराज! लोग पृथ्वी को खोदते और खनते हैं तो क्या वह पृथ्वी अपने पूर्वकर्मों के फल से इस तरह खोदी जाती है?" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! इसी तरह, भगवान् के पैर पर उस पत्थर के गिरने को भी समझना चाहिये। भगवान् को जो रक्तातिसार (लाल आँव) पड़ने लगा था, वह भी उनके

६०. "भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवाधिदेवेन *संयुत्तनिकायवरलञ्छके मोळियसीवके* वेय्याकरणे—

'पित्तसमुट्ठानानि पि खो, सीवक, इधेकच्चानि वेदयितानि उप्पज्जन्ति। सामं पि खो, एतं, सीवक, वेदितब्बं—यथा पित्तसमुट्ठानानि पि इधेकच्चानि वेदयितानि उप्पज्जन्ति। लोकस्स पि खो, एतं, सीवक, सच्चसम्मतं, यथा पित्तसमुट्ठानानि पि इधेकच्चानि वेदयितानि उप्पज्जन्ति। तत्र, सीवक, ये ते समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—यं किञ्चायं पुरिसपुग्गलो पटिसंवेदेति सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं व सब्बं तं पुब्बेकतहेतूही ति, यञ्च सामं ञातं तञ्च अतिधावन्ति, यञ्च लोके सच्चसम्मतं तञ्च अतिधावन्ति, तस्मा तेसं समणब्राह्मणानं मिच्छा ति वदामि। सेम्हसमुट्ठानानि पि खो, सीवक, इधेकच्चानि वेदयितानि उप्पज्जन्ति। वातसमुट्ठानानि पि खो सीवक....पे०.... सन्निपातिकानि पि खो, सीवक....पे०....उतुपरिणामजानि पि खो, सीवक....पे०.... विसमाहारजानि पि खो, सीवक....पे०....ओपक्कमिकानि पि खो, सीवक....पे०.... कम्मविपाकजानि पि खो, सीवक, इधेकच्चानि वेदयितानि उप्पज्जन्ती ति। सामं पि खो एतं, सीवक, वेदितब्बं— यथा कम्मविपाकजानि पि इधेकच्चानि वेदयितानि उप्पज्जन्ति, लोकस्स पि खो एतं, सीवक, सब्बसम्मतं यथा कम्मविपाकजानि पि इधेकच्चानि वेदयितानि उप्पज्जन्ति। तत्र, सीवक, ये ते समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—यं किञ्चायं पुरिसपुग्गलो पटिसंवेदेति सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा सब्बं तं पुब्बे कतहेतूही ति। यं च सामं ञातं तं च अतिधावन्ति, यं च लोके सच्चसम्मतं तं च अतिधावन्ति, तस्मा तेसं समणब्राह्मणानं मिच्छा ति वदामी' ति।

"इति पि, महाराज, न सब्बा वेदना कम्मविपाकजा। 'सब्बं, महाराज, अकुसलं झापेत्वा भगवा सब्बञ्ञुतं पत्तो' ति एवमेतं धारेही" ति।

कर्मफल के कारण नहीं, किन्तु सन्निपात हो जाने के कारण। भगवान् को और भी जो दूसरे कष्ट हो गये थे, वे सभी उनके कर्मफल के कारण नहीं, किन्तु अवशिष्ट छह कारणों में किसी एक से ही हुए थे।"

६०. "महाराज! *संयुत्तनिकाय* के मोलियसीवकसूत्र में स्वयं देवाधिदेव भगवान् ने कहा है—

'सीवक! संसार में कुछ कष्ट तो पित्त के कुपित हो जाने से होते हैं।' स्वयं भी इसे जाना जा सकता है (कि कुछ कष्ट पित्त के कुपित हो जाने से होते हैं) और सभी लोग इसे मानते भी हैं। सीवक! जो श्रमण और ब्राह्मण ऐसा मानते और कहते हैं कि सभी सुख-दुःख तथा अनुभव अपने कर्मफल के ही कारण होते हैं, वे अपने ज्ञान और लोगों की मानी हुई बात—दोनों को लाँघ जाते हैं। इसलिए मैं कहता हूँ कि उनका ऐसा मानना गलत है। कफ.... वायु.... सन्निपात.... से होने वाले कष्टों के विषय में भी इसी तरह समझ लेना चाहिये। स्वयं भी उन्हें जाना जा सकता है और संसार में सभी लोग वैसा मानते भी हैं। सीवक! जो श्रमण और ब्राह्मण ऐसा मानते और कहते हैं कि सभी अनुभव— सुख, दुःख या न सुख-न दुःख—अपने कर्मफल के ही कारण होते हैं, वे अपना ज्ञान और लोगों की मानी हुई बात दोनों का अतिक्रमण कर देते हैं। इसलिये मैं कहता हूँ कि उनका ऐसा मानना मिथ्या है।'

"महाराज! इससे सारांश यह निकलता है कि सभी कष्ट कर्मफल के कारण ही नहीं भोगने पड़ते। आप को पूरे विश्वास के साथ यह मान लेना चाहिये कि भगवान् ने बुद्ध होने के पहले अपने सभी पापों को जला दिया था।"

"साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी" ति।

९. उत्तरिकरणीयपञ्हो

६१. "भन्ते नागसेन, तुम्हे भणथ— 'यं किञ्चि करणीयं तथागतस्स सब्बं तं बोधिया येव मूले परिनिट्ठितं; नत्थि तथागतस्स उत्तरिं करणीयं, कतस्स वा पटिचयो' ति। इदं च तेमासं पटिसल्लानं दिस्सति। यदि, भन्ते नागसेन, यं किञ्चि करणीयं तथागतस्स सब्बं तं बोधिया येव मूले परिनिट्ठितं, नत्थि तथागतस्स उत्तरिं करणीयं कतस्स वा पटिचयो। तेन हि 'तेमासं पटिसल्लीनो' ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि तेमासं पटिसल्लीनो, तेन हि—'यं किञ्चि करणीयं तथागतस्स सब्बं तं बोधिया येव मूले परिनिट्ठितं' ति तं पि वचनं मिच्छा। नत्थि कतकरणीयस्स पटिसल्लानं, सकरणीयस्सेव पटिसल्लानं। यथा नाम ब्याधितस्स भेसज्जेन करणीयं होति, अब्याधितस्स किं भेसज्जेन! छातस्सेव भोजनेन करणीयं होति, अछातस्स किं भोजनेन! एवमेव खो, भन्ते नागसेन, नत्थि कतकरणीयस्स पटिसल्लानं, सकरणीयस्सेव पटिसल्लानं। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो तवानुप्पत्तो, सो तया निब्बाहितब्बो" ति?

"यं किञ्चि, महाराज, करणीयं तथागतस्स सब्बं तं बोधिया येव मूले परिनिट्ठितं, नत्थि तथागतस्स उत्तरिं करणीयं, कतस्स वा पटिचयो। भगवा च तेमासं पटिसल्लीनो। पटिसल्लानं खो, महाराज, बहुगुणं, सब्बे पि तथागता पटिसल्लीयित्वा सब्बञ्ञुतं पत्ता। तं ते सुकत-गुणमनुस्सरन्ता पटिसल्लानं सेवन्ति। यथा, महाराज, पुरिसो रञ्ञो सन्तिका लद्धवरो पटिलद्धभोगो

"बहुत अच्छा, भन्ते! ठीक है। मैं इसे स्वीकार करता हूँ।"

९. उत्तरिंकरणीयप्रश्न— ६१. "भन्ते नागसेन! आप लोग कहा करते हैं कि भगवान् को जो कुछ करना था, वह सब बोधिवृक्ष के नीचे ही समाप्त हो चुका था। उन्हें और कुछ करने को अवशिष्ट नहीं रहा था; अपने किये हुए में कुछ और जोड़ने के लिये भी नहीं रह गया था। साथ ही साथ ऐसा भी सुनने में आता है कि तीन महीने तक के लिये उन्होंने समाधि लगा ली थी। (क) भन्ते नागसेन! यदि भगवान् ने बोधिवृक्ष के नीचे ही अपना सब कुछ कर्तव्य समाप्त कर डाला, तो यह बात झूठी ठहरती है कि तीन महीने तक उन्होंने समाधि लगा ली थी। (ख) और, यदि भगवान् ने यथार्थ में तीन महीनों तक समाधि लगा ली थी, तो यह बात झूठी ठहरती है कि बोधिवृक्ष के नीचे ही उन्होंने अपना सब कुछ कर्तव्य पूर्ण कर लिया था। यदि अपना सब कुछ पूर्ण ही कर डाला था तो समाधि लगाने की क्या आवश्यकता थी, क्योंकि कर्त[illegible]शेष को समाधि की आवश्यकता होती है। भन्ते! जिसे रोग है उसी को न औषधि की आवश्यकता होती है! जो नीरोग है उसे औषधि से क्या प्रयोजन! भूखे को ही न भोजन की आवश्यकता होती है! जिसका पेट भरा है वह भोजन करके क्या करेगा! भन्ते! इसी तरह, जिसने अपना सब कुछ पूर्ण कर लिया हो उसे समाधि लगाने की क्या आवश्यकता पड़ेगी! जिसके कुछ कर्म अवशिष्ट रह गये हैं, उसी को समाधि लगाने की आवश्यकता पड़ेगी! यह भी दुविधा आपके सामने रखी गयी है, इसका आप उचित उत्तर दें?"

"महाराज! ये दोनों बातों ठीक हैं कि बोधिवृक्ष के नीचे भगवान् ने अपना सब कुछ कर्तव्य पूर्ण कर लिया था और यह भी कि तीन महीने तक उन्होंने समाधि लगा ली थी। महाराज! समाधि में बहुत गुण हैं। सभी तथागतों ने समाधि से ही बुद्धत्व की प्राप्ति की है। वे बुद्धत्व-प्राप्ति करने के बाद भी उसके अच्छे गुणों का स्मरण करते हुए उसका प्रयोग किया करते हैं। महाराज! जैसे कोई आदमी राजा की

तं सुकतगुणमनुसरन्तो अपरापरं रञ्ञो उपट्ठानं एति; एवमेव खो, महाराज, सब्बे पि तथागता पटिसल्लीयित्वा सब्बञ्ञुतं पत्ता, तं ते सुकतगुणमनुस्सरन्ता पटिसल्लानं सेवन्ति।

"यथा वा पन, महाराज, पुरिसो आतुरो दुक्खितो बाळ्हगिलानो भिसक्कमुपसेवित्वा सोत्थिमनुप्पत्तो तं सुकतगुणमनुस्सरन्तो अपरापरं भिसक्कमुपसेवति; एवमेव खो, महाराज, सब्बे पि तथागता पटिसल्लीयित्वा सब्बञ्ञुतं पत्ता, तं ते सुकतगुणमनुस्सरन्ता पटिसल्लानं सेवन्ति।

६२. "अट्ठवीसति खो पनिमे, महाराज, पटिसल्लानगुणा, ये गुणे समनुपस्सन्ता तथागता पटिसल्लानं सेवन्ति। कतमे अट्ठवीसति? इध, महाराज, पटिसल्लानं पटिसल्लीयमानं रक्खति, आयुं वड्ढेति, बलं देति, वज्जं पिदहति, अयसमपनेति, यसमुपनेति, अरतिं विनोदेति, रतिमुपदहति, भयमपनेति, वेसारज्जं करोति, कोसज्जमपनेति, विरियमभिजनेति, रागमपनेति, दोसमपनेति, मोहमपनेति, मानं निहन्ति, वितक्कं भञ्जति, चित्तं एकग्गं करोति, मानसं स्नेहयति, हासं जनेति, गरुकं करोति, लाभमुप्पादयति, नमस्सियं करोति, पीतिं पापेति, पामोज्जं करोति, सङ्खारानं सभावं दस्सयति, भवप्पटिसन्धिं उग्घाटेति, सब्बसामञ्ञं देति। इमे खो, महाराज, अट्ठवीसति पटिसल्लानगुणा, ये गुणे समनुपस्सन्ता तथागता पटिसल्लानं सेवन्ति।

६३. "अपि च खो, महाराज, तथागता सन्तं सुखं समापत्तिरतिं अनुभवितुकामा पटिसल्लानं सेवन्ति परियोसितसङ्कप्पा। चतूहि खो, महाराज, कारणेहि तथागता पटिसल्लानं

सेवा करे। उससे प्रसन्न हो राजा उसे कोई बड़ा पारितोषिक (इनाम) दे। उस पुरस्कार को स्मरण कर वह आदमी राजा की सेवा और भी अधिक करे। महाराज! उसी तरह, सभी तथागतों ने समाधि लगाकर ही बुद्धत्वप्राप्ति की है, सो वे उसके गुणों का स्मरण कर, उसका सेवन बुद्धत्वप्राप्ति के बाद भी करते हैं।

"महाराज! या फिर जैसे कोई रोगी आदमी वैद्य के पास जाय और अपनी अच्छी चिकित्सा कराने के लिये उसे बहुत दान–दक्षिणा देकर, उसकी सेवा करे। चिकित्सा होने के बाद स्वस्थ होकर भी वैद्य के किये गये का उपकार मान उसकी फिर भी सेवा करता रहे। महाराज! उसी तरह, सभी तथागतों ने समाधि लगाकर ही बुद्धत्व–प्राप्ति की है, सो वे उसके गुणों का स्मरण कर, उसका सेवन बुद्धत्व–प्राप्ति के बाद भी करते हैं।

६२. "महाराज! समाधि के अट्ठाईस गुण हैं, जिनको देखते हुए सभी तथागत उसका सेवन करते हैं। वे अट्ठाईस गुण कौन से हैं? वे ये हैं– १. समाधि से अपनी रक्षा होती है, २. दीर्घजीवन होता है, ३. बल बढ़ता है, ४. सभी अवगुणों का नाश हो जाता है, ५. सभी अपयश दूर हो जाते हैं, ६. यश की वृद्धि होती है, ७. असन्तोष हट जाता है, ८. पूरा सन्तोष रहता है, ९. भय हट जाता है, १०. निर्भीकता आती है, ११. आलस्य चला जाता है, १२. उत्साह बढ़ता है, १३–१५. राग, द्वेष और मोह नष्ट हो जाते हैं, १६. झूठा अभिमान चला जाता है, १७. सभी सन्देह दूर हो जाते हैं, १८. चित्त की एकाग्रता होती है, १९. मन अत्यधिक ऋजु (हल्का) हो जाता है, २०. मन सदा प्रसन्न रहता है, २१. गम्भीरता आती है, २२. बड़ा लाभ होता है, २३. नम्रता आती है, २४. प्रीति पैदा होती है, २५. प्रमोद (हर्ष) होता है, २६. सभी संस्कारों की क्षणिकता का दर्शन हो जाता है, २७. पुनर्जन्म से छुटकारा हो जाता है और २८. श्रमण–भाव के यथार्थ–फल प्राप्त होते हैं। महाराज! समाधि के इन अट्ठाईस गुणों को देखते हुए सभी भगवान् उसका सेवन (उपयोग) करते आये हैं।

६३. "महाराज! अपनी इच्छाओं को नष्ट कर सभी भगवान् एकाग्रचित्त होने में जो प्रीति होती

सेवन्ति। कतमेहि चतूहि? विहारफासुताय पि, महाराज, तथागता पटिसल्लानं सेवन्ति, अनवज्जगुणबहुलताय पि तथागता पटिसल्लानं सेवन्ति, असेसअरियवीथितो पि तथागता पटिसल्लानं सेवन्ति, सब्बबुद्धानं थुतथोमितवण्णितपसत्थतो पि तथागता पटिसल्लानं सेवन्ति। इमेहि खो, महाराज, चतूहि कारणेहि तथागता पटिसल्लानं सेवन्ति। इति खो, महाराज, तथागता पटिसल्लानं सेवन्ति; न करणीयताय, न कतस्स वा पटिचयाय, अथ खो गुणविसेसदस्साविताय तथागता पटिसल्लानं सेवन्ती'' ति।

''साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं, तथा सम्पटिच्छामी'' ति।

१०. इद्धिबलदस्सनपञ्हो

६४. ''भन्ते नागसेन, भासितं पेतं भगवता— 'तथागतस्स खो, आनन्द, चत्तारो इद्धिपादा भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा। आकङ्खमानो, आनन्द, तथागतो कप्पं वा तिट्ठेय्य कप्पावसेसं वा' ति। पुन च भणितं— 'इतो तिण्णं मासानं अच्चयेन तथागतो परिनिब्बायिस्सती' ति। यदि, भन्ते नागसेन, भगवता भणितं— 'तथागतस्स खो, आनन्द, चत्तारो इद्धिपादा भाविता ....पे०.... कप्पावसेसं वा' ति; तेन हि तेमासपरिच्छेदो मिच्छा। यदि, भन्ते, तथागतेन भणितं— 'इतो तिण्णं मासानं अच्चयेन तथागतो परिनिब्बायिस्सती' ति, तेन हि— 'तथागतस्स खो, आनन्द, चत्तारो इद्धिपादा भाविता....पे०.... कप्पावसेसं वा' ति तं पि वचनं मिच्छा। नत्थि तथागतानं अट्ठाने गज्जितं। अमोघवचना बुद्धा भगवन्तो, तथवचना, अद्वेज्झवचना। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो गम्भीरो सुनिपुणो दुन्निज्झापयो सो तवानुप्पत्तो, भिन्देतं दिट्ठिजालं, एकंसे ठपय, भिन्द परवादं'' ति?

''भासितं पेतं, महाराज, भगवता—'तथागतस्स खो, आनन्द, चत्तारो इद्धिपादा भाविता

है, उसी में लीन होने के लिये समाधि लगाते हैं। महाराज! चार कारणों से भगवान् समाधि लगाया करते हैं। कौन से चार कारण? वे ये हैं— १. निरापद विहार (साधना), २. श्रेष्ठ गुणों का होना, ३. उच्च ध्येयों का एकमात्र मार्ग होना और ४. सभी बुद्धों द्वारा इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा किया जाना। इन्हीं कारणों से भगवान् इसका सेवन करते हैं। महाराज! इसलिये नहीं कि बुद्ध को कुछ शेष रह गया हो, अपितु समाधि के इन गुणों को देखते हुए ही वे इसका अभ्यास करते हैं।"

"भन्ते नागसेन! आपने बिलकुल ठीक कहा, मुझे यह स्वीकार है।"

१०. ऋद्धिबलदर्शनप्रश्न— ६४. "भन्ते नागसेन! भगवान् ने कहा है— 'आनन्द! बुद्ध चारों ऋद्धिपादों की भावना कर चुके रहते हैं। उन्होंने चारों का पूरा-पूरा अभ्यास कर लिया होता है। उनमें चारों का पूरा-पूरा विस्तार हो गया होता है। चारों के आधार पर बुद्ध दृढ़ खड़े रहते हैं। चारों का अनुष्ठान किये रहते हैं। चारों से अच्छी तरह परिचित रहते हैं और उनका ऊँचे से ऊँचा विकास हुआ रहता है। आनन्द! यदि बुद्ध चाहें तो कल्प भर या बचे हुए कल्प तक रह सकते हैं।' साथ ही साथ भगवान् ने यह भी कहा है— 'आज से तीन महीने बीतने पर बुद्ध परिनिर्वाण प्राप्त कर लेंगे।' भन्ते नागसेन! (क) यदि भगवान् ने यह ठीक कहा कि बुद्ध....कल्प भर....रह सकते हैं, तो तीन महीनों की अवधि बाँध देने वाली बात झूठी ठहरती है। (ख) और, यदि तीन महीनों की अवधि बाँध देने वाली बात सत्य है तो यह बात झूठी ठहरती है कि वे....कल्प भर....तक ठहर सकते हैं। क्योंकि बुद्ध विना किसी आधार के ऐसे ही डींग नहीं हाँकते;

.... पे०.... कप्पावसेसं वा' ति, तेमासपरिच्छेदो च भणितो। सो च पन कप्पो आयुकप्पो वुच्चति। न, महाराज, भगवा अत्तनो बलं कित्तयमानो एवमाह, इद्धिबलं पन, महाराज, भगवा परिकित्तयमानो एवमाह—'तथागतस्स खो, आनन्द, चत्तारो इद्धिपादा भाविता....पे०.... कप्पावसेसं वा' ति।

"यथा, महाराज, रञ्ञो अस्साजानियो भवेय्य सीघगति अनिलजवो, तस्स राजा जवबलं परिकित्तयन्तो सनेगमजानपदभटबलब्राह्मणगहपतिकअमच्चजनमज्झे एवं वदेय्य— 'आकङ्खमानो मे, भो, अयं हयवरो सागरजलपरियन्तं महिं अनुविचरित्वा खणेन इधागच्छेय्या' ति। न च तं जवगतिं तस्सं परिसायं दस्सेय्य, विज्जति च खो जवो तस्स, समत्थो च सो खणेन सागरजलपरियन्तं महिं अनुविचरितुं। एवमेव खो, महाराज, भगवा अत्तनो इद्धिबलं परिकित्तयमानो एवमाह, तं पि तेविज्जानं छळभिञ्ञानं अरहन्तानं विमलखीणासवानं देवमनुस्सानं च मज्झे निसीदित्वा भणितं—'तथागतस्स खो, आनन्द, चत्तारो इद्धिपादा भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा। आकङ्खमानो, आनन्द, तथागतो कप्पं वा तिट्ठेय्य कप्पावसेसं वा' ति। विज्जति च तं, महाराज, इद्धिबलं भगवतो, समत्थो च भगवा इद्धिबलेन कप्पं वा ठातुं कप्पावसेसं वा। न च भगवा तं इद्धिबलं तस्सं परिसायं दस्सेति। अनत्थको, महाराज, भगवा सब्बभवेहि, गरहिता च भगवता सब्बभवा। भासितं पेतं, महाराज, भगवता—'सेय्यथापि, भिक्खवे, अप्पमत्तको पि गूथो दुग्गन्धो होति; एवमेव खो अहं, भिक्खवे, अप्पमत्तं पि भवं न वण्णेमि, अन्तमसो अच्छरासङ्घातमत्तं पी' ति। अपि

बुद्धों की बात कभी खाली नहीं जाती; बुद्धों की बात वैसी की वैसी ही पूर्ण होने वाली होती है। अतः यह भी एक गम्भीर द्विविधा आपके सामने रखी गयी, जो बड़ी सूक्ष्म और कठिनता से समझी जाने योग्य है। आप कुतर्क का खण्डन कर एक परिणाम निकाल दें, विपक्ष का मुँह तोड़ उत्तर दें।"

"महाराज! बुद्ध ने दोनों बातें ठीक कही हैं। वहाँ कल्प का अर्थ है—आयु:कल्प (=पूर्ण जीवन) है। महाराज! भगवान् ने ऐसा कह कर, अपनी डींग (वृथाभिमान) नहीं हाँकी, अपितु ऋद्धि-बल की यथार्थ प्रशंसा की है। महाराज! बुद्ध चारों ऋद्धिपादों की भावना कर चुके रहते हैं....।

"महाराज! जैसे किसी राजा का एक बड़ा अच्छा घोड़ा हो। वह घोड़ा गति में वायु से बात करता हो। राजा उसकी गति की प्रशंसा करते हुए और जनपद के नौकरों, सिपाहियों, ब्राह्मणों, गृहपतियों और अपने अधिकारियों से भरी सभा (खुले दर्बार) में कहें—'यदि यह घोड़ा चाहे तो क्षण भर में समुद्र के किनारे-किनारे सारी पृथ्वी भर चक्कर काट के यहाँ लौट आवे।' किन्तु राजा यहाँ घोड़े की गति को सभा में दिखाने थोड़े ही जाता है! तो भी यथार्थ में घोड़ा वैसा गतिवान् होता ही है! महाराज! इसी तरह, भगवान् ने अपनी ऋद्धि-बल की प्रशंसा करते हुए वैसा कहा था। वह भी तीन विद्याओं को जानने वाले, छह अभिज्ञाओं (दिव्य शक्ति) से युक्त, शुद्ध और क्षीणास्रव अर्हतों, देवताओं और मनुष्यों के बीच कहा था—'आनन्द! बुद्ध चारों ऋद्धिपादों की भावना.... । आनन्द! यदि बुद्ध चाहें तो कल्प भर.... रह सकते हैं।' महाराज! भगवान् में वस्तुतः वह शक्ति थी कि वे कल्प भर .... रह सकते थे। किन्तु उन्हें उक्त सभी इच्छायें (भव-तृष्णा) नष्ट हो चुकी थी, उन्होंने इसकी बार-बार निन्दा की है। भगवान् ने कहा भी है—'भिक्षुओ, जैसे थोड़ी सी भी विष्ठा दुर्गन्ध देने वाली होती है, वैसे ही संसार में बने रहने की चुटकी भर भी इच्छा को मैं बुरा समझता हूँ।' (दी० नि०, म० प० नि० सुत्त)' महाराज! जब भगवान् ने संसार

नु खो, महाराज, भगवा सब्बभवगतियोनियो गूथसमं दिस्वा इद्धिबलं निस्साय भवेसु छन्दरागं करेय्या' ति?" "न हि, भन्ते" ति। "तेन हि, महाराज, भगवता इद्धिबलं परिकित्तयमानो एवरूपं बुद्धसीहनादमभिनदी" ति।

"साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी" ति॥

(इमस्मिं वग्गे दस पञ्हा) *पठमो इद्धिबलवग्गो निट्ठितो॥*

में बने रहने की इच्छा को विष्ठा से भी गन्दा बतलाया तो क्या स्वयं उसी इच्छा में और भी लिपटे रहते?" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! भगवान् ने तो केवल ऋद्धि-बल के उत्कर्ष को दिखाने के अभिप्राय से भी वैसा कहा था।"

"ठीक है, भन्ते नागेसन! मैं स्वीकार करता हूँ।"

(इस वर्ग में दस प्रश्न हैं) *पहला ऋद्धिबलवर्ग समाप्त॥*

४. मेण्डकप्रश्न

(ख) योगिकथा

२. अभेज्जवग्गो

१. खुद्दनुखुद्दपञ्हो

१. "भन्ते नागसेन, भासितं पेतं भगवता—'अभिञ्ञायाहं, भिक्खवे, धम्मं देसेमि, नो अनभिञ्ञाया' ति *(वि० पि०, महावग्ग)*। पुन च विनयपञ्ञत्तिया एवं भणितं—'आकङ्खमानो, आनन्द, सङ्घो ममच्चयेन खुद्दानुखुद्दकानि सिक्खापदानि समूहनतू' ति। किं नु खो, भन्ते नागसेन, खुद्दानुखुद्दकानि सिक्खापदानि दुप्पञ्ञत्तानि, उदाहु अवत्थुस्मिं अजानित्वा पञ्ञत्तानि, यं भगवा अत्तनो अच्चयेन खुद्दानुखुद्दकानि सिक्खापदानि समूहनापेति? यदि, भन्ते नागसेन, भगवता भणितं—'अभिञ्ञायाहं, भिक्खवे, धम्मं देसेमि, नो अनभिञ्ञाया' ति, तेन हि—'आकङ्खमानो, आनन्द, सङ्घो ममच्चयेन खुद्दानुखुद्दकानि सिक्खापदानि समूहनतू' ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि तथागतेन विनयपञ्ञत्तिया एवं भणितं—'आकङ्खमानो ममच्चयेन खुद्दानुखुद्दकानि सिक्खापदानि समूहनतू' ति, तेन हि—'अभिञ्ञायाहं, भिक्खवे,धम्मं देसेमि नो अनभिञ्ञाया' ति तं पि वचनं मिच्छा। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो सुखुमो निपुणो गम्भीरो सुगम्भीरो दुन्निज्झापयो, सो तवानुप्पत्तो, तत्थ ते ञाणबलविप्फारं दस्सेही" ति?

"भासितं पेतं, महाराज, भगवता—'अभिञ्ञायाहं, भिक्खवे, धम्मं देसेमि, नो

(ख) योगिकथा[1]

२. अभेद्यवर्ग

१. क्षुद्रानुक्षुद्रविषयकप्रश्न—१."भन्ते नागसेन! भगवान् ने यह भी कहा है—'भिक्षुओ! मैं स्वयं साक्षात्कार कर के ही धर्म का उपदेश करता हूँ, विना जाने नहीं। साथ ही साथ विनय–प्रज्ञप्ति के समय भगवान् ने यह भी कहा है—'आनन्द! मेरे परिनिर्वाण के बाद यदि सङ्घ उचित समझे तो छोटे–मोटे नियमों को बदल सकता है'। भन्ते नागसेन! तो क्या वे छोटे–मोटे नियम विना समझे–बूझे ही बना दिये गये थे या विना किसी आधार के यों ही खड़े कर दिये गये थे जो कि भगवान् ने उन्हें बदल देने के लिये भी कह दिया? भन्ते नागसेन! (क) यदि भगवान् ने यह ठीक कहा है कि स्वयं जान कर ही धर्म का उपदेश किया है, विना जाने नहीं, तो यह बात झूठ है कि उन्होंने अपने बताये छोटे–मोटे नियमों को बदल देने की अनुमति दे दी थी। (ख) और यदि उन्होंने ऐसी अनुमति वस्तुतः दे दी थी तो यह बात झूठी ठहरती है कि वे स्वयं जान कर ही धर्म का उपदेश करते थे, विना जाने नहीं। भन्ते! यह द्विविधा भी आपने सामने रखी जाती है जो बड़ी सूक्ष्म, निपुण, गम्भीर और कठिन भाव से समझी जाने वाली है। यहाँ आप अपने ज्ञान–बल का परिचय देते हुए इसे स्पष्ट करें।"

"महाराज! भगवान् ने ऊपर की दोनों ही बातें यथार्थ कही हैं। विनयप्रज्ञप्ति के समय जो कहा

---

१. इस ग्रन्थ के छठ्ठ संगायन–संस्करण में यह शीर्षक नहीं है, परन्तु ग्रन्थकार ने इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही ग्रन्थ के विभाजनप्रसङ्ग में स्वयं मेण्डकप्रश्न को दो भागों में विभक्त किया है—१. महावग्ग एवं २. योगिकथा। अतः यह शीर्षक दिया जा रहा है।

अनभिञ्ञाया' ति। विनयपञ्ञत्तिया पि एवं भणितं—'आकङ्खमानो, आनन्द, सङ्घो ममच्चयेन खुद्दानुखुद्दकानि सिक्खापदानि समूहनतू' ति। तं पन, महाराज, तथागतो भिक्खू वीमंसमानो आह—'उक्कलेस्सन्ति नु खो मम सावका मया विस्सज्जापियमाना ममच्चयेन खुद्दानुखुद्दकानि सिक्खापदानि उदाहु आदियिस्सन्ती' ति।

"यथा, महाराज, चक्कवत्ती राजा पुत्ते एवं वदेय्य—'अयं खो, ताता, महाजनपदो सब्बदिसासु सागरपरियन्तो दुक्करो, ताता, तावतकेन बलेन धारेतुं, एथ तुम्हे, ताता, ममच्चयेन पच्चन्ते देसे पजहथा' ति। अपि नु खो ते, महाराज, कुमारा पितु अच्चयेन हत्थगते जनपदे सब्बे ते पच्चन्ते देसे मुञ्चेय्युं" ति? "नहि, भन्ते। राजानो, भन्ते, लुद्धतरा, कुमारा रज्जलोभेन तदुत्तरिं दिगुणतिगुणजनपदं परिग्गण्हेय्युं, किं पन ते हत्थगतं जनपदं मुञ्चेय्युं" ति। "एवमेव खो, महाराज, तथागतो भिक्खू वीमंसमानो एवमाह—'आकङ्खमानो, आनन्द, सङ्घो ममच्चयेन खुद्दानुखुद्दकानि सिक्खापदानि समूहनतू' ति। दुक्खपरिमुत्तिया, महाराज, बुद्धपुत्ता धम्मलोभेन अञ्ञं पि उत्तरिं दियड्ढं सिक्खापदसतं गोपेय्युं। किं पन पकतिपञ्ञत्तं सिक्खापदं मुञ्चेय्युं" ति।

"भन्ते नागसेन, यं भगवा आह—'खुद्दानुखुद्दकानि सिक्खापदानी' ति, एत्थायं जनो सम्मूळ्हो विमतिजातो अधिकतो संसयपक्खन्दो—'कतमानि तानि खुद्दानुखुद्दकानि सिक्खापदानि, कतमानि अनुसिक्खापदानी' " ति? "दुक्कटं, महाराज, खुद्दकं सिक्खापदं, दुब्भासितं अनुखुद्दकं सिक्खापदं, इमानि द्वे खुद्दानुखुद्दकानि सिक्खापदानि। पुब्बकेहि पि,

---

है—'आनन्द! मेरे परिनिर्वाण के बाद यदि सङ्घ उचित समझे तो छोटे-मोटे नियमों को बदल सकता है'; वह भिक्षुओं की परीक्षा करने के लिए कहा था कि देखें, ऐसा कहने से वे उन छोटे-मोटे नियमों को समाप्त कर देते हैं या उन पर दृढ़ रहते है!"

"महाराज! जैसे कोई चक्रवर्ती राजा अपने पुत्रों से कहे—'प्यारे पुत्रो! यह विशाल देश चारों ओर समुद्र तक फैला हुआ है। जितनी सेना हम लोगों के पास है, उससे इतने बड़े देश को वश में रखना बड़ा कठिन है। सुनो, मेरे मरने के बाद इस की सीमा के प्रान्तों को छोड़ देना।' महाराज! तो क्या वे राजकुमार अपने हाथों में आये हुए उन प्रान्त को छोड़ देंगे?" "नहीं भन्ते! राजकुमार तो बड़े लोभी होते हैं। बल्कि वे दुगने या तिगुने अन्य प्रान्तों को भी स्वाधीन कर लेंगे; हाथ में आये हुए को छोड़ना तो दूर रहा।" "महाराज! इसी तरह, भगवान् ने भिक्षुओं की परीक्षा लेने के लिये ही वैसा कहा था। किन्तु, महाराज! धर्म के लोभ से और दुःख से मुक्त होने के लिये बुद्ध-भिक्षु ढाई सौ नियमों का पालन करेंगे ही; बताए गये नियमों को छोड़ना तो दूर है!'

"भन्ते नागसेन! भगवान् ने यह जो कहा—'छोटे-मोटे नियमों को' इसके समझने में लोगों को बड़ी कठिनाई होती है। लोग दुविधा में पड़ जाते हैं और इसका पता भी नहीं पा सकते कि कौन से नियम छोटे हैं और कौन बड़े। लोगों को इस में बड़ा सन्देह होता है?" "महाराज! सभी दुष्कृत (दुक्कट) आपत्तियाँ (विनय का पारिभाषिक शब्द) छोटे और दुर्भाषित आपत्तियाँ क्षुद्र नियम हैं। यही दो छोटे-मोटे नियम हैं। महाराज! पहले के स्थविरों को भी धर्मसभा की बैठक में इसका निश्चय करने में एक बार द्विविधा में पड़ जाना हुआ था। वे भी इसका सर्वसम्मत निर्णय नहीं कर सके थे। भगवान् ने इसे पहले ही जान लिया था कि यह प्रश्न आगे चल कर उठेगा। भगवान् जानते थे कि आगे चलकर उस समय की

महाराज, महाथेरेहि एत्थ विमति उप्पादिता, ते तेहि पि एकज्झं न कतो धम्मसण्ठितिपरियाये भगवता एसो पञ्हो उपदिट्ठो'' ति।

''चिरनिक्खित्तं, भन्ते नागसेन, जिनरहस्सं अज्जेतरहि लोके विवटं पाकटं कतं'' ति।

२. अब्याकरणीयपञ्हो

२. ''भन्ते नागसेन, भासितं पेतं भगवता—'नत्थानन्द, तथागतस्स धम्मेसु आचरियमुट्ठी' ति। *(दी० नि०, म० प० नि० सुत्त)* पुन च थेरेन मालुङ्क्यपुत्तेन पञ्हं पुट्ठो न ब्याकासि। *(म० नि०, मालुङ्क्यसुत्त)* एसो खो, भन्ते नागसेन, पञ्हो द्वयन्तो एकन्तनिस्सितो भविस्सति—अजानन्तेन वा गुय्हकरणेन वा। यदि, भन्ते नागसेन, भगवता भणितं—'नत्थानन्द, तथागतस्स धम्मेसु आचरियमुट्ठी' ति, तेन हि थेरस्स मालुङ्क्यपुत्तस्स अजानन्तेन न ब्याकतं। यदि जानन्तेन न ब्याकतं, तेन हि अत्थि तथागतस्स आचरियमुट्ठि। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो तवानुप्पत्तो, सो तया निब्बाहितब्बो'' ति?

३. ''भासितं पेतं, महाराज, भगवता—'नत्थानन्द, तथागतस्स धम्मेसु आचरियमुट्ठी' ति। अब्याकतो च थेरेन मालुङ्क्यपुत्तेन पुच्छितो पञ्हो, तं च पन न अजानन्तेन न गुय्हकरणेन।

४. ''चत्तारिमानि, महाराज, पञ्हब्याकरणानि। कतमानि चत्तारि? एकंसब्याकरणीयो पञ्हो, विभज्जब्याकरणीयो पञ्हो, पटिपुच्छाब्याकरणीयो पञ्हो, ठपनीयो पञ्हो ति।

''कतमो च, महाराज, एकंसब्याकरणीयो पञ्हो? 'रूपं अनिच्चं' ति एकंसब्याकरणीयो

परिस्थितियों से भिन्न ही परिस्थितियाँ आवेंगीं, जिनमें उन छोटे-मोटे नियमों को छोड़ देने या बदल देने की शक्ति सङ्घ को आवश्यकता पड़ने पर दे दी थी।''

''भन्ते! आज आपने संसार के सामने उसे स्पष्ट दिया, जिसे भगवान् ने गूढ़ ही रखा था।''.

अव्याकरणीयप्रश्न—२. ''भन्ते नागसेन! भगवान् ने यह कहा है—'आनन्द! धर्मोपदेश करने में दूसरे आचार्यों की तरह बुद्ध कुछ छिपा कर (आचार्यमुष्टि) नहीं रखते' तो भी, स्थविर मालुङ्क्यपुत्र के प्रश्न करने पर भगवान् ने कुछ उत्तर नहीं दिया था। यह बात दो ही कारणों से समझी जा सकती है—१. या तो उस प्रश्न का उत्तर न जानने के कारण, २. या जानते हुए भी उसे छिपाने की इच्छा के कारण। भन्ते नागसेन! (क) यदि यह बात सच है कि बुद्ध विना कुछ छिपाये हुए धर्मोपदेश करते हैं, तो मालुङ्क्यपुत्र के प्रश्न का उत्तर न जानने के कारण ही भगवान् चुप रह गये होंगे! (ख) और यदि उसका उत्तर जानने के कारण चुप रहे, तो उस बात को छिपा लेने का दोष उन पर आता है। भन्ते! यह द्विविधा भी आप के सम्मुख प्रस्तुत है। आप इसको स्पष्ट कर दें?''

३. ''महाराज! भगवान् ने यथार्थ में आनन्द से कहा था कि बुद्ध विना कुछ छिपाये ही धर्मोपदेश करते हैं और यह भी बात सच है कि मालुङ्क्यपुत्र के प्रश्न करने पर उन्होंने उसका कोई उत्तर नहीं दिया था। किन्तु वह न तो न जानने के कारण और न ही छिपाने की इच्छा के कारण।

४. ''महाराज! किसी प्रश्न का उत्तर चार प्रकार से दिया जा सकता है। किन चार प्रकार से? (१) किसी प्रश्न का उत्तर तो सीधे-सीधे स्पष्टतः दिया जाता है, (२) किसी प्रश्न का उत्तर विभाजित करके दिया जाता है, (३) किसी प्रश्न का उत्तर दूसरा प्रश्न पूछ कर दिया जाता है और (४) किसी प्रश्न का उत्तर उसे सर्वथा छोड़ देने से ही दिया जाता है।

पञ्हो, 'वेदना अनिच्चा' ति ... पे०... 'सञ्ञा अनिच्चा' ति ...पे०... 'सङ्खारा अनिच्चा' ति... पे०...'विञ्ञाणं अनिच्चं' ति एकंसब्याकरणीयो पञ्हो। अयं एकंसब्याकरणीयो पञ्हो। (१)

"कतमो विभज्जब्याकरणीयो पञ्हो? 'अनिच्चं पन रूपं' ति विभज्जब्याकरणीयो पञ्हो, 'अनिच्चा पन वेदना' ति, 'अनिच्चा पन सञ्ञा' ति, 'अनिच्चा पन सङ्खारा' ति....'अनिच्चं पन विञ्ञाणं' ति विभज्जब्याकरणीयो पञ्हो। अयं विभज्जब्याकरणीयो पञ्हो।" (२)

"कतमो पटिपुच्छाब्याकरणीयो पञ्हो? 'किं नु खो चक्खुना सब्बं विजानाती' ति अयं पटिपुच्छाब्याकरणीयो पञ्हो। (३)

"कतमो ठपनीयो पञ्हो? 'सस्सतो लोको' ति ठपनीयो पञ्हो, 'असस्सतो लोको' ति, 'अन्तवा लोको' ति, 'अनन्तवा लोको' ति 'अन्तवा च अनन्तवा च लोको' ति, 'नेवन्तवा नानन्तवा लोको' ति, 'तं जीवं तं सरीरं' ति, 'अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं' ति, 'होति तथागतो परं मरणा' ति, 'न होति तथागतो परं मरणा' ति, 'होति च न च होति तथागतो परं मरणा' ति, 'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा' ति ठपनीयो पञ्हो। अयं ठपनीयो पञ्हो। (४)

५. "भगवा, महाराज, थेरस्स मालुङ्क्यपुत्तस्स तं ठपनीयं पञ्हं न ब्याकासि। सो पन पञ्हो किंकारणा ठपनीयो? न तस्स दीपनाय हेतु वा कारणं वा अत्थि, तस्मा सो पञ्हो ठपनीयो। नत्थि भगवन्तानं बुद्धानं अकारणमहेतुकं गिरमुदीरणं" ति।

"साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी" ति।

---

(१). "किस प्रकार का उत्तर सीधे तौर से स्पष्ट दिया जाता है? 'क्या रूप अनित्य है?' 'क्या वेदना अनित्य है?' 'क्या संज्ञा अनित्य है?' 'क्या संस्कार अनित्य है?' 'क्या विज्ञान अनित्य है?' आदि प्रश्नों का....।

(२) "किन प्रश्नों का उत्तर विभाजित करके दिया जाता है? क्या रूप, वेदना.... इस तरह अनित्य हैं? आदि प्रश्नों का....।

(३) "किन प्रश्नों का उत्तर दूसरा प्रश्न पूछ कर दिया जाता है? 'क्या आँख से सभी चीजें जानी जा सकती हैं?' आदि प्रश्नों का....।

(४) "किन प्रश्नों का उत्तर उन्हें सर्वथा छोड़कर ही दिया जाता है? 'क्या संसार नित्य है?' 'क्या संसार का अन्त हो जायेगा?' 'क्या संसार का कहीं अन्त है?' 'क्या संसार का कहीं भी अन्त नहीं है?' 'क्या संसार का कहीं अन्त है भी और कहीं नहीं भी।' 'क्या संसार का न तो कहीं अन्त है और न नहीं है?' 'क्या जो जीव है वही शरीर है?' 'क्या जीव दूसरा है शरीर दूसरा?' 'क्या बुद्ध मरने के बाद रहते हैं?' 'क्या बुद्ध मरने के बाद नहीं रहते?' 'क्या बुद्ध मरने के बाद रहते भी है और नहीं भी?' 'क्या बुद्ध मरने के बाद न रहते हैं और न नहीं रहते?' आदि....।

५. "महाराज! मालुङ्क्यपुत्र का प्रश्न ऐसा था कि उसे सर्वथा छोड़ कर उसका उत्तर ठीक दिया जा सकता था। इसी से उसके उत्तर में भगवान् ने कुछ नहीं कहा। और वह प्रश्न ऐसा कैसे था कि उसका उत्तर उसे सर्वथा छोड़कर ही दिया जा सकता था? क्योंकि उसे बढ़ाने से कोई प्रयोजन ही नहीं निकलता। इसलिए उसे सर्वथा छोड़ देना ही उचित था। बुद्ध व्यर्थ बात नहीं बोला करते।"

"ठीक है, भन्ते नागसेन! यह बात ऐसी ही है। मैं इसे स्वीकार करता हूँ।"

३. मच्चुभायनाभायनपञ्हो

६. ''भन्ते नागसेन, भासितं पेतं भगवता—'सब्बे तसन्ति दण्डस्स सब्बे भायन्ति मच्चुनो' ति। (ध० प०, दण्ड० १) पुन भणितं—'अरहा सब्बभयमतिक्कन्तो' ति। किं नु खो, भन्ते नागसेन, अरहा दण्डभया तसति? निरये वा नेरयिका सत्ता जलिता कुथिता तत्ता सन्तत्ता तम्हा जलितग्गिजालका महानिरया चवमाना मच्चुनो भायन्ति। यदि, भन्ते नागसेन, भगवता—'सब्बे तसन्ति दण्डस्स सब्बे भायन्ति मच्चुनो' ति, तेन हि 'अरहा सब्बभयमतिक्कन्तो' ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि भगवता भणितं—'अरहा सब्बभयमतिक्कन्तो' ति तेन हि—'सब्बे तसन्ति दण्डस्स सब्बे भायन्ति मच्चुनो' ति तं पि वचनं मिच्छा। अयं उभतोकोटिको पञ्हो तवानुप्पत्तो, सो तया निब्बाहितब्बो' '' ति?

७. ''नेतं, महाराज, वचनं भगवता अरहन्ते उपादाय भणितं—'सब्बे तसन्ति दण्डस्स सब्बे भायन्ति मच्चुनो' ति, ठपितो अरहा तस्मिं वत्थुस्मिं, समूहतो भयहेतु अरहतो। ये ते, महाराज, सत्ता सकिलेसा, येसं च अधिमत्ता अत्तानुदिट्ठि, ये च सुखदुक्खेसु उन्नतावनता, ते उपादाय भगवता भणितं—'सब्बे तसन्ति दण्डस्स सब्बे भायन्ति मच्चुनो' ति। अरहतो, महाराज, सब्बगति उपच्छिन्ना, योनि विद्धंसिता, पटिसन्धि उपहता, भग्गा फासुका, समूहता सब्बभवालया, समुच्छिन्ना सब्बसङ्खारा, हतं कुसलाकुसलं, विहता अविज्जा, अबीजं विञ्ञाणं कतं, दड्ढा सब्बकिलेसा, अतिवत्ता लोकधम्मा। तस्मा अरहा न सन्तसति सब्बभयेहि।

''इध, महाराज, रञ्ञो चत्तारो महामत्ता भवेय्युं, अनुरक्खा लद्धयसा विस्सासिका,

---

३. मृत्युभयविषयकप्रश्न— ६. ''भन्ते नागसेन! भगवान् ने यह कहा है—'सभी लोग दण्ड से काँपते हैं, सभी लोगों को मरण से बहुत भय लगता है।' साथ ही साथ उन्होंने यह भी कहा है—'अर्हत् सभी डर-भय से परे हो जाते हैं।' भन्ते! क्या अर्हत् दण्ड से नहीं काँपता? और क्या नरक में पड़े हुए जीव वहाँ की अग्नि में पचते हुए वहाँ मरकर छुटकारा पाने से भी डरते हैं? भन्ते! (क) यदि भगवान् ने यह ठीक कहा है—'सभी लोग दण्ड से काँपते हैं; सभी लोगों को मरने से बड़ा भय लगता है'; तो यह बात मिथ्या ठहरती है कि 'अर्हत् सभी डर भय से परे हो जाते हैं' (ख) और यदि यह बात सच है कि 'अर्हत् भय परे हो जाते हैं' तो यह नहीं कहा जा सकता कि 'सभी लोग दण्ड से काँपते हैं....'। भन्ते! यह द्विविधा भी आप के सामने रखी जाती है, आप इसको खोल कर समझावें?''

७. ''महाराज! भगवान् ने जो कहा था—'सभी लोग दण्ड से काँपते हैं ....' इसमें उन्होंने अर्हतों को सम्मिलित नहीं किया था। अर्हत् उस नियम के अपवाद हैं। उन्हें भला कैसे कोई भय हो सकता है! उनके भय के सभी कारण नष्ट हो गये रहते हैं। भगवान् ने यह केवल उन संसारी जीवों के विषय में कहा था जो क्लेशसम्पृक्त हैं, जो आत्मा के विश्वास मे अभी तक पड़े हैं तथा जो सुख-दुःख में डूब-उतरा रहे हैं। महाराज! अर्हत् आवागमन से छूट जाते हैं, भिन्न-भिन्न योनियों में उनका जाना रुक जाता है, वे फिर से जन्म नहीं ग्रहण करते, उनकी तृष्णा के खम्भे खिसक जाते हैं, संसार में बने रहने की सारी इच्छायें चली जाती है, सभी संस्कार रुक जाते हैं, उनके लिये पाप और पुण्य का प्रश्न ही समाप्त हो जाता है, अविद्या नष्ट हो जाती है, विज्ञान में फिर उत्पन्न होने की शक्ति नहीं रहती, सभी क्लेश जल जाते हैं, संसार के विषयों में उनका घूमना रुक जाता है। इसी से, अर्हत् लोग सभी भयों के एक साथ आने से भी नहीं डरते।

ठपिता महति इस्सरिये ठाने, अथ राजा किस्मिञ्चिदेव करणीये समुप्पन्ने यावता सकविजिते सब्बजनस्स आणापेय्य—'सब्बे व मे बलिं करोन्तु, साधेथ तुम्हे चत्तारो महामत्ता तं करणीयं' ति। अपि नु खो, महाराज, तेसं चतुन्नं महामत्तानं बलिभया सन्तासो उप्पज्जेय्या'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''केन कारणेन, महाराजा'' ति? ''ठपिता ते, भन्ते, रञ्ञा उत्तमे ठाने, नत्थि तेसं बलि, समतिक्कन्तबलिनो ते। अवसेसे उपादाय रञ्ञा आणापितं—'सब्बेव मे बलिं करोन्तू' '' ति। ''एवमेव खो, महाराज, नेतं वचनं भगवता अरहन्ते उपादाय भणितं, ठपितो अरहा तस्मिं वत्थुस्मिं, समूहतो भयहेतु अरहतो। ये ते, महाराज, सत्ता सकिलेसा येसं च अधिमत्ता अत्तानुदिट्ठि, ये च सुखदुक्खेसु उन्नतावनता, ते उपादाय भगवता भणितं—'सब्बे तसन्ति दण्डस्स सब्बे भायन्ति मच्चुनो' ति। तस्मा अरहा न तसति सब्बभयेही'' ति।

८. ''नेतं, भन्ते नागसेन, वचनं सावसेसं, निरवसेसवचनमेतं—'सब्बे....' ति, तत्थ मे उत्तरिं कारणं ब्रूहि तं वचनं पतिट्ठापेतुं'' ति।

''इध, महाराज, गामे गामसामिको आणापकं आणापेय्य—'एहि, भो आणापक, यावता गामे गामिका, ते सब्बे सीघं मम सन्तिके सन्निपातेही' ति। सो 'साधु, सामी' ति सम्पटिच्छित्वा गाममज्झे ठत्वा तिक्खत्तुं सद्दमनुस्सावेय्य—'यावता गामे गामिका, ते सब्बे सीघं सीघं सामिनो सन्तिके सन्निपतन्तू' ति। ततो ते गामिका आणापकस्स वचनेन तुरिततुरिता सन्निपतित्वा गामसामिकस्स आरोचेन्ति—'सन्निपतिता, सामि, सब्बे गामिका, यं ते करणीयं तं करोही' ति। इति सो, महाराज, गामसामिको कुटिपुरिसे सन्निपातेन्तो सब्बे गामिके

''महाराज! किसी राजा के चार अधिकारी हों, जो बड़े स्वामिभक्त यशस्वी, विश्वासपात्र हो, और ऊँचे पद पाये हुए हों। उस समय कुछ कार्य आ पड़ने पर राजा अपने राज्य के सभी लोगों पर चरितार्थ होने वाला कोई आदेश निकाल दें—'सभी लोग आकर मेरे सामने भेंट चढ़ावें। तुम चार अधिकारियों को इस बात का निरीक्षण करना है। महाराज! तो क्या उन अधिकारियों को भेंट चढ़ाने की बात से भय उत्पन्न होगा?'' ''नहीं, भन्ते!'' ''सो क्यों?'' ''भन्ते! वे तो इस बात से मुक्ति पा चुके हैं। उनको छोड़ कर और दूसरे के लोगों लिये वह आज्ञा थी—'सभी लोग आकर मुझे भेंट चढ़ावें'।''

''महाराज! इसी तरह भगवान् ने अर्हतों के लिये यह बात नहीं कही थी कि—'सभी लोग दण्ड से काँपते हैं; सभी लोगों को मरने से बहुत भय लगता है'; क्योंकि अर्हतों के भय के तो सभी कारण नष्ट हो गये रहते हैं। इस नियम से अर्हतों का अपवाद हुआ रहता है। यह तो उन्हीं लोगों के विषय में कहा गया है, जिनके साथ क्लेश लगा है....।''

८. ''भन्ते नागसेन! किन्तु 'सभी लोग' शब्द किसी का भी अपवाद (मुक्ति) नहीं करता। इस शब्द के प्रयोग से कोई भी नहीं छूटता। अपने कहे हुये को दृढ़ करने के लिये कुछ प्रमाण दें।''

''महाराज! जैसे किसी गाँव का भूमिपति अपने सिपाही से कहे— 'गाँव के सभी लोगों को मेरे सामने इकट्ठा करो'। सिपाही भूमिपति को ''अच्छा स्वामी'' कहकर गाँव में जाय और तीन बार चिल्लाकर कहे— 'गाँव के लोगो! सभी स्वामी के पास चलकर तत्काल इकट्ठे हो जाओ'। सिपाही की इस घोषणा को सुन सभी गाँव वाले शीघ्रता करते हुए भूमिपति के पास आकर जुटें और बोलें—'स्वामिन्! सभी लोग आ गये, अब आप जो कहना चाहते हैं सो कहें'। महाराज! 'सभी लोग' से 'सभी समझदार' और घर के बड़े का ही अर्थ निकलता है। 'सभी लोग आवें' कहने पर भी केवल गाँव के समझदार और प्रधान ही आते हैं। भूमिपति को भी सन्तोष हो जाता है— 'इतने ही लोग मेरे गाँव में हैं'। किन्तु और भी बहुत

आणापेति, ते च आणत्ता न सब्बे सन्निपतन्ति, कुटिपुरिसा येव सन्निपतन्ति—'एत्तका येव मे गामिका' ति। गामसामिको च तथा सम्पटिच्छति। अञ्ञे बहुतरा अनागता इत्थिपुरिसा दासिदासा भतका कम्मकरा गामिका गिलाना गोमहिंसा अजेळका सुवाना, ये अनागता सब्बे ते अगणिता, कुटिपुरिसा येव उपादाय आणापितत्ता—'सब्बे सन्निपतन्तू' ति। एवमेव खो, महाराज, नेतं वचनं भगवता अरहन्ते उपादाय भणितं, ठपितो अरहा तस्मिं वत्थुस्मिं, समूहतो भयहेतु अरहतो। ये ते, महाराज, सत्ता सकिलेसा, येसं च अधिमत्ता अत्तानुदिट्ठि, ये च सुखदुक्खेसु उन्नतावनता, ते उपादाय भगवता भणितं—'सब्बे तसन्ति दण्डस्स सब्बे भायन्ति मच्चुनो' ति। तस्मा अरहा न तसति सब्बभयेहि।

''अत्थि, महाराज, सावसेसं वचनं सावसेसो अत्थो, अत्थि सावसेसं वचनं निरवसेसो अत्थो, अत्थि निरवसेसं वचनं सावसेसो अत्थो, अत्थि निरवसेसं वचनं निरवसेसो अत्थो, तेन तेन अत्थो सम्पटिच्छितब्बो।

''पञ्चविधेहि, महाराज, कारणेहि अत्थो सम्पटिच्छितब्बो—आहच्चपदेन, रसेन, आचरियवंसताय, अधिप्पाया, कारणुत्तरियताय। एत्थ हि—'आहच्चपदं' ति सुत्तं अधिप्पेतं, 'रसो' हि सुत्तानुलोमं, 'आचरियवंसो' ति आचरियवादो, 'अधिप्पायो' ति अत्तनो मति, 'कारणुत्तरियता' ति इमेहि चतूहि समेन्तं कारणं। इमेहि खो, महाराज,पञ्चहि कारणेहि अत्थो सम्पटिच्छितब्बो। एवमेसो पञ्हो सुविनिच्छितो होती'' ति।

से लोग रहते हैं जो नहीं आते। स्त्रियाँ, पुरुष, दासी नौकर, मजदूर, कमकर, बीमार, बैल, भैंस, बकरी और कुत्ते यद्यपि नहीं आते, तो भी उनकी गिनती नहीं होती। सयाने और घर के प्रधान लोगों के ही विषय में यह आज्ञा दी गयी रहती है। महाराज! इसी तरह, अर्हतों के लिये भगवान् ने नहीं कहा था– 'सभी लोग दण्ड से काँपते हैं; सभी लोगों को मरण से बहुत भय होता है।' ...भय होने के सभी कारण अर्हतों में नष्ट हो गये रहते हैं।

चार प्रकार की बातें– "महाराज! किसी कही गयी बात के अर्थ चार प्रकार से समझे जा सकते हैं– १. कुछ ऐसी बातें होती हैं जो न तो व्यापक रूप से कही गयी होती हैं और न उनका अर्थ व्यापक रूप से समझा जाता है; २. कुछ ऐसी बातें होती हैं जो व्यापक रूप से कही तो नहीं जाती, किन्तु उनका अर्थ व्यापक रूप से ही समझा जाता है; ३. कुछ ऐसी बातें होती हैं जो व्यापक रूप से कही तो जाती हैं, किन्तु उनका अर्थ व्यापक रूप से समझा नहीं जाता; और ४. कुछ ऐसी बातें हैं जो व्यापक रूप से कही भी जाती हैं और व्यापक रूप से ही समझी भी जाती हैं। अतः किसी बात को समझने के पहले उसे उन–उन अर्थों में बाँट लेना चाहिये।"

"महाराज! किसी बात को उन–उन अर्थों में बाँट लेने के पाँच प्रकार हैं– १. कहने के आगे पीछे का प्रसङ्ग देखकर, २. कही गयी बात को तौल कर, ३. कहने वाले के आचार्यों की परम्परा देखकर, ४. कहने का उद्देश्य क्या है, इसे समझा कर और ५. उस बात के प्रमाणों को देखकर। (१) 'कहने के आगे पीछे का प्रसङ्ग देखकर' का अर्थ है सूत्रों में वह बात कहाँ और कब कही गयी—इसका ध्यान कर। (२) 'कही गई बात को तौलकर' का अर्थ है, उसे दूसरे सूत्रों से मिला कर। (३) 'कहने वाले के आचार्यों की परम्परा देखकर– क्योंकि भिन्न–भिन्न परम्पराओं के भिन्न–भिन्न सिद्धान्त चले आते हैं। (४) 'कहने को उद्देश्य क्या है'– इसे समझकर अर्थात् कहने वाला मनुष्य किस विचार से ऐसा कहता

९. "होतु, भन्ते नागसेन, तथा तं सम्पटिच्छामि। ठपितो होतु अरहा तस्मिं वत्थुस्मिं, तसन्तु अवसेसा सत्ता। निरये पन नेरयिका सत्ता, दुक्खा तिब्बा कटुका वेदना वेदियमाना जलितपज्जलितसब्बङ्गपच्चङ्गा रुण्णकारुञ्ञकन्दितपरिदेवितलालप्पितमुखा असय्हतिब्ब-दुक्खाभिभूता अताणा असरणा असरणीभूता अनप्पसाकातुरा अन्तिमपच्छिमगतिका एकन्त-सोकपरायणा उण्हतिखिणचण्डखरतपनतेजवन्तो भीमभयजनकनिनादमहासद्दा संसिब्बित-छब्बिधजालामालाकुला समन्ता सतयोजनानुफरणच्चिवेगा कदरिया तपना महानिरया चवमाना मच्चुनो भायन्ती" ति? "आम, महाराजा" ति।

१०. "ननु, भन्ते नागसेन, निरयो एकन्तदुक्खवेदनियो, किस्स पन ते नेरयिका सत्ता एकन्तदुक्खवेदनिया निरया चवमाना मच्चुनो भायन्ति, किस्स निरये रमन्ती" ति? "न ते, महाराज, नेरयिका सत्ता निरये रमन्ति, मुच्चितुकामा व ते निरया। मरणस्सेव सो, महाराज, आनुभावो येन तेसं सन्तासो उप्पज्जती" ति। "एतं खो, भन्ते नागसेन, न सद्दहामि यं मुच्चितुकामानं चुतिया सन्तासो उप्पज्जती ति। हासनीयं, भन्ते नागसेन, तं ठानं, यं ते पत्थितं लभन्ति। कारणेन मं सञ्ञापेही" ति?

"मरणं ति खो, महाराज, एतं अदिट्ठसच्चानं तासनीयट्ठानं। एत्थायं जनो तसति च उब्बिज्जति च। यो च, महाराज, कण्हसप्पस्स भायति सो मरणस्स भायन्तो कण्हसप्पस्स

है—इसे समझकर। (५) 'बात के प्रमाणों को देखकर' का अर्थ है, ऊपर की चार बातों को दृष्टि में रख कर। अतः महाराज! किसी बात को समझने से पूर्व उसे पाँच भागों में विभक्त कर लेना चाहिये।

९. बहुत अच्छा, भन्ते नागसेन! आप जैसा कहते हैं मैं स्वीकार करता हूँ। अर्हत् उस नियम के अपवाद माने जाते हैं'— इसे मान लेता हूँ। दूसरे लोगों को ही डर होता है। भन्ते! अब यह बतावें कि क्या नरक में पड़े हुए जीव भी मरकर वहाँ से छुटकारा पाने से डरते हैं? वे जीव जो नरक के तीक्ष्ण-कटु दुःख झेल रहे हैं, जिनके सभी अङ्ग-प्रत्यङ्ग जल रहे हैं, अत्यन्त करुणा-पूर्वक रोने-धोने से जिनके मुँह लाल-पीले हो रहे हैं, जो अपने कटु दुःख सहने में असमर्थ हो रहे हैं, जिनका कोई त्राण नहीं है, जिनका कहीं बचाव नहीं है, जो अत्यन्त शोक में पड़े हैं, जिनकी और भी दुर्गति होने वाली है, जिन को केवल शोक ही शोक रह गया है, जो गर्म तीक्ष्ण और तेज अग्नि की लपटों में जलाये जा रहे हैं, जिस नरक में घोर, भयङ्कर, ऊँचे शब्द हो रहे हैं, जो अग्नि की लपटों की ज्वाला से सभी ओर घिरे हैं— जिस अग्नि की लपटें चारों ओर सौ योजन तक फैली हैं?" "हाँ, महाराज! उन जीवों को भी मरने से डर होता है।"

१०. "भन्ते नागसेन! नरक में तो निश्चय ही दुःख ही दुःख भोगना है। तब, वे जीव मरकर वहाँ से छुटकारा पाने से क्यों डरते हैं? क्या उन्हें नरक भी इतना प्यारा होता है?" "नहीं, महाराज! उन्हें नरक प्यारा नहीं होता। वे उससे छूटने के लिये बहुत चिन्तित रहते हैं। मृत्यु के नाममात्र से ऐसा एक प्रभाव छा जाता है, जिससे (उन्हें) बड़ा भय उत्पन्न होता है।" "भन्ते नागसेन! मुझे यह बात नहीं जँचती कि वहाँ से छूटने के लिये बहुत चिन्तित होते हुए भी उन्हें मरने से डर लगता है। यह तो उनके लिये बड़े आनन्द की बात होनी चाहिये कि जो वे चाहते हैं वही मिल रहा है। मुझे कोई दूसरा प्रमाण देकर समझावें।"

"महाराज! मृत्यु एक ऐसी चीज ही है, जिससे अज्ञानी लोगों को सदा भय बना रहता है। इससे लोग डर कर घबरा जाते हैं। महाराज! जो लोग काले साँप से डरते हैं वे मृत्यु के भय से ही; जो हाथी,

भायति, यो च हत्थिस्स भायति ....पे०.... सीहस्स, व्यग्घस्स, दीपिस्स, अच्छस्स, तरच्छस्स, महिसस्स, गवयस्स, अग्गिस्स, उदकस्स, खाणुकस्स, कण्टकस्स भायति, यो च सत्तिया भायति, सो मरणस्स भायन्तो सत्तिया भायति। मरणस्सेसो, महाराज, सरसभावतेजो। तस्स सरसभावतेजेन सकिलेसा सत्ता मरणस्स तसन्ति भायन्ति। मुच्चितुकामा पि, महाराज, नेरयिका सत्ता मरणस्स तसन्ति भायन्ति। (क)

"इध महाराज, पुरिसस्स काये मेदोगण्ठि उप्पज्जेय्य, सो तेन रोगेन दुक्खितो उपद्दवा परिमुच्चितुकामो भिसक्कं सल्लकत्तं आमन्तापेय्य, तस्स वचनं सो भिसक्को सल्लकत्तो सम्पटिच्छित्वा तस्स रोगस्स उद्धरणाय उपकरणं उपट्ठापेय्य—सत्थकं तिखिणं करेय्य, यमकसलाकं अग्गिम्हि पक्खिपेय्य, खारलवणं निसदाय पिंसापेय्य। अपि नु खो, महाराज, तस्स आतुरस्स तिखिणसत्थकच्छेदनेन यमकसलाकादहनेन खारलोणप्पवेसनेन तासो उप्पज्जेय्या" ति? "आम, भन्ते" ति। "इति, महाराज, तस्स आतुरस्स रोगा मुच्चितुकामस्सा पि वेदनाभया सन्तासो उपज्जति; एवमेव खो, महाराज, निरया मुच्चितुकामानं पि नेरयिकानां सत्तानं मरणभया सन्तासो उप्पज्जति। (ख)

"इध, महाराज, पुरिसो इस्सरापराधिको बद्धो सङ्खलिकबन्धनेन गब्भे पक्खित्तो परिमुच्चितुकामो अस्स, तमेनं सो इस्सरो मोचेतुकामो पक्कोसापेय्य। अपि नु खो, महाराज, इस्सरापराधिकस्स पुरिसस्स 'कतदोसो अहं' ति जानन्तस्स इस्सरदस्सनेन सन्तासो उप्पज्जेय्या" ति? "आम, भन्ते" ति। "इति महाराज, तस्स इस्सरापराधिकस्स पुरिसस्स परिमुच्चितुकामस्सा पि इस्सरभया सन्तासो उप्पज्जति; एवमेव खो, महाराज, निरया मुच्चितुकामानं पि नेरयिकानं सत्तानं मरणभया सन्तासो उप्पज्जती" ति। (ग)

११. "अपरं पि, भन्ते, उत्तरिं कारणं ब्रूहि येन हि कारणेन ओकप्पेय्यं" ति? "इध,

---

सिंह, बाघ, चीता, भेड़िया, रीछ, जंगली भैंसे, बैल, अग्नि, पानी, काँटे, बर्छे और तीर से डरते हैं, वे मृत्यु के भय से ही। महाराज! मरण का भय ही ऐसा है। उसी भय में आकर वे लोग, जिनके साथ क्लेश लगा है, मरने से इतना डरते हैं। इसी कारण, नरक में पड़े हुए जीव भी— जो वहाँ से छूटने के लिये सदा चिन्तित रहते हैं— मरण के नाम से डर जाते हैं।" (क)

"महाराज! किसी आदमी के शरीर पर पीब से भरा एक व्रण हो जाय। वह उसकी पीड़ा से बहुत दुःखी हो चिकित्सा कराने के लिये किसी वैद्य या शल्यचिकित्सक को बुलावे। वह वैद्य उसकी परीक्षा कर, चिकित्सा करने के लिये तैयारियाँ करने लगे— शल्यकर्म हेतु छुरी साफ करने लगे, दाह के लिये सलाई को अग्नि में तपाने लगे, या सलाई पर खारे नमक की डली को पिसवाने लगे। महाराज! तो उस रोगी को नस्तर पड़ने, तपी सलाई से जलाने और खारे नमक का छींटा पड़ने से डर होगा या नहीं?" "हाँ, भन्ते! अवश्य डर होगा।" "महाराज! अपने रोग का इलाज कराने की इच्छा रखते हुए भी उसे कष्ट होने से बड़ा भय लगता है। महाराज! इसी तरह, नरक में पड़े हुए जीवों को, वहाँ से मुक्त होने के लिये चिन्तित रहने पर भी मरण से भय बना रहता है।" (ख)

"महाराज! कोई राज-अपराधी को हथकड़ी और बेड़ी पहना कर काल–कोठरी में बन्द कर दिया जाय। उसे उस दण्ड से छूटने की बड़ी व्याकुलता हो। तब छोड़ देने के लिये उसे अधिकारी बुला भेजे। तो क्या उस अपराधी को अपने अपराध को स्मरण कर अधिकारी के पास जाने में डर नहीं

महाराज, पुरिसो दट्ठविसेन आसीविसेन दट्ठो भवेय्य, सो तेन विसविकारेन पतेय्य उप्पतेय्य, वट्टेय्य पवट्टेय्य; अथञ्ञतरो पुरसो बलवन्तेन मन्तपदेन तं दट्ठविसं आसीविसं आनेत्वा तं दट्ठविसं पच्चाचमापेय्य; अपि नु खो, महाराज, तस्स विगतस्स पुरिसस्स तस्मिं दट्ठविसे सप्पे सोत्थिहेतु उपगच्छन्ते सन्तासो उप्पज्जेया'' ति? ''आम, भन्ते'' ति। ''इति, महाराज, तथारूपे अहिम्हि सोत्थिहेतु पि उपगच्छन्ते तस्स सन्तासो उप्पज्जति; एवमेव खो, महाराज, निरया मुच्चितुकामानं पि नेरयिकानं सत्तानं मरणभया सन्तासो उप्पज्जति। अनिट्ठं, महाराज, सब्बसत्तानं मरणं तस्मा नेरयिका सत्ता निरया परिमुच्चितुकामा पि मच्चुनो भायन्ती'' ति। (घ)

''साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी'' ति।

४. मच्चुपासमुत्तिपञ्हो

१२. ''भन्ते नागसेन, भासितं पेतं भगवता–

'न अन्तलिक्खे न समुद्दमज्झे न पब्बतानं विवरं पविस्स।
न विज्जती सो जगतिप्पदेसो यत्थ ठितो मुच्चेय्य मच्चुपासा' ति॥ (ध० प०, पाप०)

''पुन भगवता परित्ता च उद्दिट्ठा। सेय्यथीदं—रतनसुत्तं, मेत्तसुत्तं, खन्धपरित्तं, मोरपरित्तं, धजग्गपरित्तं, आटानाटियपरित्तं, अङ्गुलिमालपरित्तं। यदि, भन्ते नागसेन, आकासगतो पि समुद्दमज्झगतो पि पासादकुटिलेणगुहापब्भारदरिबिलविवरपब्बतन्तरगतो पि न मुच्चति मच्चुपासा, तेन हि परित्तकम्मं मिच्छा। यदि परित्तकरणेन मच्चुपासा परिमुत्ति भवति, तेन हि—'न

लगेगा?'' ''हाँ, भन्ते! उसे डर लगेगा।'' ''महाराज! इसी तरह, नरक में पड़े हुए जीवों को वहाँ से छुटकारा पाने के लिये चिन्तित रहने पर भी मरण–भय बना रहता है। (ग)

११. ''भन्ते! एक और उदाहरण देकर समझायें कि मुझे सर्वथा स्पष्ट हो जाय।'' ''महाराज! किसी आदमी को एक जहरीला साँप काट ले। उस विष के प्रभाव से वह गिरे, पड़े और लोट–पोट हो। तब, कोई गुणी अपने मन्त्रबल से उस साँप को वह विष चूस लेने के लिये बुलावे। महाराज! दूसरी बार साँप को अपने विष को चूस कर स्वस्थ करने के लिये ही आते देख कर क्या उसे भय नहीं होगा?'' ''हाँ, भन्ते! अवश्य होगा।'' ''महाराज! इसी तरह, नरक में पड़े हुए जीवों को– वहाँ से छुटकारा पाने के लिये चिन्तित रहने पर भी मरने से भय बना रहता है।'' (घ)

''ठीक है, भन्ते नागसेन! आपने जो कहा है, वह सर्वथा ठीक है।''

४. मृत्युपाश से मुक्तिविषयकप्रश्न– १२. ''भन्ते नागसेन! भगवान् ने कहा है–

'न आकाश में, न समुद्र में, न पर्वत की कन्दराओं में बैठकर, संसार में कहीं भी ऐसा स्थान नहीं जहाँ छिपकर मृत्यु के हाथों से बचा जा सके।''

''साथ ही साथ भगवान् ने 'परित्राण'[1] (रक्षा) का भी उपदेश दिया है। जैसे– १. रतनसुत्त, २. मेत्तसुत्त, ३. खन्धपरित्त, ४. मोरपरित्त, ५. धजग्गपरित्त, ६. आटानाटियपरित्त, ७. अङ्गुलिमालपरित्त। (क) भन्ते नागसेन! यदि ऊपर आकाश में भी उठकर, नीचे समुद्र के बीच गोते लगाकर, बड़े–बड़े प्रासादों पर पर चढ़ कर, कन्दराओं में, गुहाओं में और पहाड़ के ढालों पर जाकर भी मृत्यु के हाथों नहीं बचा जा सकता है, तो परित्राण–देशना झूठी ठहरती है। (ख) और यदि परित्राण–देशना करने से

---

१. किसी रोग या संकट के निवारणार्थ बौद्ध भिक्षुओं द्वारा किया जानेवाला त्रिपिटक के विशिष्ट सूत्रों का पुण्य-पाठ।

अन्तलिक्खे ....पे०.... मच्चुपासा' ति तं पि वचनं मिच्छा। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो गण्ठितो पि गण्ठितरो तवानुप्पत्तो, सो तया निब्बाहितब्बो'' ति ?

१३. ''भासितं पेतं, महाराज, भगवता—'न अन्तलिक्खे ....पे०....मच्चुपासा' ति। परित्ता च भगवता उद्दिट्ठा ति। तं च पन सावसेसायुकस्स वयसम्पन्नस्स अपेतकम्मवरणस्स; नत्थि, महाराज, खीणायुकस्स ठितिया किरिया वा उपक्कमो वा।

''यथा, महाराज, मतस्स रुक्खस्स सुक्खस्स कोळापस्स निस्नेहस्स उपरुद्धजीवितस्स गतायुसङ्खारस्स कुम्भसहस्सेन पि उदके आकिरन्ते अल्लत्तं वा पल्लवितहरितभावो वा न भवेय्य; एवमेव खो, महाराज, भेसज्जपरित्तकम्मेन नत्थि खीणायुकस्स ठितिया किरिया वा उपक्कमो वा। यानि तानि, महाराज, महिया ओसधानि भेसज्जानि, तानि पि खीणायुकस्स अकिच्चकरानि भवन्ति। सावसेसायुकं, महाराज, वयसम्पन्नं अपेतकम्मावरणं परित्तं रक्खति, गोपेति। तस्सत्थाय भगवता परित्ता उद्दिट्ठा।

''यथा, महाराज, कस्सको परिपक्के धञ्ञे मते सस्सनाले उदकप्पवेसनं वारेय्य, यं पन सस्सं तरुणं मेघसन्निभं वयसम्पन्नं तं उदकवड्ढिया वड्ढति; एवमेव खो, महाराज, खीणायुकस्स भेसज्जपरित्तकिरिया ठपिता पटिक्खित्ता। ये पन ते मनुस्सा सावसेसायुका वयसम्पन्ना तेसं अत्थाय परित्तभेसज्जानि भणितानि, ते परित्तभेसज्जेहि वड्ढन्ती'' ति।

''यदि, भन्ते नागसेन, खीणायुको मरति सावसेसायुको जीवति, तेन हि परित्तभेसज्जानि निरत्थकानि होन्ती'' ति ? ''दिट्ठपुब्बो पन तया, महाराज, कोचि रोगो भेसज्जेहि पटिनिवत्तितो''

मृत्यु के हाथों से मुक्ति मिल जाती है तो 'न ऊपर आकाश में' इत्यादि जो कहा गया, वह झूठा ठहरता है। यह भी द्विविधा आप के सामने....?''

१३. ''महाराज! भगवान् ने यह यथार्थ ही कहा है— 'न आकाश में, न समुद्र के बीच....।' साथ ही साथ भगवान् के परित्राण का भी उपदेश दिया है। किन्तु वह केवल उन लोगों के लिये है जिन्हें कुछ जीना और बाकी रह गया है, जिनकी आयु बहुत है, जो पाप कर्मों से अपने को रोके रखते हैं। महाराज! जिनकी आयु समाप्त हो गयी है, उन्हें रोके रखने के लिये न कोई मन्त्र है, न तन्त्र।

''महाराज! जैसे सूखे, मुर्झाये, फीके पड़ गये और सर्वथा निर्जीव हो गये वृक्ष को हजारों घड़े जल से सींचकर भी हराभरा और पल्लवित नहीं किया जा सकता; वैसे ही चिकित्सा या परित्राण-देशना करके आयुःसमाप्त लोगों को रोका नहीं जा सकता। महाराज! संसार में जितनी जड़ी बूटियाँ हैं, सभी आयुःसमाप्त लोगों के लिये व्यर्थ हैं। महाराज! परित्राण उन्हीं लोगों के लाभ के लिये है जिन्हें कुछ जीना बाकी है, जिनकी आयु शेष है और जो अपने को बुरे कर्मों से रोके रखते हैं। इसीलिये भगवान् ने परित्राण का उपदेश दिया था।

''महाराज! जैसे पके, सूखे धान को किसान खलिहान में एकत्र कर जल से बचाता है। किन्तु जब धान के खेत में हरे-हरे उगे, मेघ छाये से दीख पड़ते हैं, तब किसान उन्हें जल से बार-बार सींचता है। महाराज! उसी तरह, जिनकी आयु समाप्त हो गयी है उनके लिये परित्राण-देशना व्यर्थ है; किन्तु जिन्हें अभी जीना और बाकी है तथा जिनकी आयु अवशिष्ट है, उनको परित्राण-देशना से अवश्य लाभ हो सकता है।''

''भन्ते नागसेन! जिनकी आयु पूरी नहीं हुई, वे तो रहेंगे ही और जिनकी आयु पूरी हो गयी है, वे मर ही जायेंगे तो औषध या परित्राण व्यर्थ सिद्ध होता है।'' ''महाराज! क्या आपने कभी किसी रोग

ति?'' ''आम, महाराज, अनेकसतानि दिट्ठानी'' ति। ''तेन हि, महाराज, 'परित्तभेसज्जकिरिया निरत्थिका' ति यं वचनं तं मिच्छा भवती'' ति?

''दिस्सन्ति, भन्ते नागसेन, वेज्जानं उपक्कमे भेसज्जपानानुलेपा, तेन तेसं उपक्कमेन रोगा पटिनिवत्तन्ती'' ति। ''परित्तानं पि, महाराज, पवत्तियमानानं सद्दो सूयति, जिव्हा सुक्खति, हदयं व्यावट्टति, कण्ठो आतुरति। तेन तेसं पवत्तेन सब्बा व्याधयो वूपसमन्ति, सब्बा ईतियो अपगच्छन्ती'' ति।

''दिट्ठपुब्बो पन तया, महाराज, कोचि अहिना दट्ठो मन्तपदेन विसं पातियमानो विसं चिक्खस्सन्तो उद्धमधो आचमयमानो'' ति? ''आम, भन्ते, अज्जेतरहि पि तं लोके वत्तती'' ति। ''तेन हि, महाराज, 'परित्तभेसज्जकिरिया निरत्थिका' ति यं वचनं तं मिच्छा भवति। कतपरित्तं हि, महाराज, पुरिसं डसितुकामो अहि न डसति, विवटं मुखं पिदहति, चोरानं उक्खित्तलगुळं पि न सम्भवति, ते लगुळं मुञ्चित्वा पेमं करोन्ति कुपितो पि हत्थिनागो समागन्त्वाउपरमति, पज्जलितमहाअग्गिक्खन्धो पि उपगन्त्वा निब्बायति, विसं हलाहलं पि खायितं अगदं सम्पज्जति, आहारत्थं वा फरति, वधका हन्तुकामा उपगन्त्वा दासभूता सम्पज्जन्ति, अक्कन्तो पि पासो न संवरति।

''सुतपुब्बं पन तया, महाराज, मोरस्स कतपरित्तस्स सत्तवस्ससतानि लुद्दको नासक्खि पासं उपनेतुं, अकतपरित्तस्स तं येव दिवसं पासं उपनेसी'' ति? *(मोरपरित्त०)* ''आम, भन्ते, सूयति। अब्भुग्गतो सो सद्दो सदेवके लोके'' ति। ''तेन हि, महाराज, 'परित्तभेसज्जकिरिया निरत्थिका' ति यं वचनं तं मिच्छा भवति।

को औषध से अच्छा होते देखा है?'' ''हाँ भन्ते! सैकड़ों बार।'' ''महाराज! तो आप का यह कहना मिथ्या है कि औषध या परित्राण व्यर्थ हैं।''

''भन्ते! वैद्यों को हम लोग औषध खिलाते–पिलाते और लेप चढ़ाते देखते हैं। उस से तो रोगी स्वस्थ हो जाता है।'' ''महाराज! परित्राण–देशना किये जाने पर भी हम लोग शब्द सुनते हैं, जीभ सूख जाती है, हृदय की चाल धीमी पड़ जाती है, गला बैठ जाता है, इन सभी बातों को देखते हैं। इससे उनके सारे कष्ट दूर हो जाते हैं, सभी उपद्रव शान्त हो जाते हैं।

''महाराज! क्या आपने कभी साँप काटे हुए मनुष्य को झाड़ते, विष को दूर करते और पानी का छींटा देते हुए देखा है?'' ''हाँ, भन्ते! आज कल भी लोग ऐसा करते हैं।'' ''महाराज! तब यह बात असत्य ठहरती है कि औषध और परित्राण से कुछ होता जाता नहीं। महाराज! काटने के लिये आया हुआ साँप भी, परित्राण के प्रभाव से नहीं काट सकता– उसका जबड़ा ही बैठ जाता है। चोरों की उठाई लाठी भी नहीं छूटती– वहे लाठी को फेंकर प्रेम करने लगते हैं। बिगड़ा हुआ हाथी भी पास में आकर रुक जाता है। धधकता हुआ अग्निपुञ्ज भी पास जाने पर बुझ जाता है। खाया गया हलाहल विष भी कोई हानि नहीं करता, एक भोजन ही बन जाता है। बन्धक, मारने की इच्छा से आकर भी, अपने भृत्यों के जैसे नम्र हो जाते हैं।

'मोरपरित्त' की कथा– ''महाराज क्या आपने नहीं सुना है कि परित्राण करने के कारण सात सौ वर्षों तक भी व्याध एक मोर को अपने जाल में नहीं फँसा सके; किन्तु परित्राण करना छोड़ देने पर उसी दिन वह जाल में फँस गया?'' ''हाँ, भन्ते! ऐसा सुना जाता है। उसकी ख्याति देवताओं सहित सारे

१४. "सुतपुब्बं पन तया, महाराज, दानवो भरियं परिरक्खन्तो समुग्गे पक्खिपित्वा गिलित्वा कुच्छिना परिहरति, अथेको विज्जाधरो तस्स दानवस्स मुखेन पविसित्वा ताय सद्धिं अभिरमति, यदा सो दानवो अञ्ञासि, अथ समुग्गं वमित्वा विवरि, सह समुग्गे विवटे विज्जाधरो येन कामं पक्कामी" ति? "आम, भन्ते, सूयति। अब्भुग्गतो सो पि सद्दो सदेवके लोके" ति। "ननु खो, महाराज, विज्जाधरो परित्तबलेन गहणा मुत्तो" ति? "आम, भन्ते" ति। "तेन हि, महाराज, अत्थि परित्तबलं।

"सुतपुब्बं तया, महाराज, अपरो विज्जाधरो बाराणसिरञ्ञो अन्तेपुरे महेसिया सद्धिं सम्पदुट्ठो गहणपत्तो समानो खणेन अदस्सनं गतो मन्तबलेना" ति? "आम, भन्ते, सूयती" ति। "ननु सो, महाराज, विज्जाधरो परित्तबलेन गहणा मुत्तो" ति? "आम, भन्ते" ति। "तेन हि, महाराज, अत्थि परित्तबलं" ति।

१५. "भन्ते नागसेन, किं सब्बे येव परित्तं रक्खती" ति? "एकच्चे, महाराज, रक्खति, एकच्चे न रक्खती" ति। "तेन हि, भन्ते नागसेन, परित्तं न सब्बत्थिकं" ति? "अपि नु खो, महाराज, भोजनं जीवितं रक्खती" ति? "एकच्चे, भन्ते, रक्खति, एकच्चे न रक्खती" ति। "किंकारणा" ति? "यतो, भन्ते, एकच्चे तं येव भोजनं अतिभुञ्जित्वा विसूचिकाय मरन्ती" ति। "तेन हि, महाराज, भोजनं सब्बेसं जीवितं न रक्खती" ति। "द्वीहि, भन्ते नागसेन, कारणेहि, भोजनं जीवितं हरति—अतिभुत्तेन वा उस्मादुब्बलताय वा। आयुददं,

---

लोक में फैली हुई है।" "महाराज! तो आपका यह कहना झूठा ठहरता है कि औषधि या परित्राण से कुछ नहीं होता।"

दानव की कथा– १४. "महाराज! क्या आपने कभी सुना है कि अपनी स्त्री को बचाकर रखने के लिये उसे एक पिटारी में बन्द कर दानव उसे निगल गया था और उसे अपने पेट में लिये फिरता था; तो भी एक विद्याधर उसके मुँह से भीतर जाकर उस स्त्री के साथ रति किया करता था और दानव को यह ज्ञात होते पिटारी को उगल दिया और उसे खोल कर देखने लगा; पिटारी के खुलते ही विद्याधर भाग गया!" हाँ, भन्ते! मैंने ऐसा सुना है। यह बात भी देवताओं सहित सभी लोकों में फैली हुई है।" "महाराज! परित्राण के ही बल से वह विद्याधर पकड़े जाने से बच गया?" "हाँ, भन्ते!" "महाराज! तब परित्राणदेशना करने से बहुत फल होता है।"

विद्याधर की कथा– "महाराज! क्या आपने यह भी सुना है कि दूसरा विद्याधर काशिराज के अन्तःपुर में घुसकर उसकी पटरानी के साथ रति करते हुए पकड़ा गया था और पकड़े जाने पर अपने मन्त्र–बल से अन्तर्हित हो गया?" "हाँ, भन्ते! यह भी मैंने सुना है।" "महाराज! यह विद्याधर भी परित्राण ही के बल से ही न ऐसे भाग सका?" "हाँ, भन्ते!" "महाराज! तब परित्राण में अवश्य बल है!"

१५. "भन्ते! क्या परित्राण से सभी लोगों की रक्षा नहीं होती है?" "नहीं, महाराज! परित्राण से सब लोगों की रक्षा नहीं होती; अपितु कुछ की होती है और कुछ की नहीं।" "भन्ते नागसेन! तब तो परित्राण सब के लिये सिद्ध नहीं हुआ?" "महाराज! क्या भोजन सभी लोगों के प्राणों को बचा सकता है?" "भन्ते कुछ लोगों के प्राणों को बचा सकता है और कुछ लोगों के प्राणों को नहीं।" "सो क्यों?" "भन्ते! क्योंकि अति–भोजन के कारण विसूचिका (हैजा) हो जाने से बहुत लोग मर भी जाया करते हैं।"

भन्ते नागसेन, भोजनं दुरुपचारेन जीवितं हरती'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, परित्तं एकच्चे रक्खति, एकच्चे न रक्खति।

''तीहि, महाराज, कारणेहि परित्तं न रक्खति—कम्मावरणेन, किलेसावरणेन, असद्दहनताय। सत्तानुरक्खणं, महाराज, परित्तं अत्तना कतेन आरक्खं जहति। यथा, महाराज, माता पुत्तं कुच्छिगतं पोसेति, हितेन उपचारेन जनेति, जनयित्वा असुचिमलसिङ्घाणिकमपनेत्वा उत्तमवरसुगन्धं उपलिम्पति; सो अपरेन समयेन परेसं पुत्ते अक्कोसन्ते वा पहरन्ते वा पहारं देति, ते तस्स कुज्झित्वा परिसाय आकड्ढित्वा तं गहेत्वा सामिनो उपनेन्ति, यदि पन तस्सा पुत्तो अपरद्धो होति वेलातिवत्तो। अथ नं सामिनो मनुस्सा आकड्ढयमाना दण्डमुग्गरजाणुमुट्ठीहि ताळेन्ति पोथेन्ति, अपि नु खो, महाराज, तस्स माता लभति आकड्ढन परिकड्ढनं गाहं सामिनो उपनयनं कातुं'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति! ''केन कारणेन, महाराजा'' ति? ''अत्तनो, भन्ते, अपराधेना'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, सत्तानं आरक्खं परित्तं अत्तनो अपराधेन वञ्झं करोती'' ति।

''साधु, भन्ते नागसेन, सुविनिच्छितो पञ्हो। गहनं अगहनं कतं, अन्धकारो आलोको कतो, विनिवेठितं दिट्ठिजालं, त्वं गणिवरपवरमासज्जा'' ति।

५. बुद्धलाभन्तरायपञ्हो

१६. ''भन्ते नागसेन, तुम्हे भणथ—'लाभी तथागतो चीवरपिण्डपातसेनासनगिलान-

---

''महाराज! तो भोजन सभी को नहीं बचाता।'' ''भन्ते नागसेन! दो कारणों से भोजन मनुष्य के प्राणों को हर लेता है— १. मात्रा से अधिक खा लेने से और २. पाचन-शक्ति के मन्द पड़ जाने से। भन्ते नागसेन! जीवनदायी भोजन भी दुरुपयोग के कारण विषतुल्य हो जाता है।'' ''महाराज! इसी तरह, परित्राण से सभी लोगों की रक्षा नहीं होती, अपितु कुछ की होती है और कुछ की नहीं।

परित्राण सफल न होने के तीन कारण— महाराज तीन कारणों से परित्राण रक्षा करने में सफल नहीं होता—१. किसी कर्म-फल के बीच में विघ्न करने से, २. पाप का विघ्न पड़ जाने से, ३. विश्वास न होने से। महाराज! लोगों को अपने ही कर्म से, परित्राण में रक्षा-बल रहते हुए भी वह व्यर्थ जाता है। महाराज! जैसे माता पेट में आने पर बच्चे की रक्षा करती है। बहुत देख-रेख और सावधानी के साथ उसे प्रसव करती है। मल-मूत्र, नाक का मल सभी को साफ करके अच्छे-अच्छे सुगन्धित पदार्थ शरीर में लगा देती है। यदि दूसरा कोई आदमी उस (लड़के) को डाँटता-डपटता या पीटता हो तो वह क्रुद्ध होकर उसे पकड़ कर गाँव के स्वामी के पास ले जाती है। किन्तु यदि लड़का कोई उपद्रव करता है, या घर विलम्ब से आता है तो वह उसे स्वयं दण्ड देती है। महाराज! तो क्या वह भी उसे पकड़ कर ग्रामस्वामी का पास ले जाती है?'' ''नहीं, भन्ते!'' ''क्यों नहीं?'' ''भन्ते! क्योंकि लड़के ने अपराध किया था।'' ''महाराज! इसी तरह, परित्राण रक्षक होते हुए भी उनकी अपनी ही करनी से वह उनका अहितकर हो जाता है।''

''ठीक है, भन्ते नागसेन! आपने सर्वथा स्पष्ट कर दिया, उलझन को सुलझा दिया, अंधेरे में उजाला कर दिया, मिथ्या सिद्धान्त मानने वालों का जाल काट दिया। आप यथार्थ में सभी गणाचार्यों से श्रेष्ठ हैं।''

५. बुद्ध-लाभान्तरायप्रश्न— १६. ''भन्ते नागसेन! आप कहा करते हैं— 'भगवान् को चीवर, पिण्डपात,

प्पच्चयभेसज्जपरिक्खारानं' ति। पुन च—'तथागतो पञ्चसालं ब्राह्मणगामं पिण्डाय पविसित्वा किञ्चिदेव अलभित्वा यथाधोतेन पत्तेन निक्खन्तो' ति। यदि, भन्ते नागसेन, तथागतो लाभी चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानपच्चयभेसज्जपरिक्खारानं, तेन हि—'पञ्चसालं ब्राह्मणगामं पिण्डाय पविसित्वा किञ्चिदेव अलभित्वा यथाधोतेन पत्तेन निक्खन्तो' ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि पञ्चसालं ब्राह्मणगामं पिण्डाय पविसित्वा किञ्चिदेव अलभित्वा यथाधोतेन पत्तेन निक्खन्तो, तेन हि—'लाभी तथागतो चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारानं' ति तं पि वचनं मिच्छा। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो सुमहन्तो दुन्निब्बेधो तवानुप्पत्तो, सो तया निब्बाहितब्बो'' ति?

''लाभी, महाराज, तथागतो चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानपच्चयभेसज्जपरिक्खारानं। पञ्चसालं च ब्राह्मणगामं पिण्डाय पविसित्वा किञ्चिदेव अलभित्वा यथाधोतेन पत्तेन निक्खन्तो। तं च पन मारस्स पापिमतो कारणा'' ति। ''तेन हि, भन्ते नागसेन, भगवतो गणनपथं वीतिवत्तकप्पे अभिसङ्खितं कुसलं किं ति निट्ठितं? अधुनुट्ठितेन मारेन पापिमता तस्स कुसलस्स वेगविप्फारं किं ति पिहितं? तेन हि, भन्ते नागसेन, तस्मिं वत्थुस्मिं द्वीसु ठानेसु उपवादो आगच्छति— कुसलतो पि अकुसलं बलवतरं होति, बुद्धबलतो पि मारबलं बलवतरं होती ति। तेन हि रुक्खस्स मूलतो पि अग्गं भारतरं होति, गुणसम्परिकिण्णतो पि पापियं बलवतरं होती'' ति?

''न, महाराज, तावतकेन कुसलतो पि अकुसलं बलवतरं नाम होति, बुद्धबलतो च मारबलं बलवतरं नाम होति। अपि चेत्थ कारणं इच्छितब्बं। यथा, महाराज, पुरिसो रञ्ञो चक्कवत्तिस्स मधुं वा मधुपिण्डिकं वा अञ्ञं वा उपायनं अभिहरेय्य, तमेनं रञ्ञो द्वारपालो

शयनासन और ग्लान–प्रत्यय– ये परिष्कार (जीवन–साधन) सदा प्राप्त होते थे'। और 'भगवान् पञ्चशाल नामक ब्राह्मण के गाँव में भिक्षाटन करने के बाद कुछ भी न पाकर धुला–धुलाया पात्र लिये लौट आये। (क) भन्ते नागसेन! यदि यह बात सच है कि भगवान् को सभी परिष्कार सदा प्राप्त होते थे तो यह बात झूठी ठहरती है कि पञ्चशाल नामक ब्राह्मणों के गाँव में भिक्षाटन करने के बाद बुद्ध को, कुछ भी न पाकर धुला–धुलाया पात्र खाली लिये ही लौट आना पड़ा था। (ख) और, यदि यह बात वस्तुतः ठीक है कि बुद्ध को उस तरह पञ्चशाल नामक गाँव से लौट आना पड़ा, तो यह बात झूठी ठहरती है कि उन्हें सभी परिष्कार सदा प्राप्त होते थे। भन्ते! यह भी द्विविधा....?"

"महाराज! यह ठीक है कि बुद्ध को सभी परिष्कार सदा प्राप्त होते थे। यह भी ठीक है कि पञ्चशाल ब्राह्मणग्राम में भिक्षाटन करने के बाद कुछ भी न पाकर धुला–धुलाया पात्र लिये ही उन्हें लौट आना पड़ा था। यह पापी मार के ऐसा करने से हुआ था।" "भन्ते! तो क्या भगवान् का असङ्ख्य कल्पों से जमा किया हुआ पुण्य उस समय समाप्त हो गया था या सर्वथा अभी ही उठे पापी मार ने क्या उस पुण्य के बल और प्रभाव को ढक दिया था? भन्ते नागसेन! ऐसी बात पर दो तरह का आक्षेप पड़ता है– (क) पुण्य से पाप ही बलवान् है और (ख) बुद्ध के बल से पापी मार का बल अधिक है। भला वृक्ष के धड़ से ऊपर का भाग कैसे भारी होगा? अच्छे गुणों के समुदाय से पाप का बल कैसे अधिक होगा?"

"महाराज! आप की दोनों बातें इससे सिद्ध नहीं होती। हाँ, यहाँ एक कारण दिखा देना है! महाराज! जैसे कोई आदमी मधु, मधु का छत्ता या ऐसी ही कुछ दूसरी वस्तु लेकर किसी चक्रवर्ती राजा

एवं वदेय्य— 'अकालो, भो, अयं रञ्ञो दस्सनाय, तेन हि, भो, तव उपायनं गहेत्वा सीघसीघं पटिनिवत्त, पुरे तव राजा दण्डं धारेस्सती' ति। ततो सो पुरिसो दण्डभया तसितो उब्बिग्गो तं उपायनं आदाय सीघसीघं पटिनिवत्तेय्य। अपि नु खो सो, महाराज, चक्कवत्ती तावतकेन उपायनविकलमत्तकेन द्वारपालतो दुब्बलतरो होति, अञ्ञं वा पन किञ्चि उपायनं न लभेय्या'' ति? ''न हि, भन्ते! इस्सापकतो सो, भन्ते, द्वारपालो उपायनं निवारेसि। अञ्ञेन पन द्वारेन सतसहस्सगुणं पि रञ्ञो उपायनं उपेती'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, इस्सापकतो मारो पापिमा पञ्चसालके ब्राह्मणगहपतिके अन्वाविसि, अञ्ञानि पन अनेकानि देवता-सतसहस्सानि अमतं दिब्बं ओजं गहेत्वा उपगतानि—'भगवतो काये ओजं ओदहिस्सामा' ति भगवन्तं नमस्समाना पञ्जलिका ठितानी' ति।

१७. ''होतु, भन्ते नागसेन, कुसला भगवतो चत्तारो पच्चया लोके उत्तमपुरिसस्स, याचितो व भगवा देवमनुस्सेहि चत्तारो पच्चये परिभुञ्जति। अपि च खो पन मारस्स यो अधिप्पायो सो तावतकेन सिद्धो, यं सो भगवतो भोजनस्स अन्तरायमकासि। एत्थ मे, भन्ते, कङ्खा न छिज्जति, विमतिजातोहं तत्थ संसयपक्खन्दो, न मे तत्थ मानसं पक्खन्दति, यं तथागतस्स अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स सदेवके लोके अग्गपुग्गलवरस्स कुसलवरपुञ्ञसम्भवस्स असम-समस्स अनुपमस्स अप्पटिसमस्स छवकं लामकं परित्तं पापमनरियं विपन्नं मारो लाभन्तराय-मकासी'' ति।

''चत्तारो खो, महाराज, अन्तराया—१. अदिट्ठन्तरायो, २. उद्दिस्सकतन्तरायो, ३. उपक्खटन्तरायो, ४. परिभोगन्तरायो ति।

को भेंट चढ़ाने के लिये आवे। द्वारपाल उस आदमी से कहे— 'राजा से मिलने का यह समय नहीं है। अतः अपनी भेंट को लेकर जल्दी यहाँ से निकल जाओ, अन्यथा राजा देखने पर दण्ड देंगे।' तब वह आदमी डरकर घबरा जाय और अपनी भेंट लेकर वहाँ से झटपट निकल जाय। महाराज! तो क्या इसी से कि राजा उस दिन की भेंट को नहीं पा सका, अपने द्वारपाल से दुर्बल समझा जायगा? या राजा को फिर कभी भेंट मिलेगी ही नहीं?" "नहीं, भन्ते! अपने रूक्ष स्वभाव के कारण ही द्वारपाल ने उस आदमी को लौटा दिया। किन्तु दूसरे दरवाजों से राजा को उससे सौ गुना और हजार गुना अधिक भेंट चढ़ेगी।" "महाराज! इसी तरह अपने दुःस्वभाव के कारण पापी मार पञ्चशाल नामक गाँव के ब्राह्मणों में जाकर प्रविष्ट हो गया। किन्तु दूसरे सैकड़ों और हजारों देवता दिव्य ओज वाली अमृत लेकर आ उपस्थित हुए और भगवान् को देने के लिये हाथ जोड़ कर खड़े हो गये।"

१७. "भन्ते नागसेन! ऐसा हो सकता है कि बुद्ध को चारों प्रत्यय अत्यधिक सुलभ थे तथा उन पुरुषोत्तम को देवताओं और मनुष्यों द्वारा भक्तिपूर्वक प्रदत्त सभी कुछ सदा प्राप्त होता था। तो भी पापी मार की यह इच्छा तो पूरी हो ही गयी कि बुद्ध को वहाँ के ब्राह्मणों से कुछ मिल नहीं पाया! भन्ते! मेरी यह शङ्का दूर नहीं हुई। इसमें मेरी दुविधा बनी हुई है, संदेह लगा हुआ है कि मार जैसा हीन, नीच, क्षुद्र, पापी और बुरा लोक में सर्वश्रेष्ठ, अच्छे पुण्य के समूह स्वरूप, अद्वितीय और अनुपमेय के भिक्षाटन में कैसे कुछ बाधा डाल सका!"

"महाराज! विघ्न (अन्तराय) चार प्रकार के होते हैं— १. विना देखा हुआ, २. उद्देश्य किया हुआ, ३. तैयार किया हुआ और ४. परिभोग के लिये उद्यत हुआ।

"तत्थ कतमो अदिट्ठन्तरायो? अनोदिस्स अदस्सनेन अभिसङ्खतं कोचि अन्तरायं करोति— 'किं परस्स दिन्नेना' ति, अयं अदिट्ठन्तरायो नाम। (१)

"कतमो उद्दिस्सकतन्तरायो? इधेकच्चपुग्गलं उपदिसित्वा उद्दिस्स भोजनं पटियत्तं होति, तं कोचि अन्तरायं करोति, अयं उद्दिस्सकतन्तरायो नाम। (२)

"कतमो उपक्खटन्तरायो? इध यं किञ्चि उपक्खटं होति अप्पटिग्गहीतं, तत्थ कोचि अन्तरायं करोति, अयं उपक्खटन्तरायो नाम। (३)

"कतमो परिभोगन्तरायो? इध यं किञ्चि परिभोगं तत्थ कोचि अन्तरायं करोति, अयं परिभोगन्तरायो नाम। इमे खो, महाराज, चत्तारो अन्तराया। (४)

"यं पन मारो पापिमा पञ्चसालके ब्राह्मणगहपतिके अन्वाविसि, तं पन भगवतो परिभोगं उपक्खटं न उद्दिस्सकतं, अनागतं असम्पत्तं अदस्सनेन अन्तरायं कतं। तं पन नेकस्स भगवतो येव, अथ खो ये तेन समयेन निक्खन्ता अब्भागता सब्बे पि ते तं दिवसं भोजनं न लभिंसु। नाहं तं, महाराज, पस्सामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय, यो तस्स भगवतो उद्दिस्सकतं उपक्खटं परिभोगं अन्तरायं करेय्य। सचे कोचि इस्साय उद्दिस्स कतं उपक्खटं परिभोगं अन्तरायं करेय्य, फलेय्य तस्स मुद्धा सतधा वा, सहस्सधा वा।

१८. "चत्तारोमे, महाराज, तथागतस्स केनचि अनावरणीया गुणा। कतमे चत्तारो?

'विना देखा हुआ'— विना किसी विशेष व्यक्ति को देने के लिए तैयार किए हुए दान को देखकर कोई आदमी देने वाले को भड़का दे— 'अरे, इसे किसी दूसरे को देने से क्या लाभ!' और वह दान रुक जाय। यह 'विना देखे हुए का अन्तराय' है। (१)

'उद्देश्य किया हुआ'— किसी खास व्यक्ति को कोई दान देने की इच्छा करे; कोई दूसरा आदमी आकर उसे भड़का दे। तो यह 'उद्देश्य–अन्तराय' कहा जाता है। (२)

'तैयार किया हुआ'— कोई आदमी दान लेकर किसी को देने के लिए तैयार हो। उस समय कुछ ऐसी बाधा उपस्थित हो जाय जिससे दान नहीं दिया जा सके। तो यह 'तैयार किए हुए का अन्तराय' कहा जाता है। (३)

'परिभोग के लिए उद्यत हुआ'— दान दिए जा चुकने पर पाने वाला उसका उपभोग करने के लिये उद्यत हो। उस समय ऐसी ही कोई बाधा कड़ी हो जाय जिससे वह उपभोग न कर सके। तो यह 'परिभोग के लिये उद्यत हुए का अन्तराय' कहा जाता है। महाराज! यही चार प्रकार के अन्तराय होते हैं।" (४)

"मार ने जो पञ्चशाल गाँव के ब्राह्मणों में अन्तःप्रविष्ट होकर उन्हें किसी को कुछ दान करने से विमुख कर दिया था वह दूसरे, तीसरे या चौथे प्रकार का अन्तराय नहीं; किन्तु पहले प्रकार का 'विना देखा हुआ' अन्तराय था। उस दिन जो दूसरे भी माँगने वाले उस गाँव में गये थे, उन्हें भी कुछ नहीं मिला था। महाराज! देवता, मार, ब्रह्मा, श्रमण या ब्राह्मण तथा सभी जीवों के साथ इन सब लोकों में ऐसा कोई नहीं है जो बुद्ध को उद्देश्य किये, तैयार किये या उनके परिभोग करने के लिये उद्यत हुए में अन्तराय ला दे। यदि कोई द्वेष से अन्तराय करे तो उसका सिर सैकड़ों और हजारों खण्डों में बिखर जायगा।"

लाभो, महाराज, भगवतो उद्दिस्सकतो उपक्खटो न सक्का केनचि अन्तरायं कातुं। सरीरानुगता, महाराज, भगवतो ब्यामप्पभा न सक्का केनचि अन्तरायं कातुं। सब्बञ्ञुतं, महाराज, भगवतो ञाणरतनं न सक्का केनचि अन्तरायं कातुं। जीवितं, महाराज, भगवतो न सक्का केनचि अन्तरायं कातुं। इमे खो, महाराज, चत्तारो तथागतस्स केनचि अनावरणीया गुणा। सब्बे पेते, महाराज, गुणा एकरसा अरोगा अकुप्पा अपरूपक्कमा, अफुसानि किरियानि। अदस्सनेन, महाराज, मारो पापिमा निलीयित्वा पञ्चसालके ब्राह्मणगहपतिके अन्वाविसि।

''यथा, महाराज, रञ्ञो पच्चन्ते देसे विसमे अदस्सनेन निलीयित्वा चोरा पन्थं दूसेन्ति, यदि पन राजा ते चोरे पस्सेय्य, अपि नु खो ते चोरा सोत्थिं लभेय्युं'' ति? ''न हि, भन्ते। फरसुना फालापेय्य सतधा वा सहस्सधा वा'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, अदस्सनेन मारो पापिमा निलीयित्वा पञ्चसालके ब्राह्मणगहपतिके अन्वाविसि।

''यथा वा पन, महाराज, इत्थी सपतिका अदस्सनेन निलीयित्वा परपुरिसं सेवति; एवमेव खो, महाराज, अदस्सनेन मारो पापिमा निलीयित्वा पञ्चसालके ब्राह्मणगहपतिके अन्वाविसि। यदि, महाराज, इत्थी सामिकस्स सम्मुखा परपुरिसं सेवति, अपि नु खो सा इत्थी सोत्थिं लभेय्या'' ति? ''न हि, भन्ते। हनेय्या पि तं, भन्ते, सामिको वधेय्यापि, बन्धेय्यापि, दासित्तं वा उपनेय्या'' ति।

''एवमेव खो, महाराज, अदस्सनेन मारो पापिमा निलीयित्वा पञ्चसालके ब्राह्मणगहपतिके अन्वाविसि। यदि, महाराज, मारो भगवतो उद्दिस्सकते उपक्खटं परिभोगं अन्तरायं करेय्य, फलेय्य तस्स मुद्धा सतधा वा, सहस्सधा वा'' ति।

''एवमेतं, भन्ते नागसेन, चोरिकाय कतं मारेन पापिमता। निलीयित्वा मारो पापिमा

---

१८. ''महाराज! भगवान् में चार बातें हैं, जिन्हें कोई रोक नहीं सकता। कौन सी चार? १. उनके उद्देश्य से किये हुए या तैयार किये हुए दान, २. उनके शरीर से निकली हुई प्रभा का व्याममात्र फैलना, ३. उनका सदा सर्वज्ञ होना एवं ४. उनका पूरी आयु तक जीना। महाराज! बुद्ध–सम्बन्धी इन चार बातों को कोई रोक नहीं सकता। महाराज! ये चारों बातें एक ही तरह की हैं। उनमें कुछ भी कमी नहीं है। उन्हें कोई भी हटा नहीं सकता। किसी भी तरह से वे बदली नहीं जा सकतीं। महाराज! जब पापी मार पञ्चशाल नामक गाँव के ब्राह्मणों में प्रविष्ट था, तब वह अदृश्य होकर वहाँ उपस्थित था।''

''महाराज! चोर और लुटेरे सीमा प्रान्त के बीहड़ स्थानों में छिपे रहकर राहगीरों को लूटते–पीटते हैं। यदि राजा उन्हें देख ले तो क्या उनका कल्याण है?'' ''नहीं, भन्ते! वह उन्हें तलवार से सौ या हजार टुकड़ों में कटवा सकता है।'' ''महाराज! इसी तरह, अदृश्य होकर मार उन ब्राह्मणों में छिपकर बैठा हुआ था।''

''महाराज! विवाहिता स्त्री छिपकर ही दूसरे पुरुष के पास जाती है! इसी तरह, अदृश्य होकर ही मार उन ब्राह्मणों में बैठा हुआ था। महाराज! यदि वह औरत अपने पति की जानकारी में दूसरे पुरुष के पास जाय तो क्या उसका कल्याण है?'' ''नहीं, भन्ते! ऐसा करने से तो उसका पति उसे मार–पीटकर प्राण ले लेगा या दासी बना देगा।''

''महाराज! इसी तरह, पापी मार अदृश्य ....। महाराज यदि मार बुद्ध के उद्देश्य से किये गये या तैयार किये गये या उनके पाये हुए दान में कुछ अन्तराय डालता तो उसके सिर के .... टुकड़े हो जाते।''

पञ्चसालके ब्राह्मणगहपतिके अन्वाविसि। सचे सो, भन्ते, मारो पापिमा भगवतो उद्दिस्सकतं परिभोगं अन्तरायं करेय्य, मुद्धा वास्स फलेय्य सतधा वा सहस्सधा वा, कायो वास्स भुसमुट्ठि विय विकिरेय्य। साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी'' ति।

६. अपुञ्ञपञ्हो

१९. ''भन्ते नागसेन, तुम्हे भणथ— 'यो अजानन्तो पाणातिपातं करोति सो बलवतरं अपुञ्ञं पसवती' ति। पुन च भगवता विनयपञ्ञत्तिया भणितं— 'अनापत्ति अजानन्तस्सा' ति। यदि, भन्ते नागसेन, अजानित्वा पाणातिपातं करोन्तो बलवतरं अपुञ्ञं पसवति, तेन हि— 'अनापत्ति अजानन्तस्सा' ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि अनापत्ति अजानन्तस्स, तेन हि— 'अजानित्वा पाणातिपातं करोन्तो बलवतरं अपुञ्ञं पसवती' ति तं पि वचनं मिच्छा। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो दुरुत्तरो दुरतिक्कमो तवानुप्पत्तो, सो तया निब्बाहितब्बो'' ति?

''भासितं पेतं, महाराज, भगवता— 'यो अजानन्तो पाणातिपातं करोति सो बलवतरं अपुञ्ञं पसवती' ति। पुन च विनयपञ्ञत्तिया पि भगवता भणितं— 'अनापत्ति अजानन्तस्सा' ति। तत्थ अत्थन्तरं अत्थि। कतमं अत्थन्तरं? अत्थि, महाराज, आपत्ति सञ्ञाविमोक्खा, अत्थि आपत्ति नो सञ्ञाविमोक्खा। यायं, महाराज, आपत्ति सञ्ञाविमोक्खा, तं आपत्तिं आरब्भ भगवता भणितं— 'अनापत्ति अजानन्तस्सा'' ति।

''साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी'' ति।

७. भिक्खुसङ्घपरिहरणपञ्हो

२०. ''भन्ते नागसेन, भासितं पेतं भगवता— 'तथागतस्स खो, आनन्द, न एवं होति— अहं भिक्खुसङ्घं परिहरिस्सामी ति वा, ममुद्देसिको भिक्खुसङ्घो ति वा' ति। *(दी०नि०, म०प०सु०)* पुन च मेत्तेयस्स भगवतो सभावगुणं परिदीपयमानेन भगवता एवं भणितं— 'सो

''हाँ, भन्ते नागसेन! आप ठीक कहते हैं। पापी मार ने चोर जैसा काम किया। वह अदृश्य होकर उन ब्राह्मणों के हृदय में प्रविष्ट था। यदि वह भगवान् के लिये.... तो उसका शरीर एक मुट्ठी भूसे की तरह खण्डशः बिखर जाता। ठीक है, भन्ते नागसेन! जैसा आप कहते हैं, उसे मैं स्वीकार करता हूँ।''

६. अपुण्यविषयकप्रश्न— १९. ''भन्ते नागसेन! आप लोग कहा करते हैं— 'जो अज्ञानता से प्राणिहिंसा करता है, उसे और भी अधिक पाप लगता है। फिर भी भगवान् ने विनयप्रज्ञप्ति के समय कहा है— 'विना जाने हुए का कोई दोष नहीं लगता। (द्र०— पाराजिक, विनयपिटक) (क) भन्ते नागसेन! यदि बिना जाने प्राणि-हिंसा करने से और भी अधिक पाप लगता है तो यह कहना मिथ्या है कि बिना जाने हुए को कोई दोष नहीं लगता। (ख) यदि वस्तुतः विना जाने हुए का कोई दोष नहीं लगता, तो यह बात मिथ्या ठहरती है कि विना जाने प्राणिहिंसा करने से और भी अधिक पाप लगता है। यह भी द्विविधा....?''

''महाराज! दोनों बातें ठीक हैं।'' किन्तु दोनों के अर्थ में कुछ अन्तर है।'' ''वह क्या?'' ''कितने ही ऐसे दोष हैं, जो विना जाने किये जाते हैं और कितने ऐसे हैं, जो जान कर किये जाते हैं। इन दोनों में पहले को ध्यान में रखते हुए भगवान् ने कहा था—'विना जाने हुए में कोई दोष नहीं लगता।''

''ठीक है, भन्ते नागसेन! आप जैसा कहते हैं, मैं स्वीकार करता हूँ।''

७. भिक्षुसङ्घपरिहरणप्रश्न— २०. ''भन्ते नागसेन! भगवान् ने यह कहा है—'आनन्द! भगवान् के मन में ऐसा कभी नहीं आता कि मैं ही भिक्षुसङ्घ का सञ्चालक हूँ या भिक्षुसङ्घ मेरा ही अनुसरण (परिहरण)

अनेकसहस्सं भिक्खुसङ्घं परिहरिस्सति, सेय्यथापि अहं एतरहि अनेकसतं भिक्खुसङ्घं परिहरामी' ति। यदि, भन्ते नागसेन, भगवता भणितं— 'तथागतस्स खो, आनन्द, न एवं होति— अहं भिक्खुसङ्घं परिहरामी ति वा ममुद्देसिको भिक्खुसङ्घं परिहरिस्सामी' ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि तथागतेन भणितं— 'सेय्यथापि अहं एतरहि अनेकसतं भिक्खुसङ्घं परिहरामी' ति, तेन हि—'तथागतस्स खो, आनन्द, न एवं होति— अहं भिक्खुसङ्घं परिहरामी ति वा, ममुद्देसिको भिक्खुसङ्घो' ति वा ति तं पि वचनं मिच्छा। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो तवानुप्पत्तो, सो तया निब्बाहितब्बो'' ति?

२१. ''भासितं पेतं, महाराज, भगवता— 'तथागतस्स खो, आनन्द, न एवं होति— अहं भिक्खुसङ्घं परिहरामी ति वा, ममुद्देसिको भिक्खुसङ्घो ति वा' ति। मेत्तेयस्सापि भगवतो सभावगुणं परिदीपयमानेन भगवता भणितं—'सो अनेकसहस्सं भिक्खुसङ्घं परिहरिस्सति, सेय्यथापि अहं एतरहि अनेकसतं भिक्खुसङ्घं परिहरामी' ति। एतस्मिं च, महाराज, पञ्हे एको अत्थो सावसेसो, एको अत्थो निरवसेसो। न, महाराज, तथागतो परिसाय अनुगामिको। परिसा पन तथागतस्स अनुगामिका। सम्मुति, महाराज, एसा—'अहं' ति 'ममा' ति। न परमत्थो एसो। विगतं, महाराज, तथागतस्स पेमं, विगतो सिनेहो, 'मय्हं' ति पि तथागतस्स गहणं नत्थि, उपादाय पन अवस्सयो होति।

''यथा, महाराज, पथवी भुम्मट्ठानं सत्तानं पतिट्ठा होति उपस्सयं होति, पथविट्ठा चेते सत्ता। न च महापथविया—'मय्हेते' ति अपेक्खा होति; एवमेव खो, महाराज, तथागतो सब्बसत्तानं पतिट्ठा होति उपस्सयं, तथागतट्ठा चेते सत्ता, न च तथागतस्स 'मय्हेते' ति अपेक्खा

करे।' साथ ही साथ मैत्रेय भगवान् के स्वाभाविक गुणों को दिखाते हुए उन्होंने यह भी कहा है— 'वे हजारों भिक्षुसङ्घ का सञ्चालन करेंगे, जैसे अभी मैं सैकड़ों भिक्षुसङ्घ का सञ्चालन कर रहा हूँ।' (क) भन्ते नागसेन! यदि सचमुच भगवान् के मन में ऐसा कभी नहीं आता है कि 'मैं ही भिक्षुसङ्घ का सञ्चालन करता हूँ या भिक्षुसङ्घ मेरा ही अनुसरण करे', तो जो मैत्रेय भगवान् के विषय में कहा गया है, वह असत्य ठहरता है। (ख) और यदि मैत्रेय भगवान् के विषय में जो कुछ कहा गया है, वह ठीक है तो यह बात मिथ्या है कि 'भगवान् के मन में ऐसा कभी नहीं आता कि मैं ही भिक्षुसङ्घ का सञ्चालन करूँ या भिक्षुसङ्घ मेरा ही अनुसरण करे। यह भी द्विविधा....?

२१. ''महाराज! भगवान् ने जो आनन्द को तथागत के विषय में और जो मैत्रेय भगवान् के स्वाभाविक गुणों को दिखाते हुए कहा है, दोनों ठीक है। किन्तु महाराज! इस प्रश्न में एक अर्थ सावशेष (=जो बात कुछ पर चरितार्थ होती है और कुछ पर नहीं) है और एक निरवशेष (=जो बात व्यापक है— विना किसी अपवाद के सभी पर चरितार्थ होती है)। महाराज! भगवान् किसी समूह के पीछे-पीछे नहीं चलते अपितु समूह ही उनके पीछे-पीछे चलता है। महाराज! यह लोगों की केवल कल्पनामात्र है कि 'यह मैं हूँ' या 'यह मेरा है', परमार्थ में ऐसी बात नहीं है। महाराज! भगवान् प्रेम के बन्धन से ऊपर हो गये हैं, उन्हें किसी के प्रति राग नहीं रहा। 'यह मेरा है'—इसका भी भ्रम भगवान् में नहीं है। तो भी, भिक्षुसङ्घ उन्हीं को अग्र मानकर चलता है।

''महाराज! जैसे पृथ्वी पर रहने वाले सभी जीवों का आधार पृथ्वी होती है, किन्तु उसे ऐसा कभी विचार नहीं होता कि 'ये सभी मेरे ही हैं।' महाराज! इसी तरह, बुद्ध सभी जीवों के आधार होकर

होति। यथा वा पन, महाराज, महतिमहामेघो अभिवस्सन्तो तिणरुक्खपसुमनुस्सानं वुड्ढिं देति, सन्ततिमनुपालेति, वुड्ढूपजीविनो चेते सत्ता सब्बे, न च महामेघस्स 'मय्हेते' ति अपेक्खा होति; एवमेव खो, महाराज, तथागतो सब्बसत्तानं कुसलधम्मे जनेति, अनुपालेति, सत्थूपजीविनो चेते सत्ता सब्बे, न च तथागतस्स 'मय्हेते' ति अपेक्खा होति। तं किस्स हेतु ? अत्तानुदिट्ठिया पहीनत्ता'' ति।

''साधु, भन्ते नागसेन, सुनिब्बेठितो पञ्हो बहुविधेहि कारणेहि। गम्भीरो उत्तानीकतो, गण्ठि भिन्नो, गहनं अगहनं कतं, अन्धकारो आलोको कतो, भग्गा परवादा, जिनपुत्तानं चक्खुं उप्पादितं'' ति।

८. अभेज्जपरिसपञ्हो

२२. ''भन्ते नागसेन, तुम्हे भणथ—'तथागतो अभेज्जपरिसो' ति। पुन च भणथ—'देवदत्तेन एकप्पहारं पञ्च भिक्खुसतानि भिन्नानी' ति। यदि, भन्ते नागसेन, तथागतो अभेज्जपरिसो, तेन हि—'देवदत्तेन एकप्पहारं पञ्च भिक्खुसतानि भिन्नानी' ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि देवदत्तेन एकप्पहारं पञ्च भिक्खुसतानि भिन्नानि, तेन हि—'तथागतो अभेज्जपरिसो' ति तं पि वचनं मिच्छा। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो तवानुप्पत्तो, गम्भीरो दुन्निवेठियो, गण्ठितो पि गण्ठितरो, एत्थायं जनो आवटो निवुतो ओवुतो पिहितो परियोनद्धो, एत्थ तव ञाणबलं दस्सेहि परवादेसू'' ति ?

रहते हैं, सभी को अपना आश्रय देते हैं, किन्तु उनके मन में कभी ऐसी अपेक्षा नहीं होती कि 'ये मेरे ही हैं।' महाराज! महामेघ बरसकर घास,पौधे, पशु तथा मनुष्यों की वृद्धि करता है, उनकी परम्परा को बनाये रखता है; उसके बरसने से ही ये सभी जीव जीते हैं, तो भी, महामेघ को कभी भी ऐसी अपेक्षा नहीं होती कि 'ये मेरे ही हैं।' महाराज! इसी तरह, बुद्ध सभी को पुण्य के लिये जीवन-दान करते हैं, और उन्हें पुण्य में लगाये रखते हैं। सभी जीवों को उन्हीं से पुण्य करने की शिक्षा मिलती है। तो भी, भगवान् के मन में कभी ऐसी अपेक्षा नहीं होती है कि 'ये मेरे ही हैं'; क्योंकि उनमें अपनेपन (=आत्मानुदृष्टि) का समग्र विचार नष्ट हो गया है।''

''ठीक है, भन्ते नागसेन! आपने प्रश्न को स्पष्ट कर दिया। अनेक तर्कों से उलझने वाले को सुलझा दिया। गाँठ को खोल दिया। अंधेरे में उजाला कर दिया। विपक्ष का मुँह तोड़ दिया। बुद्धश्रावकों को ज्ञान की आँखें दे दीं।''

८. अभेद्यपरिषद्विषयकप्रश्न—२२.भन्ते नागसेन! आप लोग कहा करते हैं कि बुद्ध के अनुगामी कभी बहकाये नहीं जा सकते। साथ ही साथ ऐसा भी कहते हैं कि देवदत्त एक साथ पाँच सौ भिक्षुओं को लेकर चला गया। (क) भन्ते नागेसन! यदि बुद्ध के अनुगामी वास्तव में कभी भी बहकाये नहीं जा सकते तो यह बात झूठी ठहरती है कि देवदत्त एक ही साथ पाँच सौ भिक्षुओं को लेकर गया था। (ख) और, यदि देवदत्त सचमुच एक साथ पाँच सौ भिक्षुओं को निकाल ले गया तो यह बात झूठी ठहरती है कि बुद्ध के अनुगामी कभी बहकाये नहीं जा सकते। यह भी एक द्विविधा आप के सामने रखी जाती है। यह गम्भीर है। इसका सुलझना बहुत कठिन है। यह भारी भूलभूलैय्या है। इसमें पड़कर मनुष्य फँस जाता है, उलझ जाता है, घिर जाता है, ढक जाता है और बँध जाता है। आप यहाँ पर विपक्ष के तर्क को काँटने में अपना ज्ञान-बल दिखावें?''

२३. ''अभेज्जपरिसो, महाराज, तथागतो। देवदत्तेन च एकप्पहारं पञ्चभिक्खुसतानि भिन्नानि। तं च पन भेदकस्स बलेन, भेदके विज्जमाने नत्थि, महाराज, अभेज्जं नाम। भेदके सति माता पि पुत्तेन भिज्जति, पुत्तो मातरा भिज्जति, पिता पि पुत्तेन भिज्जति, पुत्तो पि पितरा भिज्जति, भाता पि भगिनिया भिज्जति, भगिनी पि भातरा भिज्जति, सहायो पि सहायेन भिज्जति, नावा पि नानादारुसङ्घटिता ऊमिवेगसम्पहारेन भिज्जति, रुक्खो पि मधुकप्पसम्पन्नफलो अनिलबलवेगाहतो भिज्जति, सुवण्णं पि जातिमन्तं लोहेन भिज्जति। अपि च, महाराज, नेसो अधिप्पायो विञ्ञूनं, नेसा बुद्धानं अधिमुत्ति, नेसो पण्डितानं छन्दो—'तथागतो भेज्जपरिसो' ति। अपि चेत्थं कारणं अत्थि, येन कारणेन तथागतो वुच्चति—'अभेज्जपरिसो' ति। कतमं एत्थ कारणं? तथागतस्स, महाराज, कतेन आदानेन वा अप्पियवचनेन वा अनत्थचरियाय वा असमानत्तताय वा यतो कुतोचि चरियं चरन्तस्स पि परिसा भिन्ना ति न सुतपुब्बं, तेन कारणेन तथागतो वुच्चति—'अभेज्जपरिसो' ति। तया पेतं, महाराज, ञातब्बं—'अत्थि किञ्चि नवङ्गे बुद्धवचने सुत्तागतं— इमिना नाम कारणेन बोधिसत्तस्स कतेन तथागतस्स परिसा भिन्ना'' ति!

''नत्थि भन्ते। नो चेतं लोके दिस्सति, नो पि सूयति। साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी'' ति॥

(इमस्मिं वग्गे अट्ठ पञ्हा) *दुतियो अभेज्जवग्गो निट्ठितो॥*

---

२३. ''महाराज! भगवान् के वास्तविक अनुगामी कभी भ्रान्त नहीं हो सकते तथा साथ ही साथ यह भी सच है कि देवदत्त एक साथ पाँच सौ भिक्षुओं को निकाल ले गया था। महाराज! बहकाने वाले की अधिक शक्ति रहे तो बहका भी सकता है। महाराज! यदि बहकाने वाला इतना चतुर हो तो कोई भी ऐसा नहीं है जो बहकाया न जा सके। माता भी पुत्र से बहकायी जा सकती है; पुत्र भी माता से बहकाया जा सकती है। पिता पुत्र से, या पुत्र पिता से बहकाया जा सकता है; भाई बहन से बहकाया जा सकता है, बहन भाई से बहकायी जा सकती है। मित्र भी मित्र से बहकाया जा सकता है। नाव के सभी पटरे के एक साथ रहने पर भी पानी की तरङ्गों के वेग से एक दूसरे से पृथक् हो जाते हैं। हवा के चलने से मीठे-मीठे फलों वाला वृक्ष भी गिर पड़ता है। सोना भी लोहे की हथौड़ी से चूर-चूर कर दिया जाता है। महाराज! किन्तु न तो यह विज्ञ पुरुषों की इच्छा रहती है, न भगवान् ही चाहते हैं और न पण्डित लोगों के ही मन में यह बात आती है कि भगवान् के अनुगामी उनसे बहका दिये जायें। महाराज! जो यह कहा जाता है कि भगवान् के अनुगामियों को कोई भी बहका नहीं सकता, उसका कुछ विशेष कारण है। महाराज! भगवान् के अपने कुछ, डाँटने, दुत्कारने या कुछ ऊँचा-नीचा कह देने से उनके अनुगामी कभी उनसे बहक गए हों—ऐसी बात कहीं नहीं सुनी जाती। इसी कारण कहा जाता है कि भगवान् के अनुगामी बहकाये नहीं जा सकते। महाराज! क्या आपने सुना है कि भगवान् के नौ अङ्गों वाले वचन (त्रिपिटक) में कहीं आया है कि भगवान् की किसी भूल से किसी परिषद में फूट पड़ गयी हो?''

''नहीं भन्ते! न तो यह देखा गया है और न सुना ही है। ठीक है! आप जैसा कहते हैं, मैं स्वीकार करता हूँ।''

(इस वर्ग में आठ प्रश्न हैं) *दूसरा अभेद्यवर्ग समाप्त॥*

३. पणामितवग्गो

१. सेट्ठधम्मपञ्हो

१. "भन्ते नागसेन, भासितं पेतं भगवता—'धम्मो हि, वासेट्ठ, सेट्ठो जनेतस्मिं दिट्ठे चेव धम्मे अभिसम्पराये चा' ति। (दी० नि०, अग्ग० सु०) पुन च उपासको गिही सोतापन्नो पिहितापायो दिट्ठिप्पत्तो विञ्ञातसासनो भिक्खुं वा सामणेरं वा पुथुज्जनं अभिवादेति पच्चुट्ठेति। यदि, भन्ते नागसेन, भगवता भणितं—'धम्मो हि, वासेट्ठ, सेट्ठो जनेतस्मिं दिट्ठे चेव धम्मे अभिसम्पराये चा' ति, तेन हि—'उपासको गिही सोतापन्नो पिहितापायो दिट्ठिप्पत्तो विञ्ञातसासनो भिक्खुं वा सामणेरं वा पुथुज्जनं अभिवादेति पच्चुट्ठेती' ति यं तं वचनं मिच्छा। यदि उपासको गिही सोतापन्नो पिहितापायो दिट्ठिप्पत्तो विञ्ञातसासनो भिक्खुं वा सामणेरं वा पुथुज्जनं अभिवादेति पच्चुट्ठेति, तेन हि—'धम्मो हि, वासेट्ठ, सेट्ठो जनेतस्मिं दिट्ठे चेव धम्मे अभिसम्पराये चा' ति तं पि वचनं मिच्छा। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो तवानुप्पत्तो, सो तया निब्बाहितब्बो" ति?

२. "भासितं पेतं, महाराज, भगवता—'धम्मो हि, वासेट्ठ, सेट्ठो जनेतस्मिं दिट्ठे चेव धम्मे अभिसम्परायिके चा' ति। उपासको च गिही सोतापन्नो पिहितापायो दिट्ठिप्पत्तो विञ्ञातसासनो भिक्खुं वा सामणेरं वा पुथुज्जनं अभिवादेति पच्चुट्ठेति। तत्थ पन कारणं अत्थि, कतमं तं कारणं?

"वीसति खो पनिमे, महाराज, समणस्स समणकरणा धम्मा, द्वे च लिङ्गानि; येहि समणो अभिवादनपच्चुट्ठानसम्माननपूजनारहो होति। कतमे वीसति समणस्स समणकरणा धम्मा, द्वे च लिङ्गानि? सेट्ठो यमो, अग्गो नियमो, चारो, विहारो, संयमो, संवरो, खन्ति,

---

३. प्रणामितवर्ग

१. श्रेष्ठधर्मविषयकप्रश्न—१. "भन्ते नागसेन! भगवान् ने यह कहा है—'वाशिष्ठ! संसार में धर्म ही सबसे श्रेष्ठ है, इस जन्म में और आगे चलकर भी। फिर भी गृहस्थ उपासक स्रोतआपन्न, जिनका अब अपने मार्ग से च्युत होना सम्भव न हो जिसने धर्म का पूरा-पूरा ज्ञान पा लिया हो तथा बुद्ध के शासन को जिसने जान लिया हो, ऐसा होने पर भी अज्ञानी भिक्षु या श्रामणेर को प्रणाम तथा उठकर स्वागत करता है। (क) भन्ते नागसेन ! यदि यह बात ठीक है कि संसार में धर्म ही सबसे श्रेष्ठ है, ...तो स्रोतआपन्न.... गृहस्थ को अज्ञानी भिक्षु को प्रणाम करना.... नहीं चाहिये। (ख) और यदि स्रोतआपन्न.... गृहस्थ द्वारा भी अज्ञानी भिक्षु को प्रणाम करना यथार्थ में उचित है तो यह बात असत्य ठहरती है कि 'संसार में धर्म ही सबसे श्रेष्ठ है ....'। यह भी एक द्विविधा....?"

२. "महाराज! भगवान् ने यह ठीक कहा है कि संसार में धर्म ही सब से श्रेष्ठ है ....'; और यह भी उचित है कि गृहस्थ उपासक स्रोतआपन्न .... होने पर भी किसी भिक्षु को प्रणाम करे और उठ कर स्वागत करे। ऐसा करने के लिये कारण है। कौन सा कारण है?

"महाराज! श्रमण होने के लिये बीस गुण तथा दो बाहरी चिह्न होने चाहियें, जिनसे लोग उसे प्रणाम तथा उठकर स्वागत करते हैं। वे बीस गुण और दो बाहरी चिह्न कौन से हैं? (१) वे अरण्य, वृक्षमूल तथा शून्यागार—इन तीन श्रेष्ठ भूमियों में वास करते हैं, २. सभी अच्छी बातों में आगे रहते हैं, ३. अच्छे

सोरच्चं, एकत्तचरिया, एकत्ताभिरति, पटिसल्लानं, हिरि, ओत्तप्पं, विरियं, अप्पमादो, सिक्खा-समादानं, उद्देसो, परिपुच्छा, सीलादि-अभिरति, निरालयता, सिक्खापदपारिपूरिता, कासावधारणं, भण्डुभावो—इमे खो, महाराज, वीसति समणस्स समणकरणा धम्मा, द्वे च लिङ्गानि। एते गुणे भिक्खु समादाय वत्तति। सो तेसं धम्मानं अनूनत्ता परिपुण्णत्ता सम्पन्नत्ता समन्नागतत्ता असेखभूमिं अरहन्तभूमिं ओक्कमति, सेट्ठं भुम्मन्तरं ओक्कमति, अरहत्तासन्नगतो ति अरहति उपासको सोतापन्नो भिक्खुं पुथुज्जनं अभिवादेतुं पच्चुट्ठातुं।

''खीणासवेहि सो सामञ्ञं उपगतो, 'नत्थि मे सो समयो' ति अरहति उपासको सोतापन्नो भिक्खुं पुथुज्जनं अभिवादेतुं पच्चुट्ठातुं।

''अग्गपरिसं सो उपगतो, 'नाहं तं ठानं उपगतो' ति अरहति उपासको सोतापन्नो भिक्खुं पुथुज्जनं अभिवादेतुं पच्चुट्ठातुं।

''लभति सो पातिमोक्खुद्देसं सोतुं, 'नाहं तं लभामि सोतुं' ति अरहति उपासको भिक्खुं पुथुज्जनं अभिवादेतुं पच्चुट्ठातुं।

''सो अञ्ञे पब्बाजेति, उपसम्पादेति, जिनसासनं वड्ढेति, 'अहमेतं न लभामि कातुं' ति अरहति उपासको सोतापन्नो भिक्खुं पुथुज्जनं अभिवादेतुं पच्चुट्ठातुं।

''अप्पमाणेसु सो सिक्खापदेसु समत्तकारी, 'नाहं तेसु वत्तामी' ति अरहति उपासको सोतापन्नो भिक्खुं पुथुज्जनं अभिवादेतुं पच्चुट्ठातुं।

नियमों में प्रतिष्ठित रहते हैं, ४. सदाचारी होते हैं, ५.–६. शान्त और दान्त होकर साधना करते हैं, ७. संयमी, ८. क्षमा से युक्त, ९. अच्छे ध्यानी, १० श्रेष्ठ आचारविचार वाले, ११. उदात्त और पवित्र इच्छाओं वाले, १२. विवेकसम्पन्न, १३. पापकर्मों से लज्जा और भय रखने वाले, १४. वीर्यवान्, १५. अप्रमादी, १६. शिक्षापदों की आवृत्ति करने में सदैव उत्साहशील, १७. धर्म को जानने के लिये सदा उत्सुक, १८. शील पालन में तत्पर, १९. तृष्णा पर विजय पाने वाले और २०. शिक्षापदों को पूरा करते हैं—ये उनके अपने (श्रमणकारक) बीस गुण हैं। १. काषाय वस्त्र धारण करना और २. शिर मुँड़ाना—ये दो उनके बाहरी चिह्न हैं। भिक्षु लोग ऊपर कहे गये धर्मों का पालन करके अर्हत्–पद भी पा लेते हैं। इसलिए स्रोतआपन्न....गृहस्थ उपासक भिक्षु को प्रणाम करता है और उठकर स्वागत करता है।

'क्षीणास्रव भिक्षु से उसने श्रमण–भाव ग्रहण किया है, 'मेरा वह समय अभी नहीं आया है'—ऐसा विचार कर भी स्रोतआपन्न .... किसी भी भिक्षु को प्रणाम करता और उठकर स्वागत करता है।

''वह भिक्षु बनकर ऊँचे सन्तों की मण्डली में मिल गया है; 'मेरा वह स्थान अभी नहीं है'—ऐसा विचार कर भी'....।

''वह प्रातिमोक्ष (भिक्षुनियम) उपदेशों को सुनने का अधिकारी है, 'मैं सुनने का अधिकारी नहीं' —ऐसा विचार कर भी....।

''वह दूसरों को प्रव्रज्या और उपसम्पदा देकर बुद्ध के शासन की वृद्धि कर सकता है, मैं नहीं कर सकता'—ऐसा विचार कर भी....।

''वह बहुत से दूसरे शिक्षापदों का पालन करता है, 'जिसका मैं पालन नहीं करता'—ऐसा विचार कर भी....।

''उसने भगवान् को अपना गुरु मानकर भिक्षुचिह्न धारण कर लिया है, 'मैंने अभी तक नहीं किया'—ऐसा विचार कर भी....।

"उपगतो सो समणलिङ्गं, बुद्धाधिप्पाये ठितो, तेनाहं लिङ्गेन दूरमपगतो' ति अरहति उपासको सोतापन्नो भिक्खुं पुथुज्जनं अभिवादेतुं पच्चुट्ठातुं।

"परूळ्हकच्छलोमो सो अनञ्जितअमण्डितो, अनुलित्तसीलगन्धो, 'अहं पन मण्डन-विभूसनाभिरतो' ति अरहति उपासको सोतापन्नो भिक्खुं पुथुज्जनं अभिवादेतुं पच्चुट्ठातुं।

"अपि च, महाराज, ये ते वीसति समणकरणा धम्मा, द्वे च लिङ्गानि, सब्बेव ते धम्मा भिक्खुस्स संविज्जन्ति, सो येव ते सब्बे धारेति, अञ्ञे पि तत्थ सिक्खापेति, 'सो मे आगमो सिक्खापनं च नत्थी' ति अरहति उपासको सोतापन्नो भिक्खुं पुथुज्जनं अभिवादेतुं पच्चुट्ठातुं।

"अपि च यथा, महाराज, राजकुमारो पुरोहितस्स सन्तिके विज्जं अधीयति, खत्तियधम्मं सिक्खति, सो अपरेन समयेन अभिसित्तो आचरियं अभिवादेति पच्चुट्ठेति—'सिक्खापको मे अयं' ति; एवमेव खो, महाराज, 'सिक्खापको वंसधरो' ति अरहति उपासको सोतापन्नो भिक्खुं पुथुज्जनं अभिवादेतुं पच्चुट्ठातुं।

"अपि च, महाराज, इमिना पेतं परियायेन जानाहि भिक्खुभूमिया महन्ततं असम-विपुलभावं—यदि, महाराज, उपासको सोतापन्नो अरहत्तं सच्छिकरोति, द्वे व तस्स गतियो भवन्ति—अनञ्ञातस्मिं येव दिवसे परिनिब्बायेय्य वा, भिक्खुभावं वा उपगच्छेय्य। अचला हि सा, महाराज, पब्बज्जा महती अच्चुग्गता, यदिदं भिक्खुभूमी" ति।

"ञाणगतो, भन्ते नागसेन, पञ्हो सुनिब्बेठितो बलवता अतिबुद्धिना तया, न यिमं पञ्हं समत्थो अञ्ञो एवं विनिवेठेतुं अञ्ञत्र तवादिसेन बुद्धिमता" ति।

"उसकी काँख में बड़े-बड़े बाल जम गये हैं, न वह आँख में अञ्जन लगाता है न कुछ दूसरा प्रसाधन किया करता है, केवल शीलरूपी गन्ध से युक्त है, और 'मैं तो अभी अपने शरीर का प्रसाधन किया करता हूँ'—ऐसा विचार कर भी....।

"महाराज! और भी 'जो बीस गुण और दो बाहरी चिह्न कहे गये हैं, सभी भिक्षु में ही पाये जाते हैं, भिक्षु दूसरी भी अनेक शिक्षाओं का पालन करता है, 'जिससे मेरा कुछ सम्बन्ध नहीं है'—ऐसा विचार कर भी....।

"महाराज! कोई राजकुमार पुरोहित से विद्या पढ़ता है; क्षत्रियों के आचार सीखता है। वह राजकुमार बड़ा होकर समय पर गद्दी पा लेता है, तो भी अपने आचार्य को प्रणाम करता है और उठकर स्वागत करता है। उसे यह ध्यान रहता है कि 'ये मेरे गुरु हैं'। महाराज! इसी तरह भिक्षु शिक्षा देने वालों की परम्परा (पीढ़ी) में है। स्रोतआपन्न.... गृहस्थ उपासक को किसी भी भिक्षु को उठकर स्वागत करना और प्रणाम करना चाहिये।"

"महाराज! इतने से आप समझ लें कि भिक्षु का स्थान कितना बड़ा और ऊँचा है। महाराज! यदि स्रोतआपन्न गृहस्थ उपासक अर्हत्-पद पा लेता है तो उसकी दो ही गतियाँ होती हैं, तीसरी नहीं—१. या तो उसी दिन उसका परिनिर्वाण हो जाता है, २. या भिक्षु बन जाता है। वह भिक्षुभाव अचल, उत्तम और श्रेष्ठ होता है।"

"भन्ते नागसेन! बात समझ में आ गयी। आप जैसे बुद्धिमान् पुरुष द्वारा ही यह प्रश्न अच्छी तरह बतलाया जा सकता था। आप को छोड़कर कोई दूसरा इस तरह स्पष्ट नहीं कर सकता।"

२. सब्बसत्तहितफरणपञ्हो

३. "भन्ते नागसेन, तुम्हे भणथ—'तथागतो सब्बसत्तानं अहितमपनेत्वा हितमुपदहती' ति। पुन च भणथ—'अग्गिक्खन्धूपमे धम्मपरियाये भञ्ञमाने सट्ठिमत्तानं भिक्खूनं उण्हलोहितं मुखतो उग्गतं' ति। अग्गिक्खन्धूपमं, भन्ते, धम्मपरियायं देसेन्तेन तथागतेन सट्ठिमत्तानं भिक्खूनं हितमपनेत्वा अहितमुपदहितं। यदि, भन्ते नागसेन, तथागतो सब्बसत्तानं अहितमपनेत्वा हितमुपदहति, तेन हि—'अग्गिक्खन्धूपमे धम्मपरियाये भञ्ञमाने सट्ठिमत्तानं भिक्खूनं उण्हलोहितं मुखतो उग्गतं' ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि अग्गिक्खन्धूपमे धम्मपरियाये भञ्ञमाने सट्ठिमत्तानं भिक्खूनं उण्हलोहितं मुखतो उग्गतं, तेन हि—'तथागतो सब्बसत्तानं अहितमपनेत्वा हितमुपदहती' ति तं पि वचनं मिच्छा। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो तवानुप्पत्तो, सो तया निब्बाहितब्बो" ति?

४. "तथागतो, महाराज, सब्बसत्तानं अहितमपनेत्वा हितमुपदहति। अग्गिक्खन्धूपमे च धम्मपरियाये भञ्ञमाने सट्ठिमत्तानं भिक्खूनं उण्हलोहितं मुखतो उग्गतं। तं च पन न तथागतस्स कतेन, तेसं येव अत्तनो कतेना" ति।

"यदि, भन्ते नागसेन, तथागतो अग्गिक्खन्धूपमं धम्मपरियायं न भासेय्य, अपि नु तेसं उण्हलोहितं मुखतो उग्गच्छेय्या" ति। "नहि, महाराज, मिच्छापटिपन्नानं तेसं भगवतो धम्मपरियायं सुत्वा परिळाहो काये उप्पज्जि, तेन हि तेसं परिळाहेन उण्हलोहितं मुखतो उग्गतं" ति। "तेन हि, भन्ते नागसेन, तथागतस्सेव कतेन तेसं उण्हलोहितं मुखतो उग्गतं, तथागतो येव तत्थ अधिकारो तेसं नासनाय। यथा नाम, भन्ते नागसेन, अहि वम्मीकं पविसेय्य; अथञ्ञतरो पंसुकामो पुरिसो वम्मीकं भिन्दित्वा पंसुं हरेय्य, तस्स पंसुहरणेन वम्मीकस्स

---

२. सर्वसत्त्वहितकरणप्रश्न—३. "भन्ते नागसेन! आप लोग कहते हैं कि 'भगवान् सभी जीवों का अहित दूरकर उनका हित करते हैं'। साथ ही साथ ऐसा भी कहते हैं कि 'भगवान् के 'अग्निस्कन्धोपम' नामक धर्मदेशना करने पर साठ भिक्षुओं ने मुँह से उष्ण रक्त उगल दिया'। भन्ते ! यहाँ तो भगवान् ने उस साठ भिक्षुओं का हित करने के बदले अहित ही कर डाला। (क) भन्ते नागसेन! यदि यह बात सच है कि 'भगवान् सभी जीवों का अहित दूर कर उनका हित करते हैं' तो 'अग्निस्कन्धोपम' नामक धर्मदेशना की बात झूठी ठहरती है। (ख) यदि 'अग्निस्कन्धोपम' नामक धर्मदेशना की बात ही ठीक है तो यह बात झूठ ठहरती हैं कि 'भगवान् सभी जीवों के अहित दूर कर हित करते हैं'। भन्ते! यह भी एक द्विविधा है ....?"

४. "महाराज! 'बुद्ध सभी जीवों के अहित दूरकर हित करते हैं' यह सत्य है और यह भी सत्य है कि '.... भिक्षुओं ने मुँह से उष्ण रक्त उगल दिया। उन भिक्षुओं ने मुँह से उष्ण रक्त उगल दिया इसमें भगवान् का कोई दोष नहीं, अपितु उनका अपना ही दोष था।"

"भन्ते नागसेन! यदि भगवान् वह उपदेश न करते तो भिक्षुओं के मुँह से रक्त निकलता?" "नहीं, महाराज! भगवान् के धर्मोपदेश को सुनकर कुमार्गी भिक्षुओं के हृदय में एक ईर्ष्या पैदा हुई, जिससे उनके मुँह से उष्ण रक्त निकल आया।" "भन्ते नागसेन! तो भगवान् के ऐसा करने से ही न उनके मुँह से उष्ण रक्त निकल आया? भगवान् ही उन भिक्षुओं के अनिष्ट के कारण हुए। भन्ते! कोई साँप किसी बल्मीक में घुस जाय। तब, कोई आदमी मिट्टी लेने के लिये वहाँ आवे और बल्मीक को खोद कर जितनी मिट्टी चाहे उतनी लेकर चला जाय। उससे बल्मीक का मुँख मुँद जाय और साँप भीतर हवा

सुसिरं पिदहेय्य, अथ तत्थेव सो अस्सासं अलभमानो मरेय्य, ननु सो, भन्ते, अहि तस्स पुरिसस्स कतेन मरणप्पत्तो'' ति? ''आम, महाराजा'' ति। ''एवमेव खो, भन्ते नागसेन, तथागतो येव तत्थ अधिकारो तेसं नासनाया'' ति?

५. ''तथागतो, महाराज, धम्मं देसियमानो अनुनयप्पटिघं न करोति, अनुनयप्पटिघ-विप्पमुत्तो धम्मं देसेति, एवं धम्मे देसियमाने यं तत्थ सम्मापटिपन्ना ते बुज्झन्ति, ये पन मिच्छापटिपन्ना ते पतन्ति। यथा, महाराज, पुरिसस्स अम्बं वा जम्बुं वा चालयमानस्स यानि तत्थ फलानि सारानि दळ्हबन्धनानि तानि तत्थेव अच्चुतानि तिट्ठन्ति, यानि पन तत्थ फलानि पूतिवण्टमूलानि दुब्बलबन्धनानि तानि पतन्ति; एवमेव खो, महाराज, तथागतो धम्मं देसयमानो अनुनयप्पटिघं न करोति, अनुनयप्पटिघविप्पमुत्तो धम्मं देसेति, एवं धम्मे देसियमाने ये तत्थ सम्मापटिपन्ना ते बुज्झन्ति, ये पन मिच्छापटिपन्ना ते पतन्ति।

''यथा वा पन, महाराज, कस्सको धञ्ञं रोपेतुकामो खेत्तं कसति। तस्स कसन्तस्स अनेकसतसहस्सानि तिणानि मरन्ति; एवमेव खो, महाराज, तथागतो परिपक्कमानसे सत्ते बोधेन्तो अनुनयप्पटिघविप्पमुत्तो धम्मं देसेति। एवं धम्मे देसियमाने ये तत्थ सम्मापटिपन्ना ते बुज्झन्ति, ये पन मिच्छापटिपन्ना ते पन तिणानि विय मरन्ति।

''यथा वा पन, महाराज, मनुस्सा रसहेतु यन्तेन उच्छुं पीळयन्ति, तेसं उच्छुं पीळयमानानं ये तत्थ यन्तमुखगता किमयो ते पीळियन्ति; एवमेव खो, महाराज, तथागतो परिपक्कमानसे सत्ते बोधेन्तो धम्मयन्तमभिपीळयति, ये तत्थ मिच्छापटिपन्ना ते किमी विय मरन्ती'' ति।

''ननु, भन्ते नागसेन, ते भिक्खू ताय धम्मदेसनाय पतिता'' ति? ''अपि नु खो,

---

न पा कर वहीं मर जाय। तो भन्ते! वह साँप उसी आदमी के कारण न मर गया?'' ''हाँ, महाराज!'' ''भन्ते नागसेन! इसी तरह, उन भिक्षुओं के नाश के कारण भगवान् ही हुए?''

५. ''महाराज! किसी के अनुनय या किसी के द्वेष से बुद्ध धर्मोपदेश नहीं करते। वे विना किसी ऐसे भाव के ही किसी को कुछ उपदेश देते हैं। इस तरह उनके धर्मोपदेश से जो अच्छे विचार वाले हैं उनको ज्ञान हो जाता है, किन्तु जो मिथ्या विचार वाले हैं उनका पतन होता है। महाराज! जैसे कोई आदमी आम, जामुन या महुए के वृक्ष को पकड़कर हिलावे तो जितने पुष्ट डंठल वाले अच्छे फल हैं, सब लगे ही रहते हैं, नहीं गिरते; किन्तु जिन फलों के डंठल सड़ गये हैं वे गिर पड़ते हैं। महाराज! इसी तरह, विना किसी चाटुकारिता या द्वेष-भाव से बुद्ध धर्मोपदेश करते हैं। इस तरह उनके धर्मोपदेश से जो अच्छे विचार वाले हैं, उनको ज्ञान हो जाता है. किन्तु जो मिथ्या विचारक हैं, उनका पतन हो जाता है।

''महाराज! जैसे कोई किसान धान रोपने के लिये खेत जोतता है। उससे बहुत सी घास उखड़ जाती है। उसी तरह, बुद्ध परिपक्व विचार वालों को ज्ञान देने के लिये विना किसी चाटुकारिता या द्वेष-भाव के धर्मोपदश करते हैं। इस तरह उनके धर्मोपदेश करने से जो अच्छे विचार वाले हैं, उनको ज्ञान हो जाता है, किन्तु मिथ्याचार वाले गिर जाते हैं।

''महाराज! जैसे रस निकालने के लिये लोग ईख को कोल्हू में पेरते हैं। उसके साथ बहुत से बीच में पड़े कीड़े-मकोड़े भी, पिस कर मर जाते हैं। महाराज! इसी तरह, बुद्ध परिपक्व विचार वालों को ज्ञान देने के लिये....।''

''भन्ते नागसेन! तो भी, वे भिक्षु उसी धर्मदेशना के कारण गिरे न?'' ''महाराज! क्या बढ़ई

महाराज, तच्छको रुक्खं तक्खन्तो उजुकं परिसुद्धं करोती'' ति? ''नहि, भन्ते; वज्जनीयं, भन्ते, अपनेत्वा अपनेत्वा तच्छको रुक्खं उजुकं परिसुद्धं करोती'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, तथागतो परिसं रक्खन्तो न सक्कोति बोधनेय्ये सत्ते बोधेतुं, मिच्छापटिपन्ने पन सत्ते अपनेत्वा एवमेते बोधनेय्ये सत्ते बोधेति। अत्तकतेन पन ते, महाराज, मिच्छापटिपन्ना पतन्ति।

''यथा, महाराज, कदली वेळु अस्सतरी अत्तजेन हञ्ञन्ति; एवमेव खो, महाराज, ये ते मिच्छापटिपन्ना ते अत्तकतेन हञ्ञन्ति पतन्ति।

''यथा, महाराज, चोरा अत्तकतेन चक्खुप्पाटनं सूलारोपनं सीसच्छेदनं पापुणन्ति; एवमेव खो, महाराज, ये ते मिच्छापटिपन्ना ते अत्तकतेन हञ्ञन्ति जिनसासना पतन्ति। येसं, महाराज, सट्ठिमत्तानं भिक्खूनं उण्हलोहितं मुखतो उग्गतं तेसं तं नेव भगवतो कतेन, न परेसं कतेन; अथ खो अत्तनो येव कतेन।

''यथा, महाराज, पुरिसो सब्बजनस्स अमतं ददेय्य, ते तं अमतं असित्वा अरोगा दीघायुका सब्बीतितो परिमुच्चेय्युं; अथञ्ञतरो पुरिसो दुरुपचारेन तं असित्वा मरणं पापुणेय्य; अपि नु खो सो, महाराज, अमतदायको पुरिसो ततोनिदानं किञ्चि अपुञ्ञं आपज्जेय्या'' ति? ''नहि, भन्ते'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, तथागतो दससहस्सिया लोकधातुया देवमनुस्सानं अमतं धम्मदानं देति, ये ते सत्ता भब्बा ते धम्मामतेन बुज्झन्ति, ये पन ते सत्ता अभब्बा ते धम्मामतेन हञ्ञन्ति पतन्ति।

''भोजनं, महाराज, सब्बसत्तानं जीवितं रक्खति, तमेकच्चे भुञ्जित्वा विसूचिकाय मरन्ति, अपि नु खो सो, महाराज, भोजनदायको पुरिसो ततोनिदानं किञ्चि अपुञ्ञं आपज्जेय्या'' ति? ''नहि, भन्ते'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, तथागतो दससहस्सिया लोकधातुया

टेढ़ी–मेढ़ी लकड़ी के पास चुपचाप खड़ा रह कर उसे सीधा चिकना और कार्य के योग्य बना सकता है?'' ''नहीं, भन्ते! बढ़ई उसे छील–छालकर ही सीधा, चिकनां और कार्य के योग्य बनाता है।'' ''महाराज! इसी तरह बुद्ध भिक्षुओं को यों ही देखते रह कर उन्हें रास्ते पर नहीं ला सकते थे। वे उन्हें मिथ्याचारों से दूर हटा कर ही ज्ञान–मार्ग पर लाते हैं। महाराज! अपनी ही करनी से मिथ्याचार वाले का पतन होता है।

''महाराज! जैसे केले का वृक्ष, बाँस और खच्चरी उसी के द्वारा नष्ट हो जाते हैं जिसको वे स्वयं उत्पन्न करते हैं, वैसे ही बुरे विचार वाले अपने ही कर्मों से नष्ट होते हैं।

''महाराज! जैसे अपनी ही करनी से चोर की आँखें निकाल ली जाती है, वे सूली पर चढ़ा दिये जाते हैं या उनका सिर काट लिया जाता है; वैसे ही जो बुरे विचार वाले हैं, वे अपने ही कर्मों से नष्ट होते हैं और बुद्धधर्म से च्युत हो जाते हैं। महाराज! जो उन साठ भिक्षुओं के मुँह से उष्ण रक्त निकला वह न भगवान् के कारण और न किसी दूसरे के कारण, अपितु केवल अपने ही कर्मों के कारण।

''महाराज! जैसे कोई आदमी सभी लोगों को अमृत बाँटे, वे उस अमृत को पीकर नीरोग, दीर्घायु तथा सब कष्टों से रहित हो जाँय; किन्तु उसी अमृत को पीकर उनमें से कोई पचा न सकने के कारण मर जाय। महाराज! तो क्या अमृत देने वाले को कोई दोष लगेगा?'' ''नहीं, भन्ते!'' ''महाराज! इसी तरह, बुद्ध इन दस हजार लोकों में देवताओं और मनुष्यों को समान रूप से धर्मरूपी अमृत का दान करते हैं। जो अच्छे लोग हैं उन्हें तो ज्ञान प्राप्त होता है, किन्तु मिथ्याचारियों का पतन हो जाता है।

''महाराज! भोजन सभी के प्राणों की रक्षा करता है, किन्तु हैजे का रोगी उसी को खा कर मर

देवमनुस्सानं अमतं धम्मदानं देति। ये ते सत्ता भब्बा, ते धम्मामतेन बुज्झन्ति, ये पन ते सत्ता अभब्बा ते धम्मामतेन हञ्ञन्ति पतन्ती'' ति।

''साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी'' ति।

३. वत्थगुय्हनिदस्सनपञ्हो

६. ''भन्ते नागसेन, भासितं पेतं तथागतेन—

'कायेन संवरो साधु, साधु वाचाय संवरो।

मनसा संवरो साधु, साधु सब्बत्थ संवरो' ति॥ *(ध० प०, भि० व०)*

''पुन च तथागतो चतुन्नं परिसानं मज्झे निसीदित्वा पुरतो देवमनुस्सानं सेलस्स ब्राह्मणस्स कोसोहितं वत्थगुय्हं दस्सेसि। *(म० नि०, सेलसुत्तं)* यदि, भन्ते नागसेन, भगवता भणितं—'कायेन संवरो साधू' ति, तेन हि—'सेलस्स ब्राह्मणस्स कोसोहितं वत्थगुय्हं दस्सेसी' ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि सेलस्स, ब्राह्मणस्स कोसोहितं वत्थगुय्हं दस्सेसि, तेन हि—'कायेन संवरो साधू' ति तं पि वचनं मिच्छा। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो तवानुप्पत्तो, सो तया निब्बाहितब्बो ति?

७. ''भासितं पेतं, महाराज, भगवता—'कायेन संवरो साधू' ति। सेलस्स च ब्राह्मणस्स कोसोहितं वत्थगुय्हं दस्सितं। यस्स खो, महाराज, तथागते कङ्खा उप्पन्ना, तस्स बोधनत्थाय भगवा इद्धिया तप्पटिभागं कायं दस्सेति—सो येव तं पाटिहारियं पस्सतू'' ति। ''को पनेतं, भन्ते नागसेन, सद्दहिस्सति यं परिसगतो एकोयेव तं गुय्हं पस्सति, अवसेसा तत्थेव सन्ता न पस्सन्ती' ति। इङ्घ मे त्वं तत्थ कारणं उपदिस, कारणेन मं सञ्ञापेही'' ति?

जाता है। महाराज! तो क्या किसी भोजन बाँटने वाले दानी को उससे दोष लगेगा?'' ''नहीं, भन्ते!'' ''महाराज! इसी तरह, बुद्ध इन दस हजार लोकों में.... पतन हो जाता है।''

''ठीक है, भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं मैं स्वीकार करता हूँ।''

३.वस्त्रगुह्यनिदर्शनप्रश्न—६. ''भन्ते! भगवान् ने कहा है—

'शरीर का संयम बहुत उचित है, उससे भी उचित है, वाणी और मन का संयम। सार्वत्रिक संयम तो सर्वश्रेष्ठ ही है।।'

''और फिर भगवान् ने चारों परिषदों में बैठ कर देव—मनुष्यों के सम्मुख शैल ब्राह्मण को अपना कोशाच्छादित उपस्थ (मूत्रेन्द्रिय) दिखाया था।(क) भन्ते! यदि भगवान् शरीर से संयम रखते थे तो 'शैल नामक ब्राह्मण को उन्होंने अपना उपस्थ दिखाया'—यह बात झूठी ठहरती है। (ख) और, यदि यह बात सच है कि उन्होंने शैल नामक ब्राह्मण को अपना उपस्थ दिखाया, तो उनका यह वचन झूठा ठहरता है कि 'शरीर से संयम रखना चाहिये'! यह भी एक द्विविधा....?''

७. ''महाराज! भगवान् ने सच कहा है—'शरीर से संयम करना बहुत अच्छा है' और यह भी सच है कि 'उन्होंने शैल नामक ब्राह्मण को अपना उपस्थ दिखा दिया था'। महाराज! उसे भगवान् के प्रति शङ्का उत्पन्न हो गयी थी, जिसे दूर करने के लिये भगवान् ने ऋद्धि—बल से अपना शरीर सर्वथा प्रकाशित कर दिया था। उस ऋद्धिनिर्मित शरीर के उपस्थ को केवल वही ब्राह्मण देख सका था।'' ''भन्ते नागसेन! भला इसे कौन विश्वास करेगा कि वहाँ सभी के बैठे रहने पर भी एक ही ने उनके उपस्थ को देखा, दूसरों ने नहीं? कृपाकर ऐसी असम्भव बात के सम्भव होने का कारण बतायें?''

"दिट्ठपुब्बो पन तया, महाराज, कोचि ब्याधितो पुरिसो परिकिण्णो ञातिमित्तेही" ति? "आम, भन्ते" ति। "अपि नु खो, महाराज, सा परिसा पस्सतेतं वेदनं याय सो पुरिसो वेदनाय वेदियती" ति? "नहि, भन्ते। अत्तना येव सो, भन्ते, पुरिसो वेदियती" ति। "एवमेव खो, महाराज, यस्सेव तथागते कङ्खा उप्पन्ना तस्सेव तथागतो बोधनाय इद्धिया तप्पटिभागं कायं दस्सेति, सो येव तं पाटिहारियं पस्सति। (१)

"यथा वा पन, महाराज, कञ्चिदेव पुरिसं भूतो आविसेय्य। अपि नु खो सा, महाराज, परिसा पस्सति तं भूतागमनं" ति? "नहि, भन्ते। सो येव आतुरो तस्स भूतस्स आगमनं पस्सती" ति। "एवमेव खो, महाराज, यस्सेव तथागते कङ्खा उप्पन्ना सो येव तं पाटिहारियं पस्सती" ति। "दुक्करं, भन्ते नागसेन, भगवता कतं यं एकस्स पि अदस्सनीयं तं दस्सन्तेना" ति। "न, महाराज, भगवा गुय्हं दस्सेसि, इद्धिया पन छायं दस्सेसी" ति। "छायाय पि, भन्ते, दिट्ठाय येव होति गुय्हं, यं दिस्वा निट्ठं गतो" ति?

"दुक्करं चापि, महाराज, तथागतो करोति बोधनेय्ये सत्ते बोधेतुं। यदि, महाराज, तथागतो किरियं हापेय्य, बोधनेय्या सत्ता न बुज्झेय्युं। यस्मा च खो, महाराज, योगञ्ञू तथागतो बोधनेय्ये सत्ते बोधेतुं, तस्मा तथागतो येन येन योगेन बोधनेय्या बुज्झन्ति, तेन तेन योगेन बोधनेय्ये बोधेति। (२)

"यथा, महाराज, भिसक्को सल्लकत्तो येन येन भेसज्जेन आतुरो अरोगो होति, तेन तेन भेसज्जेन आतुरं उपसङ्कमति—वमनीयं वमेति, विरेचनीयं विरेचेति, अनुलेपनीयं अनुलिम्पति, अनुवासनीयं अनुवासेति; एवमेव खो, महाराज, तथागतो येन येन योगेन बोधनेय्या सत्ता बुज्झन्ति, तेन तेन योगेन बोधेति। (३)

"महाराज! आपने किसी रोगी को देखा है, जिसे घेरकर उसके सम्बन्धी और मित्र खड़े हों?" "हाँ, भन्ते! देखा है।" "महाराज! तो क्या दूसरे लोग उस कष्ट का अनुभव कर सकते हैं, जिससे रोगी पीड़ित है?" "नहीं, भन्ते! अकेला रोगी ही उस कष्ट का अनुभव करता है।" "महाराज! इसी तरह, जिसे शङ्का उत्पन्न हुई थी उसी को बताने के लिये भगवान् ने ऋद्धि-बल से अपना उपस्थ दिखाया था।" (क)

"महाराज! यदि किसी आदमी पर भूत-प्रेत आवे तो क्या दूसरे लोग उस भूत को आते देख सकते हैं ?" "नहीं, भन्ते! वही अकेला देख सकता है, जिसके ऊपर भूत आया हो।" "महाराज! इसी तरह, जिसे शङ्का उत्पन्न हो गयी, उसी को बताने के लिये भगवान् ने ऋद्धिबल से अपना उपस्थ दिखाया था।" "भन्ते! यह बड़ी विचित्र बात है कि उसे छोड़कर दूसरा कोई भी नहीं देख सका?" "महाराज! भगवान् ने यथार्थ में उसे अपना उपस्थ दिखाया ही नहीं, अपितु ऋद्धिबल से केवल उसकी छाया दिखायी थी।" "भन्ते! छाया दिखाने से भी तो दिखा देना ही हुआ, जिससे ब्राह्मण की शङ्का मिट गयी?"

"हाँ, महाराज! भगवान् जिसे कुछ बताना चाहते थे, उसे बताने के लिये बड़ी-बड़ी विचित्र दुष्कर लीलाएँ करते थे। यदि भगवान् किसी क्रिया को सुगम कर देते तो लोग उसे तत्काल नहीं समझ पाते थे। महाराज! भगवान् तो महान् योगी थे। ज्ञान-पिपासा रखने वालों को बताने के लिये जिस-जिस उपाय का अनुष्ठान करना आवश्यक होता, उसे योगबल का अनुष्ठान करके बताते थे। (ख)

"महाराज! जिन जिन औषधियों से रोगी स्वस्थ हो सकते हैं, वैद्य उन्हें वही औषधियाँ देते हैं—

"यथा वा पन, महाराज, इत्थी मूळ्हगब्भा भिसक्कस्स अदस्सनीयं गुय्हं दस्सेति; एवमेव खो, महाराज, तथागतो बोधनेय्ये सत्ते बोधेतुं अदस्सनीयं गुय्हं इद्धिया छायं दस्सेसि। नत्थि, महाराज, अदस्सनीयो नाम ओकासो पुग्गलं उपादाय। यदि, महाराज, कोपि भगवतो हदयं दिस्वा बुज्झेय्य, तस्स पि भगवा योगेन हदयं दस्सेय्य। योगञ्ञू, महाराज, तथागतो देसनाकुसलो। (४)

८. "ननु महाराज, तथागतो थेरस्स नन्दस्स अधिमुत्तिं जानित्वा तं देवभवनं नेत्वा देवकञ्ञायो दस्सेसि—'इमिनायं कुलपत्तो बुज्झिस्सती' ति, तेन च सो कुलपुत्तो बुज्झि। *(उदानं)* इति खो, महाराज, तथागतो अनेकपरियायेन सुभनिमित्तं हीळेन्तो गरहन्तो जिगुच्छन्तो तस्स बोधनहेतु कुक्कुटपादिनियो अच्छरायो दस्सेसि। एवं पि तथागतो योगञ्ञू देसनाकुसलो। (५)

"पुन च परं, महाराज, तथागतो थेरस्स चुळ्लपन्थकस्स भातरा निकड्ढितस्स दुक्खितस्स दुम्मनस्स उपगन्त्वा सुखुमं चोळखण्डं अदासि—'इमिनायं कुलपुत्तो बुज्झिस्सती' ति। सो च कुलपुत्तो तेन कारणेन जिनसासने वसीभावं पापुणि। एवं पि, महाराज, तथागतो योगञ्ञू देसनाकुसलो। (६)

"पुन च परं, महाराज, तथागतो ब्राह्मणस्स मोघराजस्स यावततियं पञ्हं पुट्ठो न ब्याकासि—'एवमिमस्स कुलपुत्तस्स मानो उपसमिस्सति, मानूपसमा अभिसमयो भविस्सती' ति, तेन च तस्स कुलपुत्तस्स मानो उपसमि, मानूपसमा सो ब्राह्मणो छसु अभिञ्ञासु वसीभावं पापुणि। एवं पि, महाराज, तथागतो योगञ्ञू देसनाकुसलो" ति। (७)

"साधु, भन्ते नागसेन, सुनिब्बेठितो पञ्हो बहुविधेहि कारणेहि, गहनं अगहनं कतं,

---

वमन कराते हैं, जुलाब देते हैं, लेप चढ़ाते हैं, सेंकते–माड़ते हैं। महाराज! इसी तरह, ज्ञान–पिपासा रखने वाले लोगों को बताने के लिये ....भगवान् उसी योग–बल का अनुष्ठान करके बताते थे। (ग)

"महाराज! प्रसव के समय कुछ कष्ट आ जाने पर कोई स्त्री वैद्य को अपना न दिखाने योग्य गुह्य अङ्ग भी दिखा देती है। महाराज! इसी तरह, जानने के लिये उत्सुक मनुष्य के ज्ञान के लिये भगवान् बुद्ध–बल से अपनी गुह्येन्द्रिय की छाया भी दिखा दिया था। महाराज! वैसे व्यक्ति के लिये ऐसी कोई भी चीज नहीं है, जो दिखायी न जा सके। महाराज! यदि कोई भगवान् बुद्ध के हृदय को देखकर ही जान सके तो वे उसे योग–बल से हृदय खोल कर भी दिखा सकते थे। महाराज! भगवान् बुद्ध महान् योगी और उपदेश करने में कुशल थे। (घ)

८. "महाराज! नन्द स्थविर के चित्त की बात को जान भगवान् ने उन्हें देवलोक में ले जाकर देव–कन्याओं को दिखाया। वे जानते थे कि स्थविर नन्द को उसी से ज्ञान प्राप्त हो जायेगा। और यथार्थ में उन्हें उससे ज्ञान प्राप्त हो भी गया। अनेक प्रकार के सांसारिक सौन्दर्यों पर आसक्त हो जाने की निन्दा करते हुए उसे तथा उसके दोषों को नीचा बतलाते हुए, स्थविर नन्द को ज्ञान प्राप्त करने के लिये उन अप्सराओं को दिखाया, जिनके तलवे मुर्गी के पैर की तरह लाल और सुकोमल थे। (ङ)

"महाराज! चुल्लपन्थक स्थविर को ज्ञान प्राप्त कराने के लिये भगवान् ने उन्हें एक सर्वथा श्वेत वस्त्रखण्ड दे दिया था, उसी से उन्हें ज्ञान हो गया था। महाराज! इस तरह भगवान् उपदेशकुशल थे। (च)

"महाराज! फिर मोघराज नामक ब्राह्मण के तीन बार प्रश्न करने पर भी भगवान् ने इसीलिये

अन्धकारो आलोको कतो, गण्ठि भिन्ना, भग्गा परवादा, जिनपुत्तानं चक्खुं तया उप्पादितं, निप्पटिभाना तित्थिया, त्वं गणिवरपवरमासज्जा'' ति।

४. फरुसवाचाभावपञ्हो

९. ''भन्ते नागसेन, भासितं पेतं थेरेन सारिपुत्तेन धम्मसेनापतिना—'परिसुद्धवचीसमाचारो, आवुसो, तथागतो; नत्थि तथागतस्स वचीदुच्चरितं यं तथागतो रक्खेय्य—'मा मे इदं परो अञ्ञासी' ति। पुन च तथागतो थेरस्स सुदिन्नस्स कलन्दपुत्तस्स अपराधे पाराजिकं पञ्ञापेन्तो फरुसाहि वाचाहि मोघपुरिसवादेन समुदाचरि, तेन च सो थेरो मोघपुरिसवादेन मंकुचित्तवसेन रुन्धितत्ता विप्पटिसारी नासक्खि अरियमग्गं पटिविज्झितुं। *(पाराजिक, वि० पि०)* यदि, भन्ते नागसेन, परिसुद्धवचीसमाचारो तथागतो, नत्थि तथागतस्स वचीदुच्चरितं, तेन हि 'तथागतेन थेरस्स सुदिन्नस्स कलन्दपुत्तस्स अपराधे मोघपुरिसवादेन समुदाचिण्णं' ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि भगवता थेरस्स सुदिन्नस्स कलन्दपुत्तस्स अपराधे मोघपुरिसवादेन समुदाचिण्णं, तेन हि—'परिसुद्धवचीसमाचारो तथागतो, नत्थि तथागतस्स वचीदुच्चरितं' ति तं पि वचनं मिच्छा। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो तवानुप्पत्तो, सो तया निब्बाहितब्बो'' ति?

१०. ''भासितं पेतं, महाराज, थेरेन सारिपुत्तेन धम्मसेनापतिना—'परिसुद्धवचीसमाचारो, आवुसो, तथागतो नत्थि तथागतस्स वचीदुच्चरितं यं तथागतो रक्खेय्य—'मा मे इदं परो अञ्ञासी' ति। आयस्मतो च सुदिन्नस्स कलन्दपुत्तस्स अपराधे पाराजिकं पञ्ञापेन्तेन भगवता मोघपुरिसवादेन समुदाचिण्णं। तं च पन न दुट्ठचित्तेन, असारम्भेन याथावलक्खणेन। किञ्चि तत्थ याथावलक्खणं? यस्स, महाराज, पुग्गलस्स इमस्मिं अत्तभावे चतुसच्चाभिसमयो न

उत्तर नहीं दिया कि उसका गर्व टूट जाय और वह नम्र बन जाय। तब, उसका गर्व टूट गया और उसने छह अभिज्ञाओं पर अधिकार पा लिया। महाराज! इस तरह, भगवान् उपदेश करने में कुशल थे। (छ)

''ठीक है, भन्ते नागसेन! आपने प्रश्न को अच्छी तरह समझा दिया। अनेक तर्कों से उलझन को सुलझा दिया। अन्धेरे में उजाला कर दिया। गाँठ खोल दी। विपक्ष के कुतर्कों का खण्डन कर दिया। आपने बुद्ध–भिक्षुओं को नयी आँखें (ज्ञान) दे दी। दूसरे धर्म वालों का मुँह फीका कर दिया। आप यथार्थतः सभी गणाचार्यों में श्रेष्ठ हैं।''

४. कठोरभाषाविषयकप्रश्न—९. ''भन्ते नागसेन! धर्मसेनापति स्थविर सारिपुत्र ने कहा है—'आयुष्मानो! भगवान् बुद्ध अपने भाषण में पूर्णतः सभ्य रहते हैं। उन के भाषण में ऐसा कोई भी दोष नहीं है, जिसको दूसरों से छिपाने के लिये उन्हें सचेत रहना पड़ता हो'। फिर भी कलन्दपुत्र स्थविर सुदिन्न के अपराध करने पर पाराजिक की घोषणा करते हुए भगवान् ने उसे 'मोघपुरुष' (बेकार आदमी) कह कर फटकारा था। उससे स्थविर बहुत ही डर गये। उन्हें भारी पश्चात्ताप होने लगा, जिससे वे आर्य–मार्ग का लाभ भी नहीं कर सके। (क) भन्ते! यदि भगवान् अपने भाषण में पूर्णतः सभ्य रहते हैं तो यह बात झूठी ठहरती है कि उन्होंने स्थविर सुदिन्न को फटकारा था। (ख) और यदि उन्होंने स्थविर सुदिन्न को ठीक फटकारा था तो वे अपने भाषण में सभ्य नहीं रहे। यह भी एक दुविधा....?''

१०. ''महाराज! धर्मसेनापति स्थविर सारिपुत्र ने जो कहा था कि 'भगवान् अपने भाषण में पूर्णत. सभ्य रहते हैं' वह सही है; और सुदिन्न के फटकारे जाने की बात भी ठीक है। उन्होंने जो सुदिन्न को फटकारा था वह कुछ बिगड़ कर नहीं, अपितु मन में विना किसी प्रकार का क्रोध लाये। सुदिन्न जैसे थे, वैसा ही उनको कहा।'' ''जैसे थे वैसा ही, इसका क्या अर्थ?'' ''महाराज! जिसे इस जन्म में चारों

होति, तस्स पुरिसत्तनं मोघं, अञ्ञं कयिरमानं अञ्ञेन सम्भवति, तेन वुच्चति 'मोघपुरिसो' ति। इति पि, महाराज, भगवता आयस्मतो सुदिन्नस्स कलन्दपुत्तस्स सभाववचनेन समुदाचिण्णं, नो अभूतवादेना'' ति।

''सभावं पि, भन्ते नागसेन, यो अक्कोसन्तो भणति, तस्स मयं कहापणं दण्डं धारेम, अपराधो येव सो, वत्थुं निस्साय विसुं वोहारं आचरन्तो अक्कोसती'' ति।

''अत्थि पन, महाराज, सुतपुब्बं तया खलितस्स अभिवादनं वा पच्चुट्ठानं वा सक्कारं वा उपायनानुप्पदानं वा'' ति? ''नहि, भन्ते, यतो कुतोचि यत्थकत्थचि खलितो परिभासनारहो होति तज्जनारहो, उत्तमङ्गं पिस्स छिन्दन्ति, हनन्ति पि, बन्धन्ति पि, घातेन्ति पि, झापेन्ति पी'' ति। ''तेन हि, महाराज, भगवता किरिया येव कता, नो अकिरिया'' ति।

''किरियं पि, भन्ते नागसेन, कुरुमानेन पतिरूपेन कातब्बं अनुच्छविकेन, सवणेन पि, भन्ते नागसेन, तथागतस्स सदेवको लोको ओत्तपति हिरियति, भिय्योदस्सनेन, तदुत्तरिं उपसङ्कमनेन पयिरुपासनेना'' ति। ''अपि नु खो, महाराज, तिकिच्छको अभिसन्ने काये कुपिते दोसे सिनेहनीयानि भेसज्जानि देती'' ति? ''नहि, भन्ते, तिण्हानि लेखनीयानि भेसज्जानि देती'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, तथागतो सब्बकिलेसब्याधिवूपसमाय अनुसिट्ठिं देति। फरुसा पि, महाराज, तथागतस्स वाचा सत्ते सिनेहयति, मुदुके करोति। यथा, महाराज, उण्हं पि उदकं यं किञ्चि सिनेहनीयं सिनेहयति, मुदुकं करोति; एवमेव खो, महाराज, फरुसा पि तथागतस्स वाचा अत्थवती होति करुणासहगता।

''यथा, महाराज, पितु वचनं पुत्तानं अत्थवन्तं होति करुणासहगतं; एवमेव खो,

---

आर्यसत्यों का बोध नहीं हो सकता, उसका मनुष्य होना व्यर्थ (मोघ) ही है। इस तरह जो अन्यथा करते हुए अन्यथा कर डालता है, उसे 'मोघपुरुष' कहा जाता है। अतः महाराज! भगवान् ने स्थविर सुदिन्न को वे जैसे थे वैसा ही कहा था। उन्होंने कोई मिथ्या तो नहीं कहा।"

"भन्ते नागसेन! किन्तु यदि कोई सच्ची बात भी कहकर किसी दूसरे को ऊँचा–नीचा कह देते हैं तो भी हम लोग उसे एक कहापण (उस समय का पैसा) दण्ड कर देते हैं; क्योंकि वह भी तो अपराध ही हुआ। उसी को लेकर उनमें एक कलह खड़ा हो सकता है?"

"महाराज! क्या आपने कभी सुना है कि लोग किसी अपराधी पुरुष को प्रणाम करते हों या उठकर स्वागत करते हों या सत्कार करते हों या भेंट चढ़ाते हों?" "नहीं, भन्ते! यदि कोई कहीं भी किसी तरह का अपराध कर बैठता है तो लोग उसकी हँसी उड़ाते हैं, उसे धमकाते हैं, यहाँ तक कि उसका सिर भी काट लेते हैं, उसे कष्ट देते हैं, बाँध देते हैं, जान से मार देते हैं, उसकी समग्र सम्पत्ति हर लेते हैं।" "महाराज! तो भगवान् ने उचित किया या अनुचित?"

"भन्ते! ठीक ही किया, जैसा करना चाहिये था। भन्ते! इसे सुनकर देवता और मनुष्य सभी पाप करने से लजायेंगे, रुके रहेंगे तथा उसे देखकर ही भय मानेंगे, पाप के पास जाना और उसको करना तो दूर रहा!" "महाराज! खाट पर गिर जाने और रोगी होने पर वैद्य क्या मीठी ही औषध देता है?" "नहीं, भन्ते! स्वस्थ करने के लिये वह तीक्ष्ण और कड़वी औषधि भी देता है।" "महाराज! उसी तरह, सभी पापों को दूर कर देने के लिये ही भगवान् उपदेश देते हैं। महाराज! जैसे जल गर्म होकर भी मृदु हो सकने वाली चीजों को मृदु बना देता है। महाराज! उसी तरह, भगवान् बुद्ध के कठोर शब्द भी बहुत उपयोगी और करुणामय होते हैं।

महाराज, फरुसा पि तथागतस्स वाचा अत्थवती होति करुणासहगता। फरुसा पि, महाराज, तथागतस्स वाचा सत्तानं किलेसप्पहाना होति। यथा, महाराज, दुग्गन्धं पि गोमुत्तं पीतं, विरसं पि अगदं खायितं सत्तानं ब्याधिं हन्ति; एवमेव खो, महाराज, फरुसा पि तथागतस्स वाचा अत्थवती होति करुणासहगता। यथा, महाराज, महन्तो पि तूलपुञ्जो परस्स काये निपतित्वा रुजं न करोति; एवमेव खो, महाराज, फरुसा पि तथागतस्स वाचा न कस्सचि दुक्खं उप्पादेती'' ति।

''सुविनिच्छितो, भन्ते नागसेन, पञ्हो बहूहि कारणेहि। साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी'' ति।

५. रुक्ख-अचेतनभावपञ्हो

११. ''भन्ते नागसेन, भासितं पेतं भगवता तथागतेन—

'अचेतनं, ब्राह्मण, अस्सुणन्तं, जानं अजानन्तमिमं पलासं।
आरद्धविरियो धुवमप्पमत्तो, सुखसेय्यं पुच्छसि किस्स हेतू' ति॥ *(जा० ३-२४)*

''पुन च भणितं—

'इति फन्दनरुक्खो पि, तावदे अज्झभासथ।
मय्हं पि वचनं अत्थि, भारद्वाज, सुणोहि मे' ति॥ *(जा० ४-२१०)*

''यदि, भन्ते नागसेन, रुक्खो अचेतनो, तेन हि— 'फन्दनेन रुक्खेन भारद्वाजेन सह सल्लपितं' ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि फन्दनेन रुक्खेन भारद्वाजेन सद्धिं सल्लपितं, तेन हि— 'रुक्खो अचेतनो' ति तं पि वचनं मिच्छा। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो तवानुप्पत्तो, सो तया निब्बाहितब्बो'' ति?

१२. ''भासितं पेतं, महाराज, भगवता— 'रुक्खो अचेतनो' ति। फन्दनेन च रुक्खेन

''महाराज! जैसे पिता के शब्द पुत्रों के लिये बहुत उपयोगी और करुणामिश्रित होते हैं, वैसे ही भगवान् के कठोर शब्द भी उपयोगी और करुणा से भरे होते हैं। महाराज! भगवान् के कठोर शब्द भी लोगों के पापनाश के लिये होते हैं। महाराज! जैसे खारे स्वाद वाला गो–मूत्र बड़ी कठिनाई से पिया जाकर भी शरीर के रोगों को दूर करता है, वैसे ही भगवान् के कठोर शब्द भी बहुत उपयोगी और करुणामय होते हैं। महाराज! जैसे रुई की एक बड़ी गाँठ के शरीर पर गिरने से कोई घाव नहीं लगता, वैसे ही भगवान् के शब्द कठोर होने पर भी उनसे किसी को चोट नहीं पहुँचती।''

''भन्ते नागसेन! आपने अनेक तर्क देते हुए प्रश्न को अच्छा समझाया। यह ठीक ही है। आप जैसा कहते हैं, मैं स्वीकार करता हूँ।''

५. वृक्षों में अचेतनभाव— ११. ''भन्ते नागसेन! भगवान् ने यह कहा है—

'हे ब्राह्मण! न सुन सकने वाले और निर्जीव इस पलास को जानते हुए भी, न जानने जैसे, सावधान और सचेत होते हुए भी तुम क्यों कुछ पूछ रहे हो?''

''साथ ही साथ ऐसा भी कहा है—

'फन्दन वृक्ष ने उत्तर दिया— भारद्वाज! मैं भी बोल सकता हूँ। सुनो!'

(क) ''भन्ते! यदि वृक्ष में वस्तुतः जीव नहीं है तो फन्दन के उत्तर देने की बात झूठी ठहरती है। (ख) और यदि फन्दन के उत्तर देने की बात ठीक है, तो वृक्ष में जीव नहीं है, ऐसा नहीं हो सकता। यह भी द्विविधा....?''

भारद्वाजेन सद्धिं सल्लपितं। तं च पन वचनं लोकसमञ्ञाय भणितं, नत्थि, महाराज, अचेतनस्स रुक्खस्स सल्लापो नाम, अपि च महाराज तस्मिं रुक्खे अधिवत्थाय देवतायेतं अधिवचनं— 'रुक्खो' ति, 'रुक्खो सल्लपती' ति चेसा लोकपण्णत्ति।

"यथा, महाराज, सकटं धञ्ञस्स परिपूरितं 'धञ्ञसकटं' ति जनो वोहरति, न च तं धञ्ञमयं सकटं, रुक्खमयं सकटं, तस्मिं सकटे धञ्ञस्स पन आकिरितत्ता 'धञ्ञसकटं' ति जनो वोहरति; एवमेव खो, महाराज, न रुक्खो सल्लपति, रुक्खो अचेतनो। या पन तस्मिं रुक्खे अधिवत्था देवता तस्सा एतं अधिवचनं— 'रुक्खो' ति। 'रुक्खो सल्लपती' ति चेसा लोकपण्णत्ति। (क)

"यथा वा पन, महाराज, दधिं मन्थयमानो 'तक्कं मन्थेमी' ति वोहरति, न तं तक्कं यं सो मन्थेति, दधिं येव सो मन्थेन्तो 'तक्कं मन्थेमी' ति वोहरति; एवमेव खो, महाराज, न रुक्खो सल्लपति, रुक्खो अचेतनो। या पन तस्मिं रुक्खे अधिवत्था देवता, तस्सा एतं अधिवचनं— 'रुक्खो' ति। 'रुक्खो सल्लपती' ति चेसा लोकपण्णत्ति। (ख)

"यथा वा पन, महाराज, असन्तं साधेतुकामो 'सन्तं साधेमी' ति वोहरति, असिद्धं सिद्धं ति वोहरति, एवमेसा लोकसमञ्ञा; एवमेव खो, महाराज, न रुक्खो सल्लपति, रुक्खो अचेतनो। या पन तस्मिं रुक्खे अधिवत्था देवता तस्सा एतं अधिवचनं—'रुक्खो' ति। 'रुक्खो सल्लपती' ति चेसा लोकपण्णत्ति। याय, महाराज, लोकसमञ्ञाय जनो वोहरति, तथागतो पि तायेव लोकसमञ्ञाय सत्तानं धम्मं देसेती" ति। (ग)

"साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी" ति।

६. पिण्डपातमहप्फलपञ्हो

१३. "साधु, भन्ते नागसेन, भासितं पेतं धम्मसङ्गीतिकारकेहि थेरेहि—

---

१२. "महाराज! दोनों बातें ठीक हैं। वृक्ष अचेतन होता है। फन्दन ने भी भारद्वाज को सही उत्तर दिया था। यह बात तो केवल लोगों को बतलाने के लिये कही गयी थी। महाराज! निर्जीव वृक्ष क्या बोल सकेगा! उस पर रहने वाले देवता के बोलने से वृक्ष का बोलना कह दिया गया।

"महाराज! जैसे गाड़ी पर धान लाद देने से लोग उसे 'धान की गाड़ी' कहने लगते हैं। गाड़ी तो लकड़ी की बनी होती है, धान की नहीं; किन्तु उस पर धान लदा रहने से लोग उसे 'धान की गाड़ी' कहने लगते हैं! महाराज! उसी तरह, वस्तुतः वृक्ष नहीं बोलता; क्योंकि वह तो अचेतन है। उस पर रहने वाले देवता के बोलने से लोग 'वृक्ष बोलता है'— ऐसा कह देते हैं। (क)

"महाराज! वास्तव में तो लोग दही को मथते हैं, किन्तु कहते हैं 'मट्ठा मथता हूँ।' वे मट्ठा तो मथते नहीं, मथते हैं दही ही। महाराज! उसी तरह, वस्तुतः वृक्ष नहीं बोलता है, क्योंकि उसमें तो प्राण ही नहीं है। उस पर रहने वाले देवता के बोलने से लोग 'वृक्ष बोलता है' ऐसा कह देते हैं।" (ख)

"महाराज! लोग कहा करते हैं— 'मैं अमुक चीज बना रहा हूँ'। वह चीज तो अभी है ही नहीं, फिर उसे वे कैसे बनावेंगे? किन्तु लोगों के कहने की यही रीति है। महाराज! उसी तरह, वास्तव में वृक्ष नहीं बोलता है, क्योंकि उसमें तो जीव ही नहीं है। उस पर रहने वाले देवता के बोलने से लोग 'वृक्ष बोलता है' ऐसा कहते हैं। महाराज! लोग जिस भाषा का प्रयोग करते हैं, उसी भाषा में भगवान् बुद्ध भी उन्हें धर्म का उपदेश देते हैं।" (ग)

'चुन्दस्स भत्तं भुञ्जित्वा, कम्मारस्सा ति मे सुतं।
आबाधं सम्फुसी बुद्धो, पबाळ्हं मारणन्तिकं' ति॥

(द्र०- सु०वि०, अ०क०, दी०नि०)

"पुन च भगवता भणितं— 'द्वेमे, आनन्द, पिण्डपाता समा समफला समविपाका अतिविय अञ्ञेहि पिण्डपातेहि महप्फलतरा चेव महानिसंसतरा चा' ति। यदि, भन्ते नागसेन, भगवतो चुन्दस्स भत्तं भुत्ताविस्स खरो आबाधो उप्पन्नो, पबाळ्हा वेदना पवत्ता मारणन्तिका, तेन हि— 'द्वेमे, आनन्द, पिण्डपाता समा समफला समविपाका अतिविय अञ्ञेहि पिण्डपातेहि महप्फलतरा चेव महानिसंसतरा चा' ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि द्वेमे पिण्डपाता समा समफला समविपाका अतिविय अञ्ञेहि पिण्डपातेहि महप्फलतरा चेव महानिसंतरा च, तेन हि— 'भगवतो चुन्दस्स भत्तं भुत्ताविस्स खरो आबाधो उप्पन्नो, पबाळ्हा वेदना पवत्ता मारणन्तिका' ति तं पि वचनं मिच्छा। किं नु खो, भन्ते नागसेन, सो पिण्डपातो विसगतताय महप्फलो, रोगुप्पादकताय महप्फलो, आयुविनासकताय महप्फलो, भगवतो जीवितहरणताय महप्फलो! तत्थ मे कारणं ब्रूहि परवादानं निग्गहाय, एत्थायं जनो सम्मूळ्हो— 'लोभवसेन अतिबहुं खायितेन लोहितपक्खन्दिका उप्पन्ना' ति। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो तवानुप्पत्तो, सो तया निब्बाहितब्बो" ति?

१४. "भासितं पेतं, महाराज, धम्मसङ्गीतिकारकेहि थेरेहि—

"ठीक है, भन्ते नागसेन! आपने ठीक कहा।"

६. पिण्डपात-फलविषयकप्रश्न— १३. "भन्ते नागसेन! धर्मसङ्गीति[१] करने वाले स्थविरों ने कहा है—

'सोनार चुन्द के दिये गये भोजन को खाकर, ऐसा मैंने सुना है, भगवान् को वह भयंकर रोग हो गया, जिससे अन्त में उनके प्राण ही चले गये।।'

"फिर, भगवान् ने यह भी कहा है— 'आनन्द! मुझको दी गयी दोनों ही भिक्षाएँ बराबर पुण्य देने वाली हैं। दूसरे लोगों से दी गयी भिक्षाओं की अपेक्षा वे ही दोनों सबसे अधिक फल और पुण्य देने वाली हैं। कौन सी दो भिक्षाएँ? १. जिस भिक्षा को खाकर मैंने अलौकिक बुद्धत्व प्राप्त किया था और २. जिस भिक्षा को खाकर मैंने संसार से सदा के लिये मुक्ति मिल जाने वाले परिनिर्वाण को पाया। ये दोनों भिक्षा बराबर पुण्य देने वाली हैं। (क) भन्ते! यदि चुन्द की भिक्षा खाकर भगवान् को ऐसा भयङ्कर रोग हो गया कि जिससे उनके प्राण चले गये, तो वह भिक्षा दूसरे लोगों से दी गई भिक्षाओं से बढ़ कर पुण्य देने वाली नहीं समझनी चाहिये। (ख) और यदि वह भिक्षा यथार्थ में दूसरे लोगों से दी गई भिक्षाओं से बढ़कर पुण्यप्रद थी तो यह नहीं हो सकता कि उसे खाकर भगवान् को ऐसा भयङ्कर रोग उठा, जिससे उनकी मृत्यु ही हो गयी। विष के समान काम करने वाली, रोग उत्पन्न कर देने वाली तथा प्राणों को भी हर लेने वाली वह भिक्षा, जिसे खाकर भगवान् का देहपात हो गया, क्योंकर दूसरे लोगों से दी गयी भिक्षाओं से बढ़कर पुण्य देने वाली हो सकती है? विपक्षी मतों के कुतर्क को रोकने के लिये आप इसका कारण बता दें। लोगों को यहाँ ऐसा भ्रम होता है कि भगवान् ने लोभ में पड़कर अधिक ठूँस कर खा लिया होगा, जिससे उन्हें रक्तातिसार (लाल आँव) पड़ने लगा। यह भी एक द्विविधा....?"

१४. "महाराज! धर्मसङ्गीति करने वाले महास्थविरों ने जो कहा है वह ठीक है कि 'चुन्द की

---

१. भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद उनके शिष्यों ने राजगृह में एकत्र होकर बुद्धोपदेशों का संग्रह किया था। इसे प्रथम 'धर्मसङ्गीति' कहते हैं।

'चुन्दस्स भत्तं भुञ्जित्वा, कम्मारस्सा ति मे सुतं।
आबाधं सम्फुसी बुद्धो, पबाळ्हं मारणन्तिकं' ति॥

"भगवता च भणितं— 'द्वेमे, आनन्द, पिण्डपाता समा समफला समविपाका अतिविय अञ्ञेहि पिण्डपातेहि महप्फलतरा चेव महानिसंसतरा च। कतमे द्वे? यं च पिण्डपातं परिभुञ्जित्वा तथागतो अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धो, यं च पिण्डपातं परिभुञ्जित्वा तथागतो अनुपादिसेसाय निब्बानधातुया परिनिब्बायति। इमे द्वे पिण्डपाता समा समफला समविपाका अतिविय अञ्ञेहि पिण्डपातेहि महप्फलतरा चेव महानिसंसतरा चा' ति। *(दी० नि०, म०प०नि० सुत्त)*

"सो च पन पिण्डपातो बहुगुणो अनेकानिसंसो। देवता, महाराज, हट्ठा पसन्नमानसा— 'अयं भगवतो पच्छिमो पिण्डपातो' ति दिब्बं ओजं सूकरमद्दवे आकिरिंसु। तं च पन सम्मापाकं लहुपाकं मनुञ्ञं बहुरसं जठरग्गितेजस्स हितं। न, महाराज, ततोनिदानं भगवतो कोचि अनुप्पन्नो रागो उप्पन्नो। अपि च, महाराज, भगवतो पकतिदुब्बले सरीरे खीणे आयुसङ्खारे उप्पन्नो रोगो भिय्यो अभिवड्ढि।

"यथा, महाराज, पकतिया जलमानो अग्गि अञ्ञस्मिं उपादाने दिन्ने भिय्यो पज्जलति; एवमेव खो, महाराज, भगवतो पकतिदुब्बले सरीरे खीणे आयुसङ्खारे उप्पन्नो रोगो भिय्यो अभिवड्ढि।

"यथा वा पन, महाराज, सोतो पकतिया सन्दमानो अभिवुट्ठे महामेघे भिय्यो महोघो उदकवाहको होति; एवमेव खो, महाराज, भगवतो पकतिदुब्बले सरीरे खीणे आयुसङ्खारे उप्पन्नो रोगो भिय्यो अभिवड्ढि।

"यथा वा पन, महाराज, पकतिया अभिसन्नधातु कुच्छि अञ्ञस्मिं अज्झोहारे भिय्यो आयमेय्य; एवमेव खो, महाराज, भगवतो पकतिदुब्बले सरीरे खीणे आयुसङ्खारे उप्पन्नो रोगो

भिक्षा खाकर भगवान् को....।' तथा भगवान् ने जो कहा है, वह भी ठीक है कि 'चुन्द की दी गयी भिक्षा दूसरी भिक्षाओं से बढ़कर पुण्य देने वाली है'।

"महाराज! देवता लोग भगवान् को इस अन्तिम भिक्षा पर आनन्द से मुदित हो उठे। उन्होंने उस सूकर-मद्दव[1] में दिव्य ओज भर दिया था। इससे वह हलका, जल्दी पंच जाने वाला और बहुत स्वादिष्ट हो गया था। इसके खाने के कारण उन्हें रोग नहीं हुआ था; अपि तु उनके बहुत दुर्बल हो जाने और आयु पूर्ण हो जाने के कारण ही वह रोग हो गया तथा उनके शरीर की दशा बिगड़ती गयी।

"महाराज! जैसे स्वयं जलती हुई अग्नि में ईंधन डाल देने से वह और अधिक तेज जल उठती है, वैसे ही भगवान् के बहुत दुर्बल हो जाने और आयु पूर्ण हो जाने के कारण वह रोग बढ़ता ही गया।

"महाराज! जैसे अधिक वर्षा हो जाने पर कोई नदी और भी उमड़कर बहने लगती है; वैसे ही भगवान् के बहुत दुर्बल हो जाने और आयु पूर्ण हो जाने के कारण वह रोग बढ़ता ही गया।

"महाराज! जैसे उदराग्नि के दुर्बल हो जाने पर कुछ अधपका अन्न खा लेने से और भी अधिक

---

१. सूकर-मद्दव— कुछ लोग कहते हैं कि यह सूअर का मांस नहीं, अपि तु एक प्रकार की कोई विषैली लता थी। विशेष के लिये द्र०- सु०वि० (दीघनिकायट्ठकथा) का सम्बद्ध प्रसङ्ग (महापरिनिर्वाणसुत्त)।

भिय्यो अभिवड्ढि। नत्थि, महाराज, तस्मिं पिण्डपाते दोसो। न च तस्स सक्का दोसो आरोपेतुं'' ति।

''भन्ते नागसेन, केन कारणेन ते द्वे पिण्डपाता समा समफला समविपाका, अतिविय अञ्ञेहि पिण्डपातेहि महप्फलतरा चेव महानिसंसतरा चा'' ति? ''धम्मानुमज्जनसमापत्तिवसेन, महाराज, ते द्वे पिण्डपाता समा समफला समविपाका अतिविय अञ्ञेहि महप्फलतरा चेव महानिसंसतरा चा'' ति।

''भन्ते नागसेन, कतमेसं धम्मानं अनुमज्जनसमापत्तिवसेन ते द्वे पिण्डपाता समा समफला समविपाका अतिविय अञ्ञेहि पिण्डपातेहि महप्फलतरा चेव महानिसंसा चा'' ति? ''नवन्नं, महाराज, अनुपुब्बविहारसमापत्तीनं अनुलोमपटिलोमसमापज्जनवसेन ते द्वे पिण्डपाता समा समफला समविपाका अतिविय अञ्ञेहि पिण्डपातेहि महप्फलतरा चेव महानिसंसतरा चा'' ति।

''भन्ते नागसेन, द्वीसु येव दिवसेसु अधिमत्तं तथागतो नवानुपुब्बविहारसमापत्तियो अनुलोमपटिलोमं समापज्जी'' ति? ''आम, महाराजा'' ति।

''अच्छरियं, भन्ते नागसेन, अब्भुतं, भन्ते नागसेन, यं इमस्मिं बुद्धक्खेत्ते असदिसं परमदानं तं पि इमेहि द्वीहि पिण्डपातेहि अगणितं। अच्छरियं, भन्ते नागसेन, अब्भुतं, भन्ते नागसेन, याव महन्ता नवानुपुब्बविहारसमापत्तियो, यत्र हि नाम नवानुपुब्बविहारसमापत्तिवसेन दानं महप्फलतरं होति महानिसंसतरं च। साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी'' ति।

७. बुद्धपूजनपञ्हो

१५. ''भन्ते नागसेन, भासितं पेतं तथागतेन— 'अब्यावटा तुम्हे, आनन्द, होथ तथागतस्स सरीरपूजाया' ति। *(दी०नि०, म० प० नि० सुत्तं)* पुन च भणितं—

आँव हो जाता है, वैसे ही भगवान् के बहुत दुर्बल हो जाने और आयु पूर्ण हो जाने के कारण वह रोग बढ़ता ही गया। महाराज! चुन्द की उस भिक्षा में कोई दोष नहीं था। उस पर कोई दोष नहीं लगाया जा सकता।"

"भन्ते! वे दोनों भिक्षा किस कारण से दूसरे लोगों से दी गयी भिक्षाओं से बढ़कर पुण्य देनेवाली समझी जाती हैं?" "महाराज! क्योंकि उन दोनों भिक्षाओं को खाने के बाद ही उन्होंने धर्म की सब से बड़ी उपलब्धि प्राप्त की थी।"

"भन्ते! धर्म की कौन सी सबसे बड़ी उपलब्धि?" "महाराज! नव आनुपूर्विकविहार की समापत्ति का उलटे (प्रतिलोम) और सीधे (अनुलोम) साक्षात्कार कर लेना।[1]"

"भन्ते! क्या भगवान् ने बुद्धत्व-प्राप्ति और परिनिर्वाण— दोनों समयों में उसका साक्षात्कार किया था?" "हाँ, महाराज!" "भन्ते! बहुत आश्चर्य है! और बहुत ही अद्भुत है! कि भगवान् को दी गयी ये दोनों भिक्षा सबसे अधिक गौरवमयी समझी जाती हैं। नव आनुपूर्विक विहार की समापत्ति भी धन्य है, जिसके कारण वह भिक्षा इतनी महत्त्वपूर्ण हो गयी। ठीक है, भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं, मैं स्वीकार करता हूँ।"

---

१. (१) प्रथमध्यान, (२) द्वितीय ध्यान, (३) तृतीय ध्यान, (४) चतुर्थ ध्यान, (५-८) अरूप ध्यान, (९) संज्ञावेदयितनिरोधसमापत्ति। विशेष द्र० 'मज्झिम-निकाय' में 'अनुपदसुत्त।

'पूजेथ नं पूजनियस्स धातुं, एवङ्करा सग्गमितो गमिस्सथा' ति।

"यदि, भन्ते नागसेन, तथागतेन भणितं— 'अब्यावटा तुम्हे, आनन्द, होथ तथागतस्स सरीरपूजाया' ति, तेन हि— 'पूजेथ नं पूजनियस्स धातुं, एवङ्करा सग्गमितो गमिस्सथा' ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि तथागतेन भणितं— 'पूजेथ नं पूजनियस्स धातुं, एवङ्करा सग्गमितो गमिस्सथा' ति, तेन हि 'अब्यावटा तुम्हे, आनन्द, होथ तथागतस्स सरीरपूजाया' ति तं पि वचनं मिच्छा। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो तवानुप्पत्तो, सो तया निब्बाहितब्बो' ति?

१६. "भासितं पेतं, महाराज, भगवता— 'अब्यावटा तुम्हे, आनन्द, होथ तथागतस्स सरीरपूजाया' ति। पुन च भणितं— 'पूजेथ नं पूजनियस्स धातुं एवङ्करा सग्गमितो गमिस्सथा' ति। तं च पन न सब्बेसं जिनपुत्तानं येव आरब्भ भणितं— 'अब्यावटा तुम्हे, आनन्द, होथ तथागतस्स सरीरपूजाया' ति। अकम्मं हेतं, महाराज, जिनपुत्तानं यदिदं पूजा। सम्मसनं सङ्खारानं, योनिसो मनसिकारो, सतिपट्ठानानुपस्सना, आरम्मणसारग्गाहो, किलेसयुद्धं, सदत्थमनुयुञ्जना— एतं जिनपुत्तानं करणीयं। अवसेसानं देवमनुस्सानं पूजा करणीया।

"यथा, महाराज, महिया राजपुत्तानं हत्थिअस्सधनुथरुलेखमुद्दासिक्खाखग्गमन्त-सुतिसम्मुतियुद्धयुज्झापनकिरिया करणीया, अवसेसानं पुथुवेस्ससुद्दानं कसि वणिज्जा गोरक्खा करणीया; एवमेव खो, महाराज, अकम्मं हेतं जिनपुत्तानं यदिदं पूजा। सम्मसनं सङ्खारानं, योनिसो मनसिकारो, सतिपट्ठानानुपस्सना, आरम्मणसारग्गाहो, किलेसयुद्धं, सदत्थमनुयुञ्जना— एतं जिनपुत्तानं करणीयं, अवसेसानं देवमनुस्सानं पूजा करणीया।

---

७. बुद्धपूजाविषयकप्रश्न— १५. "भन्ते नागसेन! भगवान् ने कहा है— 'आनन्द! तुम लोग तथागत की शरीर–पूजा में न लगो'। *(दी०नि०, म०प०सू०)* साथ ही साथ ऐसा भी कहा है—

'पूजो उन पूजनीय की धातुओं को। ऐसा करते हुए तुम्हें स्वर्ग मिलेगा।'

(क) "भन्ते! यदि भगवान् ने आनन्द को तथागत की शरीर–पूजा का निषेध किया है तो 'पूजो उस पूजनीय की धातु को....' ऐसा कभी नहीं कहा होगा। (ख) और, यदि उन्होंने 'पूजो उस पूजनीय की धातु को ....' ऐसा यथार्थ में कहा है, तो आनन्द को तथागत की शरीर–पूजा करने से निषेध करने वाली बात असत्य ठहरती है। यह भी द्विविधा....?"

१६. "महाराज ! भगवान् ने दोनों बातें कही हैं। किन्तु यह सब के लिये नहीं, अपितु केवल भिक्षुओं के लिये कहा था— 'आनन्द! तुम लोग बुद्ध की शरीर–पूजा में न लगो।' महाराज! शरीर पूजा करना भिक्षुओं का कार्य नहीं है। सर्वविध नश्वरता को मन में लाना, ध्यान–भावना का अभ्यास करना, सभी बातों से सार निकाल लेना, क्लेशों के नाश करने का यह प्रयत्न करना और पवित्र कार्यों में लगे रहना–भिक्षुओं के यही कर्तव्य हैं। बाकी देवताओं और मनुष्यों के लिये ही धातु–पूजा करना उचित है।

"महाराज! जैसे हाथी, घोड़े, रथ, भाले और तीर चलाने की विद्याओं का सीखना, लिखना–पढ़ना, हिसाब–किताब देखना, क्षात्र धर्म का पालन करना, युद्ध करना, सेना सञ्चालन करना— ये क्षत्रियों के कर्तव्य हैं। और, वैश्य, शूद्र तथा दूसरे लोगों के कार्य खेती करना, व्यापार करना, पशु–पालन इत्यादि हैं। महाराज! उसी तरह, पूजा करना भिक्षुओं का कार्य नहीं। सभी संस्कारों की विनश्वरता को मन में लाना ही भिक्षुओं के कर्तव्य हैं। बाकी देवताओं और मनुष्यों के लिये ही धातुपूजा करना ठीक है।

"यथा वा पन, महाराज, ब्राह्मणमाणवकानं इरुब्बेदं यजुब्बेदं सामवेदं अथब्बणवेदं लक्खणं इतिहासं पुराणं निघण्टु केटुभं अक्खरप्पभेदं पदं वेय्याकरणं भासमग्गं उप्पातं सुपिनं निमित्तं छळङ्गं चन्दग्गाहं सुरियग्गाहं सुक्कराहुचरितं उळुग्गहयुद्धं देवदुन्दुभिस्सरं ओक्कन्ति उक्कापातं भूमिकम्पं दिसादाहं भुम्मन्तलिक्खं जोतिसं लोकायतिकं साचक्कं मिगचक्कं अन्तरचक्कं मिस्सकुप्पादं सकुणरुतरवितं सिक्खा करणीया, अवसेसानं पुथुवेस्ससुद्दानं कसि वणिज्जा गोरक्खा करणीया; एवमेव खो, महाराज, अकम्मं हेतं जिनपुत्तानं यदिदं पूजा। सम्मसनं सङ्खारानं, योनिसो मनसिकारो, सतिपट्ठानानुपस्सना, आरम्मणसारग्गाहो, किलेसयुद्धं, सदत्थमनुयुञ्जना— एतं जिनपुत्तानं करणीयं, अवसेसानं देवमनुस्सानं पूजा करणीया। तस्मा, महाराज, तथागतो— 'मा इमे अकम्मे युञ्जन्तु, कम्मे इमे युञ्जन्तू' ति आह— 'अब्यावटा तुम्हे, आनन्द, होथ तथागतस्स सरीरपूजाया' ति। यदेतं, महाराज, तथागतो न भणेय्य, पत्तचीवरं पि अत्तनो परियादापेत्वा भिक्खू बुद्धपूजं येव करेय्युं" ति।

"साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी" ति।

८. पादसकलिकाहतपञ्हो

१७. "भन्ते नागसेन, तुम्हे भणथ— 'भगवतो गच्छन्तस्स अयं अचेतना महापथवी निन्नं उन्नमति उन्नतं ओणमती' ति। पुन च भणथ— 'भगवतो पादो सकलिकाय खतो' ति। या सा सकलिका भगवतो पादे पतिता, किस्स पन सा सकलिका भगवतो पादा न निवत्ता? यदि, भन्ते नागसेन, भगवतो, गच्छन्तस्स अयं अचेतना महापथवी निन्नं उन्नमति उन्नतं ओणमति,

---

"महाराज! जैसे ब्राह्मण–बालकों को ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, आयुर्वेद, इतिहास, पुराण, निघण्टु, कैटुभ, अक्षरप्रभेद, पद, व्याकरण, ज्योतिषशास्त्र, शकुनविद्या, स्वप्नविद्या, निमित्तविद्या, छह वेदाङ्ग, सूर्य और चन्द्र के ग्रहण की विद्या, राहु के आकाश में आ जाने के फल की विद्या, आकाश का गड़गड़ाना, नक्षत्रों के संयोग होने की विद्या, उल्कापात, भूकम्प, दिशा–दाह, आकाश और पृथ्वी के लक्षणों को देख कर फल बताना, गणित, सामुद्रिक; कुत्ता, मृग, चूहा, मिश्रकोत्पाद्य तथा पक्षियों की बोली को समझ लेने की विद्या को सीखना चाहिये। किन्तु, वैश्य शूद्र तथा दूसरे लोगों के कार्य कृषि, व्यापार और पशु–पालन हैं। महाराज! उसी तरह, पूजा करना भिक्षुओं का कार्य नहीं है। सभी संस्कारों की नश्वरता को मन में लाना.... ही भिक्षुओं का कर्तव्य है। बाकी देवताओं और मनुष्यों के लिये धातुपूजा करना ठीक है। अतः महाराज! जिससे भिक्षु लोग व्यर्थ कार्यों में न लगकर अपने कर्तव्यों में ही लगे रहें, इसीलिये भगवान् ने कहा था— 'आनन्द! तुम लोग तथागत की शरीरपूजा में न लगो'। "यदि भगवान् ऐसा न कहते तो बौद्ध लोग अपने चीवर और पिण्डपात्र को एक तरफ रखकर तथागत की शरीरपूजा करने में लगे रहते।"

"ठीक है, भन्ते नागसेन! आप जैसा कहते हैं, मैं स्वीकार करता हूँ।"

८. प्रस्तरखण्ड से भगवान् के पैरों में चोट— १७. "भन्ते नागसेन! आप लोग कहा करते हैं कि— 'भगवान् के चलने पर यह अचेतन पृथ्वी भी जहाँ नीची है वहाँ ऊँची और जहाँ ऊँची है वहाँ नीची हो जाती थी (अर्थात् सम हो जाती थी)।' साथ ही साथ ऐसा भी मानते हैं कि भगवान् का पैर एक बार पत्थर के टुकड़े से कट गया था। जो पत्थर का टुकड़ा भगवान् के पैर पर गिरा, वह उनके पैर से कुछ हट कर क्यों नहीं गिरा? (क) भन्ते! यदि भगवान् के चलने पर यह अचेतन पृथ्वी भी जहाँ नीची है, वहाँ

तेन हि— 'भगवतो पादो सकलिकाय खतो' ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि भगवतो पादो सकलिकाय खतो, तेन हि— 'भगवतो गच्छन्तस्स अयं अचेतना महापथवी निन्नं उन्नमति उन्नतं ओणमती' ति तं पि वचनं मिच्छा। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो तवानुप्पत्तो, सो तया निब्बाहितब्बो' ति?

१८. "सच्चं, महाराज, अत्थेतं— 'भगवतो गच्छन्तस्स अयं अचेतना महापथवी निन्नं उन्नमति उन्नतं ओणमति'। 'भगवतो च पादो सकलिकाय खतो'। न च पन सा सकलिका अत्तनो धम्मताय पतिता, देवदत्तस्स उपक्कमेन पतिता। देवदत्तो, महाराज, बहूनि जातिसतसहस्सानि भगवति आघातं बन्धि, सो तेन आघातेन 'महन्तं कूटागारप्पमाणं पासाणं भगवतो उपरि पातेस्सामी' ति मुञ्चि। अथ द्वे सेला पथवितो उट्ठहित्वा तं पासाणं सम्पटिच्छिंसु, अथ नेसं सम्पहारेन पासाणतो पपटिका भिज्जित्वा येन वा तेन वा पतन्ती भगवतो पादे पतिता" ति।

"यथा च, भन्ते नागसेन, द्वे सेला पासाणं सम्पटिच्छिंसु, तथेव पपटिका पि सम्पटिच्छितब्बा" ति?

"सम्पटिच्छितं पि, महाराज, इधेकच्चं पग्घरति पसवति न ठानमुपगच्छति। यथा, महाराज, उदकं पाणिना गहितं अङ्गुलन्तरिकाहि पग्घरति पसवति न ठानमुपगच्छति, खीरं तक्कं मधुं सप्पि तेलं मच्छरसं मंसरसं पाणिना गहितं अङ्गुलन्तरिकाहि पग्घरति पसवति न ठानमुपगच्छति; एवमेव खो, महाराज, सम्पटिच्छनत्थं उपगतानं द्विन्नं सेलानं सम्पहारेन पासाणतो पपटिका भिज्जित्वा येन वा तेन वा पतन्ती भगवतो पादे पतिता। (क)

"यथा वा पन, महाराज, सण्हसुखुमअणुरजसमं पुळिनं मुट्ठिना गहितं अङ्गुलन्तरिकाहि

ऊँची और जहाँ ऊँची है वहाँ नीची हो जाती थी तो यह कभी सम्भव नहीं हो सकता कि उनके पैर पर पत्थर गिर पड़े और घाव हो जाय। (ख) और यदि यथार्थ में उनके पैर पर पत्थर गिर कर घाव हो गया था तो यह बात नहीं मानी जा सकती कि उनके चलने पर यह अचेतन पृथ्वी जहाँ नींची है वहाँ ऊँची और जहाँ ऊँची है वहाँ नीची हो जाया करती थी। यह भी एक द्विविधा....?"

१८. "महाराज! दोनों बातें ठीक हैं, किन्तु वह पत्थर का टुकड़ा स्वयं नहीं, अपितु देवदत्त के फेंकने से उनके पैर पर आ गिरा था। महाराज! सैकड़ों और हजारों जन्म से भगवान् के प्रति देवदत्त के मन में वैर भाव चला आ रहा था! उस वैर से उसने भगवान् के ऊपर एक चट्टान लुढ़का दी। किन्तु पृथ्वी से निकली हुई दूसरी दो चट्टानों में आकर वह बीच ही में रुक गयी। उन चट्टानों के टक्कर खाने से पत्थर का एक टुकड़ा उछल कर आया और भगवान् के पैर पर आ गिरा।"

"भन्ते! जैसे दो दूसरी चट्टानों ने आकर बीच ही में उस गिरती हुई चट्टान को रोक दिया, वैसे ही पत्थर के टुकड़े को भी बीच ही में रुक जाना चाहिये था?"

"महाराज! रोक देने पर भी कुछ न कुछ खिसक कर नीचे चला ही आता है। महाराज! अञ्जलि (चुल्लू) में जल लेने से कुछ न कुछ जल अङ्गुलियों के बीच से निकल कर नीचे चला ही आता है। दूध, मट्ठा, मधु, घी, तेल, मत्स्य या मांसरस चुंल्लू में लेने से कुछ न कुछ अङ्गुलियों के बीच से निकल कर नीचे चला आता है। उसी तरह, गिरती हुई चट्टान को दो दूसरी चट्टानों के बीच में आकर रोक देने पर भी उनके टक्कर खाने से उनका एक टुकड़ा उछल कर भगवान् के पैर पर आ गिरा। (क)

पग्घरति पसवति न ठानमुपगच्छति; एवमेव खो, महाराज, सम्पटिच्छनत्थं समागच्छन्तानं द्विन्नं सेलानं सम्पहारेन पासाणतो पपटिका भिज्जित्वा येन वा तेन वा पतन्ती भगवतो पादे पतिता। (ख)

"यथा वा पन, महाराज, कबळो मुखेन गहितो इधेकच्चस्स मुखतो मुच्चित्वा पग्घरति पसवति न ठानमुपगच्छति; एवमेव खो, महाराज, सम्पटिच्छनत्थं समागच्छन्तानं द्विन्नं सेलानं सम्पहारेन पासाणतो पपटिका भिज्जित्वा येन वा तेन वा पतन्ती भगवतो पादे पतिता" ति। (ग)

"होतु, भन्ते नागसेन, सेलेहि पासाणो सम्पटिच्छितो होतु, अथ पपटिकाय पि अपचिति कातब्बा यथेव महापथविया" ति?

"द्वादसिमे, महाराज, अपचितिं न करोन्ति। कतमे द्वादस? रत्तो रागवसेन अपचितिं न करोति, दुट्ठो दोसवसेन, मूळ्हो मोहवसेन, उन्नतो मानवसेन, निग्गुणो अविसेसताय, अतिथद्धो अनिसेधनताय, हीनो हीनसभावताय, वचनकरो अनिस्सरताय, पापो कदरियताय, दुक्खापितो पटिदुक्खापनताय, लुद्धो लोभाभिभूतताय, आयूहितो अत्थसाधनताय अपचितिं न करोति। इमे खो, महाराज, द्वादस अपचितिं न करोन्ति। सा च पन पपटिका पासाणसम्पहारेन भिज्जित्वा अनिमित्तकतदिसा येन वा तेन वा पतमाना भगवतो पादे पतिता।

"यथा वा पन, महाराज, सण्हसुखुमअणुरजो अनिलबलसमाहतो अनिमित्तकतदिसो येन वा तेन वा अभिकिरति; एवमेव खो, महाराज, सा पपटिका पासाणसम्पहारेन भिज्जित्वा

"महाराज! मुट्ठी में पतली चिकनी धूल भर लेने से कुछ न कुछ अङ्गुलियों के बीच से निकल कर नीचे चली ही आती है। उसी तरह....। (ख)

"महाराज! मुँह में कौर लेते हुए कुछ न कुछ छूट कर नीचे चला ही आता है। इसी तरह. ...। (ग)

"भन्ते नागसेन! अच्छा, मैं मान लेता हूँ कि चट्टान उस तरह आकर बीच में रुक गयी; किन्तु उसके टुकड़े को महापृथ्वी के समान अवश्य भगवान् का गौरव मानना चाहिये था?"

"महाराज! बारह प्रकार के लोग दूसरे का कोई गौरव (सम्मान) नहीं करते। कौन से बारह? १. रागी पुरुष अपने राग में आकर सम्मान नहीं करता, २. द्वेषी पुरुष अपने द्वेष में आकर...., ३. मोही पुरुष अपने मोह में आकर...., ४. घमण्डी पुरुष अपने घमण्ड में आकर...., ५. दुर्गुणी पुरुष अपने दुर्गुण के कारण...., ६. हठी पुरुष अपने हठ में आकर...., ७. नीच पुरुष अपने नीच स्वभाव के कारण...., ८. गप्पी पुरुष अपनी डींग में आकर.... ९. पापी पुरुष अपनी क्रूरता के कारण...., १०. सताया गया पुरुष सताये जाने के कारण...., ११. लोभी पुरुष लोभ में आकर .... और १२. संसारी पुरुष अपने अर्थ-साधन के कारण गौरव (प्रशंसा) नहीं करवाता। महाराज! यों ये बारह लोग कोई गौरव नहीं मानते! किन्तु, वह पत्थर का टुकड़ा तो चट्टानों के टक्कर खाने से छिटककर विना किसी निमित्त के यों ही उछलता हुआ भगवान् के पैर पर आ गिरा।"

"महाराज! जैसे हवा के चलने से पतली और चिकनी धूल विना किसी कारण के चारों ओर छितरा जाती है, वैसे ही वह पत्थर का टुकड़ा चट्टानों के टक्कर खाने से छिटक कर विना किसी विशेष निमित्त के यों ही उछलता हुआ भगवान् के पैर पर आ गिरा। महाराज! यदि वह पत्थर का टुकड़ा चट्टान

अनिमित्तकतदिसा येन वा तेन वा पतमाना भगवतो पादे पतिता। यदि पन, महाराज, सा पपटिका पासाणतो विसुं न भवेय्य, तं पि ते सेला पासाणपपटिकं उप्पतित्वा गण्हेय्युं। एसा पन, महाराज, पपटिका न भुम्मट्ठा न आकासट्ठा, पासाणसम्पहारवेगेन भिज्जित्वा अनिमित्तकतदिसा येन वा तेन वा पतमाना भगवतो पादे पतिता।

"यथा वा पन, महाराज, वातमण्डलिकाय उक्खित्तं पुराणपण्णं अनिमित्तकतदिसं येन वा तेन वा पतति; एवमेव खो, महाराज, एसा पपटिका पासाणसम्पहारवेगेन अनिमित्तकतदिसा येन वा तेन वा पतमाना भगवतो पादे पतिता। अपि च, महाराज, अकतञ्ञुस्स कदरियस्स देवदत्तस्स दुक्खानुभवनाय सा पपटिका भगवतो पादे पतिता" ति।

"साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी" ति।

९. अग्गसमणपञ्हो

१९. "भन्ते नागसेन, भासितं पेतं भगवता— 'आसवानं खया समणो होती' ति। पुन च भणितं—

"चतुब्भि धम्मेहि समङ्गिभूतं, तं वे नरं समणं आहु लोके' ति।

"तत्रिमे चत्तारो धम्मा— खन्ति, अप्पाहारता, रतिविप्पहानं, आकिञ्चञ्ञं। सब्बानि पनेतानि अपरिक्खीणासवस्स सकिलेसस्सेव होन्ति। यदि, भन्ते नागसेन, आसवानं खया समणो होति, तेन हि— 'चतुब्भि धम्मेहि समङ्गिभूतं तं वे नरं समणं आहु लोके' ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि चतुब्भि धम्मेहि समङ्गिभूतो समणो होति, तेन हि— 'आसवानं खया समणो होती' ति, तं पि वचनं मिच्छा। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो तवानुप्पत्तो, सो तया निब्बाहितब्बो' ति?

से न फूटता तो वह भी ऊपर ही रुका रहता। महाराज! वह टुकड़ा न तो पृथ्वी पर और न आकाश में ही ठहर पाया, किन्तु चट्टानों के टक्कर खाने से छिटक कर विना किसी निमित्त के यों ही उछल कर भगवान् के पैर पर आ गिरा!"

"महाराज! जैसे हवा का बवंडर चलने पर सूखे पत्ते इधर–उधर विना किसी कारण बिखर जाते हैं; वैसे ही वह पत्थर का टुकड़ा चट्टानों के टक्कर खाने से छिटक कर विना किसी निमित्त के यों ही उछलता हुआ भगवान् के पैर पर आ गिरा। महाराज! सच पूछें तो नीच और अकृतज्ञ देवतत्त की बुरी करनी से ही वह पत्थर का टुकड़ा भगवान् के पैर पर गिरा, जिसके फलस्वरूप उस (देवदत्त) को बहुत दुःख उठाना पड़ा।"

"ठीक है, भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं, मैं स्वीकार करता हूँ।"

९. श्रेष्ठश्रमणविषयकप्रश्न— १९. "भन्ते नागसेन! भगवान् ने कहा है— 'आस्रवों का क्षय करने से श्रमण होता है'। साथ ही साथ यह भी कहा है—

'चार धर्मों से युक्त जो है, उस मनुष्य को लोग श्रमण कहते हैं।'

"वे चार धर्म ये हैं— १. सहनशीलता, २. अल्पाहार, ३. वैराग्य, और ४. अल्प आवश्यकताओं वाला होना। ये चार धर्म तो उन में भी पाये जाते हैं, जिनके आस्रव क्षीण न होकर अभी बने ही हैं। (क) भन्ते! यदि आस्रवों के क्षय करने से श्रमण होता है तो यह बात झूठी ठहरती है कि 'इन चार धर्मों से युक्त होने वाले मनुष्य को 'श्रमण' कहते हैं'। (ख) और, यदि यह सच है कि 'इन चार धर्मों से युक्त होने

२०. ''भासितं पेतं, महाराज, भगवता— 'आसवानं खया समणो होती' ति। पुन च भणितं—'चतुब्भि धम्मेहि समङ्गिभूतं तं वे नरं समणं आहु लोके' ति। तदिदं, महाराज, वचनं तेसं तेसं पुग्गलानं गुणवसेन भणितं—'चतुब्भि धम्मेहि समङ्गिभूतं, तं वे नरं समणं आहु लोके' ति। इदं पन निरवसेसवचनं— 'आसवानं खया समणो होती' ति।

''अपि च, महाराज, ये केचि किलेसूपसमाय पटिपन्ना ते सब्बे उपादायुपादाय समणो खीणासवो अग्गमक्खायति। यथा, महाराज, यानि कानिचि जलजथलजपुप्फानि, वस्सिकं तेसं अग्गमक्खायति, अवसेसानि यानि कानिचि विविधानि पुप्फजातानि सब्बानि तानि पुप्फानि येव, उपादायुपादाय पन वस्सिकं येव पुप्फं जनस्स पत्थितं पिहयितं; एवमेव खो, महाराज, ये केचि किलेसूपसमाय पटिपन्ना ते सब्बे उपादायुपादाय समणो खीणासवो अग्गमक्खायति।

''यथा वा पन, महाराज, सब्बधञ्ञानं सालि अग्गमक्खायति। या काचि अवसेसे विविधा धञ्ञजातियो, ता सब्बा उपादायुपादाय भोजनानि सरीरयापनाय, सालि येव तेसं अग्गमक्खायति; एवमेव खो, महाराज, ये केचि किलेसूपसमाय पटिपन्ना, ते सब्बे उपादायुपादाय समणो खीणासवो अग्गमक्खायती'' ति।

''साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी'' ति।

१०. वण्णभणनपञ्हो

२१. ''भन्ते नागसेन, भासितं पेतं भगवता—'ममं वा, भिक्खवे, परे वण्णं भासेय्युं, धम्मस्स वा....पे०....सङ्घस्स वा वण्णं भासेय्युं, तत्र तुम्हेहि न आनन्दो, न सोमनस्सं, न

वाले को श्रमण कहते हैं' तो यह बात झूठी ठहरती है कि 'आस्रवों का क्षय करने से श्रमण होता है'। यह भी एक द्विविधा....?''

२०. ''महाराज! भगवान् ने दोनों बातें ही ठीक कही हैं और दोनों ही सत्य हैं। जो दूसरी बात है, वह ऐसे-वैसे साधारण लोगों के लिये कही गयी है; किन्तु पहली बात— 'आस्रव का क्षय करने से ही श्रमण होता है'— एक सामान्य रूप में कही गयी है। जितने भिक्षु अपने क्लेश को जीतने के प्रयत्न में लगे हैं, सभी को साधारणतः 'श्रमण' कहते हैं, किन्तु उनमें जिन्होंने अपने क्लेश को सर्वथा जीत लिया है वे सभी में श्रेष्ठ हैं।''

''महाराज! जैसे स्थल और जल में होने वाले सभी फूलों में जूही का फूल सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है; यद्यपि सभी फूलों को 'फूल' के नाम से पुकारते हैं; वैसे ही जितने भिक्षु अपने क्लेश को जीतने के प्रयत्न में लगे हैं, सभी को साधारण रूप से 'श्रमण' कहते हैं, किन्तु उनमें जिन्होंने अपने क्लेशों को सर्वतोभावेन जीत लिया है, वे सब में श्रेष्ठ हैं।''

''महाराज! ऐसे तो जितने अन्न हैं सभी उपयोगी, भोज्य एवं शरीर को लाभप्रद होते हैं, किन्तु उनमें चावल ही सबसे प्रधान समझा जाता है; वैसे ही, जितने भिक्षु अपने क्लेशों को जीतने में लगे हैं सभी को साधारण रूप से 'श्रमण' कहते हैं; किन्तु उनमें, जिन्होंने अपने क्लेश को सर्वथा जीत लिया है, वे सर्वश्रेष्ठ हैं।''

''ठीक है, भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं, मैं उसे स्वीकार करता हूँ।''

१०. गुणवर्णनविषयकप्रश्न— २१. ''भन्ते नागसेन! भगवान् ने कहा है— 'भिक्षुओ! यदि दूसरे लोग मेरी, धर्म की या सङ्घ की प्रशंसा करें तो तुम्हें आनन्दविभोर हो कर मुदित नहीं होना चाहिये'। तो भी शैल

चेतसो उप्पिलावितत्तं करणीयं' ति। *(दी०नि०, ब्र०जा०सुत्त)* पुन च तथागतो सेलस्स ब्राह्मणस्स यथाभुच्चे वण्णे भञ्जमाने आनन्दितो सुमनो उप्पिलावितो भिय्यो उत्तरिं सकगुणं पकित्तेसि—

'राजाहमस्मि, सेल, धम्मराजा अनुत्तरो।
धम्मेन चक्कं वत्तेमि, चक्कं अप्पटिवत्तियं' ति॥ *(सु० नि०, सेलसुत्तं)*

"यदि, भन्ते नागसेन, भगवता भणितं—'ममं वा, भिक्खवे, परे वण्णं भासेय्युं, धम्मस्स वा ....पे०....सङ्घस्स वा वण्णं भासेय्युं, तत्र तुम्हेहि न आनन्दो, न सोमनस्सं, न चेतसो उप्पिलावितत्तं करणीयं' ति, तेन हि सेलस्स ब्राह्मणस्स यथाभुच्चे वण्णे भञ्जमाने आनन्दितो सुमनो उप्पिलावितो भिय्यो उत्तरिं सकगुणं पकित्तेती ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि सेलस्स ब्राह्मणस्स यथाभुच्चे वण्णे भञ्जमाने आनन्दितो सुमनो उप्पिलावितो भिय्यो उत्तरिं सकगुणं पकित्तेसि, तेन हि 'ममं वा, भिक्खवे, परे वण्णं भासेय्युं, धम्मस्स वा ....पे०.... सङ्घस्स वा वण्णं भासेय्युं, तत्र तुम्हेहि न आनन्दो न सोमनस्सं न चेतसो उप्पिलावितत्तं करणीयं' ति, तं पि वचनं मिच्छा। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो तवानुप्पत्तो, सो तया निब्बाहितब्बो" ति?

२२. "भासितं पेतं, महाराज, भगवता—'ममं वा, भिक्खवे, परे वण्णं भासेय्युं, धम्मस्स वा ....पे०.... सङ्घस्स वा वण्णं भासेय्युं, तत्र तुम्हेहि न आनन्दो, न सोमनस्सं, न चेतसो उप्पिलावितत्तं करणीयं' ति। सेलस्स च ब्राह्मणस्स यथाभुच्चे वण्णे भञ्जमाने भिय्यो उत्तरिं सकगुणं पकित्तितं—

'राजाहमस्मि, सेल .... चक्कं अप्पटिवत्तियं ' ति।

"पठमं, महाराज, भगवता धम्मस्स सभावसरसलक्खणं सभावं अवितथं भूतं तच्छं

नामक ब्राह्मण द्वारा अपनी सच्ची प्रशंसा की जाने पर भगवान् स्वयं आनन्दविभोर हो फूल उठे थे तथा अपने अन्य-अन्य गुणों को दिखाते हुए बोले—

'मैं राज हूँ, हे शैल! अलौकिक धर्मराज, धर्म के चक्र को घुमाता हूँ, जिसे और कोई नहीं घुमा सकता।'

"(क) भन्ते! यदि भगवान् ने सचमुच कहा है—'भिक्षुओ! यदि दूसरे लोग....' तो यह बात झूठी ठहरती है कि शैल नामक ब्राह्मण द्वारा अपनी सच्ची प्रशंसा की जाने पर भगवान् स्वयं आनन्दविभोर हो गये थे....। और (ख) यदि यह ठीक है कि शैल नामक ब्राह्मण द्वारा अपनी सच्ची प्रशंसा की जाने पर भगवान् स्वयं आनन्दविभोर हो गये थे...., तो यह बात झूठी ठहरती है, कि उन्होंने कहा हो—'भिक्षुओ! यदि दूसरे लोग मेरी, धर्म की या सङ्घ की प्रशंसा करें तो तुम्हें आनन्दविभोर नहीं हो उठना चाहिये। यह भी एक द्विविधा....?"

२२. "महाराज! भगवान् ने यथार्थ कहा है—'भिक्षुओ! यदि दूसरे लोग मेरी, धर्म की या सङ्घ की प्रशंसा करें तो आनन्द से भरकर फूल नहीं उठना चाहिये।' और यह भी सच्ची बात है कि शैल नामक ब्राह्मण द्वारा अपनी सच्ची प्रशंसा की जाने पर वे स्वयं आनन्दविभोर हो कर फूल उठे थे तथा अपने और-और गुणों को दिखाते हुए बोले थे—

'मैं राजा हूँ, हे शैल! .... जिसे अन्य कोई घुमा नहीं सकता।'

"महाराज! उन दोनों में पहली बात से भगवान् ने यह दिखाया है कि उनका बताया धर्म कितना

तथत्थं परिदीपयमानेन भणितं—'ममं वा, भिक्खवे, वण्णं भासेय्युं, धम्मस्स वा .... पे० .... सङ्घस्स वा वण्णं भासेय्युं, तत्र तुम्हेहि न आनन्दो, न सोमनस्सं, न चेतसो उप्पिलावितत्तं करणीयं' ति। यं पन भगवता सेलस्स ब्राह्मणस्स यथाभुच्चे वण्णे भञ्जमाने भिय्यो उत्तरिं सकगुणं पकित्तितं—'राजाहमस्मि, सेल, धम्मराजा अनुत्तरो' ति, तं न लाभहेतु न यसहेतु न अत्तहेतु न पक्खहेतु न अन्तेवासिकम्यताय, अथ खो अनुकम्पाय कारुञ्ञेन हितवसेन—'एवं इमस्स धम्माभिसमयो भविस्सति तिण्णं च माणवकसतानं' ति, एवं भिय्यो उत्तरिं सकगुणं भणितं—'राजाहमस्मि, सेल, धम्मराजा अनुत्तरो' " ति।

"साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी" ति।

११. अहिंसानिग्गहपञ्हो

२३. "भन्ते नागसेन, भासितं पेतं भगवता—

'अहिंसाय चर लोके, पियो होहिसि मामको' ति। *(जा० ५२)*

"पुन च भणितं—'निग्गण्हे निग्गहारहं, पग्गण्हे पग्गहारहं' ति। निग्गहो नाम, भन्ते नागसेन, हत्थच्छेदो पादच्छेदो वधो बन्धनं कारणा मारणं सन्ततिविकोपनं। न एतं वचनं भगवतो युत्तं। न च भगवा अरहति एतं वचनं वत्तुं। यदि, भन्ते नागसेन, भगवता भणितं—'अहिंसाय चर लोके, पियो होहिसि मामको' ति, तेन हि 'निग्गण्हे निग्गहारहं, पग्गण्हे पग्गहारहं' ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि तथागतेन भणितं—'निग्गण्हे निग्गहारहं, पग्गण्हे पग्गहारहं' ति, तेन हि—'अहिंसाय चर लोके पियो होहिसि मामको' ति तं पि वचनं मिच्छा। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो तवानुप्पत्तो, सो तया निब्बाहितब्बो' ति?

२४. "भासितं पेतं महाराज, भगवता—'अहिंसाय चर लोके पियो होहिसि मामको'

स्वाभाविक सरल है, जिसमें उलटा-पलटा (परस्पर विरुद्ध) कुछ भी नहीं सच्चा और वास्तविक है! और जो शैल नामक ब्राह्मण को कहा था—'मैं राजा हूँ, हे शैल....' सो लाभ या यश पाने के लिये नहीं, न अपना पक्ष पुष्ट करने के लिये और न अपने शिष्यों का समूह बढ़ाने के लिये। उन्होंने उन तीन सौ विद्यार्थियों पर अनुकम्पा तथा करुणा कर उनकी भलाई के विचार से ही कि उन्हें ऐसा कहने से धर्म का बोध हो जायगा—ऐसा कहा था।"

"ठीक है, भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं, मैं स्वीकार करता हूँ।"

११. अहिंसानिग्रहविषयकप्रश्न— २३. "भन्ते नागसेन! भगवान् ने यह कहा है—

'किसी की हिंसा न करते हुए प्यार से परस्पर हिल मिलकर रहो।' *(जा० ५२)*

"साथ ही साथ यह भी कहा है—'जो दण्ड दिये जाने योग्य हैं, उन्हें दण्ड दो; जो साथ दिये जाने योग्य हैं, उनका साथ दो'। भन्ते! 'दण्ड देने' का अर्थ है— हाथ काट देना, पैर काट देना, मार डालना, जेल में डालना, यातना (कारणा), मारना-पीटना या देश-निकाला देना। भगवान् को यह बात नहीं कहनी चाहिये थी; और वे कह भी नहीं सकते। (क) भन्ते! यदि भगवान् ने कहा है कि—'किसी की हिंसा न करते हुए प्रेम से परस्पर हिलमिल कर रहो।' तो वे यह नहीं कह सकते कि 'जो दण्ड दिये जाने के योग्य हैं, उन्हें दण्ड दो....'। और (ख) यदि उन्होंने यह ठीक कहा है कि—'जो दण्ड दिये जाने योग्य हैं, उन्हें दण्ड दो....' तो यह कभी नहीं कहा होगा कि 'किसी की हिंसा न करते हुए प्यार से परस्पर प्रेमभाव से रहो।' यह भी एक दुविधा है, जो आप के सामने रखी जाती है। आप इसको स्पष्ट करें?"

ति। भणितं च—'निग्गण्हे निग्गहारहं, पग्गण्हे पग्गहारहं' ति। 'अहिंसाय चर लोके पियो होहिसि मामको' ति, सब्बेसं, महाराज, तथागतानं अनुमतं एतं, एसा अनुसिट्ठि, एसा धम्मदेसना, धम्मो हि, महाराज, अहिंसालक्खणो, सभाववचनं एतं। यं पन, महाराज, तथागतो आह—'निग्गण्हे निग्गहारहं, पग्गण्हे पग्गहारहं' ति भासा एसा। उद्धतं, महाराज, चित्तं निग्गहेतब्बं, लीनं चित्तं पग्गहेतब्बं। अकुसलं चित्तं निग्गहेतब्बं, कुसलं चित्तं पग्गहेतब्बं। अयोनिसोमनसिकारो निग्गहेतब्बो, योनिसोमनसिकारो पग्गहेतब्बो। मिच्छापटिपन्नो निग्गहेतब्बो, सम्मापटिपन्नो पग्गहेतब्बो। अनरियो निग्गहेतब्बो, अरियो पग्गहेतब्बो। चोरो निग्गहेतब्बो, अचोरो पग्गहेतब्बो'' ति।

''होतु, भन्ते नागसेन, इदानि त्वं पच्चागतोसि मम विसयं, यमहं पुच्छामि सो मे अत्थो उपगतो। चोरो पन, भन्ते नागसेन, निग्गण्हन्तेन कथं निग्गहेतब्बो'' ति? ''चोरो, महाराज, निग्गण्हन्तेन एवं निग्गहेतब्बो—परिभासनीयो परिभासितब्बो, दण्डनीयो दण्डेतब्बो, पब्बाजनीयो पब्बाजेतब्बो, बन्धनीयो बन्धितब्बो, घातनीयो घातेतब्बो'' ति। ''यं पन, भन्ते नागसेन, चोरानं घातनं तं तथागतानं अनुमतं'' ति? ''न हि, महाराजा'' ति। ''किस्स पन चोरो अनुसासनीयो अनुमतो तथागतानं'' ति? ''यो सो, महाराज, घातियति न सो तथागतानं अनुमतिया घातयिति, सयङ्कतेन सो घातियति, अपि च धम्मानुसिट्ठिया अनुसासीयति। सक्का पन, महाराज, पुरिसं अकारणं अनपराधं वीथियं चरन्तं गहेत्वा मतिमता घातयितुं'' ति? ''न सक्का, भन्ते'' ति! ''केन कारणेन, महाराजा'' ति? ''अकारकत्ता, भन्ते'' ति। ''एवमेव

---

२४. ''महाराज! भगवान् ने ऐसा ठीक कहा है— 'किसी की हिंसा न....।' और यह उचित कहा है कि 'दण्ड दिये जाने योग्य को दण्ड दो और साथ दिये जाने के योग्य का साथ दो।' 'किसी की हिंसा न करते हुए, प्यार से आपस में हिलमिल कर रहो'— ऐसा महाराज! सभी बुद्धों का यही उपदेश है, यही धर्मदेशना है। अहिंसा तो धर्म का प्रधान लक्षण है। भगवान् के ये स्वाभाविक वचन हैं। महाराज! और जो उन्होंने कहा है—'जो दण्ड दिये जाने के योग्य ....।' उसका तात्पर्य कुछ दूसरा ही है। महाराज! उसका तात्पर्य यह है—'उद्धत चित्त को दबाना चाहिये, शान्त हो गये चित्त को वैसा ही बनाये रखना चाहिये; बुरे विचारों को दबाना चाहिये, अच्छे विचारों को बनाये रखना चाहिये; अनुचित मन को दबाना चाहिये, ठीक मन को बनाये रखना चाहिये; झूठे सिद्धान्तों को दबाना चाहिये, सच्चे धर्म को रखना चाहिये; बुरों को दबाना चाहिये, भलों को बनाये रखना चाहिये; चोर को दबाना चाहिये, साधु को बनाये रखना चाहिये।''

''भन्ते नागसेन! हाँ, अब आप मेरी बात से पकड़े गये। मैं जो पूछना चाहता था वह अर्थ निकल आया। भन्ते! यह ठीक है कि चोर को दबाना चाहिये किन्तु कैसे?'' ''महाराज! चोर को इस तरह दबाना चाहिये—यदि उसे डाँट–डपट करना उचित हो तो डाँट–डपट करनी चाहिये, दण्ड देना उचित हो तो दण्ड देना चाहिये, देश से निकाल देना उचित हो तो देश से निकाल देना चाहिये और यदि फाँसी दे देना उचित हो तो फाँसी दे देनी चाहिये।'' ''भन्ते! जो चोरों को फाँसी दे देने की बात है, वह क्या बुद्धधर्म के अनुकूल है?'' ''नहीं, महाराज! '' ''तो बुद्धधर्म के अनुकूल चोरों को कैसे दबाना चाहिये?'' ''महाराज! जो चोरों को फाँसी दी जाती हैं वह बुद्ध–धर्म के आदेश करने से नहीं, बल्कि उनके अपने कर्म से। महाराज! क्या धर्म ऐसा आदेश करता है कि कोई बुद्धिमान् किसी निर्दोष आदमी को अकारण सड़क पर जाते हुए पकड़ कर जान से मार दे?'' ''नहीं, भन्ते!'' ''क्यों नहीं?'' ''भन्ते! क्योंकि उसने कोई अपराध नहीं किया है।'' ''महाराज! इसी तरह, बुद्धधर्म के आदेश करने से चोरों को फाँसी नहीं

खो, महाराज, न चोरो तथागतानं अनुमतिया हञ्ञति। सयङ्कतेन सो हञ्ञति, किं पनेत्थ अनुसासको किञ्चि दोसं आपज्जती'' ति ?''न हि, भन्ते'' ति।''तेन हि, महाराज, तथागतानं अनुसिट्ठि सम्मानुसिट्ठि होती'' ति।

''साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी'' ति।

१२. भिक्खुपणामितपञ्हो

२५. ''भन्ते नागसेन, भासितं पेतं भगवता—'अक्कोधनो विगतखिलोहमस्मी' ति। (सु० नि०, ध० सु०) पुन च तथागतो थेरे सारिपुत्तमोग्गलाने सपरिसे पणामेसि। (म० नि०, चा० सु०) किन्नु खो, भन्ते नागसेन, तथागतो कुपितो परिसं पणामेसि, उदाहु तुट्ठो पणामेसि—'एतं ताव जानाहि इमं नामा' ति। यदि, भन्ते नागसेन, कुपितो परिसं पणामेसि, तेन हि तथागतस्स कोधो अप्पटिवत्तितो। यदि तुट्ठो पणामेसि, तेन हि अवत्थुस्मिं अजानन्तेन पणामिता। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो तवानुप्पत्तो, सो तया निब्बाहितब्बो'' ति ?

२६. ''भासितं पेतं, महाराज, भगवता—'अक्कोधनो विगतखिलोहमस्मि'। पणामिता च थेरा सारिपुत्तमोग्गलाना सपरिसा। तं च पन न कोपेन। इध, महाराज, कोचिदेव पुरिसो महापथविया मूले वा खाणुके वा पासाणे वा कठले वा विसमे वा भूमिभागे खलित्वा पतति, अपि नु खो, महाराज, महापथवी कुपिता तं पातेती'' ति ? ''न हि, भन्ते। नत्थि महापथविया कोपो वा पसादो वा, अनुनयप्पटिघविप्पमुत्ता महापथवी, सयमेव सो अलसो खलित्वा पतितो'' ति।''एवमेव खो, महाराज, नत्थि तथागतानं कोपो वा पसादो वा, अनुनयप्पटिघविप्पमुत्ता तथागतो अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा, अथ खो, सयङ्कतेनेव ते अत्तनो अपराधेन पणामिता।''

''इध पन, महाराज, महासमुद्दो न मतेन कुणपेन संवसति, यं होति महासमुद्दे मतं

दी जाती, अपितु उनके अपने कर्म से! तो क्या भगवान् को इससे कोई दोष लग सकता है?'' ''नहीं, भन्ते!'' ''इसलिये, महाराज! बुद्धों के उपदेश सदा उपयुक्त ही होते हैं?''

''आपने ठीक कहा है, भन्ते नागसेन! मैं स्वीकार करता हूँ।''

१२. स्थविरों का निष्कासन क्यों?— २५. ''भन्ते नागसेन! भगवान् ने कहा है—'मेरे मन में न कोई क्रोध है और न कोई ईर्ष्या।' फिर भी, उन्होंने स्थविर शारिपुत्र और मोग्गल्लान को उनकी सारी मण्डली के साथ अपनी कुटिया से निकाल दिया था। (क) भन्ते! क्या भगवान् ने क्रोध में आकर या सन्तोष से उन्हें निकाला था? इसे बतावें! (क) भन्ते! यदि उन्होंने क्रोध में आकर उनको निकाला था तो यह बात सिद्ध होती है कि बुद्ध भी क्रोध से नहीं बचे। (ख) और यदि सन्तोष से उनको निकाला, तो इसका कुछ कारण ही नहीं था; यों ही विना समझे-बूझे निकाल दिया। यह भी एक द्विविधा....?''

पृथ्वी की उपमा—२६. ''महाराज! भगवान् ने क्रोध में आकर उन्हें नहीं निकाला था। महाराज! जब कोई जड़ से, ठूँठ से, पत्थर से, लकड़ी से या ऊँची नीची जमीन में ठोकर खाकर गिर पड़ता है तो क्या महापृथ्वी ही क्रोध में आकर उसे गिरा देती है?'' ''नहीं, भन्ते ! पृथ्वी को न तो क्रोध आता है और न प्रसन्नता, उसे न तो किसी से प्रेम है और न वैर। अपनी ही लापरवाही से वह ठोकर खाकर गिर पड़ता है।'' ''महाराज! इसी तरह, भगवान् को न तो क्रोध आता है, न प्रसन्नता होती है। भगवान् प्रेम या वैर के प्रश्न से छूट गये हैं। उनके सभी क्लेश नष्ट हो चुके हैं। वे सम्यक्सम्बुद्ध हो चुके हैं। वे भिक्षु लोग तो अपने कर्म से ही निकाल बाहर किये गये थे।''

कुणपं तं खिप्पमेव निच्छुभति, थलं उस्सादेति। अपि नु खो, महाराज, महासमुद्दो कुपितो तं कुणपं निच्छुभती'' ति?''नहि, भन्ते, नत्थि महासमुद्दस्स कोपो वा पसादो वा, अनुनयप्पटिघविप्पमुत्तो महासमुद्दो'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, नत्थि तथागतानं कोधो वा पसादो वा, अनुनयप्पटिघविप्पमुत्ता तथागता अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा, अथ खो सयङ्कतेनेव ते अत्तनो अपराधेन पणामिता।

''यथा, महाराज, पथविया खलितो पतीयति, एवं जिनसासनवरे खलितो पणामीयति। यथा, महाराज, समुद्दे मतं कुणपं निच्छुभीयति, एवं जिनसासनवरे खलितो पणामीयति। यं पन ते, महाराज, तथागतो पणामेति, तेसं अत्थकामो हितकामो सुखकामो विसुद्धिकामो— 'एवं इमे जातिजराब्याधिमरणेहि परिमुच्चिस्सन्ती' ति पणामेसी'' ति।

''साधु, भन्ते नागसेन, एवमेव तथा सम्पटिच्छामी'' ति।

(इमस्मिं वग्गे द्वादस पञ्हा) *ततियो पणामितवग्गो निट्ठितो॥*

४. सब्बञ्ञुतञाणवग्गो

१. इद्धिकम्मविपाकपञ्हो

१. ''भन्ते नागसेन, भासितं पेतं भगवता—'एतदग्गं, भिक्खवे, मम सावकानं भिक्खूनं इद्धिमन्तानं, यदिदं महामोग्गलानो' ति। *(अं० नि०, १-१४-१)* पुन च किर सो लगुळेहि परिपोथितो भिन्नसीसो सञ्चुण्णितट्ठिमंसधमनिमज्जपरिगत्तो परिनिब्बुतो। यदि, भन्ते नागसेन,

---

समुद्र की उपमा—''महाराज! जैसे महासमुद्र अपने में किसी शव को नहीं रहने देता। यदि कोई शव बीच समुद्र में पड़ जाता है तो वह उसे शीघ्र ही तट पर लाकर भूमि पर छोड़ देता है। महाराज! तो क्या समुद्र क्रोध में आकर ऐसा करता है?'' ''नहीं, भन्ते! समुद्र को न क्रोध आता है और न प्रसन्नता होती है, उसे न किसी से प्रेम है न ही किसी से वैर।'' ''महाराज! इसी तरह, भगवान् को न तो क्रोध होता है और न प्रसन्नता होती है। भगवान् प्रेम या वैर के प्रश्न ऊपर उठ गये हैं। उनके सभी क्लेश नष्ट हो चुके हैं। वे सम्यक्सम्बुद्ध हो चुके हैं। वे भिक्षु अपने ही प्रमाद के कारण निकाल बाहर किये गये थे।

''महाराज! जैसे ठोकर लगने से कोई गिर पड़ता है; वैसे ही बुद्धशासन मे कुछ भूल–चूक होने से वह निकाल दिया जाता है। महाराज! जैसे महासमुद्र अपने बीच मे पड़े शव को बाहर फेंक देता है; वैसे ही बुद्धशासन में कुछ भूल–चूक करने से वह निकाल दिया जाता है। महाराज! जो भगवान् ने उन भिक्षुओं को निकाल दिया था; वह उन्हीं का हित करने के विचार से, उन्हीं के हित एवं सुख के लिये, उन्हीं को पवित्र बनाने के लिये। ऐसा करने से वे जन्म लेने, बूढ़े होने, बीमार पड़ने और मर जाने से मुक्त हो जायँगे—यही विचार कर भगवान् ने उन्हें निकाल दिया था।''

''ठीक है, भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं, मैं स्वीकार करता हूँ॥''

(इस वर्ग में बारह प्रश्न है)

तीसरा प्रणामितवर्ग समाप्त॥

४. सर्वज्ञताज्ञानवर्ग

१. ऋद्धिकर्मविपाकप्रश्न—१. ''भन्ते नागसेन! भगवान् ने कहा है—'भिक्षुओ! मेरे ऋद्धिमान् भिक्षु श्रावकों में महामोग्गल्लान सर्वश्रेष्ठ है।' इस पर भी, वे (चोरों द्वारा) निर्दयतापूर्वक डण्डों से पीटे जाकर सिर फूट जाने, हड्डियों के चूर–चूर हो जाने तथा मांस और नसों के पिस जाने से परिनिर्वाण को प्राप्त हुए थे। (क)

थेरो महामोग्गलानो इद्धिया कोटिं गतो, हि—'लगुळेहि परिपोथितो परिनिब्बुतो' ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि लगुळेहि परिपोथितो परिनिब्बुतो, तेन हि—'इद्धिया कोटिं गतो' ति तं पि वचनं मिच्छा। किं नु न समत्तो इद्धिया अत्तनो उपघातं अपनयितुं, सदेवकस्सापि लोकस्स पटिसरणं भवितुं अरहो' ति। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो तवानुप्पत्तो, सो तया निब्बाहितब्बो'' ति?

२. ''भासितं पेतं, महाराज, भगवता—'एतदग्गं, भिक्खवे, मम सावकानं भिक्खूनं इद्धिमन्तानं, यदिदं महामोग्गलानो' ति। आयस्मा च महामोग्गलानो लगुळहतो परिनिब्बुतो तं च कम्माधिग्गहितेना'' ति।

''ननु, भन्ते नागसेन, इद्धिमतो इद्धिविसयो पि कम्मविपाको पि द्वे अचिन्तिया, अचिन्तियेन अचिन्तियं अपनयितब्बं। यथा नाम, भन्ते, केचि फलकामा कपित्थेन कपित्थं पोथेन्ति, अम्बेन अम्बं पोथेन्ति; एवमेव खो, भन्ते नागसेन, अचिन्तियेन अचिन्तियं पोथयित्वा अपनेतब्बं'' ति।

''अचिन्तियानं पि, महाराज, एकं अधिमत्तं बलवतरं। यथा, महाराज, महिया राजानो होन्ति समजच्चा, समजच्चानं पि तेसं एको सब्बे अभिभवित्वा आणं पवत्तेति; एवमेव खो, महाराज, तेसं अचिन्तियानं कम्मविपाकं येव अधिमत्तं बलवतरं, कम्मविपाकं येव सब्बे अतिभविय आणं पवत्तेति, कम्माधिग्गहितस्स अवसेसा किरिया ओकासं न लभन्ति।

''इध पन, महाराज, कोचि पुरिसो किस्मिञ्चिदेव पकरणे अपरज्झति, न तस्स माता

भन्ते! यदि महामोग्गल्लान वस्तुतः अत्यधिक ऋद्धिमान् भिक्षु थे तो यह हो ही नहीं सकता कि इस तरह डण्डों से पीटे जाकर उनका परिनिर्वाण होता। (ख) और यदि ठीक इस तरह डण्डों से पीटे जाकर उनका परिनिर्वाण हुआ था तो यह नहीं हो सकता कि वे बहुत बड़े ऋद्धिमान् भिक्षु थे. ऋद्धिबल से तो कोई पुरुष देवताओं और मनुष्यों के साथ सारे संसार को शरण दे सकता है, तो भला वे ऋद्धिबल से अपनी ही हत्या भी क्यों नहीं रोक पाये? यह भी एक द्विविधा है....?''

२. ''महाराज! भगवान् ने ठीक कहा है—'भिक्षुओ! मेरे ऋद्धिमान् भिक्षु श्रावकों में महामोग्गल्लान सबसे श्रेष्ठ हैं'। और यह भी सत्य है कि वे डण्डों से पीटे जाकर सिर फूट जाने, हड्डियों के चूर–चूर हो जाने तथा मांस और नसों के पिस जाने से परिनिर्वाण को प्राप्त हुए थे। किन्तु, यह उनके पूर्व कर्मों के फल से हुआ था।''

''भन्ते नागसेन! ऋद्धिमान् पुरुष के ऋद्धिबल और कर्मफल दोनों तो अचिन्तनीय हैं। तब, अचिन्तनीय से अचिन्तनीय को क्यों नहीं रोका जा सका? भन्ते! जैसे, एक कपित्थ फल को फेंककर वृक्ष से दूसरा (फल) भी गिराया जा सकता है, एक आम को फेंककर दूसरा आम भी गिराया जा सकता है; वैसे ही एक अचिन्तनीय के बल से दूसरा अचिन्तनीय क्यों नहीं रोका जा सका?''

''महाराज! जैसे अचिन्तनीय विषयों में भी एक दूसरों से अधिक बल वाला होता है। संसार के सभी राजा 'राजा' कहलाते हैं, किन्तु उनमें एक सबसे श्रेष्ठ होता है; जो कि सभी को अपनी आज्ञा में ले आता है। उसी तरह, सभी अचिन्तनीय विषयों के एक होने पर भी उनमें कर्मफल सब से अधिक प्रभाव रखता है; जो कि दूसरों को दबा कर स्वयं ऊँचा हो जाता है। कर्मफल पुष्ट रहने से अन्य कर्मों का कुछ वश नहीं चलता। (क)

''महाराज! जैसे एक आदमी कुछ अपराध कर बैठता है। तो, न उसके माता–पिता या भाई–

वा पिता वा भगिनी वा भातरो वा सखिसहायका वा तायन्ति; अथ खो राजा येव तत्थ अभिभविय आणं पवत्तेति, किं तत्थ कारणं? अपराधिकता; एवमेव खो, महाराज, तेसं अचिन्तियानं कम्मविपाकं येव अधिमत्तं बलवतरं, कम्मविपाकं येव सब्बे अभिभविय आणं पवत्तेति, कम्माधिग्गहितस्स अवसेसा किरिया ओकासं न लभन्ति।

"यथा वा पन, महाराज, महिया दवडाहे समुट्ठिते घटसहस्सं पि उदकं न सक्कोति निब्बापेतुं, अथ खो अग्गि येव तत्थ अभिभविय आणं पवत्तेति, किं तत्थ कारणं? बलवता तेजस्स; एवमेव खो, महाराज, तेसं अचिन्तियानं कम्मविपाकं येव अधिमत्तं बलवतरं, कम्मविपाकं येव सब्बे अभिभविय आणं पवत्तेति, कम्माधिग्गहितस्स अवसेसा किरिया ओकासं न लभन्ति। तस्मा, महाराज, आयस्मतो महामोग्गल्लानस्स कम्माधिग्गहितस्स लगुळेहि पोथियमानस्स इद्धिया समन्नाहारो नाहोसी" ति।

"साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी" ति।

२. धम्मविनयपटिच्छन्नापटिच्छन्नपञ्हो

३. "भन्ते नागसेन, भासितं पेतं भगवता—'तथागतप्पवेदितो, भिक्खवे, धम्मविनयो विवटो विरोचति नो पटिच्छन्नो' ति। (अं० नि०, ३-१२४) पुन च 'पातिमोक्खुद्देसो केवलं च विनयपिटकं पिहितं पटिच्छन्नं'। (वि० पि०, महावग्ग) यदि, भन्ते नागसेन, जिनसासने युत्तं वा पत्तं वा समयं लभेथ, विनयपण्णत्ति विवटा सोभेय्य। केन कारणेन? केवलं तत्थ सिक्खा संयमो नियमो सीलगुणआचारपण्णत्ति अत्थरसो धम्मरसो विमुत्तिरसो। यदि, भन्ते नागसेन, भगवता भणितं—'तथागतप्पवेदितो, भिक्खवे, धम्मविनयो विवटो विरोचति नो पटिच्छन्नो' ति, तेन हि—'पातिमोक्खुद्देसो केवलं च विनयपटिकं पिहितं पटिच्छन्नं' ति यं

बहन या बन्धु-बान्धव उसे बचा सकते हैं। केवल राजा ही उसका कुछ न्याय कर सकता है.... इसका कारण है?—उस आदमी का अपराधी बन जाना। महाराज! उसी तरह सभी अचिन्तनीय विषयों के एक होने पर भी उनमें कर्मफल सबसे प्रभाव रखता है, जो दूसरों को दबाकर स्वयं ऊँचा हो जाता है। कर्मफल पुष्ट रहने से दूसरे कर्मों की कुछ नहीं चलती। (ख)

"महाराज! जैसे जंगल में अग्नि लग जाने पर वह हजार घड़े जल से भी नहीं बुझायी जा सकती। कुछ भी हो अग्नि बढ़ती ही जाती है। इसका क्या कारण है?" "भन्ते! अग्नि का अधिक तेज होना।" "महाराज! इसी तरह, सभी अचिन्तनीय....। महाराज! इसलिये अपने कर्म-फल के कारण डण्डों से पीटे जाने पर भी महामोग्गल्लान का ऋद्धिबल निरर्थक रहा।"

"ठीक है, भन्ते नागसेन! ऐसी ही बात है। मैं इसे मान लेता हूँ।"

२. धर्मविनयप्रतिच्छन्नताविषयकप्रश्न—३. "भन्ते नागसेन! भगवान् ने कहा—'भिक्षुओ! बुद्धोपदिष्ट धर्म और विनय प्रकट होने पर ही चमकते हैं, छिपे रहने पर नहीं'। फिर भी प्रातिमोक्ष का उपदेश छिपाकर ही किया जाता है; समग्र विनयपिटक को छिपाकर ही रखा जाता है। भन्ते नागसेन! यदि बुद्धधर्म के युक्त और अनुकूल होकर देखा जाय तो विनय-प्रज्ञप्ति को खोल देना ही अच्छा होगा? वह क्यों? क्योंकि उसमें केवल शिक्षा, संयम, नियम, शील, अच्छे गुण तथा पवित्र आचार से सम्बन्ध में ही बातें कही गयी हैं, जो जँचने वाली हैं, धर्म सिखाने वाली हैं और मुक्ति की ओर ले जाने वाली हैं। (क) भन्ते ! यदि भगवान् ने यह यथार्थ कहा है—'भिक्षुओ! भगवान् के धर्म और विनय खुलने ही पर चमकते हैं, छिपाये

वचनं तं मिच्छा। यदि पातिमोक्खुद्देसो केवलं च विनयपिटकं पिहितं पटिच्छन्नं, तेन हि—'तथागतप्पवेदितो, भिक्खवे, धम्मविनयो विवटो विरोचति नो पटिच्छन्नो' ति तं पि वचनं मिच्छा। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो तवानुप्पत्तो, सो तया निब्बाहितब्बो'' ति?

४. ''भासितं पेतं, महाराज, भगवता—'तथागतप्पवेदितो, भिक्खवे, धम्मविनयो विवटो विरोचति नो पटिच्छन्नो' ति। पुन च पातिमोक्खुद्देसो केवलं च विनयपिटकं पिहितं पटिच्छन्नं। तं च पन न सब्बेसं, सीमं कत्वा पिहितं।

''तिविधेन, महाराज, भगवता पातिमोक्खुद्देसो सीमं कत्वा पिहितो—पुब्बकानं तथागतानं वंसवसेन पातिमोक्खुद्देसो सीमं कत्वा पिहितो, धमस्स गरुकत्ता पिहितो, भिक्खुभूमिया गरुकत्ता पिहितो।

''कथं पुब्बकानं तथागतानं वंसवसेन पातिमोक्खुद्देसो सीमं कत्वा पिहितो? वंसो एसो, महाराज, सब्बेसं पुब्बकानं तथागतानं, यदिदं भिक्खुमज्झे पातिमोक्खुद्देसो, अवसेसानं पिहितो। यथा, महाराज, खत्तियानं खत्तियमाया खत्तियेसु येव चरति, एवमेतं खत्तियानं लोकस्स पवेणि अवसेसानं पिहिता। एवमेव खो, महाराज, वंसो एसो सब्बेसं पुब्बकानं तथागतानं यदिदं भिक्खुमज्झे पातिमोक्खुद्देसो, अवसेसानं पिहितो।

''यथा वा पन, महाराज, महिया गणा वत्तन्ति, सेय्यथीदं—मल्ला, अतोणा, पब्बता, धम्मगिरिया, ब्रह्मगिरिया, नटका, नच्चका, लङ्घका, पिसाचा, मणिभद्दा, पुण्णभद्दा, चन्दिमसुरिया,

---

जाने पर नहीं' तो प्रातिमोक्ष के उपदेश तथा विनयपिटक को छिपाना मिथ्या है? (ख) और यदि प्रातिमोक्ष के उपदेश तथा विनयपिटक को छिपाना ठीक है तो भगवान् की कही हुई यह बात झूठी ठहरती है—'भिक्षुओ! बुद्ध के धर्म और विनय खुलने ही पर चमकते हैं, छिपाये जाने पर नहीं।' यह भी एक द्विविधा....?"

४. "महाराज! भगवान् ने यह ठीक कहा है—'भिक्षुओ! बुद्ध के धर्म और विनय खुलने ही पर चमकते हैं, छिपाये जाने पर नहीं।' और, यह भी ठीक है कि प्रातिमोक्ष के उपदेश छिपाकर ही किये जाने चाहियें तथा विनयपिटक को भी छिपाकर रखना चाहिये। किन्तु वे सभी से नहीं, अपितु कुछ विशेष लोगों से ही छिपाये जाते हैं।

विनय–शिक्षापदों को छिपा कर रखे जाने का कारण—"महाराज! भगवान् ने तीन कारणों से उन से छिपाकर प्रातिमोक्ष उपदेश देने की अनुमति दी है—क्योंकि (१) पूर्वबुद्धों से ऐसी परिपाटी चलती आने से, (२) धर्म के गौरव और (३) भिक्षु–पद के गौरव के विचार से।

"पूर्व के बुद्धों कैसी परिपाटी चली आ रही है, जिसके कारण प्रातिमोक्ष के उपदेश कुछ लोगों को ही छिपाकर करने चाहिये? महाराज! पूर्वबुद्धों से ऐसी परिपाटी चली आ रही है कि प्रातिमोक्ष के उपदेश भिक्षुओं को आपस में ही छिपाकर करने चाहिये, दूसरों के सामने नहीं। महाराज! क्षत्रिय की माया क्षत्रिय में ही चलती है। यद्यपि संसार भर के क्षत्रिय में वह सामान्यतः होती है, किन्तु उसे कोई दूसरा नहीं जान पाता। इसी तरह, प्रथम बुद्ध से ऐसी परिपाटी चली आ रही है कि प्रातिमोक्ष के उपदेश भिक्षुओं को आपस में ही छिपाकर करने चाहिये, दूसरों के सामने नहीं।"

बुद्धकाल के सम्प्रदाय— "महाराज! संसार में बहुत से सम्प्रदाय हैं; जैसे—मल्ल, पर्वत, धर्मगिरि, ब्रह्मगिरि, नटक, नृत्यक, लङ्घक, पिशाच, मणिभद्र, पूर्णभद्र, चन्द्र, सूर्य, श्रीदेवता, कालिदेवता, शैव, वासुदेव, धनिक, असिपाश, भद्रिपुत्र। इन सभी का अपना कुछ न कुछ रहस्य रहता ही है, जिसे वे लोग

सिरिदेवता, कालिदेवता, सिवा, वसुदेवा, घनिका, असिपासा, भद्दिपुत्ता ति; तेसं तेसं रहस्सं तेसु तेसु गणेसुयेव चरति, अवसेसानं पिहितं; एवमेव खो, महाराज, वंसो एसो सब्बेसं पुब्बकानं तथागतानं, यदिदं भिक्खुमज्झे पातिमोक्खुद्देसो, अवसेसानं पिहितो। एवं पुब्बकानं वंसवसेन पातिमोक्खुद्देसो सीमं कत्वा पिहितो। (१)

"कथं धम्मस्स गरुकत्ता पातिमोक्खुद्देसो सीमं कत्वा पिहितो? धम्मो, महाराज, गरुको भारियो, तत्थ सम्मत्तकारी अञ्ञं आराधेति, तं तत्थ परम्परासम्मत्तकारिताय पापुणाति। न तं तत्थ परम्परासम्मतकारिताय पापुणाति—'मा चायं सारधम्मो वरधम्मो असम्मत्तकारीनं हत्थगतो ओञातो अवञातो हीळितो खीळितो गरहितो भवतु, मा चायं सारधम्मो वरधम्मो दुज्जनगतो ओञातो अवञ्ञातो हीळितो खीळितो गरहितो भवतू' ति। एवं धम्मस्स गरुकत्ता पातिमोक्खुद्देसो सीमं कत्वा पिहितो।

"यथा, महाराज, सारवरपवरअभिजातजातिमन्तरत्तलोहितचन्दनं नाम सवरपुरमनुगतं ओञातं अवञ्ञातं हीळितं खीळितं गरहितं भवति; एवमेव खो, महाराज, 'मा चायं सारधम्मो वरधम्मो परम्पराअसम्मत्तकारीनं हत्थगतो ओञातो अवञ्ञातो हीळितो खीळितो गरहितो भवतु, मा चायं सारधम्मो वरधम्मो दुज्जनगतो ओञातो अवञ्ञातो हीळितो खीळितो गरहितो भवतू' ति। एवं धम्मस्स गरुकत्ता पातिमोक्खुद्देसो सीमं कत्वा पिहितो। (२)

"कथं भिक्खुभूमिया गरुकत्ता पातिमोक्खुद्देसो सीमं कत्वा पिहितो? भिक्खुभावो खो, महाराज, लोके अतुलितो अप्पमाणो अनग्घियो, न सक्का केनचि अग्घापेतुं, तुलेतुं, परिमेतुं, 'मायं एवरूपे भिक्खुभावे ठितो लोकेन समसमो भवतू' ति भिक्खूनं येव अन्तरे

आपस में ही छिपाकर रखते हैं। दूसरों को ज्ञात नहीं होने देते। इसी तरह महाराज! प्रथम बुद्ध से ऐसी परिपाटी चली आ रही है कि प्रातिमोक्ष के उपदेश भिक्षुओं को आपस में ही छिपाकर करने चाहियें, दूसरों के सामने नहीं। (१)

"धर्म के गौरव से प्रातिमोक्ष के उपदेशों को क्यों आपस में छिपा कर करना चाहिये? महाराज! धर्म बहुत गौरवपूर्ण भारी है। कोई धर्मज्ञाता (जानने वाला) किसी दूसरे को समझावे भी तो वह यदि उसके आगे और पीछे न जानता हो तो उसे समझ नहीं सकता। वही इन बातों को ठीक–ठीक समझ सकता है, जो आगे और पीछे की बातों को जानता हो। कहीं यह धर्म इतना सार–युक्त और ऊँचा होकर भी आगे और पीछे न जानने वालों के हाथ में पड़कर निन्दा और अपमान का भागी न हो जाय; कहीं लोग इसकी हँसी न उड़ाने लगें; कहीं लोग बुरा और नीचा न बताने लग जाँय; इस विचार से प्रातिमोक्ष के उपदेश भिक्षुओं को परस्पर छिपाकर करने चाहिये, दूसरों के सामने नहीं।"

"महाराज! जैसे श्रेष्ठ, उत्तम, अप्राप्य, सुन्दर और अच्छी जाति का लाल चन्दन भी चाण्डालों के गाँव में पड़कर निन्दित और अपमानित होता है; वे इसकी हँसी उड़ाते हैं, इसे तुच्छ और बेकार समझते हैं; महाराज! इसी तरह, यह धर्म इतना सार–युक्त और ऊँचा होकर भी ....पूर्ववत्.... प्रातिमोक्ष के उपदेश भिक्षुओं को आपस में ही छिपाकर करने चाहियें, दूसरों के सामने नहीं। (२)

"भिक्षुपद के गौरव के विचार से प्रातिमोक्ष के उपदेशों को क्यों आपस में छिपा कर करना चाहिये? महाराज! भिक्षु–भाव, अतुल्य, अत्यन्त श्रेष्ठ और अमूल्य है। कोई भी न तो इसको तोल सकता है, न इसका अनुमान लगा सकता है और न इसका मूल्य लगा सकता है। 'कहीं यह भिक्षुभाव अन्य

पातिमोक्खुद्देसो चरति। यथा, महाराज, लोके वरपवरभण्डं वत्थं वा अत्थरणं वा गजतुरङ्गरथ-सुवण्णरजतमणिमुत्ताइत्थिरतनादीनि वा निज्जितकम्मसूरा वा, सब्बे ते राजानमुपगच्छन्ति; एवमेव खो, महाराज, यावता लोके सुगतागमपरियत्तिआचारसंयमसीलसंवरगुणा सब्बे ते भिक्खूसङ्घमुपगता भवन्ति। एवं भिक्खुभूमिया गरुकत्ता पातिमोक्खुद्देसो सीमं कत्वा पिहितो'' ति। (३)

''साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी'' ति।

३. मुसावादगरुलहुभावपञ्हो

५. ''भन्ते नागसेन, भासितं पेतं भगवता—'सम्पजानमुसावादे पाराजिको होती' ति। पुन च भणितं—'सम्पजानमुसावादे लहुकं आपत्तिं आपज्जति एकस्स सन्तिके देसनावत्थुकं' ति। भन्ते नागसेन, को पनेत्थ विसेसो, किं कारणं यञ्चेकेन मुसावादेन उच्छिज्जति, यञ्चेकेन मुसावादेन सतेकिच्छो होति? यदि, भन्ते नागसेन, भगवता भणितं—'सम्पजानमुसावादे पाराजिको होती' ति, तेन हि—'सम्पजानमुसावादे लहुकं आपत्तिं आपज्जति एकस्स सन्तिके देसनावत्थुकं' ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि तथागतेन भणितं—'सम्पजानमुसावादे लहुकं आपत्तिं आपज्जति एकस्स सन्तिके देसनावत्थुकं' ति, तेन हि 'सम्पजानमुसावादे पाराजिको होती' ति तं पि वचनं मिच्छा। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो तवानुप्पत्तो, सो तया निब्बाहितब्बो'' ति?

६. ''भासितं पेतं, महाराज, भगवता–'सम्पजानमुसावादे पाराजिको होती' ति। भणितं

लोगों की समानता में न चला जाय!' इस विचार से प्रातिमोक्ष के उपदेश भिक्षुओं को आपस में ही छिपाकर करने चाहियें, दूसरों के सामने नहीं। महाराज! जैसे सब से अच्छी चीजें—कपड़े, बिछौने, हाथी, घोड़े, रथ, सोना–चाँदी, मणि, मोती, स्त्री, रत्न इत्यादि या सब से मँहगी सुरा राजाओं को मिल पाती है; महाराज! इसी तरह, बुद्ध की बतायी जितनी शिक्षायें (आचार, संयम, शील, संवर इत्यादि सदगुण) है—सभी भिक्षुसङ्घ को ही प्राप्त होती हैं। इस तरह, भिक्षु–पद के गौरव के विचार से प्रातिमोक्ष का उपदेश भिक्षुओं को आपस में छिपाकर ही करना अच्छा है, दूसरों के सामने नहीं।" (३)

"ठीक है, भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं, मुझे स्वीकार है।"

३. मिथ्या–भाषण का गुरुत्व–लघुत्व—५. "भन्ते नागसेन! भगवान् ने कहा है–'जान बूझकर झूठ बोलना पाराजिक दोष है'। (जिस दोष के करने से भिक्षु भिक्षुभाव से पतित होता है) फिर ऐसा भी कहा है–'जान बूझ कर झूठ बोलने में कम दोष लगता है, जिसे किसी दूसरे भिक्षु के सामने स्वीकार कर लेना चाहिये।' भन्ते नागसेन! यहाँ कौन सी बात है, क्या कारण है कि एक प्रकार का झूठ बोलने से तो सङ्घ से निकाल दिया जाता है और दूसरे प्रकार का झूठ बोलने से उसको क्षमा मिल जाती है! (क) भन्ते नागसेन! यदि भगवान् ने वस्तुतः कहा है–'जान बूझकर झूठ बोलना पाराजिक दोष है तो उनका यह कहना मिथ्या सिद्ध होता है कि 'जान बूझकर झूठ बोलने में कम दोष लगता है, जिसे किसी दूसरे भिक्षु के सामने स्वीकार कर लेना चाहिये'। (ख) और, यदि यह ठीक बात है कि 'जान बूझ कर झूठ बोलने में कम दोष लगता है, जिसे किसी दूसरे भिक्षु के सामने स्वीकार कर लेना चाहिये', तो यह बात झूठी ठहरती है कि 'जान बूझ कर झूठ बोलना पाराजिक दोष है'। यह भी एक द्विविधा....?"

६. "महाराज! भगवान् ने उचित ही कहा है–'जान बूझ कर झूठ बोलना पाराजिक दोष है'।

च—'सम्पजानमुसावादे लहुकं आपत्तिं आपज्जति एकस्स सन्तिके देसनावत्थुकं' ति। तं च पन वत्थुवसेन गरुकलहुकं होति। तं किं मञ्ञसि, महाराज, इध कोचि पुरिसो परस्स पाणिना पहारं ददेय्य, तस्स तुम्हे किं दण्डं धारेथा'' ति? ''यदि सो, भन्ते, आह—'नक्खमामी' ति, तस्स मयं अक्खममाने कहापणं हरापेमा'' ति। ''इध पन, महाराज, सो येव पुरिसो तव पाणिना पहारं ददेय्य, तस्स पन को दण्डो'' ति? ''हत्थं पिस्स छेदापेय्याम, पादं पि छेदापेय्याम, यावसीसं कळीरच्छेज्जं छेदापेय्याम, सब्बं पि तं गेहं विलुम्पापेय्याम, उभतोपस्से याव सत्तमं कुलं समुग्घातापेय्यामा'' ति। ''को पनेत्थ, महाराज, विसेसो, किंकारणं यं एकस्स पाणिप्पहारे सुखुमो कहापणो दण्डो, यं तव पाणिप्पहारे हत्थच्छेज्जं पादच्छेज्जं याव कलीरच्छेज्जं सब्बगेहादानं उभतोपस्से याव सत्तमकुला समुग्घातो'' ति? ''मनुस्सन्तरेन, भन्ते'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, सम्पजानमुसावादो वत्थुवसेन गरुकलहुको होती'' ति।

''साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी'' ति।

४. बोधिसत्तधम्मतापञ्हो

७. ''भन्ते नागसेन, भासितं पेतं भगवता धम्मताधम्मपरियाये—'पुब्बेव बोधिसत्तानं मातापितरो नियता होन्ति, बोधि नियतो होती' ति। पुन च तुम्हे भणथ—'तुसिते काये ठितो बोधिसत्तो अट्ठ महाविलोकनानि विलोकेति—'कालं विलोकेति, दीपं विलोकेति, देसं विलोकेति, कुलं विलोकेति, जनेत्तिं विलोकेति, आयुं विलोकेति, मासं विलोकेति, नेक्खम्मं विलोकेती' ति। भन्ते नागसेन, अपरिपक्के ञाणे बुज्झनं नत्थि, परिपक्के ञाणे न सक्का

उन्होंने यह भी ठीक कहा है—'जान बूझ कर झूठ बोलने में कम दोष लगता है, जिसे किसी दूसरे भिक्षु के सामने स्वीकार कर लेना चाहिये'। ये दोनों बातें ठीक हैं; क्योंकि महाराज! विषय के विचार से झूठ बोलना दो प्रकार का होता है—१. भारी और २. हलका। महाराज! यदि कोई किसी को थप्पड़ या मुक्का मार दे तो आप उसे क्या दण्ड देंगे?'' ''भन्ते नागसेन! यदि वह कहे—'मैं नहीं क्षमा करता' तो हम लोग उस पर एक कार्षापण (उस समय का पैसा) जुर्माना करेंगे।'' ''महाराज! यदि वही आदमी आपको थप्पड़ या मुक्का मार दे तो आप उसे क्या दण्ड देंगे?'' ''भन्ते! उसका हाथ कटवा लूँगा, जीते–जी ही खाल उतरवा लूँगा, उसका सब कुछ नष्ट करवा दूँगा, उसके परिवार में दोनों ओर सात पीढ़ी तक जितने लोग हैं, सभी को मरवा डालूँगा।'' ''महाराज! यहाँ कौन सी बात है, क्या कारण है कि एक जगह तो थप्पड़ मारने से केवल एक कार्षापण जुर्माना किया जाता है और दूसरी जगह हाथ कटवा दिया जाता है....दोनों ओर सात पीढ़ी तक जितने लोग हैं सभी मरवा दिये जाते हैं?'' ''भन्ते! दोनों मनुष्यों में भेद होने के कारण।'' ''महाराज! इसी तरह विषयभेद से झूठ बोलना दो प्रकार होता है—१. भारी और २. हलका।''

''ठीक है, भन्ते नागसेन! मुझे स्वीकार है।''

४. बोधिसत्व की धर्मता — ७.''भन्ते नागसेन! धर्म को बताते हुए भगवान् ने धर्मता (स्वभाव) के विषय में कहा है— 'बोधिसत्व के माता–पिता पहले से ही निश्चित होते हैं। किस वृक्ष के नीचे बुद्धत्व प्राप्त करेंगे— यह भी पहले से निश्चित होता है। कौन प्रधान शिष्य होंगे?—यह भी पहले से निश्चित होता है, कौन पुत्र होगा— यह भी पहले से निश्चित रहता है। और कौन भिक्षु सेवा–शुश्रूषा करने वाला होगा— यह भी पहले से निश्चित रहता है'। साथ ही साथ आप लोग ऐसा भी कहते हैं— 'तुषित लोक में रहते ही बोधिसत्त्व ये आठ बड़ी–बड़ी बातें को देख लेते हैं— १. मनुष्य लोक में जन्म लेने का कौन उचित काल

निमेसन्तरं पि आगमेतुं, अनतिक्कमनीयं परिपक्कमानसं। कस्मा बोधिसत्तं कालं विलोकेति—'किम्हि काले उप्पज्जामी' ति? अपरिपक्के ञाणे बुज्झनं नत्थि, परिपक्के ञाणे न सक्का निमेसन्तरं पि आगमेतुं। कस्मा बोधिसत्तो कुलं विलोकेति—'किम्हि कुले उप्पज्जामी' ति? यदि, भन्ते नागसेन, पुब्बेव बोधिसत्तस्स मातापितरो नियता, तेन हि—'कुलं विलोकेती' ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि कुलं विलोकेति, तेन हि— 'पुब्बेव बोधिसत्तस्स मातापितरो नियता' ति, तं पि वचनं मिच्छा। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो तवानुप्पत्तो, सो तथा निब्बाहितब्बो'' ति?

८. ''नियता महाराज, पुब्बेव बोधिसत्तस्स मातापितरो, कुलं च बोधिसत्तो विलोकेती ति। किं ति पन कुलं विलोकेति? 'ये मे मातापितरो ते खत्तिया उदाहु ब्राह्मणा' ति एवं कुलं विलोकेति।

''अट्ठन्नं महाराज, पुब्बेव अनागतं ओलोकेतब्बं होति, कतमेसं अट्ठन्नं? (१) वाणिज्जस्स, महाराज, पुब्बेव विक्कयभण्डं ओलोकेतब्बं होति, (२) हत्थिनागस्स पुब्बेव सोण्डाय अनागतो मग्गो ओलोकेतब्बो होति, (३) साकटिकस्स पुब्बेव अनागतं तित्थं ओलोकेतब्बं होति, (४) नियामकस्स पुब्बेव अनागतं तीरं ओलोकेत्वा नावा पेसेतब्बा होति, (५) भिसक्कस्स पुब्बेव आयुं ओलोकेत्वा आतुरो उपसङ्कमितब्बो होति, (६) उत्तरसेतुस्स

होगा, इसे देख लेते हैं, २. किस द्वीप में जन्म लेना होगा, इसे भी देख लेते हैं, ३. किस जगह जन्म लेना होगा, इसे भी देख लेते हैं, ४. किस कुल में जन्म लेना होगा, इसे भी देख लेते हैं, ५. कौन माता होगी, इसे भी देख लेते हैं, ६. कितने समय तक गर्भ में रहना होगा, इसे भी देख लेते हैं, ७. किस मास में जन्म होगा, इसे भी देख लेते हैं, और ८. कब घर छोड़ कर निकल जाना होगा, इसे भी देख लेते हैं?' भन्ते नागसेन! जब तक ज्ञान परिपक्व नहीं हो जाता, तब तक ऐसी कुछ बातें ज्ञात नहीं होती। ज्ञान परिपक्व हो जाने पर एक पल भी ठहरा नहीं जाता। ऐसी कोई भी बात नहीं है, जो ज्ञान के परिपक्व हो जाने के बाद न जानी जा सके। तब, भला उनको यह कुल देखने की क्या आवश्यकता होती है कि—'मैं किस कुल में जन्म लूँगा?' ज्ञान के विना परिपक्व हुए तो कुछ जाना ही नहीं जाता और परिपक्व हो जाने पर क्षण भर ठहरना नहीं होता। तब, उन्हें कुल देखने की क्या आवश्यकता होती है, 'मैं किस कुल में जन्म लूँगा?' (क) भन्ते! यदि बोधिसत्व के माता-पिता पहले से ही निश्चित रहते हैं तो यह बात असत्य ठहरती है, कि वे कुल को देखते हैं कि किस कुल में जन्म लेना होगा? (ख) और, यदि वे वस्तुतः यह देखते हैं कि किस कुल में जन्म लेना होगा तो यह बात मिथ्या ठहरती है कि उनके माता-पिता पहले से ही निश्चित होते हैं। यह भी एक द्विविधा.... ?''

८. ''महाराज! बोधिसत्व के माता-पिता पहले से ही निश्चित होते हैं, यह बात सर्वथा ठीक है! और यह भी ठीक है कि वे (तुषित लोक में रहते हुए ही) यह देख लेते हैं कि किस कुल में जन्म होगा? जो माता-पिता होंगे वे क्षत्रिय होंगे या ब्राह्मण?' इस तरह कुल को देखते हैं।

''महाराज! आठ बातों को, उनके होने से पहले ही, देख लेना होता है कौन सी आठ बातें? १. व्यापारी को पहले से ही अपनी खरीदी वस्तुएँ देख भाल लेनी होती है, २. हाथी को पैर बढ़ाने के पहले ही सूँड़ से आगे की जमीन को देख लेना होता है, ३. गाड़ीवान को अनजान नदी पार करने के पहले ही उसे देख लेना होता है, ४. कर्णधार को किनारे पहुँचने के पहले ही किनारा देख लेना होता है; उसके बाद अपनी नाव को उस ओर लगाना होता है, ५. वैद्य को चिकित्सा आरम्भ करने के पहले रोगी की

पुब्बेव थिराथिरभावं जानित्वा अभिरूहितब्बं होति, (७) भिक्खुस्स पुब्बेव अनागतं कालं पच्चवेक्खित्वा भोजनं भुञ्जितब्बं होति, (८) बोधिसत्तानं पुब्बेव कुलं ओलोकेतब्बं होति— 'खत्तियकुलं वा ब्राह्मणकुलं वा' ति। इमेसं खो, महाराज, अट्ठन्नं पुब्बेव अनागतं ओलोकेतब्बं होती'' ति।

''साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी'' ति।

५. अत्तनिपातनपञ्हो

९. ''भन्ते नागसेन, भासितं पेतं भगवता— 'न, भिक्खवे, अत्तानं पातेतब्बं, यो पातेय्य यथाधम्मो कारेतब्बो' ति। पुन च तुम्हे भणथ— 'यत्थ कत्थचि भगवा सावकानं धम्मं देसियमानो अनेकपरियायेन जातिया जराय ब्याधिनो मरणस्स समुच्छेदाय धम्मं देसेति, यो हि कोचि जातिजराब्याधिमरणं समतिक्कमति तं परमाय पसंसाय पसंसती' ति। यदि, भन्ते नागसेन, भगवता भणितं— 'न, भिक्खवे, अत्तानं पातेतब्बं, यो पातेय्य यथाधम्मो कारेतब्बो' ति, तेन हि 'जातिया जराय ब्याधिनो मरणस्स समुच्छेदाय धम्मं देसेती' ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि जातिया जराय ब्याधिनो मरणस्स समुच्छेदाय धम्मं देसेति, तेन हि— 'न भिक्खवे अत्तानं पातेब्बं, यो पातेय्य यथाधम्मो कारेतब्बो' ति, तं पि वचनं मिच्छा। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो तवानुप्पत्तो, सो तया निब्बाहितब्बो'' ति?

१०. ''भासितं पेतं, महाराज, भगवता—'न, भिक्खवे ....पे०....कारेतब्बो' ति। यत्थ कत्थचि भगवता सावकानं धम्मं देसियमानेन च अनेकपरियायेन जातिया जराय ब्याधिनो

आयु देख लेनी होती है, ६. बाँस के पुल को पार करने के पहले ही देख लेना होता है कि वह सुदृढ़ है या नहीं, ७. भिक्षु को भोजन करने के पहले देख लेना होता है कि सूर्य आकाश में कहाँ तक चढ़ा है और ८. बोधिसत्त्व को पहले ही कुल देख लेना होता है— 'ब्राह्मण कुल या क्षत्रियकुल ?' महाराज! इन आठ बातों को उनके होने से पहले ही देख लेना चाहिये।''

''ठीक है, भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं, मैं स्वीकार करता हूँ।''

५. आत्महत्याविषयकप्रश्न— ९. ''भन्ते नागसेन! भगवान् ने यह कहा है— 'भिक्षुओ! आत्महत्या नहीं करनी चाहिये, जो करे वह विनय के अनुसार दोषी ठहराया जाय'। फिर आप लोग यह भी कहते हैं— 'अपने शिष्यों को भगवान् जिस किसी विषय पर उपदेश देते थे, सदैव अनेक प्रकार से जन्म लेने, बूढ़े होने, बीमार पड़ने और मृत्यु से छूट जाने के लिये ही कहते थे, जो इन से छूट जाते थे, भगवान् उनकी बहुत प्रशंसा करते थे'। (क) भन्ते! यदि भगवान् ने यथार्थ में आत्महत्या करने का निषेध किया था तो यह बात असत्य ठहरती है कि अपने शिष्यों को जिस किसी विषय पर उपदेश देते थे, सदैव अनेक प्रकार से जन्म लेने, बूढ़े होने, बीमार पड़ने, और मृत्यु से छूट जाने के लिये ही कहते थे। (ख) और यदि यह ठीक है कि भगवान् अपने शिष्यों को जिस किसी विषय पर उपदेश देते थे, उसमें सदैव अनेक प्रकार से जन्म लेने, बूढ़े होने, बीमार पड़ने, और मृत्यु से छूट जाने के लिये ही कहते थे, तो यह बात झूठी ठहरती है कि उन्होंने आत्महत्या के लिये निषेध किया हो। यह भी एक द्विविधा....?''

१०. ''महाराज! भगवान् ने ठीक कहा है— 'भिक्षुओ! आत्महत्या नहीं करनी चाहिये। जो करे वह विनय के अनुसार दोषी ठहराया जाय'। हम लोगों का कहना भी ठीक ही है कि 'अपने शिष्यों को भगवान् जिस किसी विषय पर उपदेश देते थे, सदैव अनेक प्रकार से जन्म लेने, बूढ़े होने, बीमार पड़ने,

मरणस्स समुच्छेदाय धम्मो देसितो। तत्थ पन कारणं अत्थि येन भगवा कारणेन पटिक्खिपि समादपेसि चा'' ति।

''किं पनेत्थ, भन्ते नागसेन, कारणं येन भगवा कारणेन पटिक्खिपि समादपेसि चा' ति? 'सीलवा, महाराज, सीलसम्पन्नो अगदसमो सत्तानं किलेसविसविनासने, ओसधसमो सत्तानं किलेसब्याधिवूपसमे, उदकसमो सत्तानं किलेसरजोजल्लापहरणे, मणिरतनसमो सत्तानं सब्बसम्पत्तिदाने, नावासमो सत्तानं चतुरोघपारगमने, सत्थवाहसमो सत्तानं जातिकन्तारतारणे, वातसमो सत्तानं तिविधग्गिसन्तापनिब्बापने, महामेघसमो सत्तानं मानसपरिपूरणे, आचरियसमो सत्तानं कुसलसिक्खापने, सुदेसिकसमो सत्तानं खेमपथमाचिक्खने। एवरूपो, महाराज, बहुगुणो अनेकगुणो अप्पमाणगुणो गुणरासि गुणपुञ्जो सत्तानं वुड्ढिकरो 'सीलवा मा विनस्सी' ति सत्तानं अनुकम्पाय, महाराज, भगवा सिक्खापदं पञ्ञापेसि— 'न, भिक्खवे, अत्तानं पातेतब्बं, यो पातेय्य यथाधम्मो कारेतब्बो' ति। इदमेत्थ, महाराज, कारणं येन कारणेन भगवा पटिक्खिपि।

''भासितं पेतं, महाराज, थेरेन कुमारकस्सपेन विचित्रकथिकेन पायासिराजञ्ञस्स परलोकं दीपयमानेन—'यथा यथा खो, राजञ्ञ, समणब्राह्मणा सीलवन्तो कल्याणधम्मा चिरं दीघमद्धानं तिट्ठन्ति, तथा तथा बहुं पुञ्ञं पसवन्ति बहुजनहिताय च पटिपज्जन्ति बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं' ति। *(दी० नि०, पा० रा० सु०)*

''केन पन कारणेन भगवा समादपेसि— 'जाति पि, महाराज, दुक्खा, जरा पि

और मृत्यु से छूट जाने के लिये ही कहते थे'। महाराज! भगवान् के इस तरह ना करने या बताने का कारण है।''

''भन्ते! यहाँ कौन सा कारण है, जिससे भगवान् ने एक को निषिद्ध किया और दूसरे की आज्ञा दी?'' ''महाराज! प्राणियों के क्लेशरूपी विष को उतारने के लिये शीलवान् होना सब से अच्छा उपचार है। क्लेशरूपी रोग को दूर करने के लिये शीलवान् होना सब से अच्छी औषध है। क्लेशरूपी धूल को साफ करने के लिये शीलवान् होना सब से अच्छा जल है। सभी सम्पत्तियों को दिला देने के लिये शीलवान् होना सबसे अच्छी मणि है। चार ओघों (काम, भव, अविद्या और मिथ्यादृष्टि) को पार करने के लिये शीलवान् होना सब से अच्छी नाव है। आवागमनरूपी बड़ी मरुभूमि को पार करने के लिये शीलवान् होना सबसे अच्छा साधन है। तीन प्रकार की अग्नि (लोभ, द्वेष, मोह) का ताप दूर करने के लिये शीलवान् होना सब से अच्छी वायु है। मन को भर देने के लिये शीलवान् होना मेघ के समान है। अच्छी से अच्छी शिक्षाओं को देने के लिये शीलवान् होना आचार्य के समान है। निरापद मार्ग बताने के लिये शीलवान् होना पथप्रदर्शक है। महाराज! इस तरह, शीलवान् के गुणसमूह अनन्त हैं। शीलवान् सभी जीवों की वृद्धि करने वाला है। सभी पर अतीव अनुकम्पा कर भगवान् ने इस शिक्षापद का उपदेश दिया था— 'भिक्षुओ! आत्महत्या नहीं करनी चाहिये। जो करे वह विनय के अनुसार दोषी ठहराया जाय।' महाराज! यही कारण है जिससे भगवान् ने इसे निषिद्ध किया था।

''महाराज! परलोक के विषय में पायासि राजन्य को बताते हुए महावक्ता स्थविर कुमारकाश्यप ने कहा है— 'राजन्य! शीलवान् और धर्मात्मा श्रमण या ब्राह्मण जब तक जीते हैं, लोगों के हित में लगे रहते हैं, लोगों को सुख का मार्ग बतातें रहते हैं, लोगों के प्रति अनुकम्पा से भरे रहते हैं तथा देवताओं और मनुष्यों के कार्य, हित और सुख में सहायक होते हैं।''

''किस कारण उन्होंने जन्म इत्यादि से छूट जाना बताया था—'महाराज! जन्म लेना भी दुःख

दुक्खा, ब्याधि पि दुक्खा, मरणं पि दुक्खं, सोको पि दुक्खो, परिदेवो पि दुक्खो, दुक्खं पि दुक्खं, दोमनस्सं पि दुक्खं, उपायासो पि दुक्खो, अप्पियेहि सम्पयोगो पि दुक्खो, पियेहि विप्पयोगो पि दुक्खो, मातुमरणं पि दुक्खं, पितुमरणं....भातुमरणं....भगिनीमरणं....पुत्तमरणं.... दारमरणं....दासमरणं....ञातिमरणं....ञातिब्यसनं.... रोगब्यसनं....भोगब्यसनं.... सीलब्यसनं.... दिट्ठिब्यसनं.... राजभयं....चोरभयं.... वेरिभयं.... दुब्भिक्खभयं.... अग्गिभयं.... उदकभयं.... आवट्टभयं.... कुम्भीलभयं.... सुसुकाभयं.... अत्तानुवादभयं.... परानुवादभयं.... दण्डभयं.... दुग्गतिभयं.... परिसासारज्जभयं.... आजीविकाभयं.... मरणभयं.... वेत्तेहि ताळनं.... हत्थच्छेदनं ....पादच्छेदनं.... हत्थपादच्छेदनं.... कण्णच्छेदनं.... नासच्छेदनं.... कण्णनासच्छेदनं.... बिलङ्गथालिकं....सङ्खमुण्डितं.... राहुमुखं.... जोतिमालिकं....हत्थपज्जोतिकं....एरकवत्तिकं ....चीरकवासिकं....एणेय्यकं.... बळिसमंसिकं.... कहापणिकं.... खारापतच्छिकं.... पलिघपरिवत्तिकं....पलालपीठकं.... तत्तेन तेलेन ओसिञ्चनं....सुनखेहि खादापनं.... जीवसूलारोपनं.... असिना सीसच्छेदनं दुक्खं। एवरूपानि, महाराज, बहुविधानि अनेकविधानि दुक्खानि संसारगतो अनुभवति'?

"यथा, महाराज, हिमवन्तपब्बते अभिवुट्ठं उदकं गङ्गाय नदिया पासाणसक्खर-

---

है, बूढ़ा होना भी दुःख है, बीमार पड़ना भी दुःख है, शोक करना भी दुःख है, रोना-पीटना भी दुःख है, प्रिय से बिछुड़ना भी दुःख है, माता-पिता, भाई, बहन, पुत्र, स्त्री, दास का मर जाना भी दुःख है, बन्धु बान्धवों पर आपत्ति पड़ना, रोग से पीड़ित रहना, सम्पत्ति का नाश होना, शील से गिर जाना, सिद्धान्त से गिर जाना, राजा, चोर या शत्रुओं से डरा रहना, अकाल पड़ जाना, घर में अग्नि लग जाना, बाढ़ की लहरों में पड़ जाना, भँवर में पड़ जाना, मकर (ग्राह) से या घड़ियाल से पकड़े जाना, अपनी निन्दा हो, दूसरे किसी को निन्दा हो, दण्ड या दुर्गति पाने का भय, भरी सभा में घबड़ा जाना, जीविका चले जाने का भय, मरण भय, बेंत से चाबुक अथवा डण्डों से पीटा जाना, हाथ या पैर काट लिया जाना, हाथ-पैर दोनों काट लिया जाना, कान या नाक काट लिया जाना, नाक-कान दोनों काट लिया जाना, बिलङ्गथालिक[1], शङ्खमुण्डिक[2], राहुमुख[3], ज्योतिर्मालिका[4], हस्तप्रज्योतिका[5], एरकवर्तिका[6], चीरकवासिका[7], ऐणेयक[8], बलिसमंसिका[9], कार्षापणक[10], खारापतच्छिका[11], परिघपरिवर्त्तिका[12], पलालपीठक[13], गर्म तेल

---

१. बिलङ्गथालिक— खोपड़ी हटाकर शिर पर तपे हुए लोहे का गोला रखना।
२. शंखमुण्डिक— शिर का चमड़ा आदि हटा उसे शंख के समान बना देना।
३. राहुमुख— कानों तक मुँह को फाड़ देना।
४. ज्योतिर्मालिका— पूरे शरीर में तैल सिक्त कपड़ा लपेट कर जला देना।
५. हस्त-प्रज्योतिका— हाथ में कपड़ा लपेट कर जलाना।
६. एरकवर्तिका— गर्दन तक खाल खींच कर घसीटना।
७. चीरकवासिका— ऊपर की खाल खींच कर कमर पर छोड़ना और नीचे की खाल खींच कर घुट्टी पर छोड़ देना।
८. ऐणेयक— केहुनी और घुटने में लोहशलाका का ठोंक उनके सहारे भूमि पर स्थापित कर अग्नि लगाना।
९. बलिसमंसिका— बंसी की तरह के लोह-अंकुशों को मुँह में डाल कर खींचना।
१०. कार्षापणक— पैसे पैसे भर के मांस के टुकड़ों को सारे शरीर से काटना।
११. खारापतच्छिका— शरीर में घाव कर नमक छिड़कना।
१२. परिघपरिवर्त्तिका— दोनों कानों से कीला पार कर उसे जमीन में गाड़, पैर पकड़ उसी के चारों ओर घुमाना।
१३. पलालपीठक— हथौड़े से हड्डियों को भीतर ही चूर कर, शरीर को मांसपुंज सा बना देना।
[बुद्धकालीन राजदण्ड के विषय में विस्तार के लिये द्र.— म० नि०, (बौद्धभारती सं०) पृ० १८१-८२]

खरमरुम्बआवट्टगग्गलकऊमिकवङ्कचन्दिकआवरणनीवरणमूलकं साखासु परियोत्थरति; एवमेव, खो, महाराज, एवरूपानि एवरूपानि बहुविधानि अनेकविधानि दुक्खानि संसारगतो अनुभवति। पवत्तं, महाराज, दुक्खं, अप्पवत्तं सुखं, अप्पवत्तस्स गुणं पवत्ते च भयं दीपयमानो, महाराज, भगवा अप्पवत्तस्स सच्छिकिरियाय जातिजराब्याधिमरणसमतिक्कमाय समादपेसि। इदमेत्थ, महाराज, कारणं, येन कारणेन भगवा समादपेसी'' ति।

''साधु, भन्ते नागसेन, सुनिब्बेठितो पञ्हो सुकथितं कारणं, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी'' ति।

६. मेत्ताभावनानिसंसपञ्हो

११. ''भन्ते नागसेन, भासितं पेतं भगवता— 'मेत्ताय खो, भिक्खवे, चेतोविमुत्तिया आसेविताय भाविताय बहुलीकताय यानीकताय वत्थुकताय अनिट्ठिताय परिचिताय सुसमारद्धाय एकादसानिसंसा पाटिकङ्खा। कतमे एकादस? सुखं सुपति, सुखं पटिबुज्झति, न पापकं सुपिनं पस्सति, मनुस्सानं पियो होति, अमनुस्सानं पियो होति, देवता रक्खन्ति, नास्स अग्गि वा विसं वा सत्थं वा कमति, तुवटं चित्तं समाधियति, मुखवण्णो विप्पसीदति, असम्मूळ्हो कालं करोति, उत्तरिं अप्पटिविज्झन्तो ब्रह्मलोकूपगो होती' ति। *(अ०नि० ११ निपात)* पुन च तुम्हे भणथ— 'सामो कुमारो मेत्ताविहारी मिगसङ्घेन परिवुतो पवने विचरन्तो पीळियक्खेन रञ्ञा विद्धो विसपीतेन सल्लेन तत्थेव मुच्छितो पतितो' ति। *(जा० ५४०)* यदि, भन्ते नागसेन, भगवता भणितं— 'मेत्ताय, भिक्खवे ....पे०.... ब्रह्मलोकूपगो होती' ति, तेन हि— 'सामो

का छिड़का जाना, कुत्तों से नोचवाया जाना, फाँसी पर लटकाया जाना, तलवार से शिर काट लेना दुःख हैं। महाराज! लोग ऐसे ही और भी अनेक दुःखों को संसार में रहकर भोगते हैं।

''महाराज! जैसे हिमालय पर्वत पर वृष्टि होने से जलधारा वृक्ष और पत्थरों को गिराती हुई पार हो जाती है; उसी तरह संसार के जीव पाप में फँसकर अनेक दुःख भोगते हैं। संसार में बार–बार जन्म लेना ही सबसे बड़ा दुःख है। जन्म और मृत्यु के इस प्रवाह का रुक जाना ही यथार्थ सुख हैं। इसी प्रवाह को रोकने का उपदेश करते हुए भगवान् ने 'जन्म लेना' इत्यादि से मुक्त हो जाने को बताया है।''

''ठीक है, भन्ते नागसेन! आपने द्विविधा को स्पष्ट कर दिया। अनेक तर्कों के सहारे आपने जो कहा, वह मुझे स्वीकार है।''

६. मैत्रीभावना का फल— ११. ''भन्ते नागसेन! भगवान् ने कहा है— 'भिक्षुओ! चित्त को विमुक्त करने वाली मैत्री के अनुसार आचरण करते हुए उसकी भावना करने से, बार–बार अभ्यास करने से, अपने में विस्तार करने से, आधार बना लेने से, अनुष्ठान करने से, अच्छी तरह सीख लेने से तथा उसमें सर्वथा लग जाने से ग्यारह लाभ मिल सकते हैं। कौन से ग्यारह? १. सुख की नींद सोता है, २. सुखपूर्वक सोकर जागता है, ३. बुरे स्वप्न नहीं देखता, ४. मनुष्यों का प्रिय होता है, ५. अमनुष्यों का प्रिय होता है, ६. देवता उसकी रक्षा करते हैं, ७. अग्नि, विष या शस्त्र से उसको कभी कुछ हानि पहुँचती, ८. शीघ्र ही उसकी समाधि लग जाती है, ९. उसका चेहरा सदा प्रसन्न रहता है, १०. विना किसी उद्विग्नता के उसकी मृत्यु होती है, ११. यदि अर्हत् पद तक नहीं पहुँच पाता, तो अवश्य ही ब्रह्मलोक में जन्म ग्रहण करता है।' तो भी, आप लोग कहा करते हैं— 'सामकुमार मैत्रीभावना का अभ्यास करते हुए मृगों के साथ वन में विचरण करते थे। एक दिन प्रियाक्ष नामक राजा का विष में बुझा हुआ बाण लग जाने से

कुमारो मेत्ताविहारी मिगसङ्घेन परिवुतो पवने विचरन्तो पीळियक्खेन रञ्ञा विद्धो विसपीतेन सल्लेन तत्थेव मुच्छितो पतितो' ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि सामो कुमारो मेत्ताविहारी मिगसङ्घेन परिवुतो पवने विचरन्तो पीळियक्खेन रञ्ञा विद्धो विसपीतेन सल्लेन तत्थेव मुच्छितो पतितो, तेन हि 'मेत्ताय....पे०....कमती' ति तं पि वचनं मिच्छा। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो सुनिपुणो परिसण्हो सुखुमो गम्भीरो, अपि सुनिपुणानं मनुजानं गत्ते सेदं मोचेय्य, सो तवानुप्पत्तो, विजटेहि तं महाजटाजटितं, अनागतानं जिनपुत्तानं चक्खुं देहि निब्बाहनाया''ति ?

१२. ''भासितं पेतं, महाराज, भगवता — 'मेत्ताय....पे०.... कमती' ति। 'सामो च कुमारो मेत्ताविहारी मिगसङ्घेन परिवुतो पवने विचरन्तो पीळियक्खेन रञ्ञा विद्धो विसपीतेन सल्लेन तत्थेव मुच्छितो पतितो'। तत्थ पन, महाराज, कारणमत्थि। कतमं तत्थ कारणं ? नेते, महाराज, गुणा पुग्गलस्स, मेत्ताभावनायेते गुणा। सामो, महाराज, कुमारो घटं उक्खिपन्तो तस्मिं खणे मेत्ताभावनाय पमत्तो अहोसि।

''यस्मिं, महाराज, खणे पुग्गलो मेत्तं समापन्नो होति, न तस्स पुग्गलस्स तस्मिं खणे अग्गि वा विसं वा सत्थं वा कमति, तस्स ये केचि अहितकामा उपगन्त्वा तं न पस्सन्ति, न तस्मिं ओकासं लभन्ति। नेते, महाराज, गुणा पुग्गलस्स, मेत्ताभावनायेते गुणा।

''इध, महाराज, पुरिसो सङ्गामसूरा अभेज्जकवचजालिकं सन्नय्हित्वा सङ्गामं ओतरेय्य, तस्स सरा खित्ता उपगन्त्वा पतन्ति विकिरन्ति, न तस्मिं ओकासं लभन्ति। नेसो, महाराज,

---

वे मूर्छित होकर गिर पड़े। (क) भन्ते! यदि भगवान् ने यथार्थतः मैत्री–भावना के ये फल बताये हैं तो यह बात झूठी ठहरती है, सामकुमार मैत्रीभावना के अभ्यासी होते हुए भी बाण लग जाने से मूर्छित होकर गिर पड़े थे। (ख) और, यदि यथार्थ में सामकुमार मैत्रीभावना के अभ्यासी होते हुए भी बाण लग जाने से मूर्छित होकर गिर पड़े थे, तो ऊपर बताये मैत्रीभावना के लाभ झूठे ठहरते हैं। यह भी एक द्विविधा है, जो बहुत सूक्ष्म और गम्भीर है। भन्ते! अच्छे–अच्छे बुद्धिमान् लोगों को भी इस प्रश्न के पूछने पर पसीना छूटने लगेगा! अतः यह प्रश्न आपके सामने रखा गया है, इस अत्यन्त जटिल प्रश्न को सुलझा दें। भविष्य में होने वाले बौद्ध भिक्षुओं को इसे साफ–साफ देखने के लिये आँख (ज्ञान) दें?''

१२. ''महाराज! भगवान् ने ठीक कहा है– 'भिक्षुओ! मैत्री का अभ्यास करने से....उसे अग्नि, विष या शस्त्र कुछ भी हानि नहीं पहुँचा सकता....।' और यह भी सत्य है कि सामकुमार मैत्रीभावना का अभ्यास करते हुए मृगों के साथ वन में विचरण करते थे। एक दिन प्रियाक्ष नामक राजा का विष में बुझा हुआ बाण लग जाने से वे मूर्छित होकर गिर पड़े। महाराज! ऐसी बात हो जाने का एक कारण है। कौन सा कारण? महाराज! ऊपर कहे गुण किसी मनुष्य के नहीं, किन्तु मैत्री–भावना के ही हैं। महाराज! उस समय घड़े ऊँडेलता हुआ सामकुमार मैत्रीभावना नहीं कर रहा था। महाराज! जिस समय मनुष्य मैत्रीभावना से पूर्ण रहता है उस समय अग्नि, विष या शस्त्र उस पर कोई प्रभाव नहीं डालते।

''महाराज! उस समय यदि कोई उसका कुछ बुरा करने के लिये आवे तो उसे देख ही नहीं सकेगा; और न उसका कुछ बिगाड़ने का उसे मौका मिलेगा। महाराज! ऊपर के कहे गये गुण किसी मनुष्य के नहीं, किन्तु मैत्रीभावना के ही है।

''महाराज! कोई योद्धा सिपाही अभेद्य जालीदार कवच पहन कर मैदान में उतरे। उस कवच पर जितने बाण गिरें सभी टकरा कर लौट जायँ, उसका कुछ भी न बिगाड़ सकें। महाराज! तो यह गुण

गुणो सङ्गामसूरस्स, अभेज्जकवचजालिकायेसो गुणो, यस्स सरा खित्ता उपगन्त्वा पतन्ति विकिरन्ति; एवमेव खो, महाराज, नेते गुणा पुग्गलस्स, मेत्ताभावनायेते गुणा।

"यस्मिं, महाराज, खणे पुग्गलो मेत्तं समापन्नो होति, न तस्स ये केचि अहितकामा उपगन्त्वा तं न पस्सन्ति, तस्मिं ओकासं न लभन्ति। नेते, महाराज, गुणा पुग्गलस्स, मेत्ताभावनायेते गुणा।

"इध पन, महाराज, पुरिसो दिब्बं अन्तरधानं मूलं हत्थे करेय्य, याव तं मूलं तस्स हत्थगतं होति ताव न अञ्ञो कोचि पकतिमनुस्सो तं पुरिसं पस्सति, नेसो, महाराज, गुणो पुरिसस्स, मूलस्सेसो गुणो अन्तरधानस्स यं सो पकतिमनुस्सानं चक्खुपथे न दिस्सति; एवमेव खो, महाराज, नेते गुणा पुग्गलस्स, मेत्ताभावनायेते गुणा।

"यस्मिं, महाराज, खणे पुग्गलो मेत्तं समापन्नो होति, न तस्स पुग्गलस्स तस्मिं खणे अग्गि वा विसं सत्थं वा कमति, तस्स ये केचि अहितकामा उपगन्त्वा तं न पस्सन्ति, न तस्मिं ओकासं लभन्ति। नेते, महाराज, गुणा पुग्गलस्स, मेत्ताभावनायेते गुणा।

"यथा वा पन, महाराज, पुरिसं सुकतं महालेणमनुप्पविट्ठं महामेघो अभिवस्सन्तो न सक्कोति तेमयितुं, नेसो, महाराज, गुणो पुरिसस्स, महालेणस्स सो गुणो, यं महामेघो अभिवस्समानो न तं तेमेति; एवमेव खो, महाराज, नेते गुणा पुग्गलस्स, मेत्ताभावनायेते गुणा।

"यस्मिं, महाराज, खणे पुग्गलो मेत्तं समापन्नो होति, न तस्स पुग्गलस्स तस्मिं खणे अग्गि वा विसं वा सत्थं वा कमति, तस्स ये केचि अहितकामा उपगन्त्वा तं न पस्सन्ति, न तस्स सक्कोन्ति अहितं कातुं। नेते, महाराज, गुणा पुग्गलस्स, मेत्ताभावनायेते गुणा" ति।

उस योद्धा का नहीं समझा जायगा। यह गुण तो उसके अभेद्य कवच का ही है। महाराज! इसी तरह, ये गुण किसी मनुष्य के नहीं, किन्तु मैत्रीभावना के ही हैं।

"महाराज! जिस समय मनुष्य मैत्रीभावना ये युक्त होता है, उस समय न अग्नि, न विष और न शस्त्र उसकी कुछ हानि कर सकते हैं। उस समय यदि कोई उसका कुछ बुरा करने के लिये आवे तो उसे देख ही नहीं सकेगा; और न उसका कुछ प्रतिकूल करने का उसे अवसर मिलेगा। महाराज! ये गुण किसी मनुष्य के नहीं, किन्तु मैत्रीभावना के ही हैं।

"महाराज! कोई आदमी दिव्य गुण वाली जादू की छड़ी अपने हाथ में ले ले। उसको लेते ही अन्तर्हित हो जाय और किसी सामान्य आदमी की आँख से न दिखायी दे। महाराज! तो यह गुण उस आदमी का नहीं, किन्तु उस दिव्य गुण वाली जादू की छड़ी का समझा जायगा। महाराज! इसी तरह, ये गुण किसी मनुष्य के नहीं, किन्तु मैत्रीभावना के ही हैं।

"महाराज! जिस समय मनुष्य मैत्रीभावना से युक्त होता है ....पूर्ववत्.... महाराज! ये गुण किसी मनुष्य के नहीं किन्तु मैत्रीभावना के ही हैं।

"महाराज! कोई आदमी एक अच्छी तरह बनाई गई पहाड़ की कन्दरा में प्रविष्ट हो जाय। तब, बाहर मूसलाधार पानी बरसने से भी वह नहीं भीग सकता। महाराज! इसमें उस आदमी का गुण नहीं, किन्तु उस पहाड़ की कन्दरा का ही है। महाराज! इसी तरह, ये गुण किसी मनुष्य के नहीं, किन्तु मैत्री-भावना के ही हैं।

"अच्छरियं, भन्ते नागसेन, अब्भुतं, भन्ते नागसेन, सब्बपापनिवारणा मेत्ता भावना ति। सब्बकुसलगुणावहा, महाराज, मेत्ताभावना संविभजितब्बा" ति।

७. कुसलाकुसलसमविसमपञ्हो

१३. "भन्ते नागसेन, कुसलकारिस्स पि अकुसलकारिस्स पि विपाको समसमो, उदाहु कोचि विसेसतो अत्थी' ति?" "अत्थि, महाराज, कुसलस्स च अकुसलस्स च विसेसो। कुसलं, महाराज, सुखविपाकं सग्गसंवत्तनिकं, अकुसलं दुक्खविपाकं निरयसंवत्तनिकं" ति।

"भन्ते नागसेन, तुम्हे भणथ— 'देवदत्तो एकन्तकण्हो एकन्तकण्हेहि धम्मेहि समन्नागतो, बोधिसत्तो एकन्तसुक्को एकन्तसुक्केहि धम्मेहि समन्नागतो' ति। पुन च देवदत्तो भवे भवे यसेन च पक्खेन च बोधिसत्तेन समसमो होति कदाचि अधिकतरो वा।

"यदा देवदत्तो नगरे बाराणसियं ब्रह्मदत्तस्स रञ्ञो पुरोहितपुत्तो अहोसि, तदा बोधिसत्तो छवकचण्डालो अहोसि विज्जाधरो, विज्जं परिजप्पित्वा अकाले अम्बफलानि निब्बत्तेसि। *(अम्बजा० ५७४)* एत्थ ताव बोधिसत्तो देवदत्तो जातिया निहीनो, यसेन च निहीनो। (१)

"पुन च परं यदा देवदत्तो राजा अहोसि महामहीपति सब्बकामसमङ्गी, तदा बोधिसत्तो तस्सूपभोगो अहोसि हत्थिनागो सब्बलक्खणसम्पन्नो। तस्स चारुगतिविलासं असहमानो राजा वधमिच्छन्तो हत्थाचरियं एवमवोच— 'असिक्खितो ते, आचरिय, हत्थिनागो, तस्स

"महाराज! जिस समय मनुष्य मैत्रीभावना से युक्त होता है ....पूर्ववत्.... महाराज! ये गुण किसी मनुष्य के नहीं किन्तु मैत्रीभावना के ही हैं।"

"भन्ते नागसेन, आश्चर्य है! अद्भुत है!! यह मैत्रीभावना तो सभी पापों को दूर करने के लिये है। मैत्रीभावना से सभी पुण्य मिलते हैं। तो जो हित या अहित करने वाले जीव हैं, सभी के प्रति मैत्रीभावना करनी चाहिये। संसार में जितने जीव हैं, सभी के बीच मैत्रीभावना के महान् फल को बाँट लेना चाहिये।"

७. पाप–पुण्यसमविषमविषयकप्रश्न— १३. "भन्ते नागसेन! पुण्य पाप के फल समान ही होते हैं या भिन्न–भिन्न?" "महाराज! पुण्य करने वाले के फल से पाप करने वाले का फल भिन्न ही होता है। महाराज! पुण्य करने वाला सुख पाता है और स्वर्ग जाता है; पाप करने वाला दुःख पाता है और नरक जाता है।"

"भन्ते नागसेन! आप लोग कहते हैं कि देवदत्त का हृदय सर्वथा काला और दुर्गुणों से भरा था। और, बोधिसत्व का हृदय पूर्णतः स्वच्छ था; वे भले से भले गुणों का भण्डार थे। तो भी अनेक जन्मों में देवदत्त बोधिसत्त्व के समान या उनसे बढ़कर यश पाने वाला हुआ था। उसका पक्ष सदा पुष्ट ही रहता था।

"भन्ते! जब देवदत्त वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के पुरोहित का पुत्र था, तो बोधिसत्त्व एक नीच जाति के ऐन्द्रजालिक डोम थे, जो अपने मन्त्रबल से बिना मौसम के भी आम पका देते थे। यह एक उदाहरण है जिसमें बोधिसत्त्व देवदत्त से जाति और यश दोनों में ही हीन दीन थे। (१)

"भन्ते! और फिर जब देवदत्त एक बहुत बड़ा राजा था, जिसे कामभोग की सभी वस्तुएँ प्राप्त थीं, तब बोधिसत्त्व उसकी सवारी के शुभ लक्षणसम्पन्न हाथी थे। उस (हाथी) की मनोहर चाल–ढाल देखकर राजा (देवदत्त) मन ही मन जल उठता था। उसने उस (हाथी) को मरवा देने की इच्छा से

आकासगमनं नाम कारणं करोही' *(दुम्मेधजा० १२२)* ति। तत्थ पि बोधिसत्तो ताव देवदत्तो जातिया निहीनो लामको तिरच्छानगतो। (२)

"पुन च परं यदा देवदत्तो मनुस्सो अहोसि पवने नट्ठायिको, तदा बोधिसत्तो महापथवी नाम मक्कटो अहोसि। एत्थ पि ताव दिस्सति विसेसो मनुस्सस्स च तिरच्छानगतस्स च, एत्थ पि ताव बोधिसत्तो देवदत्तो जातिया निहीनो। (३)

"पुन च परं यदा देवदत्तो मनुस्सो अहोसि सोणुत्तरो नाम नेसादो बलवा बलवतरो नागबलो, तदा बोधिसत्तो छद्दन्तो नाम नागराजा अहोसि। तदा सो लुद्दको तं हत्थिनागं घातेसि। तत्थपि ताव देवदत्तो व अधिकतरो। (४)

"पुन च परं यदा देवदत्तो मनुस्सो अहोसि वनचरको अनिकेतवासी, तदा बोधिसत्तो सकुणो अहोसि तित्तिरो मन्तज्झायी। *(तित्तिरजा०)* तदा पि सो वनचरको तं सकुणं घातेसि। तत्थ पि ताव देवदत्तो येव जातिया अधिकतरो। (५)

"पुन च परं यदा देवदत्तो कलाबु नाम कासिराजा अहोसि, तदा बोधिसत्तो तापसो अहोसि खन्तिवादी। तदा सो राजा तस्स तापसस्स कुद्धो हत्थपादे वंसकळीरे विय छेदापेसि। *(चूळनन्दियजा० २२३)* तत्थ पि ताव देवदत्तो येव अधिकतरो जातिया च यसेन च। (६)

"पुन च परं यदा देवदत्तो मनुस्सो अहोसि वनचरो, तदा बोधिसत्तो नन्दियो नाम वानरिन्दो अहोसि। तदापि सो वनचरो तं वानरिन्दं घातेसि सद्धिं मातरा कनिट्ठभातिकेन च। *(खन्तिवादिजा० ३१३)* तत्थ पि ताव देवदत्तो येव अधिकतरो जातिया। (७)

"पुन च परं यदा देवदत्तो मनुस्सो अहोसि अचेलको कारम्भियो नाम, तदा बोधिसत्तो पण्डरको नाम नागराजा अहोसि। तत्थ पि ताव देवदत्तो येव अधिकतरो जातिया। (८)

महावत से कहा— 'महावत! यह हाथी अच्छी तरह सिखाया नहीं गया है; इसे आकाश–गमन नाम की चाल चलाओ तो सही।' यहाँ भी बोधिसत्त्व देवदत्त से जाति में नीच, पशु–योनि में जन्मे थे।" (२)

"और फिर जब देवदत्त मनुष्य हो जंगलों में व्याघ्र की तरह घूमता फिरता था, तब बोधिसत्त्व महापृथ्वी नाम के एक वानर थे। यहाँ भी मनुष्य और पशु में कितना भारी अन्तर है! यहाँ भी बोधिसत्व देवदत्त से जाति में नीच थे।" (३)

"और फिर जब देवदत्त शोणोत्तर नाम का अत्यन्त बलिष्ठ निषाद था, तब बोधिसत्त्व छद्दन्त नाम के हस्ति–राज थे। तब एक दिन उस निषाद ने हस्ति–राज को मार डाला। इस जन्म में भी देवदत्त बोधिसत्त्व से बढ़कर था। (४)

"और फिर जब देवदत्त मनुष्य होकर बिना किसी घर के वन–वन घूमता था, तो बोधिसत्त्व तीतर पक्षी थे और वेद मन्त्रों पढ़ा करते थे। उस जन्म में भी उस वनचर ने उस तित्तिर पक्षी को मार डाला था। यहाँ भी देवदत्त बोधिसत्त्व से ऊँचा ही ठहरा। (५)

"और फिर जब देवदत्त कलाबु नाम का काशिराज था, तब बोधिसत्त्व क्षान्ति का प्रचार करने वाले तपस्वी थे। तब उस राजा ने तपस्वी से क्रुद्ध होकर, उसके हाथ पैर बाँस की तरह कटवा दिये थे। इस जन्म में भी....। (६)

"और फिर जब देवदत्त मनुष्य होकर वनेचर था, तब बोधिसत्त्व नन्दिय नामक वानरराज थे। वहाँ भी वनेचर ने माँ और छोटे भाई के साथ वानर को मार डाला। यहाँ भी....। (७)

"पुन च परं यदा देवदत्तो मनुस्सो अहोसि पवने जटिलको, तदा बोधिसत्तो तच्छको नाम महासूकरो अहोसि। *(तच्छकसूकरजा० ४९२)* तत्थ पि ताव देवदत्तो येव जातिया अधिकतरो। (९)

"पुन च परं यदा देवदत्तो चेतीसु सूरपरिचरो नाम राजा अहोसि उपरिपुरिसमत्ते गगने वेहासङ्गमो, तदा बोधिसत्तो कपिलो नाम ब्राह्मणो अहोसि। *(सूरपरिचरजा० ४२२)* तत्थ पि ताव देवदत्तो येव अधिकतरो जातिया च यसेन च। (१०)

"पुन च परं यदा देवदत्तो मनुस्सो अहोसि सामो नाम, तदा बोधिसत्तो रुरु नाम मिगराजा अहोसि। *(रुरुजा०)* तत्थ पि ताव देवदत्तो येव जातिया अधिकतरो। (११)

"पुन च परं यदा देवदत्तो मनुस्सो अहोसि लुद्दको पवनचरो, तदा बोधिसत्तो हत्थिनागो अहोसि। सो लुद्दको तस्स हत्थिनागस्स सत्तक्खत्तुं दन्ते छिन्दित्वा हरि। *(सीलवानागजा० ७२)* तत्थ पि नाम देवदत्तो येव योनिया अधिकतरो। (१२)

"पुन च परं यदा देवदत्तो सिङ्गालो अहोसि खत्तियधम्मो, सो यावता जम्बुदीपे पदेसराजानो ते सब्बे अनुयुत्ते अकासि, तदा बोधिसत्तो विधुरो नाम पण्डितो अहोसि। तत्थ पि ताव देवदत्तो येव यसेन अधिकतरो। (१३)

"पुन च परं यदा देवदत्तो हत्थिनागो हुत्वा लटुकिकाय सकुणिकाय पुत्तके घातेसि, तदा बोधिसत्तो पि हत्थिनागो अहोसि यूथपति। *(जा०३५७)* तत्थ ताव उभो पि ते समसमा अहेसुं। (१४)

"पुन च परं यदा देवदत्तो यक्खो अहोसि अधम्मो नाम, तदा बोधिसत्तो पि यक्खो अहोसि धम्मो नाम। तत्थ पि ताव उभो पि समसमा अहेसुं। (१५)

"और फिर जब देवदत्त मनुष्य योनि में कारम्भिय नाम का नग्न साधु था, तब बोधिसत्त्व पण्डरक नाम के सर्पराज थे। यहाँ भी....। (८)

"और फिर जब देवदत्त जंगल में रहने वाला जटाधारी साधु था, तब बोधिसत्त्व तच्छक नाम के एक बड़े सूअर थे। यहाँ भी....। (९)

"और फिर देवदत्त चेतिय देश में सूरपरिचर नाम का राजा था, जिसमें ऐसी शक्ति थी कि एक पोरसा ऊपर आकाश में चल फिर सकता था, तब बोधिसत्त्व कपिल नाम के एक ब्राह्मण थे। यहाँ भी....। (१०)

"और फिर जब देवदत्त साम नामक एक मनुष्य था, तब बोधिसत्त्व रुरु नामक मृगराज थे। यहाँ भी....। (११)

"और फिर जब देवदत्त एक वनेचर व्याघ्र था, तब बोधिसत्त्व एक हाथी थे। वनेचर व्याघ्र ने सात बार हाथी के दाँत को तोड़ लिया था। यहाँ भी....। (१२)

"और फिर देवदत्त एक समय बड़ा योद्धा और बहादुर सिपाही था। उसने भारतवर्ष के सभी राजाओं को अपने वश में कर लिया था। तब, बोधिसत्त्व विधुर नाम के एक पण्डित थे। यहाँ भी....। (१३)

"और फिर जब देवदत्त ने हाथी लेकर लट्ठुकिका (पक्षिविशेष) के बच्चों को मार डाला था, तब बोधिसत्त्व एक गजराज थे। यहाँ दोनों ही बराबर थे। (१४)

"पुन च परं यदा देवदत्तो नाविको अहोसि पञ्चन्नं कुसलानं इस्सरो, तदा बोधिसत्तो पि नाविको अहोसि पञ्चन्नं कुलसत्तानं इस्सरो। तत्थ पि ताव उभो पि समसमा अहेसुं। (१६)

"पुन च परं यदा देवदत्तो सत्थवाहो अहोसि पञ्चन्नं सकटसतानं इस्सरो, तदा बोधिसत्तो पि सत्थवाहो अहोसि पञ्चन्नं सकटसतानं इस्सरो। *(अपण्णकजा० ४५७)* तत्थ पि ताव उभो पि समसमा अहेसुं। (१७)

"पुन च परं यदा देवदत्तो साखो नाम मिगराजा अहोसि, तदा बोधिसत्तो पि निग्रोधो नाम मिगराजा अहोसि। *(निग्रोधमिराजा० १२)* तत्थ पि ताव उभो पि समसमा अहेसुं। (१८)

"पुन च परं यदा देवदत्तो साखो नाम सेनापति अहोसि, तदा बोधिसत्तो पि निग्रोधो नाम राजा अहोसि। तत्थ पि नाम उभो पि समसमा अहेसुं। (१९)

"पुन च परं यदा देवदत्तो खण्डहालो नाम ब्राह्मणो अहोसि, तदा बोधिसत्तो चन्दो नाम राजकुमारो अहोसि। तदा सो खण्डहालो येव अधिकतरो। (२०)

"पुन च परं यदा देवदत्तो ब्रह्मदत्तो नाम राजा अहोसि, तदा बोधिसत्तो तस्स पुत्तो महापदुमो नाम कुमारो अहोसि। तदा सो राजा सकपुत्तं चोरप्पपाते खिपापेसि। यतो कुतो चि पिता व पुत्तानं अधिकतरो होति विसिट्ठो ति। *(महापदुमजा०)* तत्थ पि ताव देवदत्तो येव अधिकतरो। (२१)

"पुन च परं यदा देवदत्तो महापतापो नाम राजा अहोसि, तदा बोधिसत्तो तस्स पुत्तो धम्मपालो नाम कुमारो अहोसि। तदा सो राजा सकपुत्तस्स हत्थपादे सीसं च छेदापेसि। *(जा० ३५८)* तत्थ पि ताव देवदत्तो येव उत्तरो अधिकतरो (२२)

"और फिर देवदत्त 'अधर्म' नाम का एक यक्ष था, तब बोधिसत्त्व भी 'धर्म' नाम के एक यक्ष थे। यहाँ भी दोनों बराबर हुए। (१५)

"और फिर जब देवदत्त पाँच सौ मल्लाह कुलों का प्रमुख था तब बोधिसत्त्व भी दूसरे पाँच सौ मल्लाह कुलों के प्रमुख थे। यहाँ भी दोनों....। (१६)

"और फिर जब देवदत्त पाँच सौ गाड़ियों वाला बनजारा था, तब बोधिसत्त्व भी दूसरे पाँच सौ गाड़ियों वाले बनजारे थे। यहाँ भी दोनों....। (१७)

"और फिर जब देवदत्त साख नाम का मृगराज था, तब बोधिसत्त्व निग्रोध नाम के मृगराज थे। यहाँ भी दोनों....। (१८)

"और फिर जब देवदत्त साख नाम का सेनापति था, तब बोधिसत्त्व निग्रोध नाम के राजा थे। यहाँ भी दोनों....। (१९)

"और फिर जब देवदत्त खण्डहाल नाम का ब्राह्मण था, तब बोधिसत्त्व चन्द नाम के राजकुमार थे। यहाँ खण्डहाल ऊँचा था ही। (२०)

"और फिर जब देवदत्त ब्रह्मदत्त नाम का राजा था, तब बोधिसत्त्व उनके पुत्र थे, जिनका नाम कुमार महापद्म था। वहाँ उस राजा ने अपने पुत्र को सात बार चोरप्रपात (पहाड़) से गिरवा दिया था, जहाँ से गिरा कर चोर मारे जाते थे। पिता अपने पुत्र से बड़ा होता ही है, अतः यहाँ भी देवदत्त ही बड़ा था। (२१)

"अज्जेतरहि उभो पि कुले जायिंसु। बोधिसत्तो बुद्धो अहोसि सब्बञ्ञू लोकनायको, देवदत्तो तस्स देवातिदेवस्स सासने पब्बजित्वा इद्धिं निब्बत्तेत्वा बुद्धालयं अकासि। किन्नु, भन्ते नागसेन, यं मया भणितं तं सब्बं तथं, उदाहु वितथं" ति?

१४. "यं त्वं, महाराज, बहुविधं कारणं ओतारेसि सब्बं तं तथेव, नो अञ्ञथा" ति। "यदि, भन्ते नागसेन, कण्हो पि सुक्को पि समसमगतिका होन्ति, तेन हि कुसलं पि अकुसलं पि समसमविपाकं होती" ति? "न हि, महाराज, कुसलं पि अकुसलं पि समसमविपाकं होति। न हि, महाराज, देवदत्तो सब्बजनेहि पटिविरुद्धो, यो तस्स बोधिसत्तेन पटिविरोधो सो तस्मिं तस्मिं येव भवे पच्चति, फलं देति। देवदत्तो पि, महाराज, इस्सरिये ठितो जनपदेसु आरक्खं देति, सेतुं सभं पुञ्ञसालं कारेति, समणब्राह्मणानं कपणद्धिकवणिब्बकानं नाथानाथानं यथापणिहितं दानं देति। तस्स सो विपाकेन भवे सम्पत्तियो पटिलभति। कस्सेतं, महाराज, सक्का वत्तुं—'विना दानेन दमेन संयमेन उपोसथकम्मेन सम्पत्तिं अनुभविस्सती' ति!

"यं पन त्वं, महाराज, एवं वदेसि—'देवदत्तो च बोधिसत्तो च एकतो अनुपरिवत्तन्ती' ति, सो न जातिसतस्स अच्चयेन समागमो अहोसि, न जातिसहस्सस्स, न जातिसतसहस्सस्स अच्चयेन, कदाचि करहचि बहूनं अहोरत्तानं अच्चयेन समागमो अहोसि।

"यं पनेतं, महाराज, भगवता काणकच्छपोपमं उपदस्सितं मनुस्सत्तप्पटिलाभाय, तथूपमं, महाराज, इमेसं समागमं धारेहि।

"और फिर जब देवदत्त महाप्रताप नाम का राजा हुआ था, तब बोधिसत्त्व उसके पुत्र कुमार धर्मपाल थे। राजा ने अपने पुत्र के हाथ, पैर और शिर को कटवा लिया था।" (२२)

"और फिर इस जन्म में दोनों शाक्य–कुल ही में उत्पन्न हुए। और बोधिसत्त्व सर्वज्ञ संसार के नायक बुद्ध हुए। देवदत्त ने भी प्रव्रजित होकर देवातिदेव बुद्ध का शासन ग्रहण किया। जब उसने अतिशय ऋद्धियाँ पायीं तो उसके मन में भी बुद्ध बन बैठने की उत्सुकता उत्पन्न हुई।"

१४. "भन्ते नागसेन! अब आप विचार कर लें, मैंने जो कुछ कहा है, वह उचित है या अनुचित?" "महाराज! आपने जो कुछ भी कहा है, सभी सर्वथा उचित है, अनुचित नहीं।" "भन्ते नागसेन! तो इससे यही पता चलता है कि हृदय का काला होना या साफ होना—दोनों ही बराबर हैं, उनके फल समान ही होते हैं।" "नहीं, महाराज! पुण्य और पाप के फल समान नहीं होते। महाराज! देवदत्त के पक्ष में लोग नहीं रहते थे। बोधिसत्त्व के विरुद्ध कोई नहीं होता था। देवदत्त के मन में बोधिसत्त्व के प्रति जो वैरभाव था, वह प्रत्येक जन्म में पकता ही गया और उसके फल भी मिलते गये। महाराज! देवदत्त भी ऐश्वर्य प्राप्त करके लोगों की रक्षा करता था; नदियों पर पुल, न्यायसभायें और धर्मशालायें बनवाता था। वह श्रमण, ब्राह्मण, दरिद्र, यात्री और अनाथों को उनकी आवश्यकता के अनुसार दान देता था। वह उसी के फल से हर एक जन्म में सम्पत्तिशाली होता रहा। महाराज! कौन ऐसा कह सकता है कि 'कोई दान, दम, संयम और उपोसथकर्मों के विना सम्पत्ति पा सकता है।'

"महाराज! जो आप ऐसा कहते हैं कि देवदत्त और बोधिसत्व दोनों साथ ही जन्म लेते आये, सो केवल कुछ सैकड़ों या हजारों जन्म से ही नहीं, किन्तु अनादि काल से।

"महाराज! भगवान् ने जैसे मनुष्यत्व प्राप्त करने का प्रयास करने वाले काने कछुए की बात कही है, वैसे ही इन दोनों का साथ जन्म लेते आना समझना चाहिये।

"न, महाराज, बोधिसत्तस्स देवदत्तेनेव सद्धिं समागमो अहोसि, थेरो पि, महाराज, सारिपुत्तो अनेकेसु जातिसतसहस्सेसु बोधिसत्तस्स पिता अहोसि, महापिता....चुल्लपिता.... भाता....पुत्तो.... भागिनेय्यो....मित्तो अहोसि।

"बोधिसत्तो पि, महाराज, अनेकेसु जातिसतसहस्सेसु थेरस्स सारिपुत्तस्स पिता अहोसि, महापिता....चुल्लपिता....भाता....पुत्तो....भागिनेय्यो....मित्तो अहोसि। सब्बे पि, महाराज, सत्तनिकायपरियापन्ना संसारसोतमनुगता संसारसोतेन वुय्हन्ता अप्पियेहि पि पियेहि पि समागच्छन्ति। यथा, महाराज, उदकं सोतेन वुय्हमानं सुचिअसुचिकल्याणपापकेन समागच्छति; एवमेव खो, महाराज,सब्बे पि सत्तनिकायपरियापन्ना संसारसोतमनुगता संसारसोतेन वुय्हन्ता अप्पियेहि पि पियेहि पि समागच्छति। देवदत्तो, महाराज, यक्खो समानो अत्तना अधम्मो परे अधम्मे नियोजेत्वा सत्तपञ्ञासवस्सकोटियो सट्ठिं च वस्ससतसहस्सानि महानिरये पच्चि। बोधिसत्तो पि, महाराज, यक्खो समानो अत्तना धम्मो परे धम्मे नियोजेत्वा सत्तपञ्ञासवस्सकोटियो सट्ठिं च वस्ससतसहस्सानि सग्गे मोदि सब्बकामसमङ्गी। अपि च, महाराज, देवदत्तो इमस्मिं भवे बुद्धं अनासादनीयमासादयित्वा समग्गं च सङ्घं भिन्दित्वा पथविं पाविसि। तथागतो बुज्झित्वा सब्बधम्मे परिनिब्बुतो उपधिसङ्खये" ति।

"साधु,भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी" ति।

८. अमरादेवीपञ्हो

१५. "भन्ते नागसेन, भासितं पेतं भगवता—

'सचे लभेथ खणं वा रहो वा,
निमन्तकं वा पि लभेथ तादिसं।
सब्बा व इत्थी कयिरुं नु पापं,
अञ्ञं अलद्धा पीठसप्पिना सद्धिं' ति॥

"महाराज! बोधिसत्त्व की केवल देवदत्त के साथ ही भेंट होती नहीं आई थी. किन्तु स्थविर सारिपुत्र भी सैकड़ों और हजारों जन्मों में बोधिसत्त्व के पिता हुए थे, ताऊ, चाचा, भ्राता, पुत्र, बहनोई या मित्र हुए थे।

"महाराज! बोधिसत्त्व भी अनेक सैकड़ों और हजारों जन्मों में स्थविर सारिपुत्र के पिता हुए थे, ताऊ, चाचा, भ्राता, पुत्र, बहनोई या मित्र हुए थे। महाराज! नाना प्रकार के जितने जीव हैं जो संसार की धारा में बह रहे हैं, इसके वेग में पड़कर प्रिय और अप्रिय दोनों प्रकार के मित्रों से मिलते हैं—जैसे, जल धारा में आकर अच्छी और बुरी सभी प्रकार की चीजों से आ मिलता है। महाराज! देवदत्त ने पापी यक्ष होकर अनेक लोगों को पाप में लगा दिया था। इससे वह बहुत काल तक नरक में पचता रहा। किन्तु, बोधिसत्व ने महान् पुण्य–शील यक्ष होकर लोगों को पुण्य में लगाया था। इससे वे बहुत काल तक स्वर्ग–सुख भोगते रहे। और इस जन्म में बुद्ध पर घात लगाने तथा सङ्घ को फोड़ने के पाप से देवदत्त पृथ्वी में धँस गया। और उधर भगवान् ने जानने योग्य सभी बातों को जानकर बुद्धत्व प्राप्त कर लिया और जीवन की रक्षा के जितने कारण हैं सभी का नाश कर परमनिर्वाण पा लिया।"

"ठीक है, भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं, मुझे स्वीकार है।"

८. अमरादेवीविषयकप्रश्न—१५. "भन्ते नागसेन! भगवान् ने यह भी कहा है,—

"पुन च कथीयति—'महोसधस्स भरिया अमरा नाम इत्थी गामके ठपिता पवुत्थपतिका रहो निसिन्ना विवित्ता राजप्पटिसमं सामिकं करित्वा सहस्सेन निमन्तियमाना पापं नाकासी' ति। *(उम्मग्गजा० ५४६)* यदि, भन्ते नागसेन, भगवता भणितं—'सचे ....पे०.... सद्धिं' ति, तेन हि 'महोसधस्स भरिया....पे०....नाकासी' ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि महोसधस्स भरिया....पे०....नाकासि, तेन हि—'सचे ....पे०....सद्धिं' ति तं पि वचनं मिच्छा। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो तवानुप्पत्तो, सो तया निब्बाहितब्बो" ति?

१६. "भासितं पेतं महाराज, भगवता—'सचे ....पे०....सद्धिं' ति। कथीयति च—'महोसधस्स भरिया ....पे०....नाकासी' ति। करेय्य सा, महाराज, इत्थी सहस्सं लभमाना तादिसेन पुरिसेन सद्धिं पापकम्मं, न सा करेय्य, सचे खणं वा रहो वा निमन्तकं वा पि तादिसं लभेय्य। विचिनन्ती सा, महाराज, अमरा इत्थी न अद्दसा खणं वा रहो निमन्तकं वा पि तादिसं।

"इध लोके गरहभया खणं न पस्सि, परलोके निरयभया खणं न पस्सि, 'कटुकविपाकं पापं' ति खणं न पस्सि, पियं न मुञ्चितुकामा खणं न पस्सि, सामिकस्स गरुकताय खणं न पस्सि, धम्मं अपचायन्ती खणं न पस्सि, अनरियं गरहन्ती खणं न पस्सि, किरियं न भिन्दितुकामा खणं न पस्सि। एवरूपेहि बहूहि कारणेहि खणं न पस्सि। (१)

'यदि अवकाश और एकान्त स्थान पावें तथा किसी बदमाश को पावें तो सभी स्त्रियाँ व्यभिचार कर सकती हैं यदि और कोई न मिले तो निकम्मे अपंग के साथ ही'।।"

"फिर ऐसा भी कहा जाता है—'महोसध की भार्या अमरा नाम की स्त्री पति के विदेश चले जाने पर गाँव में अकेली और एकान्त में रहकर भी अपने पति को अपना सर्वस्व मानती हुई हजार रुपयों का प्रलोभन दिये जाने पर भी पाप करने के लिये राजी नहीं हुयी। (क) भन्ते नागसेन! यदि भगवान् का कहना ठीक है तो अमरा देवी वाली बात अवश्य झूठी होगी। (ख) और यदि अमरा देवी इतनी पतिव्रता रही तो भगवान् की कही बात झूठी सिद्ध हो जाती है। यह भी एक दुविधा ....?"

१६. "महाराज! भगवान् ने स्त्रियों के विषय में यथार्थ में वैसा कहा है। लोग जो अमरा देवी के विषय में कहते हैं वह भी ठीक ही है। महाराज! वह ऐसा पापकर्म करे या न करे इसकी तो तब परीक्षा हो सकती थी, जब उसे उपयुक्त अवकाश, एकान्तस्थान और उपयुक्त लम्पट पुरुष मिलते। महाराज! अमरा देवी को वैसा उपयुक्त अवकाश, एकान्तस्थान और पुरुष ही नहीं मिला।

"संसार में निन्दा हो जाने के भय से उसने उचित अवसर नहीं देखा। मरने के बाद नरक में जाने के भय से भी उसने उचित अवकाश नहीं देखा। पाप फल बुरा होता है— इस विचार से भी उसने उचित अवसर नहीं देखा। अपने प्रिय पति को छोड़ देना उसे सह्य नहीं था—इससे भी उसने उचित नहीं समझा। अपने स्वामी के सम्मान का ध्यान करके भी उसने उचित अवसर नहीं देखा। धर्म का विचार करके भी उसने उचित अवकाश नहीं देखा। दुष्कर्म से घृणा करती हुई भी उसने उचित अवसर नहीं देखा। 'कहीं मेरा व्रत न टूट जाय'—यह विचार कर भी उसने उचित अवसर नहीं देखा। इसी तरह के और भी बहुत से कारणों से अमरा देवी ने उचित अवसर नहीं देखा। (१)

---

१. आ० भिक्षु ज० काश्यप के हिन्दी अनुवाद में यहाँ यह टिप्पणी दी गयी है—

"रिस् डेविस लिखते हैं—'बुद्ध ने यह गाथा कहीं नहीं कही। ग्रन्थकर्ता ने प्रमाद से ऐसा लिख दिया होगा। यह गाथा जातक ५३६ में आती है। वहाँ भी बुद्ध के उपदेश के रूप में नहीं, किन्तु एक लोकोक्ति की तरह।'

"रहो पि सा लोके विचिनित्वा न पस्सन्ती पापं नाकासि। सचे सा मनुस्सेहि रहो लभेय्य, अथ अमनुस्सेहि रहो न लभेय्य। सचे अमनुस्सेहि रहो लभेय्य, अथ परचित्तविदूहि पब्बजितेहि रहो न लभेय्य। सचे परचित्तविदूहि पब्बजितेहि रहो लभेय्य, अथ परचित्तविदूनीहि देवताहि रहो न लभेय्य। सचे परचित्तविदूनीहि देवताहि रहो लभेय्य, अथ अत्तना व पापेहि रहो न लभेय्य। सचे अत्तना व पापेहि रहो लभेय्य, अथ अधम्मेन रहो न लभेय्य। एवरूपेहि बहुविधेहि कारणेहि रहो अलभित्वा पापं नाकासि। (२)

"निमन्तकं पि सा लोके विचिनित्वा तादिसं अलभन्ती पापं नाकासि। महोसधो, महाराज, पण्डितो अट्ठवीसतिया अङ्गेहि समन्नागतो। कतमेहि अट्ठवीसतिया अङ्गेहि समन्नागतो? महोसधो, महाराज, सूरो, हिरिमा, ओत्तप्पी, सपक्खो, मित्तसम्पन्नो, खमो, सीलवा, सच्चवादी, सोचेय्यसम्पन्नो, अक्कोधनो, अनतिमानी, अनसूय्यको, वीरियवा, आयूहको, सङ्गाहको, संविभागी, सखिलो, निवातवुत्ति, सण्हो, असठो, अमायावी, अतिबुद्धिसम्पन्नो, कित्तिमा, विज्जासम्पन्नो, हितेसी उपनिस्सितानं, पत्थितो सब्बजनस्स, धनवा, यसवा। महोसधो, महाराज, पण्डितो इमेहि अट्ठवीसतिया अङ्गेहि समन्नागतो। सा अञ्ञं तादिसं निमन्तकं अलभित्वा पापं नाकासी" ति। (३)

"साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी" ति।

९. अरहन्तअभायनपञ्हो

१७. "भन्ते नागसेन, भासितं पेतं भगवता—'विगतभयसन्तासा अरहन्तो' पि। पुन

"मनुष्यों से न छिपा सकने के भय से उसने पाप नहीं किया। यदि मनुष्यों से बात छिप भी जाय तो अमनुष्यों से नहीं छिप सकती! यदि अमनुष्यों से बात छिप जाय तो दूसरों के चित्त को जान लेने वाले भिक्षुओं से नहीं छिप सकती। यदि भिक्षुओं से बात छिप जाय तो दूसरों के चित्त को जाने लेने वाले देवताओं से नहीं छिप सकती। यदि देवताओं से भी बात छिप जाय तो अपने मन में ही खटकती रहेगी। यदि मन में नहीं भी खटके तो भी अधर्म होगा। इस प्रकार के अनेक कारणों से एकान्त (रहस्य) न पा सकने के कारण अमरा देवी ने पाप नहीं किया। (२)

"ऐसे बहकाने वाले योग्य पुरुष को न पाकर भी अमरा देवी ने पाप नहीं किया। महाराज! महोसध नाम का पण्डित अट्ठाइस गुणों से युक्त था। किन अट्ठाईस गुणों से युक्त था? महाराज! महोसध पण्डित १. सूर, २. नम्र, ३. पाप कर्मों से संकोच करने वाला, ४. बहुत से साथियों वाला, ५. अनेक मित्रों वाला, ६. क्षमापरायण, ७. शीलवान्, ८ सत्यवादी, ९. पवित्र, १०. क्रोधरहित, ११. अभिमानरहित, १२. द्वेषरहित, १३. वीर्यवान्, १४. सत्कर्मरत, १५. लोकप्रिय, १६. परस्पर बाँट कर किसी चीज का भोग करने वाला, १७. मित्रता का व्यवहार करने वाला, १८. तड़क भड़क से दूर रहने वाला, १९. श्लक्ष्ण (मृदु व्यवहार कर्त्ता), २०. लगाव-बझाव न रखने वाला, २१. निष्कपट, २२. बुद्धिमान्, २३. कीर्तिमान्, २४. विद्याओं का ज्ञाता, २५. अपने पास आए हुए लोगों का हितचिन्तक, २६. सभी लोगों से प्रशंसित, २७. धनवान् और २८. यशस्वी था। महाराज! महोसध पण्डित में ये अट्ठाइस गुण थे। अतः अमरा देवी ने ऐसे (गुणों वाले) किसी दूसरे बहकाने वाले को न पाकर पाप नहीं किया।" (३)

"भन्ते नागसेन! आपने ठीक कहा। मैं इसे स्वीकार करता हूँ।"

९. क्षीणास्रव (अर्हत्) का अभयत्व—१७. "भन्ते नागसेन! भगवान् ने कहा है—'अर्हत् लोग डर और भय

च नगरे राजगहे धनपालकं हत्थिं भगवति ओपतन्तं दिस्वा पञ्च खीणासवसतानि परिच्चजित्वा जिनवरं पक्कन्तानि दिसाविदिसं एकं ठपेत्वा थेरं आनन्दं। *(वि० पि०, चु०व०, पृ०४८)* किं नु खो, भन्ते नागसेन, ते अरहन्तो भया पक्कन्ता 'पञ्ञायिस्सति सकेन कम्मेना' ति दसबलं पातेतुकामा पक्कन्ता, उदाहु तथागतस्स अतुलं विपुलमसमं पाटिहारियं दट्ठुकामा पक्कन्ता? यदि, भन्ते नागसेन, भगवता भणितं—'विगतभयसन्तासा अरहन्तो' ति, तेन हि—'नगरे ....पे०....आनन्दं' ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि नगरे राजगहे धनपालकं हत्थिं भगवति ओपतन्तं दिस्वा पञ्चखीणासवसतानि परिच्चजित्वा जिनवरं पक्कन्तानि दिसाविदिसं, एकं ठपेत्वा थेरं आनन्दं, तेन हि—'विगतभयसन्तासा अरहन्तो' ति तं पि वचनं मिच्छा। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो तवानुप्पत्तो, सो तया निब्बाहितब्बो' ति?

१८. ''भासितं पेतं, महाराज, भगवता—'विगतभयसन्तासा अरहन्तो' ति। 'नगरे च राजगहे धनपालकं हत्थिं भगवति ओपतन्तं दिस्वा पञ्च खीणासवसतानि परिच्चजित्वा जिन-वरं पक्कन्तानि दिसाविदिसं एकं ठपेत्वा थेरं आनन्दं'। तं च पन न भया, नापि भगवन्तं पातेतुकामताय।

''येन पन, महाराज, हेतुना अरहन्तो भायेय्युं तसेय्युं वा, सो हेतु अरहन्तानं समुच्छिन्नो, तस्मा विगतभयसन्तासा अरहन्तो। भायति नु, महाराज, महापथवी खणन्ते पि भिन्दन्ते पि समुद्दपब्बतगिरिसिखरे'' ति? ''नहि, भन्ते'' ति। ''केन कारणेन, महाराजा'' ति? ''नत्थि, भन्ते, महापथविया सो हेतु येन हेतुना महापथवी भायेय्य वा तसेय्य वा'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, नत्थि अरहन्तानं सो हेतु येन हेतुना अरहन्तो भायेय्युं वा तसेय्युं वा।

से छूट जाते हैं'। राजगृह में धनपाल नामक हाथी को भगवान् पर टूटते देखकर पाँच सौ क्षीणास्रव भिक्षु बुद्ध को छोड़, अपनी जान ले इधर–उधर भाग खड़े हुए, केवल स्थविर आनन्द रह गये। *(चु० व०, पृ० ४८६)* भन्ते नागसेन! यह क्यों? क्या वे डर कर भाग गये थे? अथवा, भगवान् को अकेले मर जाने के लिये या यह सोच कर कि 'बुद्ध को स्वयं ज्ञात होगा!' वे भाग गये थे? अथवा, भगवान् कैसे अपना अनन्त बल दिखाते हैं—इसे देखने के लिये वे भाग गये? (क) भन्ते नागसेन! यदि भगवान् ने यह ठीक कहा है—'अर्हत् लोग त्रास और भय से छूट जाते हैं' तो धनपाल हाथी की बात झूठी ठहरती है। (ख) और यदि धनपाल हाथी के टूट पड़ने पर क्षीणास्रव भिक्षु सचमुच भाग गये थे, तो भगवान् का यह कहना झूठा सिद्ध होता है कि 'अर्हत् लोग त्रास और भय से छूट जाते हैं।' यह भी एक द्विविधा....?''

१८. ''महाराज ! भगवान् ने यथार्थ ही कहा है—'अर्हत् लोग त्रास और भय से छूट जाते हैं।' और यह भी सत्य है कि 'राजगृह नगर में धनपाल नामक हाथी को भगवान् पर टूट पड़ते देखकर पाँच सौ क्षीणास्रव भिक्षु उन्हें छोड़ अपने प्राण ले कर इधर–उधर भाग खड़े हुए, केवल स्थविर आनन्द रह गये'। किन्तु न तो वे भिक्षु भय से और न भगवान् को अकेले मरने देने की इच्छा से उन्हें छोड़ कर भागे थे।

''महाराज! अर्हत् लोगों में भय के सभी कारण नष्ट हो गये रहते हैं। अतः वे भय से मुक्त हो जाते हैं। महाराज! जब कोई मनुष्य पृथ्वी खोदता है तो क्या पृथ्वी डर जाती है? क्या बड़े–बड़े समुद्र और पर्वतों के भार को सहने से पृथ्वी डर जाती है?'' ''नहीं, भन्ते!'' ''क्यों नहीं डरती?'' ''क्योंकि महापृथ्वी में त्रास का कोई कारण नहीं है।'' ''महाराज! उसी तरह, अर्हत् में ऐसे कोई कारण ही नहीं रहते कि जिससे उन्हें त्रास या भय हो।

"भायति नु, महाराज, गिरिसिखरं छिन्दन्ते वा भिन्दन्ते वा पतन्ते वा अग्गिना दहन्ते वा" ति? "न हि, भन्ते" ति। "केन कारणेन, महाराजा" ति? "नत्थि, भन्ते, गिरिसिखरस्स सो हेतु येन हेतुना गिरिसिखरं भायेय्य वा तसेय्य वा" ति। "एवमेव खो, महाराज, नत्थि अरहन्तानं सो हेतु येन हेतुना अरहन्तो भायेय्युं वा तस्सेय्युं वा।

"यदि पि, महाराज, लोकधातुसतसहस्सेसु ये केचि सत्तनिकायपरियापन्ना सब्बे पि ते सत्तिहत्था एकं अरहन्तं उपधावित्वा तासेय्युं, न भवेय्य अरहतो चित्तस्स किञ्चि अञ्ञथत्तं। किं कारणं? अट्ठानमनवकासताय।

"अपि च, महाराज, तेसं खीणासवानं एवं चेतोपरिवितक्को अहोसि—'अज्ज नरवरपवरे जिनवसभे नगरवरमनुप्पविट्ठे वीथिया धनपालको हत्थी आपतिस्सति, अयं असंसयं उपट्ठाको न परिच्चजिस्सति। यदि मयं सब्बे पि भगवन्तं न परिच्चजिस्साम, आनन्दस्स गुणो पाकटो न भविस्सति, न हेव च तथागतं समुपगमिस्सति हत्थिनागो, हन्द! मयं अपगच्छाम, एवमिदं महतो जनकायस्स किलेसबन्धनमोक्खो भविस्सति, आनन्दस्स च गुणो पाकटो भविस्सती' ति। एवं ते अहरन्तो आनिसंसं दिस्वा दिसाविदिसं पक्कन्ता" ति।

"सुविभत्तो, भन्ते नागसेन, पञ्हो। एवमेतं नत्थि अरहन्तानं भयं वा सन्तासो वा, आनिसंसं दिस्वा अरहन्तो पक्कन्ता दिसाविदिसं" ति।

१०. बुद्धसब्बञ्ञुभावपञ्हो

१९. "भन्ते नागसेन, तुम्हे भणथ—'तथागतो सब्बञ्ञू' ति। *(अं० नि०, ४-१३)* पुन च भणथ—'सारिपुत्तमोग्गलानप्पमुखे भिक्खुसङ्घे पणामिते चातुमेय्यका च सक्या ब्रह्मा च सहम्पति बीजूपमं च वच्छतरुणूपमं च उपदस्सेत्वा भगवन्तं पसादेसुं निज्झत्तं अकंसू' ति।

"महाराज! क्या बड़े-बड़े पहाड़ों को टूट जाने का, भहरा जाने का, गिर पड़ने का या जल जाने का भय होता है?" "नहीं, भन्ते!" "क्यों नहीं?" "क्योंकि उनमें भय के कोई कारण ही नहीं हैं।" "महाराज! उसी तरह, अर्हत् में ऐसे कोई कारण ही नहीं रहते कि जिससे उन्हें त्रास या भय हो।

"महाराज! अर्हतों के साथ भी वही बात होती है। यदि संसार भर में जितने नानारूप जीव हैं, सब एक साथ ही किसी अर्हत् को डराना चाहें तो भी उनके हृदय में किसी प्रकार का विकार नहीं ला पाते। सो क्यों? क्योंकि भय उत्पन्न होने का कोई हेतु या प्रत्यय उनके चित्त में नहीं रह गया।

"महाराज! उन अर्हतों के मन में ये विचार आये थे—'आज नरश्रेष्ठ तथा जितेन्द्रियों में अग्र बुद्ध पर नगरों में श्रेष्ठ राजगृह में प्रवेश करते समय सामने की सड़क से धर्मपाल नामक हाथी टूटेगा। उन देवातिदेव बुद्ध की सेवा-शुश्रूषा में रहने वाले स्थविर आनन्द उन्हें कभी छोड़ नहीं सकते। यदि हम लोग हट न जायँ तो स्थविर आनन्द का गुण प्रकट नहीं होगा और न बुद्ध तक हाथी पहुँच सकेगा। इसलिये अच्छा हो कि हम लोग हट जायँ। इस तरह, बहुत से लोग क्लेश-बन्धन से छूट जायेंगे तथा स्थविर आनन्द के गुण भी चारों ओर प्रकट हो जायेंगे।' इसी विचार से वे हट गये थे।"

"ठीक हैं, भन्ते नागसेन! आपने अच्छा समझाया। बात यथार्थतः ऐसी ही है। अर्हतों को त्रास या भय नहीं हुआ, अपितु अच्छी बात विचार कर ही वे चारों ओर बिखर गये थे।"

१०. बुद्ध-सर्वज्ञताविषयकप्रश्न—१९. "भन्ते नागसेन! आप लोग कहा करते हैं—'बुद्ध सर्वज्ञ हैं।' फिर यह भी कहा जाता है कि 'शारिपुत्र और मोग्गल्लान को सङ्घ के साथ निकाल दिये जाने पर चातुमा के

(म० नि०, चातुमासुत्त) किन्तु खो, भन्ते नागसेन, अञ्ञाता ता उपमा तथागतस्स, याहि तथागतो उपमाहि ओरतो खमितो उपसन्तो निज्झत्तिं गतो। यदि, भन्ते नागसेन, तथागतस्स ता उपमा अञ्ञाता, तेन हि बुद्धो असब्बञ्ञू। यदि ञाता, तेन हि ओकस्स पसय्ह वीमंसापेक्खो पणामेसि, तेन हि तस्स अकारुञ्ञता सम्भवति। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो तवानुप्पत्तो, सो तया निब्बाहितब्बो'' ति?

२०. ''सब्बञ्ञू, महाराज, तथागतो, ताहि च उपमाहि भगवा पसन्नो ओरतो खमितो उपसन्तो निज्झत्तिं गतो। धम्मस्सामी, महाराज, तथागतो, तथागतप्पवेदितेहेव ते ओपम्मेहि तथागतं आराधेसुं तोसेसुं पसादेसुं, तेसं च तथागतो पसन्नो 'साधू' ति अब्भनुमोदि।

''यथा, महाराज, इत्थी सामिकस्स सन्तकेनेव धनेन सामिकं आराधेति तोसेति पसादेति, तं च सामिको 'साधू' ति अब्भनुमोदति; एवमेव खो, महाराज, चातुमेय्यका च सक्या ब्रह्मा च सहम्पति तथागतप्पवेदितेहेव ओपम्मेहि तथागतं आराधेसुं तोसेसुं पासादेसुं, तेसं च तथागतो पसन्नो 'साधू' ति अब्भनुमोदि।

''यथा वा पन, महाराज, कप्पको रञ्ञो सन्तकेनेव सुवण्णफणकेन रञ्ञो उत्तमङ्गं पसाधयमानो राजानं आराधेति तोसेति पासदेति, तस्स च राजा पसन्नो 'साधू' ति अब्भनुमोदति, यथिच्छितकमनुप्पदेति; एवमेव खो, महाराज, चातुमेय्यका च सक्या ब्रह्मा च सहम्पति तथागतप्पवेदितेहेव ओपम्मेहि तथागतं आराधेसुं पसादेसुं, तेसं च तथागतो पसन्नो 'साधू' ति अब्भनुमोदि।

''यथा वा पन, महाराज, सद्धिविहारिको उपज्झायाभतं पिण्डपातं गहेत्वा उपनामेन्तो

शाक्य और ब्रह्मा सहम्पति भगवान् के पास गये। उन्होंने बीज और बछड़े की उपमा देकर भगवान् को समझाया और क्षमा करवा दिया'। भन्ते नागसेन! भगवान् को क्या वे बातें ज्ञात नहीं थीं कि उसे सुनकर वे मान गये और उन्होंने क्षमा कर दिया? (क) भन्ते नागसेन! यदि भगवान् को वे उपमायें ज्ञात नहीं थी तो उनकी सर्वज्ञता पर आक्षेप आता है। (ख) और यदि उनको ये उपमायें ज्ञात थीं, तो उन्होंने विना समझे–बूझे कर्कशता के कारण उनकी परीक्षा के लिये निकाल दिया था; इस तरह, उनकी करुणा पर आक्षेप आता है। यह भी एक द्विविधा....?"

२०. "महाराज! बुद्ध सर्वज्ञ थे, तो उन उपमाओं से प्रसन्न हो कर मान गये और उन्होंने क्षमा कर दिया। महाराज! बुद्ध धर्मगुरु हैं। वे दोनों उपमायें उन्हीं के द्वारा पहले बतायी जा चुकी थीं।

"महाराज! जैसे पति की अपनी ही वस्तुओं से स्त्री उसे प्रसन्न कर देती है और मना लेती है; और वह कुछ भी स्वीकार कर लेता है। महाराज! इसी तरह, चातुमा के शाक्य और ब्रह्मा सहम्पति ने भगवान् को उनकी ही बतायी हुई उपमाओं से प्रसन्न कर मना लिया था। भगवान् ने भी 'बहुत अच्छा' कह कर अपनी स्वीकृति दे दी थी।

"महाराज! जैसे राजा की अपनी ही कंघी से नाई उनके बालों को सवाँर उन्हें प्रसन्न कर देता है। राजा 'बहुत अच्छा' कह अपनी स्वीकृति प्रदान कर देता है तथा नाई को मुंह–माँगा पुरस्कार देता है। महाराज! इसी तरह, चातुमा के शाक्य और ब्रह्मा सहम्पति ने भगवान् को उनकी ही बतायी हुई उपमाओं से प्रसन्न कर लिया था। भगवान् ने भी 'बहुत अच्छा' कह अपनी स्वीकृति दे दी थी।

"महाराज! जैसे सेवा–शुश्रूषा करने वाला श्रामणेर अपने उपाध्याय के ही लाये गये पिण्डपात

उपज्झायं आराधेति तोसेति पसादेति, तं च उपज्झायो पसन्नो 'साधू' ति अब्भनुमोदति; एवमेव खो, महाराज, चातुमेय्यका च सक्या ब्रह्मा च सहम्पति तथागतप्पवेदितेहेव ओपम्मेहि तथागतं आराधेसुं पसादेसुं, तेसं च तथागतो पसन्नो 'साधू' ति अब्भनुमोदित्वा सब्बदुक्ख-परिमुत्तिया धम्मं देसेसी'' ति।

''साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी'' ति॥

(इमस्मिं वग्गे दस पञ्हा) *चतुत्थो सब्बञ्ञुतञाणवग्गो निट्ठितो॥*

५. सन्थववग्गो

१. सन्थवपञ्हो

१. ''भन्ते नागसेन, भासितं पेतं भगवता—

'सन्थवतो भयं जातं, निकेता जायते रजो।
अनिकेतमसन्थवं, एतं वे मुनिदस्सनं' ति॥ *(सु० नि०, मुनिसुत्तं)*

''पुन च भगवता भणितं— 'विहारे कारये रम्मे, वासयेत्थ बहुस्सुते' ति *(चु० व०, ४-१,५)*। ''यदि, भन्ते नागसेन, तथागतेन भणितं—'सन्थवतो....पे०....मुनिदस्सनं' ति, तेन हि 'विहारे ....पे०.... बहुस्सुते' ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि तथागतेन भणितं—'विहारे ....पे०.... बहुस्सते' ति, तेन हि 'सन्थवतो ....पे०.... दस्सनं' ति तं पि वचनं मिच्छा। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो तवानुप्पत्तो, सो तया निब्बाहितब्बो'' ति?

२. ''भासितं पेतं, महाराज, भगवता—'सन्थवतो....पे०....दस्सनं' ति, भणितं च—

से भोजन निकाल कर उनके सामने ठीक से परोस देता है, जिससे वह उपाध्याय प्रसन्न हो 'बहुत अच्छा' कह अपनी स्वीकृति दे देते हैं। महाराज! इसी तरह, चातुमा के शाक्य और ब्रह्मा सहम्पति ने भगवान् को उनकी ही बतायी हुई उपमाओं से प्रसन्न कर मना लिया। भगवान् ने भी 'बहुत अच्छा' कर अपनी स्वीकृति दे दी।''

''ठीक है, भन्ते नागसेन! आप जैसा कहते हैं स्वीकार कर लेता हूँ।।''

चौथा सर्वज्ञताज्ञानवर्ग समाप्त।।
(इस वर्ग में दस प्रश्न हैं)

५. संस्तववर्ग

१. संस्तवप्रश्न

१. ''भन्ते नागसेन! भगवान् ने यह कहा है—

'मित्रता (संसर्ग) जोड़ने से भय उत्पन्न होता है, घर–गृहस्थी में पड़ने से राग बढ़ता है। न मित्रता का जोड़ना और न घर गृहस्थी में पड़ना—मुनि लोग यही चाहते हैं'।

''साथ ही साथ यह भी कहा है—'सुन्दर विहार बनवा कर उनमें विद्वानों को बसावें'। (क) भन्ते! यदि भगवान् ने यथार्थतः कहा है—'मित्रता जोड़ने से....' तो यह बात झूठी ठहरती है कि 'सुन्दर विहार बनवा कर उनमें विद्वानों को बसावें'। (ख) और यदि यह ठीक कहा है कि 'सुन्दर विहार बनवा उनमें विद्वानों को बसावें' तो यह बात झूठी ठहरती है कि 'मित्रता जोड़ने से....'। यह भी एक द्विविधा....?''

२. ''महाराज! भगवान् ने यथार्थ कहा है—'मित्रता जोड़ने से भय उत्पन्न होता है....चाहते हैं।'

'विहारे ....पे०....बहुस्सुते' ति। यं महाराज, भणितं—'सन्थवतो ....पे०....दस्सनं' ति, तं सभाववचनं असेसवचनं निस्सेसवचनं निप्परियायवचनं समणानुच्छवं समणसारुप्पं समणपटिरूपं समणारहं समणगोचरं समणपटिपदा समणपटिपत्ति। यथा, महाराज, आरञ्ञको मिगो अरञ्ञे पवने चरमानो निरालयो अनिकेतो यथिच्छकं सयति; एवमेव खो, महाराज, भिक्खुना—'सन्थवतो ....पे०.... दस्सनं' ति चिन्तेतब्बं।

"यं पन, महाराज, भगवता भणितं—'विहारे ....पे०....बहुस्सुते' ति, तं द्वे अत्थवसे सम्पस्समानेन भगवता भणितं। कतमे द्वे? विहारदानं नाम सब्बबुद्धेहि वण्णितं, अनुमतं थोमितं पसत्थं, तं ते विहारदानं दत्वा जातिजरामरणा परिमुच्चिस्सन्ती ति, अयं ताव पठमो आनिसंसो विहारदाने। पुन च परं विहारे विज्जमाने भिक्खुनियो व्यत्तसङ्केता भविस्सन्ति, सुलभं दस्सनं दस्सनकामानं। अनिकेते दुद्दस्सना भविस्सन्ती ति, अयं दुतियो आनिसंसो विहारदाने। इमे द्वे अत्थवसे सम्पस्समानेन भगवता भणितं—'विहारे ....पे०.... बहुस्सुते' ति। न तत्थ बुद्धपुत्तेन आलयो करणीयो निकेते" ति।

"साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी" ति।

२. उदरसंयतपञ्हो

३. "भन्ते नागसेन, भासितं पेतं भगवता—

'उत्तिट्ठे नप्पमज्जेय्य, उदरे संयतो सिया' ति।

"पुन च भगवता भणितं—'अहं खो पनुदायि, अप्पेकदा इमिना पत्तेन समतित्तिकं पि भुञ्जामि, भिय्योपि भुञ्जामी' ति। *(म० नि०, महाउदायिसुत्तं)* यदि, भन्ते नागसेन,

---

और यह भी ठीक ही है कि, 'सुन्दर विहार बनवा उनमें विद्वानों को बसावें।' महाराज! भगवान् ने जो कहा है—' मित्रता जोड़ने से ....' यह भी सत्य ही है, इसमें कुछ भी छोड़ा नहीं गया, इसकी कुछ और समालोचना नहीं की जा सकती है, यह भिक्षुओं के लिये सर्वथा उपयुक्त है, योग्य है, उचित है....। महाराज! जैसे जंगल का मृग विना घर से स्वच्छन्द घूमता है; जहाँ चाहता है वहीं सोता है। इसी तरह, भिक्षु के विषय में यह सर्वथा उचित समझना चाहिये—'मित्रता जोड़ने से ....।'

"महाराज! भगवान् ने जो कहा है— 'सुन्दर विहार बनवा कर उनमें विद्वानों को बसावें'। वह दो बातों को दृष्टि में रख कर कहा है। कौन सी दो बातें? १. विहार का दान करना सभी बुद्धों ने सराहा है, उसकी अनुमति दी है, उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है तथा उसे बहुत ही प्रशस्त बताया है। इस तरह, विहार का दान करने वाला जन्म, जरा और मृत्यु से बच जाता है। विहार-दान करने का यह फल है। फिर २. विहार बने रहने से भिक्षुओं को वासस्थान मिल जायगा। यदि भिक्षुओं के रहने का कोई विहार न बना हो तो उनसे मिलना बड़ा कठिन हो जायगा। विहार-दान करने का यह दूसरा फल है। इन दो बातों को दृष्टि में रख कर भगवान् ने कहा है, 'सुन्दर विहार बनवा कर उनमें विद्वानों को बसावें'। इसका अर्थ यह नहीं है कि भिक्षु लोग विहार को अपना घर बना लें।"

"ठीक है, भन्ते नागसेन! मैं भी इसे मान लेता हूँ।"

२. उदर-संयमविषयकप्रश्न—३. "भन्ते नागसेन! भगवान् ने कहा है—'उठो, आलस्य मत करो, भोजन करने में संयम रखो।' उन्होंने यह भी कहा है—'उदायि! कभी-कभी मैं यह पात्र भर कर या उससे भी अधिक खाता हूँ।' (क) भन्ते नागसेन! यदि भगवान् ने यथार्थतः कहा है—'उठो, आलस्य मत करो,

भगवता भणितं—'उत्तिट्ठे....पे०.... सिया' ति, तेन हि—'अहं खो ....पे०....भुञ्जामी' ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि तथागतेन भणितं—'अहं खो....पे०....भुञ्जामी' ति, तेन हि—'उत्तिट्ठे....पे०....सिया' ति तं पि वचनं मिच्छा। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो तवानुप्पत्तो, सो तया निब्बाहितब्बो' ति?

४. "भासितं पेतं, महाराज, भगवता—'उत्तिट्ठे....पे०.... सिया' ति। भणितं च—'अहं खो....पे०....भुञ्जामी' ति। यं, महाराज, भगवता भणितं—'उत्तिट्ठे....पे०....सिया' ति तं सभाववचनं असेसवचनं निस्सेसवचनं निप्परियायवचनं भूतवचनं तच्छवचनं याथाववचनं अविपरीतवचनं इसिवचनं मुनिवचनं भगवन्तवचनं पच्चेकबुद्धवचनं जिनवचनं सब्बञ्ञुवचनं, तथागतस्स अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स वचनं।

"उदरे असंयतो, महाराज, पाणं पि हनति, अदिन्नं पि आदियति, परदारं पि गच्छति, मुसा पि भणति, मज्जं पि पिबति, मातरं पि जीविता वोरोपेति, पितरं पि जीविता वोरोपेति, अरहन्तं पि जीविता वोरोपेति, सङ्घं पि भिन्दति, दुट्ठेन चित्तेन तथागतस्स लोहितं पि उप्पादेति। ननु, महाराज, देवदत्तो उदरे असंयतो सङ्घं भिन्दित्वा कप्पट्ठियं कम्मं आयूहि। एवरूपानि, महाराज, अञ्ञानि पि बहुविधानि कारणानि दिस्वा भगवता भणितं—'उत्तिट्ठे....पे०.... सिया' ति।

उदरे, संयतो, महाराज, चतुसच्चाभिसमयं अभिसमेति, चत्तारि सामञ्ञफलानि सच्छिकरोति, चतूसु पटिसम्भिदासु, अट्ठसु समापत्तिसु, छसु च अभिञ्ञासु, वसीभावं पापुणाति,

---

भोजन करने में संयम रखो' तो यह बात झूठी ठहरती है कि वे पात्र भर कर या उससे भी अधिक खाते थे। (ख) और यदि यह ठीक बात है कि भगवान् पात्र भर कर या उससे अधिक भी खाते थे तो उन्होंने ऐसा कभी नहीं कहा होगा—'उठो, आलस्य न करो; भोजन करने में संयम रखो'। यह भी एक द्विविधा....?"

४. "महाराज! भगवान् ने यथार्थ कहा है—'उठो, आलस्य मत करो; भोजन करने में संयम रखो'। और यह भी ठीक कहा है—'उदायि! कभी कभी मैं यह पात्र भर कर या उससे भी अधिक खाता हूँ'। महाराज! भगवान् ने जो कहा है— 'उठो, आलस्य न करो, भोजन में संयम करो' वह सर्वथा सत्य बात है, इसमें कुछ झूठा नहीं है, सदा चरितार्थ होने वाली यह बात है, इस पर और कुछ समालोचना नहीं की जा सकती, बात ऐसी ही है, एकदम सत्य है, जैसा कहना चाहिये था वैसा ही कहा गया है, इसको कोई उलट नहीं सकता। यह ऋषि, मुनि, भगवान्, अर्हत्, प्रत्येकबुद्ध, जिन, सर्वज्ञ, बुद्ध, सम्यक्सम्बुद्ध की कही गयी बात है।

"महाराज! भोजन में संयम न रखने से मनुष्य हिंसा भी करता है, चोरी भी करता है, परस्त्रीगमन भी करता है, झूठ भी बोलता है, सुरा भी पीता है, माता को भी मार डालता है, अर्हत् को भी मार डालता है, सङ्घ को भी फोड़ देता है, दुष्ट चित्त से बुद्ध का रक्त भी बहा देता है। महाराज! भोजन में संयम न करने के कारण ही देवदत्त ने सङ्घ को फोड़ दिया था, जिससे एक कल्प तक नरक में रहने वाला कर्मफल पाया। इसका और ऐसी ही दूसरी बहुत सी बातों का ध्यान करके बुद्ध ने कहा था—'उठो, आलस्य मत करो, भोजन करने में संयम रखो'।

"महाराज! जो भोजन करने में संयम रखता है, उसे चार आर्यसत्यों का ज्ञान प्राप्त होता है;

केवलं च समणधम्मं पूरेति। ननु, महाराज, सुकपोतको उदरे संयतो हुत्वा याव तावतिंसभवनं कम्पेत्वा देवानमिन्दं उपट्ठानमुपनेसि। एवरूपानि, महाराज, अञ्ञानि पि बहुविधानि कारणानि दिस्वा भगवता भणितं—'उत्तिट्ठे ....पे०.... सिया' ति।

यं पन, महाराज, भगवता भणितं—'अहं खो....पे०....भुञ्जामी' ति, तं कतकिच्चेन निट्ठितकिरियेन सिद्धत्थेन वुसितवोसानेन निरावरणेन सब्बञ्ञुना सयम्भुना तथागतेन अत्तानं उपादाय भणितं।

"यथा, महाराज, वन्तस्स विरित्तस्स अनुवासितस्स आतुरस्स सप्पायकिरिया इच्छितब्बा होति; एवमेव खो, महाराज सकिलेसस्स अदिट्ठसच्चस्स उदरे संयमो करणीयो होति। यथा, महाराज, मणिरतनस्स सप्पभासस्स जातिमन्तस्स अभिजातिपरिसुद्धस्स मज्जनिघंसनपरिसोधनेन करणीयं न होति; एवमेव खो, महाराज, तथागतस्स बुद्धविसये पारमिङ्गतस्स किरियाकरणेसु आवरणं न होती" ति।

"साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी" ति।

३. बुद्धअप्पाबाधपञ्हो

५. "भन्ते नागसेन, भासितं पेतं भगवता—'अहमस्मि, भिक्खवे, ब्राह्मणो याचयोगो सदा पयतपाणि अन्तिमदेहधरो अनुत्तरो भिसक्को सल्लकत्तो' ति। पुन च भणितं भगवता—'एतदग्गं, भिक्खवे, मम सावकानं भिक्खूनं अप्पाबाधानं यदिदं बाकुलो' ति। भगवतो च सरीरे बहुक्खत्तुं आबाधो उप्पन्नो दिस्सति। यदि, भन्ते नागसेन, तथागतो अनुत्तरो, तेन हि—

ब्रह्मचर्यवास के चार बड़े-बड़े फल पा लेता है; चार प्रतिसम्भिदाओं (स्रोतआपन्न, सकृदागामी, अनागामी और अर्हत्) में, आठ समापत्तियों में तथा छह अभिज्ञाओं में पूर्णता पा लेता है; सारे श्रमणधर्मों का पालन कर लेता है। महाराज! क्या उस तोते ने भोजन में संयम करके त्रायस्त्रिंश तक सारे लोकों को कँपा कर देवेन्द्र को अपनी सेवा में नहीं लगा दिया था! महाराज! इसे और इसी तरह दूसरी भी बहुत सी बातें विचार कर ही भगवान् ने कहा था—'उठो, आलस्य मत करो; भोजन में संयम रखो।'

"महाराज! और जो भगवान् ने कहा था—'उदायि! मैं कभी-कभी यह पात्र भर कर या इससे अधिक भी खा लेता हूँ' सो तो उन्हीं की बात थी, उन्हें जो कुछ करना था सभी को पूर्ण कर डाला था, उन्होंने परम फल पा लिया था, उनका ब्रह्मचर्य सफल हो गया था, उनके सभी मल हट गये थे, जो सर्वज्ञ थे, स्वयम्भू थे, बुद्ध थे।

"जैसे महाराज! जिसे वमन कराया जा रहा है, जिसे विरेचन दिया गया है या जिसे कोई तीक्ष्ण मात्रा दी गयी है, ऐसे रोगी को पथ्य करना चाहिये; वैसे ही जिसके साथ क्लेश लगा है और जिसने सत्य का साक्षात्कार नहीं किया, उसे भोजन में संयम करना चाहिये। महाराज! जैसे चमकते, अच्छी जाति के साफ मणिरत्न को माँजना, घिसना या धोना नहीं पड़ता; महाराज! वैसे ही सम्यक्सम्बुद्ध—'क्या करना उचित है और क्या करना अनुचित' इस प्रश्न से ऊपर उठ जाते हैं।"

"ठीक है, भन्ते नागसेन! मुझे आपका कथन स्वीकार है।"

३. बुद्ध की अल्पाबाधताविषयकप्रश्न—५. "भन्ते नागसेन! भगवान् ने कहा है—'भिक्षुओ! मैं ब्राह्मण हूँ, आत्मत्यागी, आचरण में संयत, अन्तिम शरीर धारण करने वाला और अलौकिक वैद्य या शल्यचिकित्सक हूँ।' उन्होंने यह भी कहा है, 'भिक्षुओ! मेरे श्रावक भिक्षुओं में सबसे नीरोग रहने वाला बक्कुल है'। (अं०

'एतदग्गं....पे०.... बाकुलो' ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि थेरो बाकुलो अप्पाबाधानं अग्गो, तेन हि—'अहमस्मि....पे०.... सल्लकत्तो' ति तं पि वचनं मिच्छा। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो तवानुप्पत्तो, सो तया निब्बाहितब्बो' ति?

६. "भासितं पेतं, महाराज, भगवता—'अहमस्मि ....पे०.... सल्लकत्तो' ति। भणितं च —'एतदग्गं ....पे०.... बाकुलो' ति। तं च पन बाहिरानं आगमानं अधिगमानं परियत्तीनं अत्तनि विज्जमानतं सन्धाय भासितं।

"सन्ति खो पन, महाराज, भगवतो सावका ठानचङ्कमिका, ते ठानेन चङ्कमेन दिवारत्तिं वीतिनामेन्ति। भगवा पन, महाराज, ठानेन चङ्कमेन निसज्जाय सयनेन दिवारत्तिं वीतिनामेति, ये ते, महाराज, भिक्खू ठानचङ्कमिका ते तेन अङ्गेन अतिरेका।

"सन्ति खो पन, महाराज, भगवतो सावका एकासनिका, ते जीवितहेतु पि दुतियं भोजनं न भुञ्जन्ति; भगवा पन, महाराज, दुतियं पि याव ततियं पि भोजनं भुञ्जति।

"ये ते, महाराज, भिक्खू एकासनिका, ते तेन अङ्गेन अतिरेका। अनेकविधानि, महाराज, तानि कारणानि तेसं तेसं तं तं सन्धाय भणितानि। भगवा पन, महाराज, अनुत्तरो सीलेन समाधिना पञ्ञाय विमुत्तिया विमुत्तिञाणदस्सनेन, दसहि वेसारज्जेहि, अट्ठारसहि बुद्धधम्मेहि, छहि असाधारणेहि ञाणेहि। केवले च बुद्धविसये तं सन्धाय भणितं—'अहमस्मि....पे०.... सल्लकत्तो' ति।

नि० १–१४–४) ऐसा देखा जाता है कि भगवान् अनेक बार अस्वस्थ हो गये थे। (क) भन्ते! यदि भगवान् वस्तुतः अलौकिक थे तो स्थविर बक्कुल के विषय में जो कहा गया है, वह झूठा ठहरता है। (ख) और यदि स्थविर बक्कुल यथार्थ में सबसे अधिक नीरोग थे तो भगवान् का अलौकिक होना झूठा ठहरता है। यह भी एक द्विविधा....?"

६. "महाराज! भगवान् ने यथार्थ कहा है—'भिक्षुओ! मैं ब्राह्मण हूँ, आत्मत्यागी, आचरण में संयत, अन्तिम शरीर धारण करने वाला, और अलौकिक वैद्य या शल्यचिकित्सक (जर्राह) हूँ।' उन्होंने यह भी ठीक ही कहा है, 'भिक्षुओ! मेरे श्रावक भिक्षुओं में सबसे नीरोग रहने वाला बक्कुल है।' किन्तु, यह उन भिक्षुओं को लक्ष्य करके कहा गया था, जो भगवान् के उपदेश कण्ठ करके उनमें अपनी ओर से भी कुछ स्पष्ट कर आगे की पीढ़ी में बढ़ा देते थे।

"महाराज! भगवान् के श्रावक भिक्षुओं में से कितने ऐसे थे, जो दिन रात खड़े–खड़े या चंक्रमण करते ही भावना में बिता देते थे, किन्तु भगवान् तो खड़े भी रहते थे, चंक्रमण भी करते थे, बैठ भी जाते थे और लेटते भी थे। इस तरह, वे इस बात में भगवान् से भी आगे बढ़ जाते थे।

"महाराज! भगवान् के श्रावक भिक्षुओं में से कितने ऐसे थे, जो केवल एक ही बार भोजन करते थे। प्राण चले जाने पर भी दूसरी बार भोजन ग्रहण नहीं करते थे। महाराज! और भगवान् तो दो बार या तीन बार भी भोजन कर लेते थे। इस तरह, वे इस बात में भगवान् से भी आगे बढ़ जाते थे।

"महाराज! ऐसे ही, भिन्न–भिन्न श्रावकों के विषय में भिन्न–भिन्न बातें कही जाती हैं। महाराज! किन्तु भगवान् तो सबसे अलौकिक थे—शील में, समाधि में, प्रज्ञा में, वैराग्य में, मोक्ष का साक्षात्कार करने में, दस बलों में, चार वैशारद्यों में, अठ्ठारह बुद्ध गुणों में, (१. द्र०—जातक ५४१) छह–असाधारण ज्ञानों में और पाये जाने वाले सभी गुणों में। उसी के विषय में कहा गया है— 'भिक्षुओ! मैं ब्राह्मण हूँ, आत्मत्यागी, आचरण में संयत, अन्तिम शरीर धारण करने वाला और अलौकिक वैद्य या शल्यचिकित्सक'।

"इध, महाराज, मनुस्सेसु एको जातिमा होति, एको धनवा, एको विज्जवा, एको सिप्पवा, एको सूरो, एको विचक्खणो, सब्बे पेते अभिभविय राजा येव तेसं उत्तमो होति; एवमेव खो, महाराज, भगवा सब्बसत्तानं अग्गो जेट्ठो सेट्ठो।

"यं पन आयस्मा बाकुलो अप्पाबाधो अहोसि तं अभिनीहारवसेन। सो हि, महाराज, अनोमदस्सिस्स भगवतो उदरवाताबाधे उप्पन्ने विपस्सिस्स च भगवतो अट्ठसट्ठिया च भिक्खुसतसहस्सानं तिणपुप्फकरोगे उप्पन्ने सयं तापसो समानो नानाभेसज्जेहि तं ब्याधिं अपनेत्वा अप्पाबाधतं पत्तो। भणितं च— 'एतदग्गं....पे०.... बाकुलो' ति।

"भगवतो, महाराज, ब्याधिम्हि उप्पज्जन्ते पि अनुप्पज्जन्ते पि, धुतङ्गं आदियन्ते पि अनादियन्ते पि, नत्थि भगवता सदिसो कोचि सत्तो। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *संयुत्तनिकायवरलञ्छके*— 'यावता, भिक्खवे, सत्ता अपदा वा द्विपदा वा चतुप्पदा वा बहुप्पदा रूपिनो वा वा अरूपिनो वा सञ्ञिनो वा असञ्ञिनो वा नेवसञ्ञिनासञ्ञिनो वा तथागतो तेसं अग्गमक्खायति अरहं सम्मासम्बुद्धो' " ति। *(सं. नि. ४४-१०३)*

"साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी' ति।

४. मग्गुप्पादनपञ्हो

७. "भन्ते नागसेन, भासितं पेतं भगवता— 'तथागतो, भिक्खवे, अरहं सम्मासम्बुद्धो अनुप्पन्नस्स उप्पादेता' ति। पुन च भणितं— 'अद्दसं ख्वाहं, भिक्खवे, पुराणं मग्गं, पुराणं अञ्जसं, पुब्बकेहि सम्मासम्बुद्धेहि अनुयातं' ति। यदि, भन्ते नागसेन, तथागतो अनुप्पन्नस्स

"महाराज! जैसे मनुष्यों में कोई ऊँचे कुल का होता है, कोई धनवान् होता है, कोई विद्यावान् होता है, कोई शिल्पी होता है, कोई वीर होता है और कोई अत्यन्त चतुर होता है। किन्तु राजा सबसे सभी बातों में बढ़ चढ़ कर होता है। महाराज! इसी तरह, भगवान् सब से अग्र हैं, सभी से बड़े हैं और सभी से अच्छे हैं।

"जो आयुष्मान् बक्कुल नीरोग थे' सो अपने एक अभिनीहार (सङ्कल्प) के ही कारण। महाराज! जब भगवान् अनोमदस्सी को वात-रोग हो गया था और फिर जब भगवान् विपस्सी अपने अड़सठ (६८) हजार शिष्यों के साथ तृणपुष्पक रोग से पीड़ित हो गये थे, तब उस (बक्कुल) ने एक तपस्वी हो, अनेक औषधियों से उन्हें स्वस्थ कर दिया था। इसीलिये कहा गया है, मेरे श्रावक भिक्षुओं में बक्कुल सब से नीरोग है।

"महाराज! रोग होने या न होने अथवा धुताङ्ग का पालन करने या न करने से भी भगवान् के समान दूसरा कोई नहीं। महाराज! देवातिदेव भगवान् ने *संयुत्तनिकाय* में कहा भी है—"भिक्षुओ! जितने भी जीव हैं—विना पैर के दो पैर या चार पैरों वाले, अनेक पैरों वाले; रूप वाले विना रूप वाले; संज्ञारहित; न संज्ञा वाले और न संज्ञा से रहित—सब में तथागत ही प्रथम गिने जाते हैं, जो अर्हत् और सम्यक्सम्बुद्ध हैं'।" (सं०नि० ४४-१०३)

"ठीक है, भन्ते नागसेन! ऐसी ही बात है।"

४. मार्गोत्पादनप्रश्न—७. "भन्ते नागसेन! भगवान् ने कहा है—'भिक्षुओ! अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध उस मार्ग को भी जान लेते हैं, जो दूसरों को ज्ञात नहीं रहता।' साथ ही साथ यह भी कहा है—'भिक्षुओ! मैंने उस सनातन मार्ग को देख लिया है, जिस पर पूर्वबुद्ध चलते आये हैं।' (क) भन्ते नागसेन! यदि बुद्ध उस मार्ग

मग्गस्स उप्पादेता, तेन हि— 'अद्दसं ख्वाहं....पे०.... अनुयातं' ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि तथागतेन भणितं— 'अद्दसा ख्वाहं....पे०.... अनुयातं' ति, तेन हि— 'तथागतो ....पे०.... उप्पादेता' ति तं पि वचनं मिच्छा। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो तवानुप्पत्तो, सो तया निब्बाहितब्बो' ति ?

८. "भासितं पेतं, महाराज, भगवता— 'तथागतो....पे०.... उप्पादेता' ति। भणितं च— 'अद्दसं ख्वाहं ....पे०.... अनुयातं' ति। तं द्वयं पि सभाववचनमेव। पुब्बकानं, महाराज, तथागतानं अन्तरधानेन असति अनुसासके मग्गो अन्तरधायि, सो तं तथागतो मग्गं लुग्गं पलुग्गं गूळ्हं पिहितं पटिच्छन्नं असञ्चरणं पञ्ञाचक्खुना सम्पस्समानो अद्दस पुब्बकेहि सम्मासम्बुद्धेहि अनुयातं, तङ्कारणा आह— 'अद्दसा ख्वाहं ....पे०.... अनुयातं' ति।

"पुब्बकानं, महाराज, तथागतानं अन्तरधानेन असति अनुसासके लुग्गं पलुग्गं गूळ्हं मग्गं यं दानि तथागतो सञ्चरणं अकासि, तङ्कारणा आह—तथागतो....पे०....उप्पादेता' ति।

"इध, महाराज, रञ्ञो चक्कवत्तिस्स अन्तरधानेन मणिरतनं गिरिसिखरन्तरे निलीयति, अपरस्स चक्कवत्तिस्स सम्मापटिपत्तिया उपगच्छति। *(दी०नि०, चक्क० सु०)* अपि नु खो, महाराज, मणिरतनं तस्स पाकटं' ति ? "न भन्ते; पाकतिकं येव तं, भन्ते, मणिरतनं, तेन पन निब्बत्तितं' ति। "एवमेव खो, महाराज, पाकतिकं पुब्बकेहि तथागतेहि अनुचिण्णं अट्ठङ्गिकं सिवं मग्गं असति अनुसासके लुग्गं पलुग्गं गूळ्हं पिहितं पटिच्छन्नं असञ्चरणं भगवा

का ज्ञान कर लेते हैं, जो दूसरों को ज्ञात नहीं था तो उनका यह कहना असत्य ठहरता है कि 'मैंने वह सनातन मार्ग देख लिया जिस पर पहले से बुद्ध चलते आये हैं।' (ख) और, यदि उन्होंने सनातन मार्ग को ही देखा है, तो यह बात असत्य ठहरती है कि 'बुद्ध उस मार्ग का पता लगा लेते हैं, जो दूसरों को ज्ञात नहीं होता'। यह भी एक दुविधा....?"

८. "महाराज! भगवान् ने यथार्थ कहा है— 'भिक्षुओ! अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध उस मार्ग का पता लगा लेते हैं जो दूसरों को ज्ञात नहीं रहता।' उन्होंने यह भी ठीक ही कहा— 'भिक्षुओ! मैंने उस सनातन मार्ग को देख लिया है' जिस पर पूर्व बुद्ध चलते आये हैं।' महाराज! ये दोनों ही बातें सच्ची है। महाराज! पूर्व–बुद्धों के परिनिर्वाण पा लेने तथा शासन के उठ जाने से मार्ग का लोप हो गया था। उस लुप्त हो गये सनातन मार्ग को अपनी प्रज्ञाचक्षु से बुद्ध ने देख लिया था। इसी से उन्होंने कहा है— 'भिक्षुओ! मैंने उस सनातन मार्ग को देख लिया है, जिस पर पूर्वबुद्ध चलते आये हैं।'

"महाराज! पूर्वबुद्धों के परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने तथा शासन के उठ जाने से मार्ग का लोप हो गया था। वह मार्ग छिप गया था, भुला दिया गया था, खो गया था। उस मार्ग को भगवान् ने फिर नये उपायों से ढूँढ़ लिया। इसी से उन्होंने कहा है, 'भिक्षुओ! बुद्ध उस मार्ग का पता लगा लेते हैं, जो किसी दूसरे को ज्ञात नहीं होता।'

"महाराज! जैसे चक्रवर्ती राजा के मर जाने के बाद मणिरत्न पहाड़ पर जाकर अन्तर्धान हो जाता है, यदि दूसरा चक्रवर्ती राजा सभी व्रतों को पूरा करता है तो फिर प्रकट हो जाता है। महाराज! तो क्या आप कहेंगे कि उसने मणिरत्न उत्पन्न कर दिया?" "नहीं, भन्ते! वह मणिरत्न तो पहले से ही था। हाँ, उसने उसे दूसरी बार प्रकट कर दिया।" "महाराज! उसी तरह, जो पूर्व बुद्धों का वास्तविक, श्रेष्ठ अष्टाङ्गिक मार्ग था और जो शासन के न रहने से लुप्त....हो गया था, उसे भगवान् ने अपनी दिव्यज्ञान–

पञ्ञाचक्खुना सम्पस्समानो उप्पादेसि सञ्चरणं अकासि, तङ्कारणा आह— 'तथागता....पे०.... उप्पादेता' ति।

''यथा वा पन, महाराज, सन्तं येव पुत्तं योनिया जनयित्वा माता 'जनिका' ति वुच्चति; एवमेव खो, महाराज, तथागतो सन्तं येव मग्गं लुग्गं पलुग्गं गूळ्हं पिहितं पटिच्छन्नं असञ्चरणं पञ्ञाचक्खुना सम्पस्समानो उप्पादेसि सञ्चरणं अकासि, तङ्कारणा आह— 'तथागतो....पे०.... उप्पादेता' ति।

''यथा वा पन, महाराज, कोचि पुरिसो यं किञ्चि नट्ठं पस्सति, तेन तं भण्डं निब्बत्तितं' ति जनो वोहरति; एवमेव खो, महाराज, तथागतो सन्नं येव मग्गं लुग्गं पलुग्गं गूळ्हं पिहितं पटिच्छन्नं असञ्चरणं पञ्ञाचक्खुना सम्पस्समानो उप्पादेसि सञ्चरणं अकासि, तङ्कारणा आह— 'तथागता....पे०.... उप्पादेता' ति।

''यथा वा पन, महाराज, कोचि पुरिसो वनं सोधेत्वा भूमिं नीहरति, 'तस्स सा भूमी' ति जनो वोहरति, न चेसा भूमि तेन पवत्तिता, तं भूमिं कारणं कत्वा भूमिसामिको नाम होति; एवमेव खो, महाराज, तथागतो सन्तं येव मग्गं लुग्गं पलुग्गं गूळ्हं पिहितं पटिच्छन्नं असञ्चरणं पञ्ञाय सम्पस्समानो उप्पादेसि सञ्चरणं अकासि। तङ्कारणा आह— 'तथागतो....पे०.... उप्पादेता' ति।

''साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी'' ति।

५. बुद्धअविहेठकपञ्हो

९. ''भन्ते नागसेन, भासितं पेतं भगवता— 'पुब्बेवाहं मनुस्सभूतो समानो सत्तानं

चक्षु से फिर खोज निकाला। इसीलिये कहा है—'भिक्षुओ! अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध उस मार्ग का ज्ञान कर लेते हैं, जो दूसरों को ज्ञात नहीं रहता।' (क)

"महाराज! जैसे माता की कोंख में बच्चा तो रहता ही है। उसके बाहर आने पर लोग कहते हैं— 'माता ने बच्चा पैदा किया'। महाराज! उसी तरह, पहले का मार्ग जो शासन के न रहने से लुप्त....हो गया था, उसे भगवान् ने अपने दिव्य ज्ञान–चक्षु से फिर खोज निकाला। इसीलिये कहा है— 'भिक्षुओ! अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध उस मार्ग का पता लगा लेते हैं जो दूसरों को ज्ञात नहीं होता।' (ख)

"महाराज! जैसे किसी लुप्त हुई वस्तु को जब कोई खोज कर पा लेता है तो लोग कहते हैं— 'इसने इस चीज को निकाला है'। महाराज! उसी तरह, पहले का मार्ग, जो शासन के न रहने से लुप्त....हो गया था, उसे भगवान् ने दिव्यज्ञान–चक्षु से फिर खोज निकाला। इसीलिये कहा है— 'भिक्षुओ! अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध उस मार्ग का पता लगा लेते हैं, जो दूसरों को ज्ञात न हो।' (ग)

"महाराज! जैसे कोई जंगल काट कर साफ करता है तो लोग कहते हैं— 'उसने यह भूमि बनायी है'। यथार्थ में भूमि तो पहले से ही थी; वह आदमी केवल उसे काम में लाने वाला होता है। महाराज! इसी तरह, पहले का मार्ग जो शासन के न रहने से लुप्त हो गया था, उसे भगवान् ने अपने दिव्यज्ञानचक्षु से फिर खोज निकाला। इसीलिये कहा है— 'भिक्षुओ! अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध उस मार्ग का पता लगा लेते हैं, जो दूसरों को ज्ञात नहीं होता।' (घ)

"ठीक है, भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं, मैं स्वीकार करता हूँ।"

५. बुद्ध–अहिंसाविषयकप्रश्न— ९. "भन्ते नागसेन! भगवान् ने कहा है—'पूर्व मनुष्य–जन्मों में ही मैंने

अविहेठकजातिको अहोसिं' ति। पुन च भणितं— 'लोमसकस्सपो नाम इसि समानो अनेकसते पाणे घातयित्वा वाजपेय्यं महायञ्ञं यजी' ति। *(लो० क० जा० ४३३)* यदि, भन्ते नागसेन, भगवता भणितं— पुब्बेवाहं....पे०.... 'अहोसिं' ति, तेन हि— 'लोमसकस्सपेन इसिना अनेकसते पाणे घातयित्वा वाजपेय्यं महायञ्ञं यजितं' ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि लोमसकस्सपेन इसिना अनेकसते पाणे घातयित्वा वाजपेय्यं महायञ्ञं यजितं, तेन हि— 'पुब्बेवाहं....पे०.... अहोसिं' ति, तं पि वचनं मिच्छा। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो तवानुप्पत्तो, सो तया निब्बाहितब्बो' ति?

१०. ''भासितं पेतं, महाराज, भगवता—'पुब्बेवाहं....पे०.... अहोसिं' ति। 'लोमसकस्सपेन इसिना अनेकसते पाणे घातयित्वा वाजपेय्यं महायञ्ञं यजितं' तं च न पन रागवसेन विसञ्ञिना, न सचेतनेना'' ति।

''अट्ठिमे, भन्ते नागसेन, पुग्गला पाणं हनन्ति, कतमे अट्ठ? रत्तो रागवसेन पाणं हनति, दुट्ठो दोसवसेन.... मूळ्हो मोहवसेन.... मानी मानवसेन....लुद्धो लोभवसेन.... अकिञ्चनो जीविकत्थाय.... बालो हस्सवसेन....राजा विजयवसेन पाणं हनति। इमे खो, भन्ते नागसेन, अट्ठ पुग्गला पाणं हनन्ति। पाकतिकं येव, भन्ते नागसेन, बोधिसत्तेन कतं'' ति? ''न, महाराज, पाकतिकं बोधिसत्तेन कतं। यदि, महाराज, बोधिसत्तो पकतिभावेन ओणमेय्य महायञ्ञं यजितुं, नयिमं गाथं भणेय्य—

'ससमुद्दपरियायं, महिं सागरकुण्डलं।
न इच्छे सह निन्दाय, एवं, सय्ह, विजानही' ति॥*(सय्ह० जा०, ३१०)*

अहिंसा का अभ्यास कर लिया था।' साथ-साथ यह भी कहा है— 'लोमस काश्यप नाम का ऋषि हो कर मैंने शतशः प्राणियों का वध कराकर वाजपेय नाम का महायज्ञ किया था।' (क) भन्ते! यदि भगवान् ने यह ठीक कहा है, 'पूर्व मनुष्यजन्मों में ही मैंने अहिंसा का अभ्यास कर लिया था' तो उनका यह कहना झूठा ठहरता है कि 'लोमस काश्यप नामक ऋषि होकर मैंने शतशः प्राणियों का वध कराकर वाजपेय नाम का महायज्ञ किया था'। (ख) और यदि उन्होंने यह सत्य कहा है —'लोमस काश्यप नामक ऋषि होकर शतशः प्राणियों का वध कराकर वाजपेय नामका महायज्ञ किया था' तो उनकी कही यह बात झूठी ठहरती है कि 'पूर्व मनुष्यजन्मों में ही मैंने अहिंसा का अभ्यास कर लिया था।' यह भी एक द्विविधा....?

१०. ''महाराज! भगवान् ये यह यथार्थ ही कहा है— 'पूर्व मनुष्य-जन्मों में ही मैंने अहिंसा का अभ्यास कर लिया था'। उन्होंने यह भी ठीक कहा है, 'लोमस काश्यप नामक ऋषि हो कर मैंने शतशः प्राणियों का वध करा कर वाजपेय नाम का महायज्ञ किया था।' किन्तु, यह तो उन्होंने रागवश अपने को भूल कर किया था; शान्त बुद्धि से सोच-विचार कर नहीं।''

''भन्ते नागसेन! ये आठ प्रकार के लोग जीवहिंसा करते हैं। कौन से आठ? १. रागी अपने राग के वश में आ कर जीवहिंसा करता है, २. द्वेषी अपने द्वेष के वश में, ३. मूढ़ अपने मोह के वश में, ४. घमण्डी अपने घमण्ड के वश में, ५. लोभी अपने लोभ के वश में, ६. निर्धन अपनी जीविका के लिये, ७. मूर्ख खेल समझ कर, और ८. राजा दण्ड देने के लिये जीव-हिंसा करता है। भन्ते! ये ही आठ प्रकार के लोग जीवहिंसा करते हैं। भन्ते ! किन्तु, सम्भवतः बोधिसत्त्व ने (विना इन कारणों के) स्वाभाविक तौर पर ही जीवहिंसा की होगी?'' ''नहीं, महाराज! बोधिसत्त्व ने स्वाभाविक तौर पर जीवहिंसा नहीं की थी। महाराज! यदि बोधिसत्त्व स्वाभाविक तौर से महायज्ञ करना चाहते तो यह नहीं कहे होते—

"एवंवादी, महाराज, बोधिसत्तो सह दस्सनेन चन्दवतिया राजकञ्ञाय विसञ्ञी अहोसि खित्तचित्तो रत्तो विसञ्ञिभूतो आकुलाकुलो तुरिततुरितो तेन विक्खित्तभन्तलुठितचित्तेन महतिमहापसुघातगलरुहिरसञ्चयं वाजपेय्यं महायञ्ञं यजि।

"यथा, महाराज, उम्मत्तको खित्तचित्तो जलितं पि जातवेदं अक्कमति, कुपितं आसीविसं गण्हाति, मत्तं पि हत्थिं उपेति, समुद्दं पि अतीरदस्सी पक्खन्दति, चन्दनिकं पि ओळिगल्लं पि ओमद्दति, कण्टकाधानं पि अभिरुहति, पपाते पि पतति, असुचिं पि भक्खेति, नग्गो पि रथिया चरति, अञ्ञं पि बहुविधं अकिरियं करोति; एवमेव खो, महाराज, बोधिसत्तो सह दस्सनेन चन्दवतिया राजकञ्ञाय विसञ्ञी अहोसि खित्तचित्तो रत्तो विसञ्ञिभूतो आकुलाकुलो तुरिततुरितो, तेन विक्खित्तभन्तलुठितचित्तेन महतिमहासुघातगलरुहिरसञ्चयं वाजपेय्यं महायञ्ञं यजि।

"खित्तचित्तेन, महाराज, कतं पापं दिट्ठधम्मे पि न महासावज्जं होति, सम्पराये विपाकेन पि नो तथा।

"इध, महाराज, कोचि उम्मत्तको वज्झमापज्जेय्य, तस्स तुम्हे किं दण्डं धारेथा" ति ? "को, भन्ते, उम्मत्तस्स दण्डो भविस्सति! तं मयं पोथापेत्वा नीहरापेम, एसो व तस्स दण्डो" ति। "इति खो, महाराज, उम्मत्तकस्स अपराधे दण्डो पि न भवति, तस्मा उम्मत्तकस्स कते पि दोसो न भवति, सतेकिच्छो; एवमेव खो, महाराज, लोमसकस्सपो इसि सहदस्सनेन

'सय्ह! समुद्र तक फैली हुई, चारों ओर सागर से घिरी हुई पृथ्वी को निन्दा के साथ मैं नहीं लेना चाहता—ऐसा समझो।'

"महाराज! ऐसा कहने पर भी बोधिसत्त्व चन्द्रावती राजकुमारी को देख कर ही उसके मोह में पड़ कर मन के अशान्त हो जाने से अपने को भूल गये थे। उसकी उत्कण्ठा तथा विह्वलता से पागल या किसी भूले–भटके की तरह हो शीघ्रता में उन्होंने महायज्ञ किया। यज्ञ में बहुत से पशुओं का वध हुआ। पशुओं की ग्रीवा कटने से रक्तधारा बह चली थी।

"महाराज! जैसे पागल, जिसका मस्तिक विक्षिप्त हो गया है वह, जलती अग्नि को भी पकड़ लेता है, क्रुद्ध साँप को भी पकड़ लेता है, पागल हाथी के पास भी चला जाता है, जिसके किनारे का ज्ञान नहीं है ऐसे समुद्र में भी कूद पड़ता है, गढ़हे या कुएँ में भी गिर जाता है, कँटीली जगहों में भी चला जाता है, पहाड़ की ऊँची ढाल से भी कूद पड़ता है, मल भी खाने लगता है, सड़कों पर नंगे भी घूमता है और भी तरह–तरह की चेष्टाएँ करता है; महाराज! इसी तरह, बोधिसत्त्व चन्द्रावती राजकुमारी को देखते ही उसके राग में पड़ कर मन के अशान्त हो जाने से अपने को भूल गये थे। राजकुमारी की उत्कण्ठा तथा विह्वलता से पागल या किसी भूले भटके की तरह बड़ी शीघ्रता से उन्होंने महायज्ञ किया। यज्ञ में बहुत से पशुओं का वध हुआ था। पशुओं की ग्रीवा कटने से रक्तधारा बह चली थी।

"महाराज! राज–दण्ड विधान के अनुसार भी उन्मत्त के अपराध उतने बड़े नहीं समझे जाते हैं। परलोक की बातों में भी वैसा ही है।

"महाराज! जैसे कोई पागल किसी को जान से मार दे तो आप उसे क्या दण्ड देंगे?" "भन्ते! पागल को क्या दण्ड देना है! उसे पीट–पाट कर छोड़ दिया जाता है। बस उसके लिये यही दण्ड है।" "महाराज! वस्तुतः पागल के लिये कोई दण्ड नहीं है। पागल का अपराध कोई अपराध नहीं; उसे क्षमा कर दिया जाता है। महाराज! इसी तरह, बोधिसत्त्व चन्द्रावती राजकुमारी को देखते ही उसके प्रेम में पड़

चन्दवतिया राजकञ्ञाय विसञ्ञी अहोसी खित्तचित्तो रत्तो विसञ्ञिभूतो विसटपयातो आकुलाकुलो तुरिततुरितो तेन विक्खित्तभन्तलुठितचित्तेन महतिमहापसुघातगलरुहिरसञ्चयं वाजपेय्यं महायञ्ञं यजि। यदा च पन पकतिचित्तो अहोसि पटिलद्धस्सति, तदा पुनदेव पब्बजित्वा पञ्चाभिञ्ञायो निब्बत्तेत्वा ब्रह्मलोकूपगो अहोसी'' ति।

''साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी'' ति।

६. छद्दन्तजोतिपालारब्भपञ्हो

११. ''भन्ते नागसेन, भासितं पेतं भगवता—'छद्दन्तो नागराजा—

'वधिस्समेतं ति परामसन्तो, कासावमद्दक्खि धजं इसीनं।

दुक्खेन फुट्ठस्सुदपादि सञ्ञा, अरहद्धजो सब्भि अवज्झरूपो' ति॥ *(छ० जा० ५१४)*

''पुन च भणितं—'जोतिपालमाणवो समानो कस्सपं भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं मुण्डकवादेन समणकवादेन असब्भाहि फरुसाहि वाचाहि अक्कोसि परिभासी' ति। यदि, भन्ते नागसेन, बोधिसत्तो तिरच्छानगतो समानो कासावं अभिपूजयि, तेन हि—'जोतिपालेन माणवेन कस्सपो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो मुण्डकवादेन समणवादेन असब्भाहि फरुसाहि वाचाहि अक्कुट्ठो परिभासितो' *(म०नि०, घटी०सु०)* ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि जोतिपालेन माणवेन कस्सपो अरहं सम्मासम्बुद्धो मुण्डकवादेन समणवादेन असब्भाहि फरुसाहि वाचाहि अक्कुट्ठो परिभासितो, तेन हि—'छद्दन्तेन नागराजेन कासावं पूजितं' ति, तं पि वचनं मिच्छा। यदि तिरच्छानगतेन बोधिसत्तेन कक्खळखरकटुकवेदनं वेदयमानेन लुद्दकेन निवत्थं कासावं पूजितं, किं मनुस्सभूतो समानो परिपक्कञाणो परिपक्काय बोधिया कस्सपं भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं दसबलं लोकनायकं उदितोदितं जलितब्यामोभासं पवरुत्तमं पवररुचिरकासिकका-

---

कर मन के असंयत हो जाने से अपने को भूल गये थे। उसकी उत्कण्ठा तथा विह्वलता से पागल या किसी भूले-भटके की तरह हो बहुत शीघ्रता में उन्होंने महायज्ञ किया। यज्ञ में बहुत से पशुओं का वध किया गया था। पशुओं की ग्रीवा कटने से रक्तधारा बह चली। जब उनका मद (नशा) उतरा और स्वस्थ हुए तो वे पाँच अभिज्ञाएँ प्राप्त कर ब्रह्मलोक चले गये।''

''ठीक है, भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं, मैं स्वीकार करता हूँ।''

६. छद्दन्त और ज्योतिपालविषयकप्रश्न—११. ''भन्ते! भगवान् ने गजराज छद्दन्त के विषय में कहा है—

'इसे मार डालूँगा'—ऐसा विचार करते हुए उस छद्दन्त ने काषाय वस्त्र देखा, जो ऋषियों का ध्वज है। बहुत कठिनाई से उसके मन में बात आयी—'साधु, शीलवान्, अर्हत् वध करने योग्य नहीं है।''

''साथ ही साथ ऐसा भी कहा है,—'जोतिपाल माणवक हो कर उन्होंने अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् को 'मथमुण्डा', 'नकली साधु' इत्यादि अनुचित और रूक्ष शब्दों से चिढ़ा कर अपमानित करना चाहा था।' (क) भन्ते! यदि बोधिसत्त्व ने पशु-योनि में जन्म लेकर भी काषाय-वस्त्र की प्रतिष्ठा स्वीकार की थी तो जोतिपाल माणवक की बात झूठी ठहरती है। (ख) और यदि जोतिपाल माणवक ने वस्तुतः काश्यप भगवान् को 'मथमुण्डा', 'नकली साधु' इत्यादि अनुचित और रूक्ष शब्दों से चिढ़ाकर अपमानित करना चाहा था तो छद्दन्त गजराज के विषय में जो कुछ कहा गया है, वह झूठा ठहरता है। यदि पशु-योनि में जन्म लेकर बोधिसत्त्व ने कठोर दुःख सहते हुए भी काषाय वस्त्र की प्रतिष्ठा की थी, तो परिपक्व ज्ञान वाला मनुष्य होकर जोतिपाल काश्यप ने भगवान् के साथ ऐसा व्यवहार क्यों किया जो अर्हत्

सावमभिपारुतं दिस्वा न पूजयि ? अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो तवानुप्पत्तो, सो तया निब्बाहितब्बो'' ति ?

१२. ''भासितं पेतं, महाराज, भगवता—'छद्दन्तो नागराजा वधिस्समेतं ति .... पे०.... अवज्झरूपो' ति। *(जा० ५१४)* जोतिपालमाणवेन कस्सपो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो समणकवादेन असब्भाहि फरुसाहि वाचाहि अक्कुट्ठो परिभासितो। तं च पन जातिवसेन कुलवसेन। जोतिपालो, महाराज, माणवो अस्सद्धे अप्पसन्ने कुले पच्चाजातो, तस्स मातापितरो भगिनिभातरो दासिदासचेटकपरिवारकमनुस्सा ब्रह्मदेवता ब्रह्मगरुका, ते 'ब्राह्मणा एव उत्तमा पवरा' ति अवसेसे पब्बजिते गरहन्ति जिगुच्छन्ति, तेसं तं वचनं सुत्वा जोतिपालो माणवो घटीकारेन कुम्भकारेन सत्थारं दस्सनाय पक्कोसितो एवमाह—'किं पन तेन मुण्डकेन समणकेन दिट्ठेना' ति ? *(म०नि०, घ०सु०)*

''यथा, महाराज, अमतं विसमासज्ज तित्तकं होति, यथा च सीतुदकं अग्गिमासज्ज उण्हं होति; एवमेव खो, महाराज, जोतिपालो माणवो अस्सद्धे अप्पसन्ने कुले पच्चाजातो, सो कुलवसेन तथागतं अक्कोसि, परिभासि।

''यथा, महाराज, जलितपज्जलितो महाअग्गिक्खन्धो सप्पभासो उदकमासज्ज उपहतप्पभातेजो सीतलो काळको भवति परिपक्कनिगुण्डिफलसदिसो; एवमेव खो, महाराजस जोतिपालो माणवो पुञ्ञवा सद्धो ञाणविपुलसप्पभासो अस्सद्धे अप्पसन्ने कुले पच्चाजातो,

---

सम्यक्सम्बुद्ध, दशबल, लोकनायक तथा प्रतापी थे, जिनके चारों ओर व्याम भर दिव्य तेज फैला रहता था, जो मनुष्यों में श्रेष्ठ थे और जो सुन्दर बनारसी चीवर धारण किये हुए थे। यह भी एक द्विविधा....?''

१२. ''महाराज! भगवान् ने छद्दन्त नामक गजराज के विषय में ठीक कहा है—'इसे मार डालूँगा'—ऐसा विचार करते हुए उसने काषाय वस्त्र देखा, जो ऋषियों का ध्वज है। बहुत कठिनाई से उसके मन में यह बात आयी— साधु, शीलवान्, अर्हत् वध करने योग्य नहीं है।' और उनने यह भी ठीक कहा है—'जोतिपाल माणवक होकर उन ने अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् काश्यप को 'मथमुण्डा', 'नकली साधु' इत्यादि अनुचित और रूक्ष शब्दों से चिढ़ाकर अपमानित करना चाहा था। किन्तु जोतिपाल ने अपनी जाति और अपने कुल के प्रभाव से वैसा किया था। महाराज! जोतिपाल जिस कुल में पैदा हुआ था, उसमें श्रद्धा या धर्म की ओर कुछ भी झुकाव नहीं था। उसके माता-पिता, भाई-बहन, दाई-नौकर, मजदूर तथा परिवार के सभी लोग ब्रह्म के उपासक थे, ब्रह्म की पूजा किया करते थे। 'ब्रह्म ही सब से श्रेष्ठ और उत्तम हैं'—ऐसा मानकर अन्य साधुओं को नीच और घृणित समझते थे। उन्हीं लोगों की बात को बार-बार सुनते रहने के कारण भगवान् (काश्यप) से मिलने के लिये घटीकार नामक कुम्हार द्वारा बुलाये जाने पर जोतिपाल ने कहा—'उस मथमुण्डे, नकली साधु को देखने से क्या लाभ?'

''महाराज! जैसे अमृत विष के साथ मिला देने से तिक्त (कटु) हो जाता है। ठंढा पानी अग्नि पर चढ़ा देने से खौलने लगता है। इसी तरह, जोतिपाल माणवक जिस कुल में पैदा हुआ था, उसमें श्रद्धा या धर्म की ओर कुछ भी झुकाव नहीं था; सो उसने अपने कुल के विचारों में पड़ कर मानो अन्धे होकर बुद्ध के प्रति निन्दा और अपमान के शब्द कहे थे।

''महाराज! ऊँची लपटों वाली बहुत तेज जलती हुई अग्नि की राशि भी जल पड़ जाने से बुझ जाती है; उसकी सारी चमक चली जाती है; शान्त हो जाती है; और पके हुए निर्गुण्डी फल के समान काले कोयले की राशि हो जाती है। महाराज! इसी तरह, जोतिपाल माणवक पुण्यवान्, श्रद्धालु और

सो कुलवसेन अन्धो हुत्वा तथागतं अक्कोसि, परिभासि, उपगन्त्वा च बुद्धगुणमञ्ञाय चेटकभूतो विय अहोसि, जिनसासने पब्बजित्वा अभिञ्ञा च समापत्तियो च निब्बत्तेत्वा ब्रह्मलोकूपगो अहोसी'' ति।

''साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी'' ति।

७. घटीकारपञ्हो

१३. ''भन्ते नागसेन, भासितं पेतं भगवता—'घटीकारस्स कुम्भकारस्स आवेसनं सब्बं तेमासं आकासच्छदनं अट्ठासि न च देवो अभिवस्सी' ति। *(म०नि०, घटी०सु०)* पुन च भणितं—'कस्सपस्स तथागतस्स कुटी ओवस्सती' ति। किस्स पन, भन्ते नागसेन, तथागतस्स एवमुस्सन्नकुसलमूलस्स कुटी ओवस्सति, तथागतस्स नाम सो आनुभावो इच्छितब्बो। यदि, भन्ते नागसेन, घटीकारस्स कुम्भकारस्स आवेसनं अनोवस्सं आकासच्छदनं अहोसि, तेन हि 'तथागतस्स कुटी ओवस्सती' ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि तथागतस्स कुटी ओवस्सति, तेन हि—'घटीकारस्स कुम्भकारस्स आवेसनं अनोवस्सकं अहोसि आकासच्छदनं' ति तं पि वचनं मिच्छा। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो तवानुप्पत्तो, सो तया निब्बाहितब्बो'' ति?

१४. ''भासितं पेतं, महाराज, भगवता—'घटीकारस्स कुम्भकारस्स आवेसनं सब्बं तेमासं आकासच्छदनं अट्ठासि, न देवोभिवस्सी' ति। भणितं च—'कस्सपस्स तथागतस्स कुटी ओवस्सती' ति। घटीकारो, महाराज, कुम्भकारो सीलवा कल्याणधम्मो उस्सन्नकुसलमूलो अन्धे जिण्णे मातापितरो पोसेति, तस्स असम्मुखा अनापुच्छा येवस्स घरे तिणं हरित्वा भगवतो कुटिं छादेसुं, सो तेन तिणहरणेन अकम्पितं असञ्चलितं सुसण्ठितं विपुलमसमं पीतिं

अत्यन्त ज्ञानी होने पर भी उसने श्रद्धा और धर्मरहित कुल में उत्पन्न हो कर उसी कुल के विचारों में पड़, मानों अन्धा बन, भगवान् के प्रति निन्दा और अपमान के शब्द कहे थे। किन्तु, जब वह उनके पास गया तो उनके गुणों को जानकर उनका क्रीतदास बन गया। बुद्ध-धर्म के अनुसार प्रव्रजित हो, उसने अभिज्ञा और समापत्तियाँ प्राप्त कर लीं। वह मरने के बाद सीधे ब्रह्मलोक चला गया।''

''ठीक है, भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं, उसे मैं स्वीकार करता हूँ।''

७. घटीकारप्रश्न— १३. ''भन्ते नागसेन! भगवान् ने कहा है— 'घटीकार कुम्भकार का घर पूरे तीन मास तक छप्पररहित पड़ा रहा, किन्तु जल नहीं बरसा।' साथ ही ऐसा भी कहा जाता है— 'भगवान् काश्यप की कुटी पर वृष्टि हुई थी।' भन्ते नागसेन! यह कैसी बात है कि बुद्ध जैसे पुण्यात्मा की कुटी पर वृष्टि हुई थी? बुद्ध का तेज भी वैसा ही होना चाहिये था! (क) भन्ते! यदि भगवान् ने यथार्थ कहा है— 'घटीकार कुम्भकार का घर पूरे तीन मास तक छप्पररहित पड़ा रहा, किन्तु जल नहीं बरसा' तो यह बात झूठी ठहरती है कि 'भगवान् काश्यप की कुटी पर वृष्टि हुई थी'। (ख) और, यदि भगवान् काश्यप की कुटी पर वस्तुतः वृष्टि हुई थी तो भगवान् की यह बात असत्य ठहरती है कि 'घटीकार कुम्भकार का घर पूरे तीन मास तक छप्पररहित पड़ा रहा, किन्तु जल नहीं बरसा।' यह भी एक द्विविधामय....?''

१४. ''महाराज! भगवान् ने यह ठीक ही कहा है— 'घटीकार कुम्भकार का घर पूरे तीन मास तक छप्पररहित पड़ा रहा, किन्तु जल नहीं बरसा।' यह भी सत्य है कि 'भगवान् काश्यप की कुटी पर वृष्टि हुई थी'। महाराज! घटीकार कुम्भकार शीलवान् धार्मिक और पुण्यवान् था। वह अपने बूढ़े और अन्धे माता-पिता का पालन-पोषण कर रहा था। उस के कहीं दूसरी जगह गये रहने पर विना उससे

पटिलभि, भिय्यो सोमनस्सं च अतुलं उप्पादेसि— 'अहो पन मे भगवा लोकुत्तमो सुविस्सत्थो'. ति, तेन तस्स दिट्ठधम्मिको विपाको निब्बत्तो। न हि, महाराज, तथागतो तावतकेन विकारेन चलति।

"यथा, महाराज, सिनेरु गिरिराजा अनेकसतसहस्सवातसम्पहारेन पि न कम्पति न चलति; महोदधि वरप्पवरसागरो अनेकसतनहुतमहागङ्गासतसहस्सेहि पि न पूरति, न विकारमापज्जति; एवमेव खो, महाराज, तथागतो न तावतकेन विकारेन चलति।

"यं पन, महाराज, तथागतस्स कुटी ओवस्सति, तं महतो जनकायस्स अनुकम्पाय। द्वेमे, महाराज, अत्थवसे सम्पस्समाना तथागता सयंनिम्मितं पच्चयं नप्पटिसेवन्ति—(१) 'अयं अग्गदक्खिणेय्यो सत्था ति भगवतो पच्चयं दत्वा देवमनुस्सा सब्बदुग्गतितो परिमुच्चिस्सन्ती' ति, (२) 'पाटिहीरं दस्सेत्वा वुत्तिं परियेसन्ती ति मा अञ्ञे उपवदेय्युं' ति। इमे द्वे अत्थवसे सम्पस्समाना तथागता सयंनिम्मितं पच्चयं न पटिसेवन्ति। यदि, महाराज, सक्को वा तं कुटिं अनोवस्सं करेय्य, ब्रह्मा वा, सयं वा, सावज्जं भवेय्य तं येव कारणं सदोसं सनिग्गहं— 'इमे विभूतं कत्वा लोकं सम्मोहेन्ति अधिकतं करोन्ती' ति। तस्मा तं करणं वज्जनीयं। न, महाराज, तथागता वत्थुं याचन्ति, ताय अवत्थुयाचनाय अपरिभासिया भवन्ती" ति।

"साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी" ति।

८. ब्राह्मणराजवादपञ्हो

१५. "भन्ते नागसेन, भासितं पेतं तथागतेन— 'अहमस्मि, भिक्खवे, ब्राह्मणो याचयोगो'

पूछे ही लोगों ने उसके छप्पर को उजाड़ कर उस से भगवान् की कुटी को छा दिया था। छप्पर के उस तरह उजड़ जाने से उसके हृदय में भी दुःख या क्षोभ नहीं हुआ; अपितु, बड़ी प्रीति उत्पन्न हो गयी। अत्यन्त आनन्दित होकर उसके मन में यह बात आयी— 'अहा! लोक में उत्तम वे भगवान् मुझ पर प्रसन्न हैं।' उस पुण्य का फल उसे यहीं मिल गया। महाराज! भगवान् उतनी सी बात से उद्विग्न नहीं होते।

"महाराज! जैसे पर्वतराज सुमेरु कड़ी से कड़ी आँधी आने पर भी नहीं हिलता, असङ्ख्य बड़ी-बड़ी नदियों के गिरने पर भी महासागर न तो उभरता है और न उस में बाढ़ आती है। महाराज! इसी तरह, बुद्ध उतनी बात से उद्विग्न नहीं होते।

"महाराज! भगवान् के हृदय में संसार के लोगों के प्रति जो अनुकम्पा थी, उसी से उनकी कुटी पर वृष्टि हुई थी। महाराज! दो बातों को ध्यान में रख कर भगवान् अपने योगबल से किसी चीज को उत्पन्न करके उसे उपयोग में नहीं लाते। कौन सी दो बातें? (१) देवता और मनुष्य भगवान् को उनकी आवश्यक चीजों का दान करके उस पुण्य से आवागमन के दुःखमय जञ्जाल से छूट जायेंगे; और (२) कहीं दूसरे लोग व्यङ्ग्य न मारने लग जाँय कि ऋद्धिबल के सहारे वे अपनी जीविका चलाते हैं। इन्हीं दो बातों को ध्यान में रख भगवान् अपने योगबल से किसी वस्तु को उत्पन्न करके उसे उपयोग में नहीं लाते। महाराज! यदि देवेन्द्र या स्वयं ब्रह्मा उनकी कुटी पर वृष्टि नहीं होने देते तो वह भी अनुचित और निन्दनीय होता; क्योंकि तब भी लोग ऐसा कह सकते थे— 'ये अपनी माया फैला कर संसार को मोह लेते हैं और अपने वश में कर लेते हैं।' इसलिये, वहाँ पर उन्हें कुछ न करना ही अच्छा था। भगवान् अपने लिये किसी वस्तु की कभी याचना नहीं करते, इसी से उन पर कोई अङ्गुलि नहीं उठा सकता।"

"ठीक है, भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं, उसे मैं मान लेता हूँ।।

ति। पुन च भणितं— 'राजाहमस्मि, सेला' ति। *(म० नि०, सेलसुत्त)* यदि, भन्ते नागसेन, भगवता भणितं— 'अहमस्मि, भिक्खवे, ब्राह्मणो याचयोगो' ति, तेन हि— 'राजाहमस्मि, सेला' ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि तथागतेन भणितं— 'राजाहमस्मि, सेला' ति, तेन हि— 'अहमस्मि, भिक्खवे, ब्राह्मणो याचयोगो' ति तं पि वचनं मिच्छा। खत्तियो वा हि भवेय्य, ब्राह्मणो वा। नत्थि एकाय जातिया द्वे वण्णा नाम। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो तवानुप्पत्तो, सो तया निब्बाहितब्बो'' ति?

१६. ''भासितं पेतं, महाराज, भगवता— 'अहमस्मि, भिक्खवे, ब्राह्मणो याचयोगो' ति। पुन च भणितं— 'राजाहमस्मि, सेला' ति। तत्थ कारणमत्थि येन कारणेन तथागतो ब्राह्मणो च राजा च होती'' ति।

१७. ''किं पन, भन्ते नागसेन, तं कारणं, येन कारणेन तथागतो ब्राह्मणो च राजा च होति''? (क) ''सब्बे, महाराज, पापका अकुसला धम्मा तथागतस्स बाहिता पहीना अपगता ब्यपगता उच्छिन्ना खीणा खयं पत्ता निब्बुता उपसन्ता, तस्मा तथागतो 'ब्राह्मणो' ति वुच्चति।

''ब्राह्मणो नाम संसयमनेकंसं विमतिपथं वीतिवत्तो; भगवा पि, महाराज, संसयमनेकंसं विमतिपथं वीतिवत्तो, तेन कारणेन तथागतो 'ब्राह्मणो' ति वुच्चति।

''ब्राह्मणो नाम सब्बभवगतियोनिनिस्सटो मलरजगतविप्पमुत्तो असहायो; भगवा पि, महाराज, सब्बभवगतियोनिनिस्सटो मलरजगतविप्पमुत्तो असहायो, तेन कारणेन तथागतो 'ब्राह्मणो' ति वुच्चति।

---

८. ब्राह्मणराजवादप्रश्न— १५. ''भन्ते नागसेन! भगवान् ने कहा है — 'भिक्षुओ! मैं आत्मयज्ञ करने वाला ब्राह्मण हूँ।' साथ ही साथ यह भी कहा है, 'शैल! मैं राजा हूँ।' (क) भन्ते! यदि भगवान् ने यह ठीक कहा है— 'भिक्षुओ! मैं आत्म–यज्ञ करने वाला ब्राह्मण हूँ' तो उन ने यह झूठ कहा कि 'शैल! मैं राजा हूँ।' (ख) और, यदि यह यथार्थ कहा था कि 'शैल! मैं राजा हूँ' तो यह झूठ सिद्ध होता है कि वे आत्मयज्ञ करने वाले अर्हत् थे। वे या तो क्षत्रिय होंगे या ब्राह्मण, दोनों नहीं हो सकते। यह भी एक द्विविधा....?''

१६. ''महाराज! भगवान् ने ठीक कहा है— 'भिक्षुओ! मैं आत्मयज्ञ करने वाला ब्राह्मण हूँ।' और, यह भी ठीक कहा है 'शैल! मैं राजा हूँ।' एक कारण ऐसा है, जिससे भगवान् ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों हो सकते हैं।''

१७. ''भन्ते नागसेन! भला वह कौन सा कारण है जिससे भगवान् ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों ही सिद्ध किये जा सकते हैं?'' (क) ''महाराज! जितने पाप और जितनी बुराइयाँ हैं, सभी भगवान् से बाहर हो चुकी हैं, नष्ट हो चुकी हैं, दूर चली गयी हैं, कट गयी हैं, क्षीण, बन्द या शान्त हो गयी है। इसी से भगवान् 'ब्राह्मण' कहे जा सकते हैं।

''ब्राह्मण उसी को कहते हैं जिसने अपने सारे संशयों को हटा दिया है, भ्रम दूर कर दिया है। भगवान् वस्तुतः ऐसे हैं; इसलिये वे 'ब्राह्मण' कहे जाते हैं।

''महाराज! ब्राह्मण उसी को कहते हैं जिसकी तृष्णा मिट गयी है, जो आवागमन से छूट गया है, जो फिर जन्म ग्रहण नहीं करेगा, जो बुरे विचार और राग को नष्ट कर, सर्वथा शुद्ध हो गया है और जो बिना किसी दूसरे पर विश्वास किये स्वयं पर निर्भर रहता है। भगवान् वस्तुतः ऐ ।
'ब्राह्मण' कहे जाते हैं।

"ब्राह्मणो नाम अग्गसेट्ठवरपवरदिब्बविहारबहुलो; भगवा पि, महाराज, अग्गसेट्ठवरपवरदिब्बविहारबहुलो, तेनापि कारणेन तथागतो 'ब्राह्मणो' ति वुच्चति।

"ब्राह्मणो नाम अज्झयनअज्झापनदानपटिग्गहणदमसंयमनियमपुब्बमनुसिट्ठिपवेणिवंसधरणो, भगवा पि, महाराज, अज्झयनअज्झापनदानपटिग्गहरणदमसंयमनियमपुब्बजिनाचिण्णमानुसिट्ठिपवेणिवंसधरणो। तेनापि कारणेन तथागतो 'ब्राह्मणा' ति वुच्चति।

"ब्राह्मणो नाम ब्रहासुखविहारज्झानज्झायी; भगवा पि, महाराज, ब्रहासुखविहारज्झानझायी, तेनापि कारणेन तथागतो 'ब्राह्मणो' ति वुच्चति।

"'ब्राह्मणो' नाम सब्बभवाभवगतीसु अभिजातिवत्तितमनुचरितं जानाति; भगवा पि, महाराज, सब्बभवाभवगतीसु अभिजातिवत्तितमनुचरितं जानाति, तेनापि कारणेन तथागतो 'ब्राह्मणो' ति वुच्चति।

"'ब्राह्मणो' ति, महाराज, भगवतो नेतं नामं मातरा कतं, न पितरा कतं, न भातरा कतं, न भगिनिया कतं, न मित्तामच्चेहि कतं, न ञातिसालोहितेहि कतं, न समणब्राह्मणेहि कतं, न देवताहि कतं। विमोक्खन्तिकमेतं बुद्धानं भगवन्तानं नामं, बोधिया येव मूले मारसेनं विधमित्वा अतीतानागतपच्चुप्पन्ने पापके अकुसले धम्मे बाहेत्वा सह सब्बञ्ञुतञाणस्स पटिलाभा पटिलद्धपातुभूतसमुप्पन्नमत्ते सच्चिका पञ्ञत्ति, यदिदं 'ब्राह्मणो' ति। तेन कारणेन तथागतो वुच्चति—'ब्राह्मणो' ति।

१८. (ख) "केन पन, भन्ते नागसेन, तथागतो वुच्चति—'राजा' " ति? "राजा नाम, महाराज, यो कोचि रज्जं कारेति लोकमनुसासति। भगवा पि, महाराज, दससहस्सिया लोकधातुया धम्मेन रज्जं कारेति, सदेवकं लोकं समारकं सब्रह्मकं सस्समणब्राह्मणिं पजं अनुसासति, तेनापि कारणेन तथागतो वुच्चति 'राजा' ति।

"महाराज! ब्राह्मण ऊँची, श्रेष्ठ, सुन्दर और दैवी भावनाओं में विहार करता रहता है। बुद्ध वस्तुतः ऐसे हैं; इसलिये वे 'ब्राह्मण' कहे जाते हैं।"

"महाराज! ब्राह्मण स्वयं अध्ययनशील रहकर दूसरों को भी विद्या-दान करता है, दान ग्रहण करता है, अपनी इन्द्रियों को वश में लाता है, आत्मसंयम करता है, कर्तव्यपरायण रहता है और वंश की अच्छी परम्पराओं को बनाये रखता है। भगवान् सत्यमेव (सचमुच) ऐसे हैं; इसलिये वे 'ब्राह्मण' कहे जाते हैं।

"महाराज! ब्राह्मण अपने पूर्वजन्मों की बातों को पूर्णतः जानता है! भगवान् भी वस्तुतः ऐसे हैं, इसलिये वे 'ब्राह्मण' कहे जाते हैं।

"महाराज! भगवान् को 'ब्राह्मण'—ऐसा नाम न तो माता ने दिया था, न पिता ने, न भाई ने, न बहन ने, न मित्र और साथियों ने, न बन्धु-बान्धवों ने, न श्रमण-ब्राह्मणों ने और न देवताओं ने। विमोक्ष पा लेने से ही उनको यह नाम दिया जाता है। बोधिवृक्ष के नीचे मार-सेना को हरा कर, तीनों काल के पापों को बाहर कर, सर्वज्ञता प्राप्त कर लेने से ही उनका नाम 'ब्राह्मण' पड़ा था। महाराज! इसी कारण से भगवान् 'ब्राह्मण' कहे जाते हैं।"

१८. (ख) "भन्ते नागसेन! और किस कारण से बुद्ध राजा हुए?" "महाराज! 'राजा' उसी को कहते हैं जो राज-पाट चलाता है और सर्वत्र शासन बनाये रखता है। महाराज! भगवान् भी दश हजार

"राजा नाम, महाराज, सब्बजनमनुस्से अभिभवित्वा नन्दयन्तो ञातिसङ्घं, सोचयन्तो अमित्तसङ्घं, महतिमहायससिरिहरं थिरसारदण्डं अनूनसतसलाकालङ्कतं उस्सापेति पण्डरविमल-सेतच्छत्तं; भगवा पि, महाराज, सोचयन्तो मारसेनं मिच्छापटिपन्नं, नन्दयन्तो देवमनुस्से, सम्मापटिपन्ने दससहस्सिया लोकधातुया महतिमहायससिरिहरं खन्तिथिरसारदण्डं ञाणवरसत-सलाकालङ्कतं उस्सापेति अग्गवरविमुत्तिपण्डरविमलसेतच्छत्तं, तेनापि कारणेन तथागतो वुच्चति 'राजा' ति।

"राजा नाम उपगतसम्पत्तजनानं बहूनमभिवन्दनीयो भवति; भगवा पि, महाराज, उपगतसम्पत्तदेवमनुस्सानं बहूनमभिवन्दनीयो, तेनापि कारणेन तथागतो वुच्चति 'राजा' ति।

"राजा नाम यस्स कस्सचि आराधकस्स पसीदित्वा वरितं वरं दत्वा कामेन तप्पयति; भगवा पि, महाराज, यस्स कस्सचि कायेन वाचाय मनसा आराधकस्स पसीदित्वा, वरितं वरमनुत्तरं सब्बदुखपरिमुत्तिं दत्वा असेसकामवरेन च तप्पयति, तेनापि कारणेन तथागतो वुच्चति 'राजा' ति।

"राजा नाम आणं वीतिक्कमन्तं विगरहति झापेति धंसेति; भगवतो पि, महाराज, सासनवरे आणं अतिक्कमन्तो अलज्जी मङ्कुभावेन ओञातो हीळितो गरहितो भवित्वा वज्जति जिनसासनवरम्हा, तेनापि कारणेन तथागतो वुच्चति 'राजा' ति।

"राजा नाम पुग्गलानं धम्मिकानं राजूनं पवेणिमनुसिट्ठिया धम्माधम्मनुदीपयित्वा धम्मेन रज्जं कारयमानो पिहयितो पियो पत्थितो भवति जनमनुस्सानं, चिरं राजकुलवंसं

लोकों पर धर्म से राज करते हैं; देवता, मार, ब्रह्मा, श्रमण और ब्राह्मणों के साथ सारे संसार में अनुशासन बनाये रखते हैं। इस लिये भगवान् 'राजा' हुए।

"महाराज! राजा उसी को कहते हैं जो सभी लोगों को अपने वश में कर लेता है, अपने बन्धु-बान्धवों को प्रसन्न किये रखता है, शत्रुओं को सताता है, जिसका नाम और यश बहुत फैला हो, जो अत्यन्त बल-सम्पन्न हो और जो अपने निर्मल श्वेतछत्र को ऊँचा उठाता हो। महाराज! भगवान् भी दुष्ट मार-सेना को सता कर देवताओं और मनुष्यों को आनन्दित करते हैं, दश हजार लोकों में अपने महान् यश को फैलाते हैं, क्षान्ति-बल से दृढ़ रहते हैं, सर्वज्ञान से युक्त होते हैं, श्वेत, निर्मल और श्रेष्ठ विमुक्तिरूपी श्वेतछत्र को ऊँचा उठाते हैं। इसलिये भगवान् 'राजा' हुए।

"महाराज! जैसे राजा भेंट करने के लिये आये हुए लोगों से वन्दनीय होता है। महाराज! भगवान् भी सभी आये हुए लोगों से वन्दनीय होते हैं, इसलिये भगवान् 'राजा' हुए।

"महाराज! जैसे राजा प्रसन्न कर देने वालों को यथेच्छ वर देकर सन्तुष्ट कर देता है। महाराज! भगवान् भी मन, वचन और कर्म से प्रसन्न करने वालों को दुःख से मुक्त कर देने वाले निर्वाण-फल को देते हैं, जो संसार के सभी वरों से बढ़ कर है। इसलिये भगवान् 'राजा' हुए।

"महाराज! जैसे राजा न्याय के विरुद्ध आचरण करने वालों को झिड़कियाँ देता है या अर्थदण्ड या अन्य अनेक प्रकार के दण्ड देता है; महाराज! उसी तरह, भगवान् जो निर्लज्ज और असन्तुष्ट होकर तथागत की प्रज्ञप्तियों के विरुद्ध आचरण करता है, उसे निन्दित, अपमानित करते हैं और शासन से बाहर भी कर देते हैं। इसलिये भगवान् 'राजा' हुए।

"महाराज! राजा उसी को कहते हैं जो पूर्व काल से धार्मिक राजाओं के बताये गये न्याय और नियमों को बनाये रखे, धर्मपूर्वक शासन करके लोगों का अत्यन्त प्रिय बना रहे तथा धर्म-बल से अपने

ठपयति धम्मगुणबलेन; भगवा पि, महाराज, पुब्बकानं सयम्भूनं पवेणिमनुसिट्ठिया धम्माधम्म-मनुदीपयित्वा धम्मेन लोकमनुसासमानो पिहयितो पियो पत्थितो देवमनुस्सानं चिरं सासनं पवत्तेति धम्मगुणबलेन, तेनापि कारणेन तथागतो वुच्चति 'राजा' ति।

"एवमनेकविधं, महाराज, कारणं, येन कारणेन तथागतो ब्राह्मणो पि भवेय्य, राजा पि भवेय्य; सुनिपुणो भिक्खु कप्पं पि नो गणनं सम्पादेय्य। किं अतिबहुं भणितेन! सङ्खित्तं सम्पटिच्छितब्बं" ति।

"साधु, भन्ते नागसेन, एवमेव तथा सम्पटिच्छामी" ति।

९. गाथाभिगीतभोजनकथापञ्हो

१९. "भन्ते नागसेन, भासितं पेतं भगवता—

'गाथाभिगीतं मे अभोजनेय्यं, सम्पस्सतं, ब्राह्मण, नेस धम्मो।

गाथाभिगीतं पनुदन्ति बुद्धा, धम्मे सति ब्राह्मणवुत्तिरेसा' ति॥*(सु०नि०, १-४-६)*

"पुन च भगवा परिसाय धम्मं देसेन्तो कथेन्तो अनुपुब्बिकथं पठमं ताव दानकथं कथेसि, पच्छा सीलकथं। तस्स भगवतो सब्बलोकिस्सरस्स भासितं सुत्वा देवमनुस्सा अभिसङ्खरित्वा दानं देन्ति, तस्स तं उय्योजितं दानं सावका परिभुञ्जन्ति। यदि, भन्ते नागसेन, भगवता भणितं—'गाथाभिगीतं मे अभोजनेय्यं' ति, तेन हि—'भगवा दानकथं पठमं कथेती' ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि दानकथं पठमं कथेति, तेन हि—'गाथाभिगीतं मे अभोजनेय्यं' ति तं पि वचनं मिच्छा। किङ्कारणं? यो सो, भन्ते, दक्खिणेय्यो गिहीनं पिण्डपातदानस्स

वश को चिर काल के लिये गद्दी पर बनाये रखे। महाराज! उसी तरह, भगवान् पूर्व बुद्धों के बताये गये नियम और न्याय को प्रज्ञप्त करते हैं, संसार के धर्म–गुरु बने रहते हैं, देवताओं और मनुष्यों के प्रिय होते हैं तथा अपने धर्मबल से शासन को चिरकाल तक बनाये रखते हैं। इसलिये भगवान् 'राजा' हुए।"

"महाराज! यही कारण है कि भगवान् ब्राह्मण और राजा दोनों हो सकते हैं। इन कारणों की गणना चतुर भिक्षु एक कल्प में भी नहीं कर सकता। तब, मेरे अधिक कहने से क्या लाभ! मैंने जो संक्षेप में कहा है उसी से आप सब कुछ समझ लें।"

"ठीक है, भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं, मैं स्वीकार करता हूँ।"

९. धर्मोपदेशानन्तर भोजनविषयकप्रश्न—१९. "भन्ते नागसेन! भगवान् ने कहा है—

'धर्मोपदेश कर भोजन नहीं करना चाहिये। ब्राह्मण! ज्ञानी लोग ऐसा नहीं किया करते। धर्मोपदेश करने के लिये कुछ ग्रहण करने में बुद्ध सहमत नहीं होते। ब्राह्मण! धर्मानुकूल आचरण करने पर ऐसी ही बात होती है॥'

"फिर भी, लोगों की धर्मोपदेश की भूमिका में भगवान् सर्वप्रथम दान की भूरि–भूरि प्रशंसा करते थे और उसके बाद ही शील आदि के विषय में कुछ कहते थे। उन सर्वलोकेश्वर भगवान् का उपदेश सुन, देवता और मनुष्य, सभी बहुत दान करते थे। उनके लाये हुए दान को भिक्षु लोग ग्रहण किया करते थे। (क) भन्ते! यदि भगवान् ने यथार्थ कहा है—'धर्मोपदेश कर भोजन नहीं करना चाहिये', तो यह बात झूठी ठहरती है कि धर्मोपदेश करते समय भगवान् सर्वप्रथम दान की प्रशंसा करते थे। (ख) और यदि वस्तुतः धर्मोपदेश करते समय भगवान् सर्वप्रथम दान की प्रशंसा करते थे तो वे ऐसा नहीं कह सकते कि, 'धर्मोपदेश कर भोजन नहीं करना चाहिये।' सो कैसे? भन्ते! जो यथार्थ में दान का पात्र है

विपाकं कथेति, तस्स ते धम्मकथं सुत्वा पसन्नचित्ता अपरापरं दानं देन्ति, ये तं दानं परिभुञ्जन्ति सब्बे ते गाथाभिगीतं परिभुञ्जन्ति। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो निपुणो गम्भीरो तवानुप्पत्तो, सो तया निब्बाहितब्बो'' ति?

२०. ''भासितं पेतं, महाराज, भगवता—'गाथाभिगीतं ....पे०.... वुत्तिरेसा' ति। कथेति च भगवा पठमं दानकथं। तं च पन किरियं सब्बेसं तथागतानं पठमं दानकथाय, तत्थ चित्तं अभिरमापेत्वा पच्छा सीले नियोजेन्ति। यथा, महाराज, तरुणदारकानं पठमं ताव कीळभण्डकानि देन्ति, सेय्यथीदं—वङ्ककं, घटिकं, चिङ्गुळकं, पत्ताळ्हकं, रथकं, धनुकं, पच्छा ते सके सके कम्मे नियोजेन्ति; एवमेव खो, महाराज, तथागतो पठमं दानकथाय चित्तं अभिरमापेत्वा पच्छा सीले नियोजेति।

''यथा वा पन, महाराज, भिसक्को नाम आतुरानं पठमं ताव चतूहपञ्चाहं तेलं पायेति बलकरणाय सिनेहनाय,पच्छा विरेचेति; एवमेव खो, महाराज, तथागतो पठमं ताव दानकथाय चित्तं अभिरमापेत्वा पच्छा सीले नियोजेति। दायकानं, महाराज, दानपतीनं चित्तं मुदुकं होति मद्दवं सिनिद्धं। तेन ते दानसेतुसङ्कमेन दाननावाय संसारसागरमनुगच्छन्ति। तस्मा तेसं पठमं कम्मभूमिमनुसासति, न च केनचि विञ्ञत्तिमापज्जती'' ति।

२१. ''भन्ते नागसेन, 'विञ्ञत्ती' ति यं वदेसि, कति पन ता विञ्ञत्तियो'' ति? ''द्वेमा, महाराज, विञ्ञत्तियो—कायविञ्ञत्ति, वचीविञ्ञत्ति चा ति। तत्थ कायविञ्ञत्ति अत्थि सावज्जा, अत्थि अनवज्जा। अत्थि वचीविञ्ञत्ति सावज्जा, अत्थि अनवज्जा।

यदि वह गृहस्थों के सामने दान की प्रशंसा करे तो उसके उपदेश से वे श्रद्धा में आकर और भी अधिक दान देंगे। और जो भी उस दान को ग्रहण करेंगे, वे सभी धर्मोपदेश करने के कारण ही ग्रहण करने वाले कहे जायेंगे। यह भी एक द्विविधा....?''

२०. ''महाराज! भगवान् ने यथार्थ ही कहा है—'धर्मोपदेश कर भोजन नहीं करना चाहिये, ब्राह्मण! ज्ञानी लोग ऐसा नहीं करते। धर्मोपदेश करने के लिये कुछ ग्रहण करने में बुद्ध सहमत नहीं होते। ब्राह्मण! धर्मानुकूल आचरण करने पर ऐसी ही बात होती है।' और यह भी सत्य है कि भगवान् सर्वप्रथम दान की प्रशंसा करते हैं। सभी बुद्धों की यही परम्परा है—दान की प्रशंसा से पहले उनका चित्त आकृष्ट कर बाद में शील—पालन का उपदेश देते हैं। महाराज! जैसे छोटे लड़कों को लोग पहले कुछ खिलौना दे देते हैं—जैसे बंकुली, घिरनी, गुल्ली—डण्डा, खेलने का पैला, खेलने की गाड़ी, छोटा धनुष्—उसके बाद उससे जो चाहते हैं करवा लेते हैं। महाराज! इसी तरह, भगवान् दान की प्रशंसा कर पहले उनका चित्त आकृष्ट करते हैं बाद में शील—पालन का उपदेश देते हैं।

''महाराज! जैसे वैद्य रोगी को पहले चार—पाँच दिन तक तेल पिलाता है, जिससे उसका शरीर चिकना हो जाता है और उससे उसे कुछ शक्ति आ जाती है, बाद में विरेचन दिया जाता है। महाराज! इसी तरह, बुद्ध दान की प्रशंसा करके पहले उनके चित्त को आकृष्ट कर लेते हैं। बाद में शील—पालन का उपदेश देते हैं। महाराज! दान करने वाले दाताओं का चित्त बहुत कोमल और मृदु होता है। वे दान—रूपी पुल या नाव पर चढ़ कर संसारसागर के पार चले जाते हैं। इसी कारण, भगवान् पहले उनको अपनी कर्मभूमि का उपदेश देते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि वे उन से उलटे—सीधे दान माँगते हैं!''

२१. ''भन्ते! उलटे—सीधे दान कैसे माँगा जाता है?'' ''महाराज! दो प्रकार से—१. क्रिया से,

"कतमा कायविञ्ञत्ति सावज्जा? इधेकच्चो भिक्खु कुलानि उपगन्त्वा अनोकासे ठितो ठानं भञ्जति, अयं कायविञ्ञत्ति सावज्जा, ताय च विञ्ञापितं अरिया न परिभुञ्जन्ति। सो न पुग्गलो अरियानं समये ओञातो होति हीळितो खीळितो गरहितो परिभूतो अचित्तीकतो, 'भिन्नाजीवो' त्वेव सङ्खं गच्छति। (क)

"पुन च परं महाराज, इधेकच्चो भिक्खु कुलानि उपगन्त्वा अनोकासे ठितो गलं पणामेत्वा मोरपेक्खितं पेक्खति—'एवं इमे पस्सन्ती' ति, तेन च ते पस्सन्ति। अयं पि कायविञ्ञत्ति सावज्जा, ताय च विञ्ञापितं अरिया न परिभुञ्जन्ति। सो च पुग्गलो अरियानं समये ओञातो हीळितो खीळितो गरहितो परिभूतो अचित्तीकतो, 'भिन्नाजीवो' त्वेव सङ्खं गच्छति। (ख)

"पुन च परं, महाराज, इधेकच्चो भिक्खु हनुकाय वा भमुकाय वा अङ्गुट्ठेन वा विञ्ञापेति। अयं पि कायविञ्ञत्ति सावज्जा, ताय च विञ्ञापितं अरिया न परिभुञ्जन्ति। सो च पुग्गलो अरियानं समये ओञातो हीळितो खीळितो गरहितो परिभूतो अचित्तीकतो, 'भिन्नाजीवो' त्वेव सङ्खं गच्छति। (ग)

"कतमा कायविञ्ञत्ति अनवज्जा? इध भिक्खु कुलानि उपगन्त्वा सतो समाहितो सम्पजानो ठाने पि अट्ठाने पि यथानुसिट्ठिं गन्त्वा ठाने तिट्ठति, दातुकामेसु तिट्ठति, अदातुकामेसु पक्कमति। अयं कायविञ्ञत्ति अनवज्जा, ताय च विञ्ञापितं अरिया परिभुञ्जन्ति। सो च पुग्गलो अरियानं समये वण्णितो होति थुतो पसत्थो, सल्लेखिताचारो, 'परिसुद्धाजीवो' त्वेव सङ्खं गच्छति। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन—

और २. कथन से। इनमें, पहले प्रकार 'कर के उलटे या सीधे दान माँगना' अच्छा है और दूसरे प्रकार का गलत। पहले प्रकार का 'कह के उलटे–सीधे दान माँगना' अच्छा है और दूसरे प्रकार का गलत।"

"कौन सा 'कर के सीधे दान माँगना' गलत है?" "कोई भिक्षु गृहस्थ के घर जा, अनुचित स्थान पर खड़ा हो जाता है। यह गलत करके उलटे–सीधे दान माँगना है। अच्छे भिक्षु इस तरह, 'करके उलटे–सीधे दान माँग कर' ग्रहण नहीं करते! जो व्यक्ति ऐसा करता है वह बुद्ध–शासन में निन्दित, गलत, पतित और अनुचित समझा जाता है। वह मिथ्याजीविका वाला जाना जाता है। (क)

"महाराज! फिर कोई भिक्षु भिक्षाटन के लिये निकल किसी गृहस्थ के दरवाजे पर अनुचित स्थान पर खड़ा हो, मोर की तरह गर्दन लम्बी कर इधर–उधर ताकता है, जिससे लोग उसे देख लें और आकर भिक्षा दें। यह भी गलत क्रिया से उलटे–सीधे दान माँगना है। अच्छे भिक्षु इस तरह 'करके उलटे–सीधे दान माँग कर' ग्रहण नहीं करते। जो भिक्षु ऐसा करता है वह बुद्ध–शासन में निन्दित, पतित और अनुचित समझा जाता है। वह मिथ्याजीविका वाला जाना जाता है। (ख)

"महाराज! फिर कोई भिक्षु ठुड्डी हिला, भौं चला कर या अंगुली से संकेत कर के भिक्षा माँगता है। यह भी गलत 'करके उलटे–सीधे दान माँगना' है। जो अच्छे भिक्षु हैं, वे इस तरह 'करके उलटे–सीधे दान माँग कर' ग्रहण नहीं करते। जो व्यक्ति ऐसा करता है वह बुद्धशासन में निन्दित, पतित और अनुचित समझा जाता है। वह मिथ्याजीविका वाला जाना जाता है। (ग)

"कौन सा 'करके उलटे–सीधे दान माँगना' अच्छा कहा जाता है?" "महाराज! कोई भिक्षु भिक्षाटन के लिये निकल, गृहस्थ के दरवाजे पर उचित स्थान पर खड़ा होता है, सावधान, शान्त और सतर्क रहता है। यदि कोई देना चाहता है तो खड़ा रहता है, नहीं तो आगे बढ़ जाता है। यह अच्छा

'न वे याचन्ति अप्पञ्ञा, अरिया गरहन्ति याचनं।
उद्दिस्स अरिया तिट्ठन्ति, एसा अरियान याचना' ति॥ *(जा० ३५४)*

"कतमा वचीविञ्ञत्ति सावज्जा ? इध, महाराज, भिक्खु वाचाय बहुविधं विञ्ञापेति चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानपच्चयभेसज्जपरिक्खारं, अयं वचीविञ्ञत्ति सावज्जा, ताय च विञ्ञापितं अरिया न परिभुञ्जन्ति। सो च पुग्गलो अरियानं समये ओञातो होति हीळितो खीळितो गरहितो परिभूतो अचित्तीकतो, 'भिन्नाजीवो' त्वेव सङ्खं गच्छति।

"पुन च परं, महाराज, इधेकच्चो भिक्खु परेसं सावेन्तो एवं भणति— 'इमिना मे अत्थो' ति, ताय व वाचाय परेसं भाविताय तस्स लाभो उप्पज्जति। अयं पि वचीविञ्ञत्ति सावज्जा, ताय च विञ्ञापितं अरिया न परिभुञ्जन्ति। सो च पुग्लो अरियानं समये ओञातो होति हीळितो खीळितो गरहितो परिभूतो अचित्तीकतो, 'भिन्नाजीवो' त्वेव सङ्खं गच्छति।(ख)

"पुन च परं, महाराज, इधेकच्चो भिक्खु वचीविप्फारेन परिसाय सावेति—'एवं च एवं च भिक्खूनं दातब्बं' ति, तं च ते वचनं सुत्वा परिकित्तितं अभिहरन्ति। अयं पि वचीविञ्ञत्ति सावज्जा, ताय च विञ्ञापितं अरिया न परिभुञ्जन्ति। सो च पुग्गलो अरियानं समये ओञातो होति हीळितो खीळितो गरहितो परिभूतो अचित्तीकतो, भिन्नाजीवो त्वेव सङ्खं गच्छति। (ग)

"ननु, महाराज, थेरो पि सारिपुत्तो अत्थङ्गते सुरिये रत्तिभागे गिलानो समानो थेरेन महामोग्गल्लानेन भेसज्जं पुच्छियमानो वाचं भिन्दि, तस्स तेन वचीभेदेन भेसज्जं उप्पज्जि। अथ

'करके उलटे या सीधे दान माँगना' है। जो अच्छे भिक्षु हैं, वे इस तरह....ग्रहण करते हैं। जो व्यक्ति ऐसा करता है, वह बुद्धशासन में प्रशंसित, भला, ऊँचा और उचित समझा जाता है। वह अच्छी जीविका वाला जाना जाता है। महाराज! देवातिदेव भगवान् ने कहा भी है—

'ज्ञानी लोग माँगते नहीं; क्योंकि आर्यजन माँगना अनुचित समझते हैं। आर्य लोग भिक्षा के लिये चुपचाप खड़े हो जाते हैं, यही उनका माँगना है।'

"कौन सा 'कहके उलटे या सीधे दान माँगना' अनुचित है?" "महाराज! कोई भिक्षु प्रत्यक्ष कह कर अनुशंसा करता है—मुझे चीवर, पिण्डपात, शयनासन या ग्लानप्रत्यय चाहिये। इस तरह, माँगना गलत है। जो अच्छे भिक्षु हैं वे इस तरह.... ग्रहण नहीं करते। जो व्यक्ति ऐसा करता है, वह बुद्धशासन में निन्दित, पतित और अनुचित समझा जाता है। वह मिथ्याजीविका वाला जाना जाता है। (क)

"महाराज! कोई भिक्षु दूसरों को सुनाते हुए कहता है—'मुझे अमुक वस्तु चाहिये।' इस तरह दूसरों से माँग–माँग कर वह लोभी हो जाता है। इस तरह माँगना भी गलत है। जो अच्छे भिक्षु हैं वे इस तरह.... ग्रहण नहीं करते। जो व्यक्ति ऐसा करता है, वह बुद्धशासन में निन्दित, पतित और अनुचित समझा जाता है। वह मिथ्या जीविका वाला जाना जाता है। (ख)

"महाराज! फिर, कोई भिक्षु बातों–बातों में लोगों को सुना देता है –'भिक्षुओं को इस तरह दान देना चाहिये'। उसे सुन कर लोग वही लाते हैं, जिसे उसने कहा था। इस तरह भी 'उलटे या सीधे दान माँगना गलत है।' जो अच्छे भिक्षु हैं वे इस तरह .... ग्रहण नहीं करते। जो व्यक्ति ऐसा करता है, वह बुद्धशासन में निन्दित, पतित और अनुचित समझा जाता है। वह मिथ्या जीविका वाला माना जाता है। (ग)

"महाराज! एक बार स्थविर शारिपुत्र सूर्यास्त के बाद रात्रि में बीमार हो गये। तब, स्थविर महामोग्गल्लान ने उनसे पूछा कि कौन सी औषधी करनी चाहिये। इस पर स्थविर शारिपुत्र ने बता दिया।

थेरो सारिपुत्तो— 'वचीभेदेन मे इमं भेसज्जं उप्पन्नं, मा मे आजीवो भिज्जी' ति आजीवभेदभया तं भेसज्जं पजहि, न उपजीवि। एवं पि वचीविञ्ञत्ति सावज्जा, ताय च विञ्ञापितं अरिया न परिभुञ्जन्ति। सो च पुग्गलो अरियानं समये ओञातो होति हीळितो खीळितो गरहितो परिभूतो अचित्तीकतो, 'भिन्नाजीवो' त्वेव सङ्खं गच्छति।

"कतमा वचीविञ्ञत्ति अनवज्जा? इध, महाराज, भिक्खु सति पच्चये भेसज्जं विञ्ञापेति ञातिपवारितेसु कुलेसु, अयं वचीविञ्ञत्ति अनवज्जा, ताय च विञ्ञापितं अरिया परिभुञ्जन्ति। सो च पुग्गलो अरियानं समये होति थोमितो पसत्थो, 'परिसुद्धाजीवो' त्वेव सङ्खं गच्छति; अनुमतो तथागतेहि अरहन्तेहि सम्मासम्बुद्धेहि।

"यं पन, महाराज, तथागतो कसिभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स भोजनं पजहि, तं आवेठन-विनिवेठनकड्ढननिग्गहप्पटिकम्मेन निब्बत्तं, तस्मा तथागतो तं पिण्डपातं पटिक्खिपि, न उपजीवी ति।

२२. "सब्बकालं, भन्ते नागसेन, तथागते भुञ्जमाने देवता दिब्बं ओजं पत्ते आकिरन्ति, उदाहु सूकरमद्दवे च मधुपायासे चा ति द्वीसु येव पिण्डपातेसु आकिरिंसू" ति?

२३. "सब्बकालं, महाराज, तथागते भुञ्जमाने देवता दिब्बं ओजं गहेत्वा उपतिट्ठित्वा उद्धटुद्धटे आलोपे आकिरन्ति।

"यथा, महाराज, रञ्ञो सूदो रञ्ञो भुञ्जन्तस्स सूपं गहेत्वा उपतिट्ठित्वा कबळे कबळे

उनके बताने पर वह औषध लायी गयी। इसी बीच स्थविर शारिपुत्र को ध्यान आया—'अरे! मैंने माँग कर यह औषध ली है। यह अनुचित बात है। ऐसा करने से मेरी जीविका मिथ्या हो जायगी।' सो उन्होंने औषध नहीं खायी। इस तरह भी 'उलटे या सीधे माँगना अनुचित है। जो अच्छे भिक्षु हैं वे इस तरह .... ग्रहण नहीं करते। जो व्यक्ति ऐसा करता है, वह बुद्धशासन में निन्दित, पतित और अनुचित समझा जाता है। वह मिथ्याजीविका वाला जाना जाता है।

" 'कह के माँगना' कौन सा अच्छा समझा जाता है? महाराज! किसी भिक्षु को किसी वस्तु की आवश्यकता पड़ जाने पर अपने बन्धु–बान्धवों को या वर्षावास के लिये जिन लोगों ने निमन्त्रण दिया है, उनको सूचित करता है। यह 'कह के उलटे या सीधे दान माँगना' अच्छा समझा जाता है। जो अच्छे भिक्षु हैं वे इस तरह .... ग्रहण करते हैं। जो व्यक्ति ऐसा करता है, वह बुद्ध–शासन में प्रशंसित, भला, ऊँचा और उचित समझा जाता है। वह 'सम्यगाजीव' जाना जाता है। भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध ने भी इसकी अनुमति दी है।

"महाराज! कभी भारद्वाज नामक ब्राह्मण के निमन्त्रण को भगवान् ने अस्वीकार कर दिया था वह इसलिये कि वह ब्राह्मण न हुई बात पर विवाद कर, उनसे झूठा तर्क करके उनमें दोष निकालना चाहता था। इसलिये भगवान् ने उस निमन्त्रण को स्वीकार ही नहीं किया।"

२२. "भन्ते! भगवान् के भोजन में देवता लोग क्या सदा ही दिव्य ओज भर देते थे या केवल सूकरमद्दव और मधुपायस[1] इन्हीं दो भोजनों में?

२३. "महाराज! भगवान् के प्रत्येक ग्रास उठाने पर देवता लोग सदा ही उसमें दिव्य ओज भर देते थे।

---

१. मधुपायस (=दूध की खीर) द्र०--महावग्ग। सुजाता द्वारा प्रदत्त भोजन। इसके खाने के बाद भगवान् को बुद्धत्व लाभ हुआ था।

सूपं आकिरति; एवमेव खो, महाराज, सब्बकालं तथागते भुञ्जमाने देवता दिब्बं ओजं गहेत्वा उपतिट्ठित्वा उद्धटुद्धटे आलोपे दिब्बं ओजं आकिरन्ति। वेरञ्जायं पि, महाराज, तथागतस्स सुक्खयवपुलके भुञ्जमानस्स देवता दिब्बेन ओजेन तेमयित्वा तेमयित्वा उपसंहरिंसु, तेन तथागतस्स कायो उपचितो अहोसी'' ति।

''लाभा वत, भन्ते नागसेन, तासं देवतानं या तथागतस्स सरीरपटिजग्गने सततं समितं उस्सुक्कमापन्ना। साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी'' ति।

१०. धम्मदेसनाय अप्पोस्सुकपञ्हो

२४. ''भन्ते नागसेन, तुम्हे भणथ— 'तथागतेन चतूहि च असङ्ख्येय्येहि कप्पानं कप्पसतसहस्सेन च एत्थन्तरे सब्बञ्ञुतञाणं परिपाचितं महतो जनकायस्स समुद्धरणाया' ति। पुन च— 'सब्बञ्ञुतं पत्तस्स अप्पोस्सुकताय चित्तं नमि, नो धम्मदेसनाया' ति।

''यथा नाम, भन्ते नागसेन, इस्सासो वा इस्सासन्तेवासी वा बहुके दिवसे सङ्गामत्थाय उपासनं सिक्खित्वा सम्पत्ते महायुद्धे ओसक्केय्य; एवमेव खो, भन्ते नागसेन, तथागतेन चतूहि च असङ्ख्येय्येहि कप्पानं कप्पसतसहस्सेन च एत्थन्तरे सब्बञ्ञुतञाणं परिपाचेत्वा महतो जनकायस्स समुद्धरणाय सब्बञ्ञुतं पत्तेन धम्मदेसनाय ओसक्कितं।

''यथा वा पन, भन्ते नागसेन, मल्लो वा मल्लन्तेवासी वा बहुके दिवसे निब्बुद्धं सिक्खित्वा सम्पत्ते मल्लयुद्धे ओसक्केय्य; एवमेव खो, भन्ते नागसेन, तथागतेन चतूहि च असङ्ख्येय्येहि कप्पानं कप्पसतसहस्सेन च एत्थन्तरे सब्बञ्ञुतञाणं परिपाचेत्वा महतो जनकायस्स समुद्धरणाय सब्बञ्ञुतं पत्तेन धम्मदेसनाय ओसक्कितं।

''किं नु खो, भन्ते नागसेन, तथागतेन भया ओसक्कितं, उदाहु अपाकटताय ओसक्कितं,

---

"ठीक वैसे ही जैसे राजा का रसोइया उनके प्रत्येक ग्रास उठाने पर सूप देता जाता है; उसी तरह, महाराज! भगवान् के प्रत्येक ग्रास उठाने पर देवता लोग सदा ही उसमें दिव्य ओज भर देते थे। वेरञ्जा में भी सूखे जौ का धान खाते समय भी देवताओं ने उसे दिव्य ओज से बार-बार भिगो दिया था, जिससे भगवान् का शरीर पुष्ट बना रहा।"

"भन्ते नागसेन! धन्य हैं वे देवता जो भगवान् के शरीर की पुष्टि के लिये प्रतिक्षण सर्वत्र तत्पर रहते हैं। ठीक है, भन्ते नागसेन! मैंने समझ लिया।"

१०. धर्मदेशना में भगवान् का अल्पौत्सुक्य— २४. "भन्ते नागसेन! आप लोग कहते हैं— 'भगवान् चार असंख्य एक लाख कल्पों से संसार के उद्धार के लिये धीरे-धीरे अपना ज्ञान बढ़ाते हुए अन्त में बुद्धत्व प्राप्त कर सर्वज्ञ हो गये। और फिर यह भी कहते हैं—'सर्वज्ञता प्राप्त कर लेने पर धर्मोपदेश करने की नहीं, अपितु शान्त रहने की उनकी इच्छा होने लगी।'

"भन्ते नागसेन! जैसे कोई पहलवान या उसका शिष्य मल्लयुद्ध में जाने के लिये बहुत दिनों से सीख कर तैयार हो जाय, किन्तु समय आने पर अखाड़े से भाग जाँय; वैसे ही भगवान् चार असंख्य एक लाख कल्पों से संसार के उद्धार के लिये धीरे धीरे अपना ज्ञान बढ़ाते हुए अन्त में बुद्धत्व प्राप्त कर सर्वज्ञ हो जाने के बाद धर्मदेशना करने से विरत हो गये!

"भन्ते नागसेन! जैसे कोई मल्ल या उसका शिष्य बहुत दिनों से कुश्ती के सारे दाँव-पेंच सीख कर तैयार हो जाँय, किन्तु जिस दिन कुश्ती की प्रतियोगिता हो, उस दिन उपस्थित न हो; वैसे ही

उदाहु दुब्बलताय ओसक्कितं, उदाहु असब्बञ्ञुताय ओसक्कितं? किं तत्थ कारणं, इङ्घ मे त्वं कारणं ब्रूहि कङ्खावितरणाय? यदि, भन्ते नागसेन, तथागतेन चतूहि च असङ्खेय्येहि कप्पानं कप्पसतसहस्सेन च एत्थन्तरे सब्बञ्ञुतञाणं परिपाचितं महतो जनकायस्स समुद्धरणाय, तेन हि— 'सब्बञ्ञुतं पत्तस्स अप्पोस्सुक्कताय चित्तं नमि, नो धम्मदेसनाया' ति यं वचनं तं मिच्छा। यदि सब्बञ्ञुतं पत्तस्स अप्पोस्सुकताय चित्तं नमि, नो धम्मदेसनाय, तेन हि— 'तथागतेन चतूहि च असङ्खेय्येहि कप्पानं कप्पतसतसहस्सेन च एत्थन्तरे सब्बञ्ञुतञाणं परिपाचितं महतो जनकायस्स समुद्धरणाया' ति तं पि वचनं मिच्छा? अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो गम्भीरो दुन्निब्बेधो तवानुप्पतो, सो तया निब्बाहितब्बो'' ति?

२५. ''परिपाचितं च, महाराज, तथागतेन चतूहि च असङ्खेय्येहि कप्पानं कप्पसतसहस्सेन च एत्थन्तरे सब्बञ्ञुतञाणं महतो जनकायस्स समुद्धरणाय। पत्तसब्बञ्ञुतस्स च अप्पोस्सुकताय चित्तं नमि, नो धम्मदेसनाय। तं च धम्मस्स गम्भीरनिपुणदुद्दसदुरनुबोधसुखुमदुप्पटिवेधतं सत्तानं च आलयारामतं सक्कायदिट्ठिया दळ्हसुग्गहिततं च दिस्वा—'किं नु खो, कथं नु खो' ति अप्पोस्सुक्कताय चित्तं नमि, नो धम्मदेसनाय। सत्तानं पटिवेधचिन्तनमानसं येवेतं।

''यथा महाराज, भिसक्को सल्लकत्तो अनेकब्याधिपरिपीळितं नरं उपसङ्कमित्वा एवं चिन्तयति— 'केन नु खो उपक्कमेन कतमेन वा भेसज्जेन इमस्स ब्याधि वूपसमेय्या' ति;

भगवान् चार असंख्य एक लाख कल्पों से संसार के उद्धार के लिये धीरे धीरे अपने को बढ़ाते हुए अन्त में बुद्धत्व प्राप्त कर सर्वज्ञ हो जाने के बाद धर्मदेशना करने में उत्सुक नहीं रहे।

"भन्ते नागसेन! भगवान् किसी के भय से उत्सुक नहीं हुए थे या अपनी असमर्थता या यथार्थ में सर्वज्ञता न प्राप्त करने से? क्या कारण था—कृपया समझा कर मेरा सन्देह दूर करें? (क) भन्ते! यदि यह बात सच है कि 'भगवान् चार असंख्य एक लाख कल्पों से संसार के उद्धार के लिये धीरे धीरे अपने ज्ञान का बढ़ाते हुए अन्त में बुद्धत्व प्राप्तकर सर्वज्ञ हो गये' तो यह बात झूठी ठहरती है कि 'सर्वज्ञता प्राप्त कर लेने पर धर्मोपदेश करने की नहीं, किन्तु शान्त रहने की उनकी इच्छा हुई'। (ख) और यदि यह बात ठीक है कि 'सर्वज्ञता प्राप्त कर लेने पर धर्मोपदेश करने की नहीं, किन्तु शान्त रहने की इच्छा होने लगी' तो यह बात असत्य ठहरती है कि 'भगवान् चार असंख्य एक लाख कल्पों से संसार के उद्धार के लिये धीरे धीरे अपना ज्ञान बढ़ाते हुए अन्त में बुद्धत्व प्राप्त कर सर्वज्ञ हो गये'। यह भी एक द्विविधा....?"

२५. "महाराज! दोनों बातें ही ठीक हैं। भगवान् यथार्थ में चार असंख्य एक लाख कल्पों से संसार का उद्धार करने के लिये धीरे धीरे अपना ज्ञान बढ़ाते हुए अन्त में बुद्धत्व प्राप्त कर सर्वज्ञ हो गये। किन्तु, सर्वज्ञता प्राप्त कर लेने पर यथार्थ में धर्मोपदेश न करके केवल शान्त रहने की उनकी इच्छा होने लगी। ऐसी इच्छा होने का कारण यह था कि पहले तो उन्होंने धर्म को इतना गम्भीर, सूक्ष्म, दुर्ज्ञेय और दुर्बोध देखा; और दूसरे, संसार के लोगों को कामवासनाओं में अत्यन्त लिप्त देखा तथा मिथ्या सत्कायदृष्टि[1] से जकड़ा पाया। यह देख उनके मन में वितर्क होने लगा— 'किसे मैं सिखाऊँगा? किस तरह मैं सिखाऊँगा?' वे लोगों का अल्प सामर्थ्य देखने लगे।

"महाराज! जैसे कोई वैद्य या शल्यकर्ता अनेक रोगों से पीड़ित किसी रोगी के पास जा कर विचारता है— 'किस चिकित्सा से, किस औषध से इसके रोग दूर होंगे?' उसी तरह, पहले तो भगवान्

---

१. सत्कायदृष्टि (शरीर में एक नित्य आत्मा होने का भ्रम)। द्र०— मज्झिमनिकाय— 'महापुण्णिमसुत्त'।

एवमेव खो, महाराज, तथागतस्स सब्बकिलेसब्याधिपरिपीळितं जनं धम्मस्स च गम्भीरनिपुण-दुद्दसदुरनुबोधसुखुमदुप्पटिवेधतं दिस्वा— 'किं नु खो, कथं नु खो' ति अप्पोस्सुक्कताय चित्तं नमि, नो धम्मदेसनाय। सत्तानं पटिवेधचिन्तनमानसं येवेतं।

"यथा, महाराज, रञ्ञो खत्तियस्स मुद्धावसित्तस्स दोवारिकअनीकट्ठपारिसज्जनेगम-भटबलअमच्चराजञ्ञराजूपजीविने जने दिस्वा एवं चित्तमुप्पज्जेय्य— 'किं नु खो, कथं नु खो इमे सङ्गण्हिस्सामी' ति; एवमेव खो, महाराज, तथागतस्स धम्मस्स गम्भीरनिपुणदुद्दस-दुरनुबोधसुखुमदुप्पटिवेधतं सत्तानं च आलयारामतं सक्कायदिट्ठिया दळ्हसुग्गहिततं च दिस्वा— 'किं नु खो, कथं नु खो' ति अप्पोस्सुक्कताय चित्तं नमि, नो धम्मदेसनाय। सत्तानं पटिवेधचिन्तनमानसं येवेतं।

"अपि च, महाराज, सब्बेसं तथागतानं धम्मता एसा यं ब्रह्मुना आयाचिता धम्मं देसेन्ति। तत्थ पन किं कारणं? ये तेन समयेन मनुस्सा तापसपरिब्बाजका समणब्राह्मणा सब्बे ते ब्रह्मदेवता होन्ति गरुका ब्रह्मपरायणा। तस्मा तस्स बलवतो यसवतो ञातस्स पञ्ञातस्स उत्तरस्स अच्चुग्गतस्स ओनमनेन सदेवको लोको ओनमिस्सति ओकप्पेस्सति अधिमुच्चिस्सती ति इमिना व, महाराज, कारणेन तथागता ब्रह्मुना आयाचिता धम्मं देसेन्ति।

"यथा, महाराज, कोचि राजा वा राजमहामत्तो वा यस्स ओनमति अपचितिं करोति, बलवतरस्स तस्स ओनमनेन अवसेसा जनता ओनमति अपचितिं करोति; एवमेव खो, महाराज, ब्रह्मे ओनमिते तथागतानं सदेवको लोको ओनमिस्सति। पूजितपूजको, महाराज, लोको, तस्मा सो ब्रह्मा सब्बेसं तथागतानं आयाचति धम्मदेसनाय, तेन च कारणेन तथागता ब्रह्मुना आयाचिता धम्मं देसेन्ती" ति।

बुद्ध ने धर्म को इतना गम्भीर देखा और दूसरे, संसार के लोगों को कामवासनाओं में अत्यन्त लिप्त देखा तथा झूठी सत्कायदृष्टि से जकड़ा पाया। यह देख उनके मन में ऊहापोह होने लगा—'किसे मैं सिखाऊँगा? किस तरह मैं सिखाऊँगा?' इस तरह वे लोगों का अल्प सामर्थ्य देखने लगे।

"महाराज! जैसे कोई क्षत्रिय राजा गद्दी पाकर अपने द्वारपाल, अंगरक्षक, सभासद, नागरिक, सिपाही, सेना, कोष, अधिकारी, अधीनस्थ और भी दूसरों को देखकर, विचारता है— 'कैसे, किस तरह इनका सञ्चालन करूँ!' उसी तरह, पहले तो भगवान् ने धर्म को इतना गम्भीर देखा तथा झूठी सत्कायदृष्टि से आबद्ध देखा। यह देख उनके मन में वितर्क होने लगा— 'किसे मैं सिखाऊँगा? किस तरह मैं सिखाऊँगा?' वे लोगों का अल्प सामर्थ्य देखने लगे।

"महाराज! और, सभी बुद्धों की यही परम्परा है कि वे ब्रह्मा द्वारा प्रार्थना किये जाने के बाद ही धर्मोपदेश करते हैं। इसका क्या कारण है? इसका कारण यह है कि उस समय सभी लोग—क्या तपस्वी, क्या परिव्राजक, क्या श्रमण और क्या ब्राह्मण— ब्रह्मोपासक होते थे, ब्रह्मा ही को मानते थे, ब्रह्मा ही की पूजा करते थे। उस बली, यशस्वी, विख्यात, ज्ञानी, अलौकिक और सबके अग्र ब्रह्मा के झुक जाने से देवताओं के साथ समग्र लोक झुक जाता है, धर्म को मान लेता और ग्रहण कर लेता है। महाराज! यही कारण है कि बुद्ध ब्रह्मा द्वारा प्रार्थना किये जाने के बाद ही धर्मोपदेश करते हैं।"

"महाराज! जैसे कोई राजा या राजमन्त्री किसी पुरुष का बहुत सत्कार करे। उसके ऐसा करने से प्रजा भी उसके सम्मान में लग जाय। महाराज! इसी तरह, भगवान् के सामने ब्रह्मा के झुक

"साधु, भन्ते नागसेन, सुनिब्बेठितो पञ्हो, अतिभद्रकं वेय्याकरणं, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी" ति।

११. आचरियानाचरियपञ्हो

२६. "भन्ते नागसेन, भासितं पेतं भगवता—

'न मे आचरियो अत्थि, सदिसो मे न विज्जति।
सदेवकस्मिं लोकस्मिं, नत्थि मे पटिपुग्गलो' ति॥ *(वि० पि०, म० व०)*

"पुन च भणितं— 'इति खो, भिक्खवे, आळारो कालामो आचरियो मे समानो अन्तेवासिं मं समानं अत्तना समसमं ठपेसि, उळाराय च मं पूजाय पूजेसी' ति। *(म० नि०, बो० रा० सु०)* यदि, भन्ते नागसेन, तथागतेन भणितं— 'न मे.... पे०.... पटिपुग्गलो' ति। तेन हि— 'इति खो....पे०.... ठपेसी' ति, यं वचनं तं मिच्छा। यदि तथागतेन भणितं— 'इति खो....पे०.... ठपेसी' ति, तेन हि— 'न मे....पे०.... पटिपुग्गलो' ति तं वचनं मिच्छा। अयं पि उभतोकोटिको पञ्हो तवानुप्पत्तो, सो तया निब्बाहितब्बो" ति?

२७. "भासितं पेतं, महाराज, तथागतेन— 'न मे ....पे०.... पटिपुग्गलो' ति, भणितं च— 'इति खो, भिक्खवे, आळारो कालामो आचरियो मे समानो अन्तेवासिं मं समानं अत्तना समसमं ठपेसि, उळाराय च मं पूजाय पूजेसी' ति। तं च वचनं पुब्बेन सम्बोधा अनभिसम्बुद्धस्स बोधिसत्तस्सेव सतो आचरियभावं सन्धाय भासितं।

"पञ्चिमे, महाराज, पुब्बेव सम्बोधा अनभिसम्बुद्धस्स बोधिसत्तस्स सतो आचरिया, येहि अनुसिट्ठो बोधिसत्तो तत्थ तत्थ दिवसं वीतिनामेसि। कतमे पञ्च? ये, महाराज, अट्ठ

जाने से देवताओं के साथ सारा लोक झुक जायेगा। जिसकी बड़े बूढ़ों से पूजा होती है, उसी की पूजा संसार भी करता है। इसी कारण से ब्रह्मा स्वयं ही सभी बुद्धों से धर्मोपदेश के लिये प्रार्थना करते हैं। इस तरह, ब्रह्मा द्वारा प्रार्थना किये जाने पर ही बुद्ध धर्मोपदेश करते हैं।"

"ठीक है, भन्ते नागसेन! आपने अच्छी तरह समझाते हुए उचित ही कहा है। मैं मान लेता हूँ।"

११. बुद्ध के कोई आचार्य नहीं थे— २६. "भन्ते नागसेन! भगवान् ने कहा है—

'न मेरा कोई आचार्य है, न मेरे समान कोई दूसरा। देवताओं और मनुष्यों के साथ सारे संसार में मेरे सदृश कोई नहीं है॥'

"साथ ही साथ यह भी कहा है, 'भिक्षुओ! आलार कालाम मेरे गुरु थे और मैं उनका शिष्य। तो भी उन्होंने मुझे अपने बराबर बैठाया और बहुत सम्मान दिया।' (क) भन्ते नागसेन! यदि भगवान् ने यह यथार्थ कहा है—'न मेरा कोई आचार्य है.... संसार में मेरे समान कोई नहीं है!' तो उनका यह कहना झूठा ठहरता है कि 'भिक्षुओ! आलार कालाम मेरे गुरु थे और मैं उनका शिष्य। तो भी उन्होंने मुझे अपने बराबर स्थान और सम्मान दिया।' (ख) और, यदि उन्होंने यह यथार्थ कहा है कि 'भिक्षुओ! आलार कालाम मेरे गुरु थे....।' तो उनका यह कहना झूठा ठहरता है कि, 'न मेरा कोई आचार्य है....।' यह भी एक द्विविधा....?"

२७. "महाराज! भगवान् ने यह ठीक कहा है— 'न मेरा कोई आचार्य है....देवताओं और मनुष्यों सहित इस संसार में मेरे सदृश कोई नहीं है॥' उन ने यह भी सत्य ही कहा है— 'भिक्षुओ! आलार कालाम मेरे गुरु थे और मैं उनका शिष्य। तो भी उन्होंने मुझे अपने समान स्थान और सम्मान दिया।'

ब्राह्मणा जातमत्ते बोधिसत्ते लक्खणानि परिगण्हिंसु, सेय्यथीदं— रामो, धजो, लक्खणो, मन्ती, यञ्ञो, सुयामो, सुभोजो, सुदत्तो ति; ते तस्स सोत्थिं पवेदयित्वा रक्खाकम्मं अकंसु, ते च पठमं आचरिया।

"पुन च परं, महाराज, बोधिसत्तस्स पिता सुद्धोदनो राजा यं तेन समयेन अभिजातं उदिच्चजातिवन्तं पदकं वेय्याकरणं छळङ्गवन्तं सब्बमित्तं नाम ब्राह्मणं उपनेत्वा सोवण्णनेन भिङ्कारेन उदकं ओणोजेत्वा— 'इमं कुमारं सिक्खापेही' ति अदासि, अयं दुतियो आचरियो।

"पुन च परं, महाराज, या सा देवता बोधिसत्तं संवेजेसि, यस्सा वचनं सुत्वा बोधिसत्तो संविग्गो उब्बिग्गो तस्मिं येव खणे नेक्खमं निक्खमित्वा पब्बजि, अयं ततियो आचरियो।

"पुन च परं, महाराज, आळारो कालामो आकिञ्चञ्ञायतनस्स परिकम्मं आचिक्खति। अयं चतुत्थो आचरियो।

"पुन च परं, महाराज, उद्दको रामपुत्तो नेवसञ्ञानासञ्ञायतनस्स परिकम्मं आचिक्खति। अयं पञ्चमो आचरियो।

"इमे खो, महाराज, पुब्बेव सम्बोधा अनभिसम्बुद्धस्स बोधिसत्तस्स सतो पञ्च आचरिया। ते च पन आचरिया लोकिये धम्मे। इमस्मिं च पन महाराज, लोकुत्तरे धम्मे सब्बञ्ञुतञ्ञाणपटिवेधाय नत्थि तथागतस्स अनुत्तरो अनुसासको।

किन्तु, यह तो उन ने बुद्धत्वप्राप्ति से पहले की बात कही थी। उस समय वे सम्यक्सम्बुद्ध नहीं हुए थे, बोधिसत्त्व ही थे। यह उस समय के आचार्य होने की बात है।

"महाराज! सम्यक्सम्बुद्ध होने के पहले, बोधिसत्त्व काल में उन के पाँच आचार्य हो चुके थे, जिनसे शिक्षा लेकर उन्होंने समय बिताया था। कौन से पाँच? (१) महाराज! वे आठ ब्राह्मण जिन्होंने बोधिसत्त्व के जनमते ही आकर उन के लक्षण बताये थे। उनके नाम हैं— १. राम, २. धज, ३. लक्खण, ४. मन्ती, ५. यज्ञ, ६. सुयाम, ७. सुभोज और ८. सुदत्त। इन ने उनकी स्वस्ति बता कर उनकी रक्षा की थी। वे उनके पहले आचार्य हुए।

(२) "महाराज! उनका दूसरा आचार्य सब्बमित्त नाम का ब्राह्मण था। वह उच्च औदीच्य कुल का, शब्द–शास्त्र का जानने वाला, वैयाकरण और वेद के छह अङ्गों का पण्डित था। पिता शुद्धोदन ने उन्हें बहुत धन दे तथा सोने की झारी से सङ्कल्प कर कुमार सिद्धार्थ को विद्याध्ययन के लिये सौंप दिया था। वह उनका दूसरा आचार्य हुआ।

(३) "महाराज! उनका तीसरा आचार्य वह देवता था, जिसने उनके हृदय को ज्ञान की खोज में चल पड़ने के लिए उत्सुक बनाया और जिसकी बात सुन कर वे महल में नहीं रह सके— घर से निकल गये। वह देवता उनका तीसरा आचार्य हुआ।

(४) "महाराज! और यही आकिञ्चन्यायतनसिद्धान्तवादी आलार कालाम उनके चौथे आचार्य थे।

(५) "महाराज! और उद्दक रामपुत्र उनके पाँचवें आचार्य हुए। जो कि नैवसंज्ञानासंज्ञायतनवादी थे।

"महाराज! सम्यक्सम्बुद्ध होने के पहले, बोधिसत्त्व अवस्था में उनके ये पाँच आचार्य हुए थे। किन्तु ये सभी उनको अध्यात्म की प्रारम्भिक सीढ़ियाँ चढ़ाने वाले थे। महाराज! इस लोकोत्तर धर्म में सर्वज्ञ बुद्ध को सर्वोच्च शिक्षा देने वाला कोई नहीं है।

"सयम्भू, महाराज, तथागतो अनाचरियको, तस्मा कारणा तथागतेन भणितं— 'न मे ....पे०.... पटिपुग्गलो'' ति।

"साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी" ति॥

(इमस्मिं वग्गे एकादस पञ्हा) *पञ्चमो सन्थववग्गो निट्ठितो॥*

॥ मेण्डकपञ्हो निट्ठितो ॥

"महाराज! भगवान् ने तो स्वयं ही बुद्धत्व प्राप्त किया था, उनका इस विषय में कोई दूसरा आचार्य नहीं था। इसीलिये भगवान् ने कहा है— 'मेरा कोई आचार्य नहीं हैं, लोक में मेरी समानता करने वाला कोई नहीं हैं।"

"ठीक है, भन्ते, मैं समझ गया।"

(इस वर्ग में एकादश प्रश्न हैं।) *पञ्चम संस्तववर्ग समाप्त॥*

॥ मेण्डकप्रश्न समाप्त ॥

५. अनुमानपञ्हे

१. बुद्धवग्गो

१. द्विन्नं बुद्धानं अनुप्पज्जमानपञ्हो

१. "भन्ते नागसेन, भासितं पेतं भगवता– 'अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं एकिस्सा लोकधातुया द्वे अरहन्ता सम्मासम्बुद्धा अपुब्बं अचरिमं उप्पज्जेयुं, नेतं ठानं विज्जती' ति। (अ०नि० १.१५.१०) देसेन्ता च, भन्ते नागसेन, सब्बे पि तथागता सत्ततिंस बोधिपक्खियधम्मे देसेन्ति, कथयमाना च चत्तारि अरियसच्चानि कथेन्ति, सिक्खापेन्ता च तीसु सिक्खासु सिक्खापेन्ति, अनुसासमाना च अप्पमादपटिपत्तियं अनुसासन्ति। यदि, भन्ते नागसेन, सब्बेसं पि तथागतानं एका देसना, एका कथा, एका सिक्खा, एका अनुसिट्ठि; केन कारणेन द्वे तथागता एकक्खणे न उप्पज्जन्ति? एकेन पि ताव बुद्धुप्पादेन अयं लोको ओभासजातो, यदि दुतियो बुद्धो भवेय्य, द्विन्नं पभाय अयं लोको भिय्योसोमत्ताय ओभासजातो भवेय्य, ओवदमाना च द्वे तथागता सुखं ओवदेय्युं, अनुसासमाना च सुखं अनुसासेय्युं। तत्थ मे कारणं ब्रूहि यथाहं निस्संसयो भवेय्यं" ति?

२. "अयं, महाराज, दससहस्सी लोकधातु एकबुद्धधारणी, एकस्सेव तथागतस्स गुणं धारेति। यदि दुतियो बुद्धो उप्पज्जेय्य, नायं दससहस्सी लोकधातु धरेय्य, चलेय्य कम्पेय्य नमेय्य ओनमेय्य विनमेय्य विकिरेय्य विधमेय्य विद्धंसेय्य, न ठानमुपगच्छेय्य।

"यथा, महाराज, नावा एकपुरिससन्धारणी भवेय्य, एकस्मिं पुरिसे अभिरूळ्हे सा

---

५. अनुमानप्रश्न

१. बुद्धवर्ग

१. दो बुद्धों का एक साथ अनुत्पाद– १. "भन्ते नागसेन! भगवान् ने कहा है– 'भिक्षुओ! यह बात हो नहीं सकती; क्योंकि यह सम्भव नहीं कि संसार में एक साथ दो अर्हत्, अपूर्व सम्यक्सम्बुद्ध इकट्ठे उत्पन्न हों, ऐसा न कभी हुआ और न हो सकता है।' और, भन्ते नागसेन! सभी बुद्ध बुद्धत्व पाने के लिये सैंतीस उपाय (बोधिपक्षीय धर्म) बताते हैं; चार आर्य–सत्यों (दुःख, दुःखसमुदय, दुःखनिरोध, दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा) की देशना करते हैं; तीनों शिक्षाओं (अधिशील, अधिचित्त, अधिप्रज्ञ) का उपदेश करते हैं; और सदा कर्तव्य पर डटे रहने की शिक्षा देते हैं। भन्ते नागसेन! यदि सभी बुद्ध एक ही मार्ग बताते हैं; एक ही बात कहते हैं, एक ही उपदेश देते हैं और एक ही शिक्षा देते हैं तो संसार में एक साथ दो बुद्धों के एकत्र होने में क्या अपत्ति है? एक बुद्ध के होने से ही संसार प्रकाश से भर जाता है। यदि एक साथ दो बुद्ध उत्पन्न हो जाँय तो दोनों के प्रकाश से तेज और भी अधिक रहेगा। वे दोनों बुद्ध सुखपूर्वक उपदेश दें, शिक्षा दें। आप कृपया इसका कारण बतावें, जिससे मेरी शङ्का दूर हो?"

२. "महाराज! यह लोक एक बुद्ध के प्रताप को ही एक बार में सहन कर सकता है, एक से अधिक के गुणों को नहीं सम्हाल सकता। यदि दूसरे भी बुद्ध उत्पन्न हो जाँय तो न सम्हल सकने के कारण यह लोक हिलने डोलने लगे, नम जाय, झुक जाय, धँस जाय, बिखर जाय, टूक–टूक हो जाय, या सर्वथा नष्ट हो जाय।

नावा समुदका भवेय्य; अथ दुतियो पुरिसो आगच्छेय्य तादिसो आयुना वण्णेन वयेन पमाणेन किसथूलेन सब्बङ्गपच्चङ्गेन, सो तं नावं अभिरुहेय्य; अपि नु सा, महाराज, नावा द्विन्नं पि धारेय्या'' ति?''न हि, भन्ते; चलेय्य कम्पेय्य नमेय्य ओनमेय्य विनमेय्य विकिरेय्य विधमेय्य विद्धंसेय्य, न ट्ठानमुपगच्छेय्य। ओसीदेय्य उदके'' ति।''एवमेव खो, महाराज, अयं दससहस्सी लोकधातु न धारेय्य, चलेय्य कम्पेय्य नमेय्य ओनमेय्य विनमेय्य विकिरेय्य विधमेय्य विद्धंसेय्य, न ट्ठानमुपगच्छेय्य।

''यथा वा पन, महाराज, पुरिसो यावदत्थं भोजनं भुञ्जेय्य छादेन्तं याव कण्ठमभिपूरयित्वा, सो धातो पीणितो परिपुण्णो निरन्तरो तन्दिकतो अनोनमितदण्डजातो पुनदेव तत्तकं भोजनं भुञ्जेय्य, अपि नु खो सो, महाराज, पुरिसो सुखितो भवेय्या'' ति?''न हि, भन्ते, सकिं भुत्तो व मरेय्या' ति।''एवमेव खो, महाराज, अयं दससहस्सी लोकधातु एकबुद्धधारणी, एकस्सेव तथागतस्स गुणं धारेति। यदि दुतियो बुद्धो उप्पज्जेय्य, नायं दससहस्सी लोकधातु धारेय्य, चलेय्य कम्पेय्य नमेय्य ओनमेय्य विनमेय्य विकिरेय्य विधमेय्य विद्धंसेय्य, न ट्ठानमुपगच्छेय्या'' ति।

''किन्नु खो, भन्ते नागसेन, अतिधम्मभारेन पठवी चलती'' ति?''इध, महाराज, द्वे सकटा रतनपरिपूरिता भवेय्यं याव मुखसमा, एकस्मा सकटतो रतनं गहेत्वा एकस्मिं सकटे आकिरेय्युं, अपि नु खो, महाराज, तं सकटं द्विन्नं पि सकटानं रतनं धारेय्या'' ति?''न हि, भन्ते, नाभि पि तस्स फलेय्य, अरा पि तस्स भिज्जेय्युं, नेमि पि तस्स ओपतेय्य, अक्खो पि तस्स भिज्जेय्या'' ति।''एवमेव खो, महाराज, अतिधम्मभारेन पठवी चलति।

"महाराज! जैसे एक आदमी का भार सम्हाल सकने वाली कोई नाव हो। एक ही आदमी उस पर चढ़ कर पार उतर सकता हो। तब कोई दूसरा आदमी भी वहाँ आ जाय जो आयु, वर्ण.... प्रमाण, तथा सभी तरह से उसी के समान उसकी ही कद काठी हो; वह भी उसी नाव पर सवार हो जाय। महाराज! तब क्या नाव ठहर पायगी?" "नहीं, भन्ते! हिलने, डोलने लगेगी, नम जायगी, झुक जायगी, धँस जायगी, छितरा जायगी, टूट जायगी या पानी में डूब कर नष्ट हो जायगी।" "महाराज! वैसे ही, एक बार में यह लोक एक बुद्ध को ही धारण कर सकता है। एक से अधिक के गुणों का सम्हाल नहीं सकता। यदि साथ ही दूसरे बुद्ध भी उत्पन्न हो जाँय तो न सम्हाल सकने के कारण यह लोक हिलने लगे....। (क)

"महाराज! जैसे कोई आदमी यथेच्छ भोजन कर ले। उसका पेट कण्ठ तक पूरा-पूरा भर जाय। वह सन्तुष्ट होकर बहुत प्रसन्न हो। उसके पेट में कुछ और खाने की जगह न बची हो। वह दण्डवत् लम्बमान हो जाय। इसके बाद फिर दुबारा ठूँस कर उतना ही भोजन कर ले। महाराज! तो क्या वह आदमी सुखी होगा?" "नहीं, भन्ते! खाते ही मर जायगा।" "महाराज! वैसे ही, यह लोक एक बुद्ध को ही एक बार सहन कर सकता है। एक से अधिक के गुणों को सम्हाल नहीं सकता। यदि दूसरे बुद्ध भी उत्पन्न हो जाँय तो न सम्हाल सकने के कारण यह लोक हिलने लगे....। (ख)

"भन्ते! किन्तु, धर्म का भार अधिक होने से यह पृथ्वी हिलने-डुलने क्यों लगती है?" "महाराज! जैसे बहुमूल्य रत्नों से दो गाड़ियाँ पूरी-पूरी भरी हों। उसके बाद एक के रत्नों को लेकर दूसरी पर लाद दिया जाय। महाराज! तो क्या वह एक गाड़ी दो के भार को सम्हाल सकेगी?" "नहीं, भन्ते! उसकी नाभि फट जायगी, उसके आरे भी टूट जायेंगे, उसकी नेमि धँस जायगी, अक्ष भी टूट

"अपि च, महाराज, इमं कारणं बुद्धबलपरिदीपनाय ओसारितं। अञ्ञं पि तत्थ अभिरूपं कारणं सुणोहि, येन कारणेन द्वे सम्मासम्बुद्धा एकक्खणे उप्पज्जेय्युं, तेसं परिसाय विवादो उप्पज्जेय्य—'तुम्हाकं बुद्धो, अम्हाकं बुद्धो' ति उभतोपक्खजाता भवेय्युं। यथा, महाराज, द्विन्नं बलवामच्चानं परिसाय विवादो उप्पज्जेय्य—'तुम्हाकं अमच्चो, अम्हाकं अमच्चो' ति उभतोपक्खजाता होन्ति; एवमेव खो, महाराज, यदि द्वे सम्मासम्बुद्धा एकक्खणे उप्पज्जेय्युं, तेसं परिसाय विवादो उप्पज्जेय्य—'तुम्हाकं बुद्धो, अम्हाकं बुद्धो' ति उभतोपक्खजाता भवेय्युं। इमं ताव, महाराज, एकं कारणं येन कारणेन द्वे सम्मासम्बुद्धा एकक्खणे न उप्पज्जन्ती" ति।

"अपरं पि, महाराज, उत्तरिं कारणं सुणोहि, येन कारणेन द्वे सम्मासम्बुद्धा एकक्खणे न उप्पज्जन्ति। यदि, महाराज, द्वे सम्मासम्बुद्धा एकक्खणे उप्पज्जेय्युं, 'अग्गो बुद्धो' ति यं वचनं तं मिच्छा भवेय्य, 'जेट्ठो बुद्धो' ति....'सेट्ठो बुद्धो' ति....'विसिट्ठो बुद्धो' ति....'उत्तमो बुद्धो' ति....'पवरो बुद्धो' ति....'असमो बुद्धो' ति....'असमसमो बुद्धो' ति....'अप्पटिमो बुद्धो' ति....'अप्पटिपुग्गलो बुद्धो' ति यं वचनं, तं मिच्छा भवेय्य। इदं पि खो, त्वं, महाराज, कारणं अत्थतो सम्पटिच्छ, येन कारणेन द्वे सम्मासम्बुद्धा एकक्खणे न उप्पज्जन्ति।

"अपि च खो, महाराज, बुद्धानं भगवन्तानं सभावपकति एसा, यं एको येव बुद्धो लोके उप्पज्जति। कस्मा कारणा? महन्तताय सब्बञ्ञुबुद्धगुणानं। अञ्ञं पि, महाराज, यं लोके महन्तं तं एकं येव होति। पठवी, महाराज, महन्ता, एका येव। सागरो महन्तो, सो एको येव। सक्को महन्तो, सो एको येव। मारो महन्तो, सो एको येव। महाब्रह्मा महन्तो, सो एको

जायगा।" "महाराज! तो क्या अधिक रत्नों के भार से गाड़ी टूट जायगी?" "हाँ भन्ते! अवश्य टूट जायगी....।" महाराज! इसी तरह, धर्म का भार अधिक होने से भी यह पृथ्वी हिलने-डुलने लगती है।

"और भी, जहाँ-तहाँ (बुद्धवर्णन-प्रसङ्ग में) यह बात कह दी गयी है। एक और भी अच्छा कारण सुनें, जिससे संसार में दो बुद्ध एक साथ एकत्र नहीं उत्पन्न हो सकते। महाराज! यदि एक साथ दो बुद्ध उत्पन्न हों तो उनके शिष्यों में कलह होने लगेगा—'ये तुम्हारे बुद्ध हैं! ये मेरे बुद्ध हैं!! और दो दल हो जायेंगे, वैसे ही जैसे किसी राजसभा में दो मन्त्रियों के दल हो जाया करते हैं। महाराज! यह भी एक कारण है, जिससे एक साथ दो बुद्ध इकट्ठे नहीं उत्पन्न होते....।

"महाराज! एक और भी कारण सुनें जिससे संसार में एक साथ दो बुद्ध एक साथ उत्पन्न नहीं होते महाराज! यदि संसार में एक साथ दो बुद्ध उत्पन्न हो जायँ तो ये बातें झूठी हो जायँगी—१. बुद्ध सबसे अग्र होते हैं, यह बात झूठी हो जायगी, २. बुद्ध सब से बड़े होते हैं....; ३. बुद्ध सबसे श्रेष्ठ होते हैं....; ४. बुद्ध अपने में ही विशिष्ट हैं,...; ५. बुद्ध उत्तम हैं....; ६. बुद्ध प्रवर होते हैं....; ७. बुद्ध के समान दूसरा कोई नहीं होता है....; ८. बुद्ध अप्रतिम होते हैं....; ९. बुद्ध असदृश होते हैं....; १०. बुद्ध अप्रतिपुद्गल होते हैं....। महाराज! इसे भी आप एक कारण समझें, जिससे संसार में एक साथ दो बुद्ध एकत्र उत्पन्न नहीं होते।"

"महाराज! अन्य बुद्धों की भी ऐसी ही परम्परा है, उनका ऐसा स्वभाव ही है कि दो एकत्र नहीं उत्पन्न होते। सो क्यों? क्योंकि सर्वज्ञ बुद्ध के गुण इतने अधिक होते हैं। महाराज! संसार में और भी जितनी बड़ी-बड़ी चीजें हैं एक ही होती हैं। महाराज! पृथ्वी बड़ी है, वह एक ही है। सागर बड़ा है, वह एक ही है। सुमेरु पर्वतराज भी बड़ा है, वह एक ही है। आकाश बड़ा है, वह भी एक ही है। देवेन्द्र बड़े

येव। तथागतो अरहं सम्मासम्बुद्धो, सो एको येव लोकस्मिं। यत्थ एते उप्पज्जन्ति तत्थ अञ्ञस्स ओकासो न होति। तस्मा, महाराज, तथागतो अरहं सम्मासम्बुद्धो एको येव लोकस्मिं उप्पज्जती'' ति।

''सुकथितो, भन्ते नागसेन, पञ्हो ओपम्मेहि कारणेहि, अनिपुणो पेतं सुत्वा अत्तमनो भवेय्य, किं पन मादिसो महापञ्ञो! साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी'' ति।

२. गोतमिवत्थदानपञ्हो

३. ''भन्ते नागसेन, भासितं पेतं भगवता मातुच्छाय महापजापतिया गोतमिया वस्सिकसाटिकाय दीयमानाय—'सङ्घे, गोतमि, देहि; सङ्घे ते दिन्ने अहं चेव पूजितो भविस्सामि सङ्घो चा' ति। *(म० नि०, दक्खिणावि० सु०)* किन्तु खो, भन्ते नागसेन, तथागतो सङ्घरतनतो न भारिको न गरुको, न दक्खिणेय्यो, यं तथागतो सकाय मातुच्छाय सयं पिञ्जितं सयं लुञ्चितं सयं पोथितं सयं कन्तितं सयं वायितं वस्सिकसाटिकं अत्तनो दीयमानं सङ्घस्स दापेसि। यदि, भन्ते नागसेन, तथागतो सङ्घरतनतो उत्तरो भवेय्य अधिको वा विसिट्ठो वा—'मयि दिन्ने महप्फलं भविस्सती' ति, न तथागतो मातुच्छाय सयं पिञ्जितं सयं लुञ्चितं सयं पोथितं वस्सिकसाटिकं सङ्घे दापेय्य। यस्मा च खो, भन्ते नागसेन, तथागतो अत्तानं न पत्थयति, न उपनिस्सयति, तस्मा तथागतो मातुच्छाय तं वस्सिकसाटिकं सङ्घस्स दापेसी' ति ?

४. ''भासितं पेतं, महाराज, भगवता मातुच्छाय महापजापतिया गोतमिया वस्सिकसाटिकाय *(द्र० वि० पि०)* दीयमानाय—'सङ्घे, गोतमि, देहि। सङ्घे दिन्ने अहं चेव पूजितो भविस्सामि, सङ्घो चा' ति। तं पन न अत्तनो पतिमाननस्स अविपाकताय न अदक्खिणेय्यताय,

---

हैं, वे एक ही हैं। मार बड़ा है वह एक ही है। महाब्रह्मा बड़े हैं, वे एक ही हैं। अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् भी बड़े हैं, अतः वे भी संसार में एक ही होते हैं। महाराज! इसलिये, जो कहा गया है कि 'अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् एक समय में एक ही उत्पन्न होते हैं' सो ठीक कहा गया है।"

"भन्ते नागसेन! उपमाएँ दे कर आपने प्रश्न को अच्छा समझाया। मूर्ख आदमी भी यह सुन कर समझ सकता है फिर मुझ जैसे बुद्धिमान् का तो कहना ही क्या! ठीक है, भन्ते नागसेन! आपने जो कहा मैं मान लेता हूँ।"

२. महाप्रजापति गौतमी द्वारा वस्त्रदान—३. "भन्ते नागसेन! जब भगवान् की मौसी महाप्रजापति गौतमी उन्हें वर्षावास के लिये चीवर देने आयी तो उन्होंने कहा—'गौतमी! इसे सङ्घ को ही दान कर; उसी से मेरी पूजा हो जायगी और साथ-साथ सङ्घ की भी।' भन्ते ! किन्तु क्या भगवान् स्वयं सङ्घरत्न से अधिक भारी, और पूजनीय नहीं है जो उन ने अपनी मौसी महाप्रजापति गौतमी के लाये हुये वस्त्र को स्वयं न लेकर सङ्घ को दिलवा दिया। वह वस्त्र भी ऐसा था—जिसे उसने अपने हाथों से रूई को बीन और कात कर बुना था। भन्ते नागसेन! यदि वे सङ्घरत्न से बढ़ कर अपने को ऊँचा समझते, तो ऐसा अवश्य जानते कि 'मुझे देने से अधिक फल होगा' और तब वह स्वयं लेकर सङ्घ को न दिलाते। भन्ते! भगवान् ने यही सोच कर न उस वस्त्र को सङ्घ को दिलवा दिया था कि मुझे यह लेना उचित नहीं है?"

४. "महाराज! यह सत्य है कि जब भगवान् की मौसी महाप्रजापति गौतमी उन्हें वर्षावास के लिये चीवर देने आई थी तो उन्होंने कहा था—'गौतमी! इसे सङ्घ को दान कर; उसी से मेरी पूजा हो जायगी और साथ-साथ सङ्घ की भी'। ऐसा उन्होंने इसलिये नहीं कहा था कि अपने को उस वस्त्र पाने

अपि च खो, महाराज, हितत्थाय अनुकम्पाय—'अनागतमद्धानं सङ्घो ममच्चयेन चित्तीकतो भविस्सती' ति विज्जमाने येव गुणे परिकित्तयन्तो एवमाह—'सङ्घे, गोतमि, देहि। सङ्घे दिन्ने अहं चेव पूजितो भविस्सामि, सङ्घो चा' ति।

यथा, महाराज, पिता धरमानो येव अमच्चभटबलत्थदोवारिकअनीकट्ठपारिसज्जजनमज्झे रञ्ञो सन्तिके पुत्तस्स विज्जमानं येव गुणं पकित्तेति—'इध ठपितो अनागतमद्धानं जनमज्झे पूजितो भविस्सती' ति; एवमेव खो, महाराज, तथागतो हितत्थाय अनुकम्पाय—'अनागतमद्धानं सङ्घो ममच्चयेन चित्तीकतो भविस्सती' ति विज्जमाने येव गुणे परिकित्तयन्तो एवमाह—'सङ्घे, गोतमि, देहि, सङ्घे दिन्ने अहं चेव पूजितो भविस्सामि, सङ्घो च'' ति।

''न खो, महाराज, तावतकेन वस्सिकसाटिकानुप्पदानमत्तकेन सङ्घो तथागतो अधिको होति विसिट्ठो वा। यथा, महाराज, मातापितरो पुत्तानं उच्छादेन्ति परिमद्दन्ति नहापेन्ति सम्बाहेन्ति, अपि नु खो, महाराज, तावतकेन उच्छादनपरिमद्दननहापनसम्बाहनमत्तकेन पुत्तो मातापितूहि अधिको नाम होति, विसिट्ठो वा'' ति? ''न हि, भन्ते, अकामकरणीया, भन्ते, पुत्ता मातापितुन्नं, तस्मा मातापितरो पुत्तानं उच्छादनपरिमद्दननहापनसम्बाहं करोन्ती'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, न तावतकेन वस्सिकसाटिकानुप्पदानमत्तकेन सङ्घो तथागततो अधिको नाम होति विसिट्ठो वा ति। अपि च तथागतो अकामकरणीयं करोन्तो मातुच्छाय तं वस्सिकसाटिकं सङ्घस्स दापेसि।

यथा वा पन, महाराज, कोचिदेव पुरसो रञ्ञो उपायनं आहरेय्य, तं राजा उपायनं अञ्ञतरस्स भटस्स वा बलत्थस्स वा सेनापतिस्स वा पुरोहितस्स वा ददेय्य; अपि नु खो सो, महाराज, पुरिसो तावतकेन उपायनप्पटिलाभमत्तकेन रञ्ञा अधिको नाम होति विसिट्ठो वा'' ति? ''न हि, भन्ते, राजभत्तिको, भन्ते, सो पुरिसो राजूपजीवी, तं ठाने ठपेन्तो राजा उपायनं

का योग्य पात्र नहीं समझा, न इसलिये कि वे सङ्घ से कम महत्त्व रखते थे। उन्होंने सङ्घ को प्रतिष्ठित करने के लिये वैसा किया था, जिससे आगे चलकर लोग सङ्घ को महत्त्व देना सीखें।

"महाराज! पिता अपने जीवनकाल में अधिकारी, सिपाही सेना के बीच तथा राजा से अपने पुत्र के गुणों की प्रशंसा करता है कि इस तरह वह कुछ स्थान पाकर भविष्य में लोगों से सम्मानित हो सकेगा। महाराज! वैसे ही, लोगों के प्रति अनुकम्पा करके उनकी भलाई के लिये बुद्ध ने अपने जीवनकाल में ही सङ्घ को सम्मानित कर दिखा दिया, जिससे वे भविष्य में सङ्घ को श्रेष्ठ समझना सीखें। इसीलिये उन्होंने कहा था—'गौतमी! इसे सङ्घ को दानकर; उसी से मेरी पूजा हो जायगी और सङ्घ की भी।'

"महाराज! केवल एक वस्त्र दिला देने से सङ्घ भगवान् से बड़ा और ऊँचा नहीं हो जाता। महाराज! जैसे माता-पिता अपने बच्चों को नहलाते हैं, धोते हैं, साफ करते हैं और मलते हैं तो क्या उससे बच्चे अपने माता-पिता से ऊँचे और बड़े हो जाते हैं?" "नहीं, भन्ते! अपनी इच्छा से ही माता-पिता वैसा करते हैं—बच्चा चाहे या न चाहे।" "महाराज! इसी तरह, केवल एक वस्त्र दिला देने से सङ्घ भगवान् से बड़ा और ऊँचा नहीं हो गया। अपनी इच्छा से ही उन्होंने वह वस्त्र सङ्घ को दिलवा दिया था, भले ही सङ्घ चाहे या न चाहे।

"महाराज! जैसे कोई आदमी राजा की सेवा में कुछ भेंट चढ़ावे। राजा वह भेंट किसी दूसरे को—सिपाही, दूत, सेनापति या पुरोहित को दे दे। तो क्या वह दूसरा व्यक्ति केवल वह भेंट पाने मात्र से राजा से बड़ा और ऊँचा समझा जाने लगेगा?" "नहीं, भन्ते! वह राजा से ऊँचा कैसे होगा? वह तो

देती'' ति।''एवमेव खो, महाराज, न तावतकेन वस्सिकसाटिकानुप्पदानमत्तेन सङ्घो तथागतो अधिको नाम होति विसिट्ठो वा, अथ खो तथागतभत्तिको तथागतूपजीवी, तं ठाने ठपेन्तो सङ्घस्स वस्सिकसाटिकं दापेसि।

''अपि च, महाराज, तथागतस्स एवं अहोसि—'सभावपटिपूजनीयो सङ्घो मम सन्तकेन सङ्घं पटिपूजेस्सामी' ति सङ्घस्स वस्सिकस्साटिकं दापसि। न, महाराज, तथागतो अत्तनो येव पटिपूजनं वण्णेति, अथ खो ये लोके पटिपूजनारहा तेसं पि तथागतो पटिपूजनं वण्णेति।

''भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *मज्झिमनिकायवरलञ्छके धम्मदायाद-धम्मपरियाये* अप्पिच्छपटिपत्तिं पकित्तयमानेन—'असु येव मे पुरिमो भिक्खु च पासंसतरो चा' ति। नत्थि, महाराज, भवेसु कोचि सत्तो तथागततो दक्खिणेय्यो वा उत्तरो वा अधिको वा विसिट्ठो वा, तथागतो व उत्तरो अधिको विसिट्ठो।

''भासितं पेतं, महाराज, *संयुत्तनिकायवरे* (३.२.१०.) माणवगामिकेन देवपुत्तेन भगवतो पुरतो ठत्वा देवमनुस्समज्झे—

'विपुलो राजगहियानं गिरि सेट्ठो पवुच्चति।
सेतो हिमवतं सेट्ठो, आदिच्चो अघगामिनं।
समुद्दो उदधिनं सेट्ठो, नक्खत्तानं च चन्दिमा।
सदेवकस्स लोकस्स, बुद्धो अग्गो पवुच्चती' ति॥

''ता खो पनेता, महाराज, माणवगामिकेन देवपुत्तेन गाथा सुगीता न दुग्गीता, सुभासिता न दुब्भासिता, अनुमता च भगवता।

राजा की ओर से वेतन पाता है जिससे उसकी जीविका चलती है। राजा ही उसको उस स्थान में रख कर अपनी भेंट उसे दे देता है।" "महाराज! इसी तरह, केवल एक वस्त्र दिला देने से सङ्घ भगवान् से बड़ा और ऊँचा नहीं हो गया। सङ्घ तो मानो बुद्ध का सेवक है, जो उन्हीं को अपना स्वामी समझता है। भगवान् ने ही सङ्घ को उस स्थान में रख कर उसे वह वस्त्र दिला दिया था।"

"महाराज! भगवान् के मन में ऐसा विचार भी आया—'सङ्घ सदा पूजित होने योग्य है, अपने पाये हुए दान से मैं सङ्घ को ही पूजित होने दूँ।' इसी से उन्होंने सङ्घ को वह वस्त्र दिलवा दिया। महाराज! भगवान् अपने प्रति किये गये सत्कार की ही प्रशंसा नहीं करते, बल्कि संसार में जितने भी योग्य व्यक्ति हैं, सभी के प्रति किये गये सत्कार की प्रशंसा करते हैं।

"महाराज! *मज्झिमनिकाय* में देवातिदेव भगवान् ने *धम्मदायाद*सूत्र का उपदेश करते समय अल्पेच्छता की प्रशंसा करते हुये कहा है—'भिक्षुओ! अल्पेच्छा ही सबसे बढ़ कर पूज्य और प्रशंसनीय है।' महाराज! सारे संसार में ऐसा कोई नहीं है, जो भगवान् से अधिक पूजनीय, बड़ा या ऊँचा हो। भगवान् ही सबसे बड़े, अधिक और ऊँचे हैं। महाराज! देवताओं और मनुष्यों के बीच भगवान् के सामने खड़े होकर माणवगामिक नामक देवपुत्र ने *संयुत्तनिकाय* में कहा है—

'राजगृह के पहाड़ों में विपुलगिरि श्रेष्ठ है और हिमालय के पहाड़ों में श्वेत (सुमेरु), तारों में सूर्य। जलाशयों में समुद्र श्रेष्ठ है, नक्षत्रों में चन्द्रमा। देवताओं के साथ-साथ सारे संसार में बुद्ध ही अग्र कहे जाते हैं'॥

"महाराज! माणवगामिक देवपुत्र ने उचित ही कहा है अनुचित नहीं, भगवान् ने भी इसे स्वीकार किया था।

"ननु, महाराज, थेरेन पि सारिपुत्तेन धम्मसेनापतिना भणितं—

'एको मनोपसादो, सरणागमनं पञ्जलिप्पणामो वा।
उस्सहते तारयितुं, मारबलनिसूदने बुद्धे' ति॥

"भगवता च भणितं देवातिदेवेन—'एकपुग्गलो, भिक्खवे, लोके उप्पज्जमानो उप्पज्जति बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। कतमो एकपुग्गलो? तथागतो अरहं सम्मासम्बुद्धो ....पे०.... देवमनुस्सानं'' ति। *(अं० नि० १.१३.१)*

"साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी" ति।

३. गिहिपब्बजितसम्मापटिपत्तिपञ्हो

५. "भन्ते नागसेन, भासितं पेतं भगवता—'गिहिनो वाहं, भिक्खवे, पब्बजितस्स वा सम्मापटिपत्तिं वण्णेमि, गिही वा, भिक्खवे, पब्बजितो वा सम्मापटिपन्नो सम्मापटिपत्ताधिकरणहेतु आराधको होति ञायं धम्मं कुसलं' ति। *(सं० नि० ४४-२४)* यदि, भन्ते नागसेन, गिही ओदातवसनो कामभोगी पुत्तदारसम्बाधसयनं अज्झावसन्तो, कासिकचन्दनं पच्चनुभोन्तो, मालागन्धविलेपनं धारेन्तो, जातरूपरजतं सादियन्तो, मणिकुण्डलविचित्तमोळिबद्धो सम्मापटिपन्नो आराधको होति ञायं धम्मं कुसलं; पब्बजितो पि भण्डु कासाववत्थवसनो परपिण्डमज्झुपगतो चतूसु सीलक्खन्धेसु सम्मापरिपूरकारी दियड्ढेसु सिक्खापदसतेसु समादाय वत्तन्तो तेरससु धुतगुणेसु अनवसेसं वत्तन्तो सम्मापटिपन्नो आराधको होति ञायं धम्मं कुसलं। तत्थ भन्ते, को विसेसो गिहिनो वा पब्बजितस्स वा! अफलं होति तपोकम्मं,

---

"महाराज! धर्मसेनापति स्थविर शारिपुत्र ने भी कहा है—

'मार–सेना का दमन करने वाले भगवान् में एकान्ततः श्रद्धा रखना, उस एक ही की शरण में जाना, उस एक को ही प्रणाम करना। वही भवसागर को पार करा सकता है!'

"देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—'भिक्षुओ! लोगों के हित के लिये, लोगों के सुख के लिये, लोगों पर अनुकम्पा के लिये तथा देवताओं और मनुष्यों की भलाई के लिये एक ही व्यक्ति का उत्पन्न होना सार्थक है। किस व्यक्ति का? अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध तथागत का।'

"ठीक है, भन्ते नागसेन! आपने जैसा बताया, उसे मैं मान लेता हूँ।"

३. गृही और प्रव्रजित में कौन श्रेष्ठ है?— ५. "भन्ते नागसेन! भगवान् ने कहा है—'भिक्षुओ! गृहस्थ हो या भिक्षु, किसी के भी सन्मार्ग पर आ जाने की मैं प्रशंसा करता हूँ। भिक्षुओ! चाहे गृहस्थ हो या भिक्षु, यदि उचित मार्ग पर आ गया है तो वह समान रूप से ज्ञान, धर्म और पुण्य का भागी हो सकता है'। यदि भन्ते! श्वेत वस्त्र पहनने वाले, विषयभोग करने वाले, स्त्री तथा बाल–बच्चों के झंझट में पड़े रहने वाले, काशी का सुगन्धित चन्दन लगाने वाले, माला–गन्ध और विलेपन का प्रयोग करने वाले, रुपये–पैसे के प्रपञ्च में पड़े रहने वाले तथा अपनी पगड़ी में मणिरत्न सजाने वाले, गृहस्थ भी सन्मार्ग पर पहुँच जाते हैं और ज्ञान, धर्म तथा पुण्य के भागी होते हैं; शिर मुँड़ाने वाले, काषाय वस्त्र पहनने वाले, भिक्षा से अपना जीवन–निर्वाह करने वाले, चार शीलसमूहों को पूरा करने वाले, ढाई सौ–शिक्षापदों को मानने वाले तथा तेरह धुतगुणों के अनुसार रहने वाले प्रव्रजित भिक्षु भी सन्मार्ग पर पहुँच जाते हैं और ज्ञान, धर्म तथा पुण्य के भागी होते हैं तो भन्ते! गृहस्थ और भिक्षु में क्या भेद हुआ? फिर, तप का करना व्यर्थ ही है।

निरत्थिका पब्बज्जा, वञ्झा सिक्खापदगोपना, मोघं धुतगुणसमादानं, किं तत्थ दुक्खमनुचिण्णेन! ननु नाम सुखेनेव सुखं अधिगन्तब्बं'' ति?

६. ''भासितं पेतं, महाराज, भगवता—'गिहिनो वाहं, भिक्खवे, पब्बजितस्स वा सम्मापटिपत्तिं वण्णेमि। गिही वा, भिक्खवे, पब्बजितो वा सम्मापटिपन्नो सम्मापटिपत्ताधिकरणहेतु, आराधको होति ञायं धम्मं कुसलं' ति। एवमेतं, महाराज, सम्मापटिपन्नो व सेट्ठो। पब्बजितो पि, महाराज, 'पब्बजितोम्ही' ति न सम्मा पटिपज्जेय्य, अथ खो सो आरका व सामञ्ञा, आरका व ब्रह्मञ्ञा, पगेव गिही ओदातवसनो। गिही पि, महाराज, सम्मापटिपन्नो आराधको होति ञायं धम्मं कुसलं; पब्बजितो पि, महाराज, सम्मापटिपन्नो आराधको होति ञायं धम्मं कुसलं।

''अपि च खो, महाराज, पब्बजितो सामञ्ञस्स इस्सरो अधिपति; पब्बज्जा, महाराज, बहुगुणा अनेकगुणा अप्पमाणगुणा, न सक्का पब्बज्जाय गुणं परिमाणं कातुं।

''यथा, महाराज, कामददस्स मणिरतनस्स न सक्का धनेन अग्घो परिमाणं कातुं—'एत्तकं मणिरतनस्स मूलं' ति; एवमेव खो, महाराज, पब्बज्जा बहुगुणा अनेकगुणा अप्पमाणगुणा, न सक्का पब्बज्जाय गुणं परिमाणं कातुं।

''यथा वा पन, महाराज, महासमुद्दे ऊमियो न सक्का परिमाणं कातुं—'एत्तका महासमुद्दे ऊमियो' ति; एवमेव खो, महाराज, पब्बज्जा बहुगुणा अनेकगुणा अप्पमाणगुणा, न सक्का पब्बज्जाय गुणं परिमाणं कातुं।

''पब्बजितस्स, महाराज, यं किञ्चि करणीयं सब्बं तं खिप्पमेव समिज्झति, नो

भिक्षु बनने का कोई प्रयोजन नहीं। शिक्षापदों पालन करने का कोई फल नहीं। धुतगुणों के अनुसार रहना भी व्यर्थ है। दुःख उठाने की क्या आवश्यकता, यदि सरलता से ही निर्वाण मिल सकता हो?"

६. "महाराज! भगवान् ने यथार्थ ही कहा है—'भिक्षुओ! गृहस्थ हो या भिक्षु इनमें से किसी के भी सन्मार्ग पर आ जाने की मैं प्रशंसा करता हूँ। भिक्षुओ! चाहे गृहस्थ हो या भिक्षु, यदि वह सन्मार्ग पर आ गया है तो समान रूप से ज्ञान, धर्म और पुण्य का भागी हो सकता है' —महाराज! यह ठीक है। जो मार्ग पर आ गया वही बड़ा है। महाराज! यदि प्रव्रजित इसी में गर्व करने लगे कि 'मैं प्रव्रजित हूँ' और उचित उद्योग न करे तो उसका भिक्षुभाव व्यर्थ है, सभी ज्ञान प्राप्त करने का कोई फल नहीं। श्वेत वस्त्र पहनने वाले गृहस्थों की तो बात ही क्या? महाराज! गृहस्थ भी सन्मार्ग पर आकर ज्ञान, धर्म और पुण्य का भागी बन सकता है और प्रव्रजित भी सन्मार्ग पर चल कर ज्ञान, धर्म और पुण्य का भागी बन सकता है।

"महाराज! तो भी, भिक्षु ही त्याग का अधिपति है। महाराज ! प्रव्रज्या में बहुत गुण हैं, अगाध गुण हैं। प्रव्रज्या के गुणों का अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

"महाराज! जैसे यथेच्छ वर देने वाले मणिरत्न के मूल्य का अनुमान नहीं लगाया जा सकता; वैसे ही प्रव्रज्या के बहुत गुण हैं, अनेक गुण हैं, अथाह गुण है; इसके गुणों का अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

"महाराज! जैसे महासमुद्र की तरङ्गे नहीं गिनी जा सकतीं; वैसे ही प्रव्रज्या के बहुत गुण हैं, अगाध गुण हैं, प्रव्रज्या के गुणों का अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

"महाराज! प्रव्रजित जो कुछ करना चाहता है वह अत्यन्त शीघ्र ही पूर्ण हो जाता है, देर नहीं

चिररत्ताय। किङ्कारणा? पब्बजितो, महाराज, अप्पिच्छो होति सन्तुट्ठो आरद्धविरियो निरालयो अनिकेतो परिपुण्णसीलो सल्लेखिताचारो धुतपटिपत्तिकुसलो *(विसु०म०, दु०प०)* होति। तङ्कारणा पब्बजितस्स यं किञ्चि करणीयं सब्बं खिप्पमेव समिज्झति, नो चिररत्ताय। यथा, महाराज, निग्गण्ठिसमसुधोतउजुविमलनाराचो सुसज्जितो सम्मा वहति; एवमेव खो, महाराज, पब्बजितस्स यं किञ्चि करणीयं सब्बं तं खिप्पमेव समिज्झति, नो चिररत्ताया'' ति।

''साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी'' ति।

४. पटिपदादोसपञ्हो

७. ''भन्ते नागसेन, यदा बोधिसत्तो दुक्करकारिकं अकासि *(द्र०–म० नि०, बोधिराज० सुत्त)* नेतादिसो अञ्ञत्र आरम्भो अहोसि निक्कमो किलेसयुद्धं मच्चुसेनं विधमनं आहारपरिग्गतो दुक्करकारिका, एवरूपे परक्कमे किञ्चि अस्सादं अलभित्वा तमेव चित्तं परिहापेत्वा एवमवोच— 'न खो पनाहं इमाय कटुकाय दुक्करकारिकाय अधिगच्छामि उत्तरिमनुस्सधम्मं अलमरियञाणदस्सनविसेसं, सिया नु खो अञ्ञो मग्गो बोधाया' ति। *(म० नि०, महासीह०सु०)* ततो निब्बिन्दित्वा अञ्ञेन मग्गेन सब्बञ्ञुतं पत्तो पुन ताय पटिपदाय सावके अनुसासति समादपेति—

'आरम्भथ, निक्खमथ, युञ्जथ बुद्धसासने।
धुनाथ मच्चुनो सेनं, नळागारं व कुञ्जरो' ति॥

''केन नु खो, भन्ते नागसेन, कारणेन तथागतो याय पटिपदाय अत्तना निब्बिण्णो विरत्तरूपो, तत्थ सावके अनुसासति समादपेती'' ति?

लगती। सो क्यों? महाराज! क्योंकि प्रव्रजित अल्पेच्छ, सन्तुष्ट, विरागी, संसार के प्रपञ्च से दूर, उत्साही, विना घर–बार का, शीलाचार को पूरा करने वाला, साफ आचरण वाला, धुताङ्गों का धारक होता है। महाराज! इन कारणों से प्रव्रजित जो कुछ करना चाहता है वह अत्यन्त शीघ्र ही पूर्ण हो जाता है, देर नहीं लगती। महाराज! जैसे विना गाँठ का, बराबर, अच्छी तरह माँजा, सीधा और साफ बाण ठीक से छोड़ने से बहुत दूर तक जाता है; वैसे ही प्रव्रजित जो कुछ करना चाहता है वह अत्यन्त शीघ्र ही पूर्ण हो जाता है, देर नहीं लगती।''

''ठीक है, भन्ते नागसेन! आपने जो कहा, उसे मैं मान लेता हूँ।''

४. दुःखचर्या के दोष—७. ''भन्ते नागसेन! जो बोधिसत्त्व ने दुष्करचर्या (दुःखमय तपस्या) की थी, वैसा उद्योग, वैसा उत्साह, वैसा क्लेशों से युद्ध, वैसा मार–सेना को हरा देना, वैसा आहार का संयम, वैसी कठिन व्रतचर्या अन्य किसी ने नहीं की थी। किन्तु इस प्रकार की चर्या का कोई फल निकलता न देख कर उन्होंने इस विचार को छोड़कर कहा—'इस कठिन दुष्करचर्या से भी मैं उस मानवोत्तर धर्म को नहीं प्राप्त कर सका, जिससे सत्य का दर्शन हो। ज्ञान प्राप्ति का क्या कोई दूसरा ही मार्ग है!' उस दुष्कर–चर्या से हार कर उन्होंने दूसरे मार्ग से सर्वज्ञता प्राप्त की थी। फिर, अपने श्रावकों को उस मार्ग का उपदेश करते हुये कहा—

''आरम्भ करो, शक्ति लगाओ, बुद्धधर्म में प्रतिष्ठित हो जाओ। जैसे हाथी सिरकी (घास) के झोपड़े को बिखेर देता है, वैसे ही मार–सेना को तितर–बितर कर दो।''

''भन्ते नागसेन! भगवान् जिस मार्ग से स्वयं हार कर हट गये थे, अपने श्रावकों को उसी में लगने का क्यों उपदेश करते हैं?''

८. "तदा पि, महाराज, एतरहि पि सा येव पटिपदा, तं येव पटिपदं पटिपज्जित्वा बोधिसत्तो सब्बञ्ञुतं पत्तो। अपि च, महाराज, बोधिसत्तो अतिविरियं करोन्तो निरवसेसतो आहारं उपरुन्धि, तस्स आहारुपरोधेन चित्तदुब्बल्यं उप्पज्जि, सो तेन दुब्बल्येन नासक्खि सब्बञ्ञुतं पापुणितुं। सो मत्तमत्तं कबळिङ्काराहारं सेवन्तो तायेव पटिपदाय न चिरस्सेव सब्बञ्ञुतं पापुणि। सा येव, महाराज, पटिपदा सब्बेसं तथागतानं सब्बञ्ञुतञाणप्पटिलाभाय।

"यथा, महाराज, सब्बेसं सत्तानं आहारो उपत्थम्भो, आहारूपनिस्सिता सब्बे सत्ता सुखं अनुभवन्ति; एवमेव खो, महाराज, सा येव पटिपदा सब्बेसं तथागतानं सब्बञ्ञुतञाणप्पटिलाभाय। नेसो, महाराज, दोसो आरम्भस्स, न निक्कमस्स, न किलेसयुद्धस्स, येन तथागतो तस्मिं समयं न पापुणि सब्बञ्ञुतञाणं, अथ खो, आहारुपरोधस्सेवेसो दोसो, सदा पटियत्ता येवेसा पटिपदा।

"यथा, महाराज, पुरिसो अद्धानं अतिवेगेन गच्छेय्य, तेन सो पक्खहतो भवेय्य पीठसप्पी वा असञ्चरो पठवितले। अपि नु खो, महाराज, महापठविया दोसो अत्थि, येन सो पुरिसो पक्खहतो अहोसी" ति? "न हि, भन्ते; सदा पटियत्ता, भन्ते, महापठवी, कुतो तस्सा दोसो, वायामस्सेवेसो दोसो, येन सो पुरिसो पक्खहतो अहोसी" ति! "एवमेव खो, महाराज, नेसो दोसो आरम्भस्स, न निक्कमस्स, न किलेसयुद्धस्स, येन तथागतो तस्मिं समयं न पापुणि सब्बञ्ञुतञाणं; अथ खो आहारुपरोधस्सेवेसो दोसो, सदा पटियत्ता येव सा पटिपदा।

"यथा वा पन,महाराज, पुरिसो किलिट्ठं साटकं निवासेय्य, न सो तं धोवापेय्य, नेसो दोसो उदकस्स, सदा पटियत्तं उदकं, पुरिसस्सेवेसो दोसो; एवमेव खो, महाराज, नेसो दोसो

---

८. "महाराज! तब भी और अब भी, मार्ग वही है। उसी मार्ग पर चल कर बोधिसत्त्व ने सर्वज्ञता प्राप्त की थी। महाराज! फिर भी, अत्यन्त परिश्रम करते हुए बोधिसत्त्व ने अपने आहार को सर्वथा बन्द कर दिया। वैसा करने से उनका चित्त अत्यन्त दुर्बल हो गया। अत्यन्त दुर्बल हो जाने के कारण सर्वज्ञता नहीं प्राप्त कर सके। उसके बाद धीरे–धीरे भोजन करना आरम्भ किया और स्वस्थ हो सर्वज्ञता पा ली। महाराज! सभी बुद्धों के बुद्धत्व पाने का यही मार्ग है।

"महाराज! जैसे सभी जीवों का आधार आहार है, आहार के ही बल पर सब जीव सुख से रहते हैं, वैसे ही सभी बुद्धों के बुद्धत्व पाने का यही मार्ग है। महाराज! यह न तो उद्योग का दोष था, न जोर लगाने का और न क्लेशों से युद्ध करने का ही दोष था, जो भगवान् उस समय सर्वज्ञता नहीं पा सके। यह दोष तो केवल आहार के सर्वथा बन्द कर देने का था। वह मार्ग तो सदा उत्तम ही है।

"महाराज! जैसे कोई आदमी मार्ग पर बहुत जोर से दौड़ने लगे और वह गिर पड़े। उसे लकवा मार दे या वह अपङ्ग हो जाय। तो क्या इसमें पृथ्वी का कोई दोष था, जिससे उसे ऐसा कष्ट भोगना पड़ा?" "नहीं, भन्ते! पृथ्वी तो इसमें निर्दोष है। भला उसका दोष कैसा? आदमी का अपना ही दोष था कि इतना वेग से दौड़ने लगा जिससे वह गिर पड़ा।" "महाराज! उसी तरह, यह न तो उद्योग का दोष था, न शक्ति लगाने का और न क्लेशों से युद्ध करने का दोष था, जो भगवान् उस समय सर्वज्ञता नहीं पा सके। यह दोष तो केवल आहार के सर्वथा बन्द कर देने का था। वह मार्ग तो सदा उत्तम ही है।

"महाराज! जैसे कोई आदमी मैली धोती पहने रहे। उसे धुलवाये नहीं तो उसमें जल का क्या दोष? जल तो सदा सन्नद्ध ही है। उस आदमी का अपना ही दोष है। महाराज! उसी तरह, ...यह दोष

आरम्भस्स, न निक्कमस्स, न किलेसयुद्धस्स, येन तथागतो तस्मिं समये न पापुणि सब्बञ्ञुतञाणं, अथ खो आहारुपरोधस्सेवेसो दोसो, सदा पटियत्ता येवेसा पटिपदा। तस्मा तथागतो तायेव पटिपदाय सावके अनुसासति समादपेति। एवं खो, महाराज, सदा पटियत्ता अनवज्जा सा पटिपदा'' ति।

''साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी'' ति।

५. हीनायावत्तनपञ्हो

९. ''भन्ते नागसेन, महन्तं इदं तथागतसासनं सारं वरं सेट्ठं पवरं अनुपमं परिसुद्धं विमलं पण्डरं अनवज्जं, न युत्तं गिहिं तावतकं पब्बाजेतुं, गिहिं येव एकस्मिं फले विनेत्वा यदा अपुनरावत्ती तदा सो पब्बाजेतब्बो, किङ्कारणं? इमे दुज्जना ताव तत्थ सासने विसुद्धे पब्बजित्वा पटिनिवत्तित्वा हीनायावत्तन्ति, तेसं पच्चागमनेन अयं महाजनो एवं विचिन्तेति— 'तुच्छकं वत, भो, एतं समणस्स गोतमस्स सासनं भविस्सति यं इमे पटिनिवत्तन्ती' ति। इदमेत्थ कारणं'' ति।

''यथा, महाराज, तळाकं भवेय्य सम्पुण्णसुचिविमलसीतलसलिलं, अथ यो कोचि किलिट्ठो मलकद्दमगतो तं तळाकं गन्त्वा अनहायित्वा किलिट्ठो व पटिनिवत्तेय्य, तत्थ, महाराज, कतमं जनो गरहेय्य, किलिट्ठं वा तळाकं वा'' ति? ''किलिट्ठं, भन्ते, गरहेय्य— 'अयं तळाकं गन्त्वा अनहायित्वा किलिट्ठो व पटिनिवत्तो', किं इमं अनहायितुकामं तळाको सयं नहापेस्सति, को दोसो तळाकस्सा'' ति! ''एवमेव खो, महाराज, तथागतो विमुत्तिवर-सलिलसम्पुण्णं सद्धम्मवरतळाकं मापेसि— 'ये केचि किलेसमलकिलिट्ठा सचेतना बुधा ते

तो केवल आहार के सर्वथा बन्द कर देने का था। ...इसलिये बुद्ध अपने श्रावकों को उसी मार्ग में लगने का उपदेश देते हैं। महाराज! इस प्रकार वह मार्ग सदा ही उचित और उत्तम है।''

''ठीक है, भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं, मैं उसे स्वीकार करता हूँ।''

५. भिक्षुभावपरित्यागविषयकप्रश्न—९. ''भन्ते नागसेन! भगवान् बुद्ध द्वारा उपदिष्ट धर्म महान् है, सारतः सत्य है, उत्तम है, श्रेष्ठ है, बड़ा है, ऊँचा है, अनुपमेय है, परिशुद्ध है, विमल है, स्वच्छ और निर्दोष है। इस धर्म के अनुसार गृहस्थ को यों ही प्रव्रजित कर देना अच्छा नहीं। गृहस्थ-काल में ही उसे तब तक सिखाना चाहिये, जब तक वह स्रोतआपत्ति फल प्राप्त न कर ले। फिर, वह चीवर छोड़कर लौट नहीं सकता। इसके बाद निःशङ्क होकर प्रव्रजित करें। सो क्यों? क्योंकि कितने अनुपयोगी पुरुष इस विशुद्ध धर्म में प्रव्रजित हो कर बाद में चीवर छोड़ गृहस्थ बन जाते हैं। उनके ऐसा करने से लोगों को यह समझने का अवसर मिल जाता है कि 'श्रमण गौतम का धर्म अवश्य हितकर नहीं होगा, जिससे इतने लोग लौट आये हैं।' इसी कारण मेरा यह कथन है।''

''महाराज! जैसे पवित्र, निर्मल और शीतल जल से किनारों तक भरा तालाब हो। कोई कीचड़ और गन्दगी में लिपटा हुआ आदमी उस तालाब के पास जाय और बिना नहाये-धोये लौट जाय। महाराज! तो लोग किस पर दोष लगावेंगे—उस आदमी पर या तालाब पर?'' ''भन्ते! लोग उस आदमी पर ही दोष लगावेंगे कि 'वह तालाब के पास जाकर भी बिना नहाये-धोये गन्दगी में लिपटा ही लौट आया'। इच्छा न होने से क्या तालाब उसे पकड़कर नहला देता! भला इसमें तालाब का क्या दोष!'' ''महाराज! वैसे ही, भगवान् ने विमुक्तिरूपी सुन्दर जल से पूर्ण सद्धर्मरूपी तालाब तैयार किया कि 'जो

इध नहायित्वा सब्बकिलेसे पवाहयिस्सन्ती' ति। यदि कोचि तं सद्धम्मवरतळाकं गन्त्वा अनहायित्वा सकिलेसो व पटिनिवत्तेत्वा हीनायावत्तति, तं येव जनो गरहिस्सति— 'अयं जिनसासने पब्बजित्वा तत्थ पतिट्ठं अलभित्वा हीनायावत्तो, किं इमं अप्पटिपज्जन्तं जिनसासनं सयं बोधेस्सति, को दोसो जिनसासनस्सा' ति! (क)

"यथा वा पन, महाराज, पुरिसो परमब्याधितो रोगुप्पत्तिकुसलं अमोघधुवसिद्धकम्मं भिसक्कं सल्लकत्तं दिस्वा अतिकिच्छापेत्वा सब्याधिको व पटिनिवत्तेय्य, तत्थ कतमं जनो गरहेय्य, आतुरं वा भिसक्कं वा" ति? "आतुरं, भन्ते, जनो गरहेय्य— 'अयं रोगुप्पत्तिकुसलं अमोघधुवसिद्धकम्मं भिसक्कं सल्लकत्तं दिस्वा अतिकिच्छापेत्वा सब्याधिको व पटिनिवत्तो, किं इमं अतिकिच्छापेन्तं भिसक्को सयं तिकिच्छिस्सति, को दोसो भिसक्कस्सा" ति! "एवमेव खो, महाराज, तथागतो अन्तोसासनसमुग्गे केवलं सकलकिलेसब्याधिवूपसमनसमत्थं अमतोसधं पक्खिपि— 'ये केचि किलेसब्याधिपीळिता सचेतना बुधा, ते इमं अमतोसधं पिवित्वा सब्बकिलेसब्याधिं वूपसमेस्सन्ती' ति। यदि कोचि तं अमतोसधं अपिवित्वा सकिलेसो व पटिनिवत्तित्वा हीनायावत्तति, तं येव जनो गरहिस्सति— 'अयं जिनसासने पब्बजित्वा तत्थ पतिट्ठं अलभित्वा हीनायावत्तो, किं इमं अप्पटिपज्जन्तं जिनसासनं सयं बोधेस्सति, को दोसो जिनसासनस्सा' ति! (ख)

"यथा वा पन, महाराज, छातो पुरिसो महतिमहापुञ्ञभत्तपरिवेसनं गन्त्वा तं भत्तं अभुञ्जित्वा छातो व पटिनिवत्तेय्य, तत्थ कतमं जनो गरहेय्य— छातं वा, पुञ्ञभत्तं वा" ति?

लोग क्लेशों की गन्दगी में लिपटे हैं, वे बुद्धिमान् इसमें नहाकर अपने समग्र क्लेश धो डालें'। यदि कोई आदमी उस तालाब के पास जाकर भी विना नहाये क्लेशों से लिपटा हुआ ही लौट आवे और पुनः गृहस्थ हो जाय तो उसमें उसका अपना ही दोष है। लोग उसी को दोषी ठहरा कर कहेंगे कि यह बुद्धधर्म में प्रव्रजित हो कर भी वहाँ न रह पाने के कारण, फिर लौट कर गृहस्थ हो गया। अपने उद्योग न करने से क्या बुद्धधर्म उसे पकड़कर बलात् शुद्ध कर देगा! भला इसमें बुद्धधर्म का क्या दोष! (क)

"महाराज! जैसे कोई पुरुष कठिन रोग से पीड़ित हो, एक वैद्य को देखे, जो रोग पहचानने में बहुत निपुण तथा चिकित्सा करने में जिसका हाथ बहुत निपुण हो। देखकर वह न उसके पास जाय और न अपनी चिकित्सा कराये, अपना रोग लिये ही लौट आये। महाराज! तो लोग किसको दोषी ठहरावेंगे— वैद्य को या रोगी को?" "भन्ते! रोगी को ही लोग दोषी ठहरावेंगे कि 'इतने अच्छे वैद्य के पास जाकर भी वह रोगी विना चिकित्सा कराये, अपना रोग लिये ही लौट आया। उसकी अपनी इच्छा न होने पर क्या वैद्य उसे पकड़कर बलात् चिकित्सा करता! भला इसमें वैद्य का क्या दोष'!" "महाराज! वैसे ही, भगवान् ने अपने धर्मरूपी मञ्जूषा (सन्दूक) में समग्र क्लेशों के भयङ्कर रोग की सबसे अचूक औषध रख छोड़ी है। जो चतुर और बुद्धिमान् हैं वे वह औषध पी कर क्लेश–रोग से छूट जाते हैं। यदि कोई उस औषध को विना पिये, अपने क्लेशों को लिये ही लौटकर गृहस्थ हो जाय तो लोग उसी पर दोष लगायेंगे— यह बुद्धधर्म में प्रव्रजित हो कर भी वहाँ न टिकने के कारण लौट आया और गृहस्थ हो गया। उसके स्वयं उद्योग न करने से क्या बुद्धधर्म उसे पकड़ कर बलात् शुद्ध कर देता! भला इसमें बुद्धधर्म का क्या दोष! (ख)

"महाराज! जैसे कोई भूखा आदमी किसी पुण्यार्थ चलने वाले बड़े अन्नक्षेत्र में जाय, किन्तु वहाँ विना कुछ खाये ही भूखा लौट आवे। तो लोग किसको दोषी ठहरावेंगे— भूखे को या पुण्यार्थ चलने वाले

''छातं, भन्ते, जनो गरहेय्य— 'अयं खुदापीळितो पुञ्ञभत्तं पटिलभित्वा अभुञ्जित्वा छातो व पटिनिवत्तो, किं इमस्स अभुञ्जन्तस्स भोजनं सयं मुखं पविसिस्सति, को दोसो भोजनस्सा'' ति! एवमेव खो, महाराज, तथागतो अन्तोसासनसमुग्गे परमप्पवरं सन्तं सिवं पणीतं अमतं परममधुरं कायगतासतिभोजनं ठपेसि— 'ये केचि किलेसछातज्झत्ता तण्हापरेतमानसा सचेतना बुधा, ते इमं भोजनं भुञ्जित्वा कामरूपारूपभवेसु सब्बं तण्हमपनेस्सन्ती' ति। यदि कोचि तं भोजनं अभुञ्जित्वा तण्हासितो व पटिनिवत्तित्वा हीनायावत्तति, तं येव जनो गरहिस्सति— 'अयं जिनसासने पब्बजित्वा तत्थ पतिट्ठं अलभित्वा हीनायावत्तो, किं इमं अप्पटिपज्जन्तं जिनसासनं सयं बोधेस्सति, को दोसो जिनसासनस्सा' ति!

''यदि, महाराज, तथागतो गिहिं येव एकस्मिं फले *(दी०नि०, म०स०प०सु०)* विनीतं पब्बाजेय्य, न नामायं पब्बज्जा किलेसप्पहानाय विसुद्धिया वा, नत्थि पब्बज्जाय करणीयं। यथा, महाराज, पुरिसो अनेकसतेन कम्मेन तळाकं खणापेत्वा परिसाय एवमनुस्सावेय्य— 'मा मे भोन्तो केचि सङ्किलिट्ठा इमं तळाकं ओतरथ, पवाहितरजोजल्ला परिसुद्धा विमलमट्ठा इमं तळाकं ओतरथा' ति। अपि नु खो, महाराज, तेसं पवाहितरजोजल्लानं परिसुद्धानं विमलमट्ठानं तेन तळाकेन करणीयं भवेय्या' ति। ''न हि, भन्ते, यस्सत्थाय ते तं तळाकं उपगच्छेय्युं तं अञ्ञत्रेव तेसं कतं करणीयं, किं तेसं तेन तळाकेना'' ति? ''एवमेव खो, महाराज, यदि तथागतो गिहिंयेव एकस्मिं फले विनीतं पब्बाजेय्य, तत्थेव तेसं कतं करणीयं, किं तेसं पब्बज्जाय!

अन्नक्षेत्र को?'' ''भन्ते! भूखे को ही लोग दोषी ठहरावेंगे कि 'वह भूख से व्याकुल होकर भी पुण्यार्थ देय भोजन को विना खाये ही भूखा लौट आया'। स्वयं न खाने से क्या भोजन उड़कर उसके मुँह में चला जाता! भला इसमें भोजन का क्या दोष!'' ''महाराज! वैसे ही, भगवान् ने अपनी धर्मरूपी थाली में अत्यन्त श्रेष्ठ, शान्त, शिव, प्रणीत और अमृततुल्य मधुर 'कायगता स्मृति' (अपने शरीर पर ही मनन-भावना करना) रूपी भोजन परोस दिया है। जो चतुर सुजन हैं, वे अपने क्लेशों तथा अपनी तृष्णा की व्याकुलता से छूटने के लिये वह भोजन खाकर कामभव, रूपभव और अरूपभव की भूख (तृष्णा) को दूर कर लें। यदि कोई उस भोजन को विना खाये तृष्णा से व्याकुल ही लौट आय और गृहस्थ हो जाय तो लोग उसी पर दोष लगायेंगे कि 'यह बुद्धधर्म में प्रव्रजित हो वहाँ न टिकने के कारण लौट आया और गृहस्थ हो गया। उसके अपने उद्योग न करने से क्या बुद्धधर्म उसे पकड़कर बलात् शुद्ध कर देता! भला इसमें बुद्धधर्म का क्या दोष!' (ग)

''महाराज! यदि बुद्ध गृहस्थों को पहले प्रथम-फल (स्रोतआपत्ति-फल) पर प्रतिष्ठित करा कर बाद में ही प्रव्रजित करते तो यह कहने का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता कि प्रव्रज्या मनुष्य का क्लेश दूर कर शुद्ध कर देती है। (तब तो) प्रव्रज्या का कोई प्रयोजन ही नहीं रह जाता। महाराज! जैसे कोई आदमी सैकड़ों मजदूरों को लगा कर एक तालाब खुदवाये। तालाब तैयार हो जाने के बाद ऐसी सूचना लगा दे— 'कोई मैला या गन्दा आदमी इस तालाब पर न जाय; जो साफ सुथरा हो वही जाय'। महाराज! तो क्या उन स्वच्छ हुए लोगों का तालाब से कोई अर्थ निकलेगा?'' ''नहीं, भन्ते! जिस कार्य के लिये वे तालाब के पास जाते वह तो उन्होंने पहले ही कहीं दूसरी जगह पूर्ण कर लिया। उनको अब तालाब से क्या प्रयोजन!'' ''महाराज! वैसे ही, यदि बुद्ध गृहस्थों को प्रथम फल पर प्रतिष्ठित कराके ही प्रव्रजित करते तो इसका कोई लाभ ही नहीं रहता, क्योंकि अपने कार्य को तो उन्होंने पहले ही कर लिया था। उनको प्रव्रज्या से क्या प्रयोजन!

"यथा वा पन, महाराज, सभावइसिभत्तिको सुतमन्तपदधरो अतक्किको रोगुप्पत्तिकुसलो अमोघधुवसिद्धकम्मो भिसक्को सल्लकत्तो सब्बरोगूपसमभेसज्जं सन्निपातेत्वा परिसाय एवमनुस्सावेय्य— 'मा खो भोन्तो केचि सब्याधिका मम सन्तिके उपगच्छथ, अब्याधिका अरोगा मम सन्तिके उपगच्छथा' ति, अपि नु खो, महाराज, तेसं अब्याधिकानं अरोगानं परिपुण्णानं उदग्गानं तेन भिसक्केन करणीयं भवेय्या" ति? "न हि, भन्ते। यस्सत्थाय ते तं भिसक्कं सल्लकत्तं उपगच्छेय्युं, तं अञ्ञत्रेव तेसं कतं करणीयं, किं तेसं तेन भिसक्केना" ति! "एवमेव खो, महाराज, यदि तथागतो गिहिं येव एकस्मिं फले विनीतं पब्बाजेय्य, तत्थेव तेसं कतं करणीयं, किं तेसं पब्बज्जाय!

"यथा वा पन, महाराज, कोचि पुरिसो अनेकथालिपाकसतं भोजनं पटियादापेत्वा परिसाय एवमनुस्सावेय्य— 'मा मे भोन्तो केचि छाता इमं परिवेसनं उपगच्छथ, सुभुत्ता तित्ता सुहिता धाता पीणिता परिपुण्णा इमं परिवेसनं उपगच्छथा' ति, अपि नु खो, महाराज, तेसं भुत्तावीनं तित्तानं धातानं पीणितानं परिपुण्णानं तेन भोजनेन करणीयं भवेय्या" ति? "न हि, भन्ते। यस्सत्थाय ते तं परिवेसनं उपगच्छेय्युं, तं अञ्ञत्रेव तेसं कतं करणीयं, किं तेसं ताय परिवेसनाया" ति! "एवमेव खो, महाराज, यदि तथागतो गिहिं येव एकस्मिं फले विनीतं पब्बाजेय्य, तत्थेव तेसं कतं करणीयं, किं तेसं पब्बज्जाय!

११. "अपि च, महाराज, ये हीनायावत्तन्ति ते जिनसासनस्स पञ्च अतुलिये गुणे दस्सेन्ति। कतमे पञ्च? भूमिमहन्तभावं दस्सेन्ति, परिसुद्धविमलभावं दस्सेन्ति, पापेहि असंवासियभावं दस्सेन्ति, दुप्पटिवेधभावं दस्सेन्ति, बहुसंवररक्खियभावं दस्सेन्ति।

"महाराज! जैसे एक वैद्य, जिसने पुराने ऋषियों का अध्ययन कर लिया हो, जो सूत्र तथा मन्त्रों के पद को ठीक–ठीक जानता हो, जिसका सारा सन्देह मिट गया हो, जो रोग की परीक्षा सूक्ष्मता से करता हो और जिसकी चिकित्सा कभी व्यर्थ न जाती हो; वह सारे रोगों की अचूक दवाइयों को ले आवे और ऐसी सूचना लगा दे कि मेरे पास कोई रोगी न आये; जो नीरोग और स्वस्थ है वही आये'। महाराज! तो क्या उन नीरोग, स्वस्थ और बलिष्ठ लोगों का उस वैद्य से कोई प्रयोजन रहेगा?" "नहीं, भन्ते! जिस कार्य के लिये वे उस वैद्य के पास जाते, उसे तो उन्होंने कहीं दूसरी जगह पूर्ण कर लिया। उस वैद्य से उनका अब क्या प्रयोजन!" "महाराज! वैसे ही, यदि बुद्ध गृहस्थों को प्रथमफल पर प्रतिष्ठित कराकर ही प्रव्रजित करते तो इसका कोई तात्पर्य ही नहीं रहता; क्योंकि अपना कार्य तो उन्होंने पहले ही कर लिया। उनको प्रव्रज्या से क्या प्रयोजन!

"महाराज! जैसे कोई आदमी सैकड़ों थाली भोजन परोसवा कर ऐसी सूचना लगा दे— 'इस अन्नक्षेत्र में कोई भूखा आदमी न आवे; जो अच्छी तरह खा चुका या तृप्त हो गया है और जिसका पेट भर गया है वही आवे'। तो महाराज! क्या उन तृप्त लोगों का उस भोजन से कोई प्रयोजन सिद्ध होगा?" "नहीं, भन्ते! जिसके लिये वे उस अन्नक्षेत्र में जाते उसे तो उन्होंने कहीं दूसरी जगह ही पूर्ण कर लिया। उस अन्नक्षेत्र से उन्हें अब क्या प्रयोजन!" "महाराज! वैसे ही, यदि बुद्ध गृहस्थों को प्रथम–फल पर प्रतिष्ठित करा के ही प्रव्रजित करते तो इसका कोई अर्थ ही नहीं रहता; क्योंकि अपना कार्य तो उन्होंने पहले ही पूर्ण कर लिया। उनको प्रव्रज्या से क्या प्रयोजन!

११. "महाराज! अपितु वे जो चीवर छोड़कर लौट भी जाते हैं, बुद्धधर्म में पाँच अतुल्य गुणों

१२. "कथं भूमिमहन्तभावं दस्सेन्ति? यथा, महाराज, पुरिसो अधनो हीनजच्चो निब्बिसेसो बुद्धिपरिहीनो महतिमहारज्जं पटिलभित्वा न चिरस्सेव परिपतति परिधंसति परिहायति यसतो, न सक्कोति इस्सरियं सन्धारेतुं, किं कारणं? महन्तत्ता इस्सरियस्स; एवमेव खो, महाराज, ये केचि निब्बिसेसा अकतपुञ्ञा बुद्धिपरिहीना जिनसासने पब्बजन्ति, ते तं पब्बज्जं पवरुत्तमं सन्धारेतुं अविसहन्ता न चिरस्सेव जिनसासना परिपतित्वा परिधंसित्वा परिहायित्वा हीनायावत्तन्ति, न सक्कोन्ति जिनसासनं सन्धारेतुं, किं कारणं? महन्तत्ता जिनसासनभूमिया। एवं भूमिमहन्तभावं दस्सेन्ति। (क)

"कथं परिसुद्धविमलभावं दस्सेन्ति? यथा, महाराज, वारि पोक्खरपत्ते विकिरति विद्धंसति, न ठानमुपगच्छति, नूपलिम्पति, किङ्कारणं? परिसुद्धविमलत्ता पदुमस्स; एवमेव खो, महाराज, ये केचि सठा कूटा वङ्का कुटिला विसमदिट्ठिनो जिनसासने पब्बजन्ति, ते परिसुद्धविमलनिक्कण्टकपण्डरवरप्पवरसासनतो न चिरस्सेव विकिरित्वा विधमित्वा विद्धंसित्वा असण्ठहित्वा अनुपलिम्पित्वा हीनायावत्तन्ति, किं कारणं? परिसुद्धविमलत्ता जिनसासनस्स। एवं परिसुद्धविमलभावं दस्सेन्ति। (ख)

"कथं पापेहि असंवासियभावं दस्सेन्ति? यथा, महाराज, महासमुद्दो न मतेन कुणपेन संवसति, यं होति महासमुद्दे मतं कुणपं तं खिप्पमेव तीरं उपनेति, थलं वा उस्सादेति, किं कारणं? महाभूतानं भवनत्ता महासमुद्दस्स; एवमेव खो, महाराज, ये केचि पापका असंवुता

को देखते हैं। कौन से पाँच गुणों को? १. यह देख लेते हैं कि प्रव्रज्या–भूमि कितनी महान् है, २. प्रव्रज्या कैसी शुद्ध और विमल है, ३. मलिन रहने वाले लोगों का प्रव्रजित रहना सम्भव नहीं, ४. प्रव्रज्या का गौरव साधारण लोगों की पहुँच से दूर है और ५. प्रव्रजित को कितना अधिक संयम रखना होता है।

१२. "प्रव्रज्याभूमि की महत्ता वे कैसे देख लेते हैं? महाराज! जैसे यदि छोटी जाति के किसी निर्धन और बुद्धिहीन आदमी को एक विशाल राज्य की गद्दी पर बैठा दिया जाय तो वह शीघ्र ही अपना पद सम्हाल न सकने के कारण अपमानित होगा, गद्दी पर बना नहीं रह सकेगा। इसका क्या कारण है? उस पद का उतना महान् होना। महाराज! इसी तरह, जिनका पुण्य अधिक नहीं है, जिनमें कोई विशेषता नहीं हैं और जो बुद्धिहीन हैं; वे बुद्धशासन में प्रव्रजित तो हो जाते हैं किन्तु उस पद का महान् गौरव सह नहीं पाते, स्वयं को वहाँ सम्हाल नहीं पाते, च्युत हो जाते हैं और चीवर छोड़ कर फिर गृहस्थ हो जाते हैं। सो क्यों? क्योंकि प्रव्रज्याभूमि इतनी महान् है। इस तरह वह प्रव्रज्याभूमि की महत्ता देख लेते हैं। (क)

" 'प्रव्रज्या कैसी शुद्ध और विमल है '– इसे वे कैसे देख लेते हैं महाराज! जैसे कमल के पत्ते पर पानी नहीं ठहरता, लुढ़क कर गिर जाता है, बिखर जाता है और उस पर कुछ भी नहीं लगा रहता। सो क्यों? क्योंकि कमल इतना परिशुद्ध और निर्मल है। महाराज! इसी तरह, जो शठ, कपटी, वक्र, कुटिल और बुरे विचार वाले हैं वे प्रव्रजित तो हो जाते हैं; किन्तु बुद्ध शासन जितना परिशुद्ध, मलरहित, निष्कण्टक, साफ और स्वच्छ न होने के कारण शीघ्र ही च्युत हो जाते हैं और चीवर छोड़ गृहस्थ हो जाते हैं। वे वहाँ टिक नहीं पाते; उसमें लगे नहीं रह पाते। सो क्यों? क्योंकि बुद्धशासन (= धर्म) उतना परिशुद्ध और विमल है। इस तरह, वह यह देख लेते हैं कि प्रव्रज्या कैसी शुद्ध और विमल है। (ख)

"मल–सहित रहने वालों का प्रव्रजित रहना सम्भव नहीं– इसे कैसे देख लेते हैं? महाराज! जैसे महासमुद्र में शव नहीं रह सकता। महासमुद्र में जो मृत शव पड़ जाता है वह शीघ्र ही किनारे लगकर भूमि पर आ जाता है। सो क्यों? क्योंकि महासमुद्र का स्वभाव महापुरुष के समान होता है।

अहिरिका अकिरिया ओसन्नविरिया कुभीता किलिट्ठा दुज्जना मनुस्सा जिनसासने पब्बजन्ति, ते न चिरस्सेव जिनसासनतो अरहन्तविमलखीणासवमहाभूतभवनतो निक्खमित्वा असंवसित्वा हीनायावत्तन्ति, किं कारणं? पापेहि असंवासियत्ता जिनसासनस्स। एवं पापेहि असंवासियभावं दस्सेन्ति। (ग)

"कथं दुप्पटिवेधभावं दस्सेन्ति? यथा, महाराज, ये केचि अछेका असिक्खिता असिप्पिनो मतिविप्पहीना इस्सासा वालग्गवेधं अविसहन्ता विगळन्ति पक्कमन्ति, किं कारणं? सण्हसुखुमदुप्पटिवेधत्ता वालग्गस्स; एवमेव खो, महाराज, ये केचि दुप्पञ्ञा जळा एळमूगा मूळ्हा दन्धगतिका जना जिनसासने पब्बजन्ति, ते तं परमसण्हसुखुमचतुसच्चपटिवेधं पटिविज्झितुं अविसहन्ता जिनसासना विगळित्वा पक्कमित्वा न चिरस्सेव हीनायावत्तन्ति। किं कारणं? परमसण्हसुखुमदुप्पटिवेधताय सच्चानं। एवं दुप्पटिवेधभावं दस्सेन्ति। (घ)

"कथं बहुसंवररक्खियभावं दस्सेन्ति? यथा, महाराज, कोचिदेव पुरिसो महतिमहायुद्धभूमिमुगपतो परसेनाय दिसाविदिसाहि समन्ता परिवारितो सत्तिहत्थं जनमुपेतं दिस्वा भीतो ओसक्कति पटिनिवत्तति पलायति, किं कारणं? बहुविधयुद्धमुखरक्खणभया; एवमेव खो, महाराज, ये केचि पापका असंवुता अहिरिका अकिरिया अक्खन्ती चपला चलिता इत्तरा बालजना जिनसासने पब्बजन्ति, ते बहुविधं सिक्खापदं परिरक्खितुं अविसहन्ता ओसक्कित्वा

महाराज! इसी तरह जो पापी, आलसी, निर्वीर्य, कामप्रपीड़ित, मलिनहृदय और दुर्बुद्धि लोग हैं, वे बुद्ध-शासन में प्रव्रजित तो हो जाते हैं; किन्तु अर्हत्, विमल, क्षीणाश्रव इत्यादि महात्माओं के बीच न रह पाने के कारण शीघ्र ही वहाँ से निकल जाते हैं और चीवर छोड़ कर गृहस्थ बन जाते हैं। सो क्यों? क्योंकि बुद्ध-शासन में मलिन (पापी पुरुष) का प्रव्रजित रहना सम्भव नहीं। इस तरह, वे यह देख लेते हैं कि पापी लोगों का बुद्ध-शासन में प्रव्रजित रहना असम्भव है।" (ग)

"यह कैसे देख लेते हैं कि 'प्रव्रज्या का गौरव साधारण लोगों की पहुँच के बाहर है'? महाराज! जो अकुशल, अशिक्षित और चञ्चल-बुद्धि हैं तथा जिन्होंने कोई शिल्प नहीं सीखा, वे तीर चला कर सूक्ष्म चीजें नहीं बेध सकते। उनका तीर निशाने से उलटा-सीधा, इधर-उधर बहक जायगा। सो क्यों? क्योंकि तीर चला कर सूक्ष्म वस्तु बींधने के लिये अतिनिपुणता आवश्यक है। महाराज! इसी तरह, जो दुष्प्रज्ञ, जड़, निर्बुद्धि, मूढ़ और मन्द हैं, वे बुद्धशासन में प्रव्रजित तो हो जाते हैं, किन्तु चार आर्यसत्यों की सूक्ष्म और ऊँची बातों को न समझने के कारण वहाँ टिक नहीं पाते, शीघ्र ही पृथक् हो जाते हैं और चीवर छोड़ गृहस्थ बन जाते हैं। सो क्यों? क्योंकि आर्यसत्यों की बातें बहुत सूक्ष्म और ऊँची हैं। इस प्रकार वे यह देख लेते हैं कि प्रव्रज्या का गौरव साधारण लोगों की पहुँच के बाहर है। (घ)

"वे यह कैसे देख लेते हैं कि 'प्रव्रजित को कितना अधिक संयम रखना होता है'? महाराज! जैसे कोई आदमी किसी बड़ी लड़ाई में शत्रुओं से आगे-पीछे और अगल-बगल घिर जाय। उन्हें तीर-बर्छी उठाये अपनी ओर आते देख कर डर जाय, घबड़ा जाय और भाग जाय। सो क्यों? क्योंकि ऐसी लड़ाई में स्वयं को चारों तरफ से बचाना होता है। महाराज! इसी तरह, जो स्वयं स्वभाव से संयमी नहीं हैं, जिन्हें कोई पाप करने में लज्जा नहीं आती, जो आलसी हैं, जिनमें धैर्य नहीं है, जो चञ्चलस्वभाव हैं, जहाँ-तहाँ फिसल जाते हैं और मूर्ख हैं; वे बुद्धशासन में प्रव्रजित तो हो जाते हैं, किन्तु यह देख कर कि प्रव्रजित को इतना अधिक संयम रखना होता है, वे घबरा जाते हैं और वहाँ न टिकने के कारण चीवर छोड़ कर गृहस्थ बन जाते हैं। सो क्यों? क्योंकि बुद्धशासन में प्रव्रजित होकर बहुत संयम रखना पड़ता

पटिनिवत्तित्वा पलायित्वा न चिरस्सेव हीनायावत्तन्ति। किं कारणं? बहुविधसंवररक्खियभावत्ता जिनसासनस्स। एवं बहुविधसंवररक्खियभावं दस्सेन्ति। (ङ)

"थलजुत्तमे पि, महाराज, वस्सिकगुम्बे किमिविद्धानि पुप्फानि होन्ति, तानि अङ्कुरानि सङ्कुटितानि अन्तरा येव परिपतन्ति, न च तेसु परिपतितेसु वस्सिकागुम्बो हीळितो नाम होति, यानि तत्थ ठितानि पुप्फानि, तानि सम्मा गन्धेन दिसाविदिसं अभिब्यापेन्ति; एवमेव खो, महाराज, ये ते जिनसासने पब्बजित्वा हीनायावत्तन्ति, ते जिनसासने किमिविद्धानि वस्सिका-पुप्फानि विय वण्णगन्धरहिता निब्बण्णाकारसीला अभब्बा वेपुल्लाय, न च तेसं हीनायावत्तनेन जिनसासनं हीळितं नाम होति। ये तत्थ ठिता भिक्खू ते सदेवकं लोकं सीलवरगन्धेन अभिब्यापेन्ति।

"सालीनं पि, महाराज, निरातङ्कानं लोहितकानं अन्तरे करुम्भकं नाम सालिजाति उप्पज्जित्वा अन्तरा येव विनस्सति, न च तस्सा विनट्ठत्ता लोहितकसाली हीळिता नाम होन्ति, ये तत्थ ठिता साली ते राजूपभोगा होन्ति; एवमेव खो, महाराज, ये ते जिनसासने पब्बजित्वा हीनायावत्तन्ति, ते लोहितकसालीनमन्तरे करुम्भका विय जिनसासने न वड्ढित्वा वेपुल्लतं न पापुणित्वा अन्तरा येव हीनायावत्तन्ति, न च तेसं हीनायावत्तनेन जिनसासनं हीळितं नाम होति। ये तत्थ ठिता भिक्खू ते अरहत्तस्स अनुच्छविका होन्ति।

"कामददस्सा पि, महाराज, मणिरतनस्स एकदेसं कक्कसं उप्पज्जति, नच तत्थ कक्कसुप्पन्नत्ता मणिरतनं हीळितं नाम होति, यं तत्थ परिसुद्धं मणिरतनस्स तं जनस्स हासकरं

है। महाराज! इस तरह वे यह देख लेते हैं कि बुद्धशासन में प्रव्रजित को कितना अधिक संयम रखना होता है। (ङ)

"महाराज! जैसे फूलों में जो सब से उत्तम फूल वस्सिक (=जूही) है, उसकी लता में भी कभी-कभी कीड़े लग जाते हैं और एक दो फूल काट कर गिरा देते हैं। किन्तु, उन एक–दो के गिर जाने से उस लता की सुन्दरता नहीं चली जाती। उस में जो बचे हुये अच्छे फूल हैं, वे अपनी सुगन्ध से दिशा–विदिशाओं को सुगन्धित किये रहते हैं। महाराज! उसी तरह, जो बुद्धशासन में प्रव्रजित हो कर बाद में चीवर छोड़ कर गृहस्थ बन जाते हैं, वे उन फूलों के समान हैं जो कीड़ा लग जाने से सौन्दर्य और सुगन्धरहित हो गिर जाते हैं। उनके इस तरह लौट जाने से बुद्धधर्म पर कोई कलङ्क नहीं आता; क्योंकि शासन में जो भिक्षु बने रहते हैं, उन्हीं के शील की सुगन्ध से देवताओं और मनुष्यों के साथ समग्र लोक सुगन्धित रहता है।

"महाराज! जैसे उपद्रवरहित लाल शालि (= धान) के खेत में करुम्भक नाम के पौधे उग कर बीच में ही मुर्झा जाते हैं, किन्तु उससे खेत की शोभा में कोई कमी नहीं आती। जो धान खड़े रहते हैं, उन्हीं की शोभा बहुत रहती है। महाराज! वैसे ही, जो बुद्धशासन में प्रव्रजित हो बाद में चीवर छोड़ देते हैं, वे लाल शालि (धान) के खेत में उगे करुम्भक पौधों की तरह हैं। उनके इस तरह चीवर छोड़ कर चले जाने से भिक्षुसङ्घ की शोभा में कोई कमी नहीं आती। जो भिक्षु बने रहते हैं, वे अर्हत्–पद पाने के योग्य भी हो जाते हैं।

"महाराज! जैसे यथेच्छ फल देने वाले रत्न के एक भाग में रूखापन आ जाय। उससे रत्न का मूल्य कुछ कम नहीं हो जाता। रत्न का जो स्वच्छ भाग है उसी में काफी चमक होती है, जिसे देख लोगों

होति; एवमेव खो, महाराज, ये ते जिनसासने पब्बजित्वा हीनायावत्तन्ति। कक्कसा ते जिनसासने पपटिका, न च तेसं हीनायावत्तनेन जिनसासनं हीळितं नाम होति। ये तत्थ ठिता भिक्खू ते देवमनुस्सानं हासजनका होन्ति।

"जातिसम्पन्नस्स पि, महाराज, लोहितचन्दनस्स एकदेसं पूतिकं होति अप्पगन्धं, न तेन लोहितचन्दनं हीळितं नाम होति, यं तत्थ अपूतिकं सुगन्धं तं समन्ता विधूपेति अभिब्यापेति; एवमेव खो, महाराज, ये ते जिनसासने पब्बजित्वा हीनायावत्तन्ति, ते लोहितचन्दनसारन्तरे पूतिकदेसमिव छड्डनीया जिनसासने, न च तेसं हीनायावत्तनेन जिनसासनं हीळितं नाम होति। ये तत्थ ठिता भिक्खू ते सदेवकं लोकं सीलवरचन्दनगन्धेन अनुलिम्पयन्ती" ति।

"साधु, भन्ते नागसेन, तेन तेन अनुच्छविकेन तेन तेन सदिसेन कारणेन निरवज्ज-मनुपापितं जिनसासनं, सेट्ठभावेन परिदीपितं, हीनायावत्तमाना पि ते जिनसासनस्स सेट्ठभावं येव परिदीपेन्ती" ति।

६. अरहन्तवेदनावेदियनपञ्हो

१३. "भन्ते नागसेन, तुम्हे भणथ— 'अरहा एकं वेदनं वेदियति कायिकं न चेतसिकं' ति। किन्नु खो, भन्ते नागसेन, अरहतो चित्तं यं कायं निस्साय पवत्तति, तत्थ अरहा अनिस्सरो अस्सामी अवसवत्ती" ति?

१४. "आम, महाराजा" ति। "न खो, महाराज, युत्तमेतं यं सो सकचित्तस्स पवत्तमाने काये अनिस्सरो होति अस्सामी अवसवत्तो, सकुणो पि ताव, भन्ते, यस्मिं कुलावके पटिवसति तत्थ इस्सरो होति सामी वसवत्ती" ति?

को बहुत आनन्द आता है। महाराज! वैसे ही, जो बुद्धशासन में प्रव्रजित हो बाद में चीवर छोड़ देते हैं, वे रत्न के रूखे भाग की तरह हैं। किन्तु, उनके इस तरह चीवर छोड़ कर चले जाने से बुद्ध–शासन में कोई कलङ्क नहीं लगता। जो भिक्षु बने रहते हैं, वे ही देवताओं और मनुष्यों को प्रसन्न करते हैं।

"महाराज! जैसे अच्छी जाति के लाल चन्दन में भी, कहीं गल जाने से; सुगन्ध नहीं रहती। उससे लाल चन्दन कुछ बुरा नहीं हो जाता। जो अच्छे भाग हैं उन्हीं की सुगन्ध इतनी रहती है कि आस–पास में सभी कुछ सुगन्धित रहता है। महाराज! वैसे ही, जो बुद्धशासन में प्रव्रजित होने के बाद चीवर छोड़ देते हैं, वे चन्दन के गले भाग की तरह हैं। उनके इस तरह चीवर छोड़ कर गृहस्थ बन जाने से बुद्ध धर्म पर कोई कलङ्क नहीं लगता। जो भिक्षु बने रहते हैं उनके शीलरूपी चन्दन की सुगन्ध से देवताओं और मनुष्यों के साथ सम्पूर्ण लोक सुगन्धित रहता है।"

"ठीक है, भन्ते नागसेन! एक से एक अच्छे उदाहरणों और उपमाओं द्वारा आपने बुद्धशासन की शुद्धता अच्छी तरह दिखा दी। चीवर छोड़ कर चले जाने वाले भी यथार्थ में समझ जाते हैं कि बुद्धशासन कितना श्रेष्ठ है।"

६. अर्हत् की शारीरिक और मानसिक वेदनाएँ— १३. "भन्ते नागसेन! आप लोग कहते हैं, कि 'अर्हत् को केवल शारीरिक वेदना ही होती हैं, मानसिक नहीं।' भन्ते! शरीर की वेदनाओं (अनुभवों) पर क्या अर्हत् का अधिकार नहीं रहता?"

१४. "हाँ महाराज! ऐसी ही बात है।" "भन्ते! यह तो ठीक नहीं कि अर्हत् अपने ही शरीर पर होने वाले अनुभवों पर अधिकार नहीं कर सकते। एक चिड़िया भी अपने घोंसले पर अधिकार रखती है।"

"दसयिमे, महाराज, कायानुगता धम्मा भवे भवे कायं अनुधावन्ति अनुपरिवत्तन्ति। कतमे दस? सीतं, उण्हं, जिघच्छा, पिपासा, उच्चारो, पस्सावो, थीनमिद्धं, जरा, ब्याधि, मरणं। इमे खो, महाराज, दस कायानुगता धम्मा भवे भवे कायं अनुधावन्ति अनुपरिवत्तन्ति। तत्थ अरहा अनिस्सरो अस्सामी अवसवत्ती" ति।

"भन्ते नागसेन, केन कारणेन अरहतो काये आणा नप्पवत्तति इस्सरियं वा, तत्थ मे कारणं ब्रूही" ति? "यथा, महाराज, ये केचि पठविनिस्सिता सत्ता सब्बे ते पठविं निस्साय चरन्ति विहरन्ति वुत्तिं कप्पेन्ति। अपि नु, महाराज, तेसं पठविया आणा पवत्तति इस्सरियं वा" ति? "न हि, भन्ते" ति। "एवमेव खो, महाराज, अरहतो चित्तं कायं निस्साय पवत्तति, न च पन अरहतो काये आणा पवत्तति, इस्सरियं वा" ति।

"भन्ते नागसेन, केन कारणेन पुथुज्जनो कायिकं पि चेतसिकं पि वेदनं वेदयती" ति? "अभावितत्ता, महाराज, चित्तस्स पुथुज्जनो कायिकं पि चेतसिकं पि वेदनं वेदियति। यथा, महाराज, गोणो छातो परितसितो अबलदुब्बलपरित्तकतिणेसु वा लताय वा उपनिबद्धो अस्स, यदा सो गोणो परिकुपितो होति तदा सह उपनिबन्धनेन पक्कमति; एवमेव खो, महाराज, अभावितत्ता चित्तस्स वेदना उप्पज्जित्वा चित्तं परिकोपेति, चित्तं परिकुपितं कायं आभुजति निब्भुजति, सम्परिवत्तकं करोति; अथ सो अभावितचित्तो तसति रवति, भेरवरावमभिरवति। इदमेत्थ, महाराज, कारणं, येन कारणेन पुथुज्जनो कायिकं पि चेतसिकं पि वेदनं वेदियती" ति। "किं पन तं कारणं येन कारणेन अरहा एकं वेदनं वेदियति कायिकं,

---

"महाराज! ये दश गुण हैं, जो जन्म-जन्मान्तर से शरीर के साथ लगे रहते हैं। कौन से दश? १. सर्दी, २. गर्मी, ३. भूख, ४. प्यास, ५. मल, ६. मूत्र, ७. थकावट, ८. बुढ़ापा, ९. रोग और १०. मृत्यु। इन बातों पर अर्हत् का कोई अधिकार या वश नहीं चलता।"

"भन्ते! क्या कारण है कि अपने शरीर की इन १० बातों पर अर्हत् का कोई अधिकार नहीं होता? कृपा कर मुझे समझावें?" "महाराज! जैसे पृथ्वी पर रहने वाले सभी जीव इसी पर चलते-फिरते और अपना काम-काज करते हैं। महाराज! तो क्या उन सभी का पृथ्वी पर अपना वश या शासन चलता है?" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! उसी तरह, अर्हत् का चित्त शरीर के आधार पर प्रवर्तित तो होता है, किन्तु उनका उस पर शासन नहीं चलता।"

"भन्ते नागसेन! क्या कारण है कि साधारणजन शारीरिक और मानसिक दोनों वेदनाओं का अनुभव करते हैं?" "महाराज! साधारण लोगों का चित्त साधना द्वारा वश में नहीं किया गया है, इसीलिये वे शारीरिक और मानसिक दोनों वेदनाओं का अनुभव करते हैं। महाराज! जैसे भूख से दुर्बल बैल एक छोटी सी कमजोर घास की रस्सी या लता से बाँधा जा सकता है; किन्तु यदि वह कुपित हो जाय तो रस्सी को तोड़कर भाग जाता है। महाराज! इसी तरह, जो अभावितचित्त है वह वेदना से चञ्चल होता है। चित्त के चञ्चल हो जाने से शरीर छटपटाने और लोटने लगता है। अभावित चित्त होने से वह काँपता, चिल्लाता और कराहने लगता है। महाराज! यही कारण है जिससे साधारण जन को शारीरिक और मानसिक दोनों वेदनायें होती हैं।" "भन्ते नागसेन! तब, अर्हत् को केवल शारीरिक वेदना ही क्यों होती है, मानसिक क्यों नहीं?" "महाराज! अर्हत् अपना चित्त साधनाभ्यास से सर्वथा वश में कर लेता है। उसका चित्त उसके पूर्ण अधिकार में रहता है। वह अपने मन को जैसे चाहे घुमा सकता है। जब उसे कोई दुःख होता है तो संसार की अनित्यता का विचार दृढ़तापूर्वक करता है, समाधिरूपी खूँटे में मानो

न चेतसिकं'' ति? ''अरहतो, महाराज, चित्तं भावितं होति सुभावितं दन्तं सुदन्तं अस्सवं वचनकरं, सो दुक्खाय वेदनाय फुट्ठो समानो अनिच्चं ति दळ्हं गण्हाति, समाधित्थम्भे चित्तं उपनिबन्धति, तस्स तं चित्तं समाधित्थम्भे उपनिबद्धं न वेधति, न चलति, ठितं होति अविक्खित्तं। तस्स वेदनाविकारविप्फारेन कायो पन आभुजति निब्भुजति सम्परिवत्तति। इदमेत्थ, महाराज, कारणं, येन कारणेन अरहा एकं वेदनं वेदियति कायिकं, न चेतसिकं' ति।

''भन्ते नागसेन, तं नाम लोके अच्छरियं यं काये चलमाने चित्तं न चलति, तत्थ मे कारणं ब्रूही'' ति? ''यथा, महाराज, महतिमहारुक्खे खन्धसाखापलाससम्पन्ने अनिलबल-समाहते साखा चलति, अपि नु तस्स खन्धो पि चलती'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, अरहा दुक्खाय वेदनाय फुट्ठो समानो 'अनिच्चं' ति दळ्हं गण्हाति, समाधित्थम्भे चित्तं उपनिबन्धति, तस्स तं चित्तं समाधित्थम्भे उपनिबन्धनं न वेधति, न चलति, ठितं होति अविक्खित्तं, तस्स वेदनाविकारविप्फारेन कायो आभुजति निब्भुजति सम्परिवत्तति। चित्तं पन तस्स न वेधति न चलति, खन्धो विय महारुक्खस्सा'' ति।

''अच्छरियं, भन्ते नागसेन, अब्भुतं, भन्ते नागसेन, न मे एवरूपो सब्बकालिको धम्मप्पदीपो दिट्ठपुब्बो'' ति।

७. अभिसमयन्तरायपञ्हो

१५. ''भन्ते नागसेन, इध यो कोचि गिही पाराजिकं अज्झापन्नो भवेय्य, सो अपरेन समयेन पब्बाजेय्य, अत्तना पि सो न जानेय्य— 'गिहिपाराजिकं अज्झापन्नोस्मी' ति, नापि तस्स अञ्ञो कोचि आचिक्खेय्य— 'गिहिपाराजिकं आपन्नोसी' ति, सो च तथत्ताय पटिपज्जेय। अपि नु तस्स धम्माभिसमयो भवेय्या'' ति?''न हि, महाराजा'' ति।''केन, भन्ते, कारणेना'' ति?''यो तस्स हेतु धम्माभिसमयाय सो तस्स समुच्छिन्नो, तस्मा धम्माभिसमयो न भवती'' ति।

अपने चित्त को बाँध देता है। इस तरह उसका चित्त चञ्चल नहीं हो पाता; वह स्थिर और दृढ़ रहता है। भले ही पीड़ा से उसका शरीर छटपटाये या लोट पोट हो। महाराज! इस तरह, अर्हत् को केवल शारीरिक वेदना ही होती है, मानसिक (चैतसिक) नहीं।"

"भन्ते नागसेन! यह तो एक बहुत बड़ी बात है कि पीड़ा से शरीर के छटपटाते रहने पर भी चित्त स्थिर और दृढ़ बना रहे। कृपया इसे उपमा दे कर समझावें।" "महाराज! जैसे एक बहुत बड़ा हरा-भरा वृक्ष हो। उसका स्कन्ध बहुत मोटा हो। उसकी शाखाएँ भी लम्बी-लम्बी फैली हों। कभी तेज हवा चले और वे शाखायें आगे-पीछे हिलने लगें। महाराज! तो क्या उसका स्कन्ध भी हिलने लगेगा?" "नहीं, भन्ते।" "महाराज! अर्हत् के चित्त को ठीक उसी स्कन्ध के सदृश समझें।"

"भन्ते नागसेन! आश्चर्य है, अद्भुत है। ऐसा सदा प्रकाश देने वाला धर्म-प्रदीप मैंने कभी नहीं देखा।"

७. गृहस्थकृतपापविषयकप्रश्न— १५. "भन्ते नागसेन! कोई गृहस्थ पाराजिक पाप किये हुए हो, वह बाद में प्रव्रजित हो जाय। उसे स्वयं भी विचार न हो कि 'मैंने अपने गृहस्थकाल में पाराजिक पाप किया था' और न कोई दूसरा ही उसे स्मरण दिलावे और वह अर्हत्-पद पाने का उद्योग करे तो क्या उसको सफलता मिलेगी?" "नहीं, महाराज!" 'भन्ते! सो क्यों?" "सत्य-पथ पर आने का जो उसमें हेतु था, वह नष्ट हो गया। इसलिये उसको सफलता नहीं होगी।"

"भन्ते नागसेन, तुम्हे भणथ— 'जानन्तस्स कुक्कुच्चं होति, कुक्कुच्चे सति आवरणं होति, आवटे चित्ते धम्माभिसमयो न होती' ति। इमस्स पन अजानन्तस्स अकुक्कुच्चजातस्स सन्तचित्तस्स विहरतो केन कारणेन धम्माभिसमयो न होति? विसमेन विसमेन सो पञ्हो गच्छति, चिन्तेत्वा विस्सज्जेथा" ति?

१६. "रूहति, महाराज, सुकट्ठे सुकलले मण्डखेत्ते सारदं सुखसयितं बीजति? "आम, भन्ते" ति। "अपि नु, महाराज, बीजं घनसेलसिलातले रूहेय्या" ति? "न हि, भन्ते" ति। "किस्स पन, महाराज, बीजं कलले रूहति, किस्स घनसेले न रूहती" ति। "नत्थि, भन्ते, तस्स बीजस्स रूहनाय घनसेले हेतु, अहेतुना बीजं न रूहती" ति "एवमेव खो, महाराज, येन हेतुना तस्स धम्माभिसमयो भवेय्य सो तस्स हेतु समुच्छिन्नो, अहेतुना धम्माभिसमयो न होति।

"यथा वा पन, महाराज, दण्डलेड्डुलकुटमुग्गरा पठविया ठानमुपगच्छन्ति, अपि नु, महाराज, ते येव दण्डलेड्डुलकुटमुग्गरा गगने ठानमुपगच्छन्ती" ति? "न हि, भन्ते" ति। "किं पनेत्थ, महाराज, कारणं येन कारणेन दण्डलेड्डुलकुटमुग्गरा पठविया ठानमुपच्छन्ति, केन कारणेन गगने न तिट्ठन्ती" ति? "नत्थि, भन्ते, तेसं दण्डलेड्डुलकुटमुग्गरानं पतिट्ठानाय आकासे हेतु, अहेतुना न तिट्ठन्ती" ति। "एवमेव खो, महाराज, तस्स तेन दोसेन अभियसमयहेतु समुच्छिन्नो, हेतुसमुग्घाते अहेतुना अभिसमयो न होति।

"यथा वा पन, महाराज, थले अग्गि जलति, अपि नु खो, महाराज, सो येव अग्गि

"भन्ते नागसेन! आप लोग कहते हैं— 'अपने पाप की स्मृति आने से अनुताप (ग्लानि) होता है। अनुताप होने से चित्त आवृत्त हो जाता है। चित्त के आवृत्त होने से सत्य की ओर गति नहीं होती।' यदि ऐसी बात है तो पाप का स्मरण न आने से अनुताप भी नहीं होगा और तब चित्त भी आवृत्त नहीं होगा। चित्त के आवृत न होने से सत्य की ओर गति क्यों न होगी? इस द्विविधा के दो उलटे परिणाम निकलते हैं। इसे जरा सोच कर उत्तर दें?"

१६. "महाराज! अच्छी तरह जोते और सींचे किसी उपजाऊ खोत में पुष्ट बीज बो देने से जमेगा, या नहीं?" "भन्ते! अवश्य जमेगा।" "महाराज! यदि उसी बीज को किसी बड़ी चट्टान के ऊपर फेंक दिया जाय तो वहाँ जमेगा?" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! क्या कारण है कि वही बीज जोते और सींचे खेत में जम जाता है, किन्तु चट्टान पर नहीं जमता?" "भन्ते! क्योंकि चट्टान पर बीज जमने के साधन (= हेतु) नहीं हैं। विना साधन के बीज जम नहीं सकता।" "महाराज! उसी तरह, सत्य की ओर गति होने के जो साधन थे, वे उस गृहस्थ के नष्ट हो चुके हैं। साधन के विना सत्य की ओर गति नहीं हो पाती। (क)

"महाराज! लाठी, ढेला, छड़ी और मुगदर क्या हवा में वैसे ही टिक सकते हैं, जैसे पृथ्वी पर?" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! क्या कारण है कि वे पृथ्वी पर तो टिक जाते हैं, किन्तु हवा में नहीं टिक पाते?" "भन्ते! उनके हवा में टिकने का कोई साधन ही नहीं हैं। विना साधन के वे कैसे टिक सकते हैं!" "महाराज! वैसे ही, सत्य की ओर गति के जो साधन थे, वे उस (गृहस्थ) में नष्ट हो गये हैं। विना साधन के सत्य की ओर गति नहीं हो पाती। (ख)

"महाराज! क्या जल पर भी अग्नि वैसे ही जल सकती है, जैसे पृथ्वी पर?" "नहीं, भन्ते!"

उदके जलती'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''किं पनेत्थ, महाराज, कारणं येन कारणेन सो येव अग्गि थले जलति, केन कारणेन उदके न जलती'' ति? ''नत्थि, भन्ते, अग्गिस्स जलनाय उदके हेतु, अहेतुना न जलती'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, तस्स तेन दोसेन अभिसमयहेतु समुच्छिन्नो, हेतुसमुग्घाते धम्माभिसमयो न होती'' ति।

''भन्ते नागसेन, पुनपेतं अत्थं चिन्तेहि, न मे तत्थ चित्तसञ्ञत्ति भवति—'अजानन्तस्स असति कुक्कुच्चे आवरणं होती' ति। कारणेन मं सञ्ञापेही'' ति?

''अपि नु, महाराज, विसं हलाहलं अजानन्तेन पि पायितं जीवितं हरती'' ति? ''आम, भन्ते'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, अजानन्तेन पि कतं पापं अभिसमयन्तरायकरं होति।

''अपि नु, महाराज, अग्गि अजानित्वा अक्कमन्तं डहती'' ति? ''आम, भन्ते'' ति। 'एवमेव खो, महाराज, अजानन्तेन पि कतं पापं अभिसमयन्तरायकरं होति।

''अपि नु, महाराज, अजानन्तं आसीविसो डसित्वा जीवितं हरती'' ति? ''आम, भन्ते'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, अजानन्तेन पि कतं पापं अभिसमयन्तरायकरं होति।

''ननु, महाराज, कलिङ्गराजा समणकोलञ्ञो सत्तरतनपरिकिण्णो हत्थिरतनमभिरुय्ह *(दी०नि०, चक्कवत्तिसुत्तं)* कुलदस्सनाय गच्छन्तो अजानन्तो पि नासक्खि बोधिमण्डस्स उपरितो गन्तुं। इदमेत्थ, महाराज, कारणं येन कारणेन अजानन्तेन पि कतं पापं अभिसमयन्तरायकरं होती'' ति।

''जिनभासितं, भन्ते नागसेन, कारणं न सक्का पटिक्कोसितुं, एसो वेतस्स अत्थो तथा सम्पटिच्छामी'' ति।

"क्यों?" "भन्ते! क्योंकि जल पर, अग्नि जलने के जो साधन हैं, वे नहीं हैं। उन हेतुओं के विना अग्नि नहीं जल सकती।" "महाराज! वैसे ही सत्य की ओर गति होने के जो साधन थे, सो उसमें नष्ट हो गये। विना साधन के सत्य की तरफ गति नहीं हो पाती।" (ग)

"भन्ते नागसेन! इस पर थोड़ा और विचार करें। आप की बातें मुझे जँच नहीं रही है। अपने पाप को विना स्मरण किये तो अनुताप ही नहीं होता, फिर रुकावट कैसी?"

"महाराज! क्या विना जाने कोई हलाहल विष खा ले तो नहीं मरेगा?" "भन्ते! अवश्य मर जायगा।" "महाराज! वैसे ही, उस बड़े पाप को न स्मरण करे तो भी बाधा आ ही जाती है।

"महाराज! विना जाने किसी का अग्नि पर पैर पड़ जाय तो जलेगा नहीं?" "भन्ते! अवश्य जलेगा।" "महाराज! वैसे ही, उस बड़े पाप को न स्मरण करे तो भी बाधा आ ही जाती है।

"महाराज! यदि विषधर सर्प किसी आदमी को विना उसके जाने काट ले तो क्या वह नहीं मरेगा?" "भन्ते! अवश्य मर जायगा।" "महाराज! वैसे ही, उस बड़े पाप को न स्मरण करे तो भी बाधा आ ही जाती है।

"महाराज! आप को यह ज्ञात नहीं कि कलिङ्ग का राजा सात रत्नों के साथ अपने हस्तिरत्न पर चढ़ कर जब किसी सम्बन्धी से मिलने जा रहा था तो बोधिमण्डप के ऊपर से नहीं जा सका, यद्यपि उसे ज्ञान नहीं था! ठीक वैसे ही अपने पाप को स्मरण न करने पर भी सत्य की ओर गृहस्थ की गति नहीं हो पाती।"

८. दुस्सीलपञ्हो

१७. "भन्ते नागसेन, गिहिदुस्सीलस्स च समणदुस्सीलस्स च को विसेसो, किं नानाकरणं? उभो पेते समसमगतिका, उभिन्नं पि समसमो विपाको होति, उदाहु किञ्चि नानाकरणं अत्थी" ति?

१८. "दसयिमे, महाराज, गुणा समणदुस्सीलस्स गिहिदुस्सीलतो विसेसेन अतिरेका, दसहि च कारणेहि उत्तरिं दक्खिणं विसोधेति।

"कतमे दस गुणा समणदुस्सीलस्स गिहिदुस्सीलतो विसेसेन अतिरेका? इध, महाराज, समणदुस्सीलो बुद्धे सगारवो होति, धम्मे सगारवो होति, सङ्घे सगारवो होति, सब्रह्मचारीसु सगारवो होति, उद्देसपरिपुच्छाय वायमति, सवनबहुलो होति। भिन्नसीलो पि, महाराज, दुस्सीलो परिसगतो आकप्पं उपट्ठपेति, गरहभया कायिकं वाचसिकं रक्खति, पधानाभिमुखं चस्स होति चित्तं, भिक्खुसामञ्ञं उपगतो होति। करोन्तो पि, महाराज, समणदुस्सीलो पापं पटिच्छन्नं आचरति। यथा, महाराज, इत्थी सपतिका निलीयित्वा रहस्सेनेव पापमाचरति; एवमेव खो, महाराज, करोन्तो पि समणदुस्सीलो पापं पटिच्छन्नं आचरति। इमे खो, महाराज, दसगुणा समणदुस्सीलस्स गिहिदुस्सीलतो विसेसेन अधिकतरा।

"कतमेहि दसहि कारणेहि उत्तरिं दक्खिणं विसोधेति? अनवज्जकवचधारणताय पि दक्खिणं विसोधेति, इसिसामञ्ञभण्डुलिङ्गधारणतो पि दक्खिणं विसोधेति, सङ्घसमयमनुप्पविट्ठताय पि दक्खिणं विसोधेति, बुद्धधम्मसङ्घसरणगतताय पि दक्खिणं विसोधेति,

---

"भन्ते! ठीक है। भगवान् की बतायी हुई बात को कोई मिथ्या नहीं कर सकता। मैं भी इसे स्वीकार करता हूँ।"

८. गृहस्थ और भिक्षु की दुःशीलता में भेद– १७. "भन्ते नागसेन! एक गृहस्थ और एक भिक्षु के दुःशील (=दुराचारी) होने में क्या भेद है? क्या दोनों का दुःशील होना समान है? क्या दोनों का फल समान ही है, अथवा दोनों में कोई भेद है?"

१८. "महाराज! भिक्षु के दुःशील होने में गृहस्थ के दुःशील होने से ये दश गुण भिन्न हैं, विशेष हैं। दश बातों से यह अपनी दक्षिणा को शुद्ध कर लेता है।

"वे कौन दश गुण हैं, जो भिक्षु के दुःशील होने में गृहस्थ की दुःशीलता से भिन्न होते हैं? महाराज! १. भिक्षु दुःशील हो कर भी बुद्ध के प्रति श्रद्धा रखता है, २. धर्म के प्रति.... ३. सङ्घ के प्रति....., ४. गुरुभाइयों के प्रति श्रद्धा रखता है, ५. धार्मिक चर्चा में लगा रहता है, ६. विद्वान् होता है, ७. सभा में शिष्ट रहता है, ८. निन्दा–भय से अपने शरीर और वचन पर निग्रह रखता है, ९. उन्नति की ओर लगे रहने का प्रयास करता है, १०. दूसरे भिक्षुओं के साथ रहकर यदि कुछ पाप करता भी है तो बहुत छिपा कर। महाराज! जैसे ब्याही स्त्री बहुत छिप कर ही कोई पाप करती है; वैसे ही दुःशील भिक्षु बहुत छिप कर ही कुछ प्रमाद (बुरा कर्म) करता है। महाराज! ये दश गुण हैं, जो भिक्षु के दुःशील होने में गृहस्थ की दुःशीलता से भिन्न होते हैं।

"किन ऊपर की दश बातों से वह अपनी दक्षिणा (= दान) शुद्ध कर लेता है? १. भिक्षु–वेश धारण कर, २. ऋषियों के समान शिर मुँड़वा कर, ३. भिक्षुसङ्घ में सम्मिलित हो कर, ४. बुद्ध, धर्म और सङ्घ की शरण में आकर, ५. अर्हत्–पद पाने के लिये उद्योग करने की उचित परिस्थिति में रह कर, ६.

पधानासयनिकेतवासिताय पि दक्खिणं विसोधेति, जिनसासनधरपरियेसनतो पि दक्खिणं विसोधेति, पवरधम्मदेसनतो पि दक्खिणं विसोधेति, धम्मदीपगतिपरायणताय पि दक्खिणं विसोधेति, 'अग्गो बुद्धो' ति एकन्तउजुदिट्ठिताय पि दक्खिणं विसोधेति, उपोसथसमादानतो पि दक्खिणं विसोधेति। इमेहि खो, महाराज, दसहि कारणेहि उत्तरिं दक्खिणं विसोधेति।

"सुविपन्नो पि हि, महाराज, समणस्दुसीलो दायकानं दक्खिणं विसोधेति। यथा, महाराज, उदकं सुबहलं पि कललकद्दमरजोजल्लं अपनेति; एवमेव खो, महाराज, सुविपन्नो पि समणदुस्सीलो दायकानं दक्खिणं विसोधेति।

"यथा वा पन, महाराज, उण्होदकं सुकठितं पि पज्जलन्तं महन्तं अग्गिक्खन्धं निब्बापेति; एवमेव खो, महाराज, सुविपन्नो पि समणदुस्सीलो दायकानं दक्खिणं विसोधेति।

"यथा वा पन, महाराज, भोजनं विरसं पि खुदादुब्बल्यं अपनेति; एवमेव खो, महाराज, सुविपन्नो पि समणदुस्सीलो दक्खिणं विसोधेति।

"भासितं पेतं, महाराज, तथागतेन देवातिदेवेन *मज्झिमनिकायवरलञ्छके दक्खिणाविभङ्गे* वेय्याकरणे—

'यो सीलवा दुस्सीलेसु ददाति दानं, धम्मेन लद्धं सुपसन्नचित्तो।
अभिसद्दहं कम्मफलं उळारं, सा दक्खिणा दायकतो विरुज्झती' ति॥

"अच्छरियं" भन्ते नागसेन, अब्भुतं, भन्ते नागसेन! तावतकं मयं पञ्हं अपुच्छिम्ह, तं त्वं ओपम्मेहि कारणेहि विभावेन्तो अमतमधुरं सवनूपगं अकासि। यथा नाम, भन्ते, सूदो वा सूदन्तेवासी वा तावतकं मंसं लभित्वा नानाविधेहि सम्भारेहि सम्पादेत्वा राजूपभोगं करोति;

बुद्ध धर्म की ऊँची बातों की खोज में लगा रह कर, ७. अच्छी अच्छी धर्मदेशनाएँ दे कर, ८. धर्म को प्रकाश में ला कर, ९. बुद्ध को सर्वश्रेष्ठ मान कर एवं १०. उपोसथव्रत रख कर वह अपनी दक्षिणा शुद्ध कर लेता है। महाराज! उपर्युक्त दश बातों से वह अपनी दक्षिणा शुद्ध कर लेता है।

"महाराज! भिक्षु दुःशील हो कर भी इस तरह लगा रह कर दाता द्वारा दी गई दक्षिणा (=दान) को सफल बना देता है। महाराज! जैसे कितनी भी अधिक गन्दगी, कीचड़, धूल और मैला क्यों न हो वह पानी से धोया जा सकता है; उसी तरह, भिक्षु दुःशील होने से भी साधना में अच्छी तरह लगा रह कर दाता द्वारा दी गई दक्षिणा सफल बना देता है।

"महाराज! जैसे खौलता हुआ गरम जल भी ज़लती हुई अग्नि की राशि को बुझा देता है; उसी तरह भिक्षु दुःशील होने पर भी साधना में अच्छी तरह लगा रह कर दाता द्वारा दी गयी दक्षिणा को सफल बना देता हैं।"

"महाराज! *मज्झिमनिकाय* में 'दक्षिणाविभङ्ग' नामक धर्मोपदेश करते समय देवातिदेव भगवान् ने कहा है—

'धर्म और श्रद्धा से युक्त हो, जो शीलवान् दुःशीलों को दान देता है, वह बहुत अच्छा कर्म—फल पाता है, दायक की वह दक्षिणा शुद्ध हो जाती है।'

"भन्ते नागसेन! आश्चर्य है!! अद्भुत है!!! मैं ने आप से एक छोटा सा प्रश्न पूछा था, किन्तु आप ने उसे उपमाओं और तर्कों से इतना स्पष्ट कर दिया कि यह अब सुनने में अमृतसदृश मधुर जान पड़ता है। भन्ते! जैसे कोई अच्छा रसोइया थोड़ा सा सामान पाकर भी मिर्च—मसाले लगा कर वह उसे ऐसा

एवमेव खो, भन्ते नागसेन, तावतकं मयं पञ्हं अपुच्छिम्ह, तं त्वं ओपम्मेहि कारणेहि विभावेत्वा अमतमधुरं सवनूपगं अकासी'' ति।

९. उदकसत्तपञ्हो

१९. ''भन्ते नागसेन, इमं उदकं अग्गिम्हि तप्पमानं चिच्चिटायति चिटचिटायति सद्दायति बहुविधं। किन्नु खो, भन्ते नागसेन, उदकं जीवति किं कीळमानं सद्दायति, उदाहु अञ्ञेन पटिपीळितं सद्दायती'' ति?'' न हि, महाराज, उदकं जीवति, नत्थि उदके जीवो वा सत्तो वा। अपि च, महाराज, अग्गिसन्तापवेगस्स महन्तताय उदकं चिच्चिटायति चिटिचिटायति सद्दायति बहुविधं'' ति।

''भन्ते नागसेन, इधेकच्चे तित्थिया 'उदकं जीवती' ति सीतूदकं पटिक्खिपित्वा उदकं तापेत्वा वेकतिकवेकतिकं परिभुञ्जन्ति, ते तुम्हे गरहन्ति परिभवन्ति—'एकिन्द्रियं समणा सक्यपुत्तिया जीवं विहेठेन्ती' ति। तं तेसं गरहं परिभवं विनोदेहि अपनेहि निच्छारेही'' ति? ''न हि, महाराज, उदकं जीवति, नत्थि, महाराज, उदके जीवो वा सत्तो वा। अपि च, महाराज, अग्गिसन्तापवेगस्स महन्तताय उदकं चिच्चिटायति चिटिचिटायति सद्दायति बहुविधं।

२०. ''यथा, महाराज, उदकं सोब्भसरसरितदहतळाककन्दरपदरउदपाननिन्नपोक्खरणिगतं वातातपवेगस्स महन्तताय परियादियति परिक्खयं गच्छति, अपि नु तत्थ उदकं चिच्चिटायति चिटिचिटायति सद्दायति बहुविधं'' ति?''न हि, भन्ते'' ति।''यदि, महाराज, उदकं जीवेय्य, तत्थापि उदकं सद्दायेय्य। इमिना पि, महाराज, कारणेन जानाहि—'नत्थि उदके जीवो वा सत्तो वा, अग्गिसन्तापवेगस्स महन्तताय उदकं चिच्चिटायति चिटिचिटायति सद्दायति बहुविधं' ति। (क)

स्वादिष्ठ बना देता है कि राजा भी उसे चाव से खाते हैं। उसी तरह, मैं ने आप से एक छोटा सा प्रश्न पूछा था, किन्तु आप ने उसे उपमाओं और तर्कों से इतना स्पष्ट कर दिया कि यह अब सुनने में अमृत के समान मधुर लग रहा है।"

९. जल में प्राणविषयकप्रश्न— १९. "भन्ते नागसेन! अग्नि के ऊपर जल रखने से जल में 'बुद बुद', 'खद खद' आदि अनेक प्रकार के शब्द होते हैं; भन्ते! क्या जल में भी जीव है? अथवा, वह यों ही अकारण शब्द करता है? अथवा, दुःख दिये जाने के कारण वह शब्द करता है?" "महाराज! जल में जीव या प्राण नहीं हैं, अपितु अग्नि की अधिक गर्मी से जल में एक गति पैदा हो जाती है, जिससे वह 'बुद-बुद', 'खद-खद' इत्यादि शब्द करने लगता है।

"भन्ते नागसेन! कितने ही दूसरे मत वाले ऐसा मानते हैं कि जल में जीव है। इसी से वे ठंढा जल छोड़ कर गर्म ही पीते हैं। वे आप बौद्धों की निन्दा करते हैं— 'ये बौद्ध भिक्षु एक इन्द्रिय वाले जीव का नाश करने वाले हैं'। अतः आप कृपया इस निन्दा का उचित उत्तर दे उन्हें चुप कर दें।" "महाराज! जल में जीव या प्राण नहीं है, अपितु अग्नि की अधिक गर्मी से जल में एक गति पैदा हो जाती है; जिससे वह 'बुद-बुद', 'खद-खद' शब्द करने लगता है।

२०. "महाराज! जैसे गड़हे, सरोवर, दह, तालाब, कन्दरा, प्रदर और कुएँ का जल कभी-कभी बहुत तेज आँधी चलने से उड़कर सूख जाता है। तब, क्या उस समय भी वह अनेक प्रकार के शब्द करता है?" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! यदि जल में जीव रहता तो उसे उस समय भी अवश्य शब्द करना

"अपरं पि, महाराज, उत्तरिं कारणं सुणोहि—'नत्थि उदके जीवो वा सत्तो वा। अग्गिसन्तापवेगस्स महन्तताय उदकं सद्दायती' ति। यदा पन, महाराज, उदकं तण्डुलेहि सम्मिस्सितं भाजनगतं होति पहितं उद्धने अट्ठपितं, अपि नु तत्थ उदकं सद्दायती" ति? "न हि, भन्ते, अचलं होति सन्तसन्तं" ति। "ते येव पन, महाराज, उदकं भाजनगतं अग्गि पज्जालेत्वा उद्धने ठपितं होति, अपि नु तत्थ उदकं अचलं होति सन्तसन्तं" ति? 'न हि, भन्ते; चलति खुब्भति लुळति आबिलति, ऊमिजातं होति, उद्धमधो दिसाविदिसं गच्छति उत्तरति पतरति फेणमाली होती" ति। "किस्स पन तं, महाराज, पाकतिकं उदकं न चलति, सन्तसन्तं होति, किस्स पन अग्गिगतं चलति खुब्भति लुळति आविलति, ऊमिजातं होति, उद्धमधो दिसाविदिसं गच्छति, उत्तरति पतरति फेणमाली होती" ति? "पाकतिकं, भन्ते, उदकं न चलति; अग्गिगतं पन उदकं अग्गिसन्तापवेगस्स महन्तताय चिच्चिटायति चिटिचिटायति सद्दायति बहुविधं" ति। "इमिना पि, महाराज, कारणेन जानाहि—'नत्थि उदके जीवो वा सत्तो वा, अग्गिसन्तापवेगस्स महन्तताय उदकं सद्दायती' ति। (ख)

"अपरं पि, महाराज, उत्तरिं कारणं सुणोहि—'नत्थि उदके जीवो वा सत्तो वा, अग्गिसन्तापवेगस्स महन्तताय उदकं सद्दायती' ति। होति तं, महाराज, उदकं घरे घरे उदकवारकगतं पिहितं" ति? "आम, भन्ते" ति। "अपि नु तं, महाराज, उदकं चलति खुब्भति लुळति आविलति, ऊमिजातं होति, उद्धमधो दिसाविदिसं गच्छति, उत्तरति पतरति, फेणमाली होती" ति? "न हि, भन्ते; अचलं तं होति पाकतिकं उदकवारकगतं उदकं" ति। (ग)

"सुतपुब्बं पन तया, महाराज—'महासमुद्दे उदकं चलति खुब्भति लुळति आविलति, ऊमिजातं होति, उद्धमधो दिसाविदिसं गच्छति, उत्तरति पतरति, फेणमाली होति, उस्सक्कित्वा ओस्सक्कित्वा वेलाय पहरति, सद्दायति बहुविधं" ति? "आम, भन्ते, सुतपुब्बं एतं मया

चाहिये था। महाराज! इतने से भी समझ लें कि 'जल में जीव या प्राण नहीं है, अपितु अग्नि की अधिक गर्मी से जल में एक शक्ति पैदा होती है; जिस से वह 'बुद-बुद' शब्द करने लगता है'। (क)

"महाराज! जल में जीव या प्राण नहीं है, इसका एक और कारण सुनें—महाराज! यदि चावल के साथ जल डाल कर किसी हाँडी में बन्द कर दें, अग्नि पर न चढ़ावें, तो वह शब्द करेगा या नहीं?" "नहीं, भन्ते! तब उसमें कोई गति नहीं होगी; वह शान्त रहेगा।" "महाराज! यदि उसी हाँडी को वैसे ही उठा कर चूल्हे पर रख दिया जाय और अग्नि जला दी जाय तो क्या वह चुप रहेगा?" "नहीं, भन्ते! वह बुदबुदाने और खौलने लगेगा। सारी हाँडी खद-खद करने लगेगी। उबाल आने लगेगा। फेन पर फेन छूटना प्रारम्भ होगा। चावल के दाने ऊपर-नीचे होने लगेंगे।" "महाराज! वही ठंढा रह कर ऐसा चञ्चल क्यों नहीं हो जाता? शान्त क्यों बना रहता है?" "भन्ते! अग्नि की अधिक गर्मी से ही वह इस तरह बिखरने और खौलने लगता है।" "महाराज! इस प्रकार भी समझ लें कि जल में जीव नहीं है ....। (ख)

"महाराज! उसका एक और भी कारण सुनें—क्या घर-घर में मुँह ढक कर जल के घड़े रखे नहीं रहते?" "हाँ, भन्ते! रखे रहते हैं।" "महाराज! उनका जल भी क्या खौलता, बिखरता और उबलता रहता है?" "नहीं, भन्ते! उन घड़ों का जल शान्त और स्वाभाविक रहता है। (ग)

"महाराज! क्या आप ने सुना है कि समुद्र का जल चञ्चल रहता है, लोट-पोट होता है, लहराता रहता है, ऊपर-नीचे होता रहता है, उतरता-चढ़ता है, टकराता है, फेन फेंकता रहता है,

दिट्ठपुब्बं च—'महासमुद्दे उदकं हत्थसतं पि द्वे पि हत्थसतानि गगने उस्सक्कती'' ति। ''किस्स, महाराज, उदकवारकगतं उदकं न चलति न सद्दायति, किस्स पन महासमुद्दे उदकं चलति सद्दायती'' ति? ''वातवेगस्स महन्तताय, भन्ते, महासमुद्दे उदकं चलति सद्दायति, उदकवारकगतं उदकं अघट्टितं केहिचि न सद्दायती'' ति। ''यथा, महाराज, वातवेगस्स महन्तताय महासमुद्दे उदकं चलति सद्दायति; एवमेव अग्गिसन्तापवेगस्स महन्तताय उदकं सद्दायती'' ति। (घ)

''ननु, महाराज, भेरिपोक्खरं सुक्खं सुक्खेन गोचम्मेन ओनन्धन्ती'' ति? ''आम, भन्ते'' ति। ''अपि नु, महाराज, भेरिया जीवो वा सत्तो वा अत्थी'' ति। ''न हि, भन्ते'' ति। ''किस्स पन, महाराज, भेरी सद्दायती'' ति? ''इत्थिया वा, भन्ते, पुरिसस्स वा तज्जेन वायामेना'' ति। ''यथा, महाराज, इत्थिया वा पुरिसस्स वा तज्जेन वायामेन भेरी सद्दायति; एवमेव अग्गिसन्तापवेगस्स महन्तताय उदकं सद्दायति। इमिना पि, महाराज, कारणेन जानाहि—'नत्थि उदके जीवो वा सत्तो वा, अग्गिसन्तापवेगस्स महन्तताय उदकं सद्दायती' ति। (ङ)

''मय्हं पि ताव, महाराज, तव पुच्छितब्बं अत्थि, एवमेव सो पञ्हो सुविनिच्छितो होति। किन्नु खो, महाराज, सब्बेहि पि भाजनेहि उदकं तप्पमानं सद्दायति, उदाहु एकच्चेहि येव भाजनेहि तप्पमानं सद्दायती'' ति? ''नहि, भन्ते, सब्बेहि पि भाजनेहि उदकं तप्पमानं सद्दायति, एकच्चेहि येव भाजनेहि उदकं तप्पमानं सद्दायती'' ति। ''तेन हि, महाराज, जहितो सि सकसमयं, पच्चागतो सि मम विसयं, नत्थि उदके जीवो वा सत्तो वा। यदि, महाराज, सब्बेहि पि भाजनेहि उदकं तप्पमानं सद्दायेय्य, युत्तमिदं 'उदकं जीवती' ति वत्तुं। न हि, महाराज, उदकं द्वयं होति—'यं सद्दायति तं जीवति, यं न सद्दायति तं न जीवती' ति। यदि,

---

किनारे से टकराता रहता है, सदा 'हा-हा' शब्द करता रहता है?" "हाँ, भन्ते! मैंने सुना है और स्वयं देखा भी है। महासमुद्र का जल सौ, दो सौ हाथ ऊपर भी उछल जाता है।" "महाराज! क्या कारण है कि घड़े का पानी न तो उछलता है और न शब्द करता है, किन्तु समुद्र का पानी सदा उछलता रहता, शब्द करता रहता है?" "भन्ते! वायु के बहुत जोर से चलने से ही समुद्र का जल उछलता रहता है और शब्द भी करता है। घड़े के जल को कोई हिलाता-डुलाता नहीं है इसी से शान्त रहता है और न कोई शब्द करता है।" "महाराज! जैसे वायु के चलने से जल उछलने लगता है, वैसे ही अग्नि की गर्मी से भी जल में एक गति पैदा हो जाती है, जिससे वह उबलने तथा खदखदाने लगता है। (घ)

"महाराज! लोग सूखे नगाड़े को गाय के सूखे चर्म से मढ़ देते हैं न?" "हाँ, भन्ते!" "महाराज! क्या नगाड़े में भी जीव या प्राण है?" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! तब नगाड़ा गड़गड़ाता क्यों है?" "भन्ते! किसी स्त्री या पुरुष के चोट देने से।" "महाराज! जैसे किसी स्त्री या पुरुष के चोट देने से नगाड़ गड़गड़ा उठता है; वैसे ही अग्नि की अधिक गर्मी से जल खौलने और खदखदाने लगता है। महाराज! इस प्रकार भी आप समझ लें कि जल में जीव या प्राण नहीं है....। (ङ)

"महाराज! मुझे भी यहाँ आप से कुछ पूछना है जिससे यह प्रश्न सर्वथा स्पष्ट हो जायगा। महाराज! क्या सभी पात्रों में जल गरम करने से शब्द होता है या किसी विशेष पात्र में ही?" "नहीं, भन्ते! सभी पात्रों में जल गरम करने से शब्द नहीं होता, कुछ ही पात्रों में होता है।" "महाराज! आप ने अपनी बात छोड़ दी। आप मेरे पक्ष में आ गये। जल में जीव या प्राण नहीं है। महाराज! यदि सभी बर्तनों में जल गरम करने से शब्द होता तो कह सकते थे कि जल में जीव है। महाराज! जल दो प्रकार का तो हो नहीं

महाराज, उदकं जीवेय्य, महन्तानं हत्थिनागानं उस्सन्नकायानं पभिन्नानं सोण्डाय उस्सिञ्चित्वा मुखे पक्खिपित्वा कुच्छिं पवेसयन्तानं तं पि उदकं तेसं दन्तन्तरे चिप्पियमानं सद्दायेय्य। हत्थसतिका पि महानावा गरुका भारिका अनेकसतसहस्सभारपरिपूरा महासमुद्दे विचरन्ति, ताहि पि चिप्पियमानं उदकं सद्दायेय्य। महतिमहन्ता पि मच्छा अनेकसतयोजनिककाया, तिमी तिमिङ्गला तिमिरपङ्गला, अब्भन्तरे निमुग्गा महासमुद्दे निवासट्ठानताय पटिवसन्ता महाउदकधारा आचमन्ति धमन्ति च, तेसं पि तं दन्तन्तरे पि उदरन्तरे पि चिप्पियमानं उदकं सद्दायेय्य। यस्मा च खो, महाराज, एवरूपेहि एवरूपेहि महन्तेहि पटिपीळनेहि पटिपीळितं उदकं न सद्दायति, तस्मा पि नत्थि उदके जीवो वा सत्तो वा ति। एवमेतं, महाराज, धारेही ति।'' (च)

''साधु, भन्ते नागसेन, दोसागतो पञ्हो अनुच्छविकाय विभत्तिया विभत्तो। यथा नाम, भन्ते नागसेन, महग्घं मणिरतनं छेकाचरियं कुसलं सिक्खितं मणिकारं पापुणित्वा कित्तिं लभेय्य थोमनं पसंसं, मुत्तारतनं वा मुत्तिकं, दुस्सरतनं वा दुस्सिकं, लोहितचन्दनं वा गन्धिकं पापुणित्वा कित्तिं लभेय्य थोमनं पसंसं; एवमेव खो, भन्ते नागसेन, दोसागतो पञ्हो अनुच्छविकाय विभत्तिया विभत्तो, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी'' ति।

(इमस्मिं वग्गे नव पञ्हा)

पठमो बुद्धवग्गो निट्ठितो॥

२. निप्पपञ्चवग्गो

१. निप्पपञ्चपञ्हो

१. ''भन्ते नागसेन, भासितं पेतं भगवता—'निप्पपञ्चारामा, भिक्खवे, विहरथ निप्पपञ्चरतिनो' ति। कतमं तं निप्पपञ्चं'' ति?

सकता कि एक जो शब्द करता है उसमें जीव है; दूसरा जो शब्द नहीं करता उसमें जीव नहीं है। महाराज! बड़े–बड़े मस्त हाथी जल को सूँड़ से खींच कर अपने शरीर पर फेंकते हैं या मुँह में डाल कर पी जाते हैं। यदि जल में जीव रहता तो उसे उस तरह उनके दाँतों के बीच पिस कर शब्द करना चाहिये था। समुद्र में तिमि, तिमिङ्गिल इत्यादि अनेक मछलियाँ रहती हैं। वे भी जल को अपने भीतर और बाहर करती हैं। उनके दाँतों से भी पिस कर जल को शब्द करना चाहिये था। महाराज! इतने बड़े–बड़े प्राणियों से भी पिस कर जल शब्द नहीं करता—इससे यही सार निकलता है कि जल में जीव या प्राण नहीं है। महाराज! इस प्रकार भी आप समझ लें कि जल में जीव या प्राण नहीं है। (च)

''भन्ते नागसेन! प्रश्न का विश्लेषण करके आपने उसे किनारे लगा दिया। चालाक जौहरी के हाथ आकर ही अच्छे रत्नों की प्रतिष्ठा होती है; मोतिहार के हाथ में आकर ही सच्चे मोती की प्रतिष्ठा होती है; कुशल बजाज के हाथ में आकर ही सच्चे दुशालों की प्रतिष्ठा होती है, गन्धी के हाथ में आकर ही लाल चन्दन की प्रतिष्ठा होती है। उसी तरह, आप ने इस प्रश्न का उत्तर दिया।।''

(इस वर्ग में नौ प्रश्न हैं।)

प्रथम बुद्धवर्ग समाप्त॥

२. निष्प्रपञ्चवर्ग

१. निष्प्रपञ्चताविषयकप्रश्न— १. ''भन्ते नागसेन! भगवान् ने कहा है— 'भिक्षुओ! प्रपञ्च में मत पड़ो; प्रपञ्च से दूर रहो।' यह 'प्रपञ्च से दूर रहना' क्या है?''

२. "सोतापत्तिफलं, महाराज, निप्पपञ्चं; सकदागामिफलं, महाराज, निप्पपञ्चं; अनागामिफलं, महाराज, निप्पपञ्चं, अरहत्तफलं, महाराज, निप्पपञ्चं" ति। "यदि, भन्ते नागसेन, सोतापत्तिफलं निप्पपञ्चं, सकदागामि....अनागामि....अरहत्तफलं निप्पपञ्चं, किस्स पन इमे भिक्खू उद्दिसन्ति परिपुच्छन्ति सुत्तं गेय्यं वेय्याकरणं गाथं उदानं इतिवुत्तकं जातकं अब्भुतधम्मं वेदल्लं नवकम्मेन पलिबुज्झन्ति दानेन च पूजाय च? ननु ते जिनप्पटिक्खित्तं कम्मं करोन्ती" ति?

"ये ते, महाराज, भिक्खू उद्दिसन्ति परिपुच्छन्ति सुत्तं गेय्यं वेय्याकरणं गाथं उदानं इतिवुत्तकं जातकं अब्भुतधम्मं वेदल्लं, नवकम्मेन पलिबुज्झन्ति दानेन च पूजाय च, सब्बे ते निप्पपञ्चस्स पत्तिया करोन्ति। ये ते, महाराज, सभावपरिसुद्धा पुब्बे वासितवासना, ते एकचित्तक्खणेन निप्पपञ्चा होन्ति। ये पन ते भिक्खू महारजक्खा, ते इमेहि पयोगेहि निप्पपञ्चा होन्ति।

"यथा, महाराज, एको पुरिसो खेत्ते बीजं रोपेत्वा अत्तनो यथाबलविरियेन विना पाकारवतिया धञ्ञं उद्धरेय्य, एको पुरिसो खेत्ते बीजं रोपेत्वा वनं पविसित्वा कट्ठं च साखं च छिन्दित्वा वतिपाकारं कत्वा धञ्ञं उद्धरेय्य, या तत्थ वतिपाकारपरियेसना सा धञ्ञत्थाय; एवमेव खो, महाराज, ये ते सभावपरिसुद्धा पुब्बे वासितवासना ते एकचित्तक्खणेन निप्पपञ्चा होन्ति, विना वतिपाकारं पुरिसो विय धञ्ञुद्धारो। ये पन ते भिक्खू महारजक्खा, ते इमेहि पयोगेहि निप्पपञ्चा होन्ति, वतिपाकारं कत्वा पुरिसो विय धञ्ञुद्धारो। (क)

"यथा वा पन, महाराज, पुरिसो महतिमहन्ते अम्बरुक्खमत्थके फलपिण्डि भवेय्य,

---

२. "महाराज! स्रोतआपत्ति के फल में प्रपञ्च (=झंझट) नहीं है, इसी तरह सकृदागामी, अनागामी और अर्हत् के फल में भी प्रपञ्च नहीं है।" "भन्ते नागसेन! यदि ऐसी बात है तो भिक्षु लोग बुद्धशासन के नौ अङ्गों के झंझट में क्यों पड़ते हैं, जैसे—सूत्र, गेय, गाथा, व्याकरण, उदान, इतिवुत्तक, जातक, अद्भुत धर्म (=विचित्र घटनायें) और वेदल्ल? इन अङ्गों को क्यों पढ़ाते हैं और स्वयं आपस में उनकी चर्चा करते है? नये-नये विहार बनवाने, दान लेने और पूजा कराने के प्रपञ्च में क्यों पड़ते हैं? (इस प्रकार) क्या वे बुद्ध द्वारा निषिद्ध कार्यो को नहीं करते?"

"महाराज! वे इन बातों को प्रपञ्च से छूटने के लिये ही करते हैं। महाराज! जो अपने पूर्व-जन्मों की अच्छी वासनाओं से शुद्ध हो चुके हैं वे शीघ्र ही समग्र जग प्रपञ्च से छूट (अर्हत् हो) जाते हैं। और जिन भिक्षुओं में अभी तक राग हैं, वे भी इन्ही उपायों से धीरे-धीरे प्रपञ्च से छूट सकते हैं।

"महाराज! जैसे कोई आदमी खेत में बीज बो कर बिना कोई बाड़ लगाये अपने बल और वीर्य से फसल (उपज) निकाल लेता है। दूसरा आदमी जंगल में लकड़ी और शाखाएं काट कर लाता है और खेत के चारों ओर बाड़ बाँधता है, उसके बाद ही बीज बो कर फसल उगाता है। (यह) जो दूसरे आदमी का बाड़ बाँधने के लिये प्रयत्न करना है सो फसल उगाने के लिये ही है। महाराज! वैसे ही, जो अपने पूर्वजन्मों की अच्छी वासनाओं से शुद्ध हो चुके हैं, वे शीघ्र ही बिना बाड़ बाँधे फसल निकालने वाले पुरुष की तरह सारे प्रपञ्च से छूट जाते हैं। परन्तु, जिन भिक्षुओं में अभी तक राग है, वे धीर-धीरे बाड़ बाँध कर फसल उगाने वाले पुरुष की तरह प्रपञ्च से छूट जाते हैं। (क)

"महाराज! जैसे आम के किसी ऊँचे वृक्ष पर फलों का एक गुच्छा लगा हो। कोई ऋद्धिमान्

अथ तत्थ यो कोचि इद्धिमा आगन्त्वा तस्स फलं हरेय्य, यो पन तत्थ अनिद्धिमा सो कट्ठं च वल्लिं च छिन्दित्वा निस्सेणिं बन्धित्वा ताय तं रुक्खं अभिरूहित्वा फलं हरेय्य, या तत्थ तस्स निस्सेणिपरियेसना सा फलत्थाय; एवमेव खो, महाराज, ये ते सभावपरिशुद्धा पुब्बे वासितवासना ते एकचित्तक्खणेन निप्पपञ्चा होन्ति, इद्धिमा विय रुक्खफलं हरन्तो। ये पन ते भिक्खू महा-रजक्खा ते इमिना पयोगेन सच्चानि अभिसमेन्ति, निस्सेणिया विय पुरिसो रुक्खफलं हरन्तो।(ख)

"यथा वा पन, महाराज, एको पुरिसो अत्थकरणिको एकको येव सामिकं उपगन्त्वा अत्थं साधेति, एको धनवा धनवसेन परिसं वड्ढेत्वा परिसाय अत्थं साधेति, या तत्थ तस्स परिसपरियेसना सा अत्थत्थाय; एवमेव खो, महाराज, ये ते सभावपरिसुद्धा पुब्बे वासितवासना ते एकचितक्खणेन छसु अभिञ्ञासु वसिभावं पापुणन्ति, पुरिसो विय एकको अत्थसिद्धिं करोन्तो। ये पन ते भिक्खू महारजक्खा ते इमेहि पयोगेहि सामञ्ञत्थमभिसाधेन्ति, परिसाय विय पुरिसो अत्थसिद्धिं करोन्तो। (ग)

"उद्देसो पि, महाराज, बहुकारो, परिपुच्छा पि बहुकारा, नवकम्मं पि बहुकारं, दानं पि बहुकारं, पूजा पि बहुकारा तेसु तेसु करणीयेसु। यथा, महाराज, पुरिसो राजूपसेवी कतावी अमच्चभटबलत्थदोवारिकअनीकट्ठपारिसज्जजनेहि, ते करणीये अनुप्पत्ते सब्बे पि उपकारा होन्ति; एवमेव खो, महाराज उद्देसो पि बहुकारो, परिपुच्छा पि बहुकारा, नवकम्मं पि बहुकारं, दानं पि बहुकारं, पूजा पि बहुकारा तेसु तेसु करणीयेसु। यदि, महाराज, सब्बे पि अभिजातिपरिसुद्धा भवेय्युं, अनुसासनेन करणीयं न भवेय्य। यस्मा च खो, महाराज, सवनेन करणीयं होति। थेरो, महाराज, सारिपुत्तो अपरिमितमसङ्खेय्यकप्पं उपादाय उपचित-

---

पुरुष चाहे तो सहज ही उसे ले सकता है; किन्तु साधारण आदमी को वृक्ष पर जाने के लिये लकड़ियाँ काटकर कोई सीढ़ी बाँधनी पड़ेगी। यहाँ भी जो दूसरे पुरुष का सीढ़ी लगाना है, वह फल लेने के लिये ही है। महाराज! वैसे ही जो अपने पूर्वजन्मों की अच्छी वासनाओं से शुद्ध हो चुके हैं, वे शीघ्र ही ऋद्धिमान् पुरुष की फलप्राप्ति के समान सारे प्रपञ्च से छूट जाते हैं। और जिन भिक्षुओं में अभी तक राग हैं, वे इन्हीं उपायों से धीरे-धीरे सीढ़ी वाले पुरुष की तरह प्रपञ्च से छूट सकते हैं। (ख)

"महाराज! जैसे कोई चतुर चालाक आदमी अकेला ही राजा के पास जा कर अपना इष्ट कार्य पूर्ण कर लेता है। और दूसरा कोई धनवान् आदमी अपने धन के कारण राजा के पास किसी काम से एक बड़ी मण्डली लेकर जाता है। यहाँ, उनका बड़ी मण्डली का बटोरना भी अपना कार्य निकालने के लिये ही है। महाराज! वैसे ही, जो अपने पूर्वजन्मों की अच्छी वासनाओं से शुद्ध हो चुके हैं वे शीघ्र ही, उस चतुर आदमी की तरह, सभी प्रपञ्चों से छूट जाते हैं। और जिन भिक्षुओं में अभी तक राग है, वे इन्हीं उपायों से धीरे-धीरे, उस धनवान् आदमी की तरह प्रपञ्च से छूट सकते हैं। (ग)

"महाराज! धर्मग्रन्थों का पाठ बहुत अच्छा है, धर्मचर्चा भी बहुत अच्छी है, नये विहार बनवाना भी बहुत अच्छा है तथा दान-पूजा भी बहुत अच्छी है। इनसे बहुत लाभ होता है। महाराज! राजा के बहुत से नौकर होते हैं, जैसे-अधिकारी, सिपाही, दूत, चौकीदार, अङ्गरक्षक तथा सभासद। राजा का कुछ काम आ पड़ने पर सभी कुछ न कुछ उपकार करते हैं। महाराज! वैसे ही, धर्म-ग्रन्थों का पाठ, धर्म-चर्चा, नये विहार बनवाना तथा दान-पूजा आदि सभी बहुत उपकारक हैं। महाराज! यदि सभी लोग स्वयं शुद्ध हों तो उपदेश देने वाले की आवश्यकता ही न पड़े। महाराज! किन्तु ऐसी बात नहीं हैं। शिष्य बनने

कुसलमूलो पञ्ञाय कोटिं गतो, सो पि विना सवनेन नासक्खि आसवक्खयं पापुणितुं। तस्मा, महाराज, बहुकारं सवनं, तथा उद्देसो पि, परिपुच्छा पि। तस्मा उद्देसपरिपुच्छा निप्पपञ्चा सङ्खाता'' ति।

''सुविनिज्झापितो, भन्ते नागसेन, पञ्हो, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी'' ति।

२. खीणासवभावपञ्हो

३. ''भन्ते नागसेन, तुम्हे भणथ—'यो गिही अरहत्तं पत्तो द्वे वास्स गतियो अनञ्ञा भवन्ति—तस्मिंयेव दिवसे पब्बजति वा परिनिब्बायति वा। न सो दिवसो सक्का अतिक्कमेतुं' ति। सचे सो, भन्ते नागसेन, तस्मिं दिवसे आचरियं वा पत्तचीवरं वा न लभेथ, अपि नु खो सो अरहा सयं वा पब्बजेय्य, दिवसं वा अतिक्कमेय्य, अञ्ञो कोचि अरहा इद्धिमा आगन्त्वा तं पब्बाजेय्य, परिनिब्बायेय्य वा''? ''न सो, महाराज, अरहा सयं पब्बजेय्य। सयं पब्बजन्तो थेय्यं आपज्जति। न च दिवसं अतिक्कमेय्य। अञ्ञस्स अरहन्तस्स आगमनं भवेय्य वा न वा भवेय्य, तस्मिंयेव दिवसे परिनिब्बायेय्या'' ति। ''तेन हि, भन्ते नागसेन, अरहत्तस्स सन्तभावो विजहितो होति, येन अधिगतस्स जीवितहारो भवती'' ति? ''विसमं, महाराज, गिहिलिङ्गं, विसमे लिङ्गे लिङ्गदुब्बलताय अरहत्तं पत्तो गिही तस्मिं येव दिवसे पब्बजति वा परिनिब्बायति वा। नेसो, महाराज, दोसो अरहत्तस्स, गिहिलिङ्गस्सेसो दोसो यदिदं लिङ्गदुब्बलता।

''यथा, महाराज, भोजनं सब्बसत्तानं आयुपालकं जीवितरक्खकं विसमकोट्ठस्स

की अत्यन्त आवश्यकता है। स्थविर सारिपुत्र ने अत्यधिक कल्पों तक बहुत पुण्य कमाया था और प्रज्ञापारमिता प्राप्त कर ली थी। किन्तु अर्हत् पद पाने के लिये उन्हें भी गुरु बनाना पड़ा। महाराज! इस तरह, शिष्य बनने में बहुत लाभ हैं; धर्म–ग्रन्थों का श्रवण उनका पाठ और उनके विषय में चर्चा— सभी से बहुत लाभ होता है। इसलिये, जो भिक्षु इनमें रहते हैं, वे धीरे–धीरे भवप्रपञ्च से छूट जाते हैं।''

''ठीक है, भन्ते नागसेन! मैं आपका कथन स्वीकार करता हूँ।''

२. गृहस्थ का अर्हत्त्व—३. ''भन्ते नागसेन! आप लोग कहते हैं —'जो गृहस्थ रहते हुए अर्हत् पद पा लेता है उसके लिये दो बातें हो सकती हैं, तीसरी नहीं। या तो वह उसी दिन प्रव्रजित हो जाय या परिनिर्वाण पा ले। (ऐसा किये विना) उस दिन को वह बिता नहीं सकता'। भन्ते! यदि उस दिन उसे आचार्य, उपाध्याय, पात्र और चीवर न मिलें तो वह क्या करेगा? वह क्या अर्हत् हो कर विना उपाध्याय के अपने आप को प्रव्रजित कर लेगा? अथवा, एक दिन तक ठहर जायगा? अथवा, कोई दूसरा ऋद्धिमान् अर्हत् आ कर उसे प्रव्रजित कर देगा? अथवा, परिनिर्वाण पा लेगा?'' ''महाराज! वह अर्हत् हो, विना उपाध्याय के अपने आप को प्रव्रजित नहीं कर सकेगा। स्वयं प्रव्रजित कर लेने से उसे चोरी का दोष लगेगा। (क्योंकि वह विना अधिकार पाये ही भिक्षु–वेष धारण करता है।) वह एक दिन ठहर भी नहीं सकता। दूसरे अर्हत् आवें या न आवें वह उसी दिन परिनिर्वाण पा लेगा।'' ''भन्ते नागसेन! तब तो अर्हत् का शान्तभाव नहीं रहता; क्योंकि उसमें जीवन का हरण किया जाता है।'' ''महाराज! गृहस्थ रहना अर्हत् के अनुकूल नहीं। इसी से गृहस्थ अर्हत् होते ही या तो प्रव्रजित हो जाता है या परिनिर्वाण पा लेता है। अर्हत् के शान्तभाव में कोई दोष नहीं हैं। गृहस्थ रहने के अनुकूल न होना ही यहाँ कारण है। गृहस्थ के वेश में इतना बल नहीं कि अर्हत्त्व को सँभाल सके।

''महाराज! जैसे भोजन सभी जीवों का पालन करता है; सभी जीवों की प्राणरक्षा करता है। किन्तु वही भोजन, पेट में रोग हो जाने या अग्नि के मन्द पड़ जाने पर, प्राण भी ले लेता है। महाराज!

मन्ददुब्बलगहणिकस्स अविपाकेन जीवितं हरति, नेसो, महाराज, दोसो भोजनस्स, कोट्ठस्सेवेसो दोसो, यदिदं अग्गिदुब्बलता; एवमेव खो, महाराज, विसमे लिङ्गे लिङ्गदुब्बलताय अरहत्तं पत्तो गिही तस्मियेव दिवसे पब्बजति वा परिनिब्बायति वा। नेसो, महाराज, दोसो अरहत्तस्स, गिहिलिङ्गस्सेसो दोसो यदिदं लिङ्गदुब्बलता।

४. "यथा वा पन, महाराज, परित्तं तिणसलाकं उपरि गरुके पासाणे पतिते दुब्बलताय भिन्दित्वा पतति; एवमेव खो, महाराज, अरहत्तं पत्तो गिही तेन लिङ्गेन अरहत्तं धारेतुं असक्कोन्तो तस्मियेव दिवसे पब्बजति वा परिनिब्बायति वा।

"यथा वा पन, महाराज, पुरिसो अबलो दुब्बलो निहीनजच्चो परित्तपुञ्ञो महतिमहारज्जं लभित्वा खणेन परिपतति परिधंसति ओसक्कति, न सक्कोति इस्सरियं धारेतुं; एवमेव खो, महाराज, अरहत्तं पत्तो गिही तेन लिङ्गेन अरहत्तं धारेतुं न सक्कोति, तेन कारणेन तस्मिं येव दिवसे पब्बजति वा परिनिब्बायति वा" ति।

"साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी" ति।

३. खीणासवसतिसम्मोसपञ्हो

५. "भन्ते नागसेन, अत्थि अरहतो सतिसम्मोसो" ति? "विगतसतिसम्मोसा खो, महाराज, अरहन्ता, नत्थि अरहन्तानं सतिसम्मोसो" ति। "आपज्जेय पन, भन्ते, अरहा आपत्तिं" ति? "आम, महाराजा" ति। "कस्मिं वत्थुस्मिं" ति? "कुटिकारे, महाराजा, सञ्चरित्ते, विकाले कालसञ्ञाय, पवारिते अप्पवारितसञ्ञाय, अनतिरित्ते अतिरित्तसञ्ञाया" ति।

"भन्ते नागसेन, तुम्हे भणथ—'ये आपत्तिं आपज्जन्ति ते द्वीहि कारणेहि आपज्जन्ति—अनादरियेन वा, अजानन्तेन वा' ति। अपि नु खो, भन्ते, अरहतो अनादरियं होति, यं अरहा आपत्तिं आपज्जती" ति? "न हि, महाराजा" ति।

इसमें भोजन का दोष नहीं, अपितु पेट की कमजोरी और अग्नि के मन्द पड़ जाने का ही दोष है। महाराज! उसी तरह गृहस्थ रहना अर्हत् के अनुकूल नहीं। इसी से गृहस्थ अर्हत् होते ही या तो प्रव्रजित हो जाता है या परिनिर्वाण पा लेता है। अर्हत् के शान्तभाव में ....पूर्ववत्.... सँभाल सके।

४. "महाराज! यदि एक छोटे से तिनके पर एक भारी पत्थर रख दिया जाय तो कमजोर होने के कारण टूट जायगा और कुचला जायगा; महाराज! उसी तरह, गृहस्थ का वेश अर्हत्त्व को नहीं सम्भाल सकता। गृहस्थ अर्हत् होते ही या तो प्रव्रजित हो जाता है या परिनिर्वाण पा लेता है।

"महाराज! जैसे यदि छोटी जाति के किसी गरीब और मूर्ख आदमी को विशाल राज्य की गद्दी पर बैठा दिया जाय तो वह उसे नहीं सम्हाल सकेगा; महाराज! उसी तरह, गृहस्थ का वेश अर्हत्त्व को नहीं सम्हाल सकता। गृहस्थ अर्हत् होते ही या तो प्रव्रजित हो जाता है या परिनिर्वाण पा लेता है।"

"ठीक है, भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं, उसे मैं मान लेता हूँ।"

३. क्षीणास्रव का स्मृतिभ्रंश—५. "भन्ते नागसेन! क्या अर्हत् कभी अपनी स्मृति से च्युत हो जाता है?" "महाराज! अर्हत् कभी भी अपनी स्मृति से च्युत नहीं होता। उसका चित्त कभी भी असावधान नहीं होता।" "भन्ते! क्या अर्हत् कभी कोई प्रमाद कर सकता है?" "हाँ, महाराज! कर सकता है।" "भन्ते! वह किस तरह?" "कुटी बनवाने में, सच्चरित्रता में, विकाल को उचित काल समझ लेने में, प्रवारित को अप्रवारित समझ लेने में, जो अतिरिक्त नहीं है उसे अतिरिक्त समझ लेने में।"

"यदि, भन्ते नागसेन, अरहा आपत्तिं आपज्जति, नत्थि च अरहतो अनादरियं, तेन हि अत्थि अरहतो सतिसम्मोसो" ति? "नत्थि, महाराज, अरहतो सतिसम्मोसो। आपत्तिं च अरहा आपज्जती" ति। "तेन हि, भन्ते, कारणेन मं सञ्ञापेहि, किं तत्थ कारणं" ति?

६. "द्वेमे, महाराज, किलेसा—लोकवज्जं, पण्णत्तिवज्जं चा ति। कतमं महाराज, लोकवज्जं? दस अकुसलकम्मपथा, इदं वुच्चति लोकवज्जं। कतमं पण्णत्तिवज्जं? यं लोके अत्थि समणानं अननुच्छविकं अननुलोमिकं, गिहीनं अनवज्जं, तत्थ भगवा सावकानं सिक्खापदं पञ्ञापेति—'यावजीवं अनतिक्कमनीयं'। विकालभोजनं, महाराज, लोकस्स अनवज्जं, तं जिनसासने वज्जं। भूतगामविकोपनं, महाराज, लोकस्स अनवज्जं, तं जिनसासने वज्जं। उदके हस्सधम्मं, महाराज, लोकस्स अनवज्जं, तं जिनसासने वज्जं। इति एवरूपानि, महाराज, जिनसासने वज्जानि, इदं वुच्चति पण्णत्तिवज्जं।

"यं किलेसं लोकवज्जं अभब्बो खीणासवो तं अज्झाचरितुं। यं किलेसं पण्णत्तिवज्जं तं अजानन्तो आपज्जेय्य। अविसयो, महाराज, एकच्चस्स अरहतो सब्बं जानितुं। न हि तस्स बलं अत्थि सब्बं जानितुं। अनञ्ञातं, महाराज, अरहतो इत्थिपुरिसानं नामं पि गोत्तं पि, मग्गो पि तस्स महिया अनञ्ञातो। विमुत्तिं येव, महाराज, एकच्चो अरहा जानेय्य, छळभिञ्ञो अरहा सकविसयं जानेय्य। सब्बञ्ञू, महाराज, तथागतो व सब्बं जानाती" ति।

"साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी" ति।

"भन्ते! आप लोग कहते हैं—प्रमाद करने के दो ही कारण हो सकते हैं—१. असावधानी या २. अज्ञता। क्या असावधानीवश अर्हत् दोष करता है?" "नहीं, महाराज।"

"भन्ते! तो अवश्य अपनी स्मृति से च्युत हो जाने के कारण ही वह दोष करता होगा?" "नहीं, महाराज! यद्यपि वह दोष करता है तो भी अपनी स्मृति से च्युत नहीं होता।" "भन्ते! यह कैसे हो सकता है?— कृपया कारण बताते हुए मुझे समझावें।"

६. "महाराज! दोष दो प्रकार के होते हैं—(१) निन्द्य कर्म करना और (२) भिक्षु-नियम के विरुद्ध आचरण। (१) निन्द्य कर्म क्या है? ये दश प्रकार के पाप—१. जीव-हिंसा, २. चोरी, ३. व्यभिचार, ४ झूठ, ५. चुगली खाना, ६. कठोरवाणी, ७. गप्प मारना, ८. लोभ, ९. द्वेष और १०. मिथ्यादृष्टि (=झूठी धारणा) निन्द्य कर्म हैं। (२) भिक्षु-नियम (प्रज्ञप्ति) के विरुद्ध आचरण करना क्या है? जो भिक्षु के लिये समझा जाता हो, किन्तु साधारण लोगों के लिये नहीं—वे नियम जिन्हें भगवान् ने भिक्षुओं को जन्म भर पालन करने को कहा है। महाराज! जैसे गृहस्थों के लिये दोपहर के बाद भोजन करने में कोई दोष नहीं, किन्तु भिक्षु ऐसा नहीं कर सकते। फूल-पत्तों को तोड़ने में गृहस्थ के लिये कोई दोष नहीं; किन्तु भिक्षु ऐसा नहीं कर पाते। जलक्रीड़ा करने में गृहस्थों के लिये कोई दोष नहीं, किन्तु भिक्षु ऐसा नहीं करते। महाराज! ऐसे ही, और भी कितनी ही बातें हैं जिनके करने से गृहस्थों के लिये तो कोई दोष नहीं होता, किन्तु भिक्षु नहीं कर सकते। महाराज! इन्हीं को भिक्षु-नियम के विरुद्ध आचरण करना कहते हैं।

"महाराज! जो लोकनिन्द्य अनुचित कर्म हैं उन दोषों को अर्हत् कभी नहीं कर सकता, किन्तु हाँ, कभी कभी विना जाने भिक्षु-नियम के विरुद्ध कर सकता है। सभी अर्हत् सभी बातों को नहीं जानते। उनका ऐसा बल नहीं है कि वे सभी कुछ जान लें। स्त्री-पुरुषों के नाम और गोत्र को भी अर्हत् नहीं जान सकता है। किसी विशेष मार्ग का भी उसे ज्ञान भले ही न हो, किन्तु अर्हत् मुक्ति को अवश्य जानता है। छह अभिज्ञाओं की सारी बातों को अर्हत् अवश्य जानता है। महाराज! सर्वज्ञ बुद्ध ही सब कुछ जानते हैं।"

४. लोके नत्थिभावपञ्हो

७. "भन्ते नागसेन, दिस्सन्ति लोके बुद्धा, दिस्सन्ति पच्चेकबुद्धा, दिस्सन्ति तथागतसावका, दिस्सन्ति चक्कवत्तिराजानो, दिस्सन्ति पदेसराजानो, दिस्सन्ति देवमनुस्सा, दिस्सन्ति सधना, दिस्सन्ति अधना, दिस्सन्ति सुगता, दिस्सन्ति दुग्गता, दिस्सति पुरिसस्स इत्थिलिङ्गं पातुभुतं, दिस्सति इत्थिया पुरिसलिङ्गं पातुभूतं, दिस्सति सुकतं दुक्कतं कम्मं, दिस्सन्ति कल्याणपापकानं कम्मानं विपाकूपभोगिनो सत्ता, अत्थि लोके सत्ता अण्डजा जलाबुजा संसेदजा ओपपातिका, अत्थि सत्ता अपदा दिपदा चतुप्पदा बहुप्पदा, अत्थि लोके यक्खा रक्खसा कुम्भण्डा असुरा दानवा गन्धब्बा पेता पिसाचा, अत्थि किन्नरा महोरगा नागा सुपण्णा सिद्धा विज्जाधरा, अत्थि हत्थी अस्सा गावो महिसा ओट्ठा गद्रभा अजा एळका मिगा सूकरा सीहा ब्यग्घा दीपी अच्छा कोका तरच्छा सोणा सिगाला, अत्थि बहुविधा सकुणा, अत्थि सुवण्णं रजतं मुत्ता मणि सङ्खो सिला पवाळं लोहितङ्को मसारगल्लं वेळुरियो वजिरं फलिकं काळलोहं तम्बलोहं वट्टलोहं कंसलोहं, अत्थि खोमं कोसेय्यं कप्पासिकं साणं भङ्गं कम्बलं, अत्थि सालि वीहि यवो कङ्गु कुद्रूसो वरको गोधूमो मुग्गो मासो तिलं कुलत्थं, अत्थि मूलगन्धो सारगन्धो फेग्गुगन्धो तचगन्धो पत्तगन्धो पुप्फगन्धो फलगन्धो सब्बगन्धो, अत्थि तिणलतागच्छरुक्खओसधिवनस्पतिनदीपब्बतसमुद्दमच्छकच्छपा, सब्बं लोके अत्थि। यं, भन्ते, लोके नत्थि तं मे कथेही" ति?

८. "तीणिमानि, महाराज, लोके नत्थि। कतमानि तीणि? सचेतना वा अचेतना वा अजरामरा लोके नत्थि, सङ्खारानं निच्चता नत्थि, परमत्थेन सत्तूपलद्धि नत्थि। इमानि खो, महाराज, तीणि लोके नत्थी" ति।

"ठीक है, भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं, मैं उसे मान लेता हूँ।"

४. नास्ति-भावविषयकप्रश्न—७. "भन्ते नागसेन! संसार में बुद्ध, प्रत्येकबुद्ध, बुद्ध के श्रावक, चक्रवर्ती राजा, छोटे-बड़े राजा, देवता, मनुष्य, धनी, निर्धन, सत्कर्म एवं दुष्कर्म करने वाले, पुरुष को स्त्री-चिह्न उत्पन्न होते, स्त्री को पुरुष-चिह्न उत्पन्न होते, अच्छे काम को बिगड़ते, पाप और पुण्य के फल भोगते हुए लोग देखे जाते हैं; संसार में कितने ही जीव अण्डज हैं, कितने जरायुज, कितने संस्वेदज और कितने ही औपपातिक; कितने ही जीव विना पैर वाले, कितने दो पैर वाले, कितने चार पैर वाले, कितने अनेक पैर वाले हैं, संसार में यक्ष, राक्षस, कुम्भाण्ड, असुर, दानव, गन्धर्व, प्रेत, पिशाच, किन्नर, बड़े-बड़े सर्प, नाग, गरुड़, सिद्ध विद्याधर भी हैं; हाथी, घोड़े, भैंस, ऊँट, गदहे, बकरे, भेड़, मृग, सूअर, सिंह, बाघ, चीते, भालू, भेड़िये, तरख, कुत्ते, सियार भी हैं; अनेक प्रकार के पक्षी भी हैं; सोना, चाँदी, मोती, मणि, शङ्ख, मैनसिल, मूँगा, लालमणि, मसारगल्ल (मणिरत्न), वैदूर्य (=हीरा), वज्र, स्फटिक, लोहा, ताँबा, पीतल, काँसा भी है; क्षोम वस्त्र, कौषेय, सूती, टाट, सन के कपड़े, कम्बल भी हैं; शाली, धान, जौ, प्रियङ्गु (कागुन), कुद्रुस (कोदो), वरका, गेहूँ, मूँग, उड़द, तिल, कुलत्थ भी हैं; मूल के गन्ध, सार (हीर) के गन्ध, पपड़ी के गन्ध, छाल के गन्ध, पत्तों के गन्ध, फूल के गन्ध, फल के गन्ध भी हैं तथा और भी तरह-तरह के गन्धद्रव्य हैं; घास, लता, तरु, वृक्ष औषधि, वनस्पति भी हैं; नदी, पर्वत, समुद्र भी हैं, मछली और कछुए भी हैं—संसार में सब कुछ है। भन्ते! जो संसार में नहीं है, उसे कृपा कर बतावें?"

८. "महाराज! संसार में तीन पदार्थ नहीं हैं। कौन से तीन? महाराज! १, संसार में अजर,

"साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी" ति।

५. अकम्मजादिपञ्हो

९. "भन्ते नागसेन, दिस्सन्ति लोके कम्मनिब्बत्ता, दिस्सन्ति हेतुनिब्बत्ता, दिस्सन्ति उतुनिब्बत्ता। यं लोके अकम्मजं अहेतुजं अनुतुजं तं मे कथेही" ति?

१०. "द्वेमे, महाराज, लोकस्मिं अकम्मजा अहेतुजा अनुतुजा। कतमे द्वे? आकासो, महाराज, अकम्मजो अहेतुजो अनुतुजो; निब्बानं, महाराज, अकम्मजं अहेतुजं—इमे खो, महाराज, द्वे अकम्मजा अहेतुजा अनुतुजा" ति।

"मा, भन्ते नागसेन, जिनवचनं मक्खेहि, मा अजानित्वा पञ्हं ब्याकरोही" ति? "किं नु खो, महाराज, अहं वदामि यं मं त्वं एवं वदेसि—'मा, भन्ते नागसेन, जिनवचनं मक्खेहि, मा अजानित्वा पञ्हं ब्याकरोही' " ति। "भन्ते नागसेन, युत्तमिदं ताव वत्तुं—'आकासो अकम्मजो अहेतुजो अनुतुजो' ति। अनेकसतेहि पन, भन्ते नागसेन, कारणेहि भगवता सावकानं निब्बानस्स सच्छिकिरियाय मग्गो अक्खातो, अथ च पन त्वं एवं वदेसि—'अहेतुजं निब्बानं" ति।

"सच्चं, महाराज, भगवता अनेकसतेहि कारणेहि सावकानं निब्बानस्स सच्छिकिरियाय मग्गो अक्खातो, न च पन निब्बानस्स उप्पादाय हेतु अक्खातो" ति।

"एत्थ मयं, भन्ते नागसेन, अन्धकारतो अन्धकारतरं पविसाम, वनतो वनतरं पविसाम,

---

अमर, सचेतन या अचेतन कोई भी नहीं है; २. संस्कारों की नित्यता नहीं है; और ३. परमार्थतः कोई जीव या आत्मा (वाली वस्तु) नहीं है। यों, महाराज! संसार में ये तीन पदार्थ नहीं हैं।"

"ठीक है, भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं, उसे मैं मान लेता हूँ।"

५. अकर्मजादिविषयकप्रश्न— ९. "भन्ते नागसेन! संसार में कुछ तो कर्म के कारण उत्पन्न होते देखे जाते हैं, कुछ हेतु के कारण और कुछ ऋतु के कारण। किन्तु भन्ते! जो इस संसार में न कर्म के कारण, न हेतु के कारण और न ऋतु के कारण उत्पन्न होता हो कृपया उसे बतावें?"

१०. "महाराज! संसार में ऐसे दो ही पदार्थ हैं, जो न कर्म के कारण न हेतु के कारण और न ऋतु के कारण उत्पन्न होते हैं। कौन से दो? महाराज! १. आकाश, जो न कर्म के कारण, न हेतु के कारण और न ऋतु के कारण उत्पन्न होता है और २. निर्वाण, जो न कर्म के कारण, न हेतु के कारण और न ऋतु के कारण उत्पन्न होता है। महाराज! ये दो पदार्थ न कर्म के कारण, न हेतु के कारण और न ऋतु के कारण उत्पन्न होते हैं।"

"भन्ते नागसेन! भगवान् बुद्ध की बात को न उलटें। विना समझें उत्तर न दें।" "महाराज! मैं ने क्या कहा कि आप यह उपालम्भ दे रहे हैं कि 'भन्ते नागसेन! भगवान् की बात को न उलटें। विना समझे उत्तर न दें'।" "भन्ते नागसेन! यह कहना ठीक हो सकता है कि आकाश न कर्म के कारण, न हेतु के कारण और न ऋतु के कारण उत्पन्न होता है। किन्तु, भन्ते! सैकड़ों तरह से भगवान् ने अपने श्रावकों को निर्वाण के साक्षात्कार का मार्ग बतलाया है। इस पर भी आप कैसे कह सकते हैं कि निर्वाण अहेतुक होता है?"

"महाराज! यह सत्य है कि भगवान् ने सैकड़ों तरह से अपने श्रावकों को निर्वाण के साक्षात्कार का मार्ग बतलाया है। किन्तु उन्होंने निर्वाण उत्पन्न करने वाला कोई हेतु नहीं कहा।"

गहनतो गहनतरं पविसाम, यत्र हि नाम निब्बानस्स सच्छिकिरियाय हेतु अत्थि, तस्स पन धम्मस्स उप्पादाय हेतु नत्थि। यदि, भन्ते नागसेन, निब्बानस्स सच्छिकिरियाय हेतु अत्थि, तेन हि निब्बानस्स उप्पादाय पि हेतु इच्छितब्बो ?

"यथा पन, भन्ते नागसेन, पुत्तस्स पिता अत्थि, तेन कारणेन पितुनो पि पिता इच्छितब्बो। यथा अन्तेवासिकस्स आचरियो अत्थि, तेन कारणेन आचरियस्स पि आचरियो इच्छितब्बो। यथा अङ्कुरस्स बीजं अत्थि, तेन कारणेन बीजस्स पि बीजं इच्छितब्बं; एवमेव खो, भन्ते नागसेन, यदि निब्बानस्स सच्छिकिरियाय हेतु अत्थि, तेन कारणेन निब्बानस्स उप्पादाय पि हेतु इच्छितब्बो ?

"यथा रुक्खस्स वा लताय वा अग्गे सति तेन कारणेन मज्झं पि अत्थि, मूलं पि अत्थि; एवमेव खो, भन्ते नागसेन, यदि निब्बानस्स सच्छिकिरियाय हेतु अत्थि, तेन कारणेन निब्बानस्स उप्पादाय पि हेतु इच्छितब्बो" ति ?

"अनुप्पादनीयं, महाराज, निब्बानं, तस्मा न निब्बानस्स उप्पादाय हेतु अक्खातो" ति।

११. "इङ्घ, भन्ते नागसेन, कारणं दस्सेत्वा कारणेन मं सञ्ञापेहि यथाहं जानेय्यं— 'निब्बानस्स सच्छिकिरियाय हेतु अत्थि, निब्बानस्स उप्पादाय हेतु नत्थी" ति।

१२. "तेन हि, महाराज, सक्कच्चं सोतं ओदह, साधुकं सुणोहि, वक्खामि तत्थ कारणं। सक्कुणेय्य, महाराज, पुरिसो पाकतिकेन बलेन इतो हिमवन्तं पब्बतराजं उपगन्तुं" ति ? "आम, भन्ते" ति। "सक्कुणेय्य पन, महाराज, पुरिसो पाकतिकेन बलेन हिमवन्तं पब्बतराजं इध आहरितुं" ति ? "न हि, भन्ते" ति। "एवमेव खो, महाराज, सक्का निब्बानस्स

"भन्ते नागसेन! यह तो और गड़बड़ हो गया। हम गहन अन्धकार में घिर गये! प्रश्न और भी जटिल हो गया! यदि निर्वाण को साक्षात् करने का कोई हेतु, है तो यह कैसे हो सकता है कि उसके उत्पन्न करने का हेतु न हो! यदि निर्वाण को साक्षात् करने का हेतु है तो उसके उत्पन्न करने का भी हेतु होना चाहिये?"

"भन्ते नागसेन! जैसे पुत्र का पिता है; इसलिये पिता का भी पिता होना चाहिये। शिष्य का गुरु होता है; इसलिये उसका भी गुरु होना चाहिये। अंकुर का बीज होता है; इसलिये उस बीज का भी कोई बीज होना चाहिये। भन्ते नागसेन! उसी तरह, यदि निर्वाण को साक्षात् करने का हेतु है तो उसका कोई उत्पादक हेतु भी होना चाहिये?"

"भन्ते नागसेन! वृक्ष या लता का यदि शीर्षभाग होता है तो उसके मध्यभाग और मूल भी होते हैं। भन्ते! उसी तरह, यदि निर्वाण को साक्षात् करने का हेतु है तो उसका कोई उत्पादक हेतु भी होना चाहिये?"

"महाराज! निर्वाण उत्पन्न नहीं किया जाता; इसी से उसका कोई हेतु भी नहीं कहा गया है।"

११. "अच्छा, तो भन्ते नागसेन! कारण दे कर मुझे समझावें कि कैसे निर्वाण को साक्षात् करने के हेतु होते हुए भी उसके उत्पन्न करने के हेतु नहीं होते?"

१२. "बहुत अच्छा! आप सावधानी से ध्यान लगा कर सुनें, मैं उसका कारण बता रहा हूँ– महाराज! कोई आदमी अपनी प्राकृतिक शक्ति से यहाँ से पर्वतराज हिमालय जा सकता है?" "हाँ, भन्ते! जा सकता है।" "महाराज! किन्तु वह अपनी प्राकृतिक शक्ति से पर्वतराज हिमालय को यहाँ ला भी

सच्छिकिरियाय मग्गो अक्खातुं। न सक्का निब्बानस्स उप्पादाय हेतु दस्सेतुं। सक्कुणेय्य, महाराज, पुरिसो पाकतिकेन बलेन महासमुद्दं नावाय उत्तरित्वा पारिमतीरं गन्तुं'' ति ? ''आम, भन्ते'' ति। ''सक्कुणेय्य पन सो, महाराज, पुरिसो पाकतिकेन बलेन महासमुद्दस्स पारिमतीरं इध आहरितुं'' ति ? ''नहि, भन्ते'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, सक्का निब्बानस्स सच्छिकिरियाय मग्गो अक्खातुं, न सक्का निब्बानस्स उप्पादाय हेतुं दस्सेतुं। किं कारणं ? असङ्खतत्ता धम्मस्सा'' ति।

''असङ्खतं, भन्ते नागसेन, निब्बानं'' ति ? ''आम, महाराज, असङ्खतं निब्बानं, न केहि पि कतं। निब्बानं, महाराज, न वत्तब्बं— 'उप्पन्नं' ति वा 'अनुप्पन्नं' ति वा 'उप्पादनीयं' ति वा 'अतीतं' ति वा 'अनागतं' ति वा 'पच्चुप्पन्नं' ति वा 'चक्खुविञ्ञेय्यं' ति वा 'घानविञ्ञेय्यं' ति वा 'सोतविञ्ञेय्यं' ति वा 'जिव्हाविञ्ञेय्यं' ति वा 'कायविञ्ञेय्यं' ति वा'' ति। ''यदि, भन्ते नागसेन, निब्बानं न उप्पन्नं न अनुप्पन्नं न उप्पादनीयं न अतीतं न अनागतं न पच्चुप्पन्नं न चक्खुविञ्ञेय्यं न सोतविञ्ञेय्यं न घानविञ्ञेय्यं न जिव्हाविञ्ञेय्यं न कायविञ्ञेयं; तेन हि, भन्ते नागसेन, तुम्हे नत्थिधम्मं निब्बानं अपदिसथ—'नत्थि निब्बानं''' ति ? ''अत्थि, महाराज, निब्बानं। मनोविञ्ञेय्यं निब्बानं, विसुद्धेन मानसेन पणीतेन उजुकेन अनावरणेन निरामिसेन सम्मापटिपन्नो अरियसावको निब्बानं पस्सती'' ति।

''कीदिसं पन तं, भन्ते, निब्बानं, यं तं ओपम्मेहि आदीपनीयं कारणेहि मं सञ्ञापेहि, यथा अत्थि धम्मं ओपम्मेहि आदीपनीयं'' ति। ''अत्थि, महाराज, वातो नामा'' ति ? ''आम, भन्ते'' ति। ''इङ्घ, महाराज, वातं दस्सेहि वण्णतो वा सण्ठानतो वा अणुं वा थूलं वा दीघं वा

सकता है क्या?'' ''नहीं, भन्ते! नहीं ला सकता।'' ''महाराज! इसी तरह, निर्वाण को साक्षात् करने का मार्ग तो बताया जा सकता है, किन्तु उसका उत्पादक हेतु कोई नहीं दिखाया जा सकता।''

''महाराज! क्या कोई आदमी अपनी साधारण शक्ति से नाव पर चढ़ कर समुद्र के पार जा सकता है?'' ''हाँ भन्ते! पार जा सकता है।'' ''महाराज! किन्तु क्या वह अपनी साधारण शक्ति से उस पार को इस पार ले आ सकता है?'' ''नहीं, भन्ते!'' ''बस, ठीक वैसे ही, निर्वाण को साक्षात् करने का मार्ग तो बताया जा सकता है, किन्तु उसका उत्पादक हेतु कोई नहीं दिखा सकता।'' ''क्यों नहीं?'' ''क्योंकि निर्वाण निर्गुण (असंस्कृत) है।'' ''भन्ते! निर्वाण निर्गुण है?'' ''हाँ, महाराज! निर्वाण निर्गुण है, किसी ने इसे बनाया नहीं। निर्वाण के साथ उत्पन्न होने और न उत्पन्न होने का प्रश्न नहीं उठता। वह उत्पन्न किया जा सकता है अथवा नहीं? यह प्रश्न भी नहीं। निर्वाण वर्तमान, भूत और भविष्यत् तीनों कालों के परे है। निर्वाण न आँख से देखा जा सकता है, न कान से सुना जा सकता है, न नाक से सूँघा जा सकता है, न जीभ से चखा जा सकता है और न शरीर से छूआ ही जा सकता है।'' ''भन्ते! इस तरह आप तो यही बता रहे हैं कि निर्वाण कुछ नहीं है। वस्तुतः निर्वाण कुछ है ही नहीं?'' ''महाराज! निर्वाण है, निर्वाण मन से जाना जा सकता है! अर्हत्पद पा कर भिक्षु विशुद्ध, प्रणीत, ऋजु तथा आवरणों और सांसारिक कामनाओं से रहित मन से निर्वाण देखता है।''

''भन्ते! वह निर्वाण कैसा है? उपमा और कारण दे कर स्पष्ट समझावें!'' ''महाराज! वायु नाम की कोई वस्तु है?'' ''हाँ, भन्ते! है।'' ''महाराज! कृपया उसे मुझको दिखा दें। उसके रंग और आकार कैसे हैं? वह क्या पतली है या मोटी? क्या छोटी है या बड़ी?'' ''भन्ते! वायु को ऐसे नहीं दिखाया जा

रस्सं वा'' ति? ''न सक्का, भन्ते नागसेन, वातो उपदस्सयितुं, न सो वातो हत्थग्गहणं वा निम्मद्दनं वा उपेति, अपि च अत्थि सो वातो'' ति। ''यदि, महाराज, न सक्का वातो उपदस्सयितुं, तेन हि नत्थि वातो'' ति? ''जानामहं, भन्ते नागसेन; 'वातो अत्थी' ति मे हदये अनुपविट्ठं, न चाहं सक्कोमि वातं उपदस्सयितुं'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, अत्थि निब्बानं, न च सक्का निब्बानं उपदस्सयितुं वण्णेन वा सण्ठानेन वा'' ति।

''साधु, भन्ते नागसेन, सूपदस्सितं ओपम्मं, सुनिद्दिट्ठं कारणं, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामि—'अत्थि निब्बानं' '' ति।

६. कम्मजादिपञ्हो

१३. ''भन्ते नागसेन, कतमे एत्थ कम्मजा, कतमे हेतुजा, कतमे उतुजा, कतमे न कम्मजा, न हेतुजा न उतुजा'' ति?

१४. ''ये केचि, महाराज, सत्ता सचेतना सब्बे ते कम्मजा, अग्गि च सब्बानि च बीजजातानि हेतुजानि, पठवी च पब्बता च उदकं च वातो च सब्बे ते उतुजा, आकासो च निब्बानं च—इमे द्वे अकम्मजा अहेतुजा अनुतुजा। निब्बानं पन, महाराज, न वत्तब्बं कम्मजं ति वा हेतुजं ति वा उतुजं ति वा, उप्पन्नं ति वा अनुप्पन्नं ति वा, उप्पादनीयं ति वा अतीतं ति वा, अनागतं ति वा पच्चुप्पन्नं ति वा, चक्खुविञ्ञेय्यं ति वा सोतविञ्ञेय्यं ति वा घानविञ्ञेय्यं ति वा जिव्हाविञ्ञेय्यं ति वा कायविञ्ञेय्यं ति वा। अपि च, महाराज, मनोविञ्ञेय्यं निब्बानं यं सो सम्मापटिपन्नो अरियसावको विसुद्धेन ञाणेन पस्सती'' ति।

सकता। वह ऐसी चीज नहीं है कि हाथ में दबाई जा सके तो भी वह होती अवश्य है।'' ''महाराज! यदि आप वायु को उस तरह नहीं दिखा पाते तो वैसी कोई वस्तु ही नहीं है?'' ''भन्ते नागसेन! मैं जानता हूँ, वायु कोई वस्तु है। मुझे पूरा विश्वास है कि वायु नाम की वस्तु है, किन्तु मैं उसे आप को दिखा नहीं सकता।'' ''महाराज! वैसे ही निर्वाण है, किन्तु उसे रंग या रूप से दिखाया नहीं जा सकता।''

''ठीक है, भन्ते नागसेन! मैं समझ गया कि निर्वाण है।''

६. उत्पत्ति-कारणविषयकप्रश्न— १३. ''भन्ते नागसेन! इस लोक में कौन कर्म के कारण उत्पन्न होते हैं, कौन हेतु के कारण और कौन ऋतु के कारण ? और कौन न कर्म के कारण उत्पन्न होते हैं, न हेतु के कारण और न ऋतु के कारण?''

१४. ''महाराज! जितने सचेतन जीव हैं, सभी कर्म के कारण उत्पन्न होते हैं। अग्नि और बीज से उगने वाले हेतु से जन्य होते हैं। पृथ्वी, पर्वत, जल, वायु इत्यादि ऋतु के कारण उत्पन्न होते हैं। आकाश और निर्वाण न कर्म के कारण उत्पन्न होते हैं, न हेतु के कारण और न ऋतु के कारण। महाराज! यह नहीं कहा जा सकता है कि निर्वाण कर्म से उत्पन्न होता है, न यह कि हेतु से उत्पन्न होता है और न यही कि ऋतु से उत्पन्न होता है। न यह कहा जा सकता है कि निर्वाण उत्पन्न होता है, न यह कि निर्वाण नहीं उत्पन्न होता और न यही कि निर्वाण उत्पन्न किया जा सकता है। न यह कहा जा सकता है कि निर्वाण भूत काल में था, न यह कि वर्तमान काल में है और न यही कि भविष्यत् काल में होगा। निर्वाण न आँख से देखा जा सकता है, न कान से सुना जा सकता है, न नाक से सूँघा जा सकता है, न जीभ से चखा जा सकता है और न शरीर से स्पर्श ही किया जा सकता है। महाराज! निर्वाण तो मन से ही जाना जा सकता है। अर्हत्पद पाकर आर्यश्रावक विशुद्ध ज्ञान से निर्वाण को साक्षात् करता है।''

"रमणीयो, भन्ते नागसेन, पञ्हो सुविनिच्छितो निस्संसयो एकन्तगतो, विमति उपच्छिन्ना त्वं गणिवरपवरमासज्जा" ति।

७. यक्खपञ्हो

१५. "भन्ते नागसेन, अत्थि लोके यक्खा नामा" ति? "आम, महाराज, अत्थि लोके यक्खा नामा" ति। "चवन्ति पन ते, भन्ते, यक्खा तम्हा योनिया" ति। "आम, महाराज, चवन्ति ते तम्हा योनिया" ति। "किस्स पन, भन्ते नागसेन, तेसं मतानं यक्खानं सरीरं न दिस्सति, कुणपगन्धो पि न वायती" ति?

१६. "दिस्सति, महाराज, मतानं यक्खानं सरीरं, कुणपगन्धो पि तेसं वायति। मतानं, महाराज, यक्खानं सरीरं, कुणपगन्धो वा दिस्सति, किमिवण्णेन वा दिस्सति, किपिल्लिकवण्णेन वा दिस्सति, पटङ्गवण्णेन वा दिस्सति, अहिवण्णेन वा दिस्सति, विच्छिकवण्णेन वा दिस्सति, सतपदिवण्णेन वा दिस्सति, दिजवण्णेन वा दिस्सति, मिगवण्णेन वा दिस्सती" ति।

"को हि, भन्ते नागसेन, अञ्ञो इदं पञ्हं पुट्ठो विस्सज्जेय्य अञ्ञत्र तवादिसेन बुद्धिमता" ति!

८. अनवसेससिक्खापदपञ्हो

१७. "भन्ते नागसेन, ये ते अहेसुं तिकिच्छकानं पुब्बका आचरिया, सेय्यथीदं— नारदो, धम्मन्तरी, अङ्गीरसो, कपिलो, कण्डरग्गि, सामो, अतुलो, पुब्बकच्चायनो। सब्बे पेते आचरिया सकिं येव रोगुप्पत्तिं च निदानं च सभावं च समुट्ठानं च तिकिच्छं च किरियं च सिद्धासिद्धं च सब्बं तं निरवसेसं जानित्वा— 'इमस्मिं काये एत्तका रोगा उप्पज्जिस्सन्ती' ति एकप्पहारेन कलापग्गाहं करित्वा सुत्तं बन्धिसु। सब्बञ्ञुनो एते सब्बे। किस्स पन तथागतो सब्बञ्ञू समानो अनागतं किरियं बुद्धञाणेन जानित्वा— 'एत्तके नाम वत्थुस्मिं एत्तकं नाम सिक्खापदं पञ्ञापेतब्बं भविस्सती' ति परिच्छिन्दित्वा अनवसेसतो सिक्खापदं न पञ्ञापेसि?

"भन्ते! इस मनोहर प्रश्न को आप ने अच्छी तरह उत्तरित कर दिया। संशय को हटा कर बात सर्वथा स्पष्ट कर दी। आप जैसे गणाचार्यश्रेष्ठ के पास आ कर मेरी यह शङ्का मिट गयी।"

७. यक्षविषयकप्रश्न— १५. "भन्ते! क्या वस्तुतः यक्ष होते हैं?" "हाँ महाराज! यक्ष होते हैं।" "भन्ते! यक्ष लोग उस योनि से क्या मर भी जाते हैं?" "हाँ, महाराज! यक्ष लोग उस योनि से मर भी जाते हैं।" "भन्ते! तो उनके शव क्यों नहीं देखने में आते? उनके मृत शरीर की दुर्गन्ध भी कभी क्यों नहीं आती?"

१६. "महाराज! मृत यक्ष के ये शव देखने में आते हैं, उनकी दुर्गन्ध भी आती है। महाराज! मृत यक्ष के शरीर कीड़ों के रूप में, पिल्लू के रूप में, चींटी और पतङ्गों के रूप में, साँप और विच्छू तथा कानखजूरे के रूप में, चिड़ियों और जंगली जानवरों के रूप में देखे जाते हैं।"

"भन्ते! आप जैसे बुद्धिमान् को छोड़ भला और कौन दूसरा इस प्रश्न का उत्तर दे सकता था!"

८. समग्रशिक्षापदविषयकप्रश्न— १७. "भन्ते! वैद्यक शास्त्र के जो पुराने आचार्य हुए हैं— नारद, धन्वन्तरि, अङ्गीरस, कपिल, कण्डराग्नि, साम, अतुल और पूर्वकात्यायन— सभी ने स्वयं अनुभव कर शास्त्र लिखे थे; क्योंकि वे सर्वज्ञ थे। भन्ते! किन्तु भगवान् भी तो सर्वज्ञ थे। अपनी सर्वज्ञता से वे आगे पीछे की बातों को ठीक–ठीक जान लेते थे। सो उन्होंने पहले ही एक बार में विनय के सभी नियमों को क्यों नहीं बता दिया, जो आगे चल कर उचित स्थान पर चरितार्थ किये जाते? क्यों रह–रह कर जब–

उप्पन्नुप्पन्ने वत्थुस्मिं अयसे पाकटे, दोसे वित्थारिते पुथुगते, उज्झायन्तेसु मनुस्सेसु, तस्मिं तस्मिं काले सावकानं सिक्खापदं पञ्ञापेसी'' ति ?

१८. ''ञातमेतं, महाराज, तथागतस्स—'इमस्मिं समये इमेसु मनुस्सेसु साधिकं दियड्ढसिक्खापदसतं पञ्ञापेतब्बं भविस्सती' ति। अपि च तथागतस्स एवं अहोसि—'सचे खो अहं साधिकं दियड्ढसिक्खापदसतं एकप्पहारं पञ्ञापेस्सामि, महाजनो सन्तासमापज्जिस्सति— बहुकं इध रक्खितब्बं, दुक्करं वत, भो, गोतमस्स सासने पब्बजितुं ति, पब्बजितुकामा पि न पब्बजिस्सन्ति, वचनं च मे न सद्दहिस्सन्ति, असद्दहन्ता ते मनुस्सा अपायगामिनो भविस्सन्ति। उप्पन्नुप्पन्नवत्थुस्मिं धम्मदेसनाय विञ्ञापेत्वा पाकटे दोसे सिक्खापदं पञ्ञापेस्सामी' '' ति।

''अच्छरियं, भन्ते नागसेन, बुद्धानं, अब्भुतं, भन्ते नागसेन, बुद्धानं; याव महन्तं तथागतस्स सब्बञ्ञुतञाणं। एवमेतं, भन्ते नागसेन, सुनिद्दिट्ठो एसो अत्थो तथागतेन, 'बहुकं इध रक्खितब्बं' ति सुत्वा सत्तानं सन्तासो उप्पज्जेय्य, एको पि जिनसासने न पब्बजेय्य, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी'' ति।

९. सुरियतपनपञ्हो

१९. ''भन्ते नागसेन, अयं सुरियो सब्बकालं कठिनं तपति, उदाहु किञ्चि कालं मन्दं तपती'' ति ? ''सब्बकालं, महाराज, सुरियो कठिनं तपति, न किञ्चि कालं मन्दं तपती'' ति। ''यदि, भन्ते नागसेन, सुरियो सब्बकालं कठिनं तपति, किस्स पन अप्पेकदा सुरियो कठिनं तपति, अप्पेकदा मन्दं तपती'' ति ?

२०. ''चत्तारो मे, महाराज, सुरियस्स रोगा, येसं अञ्ञतरेन रोगेन परिपीळितो सुरियो

जब प्रसङ्ग आता गया तब-तब ही नियम बनाते गये? क्यों भिक्षुओं में पाप फैलने देने की प्रतीक्षा की? क्यों लोगों को उद्विग्न और दुःखी होने का अवसर दिया?''

१८. ''महाराज! भगवान् को ज्ञात था— 'जैसे-जैसे समय आयगा मुझे ढाई सौ विनय (जो कि वर्तमान में स्थविरवाद के अनुसार २२७ ही दिखायी देते हैं) बनाने पड़ेंगे। उन्होंने देखा कि 'यदि पहले ही एक बार मैं समग्र नियम व्यवस्थित कर दूँ तो लोग देखकर घबरा जायँगे। जो भिक्षु बनना चाहते हैं, वे भी हिचक जायेंगे और कहेंगे— ओह! इतने नियमों का पालन करना होगा! श्रमण गौतम के शासन में भिक्षु बनना कितना कठिन है!! उनका दिल नहीं जमेगा। और, वे धर्म-ग्रहण न कर बार-बार जन्म लेकर दुःख भोगेंगे। इसलिये, जैसे-जैसे समय आयगा, दोष प्रकट होने पर ही धर्म का उपदेश करते हुए नियम बनाऊँगा'।''

''भन्ते! आश्चर्य है, अद्भुत है, भन्ते! भगवान् की बातें ऐसी ही होती हैं। उनकी सर्वज्ञता कितनी ऊँची है। भन्ते नागसेन! ऐसी ही बात है। बात समझ में आ गयी। यह ठीक है कि पहले ही सभी नियमों को सुन कर लोग डर जाते! कोई भिक्षु बनने में उत्साह नहीं करता। मैं इसे मान लेता हूँ।''

९. सूर्यतापविषयकप्रश्न— १९. ''भन्ते नागसेन! क्या सूर्य सदैव धधकता रहता है या कभी मन्द भी पड़ता है?'' ''महाराज! सूर्य सदैव धधकता रहता है, कभी मन्द नहीं पड़ता।'' ''यदि सूर्य सदैव धधकता रहता है तो यह कैसी बात है कि कभी उसकी गर्मी बढ़ जाती है और कभी घट जाती है?''

२०. ''महाराज! सूर्य में चार दोष (अन्तराय) होते हैं। इनमें किसी एक के आने से इसकी गर्मी

मन्दं तपति। कतमे चत्तारो? अब्भं, महाराज, सुरियस्स रोगो, तेन रोगेन पटिपीळितो सुरियो मन्दं तपति। महिका, महाराज, सुरियस्स रोगो, तेन रोगेन पटिपीळितो सुरियो मन्दं तपति। मेघो, महाराज, सुरियस्स रोगो, तेन कारणेन पटिपीळितो सुरियो मन्दं तपति। राहु, महाराज, सुरियस्स रोगो, तेन रोगेन पटिपीळितो सुरियो मन्दं तपति। इमे खो, महाराज, सुरियस्स चत्तारो रोगा, तेसं अञ्ञतरेन पटिपीळितो सुरियो मन्दं तपती'' ति।

''अच्छरियं, भन्ते नागसेन! अब्भुतं, भन्ते नागसेन, सुरियस्स पि ताव तेजोसम्पन्नस्स रोगो उप्पज्जिस्सति, किमङ्ग, अञ्ञेसं सत्तानं! नत्थि, भन्ते, एसा विभत्ति अञ्ञस्स अञ्ञत्र तवादिसेन बुद्धिमता'' ति।

१०. कठिनतपनपञ्हो

२१. ''भन्ते नागसेन, किस्स हेमन्ते सुरियो कठिनं तपति, नो तथा गिम्हे'' ति?

२२. ''गिम्हे, महाराज, अनुपहतं होति रजोजल्लं, वातक्खुभिता रेणू गगनानुगता होन्ति, आकासे पि अब्भा सुबहुला होन्ति, महावातो च अधिमत्तं वायति। ते सब्बे नानाकुला समायुता सुरियरंसियो पिदहन्ति। तेन गिम्हे सुरियो मन्दं तपति। हेमन्ते पन, महाराज, हेट्ठा पठवी निब्बुता होति, उपरिमहामेघो उपट्ठितो होति, उपसन्तं होति रजोजल्लं, रेणू च सन्तसन्तं गगने चरति, विगतवलाहको च होति आकासो, वातो च मन्दमन्दं वायति। एतेसं उपरतिया विसुद्धा होन्ति सुरियरंसियो, उपघातविमुत्तस्स सुरियस्स तापो अतिविय तपति। इदमेत्थ, महाराज, कारणं, येन कारणेन सुरियो हेमन्ते कठिनं तपति, ना तथा गिम्हे'' ति।

''सब्बीतिमुत्तो, भन्ते, सुरियो कठिनं तपति, मेघादिसहगतो कठिनं न तपती'' ति॥

(इमस्मिं वग्गे दस पञ्हा) *दुतियो निप्पपञ्चवग्गो निट्ठितो॥*

कम हो जाती है। वे चार दोष कौन से हैं? महाराज! १. पहला दोष है बादल का छा जाना, जिसके होने से सूर्य की गर्मी कम हो जाती है, २. दूसरा दोष है कुहरे का छा जाना, जिसके होने से सूर्य की गर्मी कम हो जाती है, ३. तीसरा दोष धूली या धूयें का छा जाना, जिसके होने से सूर्य की गर्मी कम हो जाती है, ४. चौथा दोष राहु का लग जाना, जिसके होने से सूर्य की गर्मी कम हो जाती है। महाराज! सूर्य में यही चार दोष हुआ करते हैं। इनमें एक के भी होने से इसकी उष्णता कम हो जाती है।"

"भन्ते नागसेन! आश्चर्य है! अद्भुत है कि सूर्य जैसे तेजस्वी में भी जब दोष आ जाते हैं, तो दूसरे जीवों की बात ही क्या! भन्ते! आप जैसे बुद्धिमान् को छोड़ इसे दूसरा कोई नहीं समझा पाता।"

१०. कठिनसूर्यतापविषयकप्रश्न— २१. "भन्ते नागसेन! ग्रीष्म में सूर्य की चमक जैसी नहीं होती, वैसी हेमन्त में क्यों होती है?"

२२. "महाराज! ग्रीष्म काल में आकाश धूल (गर्द) से भरा रहता है, आँधी से पृथ्वी आकाश एक हो जाते हैं, आकाश में बादल छाये रहते हैं, दिन रात हवा चलती है। ये सभी मिलकर सूर्य की किरणों को रोके रहते हैं। महाराज! इसी से ग्रीष्म में सूर्य की चमक कम रहती है। महाराज! और हेमन्त काल में पृथ्वी शान्त रहती है। आकाश के बादल भी लुप्त रहते हैं। धूल और गर्द का पता नहीं रहता है। रेणु आकाश में धीरे–धीरे उड़ती रहती है। आकाश साफ रहता है। हवा मन्द मन्द बहती है। महाराज! इन बातों से सूर्य की किरणें अत्यधिक चमकती हैं और गर्म भी होती हैं। महाराज! यही कारण है कि ग्रीष्म में सूर्य की चमक वैसी नहीं होती जैसी हेमन्त में होती है।"

३. वेस्सन्तरवग्गो

१. वेस्सन्तरपञ्हो

१. "भन्ते नागसेन, सब्बेव बोधिसत्ता पुत्तदारं देन्ति, उदाहु वेस्सन्तरेनेव रञ्जा पुत्तदारं दिन्नं" ति? "सब्बे पि, महाराज, बोधिसत्ता पुत्तदारं देन्ति, न वेस्सन्तरेनेव रञ्जा पुत्तदारं दिन्नं" ति। "अपि नु खो, भन्ते नागसेन, तेसं अनुमतेन देन्ती" ति? "भरिया, महाराज, अनुमता, दारका पन बालताय विलपिंसु। यदि ते अत्थतो जानेय्युं, ते पि अनुमोदेय्युं, न ते विलपेय्युं" ति।

"दुक्करं, भन्ते नागसेन, बोधिसत्तेन कतं, यं सो अत्तनो ओरसे पिये पुत्ते ब्राह्मणस्स दानत्थाय अदासि। (१)

"इदं पि दुतियं दुक्करतो दुक्करतरं, यं सो अत्तनो ओरसे पिये पुत्ते बालके तरुणके लताय बन्धित्वा तेन ब्राह्मणेन लताय अनुमज्जियन्ते दिस्वा अज्झुपेक्खि। (२)

"इदं पि ततियं दुक्करतो दुक्करतरं, यं सो सकेन बलेन बन्धना मुञ्चित्वा आगते दारके सारज्जमुपगते पुनदेव लताय बन्धित्वा अदासि। (३)

"इदं पि चतुत्थं दुक्करतो दुक्करतरं, यं सो दारके—'अयं खो, तात, यक्खो, खादितुं नेति अम्हे' ति विलपन्ते— 'मा भायित्था' ति न अस्सासेसि। (४)

"इदं पि पञ्चमं दुक्करतो दुक्करतरं, यं सो जालिस्स कुमारस्स रुदमानस्स पादेसु

"ठीक है, भन्ते नागसेन! सभी बाधाओं से रहित होने के कारण हेमन्त में सूर्य की चमक अधिक होती है; और धूल, मेघ इत्यादि से आकाश के आवृत रहने के कारण ग्रीष्म में चमक कम हो जाती है।।"

(इस वर्ग में दस प्रश्न हैं।) *द्वितीय निष्प्रपञ्चवर्ग समाप्त।।*

३. वेस्सन्तरवर्ग

१. वेस्सन्तरप्रश्न— १. "भन्ते नागसेन! क्या सभी बोधिसत्त्व अपनी स्त्री और बच्चों को दान कर देते हैं या केवल वेस्सन्तर राजा ने ही किया था?" "महाराज! सभी बोधिसत्व अपनी स्त्री और बच्चों को दान कर देते हैं, केवल वेस्सन्तर राजा ने ही नहीं किया था।" "भन्ते! क्या वे उन (स्त्री और बच्चों) की सम्पत्ति लेकर उन्हें दान करते हैं या विना सम्पति के ही?" "महाराज! उनकी स्त्री तो सहमत हो गयी थी, किन्तु बच्चे अबोध होने के कारण बिलखने लगे थे। यदि उनको समझ रहती तो वे भी सहमत हो जाते।"

"भन्ते नागसेन! बोधिसत्त्व ने बड़ा दुष्कर कार्य किया, जो अपने पैदा किये प्रिय बच्चों को ही ब्राह्मण का अनुचर बनने के लिये दे दिया। (१)

"इससे भी बढ़कर दूसरा दुष्कर कार्य तो उन्होंने यह किया था कि अपने पैदा किये उन कोमल सुकुमार बच्चों को जंगल की लता से बाँधकर ब्राह्मण को दे दिया; और लता का छोर पकड़ कर ब्राह्मण के द्वारा बच्चों को खींचे जाते देख कर भी मन में कुछ विकार न आने दिया। (२)

"इससे बढ़कर तीसरा दुष्कर कार्य उन्होंने यह किया था कि अपने बल से बन्धन तोड़कर जब बच्चे भाग आये तो फिर बाँध कर लौटा दिया। (३)

"इससे बढ़कर चौथा दुष्कर कार्य उन्होंने यह किया कि 'पिता जी! यह यक्ष हम लोगों को खा जाने के लिये ले जा रहा है'— कहकर रोते हुए उन बच्चों को इतना भी आश्वासन नहीं दिया कि 'मत डरो'। (४)

निपतित्वा— 'अलं, तात, कण्हाजिनं निवत्तेहि, अहमेव गच्छामि यक्खेन सह, खादतु मं यक्खो' ति याचमानस्स एवं न सम्पटिच्छि। (५)

"इदं पि छट्ठं दुक्करतो दुक्करतरं, यं सो जालिकुमारस्स— 'पासाणसमं नून ते, तात, हदयं यं त्वं अम्हाकं दुक्खितानं पेक्खमानो निम्मनुस्सके ब्रहारञ्ञे यक्खेन नीयमाने न निवारेसी' ति विलपमानस्स कारुञ्ञं नाकासि। (६)

"इदं पि सत्तमं दुक्करतो दुक्करतरं, यं तस्स रूळारूळस्स भीमभीमस्स नीते दारके अदस्सनं गमिते न फलि हदयं सतधा वा सहस्सधा वा। पुञ्ञकामेन मनुजेन किं परदुक्खापनेन! ननु नाम सकदानं दातब्बं होती" ति। (७)

२. "दुक्करस्स, महाराज, कतत्ता बोधिसत्तस्स कित्तिसद्दो दससहस्सिया लोकधातुया सदेवमनुस्सेसु अब्भुग्गतो। देवा देवभवने पकित्तेन्ति, असुरा असुरभवने पकित्तेन्ति, गरुळा गरुळभवने पकित्तेन्ति, नागा नागभवने पकित्तेन्ति, यक्खा यक्खभवने पकित्तेन्ति। अनुपुब्बेन तस्स कित्तिसद्दो परम्पराय अज्जेतरहि इध अम्हाकं समयं अनुप्पत्तो, तं मयं दानं पकित्तेन्ता विकोपेन्ता निसिन्ना— 'सुदिन्नं उदाहु दुद्दिन्नं' ति। सो खो पनायं, महाराज, कित्तिसद्दो निपुणानं विञ्ञूनं विदूनं विभावीनं बोधिसत्तानं दस गुणे अनुदस्सति, कतमे दस? अगेधता, निरालयता, चागो, पहानं, अपुनरावत्तिता, सुखुमता, महन्तता, दुरनुबोधता, दुल्लभता, असदिसता बुद्धधम्मस्स। सो खो पनायं, महाराज, कित्तिसद्दो निपुणानं विञ्ञूनं विदूनं विभावीनं बोधिसत्तानं इमे दस गुणे अनुदस्सती" ति।

"इससे भी बढ़कर पाँचवा दुष्कर कार्य उन्होंने यह किया कि पैरों पर रोते हुये गिरकर जालिकुमार की इस विनति को भी 'पिता जी! मैं इस यक्ष के साथ जाता हूँ, मुझे भले ही खा ले, किन्तु कृष्णाजिना (मेरी छोटी बहन) को छोड़ दे'—नहीं माना। (५)

"इससे भी बढ़कर छठा दुष्कर कार्य उन्होंने यह किया कि जब जालि कुमार रो–रोकर यह कह रहा था– 'पिता जी! क्या आपका हृदय पत्थर का है कि हम लोगों को इस यक्ष द्वारा घोर जंगल में ले जाते देखकर भी आप नहीं बचा रहे'— तो भी अपने मन में कोई मोह न आने दिया। (६)

"और सातवाँ सबसे बढ़कर दुष्कर कार्य उन्होंने यह किया कि उस ब्राह्मण के निर्दयतापूर्वक बच्चों को घसीटते हुए आँखों से दूर ले जाते देख कर भी उनका हृदय सौ या हजार टुकड़ों में टूट नहीं गया। भन्ते! क्या इस तरह अपने पुण्य कमाने के लिये दूसरों को सताना अच्छा है? इससे तो अच्छा था कि वे स्वयं को ही दे डालते?" (७)

२. "महाराज! बोधिसत्त्व के इस दुष्कर कार्य करने से उनकी कीर्ति दस हजार लोक के देवताओं और मनुष्यों में फैल गयी थी। देवता देवलोक में उनकी प्रशंसा करने लगे; असुर असुरलोक में, गरुड़ गरुड़लोक में, नाग नागलोक में, यक्ष यक्षलोक में उनकी प्रशंसा करने लगे। इसी परम्परा में उनकी कीर्ति आज हम लोगों तक भी पहुँची हुई है, जिससे इस बात की चर्चा हो रही है कि उनका यह दान उचित था या नहीं! महाराज! इस कीर्ति से उन निपुण, विज्ञ और शान्त चित्त वाले बोधिसत्त्वों के दश गुण जाने जाते हैं। कौन से दश गुण? महाराज! १. निर्लोभ, २. सांसारिक वस्तुओं से प्रेम न करना, ३. त्याग, ४. वैराग्य, ५. सङ्कल्प से न गिर जाना, ६. सूक्ष्मता, ७. महत्ता, ८. दुरनुबोधता, ९. दुर्लभता और १०. बुद्ध–धर्म की असदृशता। इस कीर्ति से उन निपुण, विज्ञ और शान्त चित्त वाले बोधिसत्त्वों के ये दश गुण जाने जाते हैं।"

"भन्ते नागसेन, यो परं दुक्खापेत्वा दानं देति, अपि नु तं दानं सुखविपाकं होति सग्गसंवत्तनिकं" ति? "आम, महाराज, किं वत्तब्बं" ति। "इध, भन्ते नागसेन, कारणं उपदस्सेही" ति? "इध, महाराज, कोचि समणो वा ब्राह्मणो वा सीलवा होति कल्याणधम्मो, सो भवेय्य पक्खहतो वा पीठसप्पि वा अञ्ञतरं वा ब्याधिं आपन्नो। तमेनं यो कोचि पुञ्ञकामो यानं आरोपेत्वा पत्थितं देसमनुपापेय्य। अपि नु खो, महाराज, तस्स पुरिसस्स ततोनिदानं किञ्चि सुखं निब्बत्तेय्य, सग्गसंवत्तनिकं तं कम्मं" ति? "आम, भन्ते, किं वत्तब्बं! हत्थियानं वा सो, भन्ते, पुरिसो लभेय्य, अस्सयानं वा, रथयानं वा, थले थलयानं, जले जलयानं, देवेसु देवयानं, मनुस्सेसु मनुस्सयानं, तदनुच्छविकं तदनुलोमिकं भवे भवे निब्बत्तेय्य, तदनुच्छविकानि तदनुलोमिकानि चस्स सुखानि निब्बत्तेय्युं। सुगतितो सुगतिं गच्छेय्य, तेनेव कम्माभिसन्देन इद्धियानं अभिरुय्ह पत्थितं निब्बाननगरं पापुणेय्या" ति। "तेन हि, महाराज, परदुक्खापनेन दिन्नदानं सुखविपाकं होति सग्गसंवत्तनिकं यं सो पुरिसो बलीवद्दे दुक्खापेत्वा एवरूपं सुखं अनुभवति।

"अपरं पि, महाराज, उत्तरिं कारणं सुणोहि, यथा परदुक्खापनेन दिन्नदानं सुखविपाकं होति सग्गसंवत्तनिकं। इध, महाराज, यो कोचि राजा जनपदतो धम्मिकं बलिं उद्धरापेत्वा आणापवत्तनेन दानं ददेय्य, अपि नु खो सो, महाराज, राजा ततोनिदानं किञ्चि सुखं अनुभवेय्य, सग्गसंवत्तनिकं तं दानं" ति? "आम, भन्ते, किं वत्तब्बं! ततोनिदानं सो, भन्ते, राजा उत्तरिं अनेकसतसहस्सगुणं लभेय्य, राजूनं अतिराजा भवेय्य, देवानं अतिदेवो भवेय्य, ब्रह्मानं अतिब्रह्मा

"भन्ते नागसेन! जो दूसरों को दुःखी कर दान दिया जाता है क्या उसका फल अच्छा होता है, क्या उससे स्वर्ग मिलता है?" "हाँ, महाराज! इसमें कहना क्या है!" "भन्ते नागसेन! कृपया इसे समझावें?" "महाराज! जैसे कोई धर्मात्मा श्रमण या ब्राह्मण बड़ा शीलवान् (सदाचारी) हो। उसे लकवा मार दे, वह अपङ्ग हो जाय या इसी तरह का कोई दूसरा रोग उसे हो जाय। उसे कोई दूसरा पुण्यवान् पुरुष अपनी गाड़ी पर चढ़ा कर जहाँ वह जाना चाहे, वहाँ ले जाय। महाराज! तो क्या उस पुरुष को स्वर्गदायी शुभ फल मिलेगा?" "हाँ, भन्ते! इसमें कहना क्या है! इस पुण्य के फल से उसे सवारी के लिये हाथी, घोड़ा और रथ भी मिल सकते हैं, पृथ्वी पर चलने के लिये पृथ्वी पर चलने वाली सभी सवारियाँ मिल सकती हैं; जल पर जाने के लिये नाव, जहाज सभी कुछ मिल सकते हैं; देवताओं के देवयान भी प्राप्त हो सकते हैं, और मनुष्यों के मनुष्य-यान भी। जन्म-जन्म में उसका कल्याण होगा। बहुत सुख मिलेगा। उसकी बहुत अच्छी गति होगी। उस कर्मफल से ऋद्धियान पर चढ़कर सब को अभीष्ट निर्वाणनगर तक पहुँच जायगा।" "महाराज! इससे तो यही ज्ञात होता है कि दूसरों को दुःख देकर जो दान किया जाता है, उससे भी स्वर्गदायी शुभ अच्छा फल मिलता है। वह मनुष्य गाड़ी के बैलों को दुःख देकर ही तो पुण्य कमाता है और सुख पाता है।

"महाराज! एक और कारण सुनें कि कैसे दूसरों को दुःख देकर जो दान दिया जाता है, उसका भी स्वर्ग देने वाला अच्छा फल मिलता है। महाराज! जैसे कोई राजा उचित प्रकार से कर (शुल्क) ले, और बाद में लोगों को दान करे। महाराज! तो क्या उसे इससे अच्छा फल मिलेगा? इस दान देने से उसे क्या स्वर्ग मिलेगा?" "हाँ, भन्ते! इसमें कहना क्या है! उसके पुण्य से राजा को उसका सौ और हजार गुना अधिक फल प्राप्त होगा। वह राजाओं में महाराज हो जायगा; देवों में महादेव हो जायेगा; ब्रह्माओं में महाब्रह्मा हो जायगा; श्रमणों में श्रेष्ठ श्रमण हो जायगा; ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ब्राह्मण हो जायगा;

भवेय्य, समणानं अतिसमणो भवेय्य, ब्राह्मणानं अतिब्राह्मणो भवेय्य, अरहन्तानं अतिअरहा भवेय्या'' ति। ''तेन हि, महाराज, परदुक्खापनेन दिन्नदानं सुखविपाकं होति सग्गसंवत्तनिकं; यं सो राजा बलिना जनं पीळेत्वा दिन्नदानेन एवरूपं उत्तरिं अनुभवती'' ति।

''अतिदानं, भन्ते नागसेन, वेस्सन्तरेन रञ्ञा दिन्नं, यं सो सकं भरियं परस्स भरियत्थाय अदासि, सके ओरसे पुत्ते ब्राह्मणस्स दासत्थाय अदासि। अतिदानं नाम, भन्ते नागसेन, लोके विदूहि निन्दितं गरहितं। यथा नाम, भन्ते नागसेन, अतिभारेन सकटस्स अक्खो भिज्जति, अतिभारेन नावा ओसीदति, अतिभुत्तेन भोजनं विसमं परिणमति, अतिवस्सेन धञ्ञं विनस्सति, अतिदानेन भोगक्खयं उपेति, अतिपापेन पठवी उपडय्हति, अतिरागेन उम्मत्तको होति, अतिदोसेन वज्झो होति, अतिमोहेन अनयं आपज्जति, अतिलोभेन चोरग्गहणमुपगच्छति, अतिभयेन निरुज्झति, अतिपूरेन नदी उत्तरति, अतिवातेन असनि पतति, अतिअग्गिना ओदनं उत्तरति, अतिसञ्चरणेन न चिरं जीवति; एवमेव खो, भन्ते नागसेन, अतिदानं नाम लोके विदूहि निन्दितं गरहितं। अतिदानं, भन्ते नागसेन, वेस्सन्तरेन रञ्ञा दिन्नं, न तत्थ किञ्चि फलं इच्छितब्बं'' ति?

''अतिदानं, महाराज, लोके विदूहि वण्णितं थुतं पसत्थं। ये केचि यादिसं कीदिसं दानं देन्ति, अतिदानदायी लोके कित्तिं पापुणाति। यथा, महाराज, अतिपवरताय दिब्बं वनमूलं गहितं पि हत्थपासे ठितानं परजनानं न दस्सयति, अगदो अतिजच्चताय पीळाय समुग्घातको

अर्हतों में श्रेष्ठ अर्हत् हो जायगा!'' ''महाराज! इससे तो यही ज्ञात होता है कि दूसरों को दुःख देकर भी जो दान किया जाता है उससे भी स्वर्ग देने वाला अच्छा फल मिलता है। राजा अपनी प्रजा से कर लेकर ही इस प्रकार का यश और सुख पाता है।''

''भन्ते नागसेन! वेस्सन्तर राजा ने दान देने में अति कर दी थी। यहाँ तक कि अपनी स्त्री को दूसरे की स्त्री बन जाने के लिये दे डाला। अपने औरस पुत्रों तक को ब्राह्मण का दास बनने के लिये दान कर दिया। भन्ते नागसेन! दान में अति कर देने की भी बुद्धिमान् लोग निन्दा करते हैं। भन्ते नागसेन! जैसे अधिक भार लाद देने से गाड़ी का धुरा टूट जाता है; अधिक भार लाद देने से नाव डूब जाती है; अधिक भोजन कर लेने से अजीर्ण हो जाती है; अधिक वर्षा होने से धान गल जाता है, अधिक दान देने से दरिद्र हो जाता है; अधिक पापसे पृथ्वी जल उठती है; अधिक प्रेम होने से पागल हो जाता है ; अधिक द्वेष से बड़ा अपराधी हो जाता है; अधिक मोह होने से बुरी अवस्था को प्राप्त होता है; अधिक लोभ करने से चोरों से पकड़ा जाता है; अधिक भय से घबड़ा जाता है; अधिक ज़ल आने से नदी में बाढ़ आ जाती है; अधिक हवा चलने से बिजली गिरती है; अधिक अग्नि देने से भात उफन जाता है; अधिक दौड़ धूप करने से आयुक्षय होता है; भन्ते! ऐसे ही, दान में भी अति की बुद्धिमान् लोग निन्दा करते है। भन्ते! वेस्सन्तर राजा ने भी दान देने में अति कर दी थी। उसका कुछ अच्छा फल नहीं हो सकता?''

''महाराज! बुद्धिमान् लोग अधिक दान देने की प्रशंसा करते हैं, स्तुति करते हैं, और उसे अच्छा बताते हैं। जो जिस किसी भी तरह का दान दे सकता है, उस दान देने वाले की संसार में कीर्ति फैलती है। महाराज! जैसे दिव्य शक्ति वाली जङ्गल–बूटी को हाथ में कस कर पकड़े रखने वाला व्यक्ति अपने पास बैठे हुये आदमी को भी नहीं दिखायी देता; अधिक शक्ति वाली जड़ी–बूटी पीड़ा को शान्त करती और रोग को दूर कर देती है। अधिक गर्म होने से कारण अग्नि जलती है; और अधिक ठण्डा होने से कारण जल अग्नि को बुझा सकता है। पद्मरागमणि अतिपरिशुद्धता के कारण जल का मैल दूर

रोगानं अन्तकरो, अग्गि अतिजोतिताय डहति, उदकं अतिसीतताय निब्बापेति, पदुमं अतिपरिसुद्धताय न उपलिप्पति वारिकद्दमेन, मणि अतिगुणताय कामददो, वजिरं अतितिखिणताय विज्झति मणिमुत्ताफलिकं, पठवी अतिमहन्तताय नरोरगमिगपक्खिजलसेलपब्बतदुमे धारेति, समुद्दो अतिमहन्तताय अपरिपूरणो, सिनेरु अतिभारिकताय अचलो, आकासो अतिवित्थारताय अनन्तो, सुरियो अतिप्पभताय तिमिरं घातेति, सीहो अतिजातिताय विगतभयो, मल्लो अतिबलवताय पटिमल्लं खिप्पं उक्खिपति, राजा अतिपुञ्ञताय अधिपति, भिक्खु अतिसीलवन्तताय नागयक्खनरमरूहि नमस्सनीयो, बुद्धो अतिअग्गताय अनूपमो; एवमेव खो, महाराज, अतिदानं नाम लोके विदूहि वण्णितं थुतं पसत्थं। ये केचि यादिसं कीदिसं दानं देन्ति, अतिदानदायी लोके कित्तिं पापुणाति। अतिदानेन वेस्सन्तरो राजा दससहस्सिया लोकधातुया वण्णितो थुतो पसत्थो महितो कित्तितो। तेनेव अतिदानेन वेस्सन्तरो राजा अज्जेतरहि बुद्धो जातो अग्गो सदेवके लोके।

"अत्थि पन, महाराज, लोके ठपनीयं दानं यं दक्खिणेय्ये अनुप्पत्ते न दातब्बं" ति। "दस खो पनिमानि, भन्ते नागसेन, दानानि यानि लोके अदानसम्मतानि, यो तानि दानानि देति सो अपायगामी होति। कतमानि दस? मज्जदानं, भन्ते नागसेन, लोके अदानसम्मतं, यो तं देति सो अपायगामी होति। समज्जदानं ....पे०.... इत्थिदानं....उसभदानं.... चित्तकम्मदानं ....सत्थदानं....विसदानं....सङ्खलिकदानं....कुक्कुटसूकरदानं तुलाकूटमानकूटदानं, भन्ते नागसेन, लोके अदानसम्मतं होति, यो तं देति सो अपायगामी होति। इमानि खो, भन्ते नागसेन, दस दानानि लोके अदानसम्मतानि, यो तानि दानानि देति सो अपायगामी होती" ति।

कर देती है। मणि अधिक गुणों वाली होने से यथेच्छ वर देती है। वज्र अधिक तीक्ष्ण होने से हीरा, मोती और पत्थर को काट सकता है। पृथ्वी अधिक विशाल होने से मनुष्य, साँप, मृग, पक्षी, जल, चट्टान, पर्वत, वृक्ष सभी को धारण करती है। बहुत बड़ा होने के कारण समुद्र कभी भी नहीं भरता। सुमेरु पर्वत अधिक भारी होने के कारण अचल है। आकाश अधिक फैले रहने के कारण अनन्त है। सूरज अधिक चमकने के कारण अन्धकार दूर करता है। सिंह उच्च जाति का होने के कारण निर्भय रहता है। श्रेष्ठ पहलवान् अधिक बल रहने से दूसरे पहलवान् को शीघ्र ही पटक देता है। राजा अपने अधिक पुण्य के कारण सभी का अधिपति (स्वामी) हो कर रहता है। भिक्षु अधिक शीलवान् होने के कारण नाग, यक्ष, मनुष्य और मार सभी के लिये नमस्कार का पात्र होता है। भगवान् श्रेष्ठ होने के कारण अनुपम होते हैं। महाराज! इसी तरह, बुद्धिमान् लोग अधिक दान की प्रशंसा करते हैं, स्तुति करते हैं, और उसे अच्छा बताते हैं। जो किसी भी तरह का दान दे सकता है, वह दान देने वाला संसार में कीर्ति पाता है। महाराज! अधिक दान देने के कारण वेस्सन्तर राजा दस हजार लोकों में प्रशंसित हुये, उनकी बहुत कीर्ति फैली। वही अधिक दान दे कर वेस्सन्तर राजा आज बुद्ध कहलाये और देवताओं, मनुष्यों के साथ इस लोक में सब के अग्र हो गये।

"महाराज! संसार में क्या ऐसी भी कोई वस्तु है जिसे, दान पाने का अधिकारी रहते हुए भी नहीं देना चाहिये?" "हाँ भन्ते! ऐसी दस चीजें हैं, जिन्हें कभी भी दान नहीं करना चाहिये। जो उनका दान करता है, वह नरक में जाता है। कौन सी दस चीजें है? भन्ते! १. शराब–ताड़ी का दान, २. नाच–बाजा में दान, ३. स्त्री का दान, ४. बैल का दान, ५. चित्रकर्म का दान, ६. शस्त्र का दान, ७. विष का दान, ८. जञ्जीर का दान, ९. मुर्गी और सूअर का दान, १०. जाली तराजू या बटखरे का दान नहीं

"नाहं तं, महाराज, अदानसम्मतं पुच्छामि। इमं ख्वाहं, महाराज, तं पुच्छामि—'अत्थि पन, महाराज, लोके ठपनीयं दानं यं दक्खिणेय्ये अनुप्पत्ते न दातब्बं'" ति? "नत्थि, भन्ते नागसेन, लोके ठपनीयं दानं यं दक्खिणेय्ये अनुप्पत्ते न दातब्बं। चित्तप्पसादे उप्पन्ने केचि दक्खिणेय्यानं भोजनं देन्ति, केचि अच्छादनं, केचि सयनं, केचि आवसथं, केचि अत्थरणपापुरणं, केचि दासिदासं, केचि खेत्तवत्थुं, केचि दिपदचतुप्पदं, केचि सतं सहस्सं सतसहस्सं, केचि महारज्जं, केचि जीवितं पि देन्ती" ति। "यदि पन, महाराज, केचि जीवितं पि देन्ति, किङ्कारणा वेस्सन्तरं दानपतिं अतिबाळ्हं परिपातेसि सुदिन्ने पुत्ते च दारे चा" ति!

"अपि नु खो, महाराज, अत्थि लोकपकति लोकाचिण्णं—लभति पिता पुत्तं इणट्टो वा आजीविकपकतो वा आवापितुं वा विक्किणितुं वा" ति? "आम, भन्ते, लभति पिता पुत्तं इणट्टो वा आजीविकपकतो वा आवापितुं वा विक्किणितुं वा" ति। "यदि, महाराज, लभति पिता पुत्तं इणट्टो वा आजीविकपकतो वा आवपितुं वा विक्किणितुं वा; वेस्सन्तरो पि, महाराज, राजा अलभमानो सब्बञ्ञुतञाणं उपद्दुतो दुक्खितो तस्स धम्मधनस्स पटिलाभाय पुत्तदानं आवापेसि च विक्किणि च। इति, महाराज, वेस्सन्तरेन रञ्ञा अञ्ञेसं दिन्नं येव दिन्नं, कतं येव कतं। किस्स पन त्वं, महाराज, तेन दानेन वेस्सन्तरं दानपतिं अतिबाळ्हं अपसादेसी" ति!

"नाहं, भन्ते नागसेन, वेस्सन्तरस्स दानपतिनो दानं गरहामि, अपि च पुत्तदारं याचन्ते निमिनित्वा अत्तानं दातब्बं" ति। "एवं खो, महाराज, असब्भिकारणं, यं पुत्तदारं याचन्ते अत्तानं ददेय्य। यं यं हि याचन्ते तं तदेव दातब्बं, एतं सप्पुरिसानं कम्मं। यथा, महाराज,

---

करना चाहिये, जो दान करता है वह नरक में जाता है। भन्ते नागसेन! इन दस चीजों का दान कभी नहीं करना चाहिये, जो दान करता है वह नरकगामी होता है?"

"महाराज! मैं यह नहीं पूछता कि कौन दान नहीं देना चाहिये। मेरा पूछना यह था कि महाराज! क्या संसार में कोई ऐसी चीज हैं जिसे दान पाने का अधिकारी मिलने पर भी न देकर रोके रखना चाहिये?" "नहीं, भन्ते! संसार में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जिसे दान पाने का अधिकारी रहने पर भी न दे कर रोके रखना चाहिये। प्रसन्न होकर कोई दान पाने के अधिकारी को भोजन देते हैं, कोई कपड़ा देते हैं, कोई शय्या देते हैं, कोई घर–द्वार देते हैं, कोई ओढ़ना–बिछौना देते हैं, कोई दास–दासी देते हैं, कोई जगह–जमीन देते हैं, कोई द्विपद (पक्षी) और चतुष्पद (चौपाये जानवर) देते हैं; कोई सौ, हजार या लाख रुपया देते हैं, कोई राज–पाट दे देते हैं, यहाँ तक कि कोई–कोई प्राण भी देते हैं।" "महाराज! यदि कोई अपना जीवन तक दे डालते हैं तो आप दानपति वेस्सन्तर राजा के अपनी स्त्री और बच्चों के दान कर देने पर क्यों आक्षेप कर रहे हैं!

"महाराज! क्या संसार में बहुधा ऐसा नहीं देखा जाता है कि पिता अपना ऋण चुकाने के लिये या जीविका के लिये अपना पुत्र गिरवी रख देता है या बेच भी देता है?" "हाँ, भन्ते! ठीक बात है।" "बस, वैसे ही वेस्सन्तर कमाने के लिये अपनी स्त्री और बच्चों को दे डाला! महाराज! इस तरह वेस्सन्तर राजा ने वही दिया जो लोग देते; वही किया जो अन्य करते। महाराज! तब आप उन दानपति वेस्सन्तर राजा पर क्यों आक्षेप कर रहे हैं?"

"नहीं, भन्ते! मैं उनको दोष नहीं दे रहा, मैं तो कहता हूँ कि अपनी स्त्री और बच्चों को दे डालने के बदले उन्हें बच्चों के माँगने पर अपने को दे देना चाहिये था।" "महाराज! स्त्री और बच्चों को माँगने

कोचि पुरिसो पानीयं आहरापेय्य, तस्स यो भोजनं ददेय्य; अपि नु सो, महाराज, पुरिसो तस्स किच्चकारी अस्सा'' ति? ''न हि, भन्ते, यं सो आहरापेति, तमेव तस्स देन्तो किच्चकारी अस्सा'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, वेस्सन्तरो राजा ब्राह्मणे पुत्तदारं याचन्ते पुत्तदारं येव अदासि। सचे, महाराज, ब्राह्मणो वेस्सन्तरस्स सरीरं याचेय्य, न सो महाराज, अत्तानं रक्खेय्य, न कम्पेय्य न रज्जेय्य, तस्स दिन्नं परिच्चत्तं येव सरीरं भवेय्य। सचे, महाराज, कोचि वेस्सन्तरं दानपतिं उपगन्त्वा याचेय्य—'दासत्तं मे उपेही' ति, दिन्नं परिच्चत्तं येवस्स सरीरं भवेय्य, न सो दत्वा तपेय्य। रञ्ञो, महाराज, वेस्सन्तरस्स कायो बहुसाधारणो।

''यथा, महाराज, पक्का मंसपेसि बहुसाधारणा; एवमेव खो, महाराज, रञ्ञो वेस्सन्तरस्स कायो बहुसाधारणो। यथा वा पन, महाराज, फलितो रुक्खो नानादिजगणसाधारणो; एवमेव खो, महाराज, रञ्ञो वेस्सन्तरस्स कायो बहुसाधारणो। किङ्कारणा? 'एवाहं पटिज्जन्तो सम्मासम्बोधिं पापुणिस्सामी' ति।

''यथा, महाराज, पुरिसो अधनो धनत्थिको धनपरियेसनं चरमानो अजपथं सङ्कुपथं वेत्तपथं गच्छति, जलथलवाणिज्जं करोति, कायेन वाचाय मनसा धनं आराधेति, धनप्पटिलाभाय वायमति; एवमेव खो, महाराज, वेस्सन्तरो दानपति अधनो बुद्धधनेन सब्बञ्ञुतञाणरतनप्पटिलाभाय याचकानं धनधञ्ञं दासिदासं यानवाहनं सकलसापतेय्यं सकं पुत्तदारं अत्तानं च चजित्वा सम्मासम्बोधिं येव परियेसति।

''यथा वा पन, महाराज, अमच्चो मुद्दाकामो मुद्दाधिकरणं यं किञ्चि गेहे धनधञ्ञं

पर अपने को दे देना तो उचित कार्य नहीं होता। जो जिस वस्तु को माँगता है उसी वस्तु को देना चाहिये। अच्छे लोग ऐसा ही किया करते हैं।" "महाराज! जैसे कोई आदमी किसी से जल माँगे और उसे भोजन परोस दिया जाय तो क्या वह उसकी इच्छा पूरी करता है?" "नहीं, भन्ते! जो वह माँगता है, वही देने से वह उसकी इच्छा पूरी कर सकता है।" "महाराज! इसीलिये जब ब्राह्मण ने स्त्री और बच्चों को माँगा था, तब वेस्सन्तर राजा ने उन्हीं को दे डाला। महाराज! यदि ब्राह्मण उनके अपने शरीर को माँगता तो वे अपने को कभी रोके नहीं रखते, न काँपते और न मोह करते; वे अपने को कभी रोके नहीं रखते। यदि कोई वेस्सन्तर राजा से उनकी स्वाधीनता माँगता तो उसे भी विना किसी संकोच के वे देने को बद्ध थे। महाराज! वेस्सन्तर राजा ने यथार्थ में अपना शरीर लोगों में बाँट दिया था।

"महाराज! जब घर में भोजन तैयार होता है तो सभी बाँट कर खाते हैं। जब वृक्ष फलों से लद जाता है तो पक्षी उसे बाँट कर खाते हैं। महाराज! उसी तरह, वेस्सन्तर राजा को अपने शरीर पर ममता नहीं थी, मानो उन्होंने अपनी शरीर लोगों में बाँट दिया था। सभी को सुख देने के लिये वे तैयार रहते थे। ऐसा क्यों? इस विचार से कि 'मैं इस प्रकार उदार हो कर बुद्धत्व पा सकूँगा'।

"महाराज! जैसे निर्धन मनुष्य धनोपार्जन के लिये धन की खोज में कहाँ–कहाँ नहीं दौड़ लगाते, वे कैसे–कैसे बीहड़ रास्तों को लाँघ जाते हैं, जल और स्थल पर व्यापार करते हैं, शरीर, वचन और मन तीनों से केवल धन की ही खोज में रहते हैं; महाराज! इसी तरह, दानपति वेस्सन्तर ने बुद्ध–धन से निर्धन हो कर सर्वज्ञता–रत्न की प्राप्ति के लिये याचकों को धन–धान्य, दास–दासी, गाड़ी–सवारी, अपनी सारी सम्पत्ति, अपनी स्त्री और बच्चे, यहाँ तक कि अपना शरीर भी दे डाला। उन्होंने बुद्धत्व प्राप्त करने के लिये ही ऐसा किया था।

"जैसे महाराज! कोई अधिकारी उन्नति पाने के लिये अपने पास जो कुछ धन दौलत है सभी

हिरञ्ञसुवण्णं, तं सब्बं दत्वा पि मुद्दापटिलाभाय वायमति; एवमेव खो, महाराज, वेस्सन्तरो दानपति सब्बं तं बाहिरब्भन्तरं धनं दत्वा जीवितं पि परेसं दत्वा सम्मासम्बोधिं येव परियेसति।

"अपि च, महाराज, वेस्सन्तरस्स दानपतिनो एवं अहोसि—'यं सो ब्राह्मणो याचति तमेवाहं तस्स देन्तो किच्चकारी नाम होमी' ति, एवं सो तस्स पुत्तदारमदासि। न खो, महाराज, वेस्सन्तरो दानपति देस्सताय ब्राह्मणस्स पुत्तदारमदासि, न अदस्सनकामताय पुत्तदारमदासि, न 'अतिबहुका मे पुत्तदारा, न सक्कोमि ते पोसेतुं' ति पुत्तदारमदासि, न उक्कण्ठितो—'अप्पिया मे' ति नीहरितुकामताय पुत्तदारमहासि। अथ खो, सब्बञ्ञुतञाणरतनस्सेव पियत्ता सब्बञ्ञुतञाणस्स कारणा वेस्सन्तरो राजा एवरूपं अतुलं विपुलमनुत्तरं पियं मनापं दयितं पाणसमं पुत्तदारदानवरं ब्राह्मणस्स अदासि। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *चरियापिटके*—

'न मे देस्सा उभो पुत्ता, मद्दी देवी न देस्सिया।
सब्बञ्ञुतं पियं मय्हं, तस्मा पिये अदासहं' ति॥

"तस्मा, महाराज, वेस्सन्तरो राजा पुत्तदारं दत्वा पण्णसालं पविसित्वा निपज्जि, तस्स अतिपेमेन दुक्खितस्स बलवसोको उप्पज्जि, हदयवत्थु उण्हमहोसि, नासिकाय अप्पहोन्तिया मुखेन उण्हे अस्सासपस्सासे विस्सज्जेसि, अस्सूनि परिवत्तित्वा लोहितबिन्दूनि हुत्वा नेत्तेहि निक्खमिंसु। एवं खो, महाराज, दुक्खेन वेस्सन्तरो राजा ब्राह्मणस्स पुत्तदारमदासि—'मा मे दानपथो परिहायी' ति।

"अपि च, महाराज, वेस्सन्तरो राजा द्वे अत्थवसे पटिच्च ब्राह्मणस्स द्वे दारके अदासि। कतमे द्वे? 'दानपथो च मे अपरिहीनो भविस्सति, दुक्खिते च मे पुत्तके वनमूलफलेहि

को दे सकता है, ऊँचा पद पाने की प्राणपण से प्रयास करता है, महाराज! इसी तरह वेस्सन्तर राजा अपने बाहर और भीतर के सम्पूर्ण धन का तथा स्वयं को भी दान कर बुद्धत्व की खोज कर रहे थे।

"महाराज! इसके अतिरिक्त, दानपति राजा वेस्सन्तर के मन में ऐसा हुआ—'यह ब्राह्मण जो माँगता है, उसी को दे कर मैं उसकी इच्छा पूरी कर सकूँगा।' यह विचार कर उन्होंने उसे अपनी स्त्री और बच्चों को भी दे डाला। महाराज! उन्होंने उन्हें उन में ईर्ष्या रखने के कारण नहीं दे डाला था, न उन को न देखा जा सकने के कारण, न उनको भार समझ कर और न उनको अप्रिय समझ कर उनसे छुटकारा पाने के लिये; अपितु सर्वज्ञता-रत्न पा कर बुद्ध बन जाने की ही इच्छा से वेस्सन्तर राजा ने अपने उन अतुल्य, अलौकिक, प्रिय, मनाप और प्राणप्रिय बच्चों तक को दान कर दिया। महाराज! *चर्यापिटक* में देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'अपने दोनों बच्चों से या रानी माद्री से मुझे ईर्ष्या नहीं थी। सर्वज्ञता प्राप्त करने का मार्ग मुझे प्रिय था, इन के लिये मैंने उनका दान कर डाला।'

"अतः, महाराज! वेस्सन्तर राजा, इस दान के बाद, पर्णशाला (पत्तों की बनी झोपड़ी) में जा कर बैठ गये। एक बार उनके प्रेम की स्मृति से वे विह्वल हो उठे, उनका कलेजा सूख गया, गरम साँस चलने लगीं, आँखों से खून के आँसू बहने लगे। महाराज! अपने दान पर डटे रहने के लिये यह दुःख सह कर भी उनका दान कर दिया।

"महाराज! और भी दो बातों के विचार से उन्होंने अपने दो बच्चों को दान कर दिया। किन दो

इतोनिदानं अय्यको मोचेस्सती' ति। जानाति हि, महाराज, वेस्सन्तरो राजा—'न मे दारका सक्का केनचि दासभावेन भुञ्जितुं, इमे च दारके अय्यको निक्किणिस्सति, एवं अम्हाकं पि गमनं भविस्सती' ति। इमे खो, महाराज, द्वे अत्थवसे पटिच्च ब्राह्मणस्स द्वे दारके अदासि।

"अपि च, महाराज, वेस्सन्तरो राजा जानाति—'अयं खो ब्राह्मणो जिण्णो वुड्ढो महल्लको दुब्बलो भग्गो दण्डपरायणो खीणायुको परित्तपुञ्ञो, नेसो समत्थो इमे दारके दासभोगेन भुञ्जितुं' ति। सक्कुणेय्य पन, महाराज, पुरिसो पाकतिकेन बलेन इमे चन्दिमसुरिये एवंमहिद्धिके एवंमहानुभावे गहेत्वा पेळाय वा समुग्गे वा पक्खिपित्वा निप्पभे कत्वा थालकपरिभोगेन परिभुञ्जितुं" ति? "न हि, भन्ते" ति। "एवमेव खो, महाराज, इमस्मिं लोके चन्दिमसुरियपटिभागस्स वेस्सन्तरस्स दारका न सक्का केनचि दासभोगेन भुञ्जितुं।

अपरं पि, महाराज, उत्तरिं कारणं सुणोहि, येन कारणेन वेस्सन्तरस्स दारका न सक्का केनचि दासभोगेन भुञ्जितुं। यथा, महाराज, रञ्ञो चक्कवत्तिस्स मणिरतनं सुभं जातिमन्तं अट्ठंसं सुपरिकम्मकतं चतुहत्थायामं सकटनाभिपरिणाहं न सक्का केनचि पिलोतिकाय वेठेत्वा पेळाय पक्खिपित्वा सत्थकनिसानपरिभोगेन परिभुञ्जितुं; एवमेव खो, महाराज, लोके चक्कवत्तिरञ्ञो मणिरतनपटिभागस्स वेस्सन्तरस्स दारका न सक्का केनचि दासभोगेन भुञ्जितुं।

"अपरं पि, महाराज, उत्तरिं कारणं सुणोहि, येन कारणेन वेस्सन्तरस्स दारका न सक्का केनचि दासभोगेन भुञ्जितुं। यथा, महाराज, तिधा पभिन्नो सब्बसेतो सत्तप्पतिट्ठितो अट्ठरतनुब्बेधो नवरतनायामपरिणाहो पासादिको दस्सनीयो उपोसथो नागराजा न सक्का केनचि

बातों के विचार से? १. मेरा दान–व्रत न टूटे और २. जंगल के फल फूल ही खा कर रहने से मेरे पुत्रों को जो दुःख है, उससे वे छूट जायँ। महाराज! वेस्सन्तर राजा को यह ज्ञात था कि मेरे पुत्रों को कोई दास बना कर नहीं रख सकता। उनका दादा उन्हें छुड़ा लेगा और फिर वे मेरे ही पास आयेंगे। महाराज! इन्ही दो बातों के विचार से भी उन्होंने अपने दो बच्चों को दान कर दिया था।

"महाराज! वेस्सन्तर राजा को यह भी ज्ञात था कि यह ब्राह्मण बड़ा बूढ़ा और बहुत दुर्बल हो गया है; इसकी नसें ढीली पड़ गयी हैं, लाठी के सहारे बड़ी कठिनाई से चलता फिरता है, इसका पुण्य बहुत थोड़ा है और इसकी आयु पूर्ण हो चुकी है, यह इन बच्चों को अधिक दिन दास बनाकर नहीं रख सकता। महाराज! इतने तेजस्वी और प्रतापी चन्द्र और सूर्य को कोई पकड़, बक्से में बन्द कर उनकी सारी चमक हटा क्या थाली की तरह उनको उपयोग में ला सकता है?" "नहीं भन्ते!" "महाराज! इसी तरह, सूर्य और चन्द्रमा के समान प्रतापी वेस्सन्तर राजा के बच्चों को भी कोई दास नहीं बना सकता।

"महाराज! एक और भी कारण सुनें, जिससे वेस्सन्तर राजा के बच्चों को कोई दास बना कर नहीं रख सकता था। महाराज! जैसे चक्रवर्ती राजा का मणिरत्न जो उज्ज्वल, अच्छी जाति वाला, अठपहलू, अच्छी तरह काटा छाँटा, चार हाथ के घेरे वाला और गाड़ी की नाभि के बराबर हो; उसे कोई शस्त्र तेज करने के लिये चिथड़ों से लपेट कर नहीं रख सकता; महाराज! उसी तरह चक्रवर्ती राजा के मणि–रत्न के समान तेजस्वी वेस्सन्तर राजा के बच्चों को कोई दास बना कर नहीं रख सकता।

"महाराज! एक और भी कारण सुनें, जिस से वेस्सन्तर राजा के बच्चों को कोई दास बना कर नहीं रख सकता। महाराज! जैसे समुद्र बड़ा लम्बा, चौड़ा फैला हुआ है, अत्यन्त गम्भीर है, अनन्त है, अपार है, अथाह है और खुला है। कोई उसे चारों ओर से बाँध कर एक ही घाट से उपयोग लिये जाने

सुप्पेन वा सरावेन वा पिदहितुं, गोवच्छको विय वच्छकसालाय पक्खिपित्वा परिहरितुं वा; एवमेव खो, महाराज, लोके उपोसथनागराजप्पटिभागस्स वेस्सन्तरस्स दारका न सक्का केनचि दासभोगेन भुञ्जितुं।

"अपरं पि, महाराज, उत्तरिं कारणं सुणोहि, येन कारणेन वेस्सन्तरस्स दारका न सक्का केनचि दासभोगेन भुञ्जितुं। यथा, महाराज, महासमुद्दो दीघपुथुलवित्थिण्णो गम्भीरो अप्पमेय्यो दुरुत्तरो अपरियोगाळ्हो अनावटो न सक्का केनचि सब्बत्थ पिदहित्वा एकतित्थेन परिभोगं कातुं; एवमेव खो, महाराज, लोके महासमुद्दपटिभागस्सेव वेस्सन्तरस्स दारका न सक्का केनचि दासभोगेन भुञ्जितुं।

"अपरं पि, महाराज, उत्तरिं कारणं सुणोहि, येन कारणेन वेस्सन्तरस्स दारका न सक्का केनचि दासभोगेन भुञ्जितुं। यथा, महाराज, हिमवन्तो पब्बतराजा पञ्चयोजनसतं अब्भुग्गतो नभे तिसहस्सयोजनायामवित्थारो चतुरासीतिकूटसहस्सपटिमण्डितो पञ्चन्नं महानदीसतानं पभवो महाभूतगणालयो नानाविधगन्धधरो दिब्बोसधसतसमलङ्कतो नभे वलाहको विय अब्भुग्गतो दिस्सति, एवमेव खो, महाराज, हिमवन्तपब्बतराजपटिभागस्स वेस्सन्तरस्स दारका न सक्का केनचि दासभोगेन भुञ्जितुं।

"अपरं पि, महाराज, उत्तरिं कारणं....पे०....भुञ्जितुं। यथा, महाराज, रत्तन्धकार-तिमिसायं उपरिपब्बतग्गे जलमानो महा अग्गिक्खन्धो सुविदूरे पि पञ्ञायति; एवमेव खो, महाराज, वेस्सन्तरो राजा पब्बतग्गे जलमानो महाअग्गिक्खन्धो विय सुविदूरे पि पाकटो पञ्ञाति। तस्स दारका न सक्का केनचि दासभोगेन भुञ्जितुं।

"अपरं पि, महाराज, उत्तरिं कारणं सुणोहि, येन कारणेन वेस्सन्तरस्स दारका न सक्का केनचि दासभोगेन भुञ्जितुं। यथा, महाराज, हिमवन्ते पब्बते नागपुप्फसमये उजुवाते

योग्य नहीं बना सकता। महाराज! इसी तरह, महासमुद्र के समान गौरवशाली वेस्सन्तर राजा के बच्चों को कोई दास बना कर नहीं रख सकता।

"महाराज! एक और भी कारण सुनें, जिससे वेस्सन्तर राजा के बच्चों को कोई दास बना कर नहीं रख सकता। महाराज! जैसे पर्वतराज हिमालय पाँच सौ योजन ऊँचा आकाश में उठा हुआ है, तीन हजार योजन के घेरे में फैला है, चौरासी हजार चोटियों से सजा हुआ है, इस से पाँच सौ बड़ी-बड़ी नदियाँ निकलती हैं, बड़े-बड़े जीवों का यह आवास है, यह अनेक प्रकार की गन्ध वाली सैकड़ों दिव्य ओषधियों से भरा है और यह आकाश में उठे हुए मेघ की तरह दिखायी देता है; महाराज! इसी तरह हिमालय पर्वतराज के समान गौरवशाली वेस्सन्तर राजा के बच्चों को कोई दास बना कर नहीं रख सकता।

"महाराज! एक और भी कारण सुनें ....। महाराज! जैसे रात के अन्धेरे में पहाड़ के ऊपर जलती हुई अग्नि का प्रकाश बहुत दूर से ही देखा जा सकता है; उसी तरह, वेस्सन्तर राजा की कीर्ति दूर-दूर तक फैली हुई थी। उनके बच्चों को कोई दास बना कर नहीं रख सकता था।

"महाराज! एक और भी कारण सुनें ....। महाराज! जैसे हिमालय पर जब नागपुष्प फूलता है तो वह मन्द-मन्द हवा चलने पर भी दस बारह योजन तक सुगन्धित कर देता है। महाराज! इसी तरह, राजा की कीर्ति हजारों योजन तक फैल कर बीच के असुरलोक, गरुड़लोक, गन्धर्वलोक, यक्षलोक,

वायन्ते दस द्वादस योजनानि पुप्फगन्धो वायति; एवमेव खो, महाराज, वेस्सन्तरस्स रञ्ञो पि योजनसतसहस्सेहि पि याव अकनिट्ठभवनं एत्थन्तरे सुरासुरगरुळगन्धब्बयक्खरक्खसमहोरगकिन्नरइन्दभवनेसु कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो, सीलवरगन्धो चस्स सम्पवायति, तेन तस्स दारका न सक्का केनचि दासभोगेन भुञ्जितुं।

"अनुसिट्ठो, महाराज, जालिकुमारो पितरा वेस्सन्तरेन रञ्ञा—'अय्यको ते, तात, तुम्हे ब्राह्मणस्स धनं दत्वा निक्किणन्तो तं निक्खसहस्सं दत्वा निक्कणातु, कण्हाजिनं निक्किणन्तो दाससतं दासिसतं हत्थिसतं अस्ससतं धेनुसतं धेनुसतं उसभसतं निक्खसतं ति सब्बसतं दत्वा निक्किणातु। यदि ते, तात, अय्यको तुम्हे ब्राह्मणस्स हत्थतो आणाय बलसा मुधा गण्हाति, मा तुम्हे अय्यकस्स वचनं करित्थ, ब्राह्मणस्सेव अनुयायिनो होथा" ति एवमनुसासित्वा पेसेसि। ततो जालिकुमारो गन्त्वा अय्यकेन पुट्ठो कथेसि—

'सहस्सग्घं हि मं, तात, ब्राह्मणस्स पिता अदा।
अथो कण्हाजिनं कञ्ञं, हत्थीनं च सतेन चा" ति॥

"सुनिब्बेठितो, भन्ते नागसेन, पञ्हो, सुभिन्नं दिट्ठिजालं, सुमद्दितो परप्पवादो, सकसमयो सुदीपितो, व्यञ्जनं सुपरिसोधितं, सुविभत्तो अत्थो, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी" ति।

२. दुक्करकारिकपञ्हो

३. "भन्ते नागसेन, सब्बेव बोधिसत्ता दुक्करकारिकं करोन्ति, उदाहु गोतमेनेव बोधिसत्तेन दुक्करकारिका कता" ति? "नत्थि, महाराज, सब्बेसं बोधिसत्तानं दुक्करकारिका, गोतमेनेव बोधिसत्तेन दुक्करकारिका कता" ति।

"भन्ते नागसेन, यदि एवं, अयुत्तं यं बोधिसत्तेहि वेमत्तता होती" ति? "चतूहि,

---

सर्पलोक, किन्नरलोक और इन्द्रलोक पार कर अकनिष्ठलोक (अन्तिम देवलोक) तक पहुँच गयी थी, ये सभी लोक उनके शील की गन्ध से सुगन्धित हो गये थे। तो भला उनके बच्चों को कौन दास बना कर रख पाता!

"महाराज! वेस्सन्तर राजा ने अपने पुत्र जालि कुमार को बता दिया था—'तात ! तुम्हारे दादा यदि ब्राह्मण को धन दे कर छुड़ाना चाहें तो तुम्हारे लिये एक सहस्र निष्क (सिक्का) और तुम्हारी बहन कृष्णाजिना के लिये सौ दास-दासी, सौ हाथी, सौ घोड़े, सौ गाय, सौ भैंस, सौ निष्क दे कर छुड़ावें, तात! यदि तुम्हारे दादा हठपूर्वक विना कुछ दिये, अपना शासन चला कर ब्राह्मण के हाथ से तुम्हें छुड़ा लेना चाहें तो तुम उनकी बात न मानना, ब्राह्मण के पास रहना। ऐसा कह कर वेस्सन्तर राजा ने उन्हें भेजा था। तब जालिकुमार ने वहाँ जा कर अपने दादा से पूछे जाने पर कहा था—

'तात! हजार रुपया मूल्य लगा कर मेरे पिता ने मुझे इस ब्राह्मण को दिया था और सौ हाथी का मूल्य लगाकर बहन कृष्णाजिना को।।'

"भन्ते नागसेन! आपने ठीक समझाया। झूठे पक्ष का खण्डन कर दिया। विपक्ष का वाद सर्वथा दबा दिया। अपनी बात को स्पष्ट कर दिया। उद्धरण का सत्य पक्ष बता दिया। प्रश्न का बड़ा सुन्दर विश्लेषण कर दिखाया। आपने जो समझाया, मैं उसे स्वीकार करता हूँ।"

२. दुष्करचर्याविषयकप्रश्न—३."भन्ते! क्या सभी बोधिसत्त्व दुष्करचर्या करते हैं या केवल गौतम बोधिसत्त्व ने ही की थी?' "महाराज! सभी बोधिसत्त्व दुष्करचर्या नहीं करते, केवल गौतम बोधिसत्त्व ने की थी।"

महाराज, ठानेहि बोधिसत्तानं बोधिसत्तेहि वेमत्तता होति। कतमेहि चतूहि? कुलवेमत्तता, अद्धानवेमत्तता, आयुवेमत्तता, पमाणवेमत्तता'' ति। इमेहि खो, महाराज, चतूहि ठानेहि बोधिसत्तानं बोधिसत्तेहि वेमत्तता होति। सब्बेसं पि, महाराज, बुद्धानं रूपे सीले समाधिम्हि पञ्ञाय विमुत्तिया विमुत्तिञाणदस्सने चतुवेसारज्जे *(अं० नि० ४-८)* दसतथागतबले *(म० नि०, महासीह० सु०)* छअसाधारणञाणे चुद्दसबुद्धञाणे अट्ठारसबुद्धधम्मे केवले च बुद्धगुणे नत्थि वेमत्तता, सब्बे पि बुद्धा बुद्धधम्मेहि समसमा'' ति।

''यदि, भन्ते नागसेन, सब्बे पि बुद्धा बुद्धधम्मेहि समसमा, केन कारणेन गोतमेनेव बोधिसत्तेन दुक्करकारिका कता'' ति? ''अपरिपक्के, महाराज, ञाणे अपरिपक्काय बोधिया गोतमो बोधिसत्तो नेक्खम्ममभिनिक्खन्तो, तेन अपरिपक्कं ञाणं परिपाचयमानेन दुक्करकारिका कता'' ति।

''भन्ते नागसेन, केन कारणेन बोधिसत्तो अपरिपक्के ञाणे अपरिपक्काय बोधिया महाभिनिक्खमनं निक्खन्तो, ननु नाम ञाणं परिपाचेत्वा परिपक्के ञाणे निक्खमितब्बं'' ति?

४. ''बोधिसत्तो, महाराज, विपरीतं इत्थागारं दिस्वा विप्पटिसारी अहोसि, तस्स विप्पटिसारिस्स अरति उप्पज्जि, अरतिचित्तं उप्पन्नं दिस्वा अञ्ञतरो मारकायिको देवपुत्तो— 'अयं खो, कालो अरतिचित्तस्स विनोदनाया' ति वेहासे ठत्वा इदं वचनमब्रवि—'मारिस, मा खो त्वं उक्कण्ठितो अहोसि, इतो ते सत्तमे दिवसे दिब्बं चक्करतनं पातुभविस्सति सहस्सारं सनेमिकं सनाभिकं सब्बाकारपरिपूरं, *(दी०नि०, चक्क०सुत्तं)* पठविगतानि च ते रतनानि आकासट्ठानि च सयमेव उपगच्छिस्सन्ति, द्विसहस्सपरित्तदीपपरिवारेसु चतूसु महादीपेसु

''भन्ते! यदि ऐसी बात है तो एक बोधिसत्त्व का दूसरे से भिन्न होना उचित नहीं?'' ''महाराज! चार स्थानों (बातों) में एक बोधिसत्त्व दूसरे से भिन्न होता है। कौन चार स्थानों में? महाराज! १. कुल में, २. स्थान और समय में, ३. आयु में और ४. शरीर की ऊँचाई में—इन चार स्थानों में एक बोधिसत्त्व दूसरे से भिन्न होता है। महाराज! किन्तु सभी बोधिसत्त्व रूप, शील, समाधि, प्रज्ञा, विमुक्ति, विमुक्ति-ज्ञान के साक्षात्कार, चार वैशारद्य, दस बुद्धबल, छह असाधारण ज्ञान, चौदह बुद्ध-ज्ञान, अट्ठारह बुद्ध-धर्म और बुद्ध की दूसरी बातों में समान ही होते हैं। सभी बुद्ध बुद्धगुणों में बराबर होते हैं।''

''भन्ते! यदि सभी बुद्ध अपने गुणों में समान होते हैं, तो बोधिसत्त्व गौतम ने अकेले दुष्करचर्या क्यों की?'' ''महाराज! बोधिसत्त्व (चार आर्य सत्यों के) ज्ञान और प्रज्ञा पाने से पहले ही घर छोड़ कर निकल गये थे। अपने अपरिपक्व ज्ञान को पूर्ण करने की धुन में ही उन्होंने दुष्करचर्या की थी।''

''भन्ते! ज्ञान के विना परिपक्व हुये बोधिसत्त्व गौतम घर छोड़कर क्यों निकल गये? अपना ज्ञान परिपक्व होने पर ही वे घर से क्यों निकलें?''

४. ''महाराज! नाचने वाली स्त्रियों की उद्विग्न कर देनेवाली अवस्था देखकर उनका मन फिर गया था। मन फिर जाने से उन्हें वैराग्य हो गया। उनका चित्त वैराग्ययुक्त देख किसी मारकायिक देवपुत्र ने यह सोचा, 'ठीक यह समय है कि मैं उनके वैराग्य को तोड़ दूँ।' आकाश में प्रकट होकर उसने कहा—'मार्ष! मार्ष!! आप इस तरह मत घबरा जायँ। आज के सातवें दिन आपको दिव्य चक्ररत्न, हजार अरों वाली, अच्छी नेमि और नाभि के साथ और सभी गुणों से भरा, प्रकट होगा। पृथ्वी और आकाश के सभी रत्न स्वयं ही आपके पास चले आवेंगे। दो हजार छोटे द्वीपों के साथ चार महाद्वीपों में आपकी ही एकमात्र

एकमुखेन आणा पवत्तिस्सति, परोसहस्सं च ते पुत्ता भविस्सन्ति सूराङ्गरूपा परसेनप्पमद्दना, तेहि पुत्तेहि परिकिण्णो सत्तरतनसमन्नागतो चतुदीपमनुसासिस्ससी' ति। *(जा० १-६१)*

"यथा नाम दिवससन्तत्तं अयोसूलं सब्बत्थ उपडहन्तं कण्णसोतं पविसेय्य; एवमेव खो, महाराज बोधिसत्तस्स तं वचनं कण्णसोतं पविसित्थ, इति सो पकतिया व उक्कण्ठितो तस्सा देवताय वचनेन भिय्योसोमत्ताय उब्बिज्जि संविज्जि संवेगमापज्जि।

"यथा वा पन, महाराज, महतिमहाअग्गिक्खन्धो जलमानो अञ्ञेन कट्ठेन उपदहितो भिय्योसोमत्ताय जलेय्य; एवमेव खो, महाराज, बोधिसत्तो पकतिया व उक्कण्ठितो तस्सा देवताय वचनेन भिय्योसोमत्ताय उब्बिज्जि संविज्जि संवेगमापज्जि।

"यथा वा पन, महाराज, महापठवी पकतितिन्ता निब्बत्तहरितसद्दला आसित्तोदका चिक्खल्लजाता पुनदेव महामेघे अतिवुट्ठे भिय्योसोमत्ताय चिक्खल्लतरा अस्स; एवमेव खो, महाराज, बोधिसत्तो पकतिया व उक्कण्ठितो तस्स देवताय वचनेन भिय्योसोमत्ताय उब्बिज्जि संविज्जि संवेगमापज्जी" ति।

"अपि नु खो, भन्ते नागसेन, बोधिसत्तस्स यदि सत्तमे दिवसे दिब्बं चक्करतनं निब्बत्तेय्य, पटिनिवत्तेय्य, बोधिसत्तो दिब्बे चक्करतने निब्बत्तेति।" "न हि, महाराज, सत्तमे दिवसे बोधिसत्तस्स दिब्बं चक्करतनं निब्बत्तेय्य, अपि च पलोभनत्थाय ताय देवताय मुसा भणितं। यदि पि, महाराज, सत्तमे दिवसे दिब्बं चक्करतनं निब्बत्तेय्य, बोधिसत्तो न निब्बत्तेय्य। किं कारणं? 'अनिच्चं' ति, महाराज, बोधिसत्तो दळ्हं अग्गहेसि, 'दुक्खं' .... 'अनत्ता' ति दळ्हं अग्गहेसि उपादानक्खयं पत्तो" ति।

आज्ञा चलेगी। हजारों आपके शूर, वीर, शक्तिशाली और शत्रुओं की सेना को विनष्ट कर देने वाले पुत्र होंगे। उन पुत्रों के साथ, सात रत्नों से युक्त हो कर चारों द्वीपों पर आप शासन करेंगे।'

"महाराज! जैसे सारे दिन जलती हुई अग्नि में लाल की गयी लोहे की छड़ को कोई कान में घुसावें; वैसे ही बोधिसत्त्व को ये वचन लगे। एक तो स्वयं ही बोधिसत्त्व को विराग हो रहा था; दूसरे मार का यह वचन सुनकर उनका मन और अधिक संवेगयुक्त हो गया।

"महाराज! जैसे कोई जलती हुई अग्नि की बड़ी राशि लकड़ी से ढक दिये जाने पर और अधिक धधक उठती है, वैसे ही एक तो स्वयं ही बोधिसत्त्व को वैराग्य हो रहा था, दूसरे मार के इस वचन उनका मन और भी उद्विग्न हो गया।

"महाराज! जैसे कोई अपने ही घास–पात से भरी, कीचड़ हुई दलदल भूमि खूब पानी बरस जाने के बाद अधिक कीचड़ से भर जाती है; वैसे ही एक तो स्वयं ही बोधिसत्त्व को वैराग्य हो रहा था, दूसरे मार के इस वचन को सुन कर उनका मन और भी चिन्तित हो गया।"

"भन्ते नागसेन! यदि सातवें दिन सचमुच दिव्य चक्ररत्न उनके सामने प्रकट हो जाता तो क्या वे उसे लौटा देते?" "नहीं, महाराज! सातवें दिन बोधिसत्त्व के सामने दिव्य चक्ररत्न प्रकट होने की कोई आशा ही नहीं थी; उस देवता ने केवल उन्हें लुभाने के लिये ऐसा मिथ्या कह दिया था। और महाराज! यदि सातवें दिन वास्तव में बोधिसत्त्व के सामने दिव्य चक्ररत्न प्रकट भी हो जाता; तो भी वे लौट नहीं सकते थे। सो क्यों? क्योंकि महाराज! संसार की अनित्यता और उसका दुःखमय होना और 'संसार में कोई सार (=आत्मा) नहीं है'—यह बात उनके हृदय में जम गयी थी। इस प्रकार, संसार के प्रति उनकी सारी लिप्सा नष्ट हो गयी थी।"

"यथा, महाराज, अनोतत्तदहतो उदकं गङ्गं नदिं पविसति, गङ्गाय नदिया महासमुद्दं पविसति, महासमुद्दतो पातालमुखं पविसति, अपि नु तं उदकं पातालमुखगतं पटिनिवत्तित्वा महासमुद्दं पविसेय्य, महासमुद्दतो गङ्गं नदिं पविसेय्य, गङ्गाय नदिया पुन अनोतत्तं पविसेय्या" ति? "न हि, भन्ते" ति। "एवमेव खो, महाराज, बोधिसत्तेन कप्पानं सतसहस्सं चतुरो च असङ्ख्येय्ये कुसलं परिपाचितं इमस्स भवस्स कारणा, सोयं अन्तिमभवो अनुप्पत्तो, परिपक्कं बोधिञाणं, छहि वस्सेहि बुद्धो भविस्सति सब्बञ्ञू लोके अग्गपुग्गलो, अपि नु खो, महाराज, बोधिसत्तो चक्करतनकारणा पटिनिवत्तेय्या" ति? "न हि, भन्ते" ति।

"अपि च, महाराज, महापथवी परिवत्तेय्य सकाननसपब्बता, न त्वेव बोधिसत्तो पटिनिवत्तेय्य अपत्वा सम्मासम्बोधिं। आरोहेय्य पि चे, महाराज, गङ्गाय उदकं पटिसोतं, न त्वेव बोधिसत्तो पटिनिवत्तेय्य अपत्वा सम्मासम्बोधिं। विसुस्सेय्य पि, महाराज, महासमुद्दो अपरिमितजलधरो गोपदे उदकं विय, न त्वेव बोधिसत्तो पटिनिवत्तेय्य अपत्वा सम्मासम्बोधिं। फलेय्य पि चे, महाराज, सिनेरुपब्बतराजा सतधा वा सहस्सधा वा, न त्वेव बोधिसत्तो पटिनिवत्तेय्य अपत्वा सम्मासम्बोधिं। पतेय्युं पि चे, महाराज, चन्दिमसुरिया सतारका लेड्डु विय छमायं, न त्वेव बोधिसत्तो पटिनिवत्तेय्य अपत्वा सम्मासम्बोधिं। संवट्टेय्य पि चे, महाराज, आकासो किलञ्जमिव, न त्वेव बोधिसत्तो पटिनिवत्तेय्य अपत्वा सम्मासम्बोधिं। किङ्कारणा? पदालितत्ता सब्बबन्धनानं" ति।

"भन्ते नागसेन, कति लोके बन्धनानी" ति? "दस खो पनिमानि, महाराज, लोके बन्धनानि, येहि बन्धनेहि बद्धा सत्ता न निक्खमन्ति, निक्खमित्वा पि पटिनिवत्तन्ति। कतमानि दस? माता, महाराज, लोके बन्धनं, पिता .... भरिया .... पुत्ता .... ञाती .... मित्ता .... धनं ....लाभसक्कारो....इस्सरियं....पञ्च कामगुणा, महाराज, लोके बन्धनं। इमानि खो, महाराज,

---

"महाराज! जैसे अनोतत्त दह (अनवतप्त ह्रद) का जल गङ्गा नदी में गिरता है, गङ्गा नदी में गिर कर समुद्र में गिरता है और समुद्र से पाताल में चला जाता है। महाराज! तो क्या वही जल पाताल से समुद्र में, समुद्र से गङ्गा नदी में और गङ्गा नदी से अनोतत्त दह में पुनः आ सकता है?" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! इसी प्रकार, इस अन्तिम जन्म तक पहुँचने के लिये ही बोधिसत्त्व चार असंख्य एक लाख कल्पों से पुण्य एकत्र कर रहे थे, सो वे वहाँ पहुँच गये। परमज्ञान चरम सीमा तक पहुँच गया। छह वर्षों में वे बुद्ध, सर्वज्ञ और नरोत्तम होने वाले ही थे। तो क्या वे चक्ररत्न के लिये लौट जाते?" "नहीं भन्ते!"

"महाराज! यह महापृथ्वी बड़े–बड़े जंगल और ऊँचे–ऊँचे पर्वतों सहित भले ही उलट जाती, गङ्गा नदी भी उलटी धार बहने लगती, गोपद (गाय का पैर) पड़ने से भूमि पर बने गड्ढे के जल के समान यह अथाह, अगाध समुद्र भले ही सूख जाता, सुमेरु पर्वतराज सैकड़ों और हजारों टुकड़ों में भले ही बँट जाता, सूर्य, चन्द्र और सभी तारे ढेले की तरह पृथ्वी पर भले ही गिर पड़ते और चटाई की तरह पूरे आकाश को कोई भले ही लपेट लेता, किन्तु बोधिसत्त्व विना सम्यक्सम्बोधि पाये कभी नहीं लौट सकते थे। वह क्यों? क्योंकि संसार के सभी बन्धनों को उन्होंने तोड़ दिया था।"

"भन्ते नागसेन! संसार के कितने बन्धन हैं?" "महाराज! संसार के दस बन्धन हैं, जिन में पड़ कर जीव नहीं निकल पाता या निकल कर फिर बँध जाता है। वे दस बन्धन कौन से हैं? महाराज! लोक में १. माता, २. पिता, ३. स्त्री, ४. पुत्र, ५. बन्धु–बान्धव, ६. मित्र, ७. धन, ८. लाभ–सत्कार, ९.

दस लोके बन्धनानि, येहि बन्धनेहि बद्धा सत्ता न निक्खमन्ति, निक्खमित्वा पि पटिनिवत्तन्ति। तानि दस बन्धनानि बोधिसत्तस्स छिन्नानि पदालितानि। तस्मा, महाराज, बोधिसत्तो न पटिनिवत्तती'' ति।

''भन्ते नागसेन, यदि बोधिसत्तो उप्पन्ने अरतिचित्ते देवताय वचनेन अपरिपक्काय बोधिया नेक्खमभिनिक्खन्तो, किं तस्स दुक्करकारिकाय कताय, ननु नाम सब्बभक्खेन भवितब्बं ञाणपरिपाकं आगमयमानेना'' ति?

''दस खो, पनिमे महाराज, पुग्गला लोकस्मिं ओञाता अवञाता हीळिता खीळिता गरहिता परिभूता अचित्तिकता। कतमे दस? इत्थी, महाराज, विधवा लोकस्मिं ओञाता अवञाता हीळिता खीळिता गरहिता परिभूता अचित्तिकता। दुब्बलो, महाराज, पुग्गलो .... अमित्तञाति, महाराज, पुग्गलो .... महग्घसो, महाराज, पुग्गलो .... अगरुकुलवासिको, महाराज, पुग्गलो .... पापमित्तो, महाराज, पुग्गलो .... धनहीनो, महाराज, पुग्गलो .... आचारहीनो, महाराज, पुग्गलो .... कम्महीनो, महाराज, पुग्गलो .... पयोगहीनो, महाराज, पुग्गलो, लोकस्मिं ओञातो अवञातो हीळितो खीळितो गरहितो परिभूतो अचित्तिकतो। इमे खो, महाराज, दस पुग्गला लोकस्मिं ओञाता अवञाता हीळिता खीळिता गरहिता परिभूता अचित्तिकता। इमानि खो, महाराज, दस ठानानि अनुस्सरमानस्स बोधिसत्तस्स एवं सञ्ञा उप्पज्जि—'माहं कम्महीनो अस्सं पयोगहीनो गरहितो देवमनुस्सानं, यं नूनाहं कम्मस्सामी अस्सं कम्मगरु कम्माधिपतेय्यो कम्मसीलो कम्मधोरेय्यो कम्मनिकेतवा अप्पमत्तो विहरेय्यं' ति। एवं खो, महाराज, बोधिसत्तो ञाणं परिपाचेन्तो दुक्करकारिकं अकासी'' ति।

प्रभुता, १०. पाँच–कामगुण (पाँचों इन्द्रियों के भोग)। महाराज! यही दस संसार के वे बन्धन हैं, जिन में पड़ कर....। बोधिसत्त्व ने उन सभी दस बन्धनों को काट दिया था, सर्वथा नष्ट कर दिया था; महाराज! इसी से बोधिसत्त्व फिर नहीं लौट सकते थे।"

"भन्ते नागसेन! ज्ञान का पूर्ण परिपाक न होने पर भी यदि बोधिसत्त्व के हृदय में देवता का वचन सुन वैराग्य उत्पन्न हो गया था जिससे वे घर छोड़कर निकल गये थे, तो दुष्करचर्या से उनका क्या प्रयोजन था? उन्हें तो आनन्द से खाते–पीते अपने ज्ञान के परिपक्व होने की प्रतीक्षा करनी चाहिये थी?"

"महाराज! संसार में ऐस दस लोग हैं, जो अपमानित होते हैं, निन्दित होते हैं, नीच समझे जाते हैं, बुरे माने जाते हैं, अप्रतिष्ठित होते हैं, सभी जगह दबाये जाते हैं और जिनकी कोई भी अपेक्षा नहीं करता। कौन से दस? महाराज! १. विधवा स्त्री, २. कमजोर आदमी, ३. जिस के कोई मित्र और बन्धु–बान्धव न हों, ४. पेटू आदमी, ५. हीन कुल का, ६. बुरे लोगों के साथ रहने वाला, ७. निर्धन, ८. सामाजिक नियम न जानने–वाला ९. आलसी और १०. अयोग्य आदमी। महाराज! ये दस लोग लोक में अपमानित होते हैं, निन्दित होते हैं, नीच समझे जाते हैं, बुरे माने जाते हैं, अप्रतिष्ठित किये जाते हैं, सभी जगह दबाये जाते हैं और जिनकी तरफ कोई भी ध्यान नहीं देता। महाराज! इन दस बातों को स्मरण कर बोधिसत्त्व ने ऐसा विचारा— 'देवताओं और मनुष्यों में भी कहीं आलसी और अयोग्य समझ कर निन्दित न हो जाऊँ! अतः मुझे कर्मपरायण और कर्मशील रहना चाहिये। मुझे कभी असावधान नहीं रहना चाहिये।' महाराज! इसी से बोधिसत्त्व ने अपना ज्ञान पूर्ण करते हुये दुष्करचर्या का अभ्यास किया था।"

"भन्ते नागसेन, बोधिसत्तो दुक्करकारिकं करोन्तो एवमाह—'न खो पनाहं इमाय कटुकाय दुक्करकारिकाय अधिगच्छामि उत्तरिमनुस्सधम्मा अलमरियञाणदस्सनविसेसं, सिया नु खो अञ्ञो मग्गो बोधाया' ति। अपि नु तस्मिं समये बोधिसत्तस्स मग्गं आरब्भ सतिसम्मोसो अहोसी'' ति।

"पञ्चवीसति खो पनिमे, महाराज, चित्तदुब्बलीकरणा धम्मा, येहि दुब्बलीकतं चित्तं न सम्मा समाधियति आसवानं खयाय। कतमे पञ्चवीसति? कोधो, महाराज, चित्तस्स दुब्बलीकरणो धम्मो येन दुब्बलीकतं चित्तं न सम्मा समाधियति आसवानं खयाय। उपनाहो, मक्खो, पलासो, इस्सा, मच्छरियं, माया, साठेय्यं, थम्भो, सारम्भो, मानो, अतिमानो, मदो, पमादो, थीनमिद्धं, नन्दी, आलस्यं, पापमित्तता, रूपा, सद्दा, गन्धा, रसा, फोट्ठब्बा, खुदापिपासा, अरति, महाराज, चित्तदुब्बलीकरणो धम्मो, येन दुब्बलीकतं चित्तं न सम्मा समाधियति आसवानं खयाय। इमे खो, महाराज, पञ्चवीसति चित्तदुब्बलीकरणा धम्मा येहि दुब्बलीकतं चित्तं न सम्मा समाधियति आसवानं खयाय।

"बोधिसत्तस्स, महाराज, खुदापिपासा कायं परियादियिंसु, काये परियादिण्णे चित्तं न सम्मा समाधियति आसवानं खयाय। सतसहस्सं, महाराज, कप्पानं चतुरो च असङ्ख्येय्ये कप्पे बोधिसत्तो चतुन्नं येव अरियसच्चानं अभिसमयं अन्वेसि तासु तासु जातिसु, किं पनस्स पच्छिमे भवे अभिसमयजातियं मग्गं आरब्भ सतिसम्मोसो हेस्सति! अपि च, महाराज, बोधिसत्तस्स सञ्ञामत्तं उप्पज्जि—'सिया नु खो अञ्ञो मग्गो बोधिया' ति। पुब्बे खो, महाराज, बोधिसत्तो एकमासिको समानो पितु सक्कस्स कम्मन्ते सीताय जम्बुच्छायाय सिरिसयने

"भन्ते नागसेन! बोधिसत्त्व ने दुष्करचर्या का अभ्यास करते हुए कहा था— 'इस कठोर दुष्करचर्या से मैं उस अलौकिक परमज्ञान को साक्षात् नहीं कर सकूँगा। बुद्धत्व पाने का क्या कोई दूसरा मार्ग होगा?' तो क्या उस समय मार्ग निश्चित करने में बोधिसत्त्व किङ्कर्तव्यविमूढ़ गये थे?"

"महाराज! चित्त को दुर्बल बना देने वाली पचीस बातें हैं, जिनके कारण आस्रवों का क्षय करने में चित्त स्थिर नहीं हो पाता। कौन सी पचीस बातें? महाराज! १. क्रोध, २. डाह, ३. डींग मारना, ४. घमण्ड, ५. ईर्ष्या, ६. लोलुपता, ७. झूठी शान, ८. शठता, ९. दुराग्रह, १०. कलहप्रियता, ११–१२. अपने को बड़ा, सबसे बड़ा समझना, १३. मद, १४. प्रमाद, १५. स्त्यान, १६. तन्द्रा, १७. आलस्य, १८. दुर्जन–मित्रता, १९. रूप, २०. शब्द, २१. गन्ध, २२. स्पर्श, २३. भूख, २४. प्यास, २५. असन्तोष— महाराज! चित्त को दुर्बल बना देने वाली ये पचीस बातें हैं; जिनके कारण आस्रवों का क्षय करने में चित्त स्थिर नहीं हो पाता।

"महाराज! उस समय इनमें से भूख और प्यास बोधिसत्त्व के शरीर को दबाये हुई थी। भूख और प्यास से शरीर के इस प्रकार दबे रहने के कारण आस्रवों का क्षय करने में उनका चित्त स्थिर नहीं हो पा रहा था। महाराज! चार असंख्य एक लाख कल्पों से बोधिसत्त्व जन्म–जन्म में चार आर्यसत्यों को साक्षात्कार करने में प्रयत्नशील थे। तो क्या अन्तिम जन्म में आकर जब उन्हें आर्यसत्यों का साक्षात्कार होने वाला था; वे अपने मार्ग से विचलित हो जाते! महाराज! अपितु बोधिसत्त्व को यह संकेत मिल गया था कि अवश्य कोई न कोई दूसरा ही मार्ग होगा। महाराज! बोधिसत्त्व तो पहले ही, जब वे केवल एक महीने के थे, अपने पिता शाक्य शुद्धोदन के काम में फँसे रहने के समय जम्बू (जामुन) वृक्ष की ठण्ढी

पल्लङ्कं आभुजित्वा निसिन्नो विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहासि .... पे० .... चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहासी'' ति।

''साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामि। ञाणं परिपाचेन्तो बोधिसत्तो दुक्करकारिकं अकासी'' ति।

३. कुसलाकुसलबलवतरपञ्हो

५. ''भन्ते नागसेन, कतमं अधिमत्तं बलवतरं, कुसलं वा अकुसलं वा'' ति? ''कुसलं, महाराज, अधिमत्तं बलवतरं, नो तथा अकुसलं'' ति। ''नाहं, भन्ते नागसेन, तं वचनं सम्पटिच्छामि—'कुसलं अधिमत्तं बलवतरं नो तथा अकुसलं' ति। दिस्सन्ति, भन्ते नागसेन, इध पाणातिपातिनो अदिन्नादायिनो कामेसु मिच्छाचारिनो मुसावादिनो गामघातका पन्थदूसका नेकतिका वञ्चनिका, सब्बे ते तावतकेन पापेन लभन्ति हत्थच्छेदं पादच्छेदं हत्थपादच्छेदं कण्णच्छेदं नासच्छेदं कण्णनासच्छेदं बिलङ्गथालिकं सङ्खमुण्डिकं राहुमुखं जोतिमालिकं हत्थपज्जोतिकं एरकवत्तिकं चीरकवासिकं एणेय्यकं बळिसमंसिकं कहापणकं खारापतच्छिकं पलिघपरिवत्तिकं पलालपीठकं, तत्तेन पि तेलेन ओसिञ्चनं, सुनखेहि पि खादापनं, सूलारोपनं, असिना पि सीसच्छेदनं। केचि रत्तिं पापं कत्वा रत्तिं येव विपाकं अनुभवन्ति, केचि रत्तिं कत्वा दिवा येव अनुभवन्ति, केचि दिवा कत्वा दिवा येव अनुभवन्ति, केचि दिवा कत्वा रत्तिं येव अनुभवन्ति। केचि द्वे तयो दिवसे वीतिवत्ते अनुभवन्ति। सब्बे पि ते दिट्ठेव धम्मे विपाकं अनुभवन्ति। अत्थि पन, भन्ते नागसेन, कोचि एकस्स वा द्विन्नं वा

छाया में सुन्दर पलने पर पद्मासन लगा कर बैठे, काम और अकुशल धर्मों से रहित हो, वितर्क और विचार के साथ, विवेक से उत्पन्न, प्रीतिसुख वाले उस प्रथम ध्यान तक पहुँच गये थे। उसी तरह, उन्होंने दूसरा, तीसरा और चौथा ध्यान भी प्राप्त कर लिया था।"

"ठीक है, भन्ते नागसेन! ऐसी ही बात है। मैं आपका कथन मान लेता हूँ कि अपने ज्ञान को पूर्ण करते हुये बोधिसत्त्व ने दुष्करचर्या का अभ्यास किया था।"

३. पापपुण्यबलविषयकप्रश्न— ५. "भन्ते नागसेन! अधिक बलवान् कौन होता है, पाप या पुण्य?" "महाराज! पुण्य ही अधिक बलवान् होता है; पाप नहीं होता।" "भन्ते नागसेन! कितने लोग हैं, जो हत्या कर डालते हैं, चोरी, व्यभिचार, असत्य–भाषण, सारे गाँव में लूटपाट, रहजनी, ठगी या छल करते हैं। उतने ही पाप के लिये उनका हाथ काट दिया जाता है, पैर काट दिया जाता है, हाथ और पैर दोनों काट दिये जाते हैं, कान काट दिया जाता है, नाक काट दी जाती है, कान और नाक दोनों काट दिया जाते हैं, और उन्हें बिलङ्गथालिक, ... इत्यादि १७ कठोर राजदण्ड[1] दिये जाते हैं, और जिस रात्रि में पाप करते हैं, उसी रात्रि में उसका फल भी भोग लेते हैं; कितने लोग जिस रात्रि में पाप करते हैं, उसे दूसरे दिन ही फल पाते हैं; कितने लोग जिस दिन या रात्रि में पाप करते हैं, उसी दिन उसका फल पा लेते हैं, कितने लोग आज पाप कर दो तीन दिन बाद उसका फल पाते हैं। वे सभी देखते–देखते इसी जन्म में अपनी करनी का फल पा लेते हैं। भन्ते नागसेन! किन्तु क्या ऐसा भी कोई है जिसने परिष्कारों के साथ एक, दो, तीन, चार, पाँच, दस, सौ, हजार या लाख भिक्षुओं को दान देकर, अथवा शील–

---

१. इन १७ राजदण्डों का वर्णन पीछे आ चुका है; इसलिये यहाँ उनके नाम नहीं दिये गये।

तिण्णं वा चतुन्नं वा पञ्चन्नं वा दसन्नं वा सतस्स वा सतसहस्सस्स वा सपरिवारं दानं दत्वा दिट्ठधम्मिकं भोगं वा यसं वा सुखं वा अनुभविता, सीलेन वा उपोसथकम्मेन वा'' ति?

६. ''अत्थि, महाराज, चत्तारो पुरिसा दानं दत्वा सीलं समादियित्वा उपोसथकम्मं कत्वा दिट्ठेव धम्मे तेनेव सरीरदेहेन तिदसपुरे समनुप्पत्ता'' ति। ''को च को च, भन्ते'' ति? ''मन्धाता, महाराज! राजा, निमि राजा, साधीनो राजा, गुत्तिलो च गन्धब्बो'' ति।

''भन्ते नागसेन, अनेकेहि तं भवसहस्सेहि अन्तरितं, द्विन्नं पि अम्हाकं एतं परोक्खं। यदि समत्थो सि, वत्तमानके भवे भगवतो धरमानकाले कथेही'' ति? ''वत्तमानके पि, महाराज, भवे पुण्णको दासो थेरस्स सारिपुत्तस्स भोजनं दत्वा तदहेव सेट्ठिट्ठानं अज्झुपगतो, सो एतरहि 'पुण्णको सेट्ठो' ति पञ्ञायि। गोपालमाता देवी अत्तनो केसे विक्किणित्वा लद्धेहि अट्ठहि कहापणेहि थेरस्स महाकच्चायनस्स अत्तट्ठमकस्स पिण्डपातं दत्वा तदहेव रञ्ञो चण्डपज्जोतस्स अग्गमहेसित्तं पत्ता। सुप्पिया उपासिका अञ्ञतरस्स गिलानभिक्खुनो अत्तनो ऊरुमंसेन पटिच्छादनियं दत्वा दुतियदिवसे येव रुळ्हवणा सच्छवी अरोगा जाता। मल्लिका देवी भगवतो अभिदोसिकं कुम्मासपिण्डं दत्वा तदहेव रञ्ञो कोसलस्स अग्गमहेसी जाता। सुमनो मालाकारो अट्ठहि सुमनपुप्फमुट्ठीहि भगवन्तं पूजेत्वा तं दिवसं येव महासम्पत्तिं पत्तो। एकसाटको ब्राह्मणो उत्तरसाटकेन भगवन्तं पूजेत्वा तं दिवसं येव सब्बट्ठकं लभि। सब्बे पेते, महाराज, दिट्ठधम्मिकं भोगं च यसं च अनुभविंसू'' ति।

''भन्ते नागसेन, विचिनित्वा परियेसित्वा छ जने येव अद्दसासी'' ति। ''आम, महाराजा'' ति। ''तेन हि, भन्ते नागसेन, अकुसलं येव अधिमत्तं बलवतरं, नो यथा अकुसलं।

पालन कर, या उपोसथ व्रत रख कर अपने देखते ही देखते इसी जन्म में सम्पत्ति, यश या सुख पा लिया हो?''

६. ''हाँ, महाराज! ऐसे चार पुरुष हैं, जो दान देकर शील का पालन कर और उपोसथ व्रत रखकर अपने देखते ही देखते शरीर से देवलोक में भी प्रतिष्ठित हुए हैं।'' ''भन्ते! वे कौन कौन हैं?'' ''महाराज! १. राजा मान्धाता, २. राजा निमि, ३. राजा स्वाधीन, और ४. गुत्तिल गन्धर्व।''

''भन्ते! ये राजा हम लोगों से कई हजार वर्ष पूर्व के हैं। न उन्हें आपने देखा और न मैंने। क्या भगवान् के समय की कोई ऐसी बात हम कह सकते हैं?'' ''महाराज! इस युग में भी १. पुण्णक नाम का दास स्थविर शारिपुत्र को भोजन देकर उसी दिन सेठ हो गया था। वह आज भी 'पुण्णक सेठ' के नाम से जाना जाता है। २. रानी गोपालमाता अपने शिर के केशों को आठ कार्षापण (उस समय का सिक्का) में बेच कर महाकात्यायन और उनके सात साथियों को पिण्डपात (भिक्षा) दे कर उसी दिन चण्डप्रद्योत राजा की पटरानी हो गयी। ३. सुप्रिया नाम की उपासिका किसी रोगी भिक्षु को अपनी जाँघ के माँस का पथ्य देकर दूसरे ही दिन स्वस्थ हो गयी थी, और उसका व्रण भर गया था। ४. मल्लिका देवी भगवान् को कुल्मासपिण्ड मट्ठा दे कर उसी दिन कोसलराज की पटरानी हो गयी थी। ५. सुमन नाम का माली आठ मुट्ठी फूलों से भगवान् का पूजन कर उसी दिन महासम्पत्तिशाली हो गया था। ६. एकसाटक नामक ब्राह्मण भगवान् की उत्तरसाटक (चीवर) से पूजा कर उसी दिन सर्वार्थसम्पन्न हो गया। महाराज! ये सभी अपने देखते ही देखते इसी जन्म में भोग और यश को प्राप्त हुये थे।''

''भन्ते नागसेन! बहुत खोज कर आप ने इन छह लोगों का नाम गिनाया! भन्ते नागसेन! इससे

अहं हि, भन्ते नागसेन, एक दिवसं येव दस पि पुरिसे पस्सामि पापस्स कम्मस्स विपाकेन सूलेसु आरोपेन्ते, वीसतिं पि तिसं पि चत्ताळीसं पि पञ्ञासं पि पुरिसे पुरिससतं पि पुरिससहस्सं पि पस्सामि पापस्स कम्मस्स विपाकेन सूलेसु आरोपेन्ते। नन्दकुलस्स, भन्ते नागसेन, भद्दसालो नाम सेनापतिपुत्तो अहोसि, तेन च रञ्ञा चन्दगुत्तेन सङ्गामो समुपब्यूळ्हो अहोसि। तस्मिं खो पन, भन्ते नागसेन, सङ्गामे उभतो बलकाये असीति कबन्धरूपानि अहेसुं। एकस्मिं किर सीसकलन्दे परिपाते एकं कबन्धरूपं उट्ठहति, सब्बे पेते पापस्स येव कम्मस्स विपाकेन अनयब्यसनं आपन्ना। इमिना पि, भन्ते नागसेन, कारणेन भणामि— 'अकुसलं येव अधिमत्तं बलवतरं, नो तथा कुसलं'' ति।

''सुय्यति, भन्ते नागसेन, इमस्मिं बुद्धसासने कोसलेन रञ्ञा असदिसदानं दिन्नं'' ति?''आम, महाराज, सुय्यती'' ति।''अपि नु खो, भन्ते नागसेन, कोसलराजा तं असदिसदानं दत्वा ततोनिदानं किञ्चि दिट्ठधम्मिकं भोगं वा यसं वा पटिलभी'' ति? ''न हि, महाराजा'' ति। ''यदि, भन्ते नागसेन, कोसलराजा एवरूपं अनुत्तरं दानं दत्वा पि न लभि ततोनिदानं दिट्ठधम्मिकं भोगं वा यसं वा सुखं वा, तेन हि, भन्ते नागसेन, अकुसलं येव अधिमत्तं बलवतरं, नो तथा कुसलं'' ति?

''परित्तता, महाराज, अकुसलं खिप्पं परिणमति, विपुलत्ता कुसलं दीघेन कालेन परिणमति। उपमाय पि, महाराज, एतं उपपरिक्खितब्बं। यथा, महाराज, अपरन्ते जनपदे कुमुदभण्डिका नाम धञ्ञजाति मासलूना अन्तोगेहनता होति, सालियो छप्पञ्चमासेहि परिणमन्ति। किं पनेत्थ, महाराज, अन्तरं को विसेसो कुमुदभण्डिकाय च सालीनं चा'' ति?

तो यही ज्ञात होता है कि पुण्य से पाप ही अधिक बलवान् है, पाप से पुण्य नहीं। भन्ते नागसेन! मैं तो केवल एक ही दिन दस, तीस, चालीस, पचास, सौ और हजार पुरुषों को भी अपने पाप के कारण शूली पर चढ़ते देखता हूँ। भन्ते नागसेन! नन्द वंश के सेनापति को भद्रशाल नामक एक पुत्र था। उसका राजा चन्द्रगुप्त के साथ युद्ध छिड़ गया। उस युद्ध में दोनों सेनाओं की ओर से अस्सी कबन्धरूप थे। एक शीर्षकबन्ध (सिर कटे धड़) के गिर जाने पर दूसरा शीर्षकबन्ध उठ खड़ा होता था। ये सभी अपने पाप के कारण ही यह घोर दुःख झेल रहे थे। भन्ते नागसेन! इसलिये मैं कहता हूँ कि पुण्य से पाप ही अधिक बलवान् है, पाप से पुण्य नहीं।

"भन्ते नागसेन! बुद्धधर्म में सुना जाता है कि कोसलराज ने अनुपम दान दिया था?" "हाँ, महाराज! सुना तो जाता है।" "भन्ते नागसेन! क्या कोसलराज ने यह अनुपम दान करने के बाद, उसके कारण, देखते ही देखते इसी जन्म में कुछ भोग, यश या सुख पाया था?" "नहीं, महाराज!" "यदि कोसलराज को ऐसा अलौकिक दान करने से भी देखते ही देखते इसी जन्म में कुछ ऐश्वर्य, यश या सुख नहीं मिला तो इससे यही ज्ञात होता है कि पुण्य से पाप ही अधिक बलवान् है, पाप से पुण्य नहीं।"

"महाराज! पर्याप्त (थोड़ा) होने के कारण पाप शीघ्र ही अपना फल दिखा देता है; अपर्याप्त (बड़ा) होने के कारण पुण्य का फल देर से मिलता है। महाराज! उपमा देकर भी यह समझाया जा सकता है— महाराज! जैसे अपरान्त देश में कुमुदभण्डिका नामक जाति का एक धान है, जो एक ही महीने में काट कर घर में ले आया जाता है। शालि धान पाँच छह महीनों में पकता है। महाराज! तो यहाँ कुमुदभण्डिका और शालि धान में क्या अन्तर है, क्या भेद है?" "भन्ते! कुमुदभण्डिका का छोटा होना

"परित्तता, भन्ते, कुमुदभण्डिकाय, विपुलता च सालीनं। सालियो, भन्ते नागसेन, राजारहा राजभोजनं, कुमुदभण्डिका दासकम्मकरानं भोजनं" ति। "एवमेव खो, महाराज, परित्तता अकुसलं खिप्पं परिणमति, विपुलत्ता कुसलं दीघेन कालेन परिणमती" ति।

"यं तत्थ, भन्ते नागसेन, खिप्पं परिणमति तं नाम लोके अधिमत्तं बलवतरं। तस्मा अकुसलं अधिमत्तं बलवतरं, नो तथा कुसलं। यथा नाम, भन्ते नागसेन, यो कोचि योधो महतिमहायुद्धं पविसित्वा पटिसत्तुं उपकच्छके गहेत्वा आकड्ढित्वा खिप्पतरं सामिनो उपनेय्य, सो योधो लोके समत्थो सूरो नाम। यो च भिसक्को खिप्पं सल्लं उद्धरति रोगमपनेति, सो भिसक्को छेको नाम। यो गणको सीघसीघं गणेत्वा खिप्पं दस्सयति, सो गणको छेको नाम। यो मल्लो खिप्पं पटिमल्लं उक्खिपित्वा उत्तानकं पातेति, सो मल्लो समत्थो सूरो नाम। एवमेव खो, भन्ते नागसेन, यं खिप्पं परिणमति कुसलं वा अकुसलं वा, तं लोके अधिमत्तं बलवतरं" ति?

"उभयं पि तं, महाराज, कम्मं सम्परायवेदनीयमेव, अपि च खो अकुसलं सावज्जताय खणेन दिट्ठधम्मवेदनीयं होति। पुब्बकेहि, महाराज, खत्तियेहि ठपितो एसो नियमो— 'यो पाणं हनति सो दण्डारहो, यो अदिन्नं आदियति....यो परदारं गच्छति....यो मुसा भणति....यो गामं घातेति.... यो पन्थं दूसेति.... यो निकतिं करोति....यो वञ्चनं करोति सो दण्डारहो वधितब्बो छेत्तब्बो भेत्तब्बो हन्तब्बो' ति। तं ते उपादाय विचिनित्वा विचिनित्वा दण्डेहि वधेन्ति छिन्दन्ति भिन्दन्ति हनन्ति च। अपि नु, महाराज, अत्थि केहिचि ठपितो नियमो— 'यो दानं वा देति, सीलं वा रक्खति, उपोसथकम्मं वा करोति, तस्स धनं वा यसं वा दातब्बं'

और शालि धान का बड़ा होना। इसी से एक बहुत जल्दी तैयार हो जाता है और दूसरा विलम्ब से। भन्ते! शालि चावल राजभोग्य होता है, उसे राजा लोग खाते हैं, और कुमुदभण्डिका चावल दास–दासी खाते हैं।" "इसी तरह महाराज! छोटा होने के कारण पाप शीघ्र ही अपना फल दिखा देता है; बड़ा होने के कारण पुण्य का फल विलम्ब से मिलता है।"

"भन्ते नागसेन! ठीक है! तो भी जिसका फल शीघ्र मिल जाता है, वही संसार में अधिक बलवान् समझा जाता है। इसलिये पुण्य से पाप ही अधिक बलवान् है, पाप से पुण्य नहीं। भन्ते नागसेन! (१) जो सिपाही घमासान युद्ध में घुसकर शत्रु को काँख से पकड़ जल्द ही अपने स्वामी के पास घसीट लाता है, वही वीर और बहादुर कहा जाता है। (२) जो वैद्य शीघ्रता से शल्य–चिकित्सा कर रोगी को ठीक कर देता है, वही वैद्य चतुर समझा जाता है। (३) जो मुनीम (गणक) शीघ्रता से गणना लगाकर खाता मिला देता है, वही योग्य समझा जाता है। (४) जो पहलवान् अपने प्रतिद्वन्द्वी को शीघ्र पटक कर चित्त कर देता है, वही अच्छा समझा जाता है। भन्ते नागसेन! तैसे ही पाप या पुण्य जो अपना फल शीघ्र दिखा देता है, वही अधिक बलवान् है?"

"महाराज! दोनों कर्मों का फल दूसरे जन्म में मिलेगा; किन्तु पाप अशुभ होने के कारण यहाँ भी अशुभ परिणाम लाता है। महाराज! पूर्व काल के राजाओं ने यह नियम बना दिया था कि जो हत्या करेगा उसे दण्ड दिया जायगा; जो चोरी करेगा, जो झूठ बोलेगा, जो गाँव में लूट–पाट मचावेगा, जो रहजनी करेगा, जो ठगी करेगा और जो छल करेगा, उसे दण्ड दिया जायगा, उसे फाँसी दे दी जायगी, उसके अङ्ग काट लिये जायेंगे तथा उसे कोड़े लगाये जायेंगे। उसी के अनुसार वे (आज भी) समीक्षा कर दण्ड देते हैं। महाराज! क्या ऐसा भी नियम किसी ने बनाया है कि जो दान करेगा, शील का पालन

ति? अपि नु तं विचिनित्वा विचिनित्वा धनं वा यसं वा देन्ति, चोरस्स कतकम्मस्स वधबन्धनं विया'' ति?''न हि, भन्ते'' ति।''यदि, महाराज, दायकानं विचिनित्वा विचिनित्वा धनं वा यसं वा ददेय्युं, कुसलं पि दिट्ठधम्मवेदनीयं भवेय्य। यस्मा च खो, महाराज, दायके न विचिनन्ति— 'धनं वा यसं वा दस्सामा' ति, तस्मा कुसलं न दिट्ठधम्मवेदनीयं। इमिना, महाराज, कारणेन अकुसलं दिट्ठधम्मवेदनीयं, सम्पराये व सो अधिमत्तं बलवतरं वेदनं वेदियतो'' ति।

''साधु, भन्ते नागसेन, तवादिसेन बुद्धिमन्तेन विना नेसो पञ्हो सुनिब्बेठियो। लोकियं, भन्ते नागसेन, लोकुत्तरेन विञ्ञापितं'' ति।

४. पुब्बपेतादिसपञ्हो

७. ''भन्ते नागसेन, इमे दायका दानं दत्वा पुब्बपेतानं आदिसन्ति—'इमं तेसं पापुणातू' ति। अपि नु ते कचि ततोनिदानं विपाकं पटिलभन्ती'' ति?''केचि, महाराज, पटिलभन्ति, केचि न पटिलभन्ती'' ति।''के, भन्ते, पटिलभन्ति, के न पटिलभन्ती'' ति?''निरयूपपन्ना, महाराज, न पटिलभन्ति, सग्गगता न पटिलभन्ति, तिरच्छानयोनिगता न पटिलभन्ति, चतुन्नं पेतानं तयो पेता न पटिलभन्ति— वन्तासिका, खुप्पिपासिनो, निज्झामतण्हिका। लभन्ति पेता परदत्तूपजीविनो, ते पि सरमाना येव लभन्ती'' ति।

''तेन हि, भन्ते नागसेन, दायकानं दानं विस्सोसितं होति अफलं, येसं उद्दिस्स कतं यदि ते न पटिलभन्ती'' ति?''न हि तं, महाराज, दानं अफलं होति अविपाकं, दायका येव

करेगा, या उपोसथ व्रत रखेगा, उसे पुरस्कार और सम्मान दिया जायगा। क्या कोई पुण्य करने वालों को पुरस्कार देता है, जैसे चोरों को दण्ड?" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! यदि पुण्य करने वालों को पुरस्कार दिये जाने का नियम बना दिया जाय तो भी पुण्य भी (पाप की तरह) इसी जन्म में फल देने वाला हो जाय। महाराज! क्योंकि पुण्य करने वालों को पुरस्कार दिये जाने के नियम नहीं है, इसीलिये, पुण्य इसी जन्म में फलप्रद नहीं होता; महाराज! इसी कारण पाप इस जन्म में ही फल देता है (किन्तु पुण्य नहीं) पुण्य तो दूसरे जन्म में ही अत्यन्त प्रभावशाली फल दिखाता है।"

"ठीक है, भन्ते नागसेन! आप जैसे बुद्धिमान् को छोड़ कोई दूसरा इस प्रश्न का इतना स्पष्ट उत्तर नहीं दे सकता था। भन्ते! जिस प्रश्न को मैंने लौकिक दृष्टि से पूछा था, उसे आपने लोकोत्तर विचार से समझा दिया।"

४. प्रेतनिमित्तक दान— ७. "भन्ते नागसेन! कितने लोग दान दे कर उसका पुण्य मरे हुए पूर्वजों को देते हैं। उससे क्या उनको कुछ फल मिलता है?" "महाराज! कुछ को मिलता है और कुछ को नहीं।" "भन्ते! किनको मिलता है और किनको नहीं?" "महाराज! जो निरय (नरक) स्वर्ग पहुँच गये हैं, पशु-पक्षी आदि नीच योनियों में जिनका जन्म हो गया हो या प्रेतयोनि में आये तीन प्रकार के पूर्वजों को नहीं मिलता— (१) वन्तासिक (वमन खाने वाले), (२) खुप्पिपासी (जो भूख और प्यास से बेचैन रहते हैं) और (३) निज्झामतण्हिक (प्यास से जलते हुए)। परन्तु जो 'परदत्तोपजीवी' प्रेत हैं, उन्हें अवश्य मिलता है। उन्हें भी स्मरण रखने से ही मिलता है।"

"भन्ते नागसेन! तब तो उनका दान निरर्थक होता है, जिसका कुछ फल ही नहीं। जिसके नाम से दान दिया जाता है, उसे कोई पुण्य न मिलने से वह दान तो व्यर्थ ही हुआ?" "नहीं, महाराज! वह

तस्स फलं अनुभवन्ती'' ति। ''तेन हि, भन्ते नागसेन, कारणेन मं सञ्ञापेही'' ति? ''इध, महाराज, केचि मनुस्सा मच्छमंससुराभत्तखज्जकानि पटियादेत्वा ञातिकुलं गच्छन्ति। यदि ते ञातका तं उपायनं न सम्पटिच्छेय्युं, अपि नु तं उपायनं विस्सोसितं गच्छेय्य विनस्सेय्य वा'' ति?'' न हि, भन्ते, सामिकानं येव तं होती'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, दायका येव तस्स फलं अनुभवन्ति। यथा वा पन, महाराज, पुरिसो गब्भं पविट्ठो असति पुरतो निक्खमनमुखे केन निक्खमेय्या'' ति? ''पविट्ठेनेव, भन्ते'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, दायका येव तस्स फलं अनुभवन्ती'' ति। ''होतु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामि— 'दायका, येव तस्स फलं अनुभवन्ति। न मयं तं कारणं विलोमेमा' '' ति।

''भन्ते नागसेन, यदि इमेसं दायकानं दिन्नं दानं पुब्बपेतानं पापुणाति, ते च तस्स विपाकं अनुभवन्ति, तेन हि यो पाणातिपाती लुद्दो लोहितपाणी पदुट्ठमनसङ्कप्पो मनुस्से घातेत्वा दारुणं कम्मं कत्वा पुब्बपेतानं आदिसेय्य— 'इमस्स मे कम्मस्स विपाको पुब्बपेतानं पापुणातू' ति, अपि नु विपाको तस्स पुब्बपेतानं पापुणाती'' ति? ''न हि, महाराजा'' ति।

''भन्ते नागसेन, को तत्थ हेतु, किं कारणं येन कुसलं पापुणाति अकुसलं न पापुणाती'' ति? ''नेसो, महाराज, पञ्हो पुच्छितब्बो; मा च त्वं महाराज, 'विस्सज्जको अत्थी' ति अपुच्छितब्बं पुच्छि। किस्स आकासो निरालम्बो? किस्स गङ्गा उद्धमुखा न सन्दति? किस्स इमे मनुस्सा च दिजा च द्विपदा? मिगा चतुप्पदा? ति, तं पि मं त्वं पुच्छिस्ससी'' ति। ''नाहं तं, भन्ते नागसेन, विहेसापेक्खो पुच्छामि, अपि च निब्बाहनत्थाय सन्देहस्स पुच्छामि। बहुमनुस्सा लोके वामगामिनो विचक्खुका, 'किं ति ते ओतारं न लभेय्युं' ति एवाहं तं पुच्छामी'' ति।

दान विना किसी फल वाला और व्यर्थ नहीं होता। देने वाले को ही उसका फल मिलता है।" "भन्ते! कृपया इसे कारण दे कर समझावें।" "महाराज! जैसे कोई मछली, मांस, मद्य, भात या अन्य भोजन तैयार कर अपने सम्बन्धी कुल में ले जाय! यदि उसके सम्बन्धी उस भेंट को स्वीकार न करें तो क्या वह सब कुछ नष्ट हो जायगा?" "नहीं, भन्ते! वह जिसका था, उसी का रहेगा।" "महाराज! इसी तरह, देने वाले को ही उसका फल मिलता है। अथवा, महाराज! जैसे कोई आदमी किसी कोठरी में प्रविष्ट हो जिससे निकलेने का कोई दूसरा द्वार सामने न हो, तो वह किस रास्ते से निकलेगा?" "भन्ते! उसी रास्ते से जिस रास्ते से घुसा था।" "महाराज! इसी तरह, देने वाले को ही उसका फल मिलता है।" "भन्ते! अस्तु, यही सही! मैं मान लेता हूँ कि उसका फल देने वाले को ही मिलता है। इस बात को मैं और नहीं काटता।

"भन्ते! यदि दिये हुये दान का पुण्य पूर्वजों तक पहुँच जाता है और वे इसका फल पा लेते हैं, तब यदि कोई हत्यारा, रक्तपिपासु नीच विचार से मनुष्यों को मार कर घोर पाप कर, उस कर्म को पूर्वजों के नाम दे दे— 'इसका फल पूर्वजों को मिले'— तो क्या यथार्थ में उसका फल पूर्वजों को मिलेगा?" "नहीं, महाराज!"

"भन्ते नागसेन! इसका क्या कारण है कि पुण्य कर्मों के फल तो पूर्वजों तक पहुँचा दिये जा सके हैं, किन्तु पाप कर्मों के नहीं?" "महाराज! यह प्रश्न पूछने योग्य नहीं था। महाराज! यह समझ कर कि कुछ न कुछ उत्तर मिलेगा ही आप विना सिर–पैर के प्रश्न न पूछें। इसके बाद सम्भवतः आप यह पूछने लगें— आकाश निरालम्ब क्यों है? गङ्गा उलटी धारा में क्यों नहीं बहती? मनुष्य और पक्षी को दो

८. "न सक्का, महाराज, सह अकतेन अननुमतेन सह पापं कम्मं संविभजितुं। यथा, महाराज, मनुस्सा उदकनिब्बाहनेन उदकं सुविदूरं पि हरन्ति, अपि नु, महाराज, सक्का घनमहासेलपब्बतो निब्बाहनेन यथिच्छितं हरितुं" ति? "न हि, भन्ते" ति। "एवमेव खो, महाराज, सक्का कुसलं संविभजितुं, न सक्का अकुसलं संविभजितुं।

"यथा वा पन, महाराज, सक्का तेलेन पदीपो जालेतुं, अपि नु, महाराज, सक्का उदकेन पदीपो जालेतुं" ति? "न हि, भन्ते" ति। "एवमेव खो, महाराज, सक्का कुसलं संविभजितुं, न सक्का अकुसलं संविभजितुं। यथा वा पन, महाराज, कस्सका तळाकतो उदकं नीहरित्वा धञ्ञं परिपाचेन्ति, अपि नु खो, महाराज, सक्का महासमुद्दतो उदकं नीहरित्वा धञ्ञं परिपाचेतुं" ति? "न हि, भन्ते" ति। "एवमेव खो, महाराज, सक्का कुसलं संविभजितुं, न सक्का अकुसलं संविभजितुं" ति।

"भन्ते नागसेन, केन कारणेन सक्का कुसलं संविभजितुं, न सक्का अकुसलं संविभजितुं? कारणेन मं सञ्ञापेहि, नाहं अन्धो अनालोको, सुत्वा वेदिस्सामी" ति? "महाराज, अकुसलं थोकं, कुसलं बहुकं, थोकत्ता कत्तारं येव परियादियति, बहुकत्ता कुसलं सदेवकं लोकं अज्झोत्थरती" ति।

"ओपम्मं करोही" ति।

"यथा, महाराज, परित्तं एकं उदकबिन्दु पठवियं निपतेय्य, अपि नु खो तं, महाराज, उदकबिन्दु दस पि द्वादस पि योजनानि अज्झोत्थरेय्या" ति? "न हि, भन्ते, यत्थ तं उदकबिन्दु

ही पैर क्यों होते हैं? मृग चौपाये क्यों हैं?" "भन्ते नागसेन! मैं आप से परिहास के लिये नहीं, किन्तु अपना सन्देह मिटाने के लिये ही पूछ रहा हूँ। संसार में कितने लोग बड़े बढ़े और उलटी समझवाले होते हैं, 'अपने को वे क्यों न सुधार लें— इसी विचार से मैं पूछता हूँ? "

८. "महाराज! पाप का फल उसे नहीं लग सकता, जिसे न तो उसने किया हो और न उसके लिये अपनी सम्मति दी हो। महाराज! जैसे नाली से लोग जल को दूर–दूर तक ले जाते हैं; क्या उसी तरह वे घने पत्थर का पहाड़ भी ले जा सकते हैं?" "नहीं, भन्ते !" "महाराज! उसी तरह पुण्यकर्म के फल तो पूर्वजों को दिये जा सकते हैं, किन्तु पापकर्म के नहीं।

"महाराज! जैसे तैल से तो दीपक जलाया ही जाता है, क्या जल से भी कोई जला सकता है?" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! उसी तरह, पुण्यकर्म के फल तो पूर्वजों को दिये जा सकते हैं, किन्तु पाप कर्म के नहीं। महाराज! किसान तालाब से पानी ला कर धान को सींचते हैं, क्या समुद्र से ला कर भी सींच सकते हैं?" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! उसी तरह, पुण्य कर्म के फल तो पूर्वजों को दिये जा सकते हैं, किन्तु पाप कर्म के नहीं।"

"भन्ते नागसेन! किन्तु ऐसी बात क्यों है? कृपया कारण देकर समझावें। मैं अन्धा और बुद्धिहीन नहीं हूँ। पुष्ट प्रमाण को सुनकर ही मानूँगा?" "महाराज! पाप लघु है; पुण्य महान् है। पाप लघु होने के कारण कर्त्ता को ही फल दे सकता है। पुण्य महान् होने के कारण देवताओं और मनुष्यों के साथ सारे संसार को आवृत कर लेता है।"

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज! जैसे पृथ्वी पर एक बूँद जल गिर जाय तो क्या वह दस बारह योजन तक फैल सकता है?" "नहीं, भन्ते! एक बूँद जल तो जहाँ गिरेगा, वहीं सूख जायगा।" "महाराज! ऐसा क्यों होता

निपतितं तत्थेव परियादियती'' ति। ''केन कारणेन, महाराजा'' ति? ''परित्तता, भन्ते, उदकबिन्दुस्सा'' ति।''एवमेव खो, महाराज, परित्तं अकुसलं, परित्तता कत्तारं येव परियादियति, न सक्का संविभजितुं।

''यथा वा पन, महाराज, महतिमहामेघो अभिवस्सेय्य तप्पयन्तो धरणितलं, अपि नु खो सो, महाराज, महामेघो समन्ततो ओत्थरेय्या'' ति? ''आम, भन्ते, पूरयित्वा सो महामेघो सोब्भसरसरितसाखाकन्दरपदरदहतळाकउदपानपोक्खरणियो दस पि द्वादस पि योजनानि अज्झोत्थरेय्या'' ति। ''केन कारणेन, महाराजा'' ति? ''महन्तत्ता, भन्ते, मेघस्सा'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, कुसलं बहुकं, बहुकत्ता सक्का देवमनुस्सेहि पि संविभजितुं'' ति।

''भन्ते नागसेन, केन कारणेन अकुसलं थोकं, कुसलं बहुतरं'' ति? ''इध, महाराज, यो कोचि दानं देति सीलं समादियति, उपोसथकम्मं करोति, सो हट्ठो पहट्ठो हसितो पमुदितो पसन्नमानसो वेदजातो होति। तस्स अपरापरं पीति उप्पज्जति। पीतिमनस्स भिय्यो भिय्यो कुसलं पवड्ढति।

''यथा, महाराज, उदपाने बहुसलिलसम्पुण्णे एकेन देसेन उदकं पविसेय्य एकेन निक्खमेय्य, निक्खमन्ते पि अपरापरं उप्पज्जति, न सक्का होति खयं पापेतुं; एवमेव खो, महाराज, कुसलं भिय्यो भिय्यो पवड्ढति। वस्ससते पि चे, महाराज, पुरिसो कतं कुसलं आवज्जेय्य, आवज्जिते आवज्जिते भिय्यो कुसलं पवड्ढति, तस्स तं कुसलं सक्का होति यथिच्छकेहि सद्धिं संविभजितुं। इदमेत्थ, महाराज, कारणं येन कारणेन कुसलं बहुतरं।

अकुसलं पन, महाराज, करोन्तो पच्छा विप्पटिसारी होति, विप्पटिसारिनो चित्तं पटिलीयति पटिकुटति पटिवत्तति, न सम्पसारीयति, सोचति तप्पति हायति खीयति, न

है?'' ''भन्ते! क्योंकि बूँद बहुत छोटी है।'' ''महाराज! इसी तरह, पाप बहुत स्वल्प है। स्वल्प होने के कारण करने वाले को ही फल दे सकता है, दूसरों में बाँटा नहीं जा सकता।''

''महाराज! जैसे कभी अत्यधिक मूसलाधार जल बरसे तो क्या वह सभी ओर फैल जायगा?'' ''अवश्य! दस बारह योजन तक के गड़हे, नदी–नाले, तालाब, ह्रद, छोटी तलैया, पुष्करिणी और बावड़ी—सभी किनारों तक भर जायेंगे।'' ''महाराज! ऐसा क्यों होता है?'' ''भन्ते! क्योंकि मेघ बहुत महान् है।'' ''महाराज! इसी तरह, पुण्य महान् है। महान् होने के कारण देवताओं और मनुष्यों में भी बाँटा जा सकता है।''

''भन्ते नागसेन! पाप छोटा और पुण्य महान् क्यों है?'' ''महाराज! जो कोई दान देता है, शील का पालन करता है, उपोसथ व्रत रखता है, वह अत्यन्त आनन्दित प्रसन्न और पुलकित होता है। उसे अधिकाधिक प्रीति होती है; उसका मन प्रीति से भर कर और पुण्य की ओर लगता है।

''महाराज! जैसे अधिक जल वाला कोई कूआ हो। उसमें एक ओर से जल आवे और दूसरी ओर से बह निकले। निकलने पर भी अधिकधिक जल आता जाय, घटे नहीं; महाराज! इसी तरह, पुण्य अधिकाधिक बढ़ता ही जाता है। सौ वर्षों तक कोई पुण्य बाँटता रहे तो भी अधिकाधिक बढ़ता ही जायगा। वह जितनों को चाहे उन्हें पुण्य दे सकता है। महाराज! यही कारण है कि दोनों में पुण्य इतना महान् है।

''महाराज! पाप करने के बाद पश्चात्ताप होता है। पश्चात्ताप होने से मन गिर जाता है, पाप की

परिवड्ढति, तत्थेव परियादियति। यथा, महाराज, सुक्खाय नदिया महापुलिनाय उन्नतावनताय कुटिलसङ्कुटिलाय उपरितो परित्तं उदकं आगच्छन्तं हायति खीयति, न परिवड्ढति, तत्थेव परियादियति; एवमेव खो, महाराज, अकुसलं करोन्तस्स चित्तं पटिलीयति पटिकुटति, पटिवत्तति, न सम्पसारीयति, सोचति तप्पति हायति खीयति, न परिवड्ढति, तत्थेव परियादियति। इदमेत्थ, महाराज, कारणं, येन कारणेन अकुसलं थोकं'' ति।

''साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी'' ति।

५. सुपिनपञ्हो

९. ''भन्ते नागसेन, इमस्मिं लोके नरनारियो सुपिनं पस्सन्ति कल्याणं पि, पापकं पि, दिट्ठपुब्बं पि, अदिट्ठपुब्बं पि, कतपुब्बं पि, अकतपुब्बं पि, खेमं पि, सभयं पि, दूरे पि, सन्तिके पि, बहुविधानि पि अनेकवण्णसहस्सानि दिस्सन्ति। किं चेतं सुपिनं नाम, को चेतं पस्सती'' ति?

१०. ''निमित्तमेत्तं, महाराज, सुपिनं नाम यं चित्तस्स आपाथमुपगच्छति। छयिमे, महाराज, सुपिनं पस्सन्ति—वातिको सुपिनं पस्सति, पित्तिको सुपिनं पस्सति, सेम्हिको सुपिनं पस्सति, देवतूपसंहारतो सुपिनं पस्सति, समुदाचिण्णतो सुपिनं पस्सति, पुब्बनिमित्ततो सुपिनं पस्सति। तत्र, महाराज, यं पुब्बनिमित्ततो सुपिनं पस्सति तं येव सच्चं, अवसेसं मिच्छा'' ति।

''भन्ते नागसेन, यो पुब्बनिमित्ततो सुपिनं पस्सति, किं तस्स चित्तं सयं गन्त्वा तं निमित्तं विचिनाति, तं वा निमित्तं चित्तस्स आपाथमुपगच्छति, अञ्ञो वा आगन्त्वा तस्स आरोचेती'' ति? ''न, महाराज, तस्स चित्तं सयं गन्त्वा तं निमित्तं विचिनाति, नापि अञ्ञो

हीं तरफ बार–बार दौड़ता है, शान्ति नहीं मिलती, शोक करता है, अनुताप करता है, नष्ट भ्रष्ट होता है और ऊपर नहीं उठ सकता, वहीं का वहीं बना रहता है। महाराज! जैसे कोई सूखी हुई बालू की नदी बड़ी ऊँची नीची और टेढ़ी मेढ़ी हो, यदि उस पर थोड़ा जल बरसे तो वहीं सूखकर समाप्त हो जायगा; महाराज! इसी तरह, पाप करने वाले का चित्त गिर जाता है....। महाराज! यही कारण है, जिससे पाप बहुत लघु होता है।"

"ठीक है, भन्ते नागसेन! आपने जो समझाया, मैं उसे मान लेता हूँ।"

५. स्वप्नविषयकप्रश्न—९. "भन्ते नागसेन! इस लोक में सभी स्त्री–पुरुष स्वप्न देखते हैं—अच्छे भी और बुरे भी, पहले का देखा हुआ भी, न देखा हुआ भी, पहले का किया हुआ भी, न किया हुआ भी, शान्ति देने वाला भी और घबरा देने वाला भी, दूर का भी और निकट का भी आदि अनेक प्रकार के हजारों तरह के यह स्वप्न हैं क्या? कौन इनको देखा करता है?"

१०. "महाराज! स्वप्न चित्त के सामने वाला दर्पणमात्र है। महाराज! छह प्रकार से स्वप्न आते हैं—१. वायु भर जाने से, २. पित्त के प्रकोप से, ३. कफ बढ़ जाने से, ४. देवताओं के प्रभाव से, ५. बार–बार कोई कार्य करते रहने से, ६. भविष्य में होने वाली बातों का भी कभी–कभी स्वप्न आता है। महाराज! इन छहों में अन्तिम समय में होने वाली बातों का स्वप्न ही सत्य होता है, बाकी दूसरे मिथ्या।"

"भन्ते नागसेन! भविष्य में होने वाली बातों का भला कैसे स्वप्न आता है? क्या उसका चित्त बाहर जाकर भविष्य में होने वाली घटनाओं की सूचना ले आता है? या भविष्य में होने वाली बातें स्वयं

कोचि आगन्त्वा तस्स आरोचेति; अथ खो तं येव निमित्तं चित्तस्स आपातमुपगच्छति। यथा, महाराज, आदासो न सयं कुहिञ्चि गन्त्वा छायं विचिनाति, नापि अञ्ञो कोचि छायं आनेत्वा आदासं आरोपति, अथ खो यतो कुतोचि छाया आगन्त्वा आदासस्स आपातमुपगच्छति; एवमेव खो, महाराज, न तस्स चित्तं सयं गन्त्वा तं चित्तं विचिनाति, नापि अञ्ञो कोचि आगन्त्वा आरोपेति, अथ खो यतो कुतोचि निमित्तं आगन्त्वा चित्तस्स आपातमुपगच्छती'' ति।

''भन्ते नागसेन, यं तं चित्तं सुपिनं पस्सति, अपि नु तं चित्तं जानाति—'एवं नाम विपाको भविस्सति खेमं भयं वा'' ति? ''न हि, महाराज, तं चित्तं जानाति—'एवं विपाको भविस्सति खेमं वा भयं वा' ति। निमित्ते पन उप्पन्ने अञ्ञेसं कथेति, ततो ते अत्थं कथेन्ती'' ति।

''इङ्घ, भन्ते नागसेन, कारणं मे दस्सेही'' ति? ''यथा, महाराज, सरीरे तिलका पिळका दद्दूनि उट्ठहन्ति लाभाय वा अलाभाय वा यसाय व अयसाय वा निन्दाय वा पसंसाय वा सुखाय वा दुक्खाय वा, अपि नु ता, महाराज, पिळका जानित्वा उप्पज्जन्ति—'इमं नामं मयं अत्थं निप्फादेस्सामा'' ति? ''न हि, भन्ते, यादिसे ता ओकासे पिळका सम्भवन्ति तत्थ ता पिळका दिस्वा नेमित्तका ब्याकरोन्ति—'एवं नाम विपाको भविस्सती' '' ति। ''एवमेव खो, महाराज, यं तं चित्तं सुपिनं पस्सति, न तं चित्तं जानाति—'एवं नाम विपाको भविस्सति एवं वा भयं वा' ति। निमित्ते पन उप्पन्ने अञ्ञेसं कथेति, ततो ते अत्थं कथेन्ती'' ति।

''भन्ते नागसेन, यो सुपिनं पस्सति सो निद्दायन्तो, उदाहु जागरन्तो पस्सती'' ति? ''यो सो, महाराज, सुपिनं पस्सति न सो निद्दायन्तो पस्सति नापि जागरन्तो पस्सति। अपि च ओक्कन्ते मिद्धे असम्पत्ते भवङ्गे एत्थन्तरे सुपिनं पस्सति। मिद्धसमारूळ्हस्स, महाराज, चित्तं

उसके चित्त में चली आती है? या कोई दूसरा आकर उसे बता जाता है?'' ''महाराज! न तो उसका चित्त बाहर जाकर भविष्य में होने वाली घटनाओं की सूचना ले आता है, और न कोई दूसरा आकर उसे बताता है, अपितु भविष्य में होने वाली बातें स्वयं उसके चित्त में चली आती हैं। महाराज! दर्पण स्वयं बाहर के बिम्ब को खोज कर अपने में नहीं ले आता, और न कोई दूसरा दर्पण में बिम्ब डालता है। किन्तु बाहर की चीजों की छाया स्वयं जाकर दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब बनाती है; महाराज! इसी तरह न तो उसका चित्त बाहर जाकर भविष्य में होने वाली घटनाओं की सूचना लाता है, और न कोई दूसरा आकर उसे बताता है। अपितु बातें स्वयं ही जहाँ तहाँ से आ कर उसके चित्त में प्रतिबिम्बित हो जाती है।''

''भन्ते नागसेन! जो चित्त स्वप्न देखता है, क्या वह जानता है कि इसका फल कैसा होगा—सुखकर या भयप्रद?'' ''महाराज! वह नहीं जानता कि इसका फल कैसा होगा—सुखकर या भयप्रद। कुछ ऐसा–वैसा स्वप्न देख कर वह दूसरों को बताता है, वे उसका अर्थ लगाते हैं।''

''भन्ते! बहुत अच्छा, कृपया इसे उदाहरण देकर समझाइये।'' ''महाराज! जैसे मनुष्य के शरीर में तिल, व्रण या दाद उसके लाभ या हानि, यश या अपयश, प्रशंसा या निन्दा, सुख या दुःख के लिये होता है। महाराज! तो क्या वे दाद, व्रण या तिल जान कर उठते हैं कि मैं ऐसा फल निकालूँगा?'' ''नहीं, भन्ते! किन्तु ज्यौतिषी या वैद्य ही तिल या व्रण उठने के स्थान के अनुसार देखकर बताते हैं कि इसका फल ऐसा होगा।'' ''महाराज! इसी तरह, जो चित्त स्वप्न देखता है, वह नहीं जानता कि....।''

''भन्ते नागसेन! जो स्वप्न देखता है, वह सोते हुए देखता है या जागते हुए?'' ''महाराज! जो स्वप्न देखता है वह न तो सोते हुए देखता है और न जागते हुए। किन्तु गाढी निद्रा के हल्का हो जाने पर

भवङ्गगतं होति, भवङ्गगतं चित्तं नप्पवत्तति, अप्पवत्तं चित्तं सुखदुक्खं नप्पजानाति। अप्पटिविजानन्तस्स सुपिनो न होति, पवत्तमाने चित्ते सुपिनं पस्सति।

"यथा, महाराज, तिमिरे अन्धकारे अप्पभासे सुपरिसुद्धे पि आदासे छाया न दिस्सति; एवमेव खो, महाराज, मिद्धसमारूळ्हे चित्ते भवङ्गगते तिट्ठमाने पि सरीरे चित्तं अप्पवत्तं होति, अप्पवत्ते चित्ते सुपिनं न पस्सति। यथा, महाराज, आदासो एवं सरीरं दट्ठब्बं, यथा अन्धकारो एवं मिद्धं दट्ठब्बं, यथा आलोको एवं चित्तं दट्ठब्बं।

"यथा वा पन, महाराज, महिकोत्थटस्स सुरियस्स पभा न दिस्सति, सन्ता येव सुरियरस्मि अप्पवत्ता होति। अप्पवत्ताय सुरियरस्मिया आलोको न होति। एवमेव खो, महाराज, मिद्धसमारूळ्हस्स चित्तं भवङ्गगतं होति, भवङ्गगतं चित्तं नप्पवत्तति, अप्पवत्ते चित्ते सुपिनं न पस्सति। यथा, महाराज, सुरियो एवं सरीरं दट्ठब्बं, यथा महिकोत्थरणं एवं मिद्धं दट्ठब्बं, यथा सुरियरस्मि एवं चित्तं दट्ठब्बं।

"द्विन्नं महाराज, सन्ते पि सरीरे चित्तं अप्पवत्तं होति—मिद्धसमारूळ्हस्स भवङ्गगतस्स सन्ते पि सरीरे चित्तं अप्पवत्तं होति, निरोधसमापन्नस्स सन्ते पि सरीरे चित्तं अप्पवत्तं होति; जागरन्तस्स, महाराज, चित्तं लोलं होति विवटं पाकटं अनिबद्धं, एवरूपस्स चित्ते निमित्तं आपातं न उपेति। यथा, महाराज, पुरिसो विवटं पाकटं अकिरियं अरहस्स रहस्सकामा परिवज्जेन्ति; एवमेव खो, महाराज, जागरन्तस्स दिब्बो अत्थो आपातं न उपेति, तस्मा जागरन्तो सुपिनं न पस्सति। यथा वा पन, महाराज, भिक्खुं भिन्नाजीवं अनाचारं पापचित्तं दुस्सीलं

जो तन्द्रा (खुमारी) की सी अवस्था होती है, उसी में स्वप्न आते हैं। महाराज! घोर निद्रा में चित्त विस्मृत (भवङ्गगत) हो जाता है, विस्मृत चित्त कार्य नहीं करता, और तब उसे सुख–दुःख का भी ज्ञान नहीं होता। जब चित्त कुछ नहीं जानता है तो उसे स्वप्न भी नहीं आते। चित्त के कार्य करने पर ही स्वप्न आते हैं।

"महाराज! जैसे घोर अन्धकार में स्वच्छ दर्पण पर भी प्रतिबिम्ब (परछाईं) नहीं पड़ता; महाराज! वैसे ही गाढ़ निद्रा में चित्त के विस्मृत हो जाने पर शरीर बने रहने से भी चित्त कार्य नहीं करता। जब चित्त ही काम नहीं करता तो स्वप्न भी नहीं आते। महाराज! जैसे दर्पण वैसे शरीर को समझना चाहिये; जैसे अन्धकार वैसे ही गाढ़ निद्रा को समझना चाहिये; जैसे प्रकाश वैसे चित्त को समझना चाहिये।

"महाराज! जैसे घना कुहरा छा जाने पर सूर्य का प्रकाश कुछ कार्य नहीं करता, सूर्य की किरणें रहने पर भी दब जाती है, सूर्य की किरणें दब जाने पर प्रकाश नहीं होता; महाराज! इसी तरह, गाढ़ी निद्रा में चित्त विस्मृत हो जाता है, ऐसा हो जाने से वह कार्य नहीं करता, चित्त के कार्य न करने से स्वप्न भी नहीं आते। महाराज! जैसे सूर्य है वैसे शरीर को समझना चाहिये; जैसे कुहरा है, वैसे गाढ़ निद्रा को समझना चाहिये; जैसी सूर्य की किरणें हैं, वैसे चित्त को समझना चाहिये।

"महाराज! दो अवस्थाओं में शरीर के बने रहने पर भी चित्त रुक (मृद्ध हो) जाता है—१. गाढ़ी निद्रा में चित्त के काम न करने (भवङ्गगत) से शरीर के बने रहने पर भी चित्त बन्द हो जाता है, २. निरोध–अवस्था में शरीर के बने रहने पर भी चित्त बन्द हो जाता है। महाराज! जाग्रत अवस्था में चित्त चञ्चल, खुला हुआ, प्रकट और स्वच्छन्द होता है, इस अवस्था में कोई निमित्त नहीं आता। महाराज! जैसे अपने को छिपा कर रखने की इच्छा करने वाला पुरुष किसी खुले स्थान में सब के सामने चुपचाप बैठ दूसरे पुरुष से नजर बचा कर रहना चाहता है; इसी तरह, महाराज! जागते हुये चित्त में दिव्य अर्थ नहीं

कुसीतं हीनवीरियं कुसला बोधिपक्खिया धम्मा आपातं न उपेन्ति; एवमेव खो, महाराज, जागरन्तस्स दिब्बो अत्थो आपातं न उपेति। तस्मा जागरन्तो सुपिनं पस्सति।

"भन्ते नागसेन, अत्थि मिद्धस्स आदिमज्झपरियोसानं" ति? "आम, महाराज, अत्थि मिद्धस्स आदिमज्झपरियोसानं" ति। "कतमं आदि, कतमं मज्झं, कतमं परियोसानं" ति? "यो महाराज, कायस्स ओनाहो परियोनाहो, दुब्बल्यं, मन्दता, अकम्मञ्ञता कायस्स—अयं मिद्धस्स आदि। यो महाराज, कपिनिद्दापरेतो वोकिण्णकं जग्गति—इदं मिद्धस्स मज्झं। भवङ्गगति परियोसानं। मज्झूपगतो, महाराज, कपिनिद्दापरेतो सुपिनं पस्सति। यथा, महाराज, कोचि यतचारी समाहितचित्तो ठितधम्मो अचलबुद्धि पहीनकोतूहलसद्दं वनमज्झोगाहित्वा सुखुमं अत्थं चिन्तयति, न च सो तत्थ मिद्धं ओक्कमति, सो तत्थ समाहितो एकग्गचित्तो सुखुमं अत्थं पटिविज्झति; एवमेव खो, महाराज, जागरो न मिद्धसमापन्नो मज्झूपगतो कपिनिद्दापरेतो सुपिनं पस्सति। यथा, महाराज, कोतूहलसद्दो एवं जागरणं दट्ठब्बं, यथा विवित्तं वनं एवं कपिनिद्दापरेतो दट्ठब्बो, यथा सो कोतूहलसद्दं ओहाय मिद्धं विवज्जेत्वा मज्झत्तभूतो सुखुमं अत्थं पटिविज्झति, एवं जागरो न मिद्धसमापन्नो कपिनिद्दापरेतो सुपिनं पस्सती" ति।

"साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी" ति।

६. अकालमरणपञ्हो

११. "भन्ते नागसेन, ये ते सत्ता मरन्ति सब्बे ते काले येव मरन्ति, उदाहु अकाले पि मरन्ती" ति? "अत्थि, महाराज, काले पि मरणं, अत्थि अकाले पि मरणं" ति।

आते। इसी लिये जागता पुरुष स्वप्न नहीं देखता। महाराज! जिस प्रकार मिथ्या जीविका वाले, दुराचारी, पापमित्र, शीलभ्रष्ट, कायर और उत्साहरहित भिक्षु के पास ज्ञानी लोगों के गुण नहीं आते, उसी प्रकार जागते हुये के पास दिव्य अर्थ नहीं आते। इसीलिये जागता हुआ पुरुष स्वप्न नहीं देखता।"

"भन्ते नागसेन! क्या गाढ़ निद्रा के आदि, मध्य और अन्त होते हैं?" "हाँ महाराज! गाढ़ निद्रा का भी आदि होता है, मध्य होता है और अन्त भी होता है।" "उसका आदि क्या है, मध्य क्या है, और अन्त क्या है?" "महाराज! शरीर थका और टूटता हुआ-सा ज्ञात होता है, दुर्बलता ज्ञात होने लगती है, शरीर मन्द और ढीला पड़ जाता है—यही उसका आदि है। महाराज! बन्दर की नींद की तरह जब वह आधा जागता और आधा सोता है— यह उसका मध्य है। महाराज! जब वह अपने को सर्वथा भूल जाता है, विस्मृत (भवङ्गगत) हो जाता है— यह उसका अन्त है। महाराज! इसमें जो मध्य की अवस्था है उसी में स्वप्न आते है। महाराज! जैसे कोई संयम-शील अपने को वश में रखने वाला, शान्त चित्त, धर्मधीर तथा दृढ़विचारक, लोगों के कोलाहाल से बहुत दूर जंगल में जाकर, गम्भीर बातों का अनुसन्धान करे। वह वहाँ सो न जाय, वह वहाँ एक मन से उसी गम्भीर समस्या के सुलझाने में लगा रहे; महाराज! इसी तरह, सोने और जागने की बीच अवस्था में पड़ा बन्दर की तरह नींद लेता हुआ पुरुष स्वप्न देखता है। महाराज! जो लोगों का कोलाहाल है, वैसे ही जाग्रत अवस्था को समझें। जो एकान्त जंगल है वैसे ही 'बन्दर की नींद' समझें। जो कोलाहल से हट कर नींद को रोक कर बीच की अवस्था में रह कर गहरी बात का मनन करना है, वैसी ही 'बन्दर की नींद' वाली स्थिति में स्वप्न आते हैं।"

"ठीक है, भन्ते नागसेन! ऐसी ही बात है, मैं इसे मान लेता हूँ।"

"के, भन्ते नागसेन, काले मरन्ति, के अकाले मरन्ती" ति? "दिट्ठपुब्बा पन, महाराज, तया अम्बरुक्खा वा जम्बुरुक्खा वा अञ्ञस्मा वा पन फलरुक्खा फलानि पतन्तानि आमानि च पक्कानि चा" ति? "आम, भन्ते" ति। "यानि तानि, महाराज, फलानि रुक्खतो पतन्ति सब्बानि तानि काले येव पतन्ति, उदाहु अकाले पी" ति? "यानि तानि, भन्ते नागसेन, फलानि परिपक्कानि विलीनानि पतन्ति सब्बानि तानि काले पतन्ति। यानि पन तानि अवसेसानि फलानि तेसु कानिचि किमिविद्धानि पतन्ति, कानिचि लकुटहतानि पतन्ति, कानिचि वातप्पहतानि पतन्ति, कानिचि अन्तोपूतिकानि हुत्वा पतन्ति, सब्बानि तानि अकाले पतन्ती" ति। "एवमेव खो, महाराज, ये ते जरावेगहता मरन्ति ते येव काले मरन्ति। अवसेसा केचि कम्मपटिबाळ्हा मरन्ति, केचि गतिपटिबाळ्हा, केचि किरियपटिबाळ्हा मरन्ती" ति।

"भन्ते नागसेन, ये ते कम्मपटिबाळ्हा मरन्ति, ये पि ते गतिपटिबाळ्हा मरन्ति, ये पि ते किरियपटिबाळ्हा मरन्ति, ये पि ते जरावेगपटिबाळ्हा मरन्ति, सब्बे ते काले येव मरन्ति। यो पि मातुकुच्छिगतो मरति, सो तस्स कालो, काले येव सो मरति। यो पि विजातघरे मरति सो तस्स कालो, सो पि काले येव मरति। यो पि मासिको मरति ....पे०.... यो पि वस्ससतिको मरति, सो तस्स कालो, काले येव सो मरति। तेन हि, भन्ते नागसेन, अकाले मरणं नाम न होति। ये केचि मरन्ति, सब्बे ते काले येव मरन्ती" ति?

१२. "सत्तिमे, महाराज, विज्जमाने पि उत्तरिं आयुस्मिं अकाले मरन्ति। कतमे सत्त? जिघच्छिको, महाराज, भोजनं अलभमानो उपहतब्भन्तरो विज्जमाने पि उत्तरिं आयुस्मिं

---

६. अकालमृत्युविषयकप्रश्न—११. "भन्ते नागसेन! जितने जीव मरते हैं, सभी कालमृत्यु (जीवन पूर्ण हो जाने) से ही मरते हैं या कुछ अकालमृत्यु से भी?" "महाराज! कुछ कालमृत्यु से और कुछ अकालमृत्यु से।"

"भन्ते नागसेन! कौन कालमृत्यु से मरते हैं और कौन अकालमृत्यु से?" "महाराज! क्या आप ने देखा है कि आम, जामुन या किसी दूसरे फलवृक्ष से फल पक जाने पर भी गिरते हैं और पकने के पहले भी?" "हाँ, भन्ते! देखा है।" "महाराज! वृक्ष से जो फल गिरते हैं, वे सभी काल से ही गिरते हैं या अकाल से भी?" "भन्ते! जो फल पक और बढ़ कर गिरते हैं, वे काल से गिरते हैं; किन्तु जो कीड़ा खा जाने, लाठी चलाये जाने, आँधी–पानी या भीतर ही भीतर सड़ जाने से गिरते हैं, वे अकाल से गिरते कहलाते हैं।" "महाराज! इसी तरह, जो पूर्ण वृद्ध हो कर मरते हैं वे 'कालमृत्यु' से मरते है। और जो अपने कर्म के कारण, बहुत चलने फिरने के कारण या कार्य के अधिक भार रहने के कारण मरते हैं, उनकी 'अकालमृत्यु' समझी जानी चाहिये।"

"भन्ते! जो कर्म के कारण बहुत चलने फिलने के कारण, काम के अधिक भार होने के कारण, या पूर्ण वृद्ध होने के कारण मरते हैं, सभी की तो कालमृत्यु ही हुई। जो माता की कोख में ही मर जाता है, उसका वही काल समझना चाहिये; इस तरह, उसकी भी कालमृत्यु ही हुई। जो प्रसवगृह में ही मर जाता है, उसका वही काल समझना चाहिये—इस तरह, उसकी भी कालमृत्यु हुई। जो एक महीने का होते ही मर जाता है, उसका वही काल समझना चाहिये; इस तरह उसी भी कालमृत्यु हुई। जो सौ वर्ष का वृद्ध होकर मरता है, उसका वही काल समझना चाहिये। इस तरह, उसकी भी कालमृत्यु हुई। भन्ते! इस तरह तो अकालमृत्यु कभी होती ही नहीं। जो भी कोई मरते हैं, सभी की कालमृत्यु ही होती है?"

१२. "महाराज! सात प्रकार के लोग आयु पूर्ण होने के पहले ही मर जाते हैं; उनकी अकालमृत्यु होती है। कौन से सात? महाराज! १. भूखा आदमी भोजन न मिलने के कारण अपने पेट

अकाले मरति। पिपासितो, महाराज, पानीयं अलभमानो परिसुक्खहदयो विज्जमाने पि उत्तरिं आयुस्मिं अकाले मरति। अहिना दट्ठो, महाराज, विसवेगाभिहतो तिकिच्छकं अलभमानो विज्जमानो पि उत्तरिं आयुस्मिं अकाले मरति। विसमासितो, महाराज, डय्हन्तेसु अङ्गपच्चङ्गेसु अगदं अलभमानो विज्जमाने पि उत्तरिं आयुस्मिं अकाले मरति। अग्गिगतो, महाराज, झायमानो निब्बापनं अलभमानो विज्जमाने पि उत्तरिं आयुस्मिं अकाले मरति। उदकगतो, महाराज, पतिट्ठं अलभमानो विज्जमानो पि उत्तरिं आयुस्मिं अकाले मरति। सत्तिहतो, महाराज, आबाधिको भिसक्कं अलभमानो विज्जमानो पि उत्तरिं आयुस्मिं अकाले मरति। इमे खो, महाराज, सत्त विज्जमाने पि उत्तरिं आयुस्मिं अकाले मरन्ति। तत्रापाहं, महाराज, एकंसेन वदामि।

अट्ठविधेन, महाराज, सत्तानं कालकिरिया होति—वातसमुट्ठानेन, पित्तसमुट्ठानेन, सेम्हसमुट्ठानेन, सन्निपातिकेन, उतुविपरिणामेन, विसमाहारेन, ओपक्कमिकेन, कम्मविपाकेन, महाराज, सत्तानं कालकिरिया होति। तत्र, महाराज, यदिदं कम्मविपाकेन कालकिरिया सा येव तत्थ सामयिका कालकिरिया। अवसेसा असामयिका कालकिरिया ति। भवति च—

'जिघच्छाय पिपासाय, अहिदट्ठो विसेन च।
अग्गिउदकसत्तीहि, अकाले तत्थ मीयति॥
'वातपित्तेन सेम्हेन, सन्निपातेनुतूहि च।
विसमोपक्कमकम्मेहि, अकाले तत्थ मीयति' ति॥

"केचि, महाराज, सत्ता पुब्बे कतेन तेन तेन अकुसलकम्मविपाकेन मरन्ति। इध, महाराज, यो पुब्बे परे जिघच्छाय मारेति, सो बहूनि वस्ससतसहस्सानि जिघच्छाय परिपीळितो छातो परिकिलन्तो सुक्खमिलातहदयो बुभुक्खितो विसुक्खितो झायन्तो अब्भन्तरं परिडय्हन्तो जिघच्छाय येव मरति दहरो पि मज्झिमो पि महल्लको पि। इदं पि तस्स सामयिकमरणं।

की आग से तप कर, २. प्यासा आदमी पानी न मिलने के कारण हृदय सूख जाने से, ३. साँप का काटा आदमी अच्छे विषवैद्य के न मिलने से जहर चढ़ जाने के कारण, ४. विष दिया गया आदमी उचित दवा न मिलने के कारण अङ्ग-प्रत्यङ्ग जल जल कर, ५. अग्नि में पड़ गया आदमी किसी से न बुझाये जाने के कारण, ६. जल में डूबा आदमी कोई आश्रय न मिलने से घुट-घुट कर, और ७. बाण लगा आदमी अच्छे वैद्य के न मिलने के कारण उसी व्रण से अकाल में ही मर जाता है। महाराज! ये सात प्रकार के लोग आयु पूर्ण होने से पहले मर जाते हैं; इनकी अकालमृत्यु होती है। इन सब को मैं एक ही कोटि में गिनता हूँ।"

"महाराज! जीव सात प्रकार से मरते हैं— १. वायु के उठने से, २. पित्त के बिगड़ने से, ३. कफ के बढ़ने से, ४. तीनों के सन्निपात से, ५. ऋतु बिगड़ जाने से, ६. भोजन में गड़बड़ हो जाने से, ७. किसी भी बाह्य कारण से हुए कर्मफल के आने से। महाराज! इनमें जो कर्मफल से मृत्यु होती है, वही अपने समय पर मरना है; वही कालमृत्यु है। बाकी समय के पहले अकाल में मरना है। कहा भी गया है—

'भूख-प्यास, साँप काटने से, अन्य विष से, अग्नि, जल, बाण तथा तीर से अकालमृत्यु हो जाती है। वायु, पित्त और कफ से सन्निपात ऋतु के कारण, भोजन की गड़बड़, बाहरी कारण से उद्भूत कर्मफल से अकालमृत्यु हो जाती है॥'

"महाराज! कितने ही लोग अपने पूर्वजन्म में किये गये भिन्न-भिन्न पापों के फल से मर जाते

"यो पुब्बे परे पिपासाय मारेति, सो बहूनि वस्ससतसहस्सानि पेतो हुत्वा निज्झामतण्हिको समानो लूखो किसो परिसुक्खितहदयो पिपासाय येव मरति दहरो पि मज्झिमो पि महल्लको पि। इदं पि तस्स सामयिकमरणं।

"यो पुब्बे परे अहिना डंसापेत्वा मारेति, सो बहूनि वस्ससतसहस्सानि अजगरमुखेनेव अजगरमुखं कण्हसप्पमुखेनेव कण्हसप्पमुखं परिवत्तित्वा तेहि खायितखायितो अहीहि दट्ठो येव मरति दहरो पि मज्झिमो पि महल्लको पि। इदं पि तस्स सामयिकमरणं।

"यो पुब्बे परे विसं दत्वा मारेति, सो बहूनि वस्ससतसहस्सानि डय्हन्तेहि अङ्गपच्चङ्गेहि भिज्जमानेन सरीरेन कुणपगन्धं वायन्तो विसेनेव मरति दहरो पि मज्झिमो पि महल्लको पि। इदं पि तस्स सामयिकमरणं।

"यो पुब्बे परे अग्गिना मारेति, सो बहूनि वस्ससतसहस्सानि अङ्गारपब्बतेनेव अङ्गारपब्बतं यमविसयेनेव यमविसयं परिवत्तित्वा दड्ढविदड्ढगत्तो अग्गिना येव मरति दहरो पि मज्झिमो पि महल्लको पि। इदं पि तस्स सामयिकमरणं।

"यो पुब्बे परे उदकेन मारेति, सो बहूनि वस्ससतसहस्सानि हतविलुत्तभग्गदुब्बलगत्तो खुब्भितचित्तो उदके येव मरति दहरो पि मज्झिमो पि महल्लको पि। इदं पि तस्स सामयिकमरणं।

"यो पुब्बे परे सत्तिया मारेति, सो बहूनि वस्ससतसहस्सानि छिन्नभिन्नकोट्टितविकोट्टितो

हैं। महाराज! जो इस जन्म में दूसरों को भूखा रखकर मारता है, वह लाखों वर्ष तक बुढ़ापे, जवानी या बाल्यावस्था में भूख से छटपटाकर तड़प–तड़पकर पेट की अग्नि से भीतर ही भीतर हृदय के सूख जाने के कारण जल–जल कर मरता है। यह उसकी कालमृत्यु ही है।

"महाराज! जो इस जन्म में किसी दूसरे को प्यासा रखकर मार देता है वह लाखों वर्ष तक प्यास से व्याकुल प्रेत हो, दुबला, पतला और शुष्क हृदय वाला हो, अपने बुढ़ापे जवानी या बचपन में प्यास से ही मरता है। महाराज! यह उसकी कालमृत्यु ही है।

"महाराज! जो इस जन्म में किसी दूसरे को साँप से कटवा कर मार देता है; वह लाखों वर्ष तक अजगर के मुँह से दूसरे अजगर के मुँह में, और एक काले साँप के मुँह से दूसरे काले साँप के मुँह में पड़ कर उनसे काटा जाकर अपने बुढ़ापे, जवानी या लड़कपन में मरता है। महाराज! यह उसकी कालमृत्यु ही है।

"महाराज! जो इस जन्म में किसी दूसरे को विष देकर मारता है, वह लाखों वर्ष तक अपने बुढ़ापे, जवानी या लड़कपन में ऐसे विष से मरता है, जिससे उसके अङ्ग–प्रत्यङ्ग जलने लगते हैं, शरीर कट–कटकर गिरने लगता है और शव की सी दुर्गन्ध आती है। महाराज! यह उसकी कालमृत्यु ही है।

"महाराज! जो इस जन्म में किसी दूसरे को अग्नि से जलाकर मारता है, वह लाखों वर्ष तक एक अग्निपर्वत से दूसरे अग्निपर्वत पर, तथा एक यमलोक से दूसरे यमलोक में ले जाया जाकर अग्नि से शरीर के जला भुना दिये जाने से मरता है। महाराज! यह उसकी कालमृत्यु ही है।

"महाराज! जो इस जन्म में किसी दूसरे को जल में डुबाकर मारता है, वह लाखों वर्ष तक दुबला–पतला, रोगी और कमजोर, तथा चिन्ताओं में पड़ा रह....पानी में ही डूब कर मरता है। महाराज! यह उसकी कालमृत्यु ही है।

"महाराज! जो इस जन्म में किसी दूसरे को भाला या तीर चलाकर मारता है, वह लाखों वर्ष

सत्तिमुखसमाहितो सत्तिया येव मरति दहरो पि मज्झिमो पि महल्लको पि। इदं पि तस्स सामयिकमरणं।

"भन्ते नागसेन, 'अकाले मरणं अत्थी' ति यं वदेसि, इङ्घ मे त्वं तत्थ कारणं अतिदिसा" ति? "यथा, महाराज, महतिमहाअग्गिक्खन्धो आदिन्नतिणकट्ठसाखापलासो परियादिन्नभक्खो उपादानसङ्खया निब्बायति, सो अग्गि वुच्चति— 'अनीतिको अनुपद्दवो समये निब्बुतो नामा' ति; एवमेव खो, महाराज, यो कोचि बहूनि दिवससहस्सानि जीवित्वा जराजिण्णो आयुक्खया अनीतिको अनुपद्दवो मरति, सो वुच्चति— 'समये मरणमुपगतो' ति।

"यथा वा पन, महाराज, महतिमहाअग्गिक्खन्धो आदिन्नतिणकट्ठसाखापलासो अस्स, तं अपरियादिन्ने येव तिणकट्ठसाखापलासे महतिमहामेघो अभिप्पवस्सित्वा निब्बापेय्य, अपि नु खो, महाराज, महाअग्गिक्खन्धो समये निब्बुतो नाम होती" ति? "न हि, भन्ते" ति। "किस्स पन सो, महाराज, पच्छिमो अग्गिक्खन्धो पुरिमेन अग्गिक्खन्धेन समसमगतिको नाहोसी" ति? "आगन्तुकेन, भन्ते, मेघेन पटिपीळितो सो अग्गिक्खन्धो असमये निब्बुतो" ति। "एवमेव खो, महाराज, यो कोचि अकाले मरति सो आगन्तुकेन रोगेन पटिपीळितो वातसमुट्ठानेन वा पित्तसमुट्ठानेन वा सेम्हसमुट्ठानेन वा सन्निपातिकेन वा उतुपरिणामजेन वा विसमपरिहारजेन वा ओपक्कमिकेन वा जिघच्छाय वा पिपासाय वा सप्पदट्ठेन वा विसमासितेन वा अग्गिना वा उदकेन वा सत्तिवेगप्पटिपीळितो अकाले मरति। इदमेत्थ, महाराज, कारणं, येन कारणेन अकाले मरणं अत्थि।

"यथा वा पन, महाराज, गगने महतिमहावलाहको उट्ठहित्वा निन्नं च थलं च

तक काटा, मारा और पीटा जाकर भाले या तीर से ही बिंध कर मरता है। महाराज! यह उसकी कालमृत्यु ही है।

"भन्ते! जो आप कहते है कि 'अकालमृत्यु' होती है; उसे कृपया कारण देकर समझावें।" "महाराज! जैसे घास, पात, झाड़, लकड़ी इत्यादि के साथ जलती हुई अग्नि की विशाल राशि उन्हें जलाकर समाप्त कर देने के बाद ही बुझती है। लोग कहते हैं कि वह अग्नि विना किसी विघ्न-बाधा के अपने पूरे समय तक जलने के बाद बुझी; महाराज! इसी तरह जो हजारों दिन तक जीवित रह कर वृद्ध होने और आयु समाप्त हो जाने के बाद विना किसी बाधा या आकस्मिक दुर्घटना के मरता है, तो उसकी यह मृत्यु 'समय पाकर हुई' कही जाती है।

"महाराज! जैसे घास, पात, झाड़, लकड़ी इत्यादि के साथ जलती हुई कोई विशाल अग्नि की राशि हो। उसके जल कर समाप्त होने के पहले ही अत्यधिक जल पड़ने लगे जिससे अग्नि बुझ कर ठंढी हो जाय। महाराज! तो क्या आप कहेंगे कि वह अग्नि अपने समय को पा कर ही बुझी?" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! वह भी पहली अग्नि की बराबर हो क्यों नहीं कहीं जाती?" "भन्ते! बीच ही में मेघ बरस जाने से वह अग्नि असमय बुझ गयी।" "महाराज! इसी तरह, जिसकी अकालमृत्यु होती है, वह या तो सहसा वायु बिगड़ जाने से, पित्त के बिगड़ जाने, कफ बढ़ जाने, सन्निपात हो जाने, ऋतु बिगड़ जाने, भोजन में गड़बड़ होने, किसी दुर्घटना, भूख, प्यास, साँप के काटने, विष दिये जाने, अग्नि में पड़ जाने, पानी में डूब जाने या तीर-भाला लग जाने से अकाल में ही मर जाता है; महाराज! इसी तरह अकालमृत्यु होती है।

परिपूरयन्तो अभिवस्सति, सो वुच्चति—'मेघो अनीतिको अनुपद्दवो वस्सती' ति; एवमेव खो, महाराज, यो कोचि चिरं जीवित्वा जराजिण्णो आयुक्खया अनीतिको अनुपद्दवो मरति, सो वुच्चति—'समये मरणमुपगतो' ति।

"यथा वा पन, महाराज, गगने महतिमहावलाहको उट्ठहित्वा अन्तरायेव महता वातेन अब्भत्थं गच्छेय्य, अपि नु खो सो, महाराज, महावलाहको समये विगतो नाम होती" ति?"न हि, भन्ते" ति।"किस्स पन सो, महाराज, पच्छिमो वलाहको पुरिमकेन वलाहकेन समसमगतिको नाहोसी" ति? "आगन्तुकेन, भन्ते, वातेन पटिपीळितो सो वलाहको असमयप्पत्तो येव विगतो" ति।"एवमेव खो, महाराज, यो कोचि अकाले मरति सो आगन्तुकेन रोगेन पटिपीळितो वातसमुट्ठानेन वा ....पे०.... सत्तिवेगप्पटिपीळितो वा अकाले मरति। इदमेत्थ, महाराज, कारणं येन कारणेन अकाले मरणं अत्थी ति।

"यथा वा पन, महाराज, बलवा आसीविसो कुपितो कञ्चिदेव पुरिसं डंसेय्य, तस्स तं विसं अनीतिकं अनुपद्दवं मरणं पापेय्य, तं विसं वुच्चति—'अनीतिकमनुपद्दवं कोटिगतं' ति; एवमेव खो, महाराज, यो कोचि चिरं जीवित्वा जराजिण्णो आयुक्खया अनीतिको अनुपद्दवो मरति, सो वुच्चति— 'अनीतिको अनुपद्दवो जीवितकोटिगतो सामयिकं मरणमुपगतो' ति।

"यथा वा पन, महाराज, बलवता आसीविसेन दट्ठस्स अन्तरा येव अहितुण्डिको अगदं दत्वा अविसं करेय्य, अपि नु खो, महाराज, तं विसं समये विगतं नाम होती" ति?"न हि, भन्ते" ति। "किस्स पन तं, महाराज, पच्छिमं विसं पुरिमेन विसेन समसमगतिकं

"महाराज! यदि कोई भारी मेघ उठ कर जमीन और गड्ढों को भरते हुए घनघोर वर्षा बरसावे, तो लोग कहते हैं कि वह मेघ विना किसी विघ्न–बाधा के खूब बरसा; महाराज! इसी तरह, जो पूर्ण वृद्ध होने और आयु समाप्त हो जाने के बाद किसी बाधा या आकस्मिक दुर्घटना के मरता है, उसकी मृत्यु 'समय पा कर हुई' कही जाती है।

"महाराज! जैसे आकाश में उठे भारी मेघ तेज हवा के आ जाने से झकोरे खा कर तितर बितर हो जाँय, तो क्या आप यह कहेंगे कि वह मेघ समय पा कर नष्ट हुआ?" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! पहला मेघ पिछले मेघ के बराबर ही क्यों नहीं समझा जाता?" "भन्ते! अकस्मात् हवा के चल जाने से वह मेघ बिना समय पाये ही उड़ गया।" "महाराज! इसी तरह, जिसकी अकालमृत्यु होती है, वह या तो सहसा वायु बिगड़ जाने से, पित्त के बिगड़ जाने, कफ बढ़ जाने, सन्निपात हो जाने, ऋतु बिगड़ जाने, भोजन में गड़बड़ होने, किसी दुर्घटना, भूख, प्यास, साँप के काटने, विष दिये जाने, अग्नि में पड़ जाने, पानी में डूब जाने या तीर–भाला लग जाने से अकाल में ही मर जाता है; महाराज! इसी तरह अकालमृत्यु होती है।

"महाराज! जैसे कोई क्रुद्ध जहरीला साँप किसी आदमी को काट दे। वह विष विना किसी बाधा के फैल जाय और उसे मार दे। तो लोग कहेंगे कि उस विष ने विना किसी बाधा के अपना काम कर ही डाला; महाराज! इसी तरह, जो पूर्ण वृद्ध होने और आयु समाप्त हो जाने के बाद बिना किसी बाधा या आकस्मिक दुर्घटना के मरता है तो उसकी मृत्यु 'समय पा कर हुई' कही जाती है।

"महाराज! जैसे कोई क्रुद्ध जहरीला सर्प किसी आदमी को काट तो दे; किन्तु कोई सँपेरा आ कर उस विष को झाड़ दें। महाराज! तो क्या आप कहेंगे विष अपना काम कर के ही हटा?" "नहीं,

नाहोसी'' ति? ''आगन्तुकेन, भन्ते, अगदेन पटिपीळितं विसं अकोटिगतं येव विगतं'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, यो कोचि अकाले मरति, सो आगन्तुकेन रोगेन पटिपीळितो वातसमुट्ठानेन वा....पे०.... सत्तिवेगप्पटिपीळितो वा अकाले मरति। इदमेत्थ, महाराज, कारणं येन कारणेन अकाले मरणं अत्थी ति।

''यथा वा पन, महाराज, इस्सासो सरं पातेय्य, सचे सो सरो यथागतिगमनपथमत्थकं गच्छति, सो सरो वुच्चति—'अनीतिको अनुपद्दवो यथागतिगमनपथमत्थकं गतो नामा' ति; एवमेव खो, महाराज, यो कोचि चिरं जीवित्वा जराजिण्णो आयुक्खया अनीतिको अनुपद्दवो मरति, सो वुच्चति— 'अनीतिको अनुपद्दवो समये मरणमुपगतो' ति।

''यथा वा पन, महाराज, इस्सासो सरं पातेय्य, तस्स तं सरं तस्मिं येव खणे कोचि गण्हेय्य, अपि नु खो सो, महाराज, सरो यथागतिगमनपथमत्थकं गतो नाम होती'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''किस्स पन सो, महाराज, पच्छिमो सरो पुरिमेन सरेन समसमगतिको नाहोसी'' ति? ''आगन्तुकेन, भन्ते नागसेन, गहणेन तस्स सरस्स गमनं उपच्छिन्नं'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, यो कोचि अकाले मरति, सो आगन्तुकेन रोगेन पटिपीळितो वातसमुट्ठानेन वा...पे०....सत्तिवेगप्पटिपीळितो वा अकाले मरति। इदमेत्थ, महाराज, कारणं येन कारणेन अकाले मरणं अत्थी ति।

''यथा वा पन, महाराज, यो कोचि लोहमयं भाजनं आकोटेय्य, तस्स आकोटनेन सद्दो निब्बत्तित्वा यथागतिगमनपथमत्थकं गच्छति, सो सद्दो वुच्चति—'अनीतिको अनुपद्दवो यथागतिगमनपथमत्थकं गतो नामा' ति; एवमेव खो, महाराज, यो कोचि बहूनि दिवससहस्सानि जीवित्वा जराजिण्णो आयुक्खया अनीतिको अनुपद्दवो मरति, सा वुच्चति— 'अनीतिको अनुपद्दवो समये मरणमुपगतो' ति।

भन्ते!'' ''महाराज! यह पिछला विष पहले विष के बराबर ही क्यों नहीं हुआ?'' ''भन्ते! यह विष तो चढ़ने के पहले ही आये हुए सँपेरे द्वारा झाड़ दिया गया।'' ''महाराज! इसी तरह, जिसकी अकाल मृत्यु होती है, वह या तो सहसा वायु या पित्त बिगड़ जाने से....। महाराज! इसी तरह 'अकाल मृत्यु' होती है।

''महाराज! जैसे कोई धनुर्धारी बाण चलावे। यदि वह बाण ठीक लक्ष्य पर जा कर लग जाय तो लोग कहेंगे कि वह बिना किसी बाधा के ठीक अपने लक्ष्य पर पहुँच गया; महाराज! इसी तरह, जो पूर्ण वृद्ध होने और आयु समाप्त हो जाने के बाद किसी बाधा या आकस्मिक दुर्घटना के बिना मरता है, तो उसकी मृत्यु 'समय पा कर हुई' कही जाती है।

''महाराज! जैसे कोई धनुर्धारी तीर चलावे, किन्तु बीच में ही कोई दूसरा उसे काट कर गिरा दे; तो क्या आप कहेंगे कि वह तीर बिना किसी रुकावट या बाधा के ठीक अपने लक्ष्य तक पहुँच गया?'' ''नहीं, भन्ते!'' ''महाराज! पिछला तीर पहले के समान ही क्यों नहीं समझा गया?'' ''भन्ते! उसे तो किसी ने बीच ही में गिरा दिया।'' ''महाराज! इसी तरह, जिसकी अकाल मृत्यु होती है, वह या तो सहसा वायु वा पित्त बिगड़ जाने से....। महाराज! इसी तरह 'अकालमृत्यु' होती है।

''महाराज! जैसे कोई लोहे का पात्र पीटे। उससे ध्वनि निकल कर पूरी दूर तक जाय तो लोग कहेंगे कि उसकी आवाज बिना किसी रुकावट के पूरी दूर तक गयी। महाराज! इसी तरह, जो पूर्ण वृद्ध.... 'समय पा कर हुई कही जाती है।

"यथा वा पन, महाराज, यो कोचि लोहमयं भाजनं आकोटेय्य, तस्स सद्दो निब्बत्तेय्य; निब्बत्ते सद्दे अदूरगते कोचि आमसेय्य, सह आमसनेन सद्दो निरुज्झेय्य; अपि नु खो सो, महाराज, सद्दो यथागतिगमनपथमत्थकं गतो नाम होती" ति? "न हि, भन्ते" ति। "किस्स पन, महाराज, पच्छिमो सद्दो पुरिमेन सद्देन समसमगतिको नाहोसी" ति? "आगन्तुकेन, भन्ते, आमसनेन सो सद्दो उपरतो" ति। "एवमेव खो, महाराज, यो कोचि अकाले मरति सो आगन्तुकेन रोगेन पटिपीळितो वातसमुट्ठानेन वा ....पे०....सत्तिवेगप्पटिपीळितो वा अकाले मरति। इदमेत्थ, महाराज, कारणं येन कारणेन अकाले मरणं अत्थी ति।

"यथा वा पन, महाराज, खेत्ते सुविरूळ्हं धञ्ञबीजं सम्मा पवत्तमानेन वस्सेन ओततविततआकिण्णबहुफलं हुत्वा सस्सुट्ठानसमयं पापुणाति, तं धञ्ञं वुच्चति— 'अनीतिकमनुपद्दवं समयप्पत्तं नाम होती" ति। "एवमेव खो, महाराज, यो कोचि बहूनि दिवससहस्सानि जीवित्वा जराजिण्णो आयुक्खया अनीतिको अनुपद्दवो मरति, सो वुच्चति— 'अनीतिको अनुपद्दवो समये मरणमुपगतो' ति।

"यथा वा पन, महाराज, खेत्ते सुविरूळ्हं धञ्ञबीजं उदकेन विकलं मरेय्य; अपि नु खो तं, महाराज, धञ्ञं समयसम्पत्तं नाम होती" ति? "न हि, भन्ते" ति। "किस्स पन तं, महाराज, पच्छिमं धञ्ञं पुरिमेन धञ्ञेन समसमगतिकं नाहोसी" ति? "आगन्तुकेन, भन्ते, उण्हेन पटिपीळितं तं धञ्ञं मतं" ति। "एवमेव खो, महाराज, यो कोचि अकाले मरति सो आगन्तुकेन रोगेन पटिपीळितो वातसमुट्ठानेन वा....पे०....सत्तिवेगप्पटिपीळितो वा अकाले मरति। इदमेत्थ, महाराज, कारणं येन अकाले मरणं अत्थी ति।

"सुतपुब्बं तया, महाराज— 'सम्पन्नं तरुणसस्सं किमयो उट्ठहित्वा समूलं नासेन्ती" ति? "सुतपुब्बं चेव तं, भन्ते नागसेन, अम्हेहि दिट्ठपुब्बं चा" ति। "किं नु खो तं, महाराज,

---

"महाराज! जैसे कोई लोहे का पात्र पीटे। किन्तु, उसकी ध्वनि निकलते ही कोई आ कर उसे (पात्र को) पकड़ ले, जिससे वह तत्काल बन्द हो जाय। तो क्या आप कहेंगे कि उसकी ध्वनि विना किसी रुकावट के पूरी दूर तक गयी?" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! वह पिछली आवाज पहली ध्वनि के समान ही क्यों नहीं कही जाती?" "भन्ते! बीच में किसी के द्वारा आकर पात्र पकड़ लेने से ध्वनि बन्द हो गयी।" "महाराज! इसी तरह, जिसकी अकालमृत्यु होती है, वह या तो सहसा वायु वा पित्त बिगड़ जाने से....। महाराज! इसी तरह 'अकालमृत्यु' होती है।

"महाराज! जैसे खेत में अच्छी तरह जमा हुआ धान समय पर जल बरसने से फैल-फैल कर घनी बालियों से लद जाता है और कटने के समय तक पूरा तैयार हो जाता है। तब लोग कहते हैं कि यह फसल विना किसी विघ्न-बाधा के अच्छी हुई; महाराज! इसी तरह जो पूर्ण वृद्ध उसकी मृत्यु 'समय पाकर हुई' कही जाती है।

"महाराज! यदि खेत में अच्छी तरह जमा हुआ धान जल के विना सूख कर मर जाय तो क्या आप कहेंगे कि उपज अच्छी हुई?" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! पिछली उपज पहली के बराबर ही क्यों नहीं कही जाती?" "भन्ते! वह तो बीच ही में गर्मी से ही सूख गई।" "महाराज! इसी तरह, जिसकी अकालमृत्यु होती है, वह सहसा या तो वायु वा पित्त बिगड़ जाने से....अकाल ही में मर जाता है।

"महाराज! क्या आप ने सुना है कि हरा-भरा धान कीड़े लग जाने से सर्वथा नष्ट हो जाता

सस्सं काले नट्ठं उदाहु अकाले नट्ठं'' ति? ''अकाले, भन्ते ति। यदि खो तं, भन्ते, सस्सं किमयो न खादेय्युं सस्सुद्धरणसमयं पापुणेय्या'' ति। ''किं पन, महाराज, आगन्तुकेन उपघातकेन सस्सं विनस्सति, निरुपघातं सस्सं सस्सुद्धरणसमयं पापुणाती'' ति? ''आम, भन्ते'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, यो कोचि अकाले मरति सो आगन्तुकेन रोगेन पटिपीळितो वातसमुट्ठानेन वा....पे०....सत्तिवेगप्पटिपीळितो वा मरति। इदमेत्थ, महाराज, कारणं येन कारणेन अकाले मरणं अत्थी ति।

''सुतपुब्बं पन तया, महाराज—'सम्पन्ने सस्से फलभारनमिते मञ्जरितपत्ते करकवस्सं नाम वस्सजाति निपतित्वा विनासेति अफलं करोती'' ति? ''सुतपुब्बं चेव, भन्ते, अम्हेहि दिट्ठपुब्बं चा'' ति। ''अपि नु खो, महाराज, तं सस्सं काले नट्ठं, उदाहु अकाले नट्ठं'' ति? ''अकाले, भन्ते। यदि खो तं, भन्ते, सस्सं करकवस्सं न वस्सेय्य सस्सुद्धरणसमयं पापुणेय्या'' ति। ''किं पुन, महाराज, आगन्तुकेन उपघातेन सस्सं विनस्सति, निरुपघातं सस्सं सस्सुद्धरणसमयं पापुणाती'' ति? ''आम, भन्ते'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, यो कोचि अकाले मरति, सो आगन्तुकेन रोगेन पटिपीळितो वातसमुट्ठानेन वा पित्तसमुट्ठानेन वा सेम्हसमुट्ठानेन वा सन्निपातिकेन वा उतुपरिणामजेन वा विसमपरिहारजेन वा ओपक्कमिकेन वा जिघच्छाय वा पिपासाय वा सप्पदट्ठेन वा विसमासितेन वा अग्गिना वा उदकेन वा सत्तिवेगप्पटिपीळितो वा अकाले मरति। यदि पन आगन्तुकेन रोगेन पटिपीळितो न भवेय्य, समये येव मरणं पापुणेय्य। इदमेत्थ, महाराज, कारणं येन कारणेन अकाले मरणं अत्थी'' ति।

''अच्छरियं, भन्ते नागसेन, अब्भुतं भन्ते नागसेन! सुदस्सितं कारणं, सुदस्सितं ओपम्मं अकाले मरणस्स परिदीपनाय। 'अत्थि अकाले मरणं' ति उत्तानीकतं पाकटं कतं

है?'' ''हाँ, भन्ते! सुना भी है और देखा भी है।'' ''महाराज! तो क्या वह धान काल में नष्ट हुआ या अकाल में?'' ''भन्ते! अकाल में; यदि उसमें कीड़े न लगते तो कटने तक अच्छा तैयार हो जाता।'' ''महाराज! इससे तो यही निष्कर्ष निकलता है न कि विना किसी बाधा के खेती अच्छी होती है और बीच में कुछ दुर्घटना हो जाने पर वह नष्ट हो जाती है!'' ''हाँ, भन्ते!'' ''महाराज! इसी तरह, जिसकी अकालमृत्यु होती है, वह या तो सहसा वायु या पित्त ....। महाराज! इसी तरह 'अकालमृत्यु' होती है।

''महाराज! क्या आपने सुना है कि खेती तैयार हो जाने और बालियों के भार से झुक जाने पर भी उपलवृष्टि उसे नष्ट कर देती है?'' ''हाँ भन्ते! सुना भी है और देखा भी है।'' ''महाराज! तो क्या वह धान काल में मरा या अकाल में?'' ''भन्ते! अकाल में मरा। यदि ओले की वर्षा न होती तो कटने तक खेती अच्छी तैयार हो जाती।'' ''महाराज! इससे तो यही न निष्कर्ष निकलता है कि विना किसी विघ्न-बाधा के आये हुए खेती अच्छी होती है, और बीच में कुछ दुर्घटना के हो जाने पर वह नष्ट हो जाती है।'' ''हाँ, भन्ते!'' ''महाराज! इसी तरह, जिसकी अकालमृत्यु होती है, वह या तो सहसा वायु या पित्त बिगड़ जाने से....अकाल ही में मर जाता है। यदि ये बातें बीच में न हो तो 'समय पाकर ही मृत्यु' होगी।

''भन्ते नागसेन! आश्चर्य है! अद्भुत है! आपने (मृत्यु के) कारणों को अच्छी तरह दिखाया। 'अकालमृत्यु होती है'— इसे सिद्ध करने के लिये कितनी उपमाएँ देकर अकालमृत्यु होती है इसे स्पष्ट कर दिया, प्रकट कर दिया और दृढ़ कर दिया। भन्ते नागसेन! कोई क्षिप्त या दुर्बुद्धि भी आप की एक ही उपमा से मान लेगा कि अकालमृत्यु होती है। बुद्धिमानों की तो बात ही क्या! आपकी पहली ही उपमा

विभूतिं कतं। अचित्तविक्खित्तको पि, भन्ते नागसेन, एकमेकेन पि ताव ओपम्मेन निट्ठं गच्छेय्य—'अत्थि अकाले मरणं' ति, किं पन मनुजो सचेतनो! पठमोपम्मेनेवाहं, भन्ते, सञ्ञत्तो— 'अत्थि अकाले मरणं' ति। अपि च अपरापरं निब्बाहनं सोतुकामो न सम्पटिच्छि'' ति।

७. चेतियपाटिहारियपञ्हो

१३. ''भन्ते नागसेन, सब्बेसं परिनिब्बुतानं चेतिये पाटिहीरं होति, उदाहु एकच्चानं येव होती'' ति?

१४. ''एकच्चानं, महाराज, होति, एकच्चानं न होती'' ति। ''कतमेसं, भन्ते, होति, कतमेसं न होती'' ति? ''तिण्णन्नं, महाराज, अञ्ञतरस्स अधिट्ठाना परिनिब्बुतस्स चेतिये पाटिहीरं होति। कतमेसं तिण्णन्नं? इध, महाराज, अरहा देवमनुस्सानं अनुकम्पाय तिट्ठन्तो अधिट्ठाति— 'एवं नाम चेतिये पाटिहीरं होतू' ति, तस्स अधिट्ठानवसेन चेतिये पाटिहीरं होति। एवं अरहतो अधिट्ठानवसेन परिनिब्बुतस्स चेतिये पाटिहीरं होति। (१)

''पुन च परं, महाराज, देवता मनुस्सानं अनुकम्पाय परिनिब्बुतस्स चेतिये पाटिहीरं दस्सेन्ति— 'इमिना पाटिहीरेन सद्धम्मो निच्चसम्पग्गहितो भविस्सति, मनुस्सा च पसन्ना कुसलेन अभिवड्ढिस्सन्ती' ति। एवं देवतानं अधिट्ठानवसेन परिनिब्बुतस्स चेतिये पाटिहीरं होति। (२)

''पुन च, महाराज, इत्थी वा पुरिसो वा सद्धो पसन्नो पण्डितो ब्यत्तो मेधावी बुद्धिसम्पन्नो योनिसो चिन्तयित्वा गन्धं वा मालं वा दुस्सं वा अञ्ञतरं वा किञ्चि अधिट्ठहित्वा चेतिये उक्खिपति— 'एवं नाम होतू' ति। तस्स पि अधिट्ठानवसेन परिनिब्बुतस्स चेतिये पाटिहीरं होति। एवं मनुस्सानं अधिट्ठानवसेन परिनिब्बुतस्स चेतिये पाटिहीरं होति। (३)

सुन कर मैं समझ गया था कि अकालमृत्यु होती है तो भी, आपकी दूसरी दूसरी बातों को सुनने के लिये मैं उत्सुक था, उसी से नहीं रुका।"

७. चैत्यअलौकिकताविषयकप्रश्न— १३. "भन्ते नागसेन! निर्वाण पाये हुये सभी सन्तों के चैत्य (साधु-सन्तों के मृत शरीर की अस्थि-भस्म पर बनाया जाने वाला समाधि-गृह) में अलौकिक बातें होती हैं या कुछ के ही चैत्य में?"

१४. "महाराज! किसी के चैत्य में होती हैं और किसी के चैत्य में नहीं।" "भन्ते! किनके चैत्य में होती है और किनके चैत्य में नहीं?" "महाराज! तीन में से किसी एक का अधिष्ठान (अध्यास) करने से निर्वाण प्राप्त सन्त के चैत्य में अलौकिक बातें होती हैं।" "किन तीन में से एक का अधिष्ठान करने से?" "महाराज! कोई अर्हत् अपने जीते जी देवताओं और मनुष्यों पर अनुकम्पा करके यह अधिष्ठान कर दे कि 'मेरे इस चैत्य में अलौकिक बातें हों', ऐसा अधिष्ठान करने से उसके चैत्य में अलौकिक बातें होती हैं। इस तरह, अर्हत् के अधिष्ठान करने से निर्वाणप्राप्त साधु के चैत्य में अलौकिक बातें होती हैं। (१)

"महाराज! देवता लोग मनुष्यों पर अनुकम्पा करके निर्वाणप्राप्त सन्त के चैत्य में अलौकिक बातें दिखाते हैं, जिससे कि उन चमत्कारों को देखकर लोगों में धर्म के प्रति श्रद्धा बनी रहे; और उस तरह मनुष्य श्रद्धालु हो कर अधिकाधिक पुण्य करे; इस तरह देवताओं के अधिष्ठान से निर्वाण प्राप्त सन्त के चैत्य में अलौकिक बातें होती हैं। (२)

"महाराज! कोई श्रद्धालु भक्त, पण्डित, विवेकी और बुद्धिमान् स्त्री या पुरुष को सच्चे भाव से

"इमेसं खो, महाराज, तिण्णन्नं अञ्ञतरस्स अधिट्ठानवसेन परिनिब्बुतस्स चेतिये पाटिहीरं होति।

"यदि, महाराज, तेसं अधिट्ठानं न होति, खीणासवस्स पि छळभिञ्ञस्स चेतोवसिप्पत्तस्स चेतिये पाटिहीरं न होति। असति पि, महाराज, पाटिहीरे चरितं दिस्वा सुपरिसुद्धं ओकप्पेतब्बं निट्ठं गन्तब्बं सद्दहितब्बं— 'सुपरिनिब्बुतो अयं बुद्धपुत्तो' " ति।

"साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी" ति।

८. धम्माभिसमयपञ्हो

१५. "भन्ते नागसेन, ये ते सम्मा पटिपज्जन्ति तेसं सब्बेसं येव धम्माभिसमयो होति, उदाहु कस्सचि न होती" ति? "कस्सचि, महाराज, होति, कस्सचि न होती" ति। "कस्स, भन्ते, होति, कस्स न होती" ति?

१६. "तिरच्छानगतस्स, महाराज, सुप्पटिपन्नस्सापि धम्माभिसमयो न होति, पेत्तिविसयूपपन्नस्स.... मिच्छादिट्ठिकस्स.... कुहकस्स.... मातुघातकस्स.... पितुघातकस्स.... अरहन्तघातकस्स.... सङ्घभेदकस्स.... लोहितुप्पादकस्स.... थेय्यसंवासकस्स.... तित्थियपक्कन्तस्स.... भिक्खुनिदूसकस्स.... तेरसन्नं गरुकापत्तीनं अञ्ञतरं आपज्जित्वा अवुट्ठितस्स.... पण्डकस्स.... उभतोब्यञ्जनकस्स सुप्पटिपन्नस्सापि धम्माभिसमयो न होति। यो पि मनुस्सदहरको ऊनकसत्तवस्सिको, तस्स सुप्पटिपन्नस्सापि धम्माभिसमयो न होति। इमेसं खो, महाराज, सोळसन्नं पुग्गलानं सुप्पटिपन्नानं पि धम्माभिसमयो न होती" ति।

गन्ध, माला, वस्त्र या कोई दूसरी चीज चढ़ा कर 'ऐसा हो' यह अधिष्ठान करने से ठीक वैसा ही हो जाता है, इस तरह मनुष्यों के अधिष्ठान करने से भी निर्वाणप्राप्त सन्त के चैत्य में अलौकिक बातें होती हैं। (३)

"महाराज! इन्हीं तीनों में से किसी एक का अधिष्ठान करने से भी निर्वाणप्राप्त सन्त के चैत्य में अलौकिकता होती है।

"महाराज! यदि उनका अधिष्ठान न हो तो क्षीणास्रव, छह अभिज्ञाओं को पाने वाले तथा चित्त को पूर्णतः वश में करने वाले सन्त के भी चैत्य में अलौकिक बातें नहीं होती। महाराज! यदि कोई अलौकिक बात न हो तो भी, उनका पवित्र जीवन दृष्टि में रख कर, उस चैत्य के पास जाना चाहिये और इस बात को गौरव के साथ मन में लाना चाहिये कि 'यह बुद्धपुत्र निर्वाण पा चुका है'।"

"ठीक है, भन्ते नागसेन! यह ऐसी ही बात है। मैं इसे स्वीकार करता हूँ।"

८. धर्माभिसमयप्रश्न— १५. "भन्ते नागसेन! क्या सत्यमार्ग पर चलने वाले सभी को ज्ञान का साक्षात्कार (धर्माभिसमय) हो जाता है या किसी को भी नहीं होता?" "महाराज! किसी को होता है और किसी को नहीं।" "भन्ते! किसको होता है और किसको नहीं?"

१६. "महाराज! १. पशु आदि नीच योनि में उत्पन्न हुए व्यक्ति को सन्मार्ग पर चलने से भी ज्ञान का साक्षात्कार नहीं होता, २. प्रेत योनि में उत्पन्न हुए, ३. झूठे सिद्धान्त को मानने वाले, ४. उलटे सीधे दूसरों को ठगने वाले, ५. माता के हत्यारे, ६. पिता के हत्यारे, ७. अर्हत् के हत्यारे, ८. सङ्घ में फूट पैदा करने वाले, ९. बुद्ध–शरीर से रक्त बहाने वाले, १०. चोरी से सङ्घ में प्रविष्ट होने वाले, ११. झूठे मत के आचार्यों का मत ग्रहण करने वाले, १२. भिक्षुणी के साथ व्यभिचार करने वाले, १३. तेरह बड़े पापों में से किसी को भी करके उसका प्रायश्चित्त न करने वाले, १४. नपुंसक (हिजड़े), १५. उभतोव्यञ्जक (= स्त्री और पुरुष दोनों लिङ्ग वाले) का सन्मार्ग पर चलने पर भी और १६. सात वर्ष से नीचे की आयु के

"भन्ते नागसेन, ये ते पन्नरस पुग्गला विरुद्धा येव, तेसं अभिसमयो होतु वा मा वा होतु, अथ केन कारणेन मनुस्सदहरकस्स ऊनसत्तवस्सिकस्स सुप्पटिपन्नस्सापि धम्माभिसमयो न होति? एत्थ ताव पञ्हो भवति— 'ननु नाम दहरकस्स न रागो होति, न दोसो होति, न मोहो होति, न मानो होति, न मिच्छादिट्ठि होति, न अरति होति, न कामवितक्को होति, अमिस्सितो किलेसेहि सो नाम दहरको युत्तो च पत्तो च, अरहति च चत्तारि सच्चानि एकपटिविधेन पटिविज्झितुं" ति?

"तं येवेत्थ, महाराज, कारणं, येनाहं कारणेन भणामि— 'ऊनसत्तवस्सिकस्स सुप्पटिपन्नस्सापि धम्माभिसमयो न होती' ति। यदि, महाराज, ऊनसत्तवस्सिकस्स रजनीये रज्जेय्य, दुस्सनीये दुस्सेय्य, मोहनीये मुय्हेय्य, मदनीये मज्जेय्य, दिट्ठिं विजानेय्य, रतिं च अरतिं च विजानेय्य, कुसलाकुसलं वितक्केय्य, भवेय्य तस्स धम्माभिसमयो। अपि च, महाराज, ऊनसत्तवस्सिकस्स चरितं अबलं दुब्बलं परित्तं अप्पं थोकं मन्दं अविभूतं, असङ्खता निब्बानधातु गरुका भारिका विपुला महती। ऊनसत्तवस्सिको, महाराज, तेन दुब्बलेन चित्तेन परित्तकेन मन्देन अविभूतेन न सक्कोति गरुकं भारिकं विपुलं महतिं असङ्खतं निब्बानधातुं पटिविज्झितुं। (१)

"यथा, महाराज, सिनेरुपब्बतराजा गरुको भारिको विपुलो महन्तो, अपि नु खो तं, महाराज, पुरिसो अत्तनो पाकतिकेन थामबलवीरियेन सक्कुणेय्य सिनेरुपब्बतराजं उद्धरितुं" ति? "न हि, भन्ते" ति। "केन कारणेन, महाराजा" ति? "दुब्बलत्ता, भन्ते, पुरिसस्स,

---

बच्चे को भी ज्ञान का साक्षात्कार नहीं हो सकता। महाराज! इन सोलह लोगों को सन्मार्ग पर चलने से भी ज्ञान का साक्षात्कार नहीं होता।"

"भन्ते नागसेन! ऊपर कहे गये पहले पन्द्रह लोगों को ज्ञान का साक्षात्कार हो या न हो (उसके विषय में मैं नहीं कहता), किन्तु इसका क्या कारण है कि सात वर्ष के नीचे के बच्चे को ज्ञान का साक्षात्कार नहीं हो सकता? यहाँ सन्देह खड़ा होता है। बच्चे को तो राग, द्वेष, मोह, मान, झूठा सिद्धान्त, असन्तोष और कामवितर्क नहीं होते। यह लोकसम्मत बात ही है। बच्चा तो निष्पाप रहता है, वह तो एक ही बार में चार आर्यसत्यों की भीतरी बातों को पूरी तरह समझ सकता है।"

"महाराज! इसी से मैं कहता हूँ कि सात वर्ष से छोटे बच्चे को ज्ञान का साक्षात्कार नहीं हो सकता। महाराज! यदि सात वर्ष से छोटे बच्चे को राग करने के विषयों में राग होता, द्वेष करने की जगहों में द्वेष होता, मोह लेने वाले पदार्थ मोह लेते, मद उत्पन्न करने वाली चीजें मद उत्पन्न कर देतीं, झूठे सिद्धान्त उसको धोखा दे पाते, सन्तोष और असन्तोष होता या पाप और पुण्य का ध्यान रहता, तब तो उसे ज्ञान का साक्षात्कार हो सकता था। महाराज! किन्तु सात वर्ष से नीचे के बच्चे का चित्त निर्बल, दुर्बल अल्प... मन्द और निर्बुद्धि रहता है; और निर्गुण निर्वाण, जो शब्दों में प्रकट किया ही नहीं जा सकता, गम्भीर और महान् है। महाराज! तो वह निर्बल, दुर्बल, अल्प.... मन्द और निर्बुद्धि चित्त वाला सात वर्ष से नीचे का बच्चा उस निर्गुण निर्वाण को नहीं समझ सकता जो गम्भीर और महान् है, जो कि शब्दों में प्रकट भी नहीं किया जा सकता।

"महाराज! जैसे सुमेरु पर्वतराज बड़ा है, भारी है, विशाल है और महान् है। महाराज! तो क्या उस सुमेरु पर्वत को कोई भी अपनी प्राकृतिक शक्ति से उखाड़ सकता है?" "नहीं, भन्ते!" "क्यों नहीं?"

महन्तत्ता सिनेरुपब्बतराजस्सा'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, ऊनसत्तवस्सिकस्स चित्तं अबलं दुब्बलं परित्तं अप्पं थोकं मन्दं अविभूतं, असङ्खता निब्बानधातु गरुका भारिका विपुला महता; ऊनसत्तवस्सिको तेन दुब्बलेन चित्तेन परित्तेन मन्देन अविभूतेन न सक्कोति गुरुकं भारिकं विपुलं महतिं असङ्खतं निब्बानधातुं पटिविज्झितुं, तेन कारणेन ऊनसत्तवस्सिकस्स सुप्पटिपन्नस्सापि धम्माभिसमयो न होति। (२)

''यथा वा पन, महाराज, अयं महापठवी दीघा आयता पुथुला वित्थता विसाला वित्थिण्णा विपुला महन्ता, अपि नु खो तं, महाराज, महापठविं सक्का परित्तकेन उदकबिन्दुकेन तेमेत्वा उदकचिक्खल्लं कातुं'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''केन कारणेन, महाराजा'' ति? ''परित्तत्ता, भन्ते, उदकबिन्दुस्स, महन्तत्ता महापठविया'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, ऊनसत्तवस्सिकस्स चित्तं अबलं दुब्बलं परित्तं अप्पं थोकं मन्दं अविभूतं, असङ्खता निब्बानधातु दीघा आयता पुथुला वित्थता विसाला वित्थिण्णा विपुला महन्ता। ऊनसत्तवस्सिको तेन दुब्बलेन चित्ते परित्तकेन मन्देन अविभूतेन न सक्कोति महतिं असङ्खतं निब्बानधातुं पटिविज्झितुं, तेन कारणेन ऊनसत्तवस्सिकस्स सुप्पटिपन्नस्सापि धम्माभिसमयो न होति। (३)

''यथा वा पन, महाराज, अबलदुब्बलपरित्तअप्पथोकमन्दग्गि भवेय्य, अपि नु खो, महाराज, तावतकेन मन्देन अग्गिना सक्का सदेवके लोके अन्धकारं विधमित्वा आलोकं दस्सेतुं'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''केन कारणेन, महाराजा'' ति? ''मन्दत्ता, भन्ते, अग्गिस्स, लोकस्स महन्तत्ता'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, ऊनसत्तवस्सिकस्स चित्तं अबलं दुब्बलं परित्तं अप्पं थोकं मन्दं अविभूतं, महता च अविज्जन्धकारेन पिहितं, तस्मा दुक्करं ञाणालोकं दस्सयितुं, तेन कारणेन ऊनसत्तकवस्सिकस्स सुप्पटिपन्नस्सापि धम्माभिसमयो न होती ति।(४)

''यथा वा पन, महाराज, आतुरो किसो अणुपरिमितकायो सालककिमि हत्थिनागं तिधाप्पभिन्नं नवायतं तिवित्थतं दसपरिणाहं अट्ठरतनिकं सकट्ठानमुपगतं दिस्वा गिलितुं

''भन्ते! क्योंकि वह आदमी इतना कम शक्तिवाला है और सुमेरु पर्वत इतना महान् है। महाराज! इसी तरह, सात वर्ष के नीचे के बच्चे का चित्त अबल, दुर्बल, अल्प....मन्द और बुद्धिहीन होता है; और निर्गुण निर्वाण जो शब्दों में प्रकट किया ही नहीं जा सकता गुरु और महान् है। महाराज! तो वह निर्बल, दुर्बल, अल्प ... मन्द और निर्बुद्धि चित्त वाला सात वर्ष से नीचे का बच्चा उस निर्गुण निर्वाण को नहीं समझ सकता, जो गुरु और महान् है तथा जो शब्दों में प्रकट भी नहीं किया जा सकता।

''महाराज! जैसे यह महापृथ्वी लम्बी, चौड़ी, विस्तृत, विशाल, विपुल और महान् है। महाराज! क्या इस महापृथ्वी को जल की एक छोटी बूँद से सींचकर कीचड़–कीचड़ किया जा सकता है?'' ''नहीं, भन्ते!'' क्यों नहीं? भन्ते! क्योंकि पानी की बूँद इतनी छोटी और पृथ्वी अधिक विशाल है। महाराज! इसी तरह, सात वर्ष के बच्चे का चित्त अल्प....।

''महाराज! जैसे कहीं थोड़ा सा छोटासा टिमटिमाता अग्नि–कण हो तो क्या उस थोड़े से छोटे टिमटिमाते अग्नि–कण से देवताओं और मनुष्यों के साथ यह सारा लोक प्रकाशित किया जा सकता है?'' ''नहीं, भन्ते।'' ''क्यों नहीं?'' ''भन्ते! क्योंकि अग्नि अल्प है और लोक बड़ा।'' ''महाराज! इसी तरह, सात वर्ष से छोटे बच्चे का चित्त....।''

''महाराज! जैसे सालक जाति का एक, दुर्बल और सर्वथा छोटा रोगी कीड़ा हो। क्या वह कीड़ा

परिकड्ढेय्य, अपि नु खो सो, महाराज, सालककिमि सक्कुणेय्य तं हत्थिनागं गिलितुं'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''केन कारणेन, महाराजा'' ति? ''परित्तता, भन्ते, सालककिमिस्स, महन्तता हत्थिनागस्सा'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, ऊनसत्तवस्सिकस्स चित्तं अबलं दुब्बलं परित्तं अप्पं थोकं मन्दं अविभूतं, महती असङ्खता निब्बानधातु; सो तेन दुब्बलेन चित्तेन परित्तकेन मन्देन अविभूतेन न सक्कोति महतिं असङ्खतं निब्बानधातुं पटिविज्झितुं, तेन कारणेन ऊनसत्तवस्सिकस्स सुप्पटिपन्नस्सापि धम्माभिसमयो न होती'' ति। (५)

''साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी'' ति।

९. एकन्तसुखनिब्बानपञ्हो

१७. ''भन्ते नागसेन, किं एकन्तसुखं निब्बानं, उदाहु दुक्खेन मिस्सं'' ति। ''एकन्तसुखं, महाराज, निब्बानं दुक्खेन अमिस्सं'' ति। ''न मयं तं, भन्ते नागसेन, वचनं सद्दहाम— 'एकन्तसुखं निब्बानं' ति। एवमेत्थ मयं, भन्ते नागसेन, पच्चेम— 'निब्बानं दुक्खेन मिस्सं' ति। कारणमेत्थ उपलभाम— 'निब्बानं दुक्खेन मिस्सं' ति। कतमं एत्थ कारणं? ये ते, भन्ते नागसेन, निब्बानं परियेसन्ति, तेसं दिस्सति कायस्स च चित्तस्स च आतापो परितापो, ठानचङ्कम-निसज्जासयनाहारपरिग्गहो, मिद्धस्स च उपरोधो, आयतनानं च पटिपीळनं, धनधञ्ञ-पियञातिमित्तप्पजहनं। ये केचि लोके सुखिता सुखसमप्पिता, ते सब्बे पि पञ्चहि कामगुणेहि आयतने रमेन्ति ब्रूहेन्ति, मनापिकमनापिकबहुविधसुखनिमित्तेन रूपेन चक्खुं रमेन्ति ब्रूहेन्ति,

---

अपने बिल के पास तीन स्थानों से मद चूते हुये, नौ हाथ लम्बे, तीन हाथ चौड़े, दस हाथ मोटे, आठ रत्न ऊँचे किसी हस्तिराज को आया देखकर उसे निगल जाने के लिये बाहर आयगा?" "नहीं, भन्ते!" "क्यों नहीं?" "क्योंकि भन्ते! सालक कीड़ा छोटा जीव है और हस्तिराज महान् है।" "महाराज! इसी तरह, सात वर्ष से नीचे के बच्चे का चित्त.... महान् है, जो शब्दों में प्रकट भी नहीं किया जा सकता। महाराज! इसीलिये, सन्मार्ग पर चलते रहने पर भी सात वर्ष से छोटे बच्चे को ज्ञान का साक्षात्कार नहीं होता।"

"ठीक है, भन्ते नागसेन! मैं यह बात समझ गया।"

९. एकान्तसुखमयनिर्वाणविषयकप्रश्न— १७. "भन्ते नागसेन! क्या निर्वाण में सुख ही सुख है या कुछ दुःख भी होता है?" "महाराज! निर्वाण में सुख ही सुख है, दुःख का लेश भी नहीं रहता।" "भन्ते नागसेन! इस बात को हम नहीं मान सकते कि निर्वाण में सुख ही सुख है, दुःख का लेश भी नहीं रहता। भन्ते नागसेन! मैं तो इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि निर्वाण में भी अवश्य कुछ न कुछ दुःख लगा ही रहता है। 'निर्वाण में भी अवश्य कुछ न कुछ दुःख लगा रहता है'— इसके लिये मेरे पास एक युक्ति है। कौन सी युक्ति? भन्ते नागसेन! जो निर्वाण की खोज करते हैं, वह शरीर और मन दोनों से तप करते देखे जाते हैं। वे खड़े चंक्रमण करते या आसन लगाये बैठे रहते हैं, पड़े रहते हैं, भोजन में बहुत संयम रखते हैं, निद्रा पर निग्रह करते हैं, इन्द्रियों को दबा देते हैं तथा अपने धन-धान्य, प्रिय बन्धु-बान्धव और मित्रों से नाता तोड़ लेते हैं। किन्तु जो सुख उठाने तथा विलासमय जीवन बिताने वाले लोग हैं वे पाँचों इन्द्रियों से संसार में भोग करते हैं और मस्त रहते हैं; अनेक प्रकार के अभिलषित सौन्दर्य को आँखों से देख कर भोग करते हैं; अनेक प्रकार के अभीष्ट गीत-वाद्य को कान से सुन कर उसका स्वाद चखते हैं; अनेक प्रकार के मनचाहे गीत फूल, फल, पत्ते, छाल, जड़ या हीर के इत्र या गन्ध को नाक से सूँघ कर प्रसन्न होते हैं; अनेक प्रकार की मनचाही, चिकनी, बारीक, कोमल और मृदु वस्तुओं के स्पर्श का सुख लेते हैं; अनेक प्रकार के मनचाहे अच्छे-बुरे या पाप पुण्य के ध्यान से मन ही मन प्रसन्न रहते हैं,

मनापिकमनापिकगीतवादितबहुविधसुभनिमित्तेन सद्देन सोतं रमेन्ति ब्रूहन्ति, मनापिकमनापिक-पुप्फफलपत्ततचमूलसारबहुविधसुभनिमित्तेन गन्धेन घानं रमेन्ति ब्रूहेन्ति, मनापिकमनापिक-खज्जभोज्जलेय्हपेय्यसायनीयबहुविधसुभनिमित्तेन रसेन जिव्हं रमेन्ति ब्रूहन्ति, मनापिकमनापिक-सण्हसुखुममुदुमद्दवबहुविधसुभनिमित्तेन फस्सेन कायं रमेन्ति ब्रूहेन्ति, मनापिकमनापिक-कल्याणपापकसुभासुभबहुविधवितक्कमनसिकारेन मनं रमेन्ति ब्रूहेन्ति। तुम्हे तं चक्खुसोत-घानजिव्हाकायमनाब्रूहनं हनथ उपहनथ छिन्दथ उपच्छिन्दथ रुन्धथ उपरुन्धथ, तेन कायो पि परितप्पति, चित्तं पि परितप्पति, काये परितत्ते कायिकं दुक्खं वेदनं वेदियति, चित्ते परितत्ते चेतसिकं दुक्खं वेदनं वेदियति। ननु मागन्दियो पि परिब्बाजको भगवन्तं गरहमानो एवमाह— 'भूनहु समणो गोतमो' ति। *(म० नि०, मा० सु०)* इदमेत्थ, भन्ते, कारणं, येनाहं कारणेन ब्रूमि— 'निब्बानं दुक्खेन मिस्सं' '' ति।

१८. ''न हि, महाराज, निब्बानं दुक्खेन मिस्सं, एकन्तसुखं निब्बानं। यं पन त्वं, महाराज, ब्रूसि— 'निब्बानं दुक्खं' ति, नेतं दुक्खं निब्बानं नाम। निब्बानस्स पन सच्छिकिरियाय पुब्बभागो एसो, निब्बानपरियेसनं एतं। एकन्तसुखं येव, महाराज, निब्बानं, न दुक्खेन मिस्सं। तत्थ कारणं वदामि। अत्थि, महाराज, राजूनं रज्जसुखं नामा'' ति? ''आम, भन्ते, अत्थि राजूनं रज्जसुखं'' ति। ''अपि नु खो तं, महाराज, रज्जसुखं दुक्खेन मिस्सं'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''किस्स पन ते, महाराज, राजानो पच्चन्ते कुपिते तेसं पच्चन्तनिस्सितानं पटिसेधाय अमच्चेहि परिणायकेहि भटेहि बलत्थेहि परिवुता पवासं गन्त्वा डंसमकसवातातपपटिपीळिता समविसमे परिधावन्ति, महायुद्धं च करोन्ति, जीवितसंसयं च पापुणन्ती'' ति? ''नेतं, भन्ते

इसके विपरीत, आप लोग आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर और मन की इच्छाओं को दबा देते हैं, काट देते हैं, उखाड़ देते हैं, रोक देते हैं और बन्द कर देते हैं, इससे शरीर को भी कष्ट होता है और मन को भी। शारीरिक दुःख भी होता है और मानसिक भी। मागन्दिय परिव्राजक ने भगवान् की निन्दा करते हुये कहा न था— 'श्रमण गौतम लोगों का प्राण निकाल लेने वाले हैं!' यही युक्ति है, जिसके बल पर मैं कहता हूँ कि निर्वाण भी दुःखसम्पृक्त है?"

१८. "नहीं, महाराज! निर्वाण में दुःख का लेश भी नहीं है। निर्वाण सुख ही सुख है। महाराज! जो आप कहते हैं कि निर्वाण में दुःख है, वह दुःख यथार्थतः निर्वाण में नहीं है। यह तो निर्वाण साक्षात् करने के पहले की बात है; यह तो निर्वाण की खोज करने की अवस्था है। महाराज! सचमुच निर्वाण में सुख ही सुख है; निर्वाण में दुःख का लेश भी नहीं है। इसका कारण बताता हूँ— "महाराज! राजाओं को 'राज्यसुख' नाम की कोई चीज मिलती है?" "हाँ, भन्ते! राजाओं को राज्यसुख मिलता है।" "महाराज! राजाओं का वह राज्यसुख क्या दुःख से सम्पृक्त होता है।" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! जब कभी सीमान्त के लोगों के विद्रोही हो जाने पर उन्हें दबाने के लिये राजा अपना घर-बार छोड़कर अधिकारी, मन्त्री, सेना और सिपाही आदि के साथ मक्खी-मच्छर, हवा और गर्मी का दुःख झेलते हुए ऊँची और नीची भूमि पर आक्रमण कर बड़ा युद्ध छेड़ देते हैं, यहाँ तक कि अपने प्राणों को सङ्कट में डाल देते हैं?" "भन्ते नागसेन! यह राज्यसुख नहीं है। यह तो राज्यसुख पाने से पूर्व का प्रयास है। भन्ते नागसेन! बड़ी कठिनाई के बाद राजा राज्य पाता है और उसके सुख का भोग करता है। भन्ते नागसेन! इस तरह, राज्य-सुख अपने दुःख से मिला नहीं है। राज्यसुख दूसरी ही चीज है और दुःख दूसरी।" "महाराज! वैसे ही, निर्वाण में सुख ही सुख है। निर्वाण में दुःख का लेश भी नहीं। जो उस निर्वाण की खोज करते

नागसेन, रज्जसुखं नाम, रज्जसुखस्स परियेसनाय पुब्बभागो एसो। दुक्खेन, भन्ते नागसेन, राजानो रज्जं परियेसित्वा रज्जसुखं अनुभवन्ति। एवं, भन्ते नागसेन, रज्जसुखं दुक्खेन अमिस्सं, अञ्ञं तं रज्जसुखं, अञ्ञं दुक्खं'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, एकन्तसुखं निब्बानं न दुक्खेन मिस्सं। ये पन ते निब्बानं परियेसन्ति कायं च चित्तं च आतापेत्वा ठानचङ्कमनिसज्जासयनाहारं परिग्गहेत्वा मिद्धं उपरुन्धित्वा आयतनानि पटिपीळेत्वा कायं च जीवितं च परिच्चजित्वा दुक्खेन निब्बानं परियेसित्वा एकन्तसुखं निब्बानं अनुभवन्ति, निहतपच्चामित्ता च राजानो रज्जसुखं। एवं, महाराज, एकन्तसुखं निब्बानं न दुक्खेन मिस्सं, अञ्ञं निब्बानं, अञ्ञं दुक्खं'' ति।

''अपरं पि, महाराज, उत्तरिं कारणं सुणोहि— 'एकन्तसुखं निब्बानं न दुक्खेन मिस्सं, अञ्ञं दुक्खं, अञ्ञं निब्बानं' ति। अत्थि, महाराज, आचरियानं सिप्पवन्तानं सिप्पसुखं नामा'' ति? ''आम, भन्ते, अत्थि आचरियानं सिप्पवन्तानं सिप्पसुखं'' ति। ''अपि नु खो तं, महाराज, सिप्पसुखं दुक्खेन मिस्सं'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''किस्स पन ते, महाराज, आचरियानं अभिवादनपच्चुट्ठानेन उदकाहरणघरसम्मज्जनदन्तकट्ठमुखोदकानुप्पदानेन उच्छिट्ठ-प्पटिग्गहणउच्छादननहापनपादपरिकम्मेन सकचित्तं निक्खिपित्वा परचित्तानुवत्तनेन दुक्ख-सेय्याय विसमभोजनेन कायं आतापेन्ती'' ति? ''नेतं, भन्ते नागसेन, सिप्पसुखं नाम, सिप्पपरियेसनाय पुब्बभागो एसो। दुक्खेन, भन्ते नागसेन, आचरिया सिप्पं परियेसित्वा सिप्पसुखं अनुभवन्ति। एवं, भन्ते नागसेन, सिप्पसुखं दुक्खेन अमिस्सं, अञ्ञं तं सिप्पसुखं, अञ्ञं दुक्खं'' ति।

''एवमेव खो, महाराज, एकन्तसुखं निब्बानं न दुक्खेन मिस्सं, ये पन तं निब्बानं

हैं, उन्हें शरीर और मन से तप करना ही होता है। उन्हें खड़े रहना, चंक्रमण करना, आसन लगाकर बैठे रहना, पड़े रहना, भोजन में बहुत संयम रखना, निद्रा और इन्द्रियों पर निग्रह रखना, तथा अपने धन, धान्य, प्रिय, बन्धु-बान्धव और मित्रों से सम्बन्ध तोड़ लेना ही होता है। इतनी कठिनाई से निर्वाण पाकर वह सुख ही सुख पाते हैं। जैसे शत्रुओं का दमन करने के बाद ही राजा को राज्यसुख मिलता है, वैसे ही निर्वाण दूसरी ही चीज है और दुःख दूसरी।''

''महाराज! एक और कारण सुनें कि 'निर्वाण सुख ही सुख है, उसमें दुःख का लेश भी नहीं, दुःख दूसरी चीज है और निर्वाण दूसरी।'' ''महाराज! बड़े-बड़े शिल्पियों को क्या अपनी कला में आनन्द आता है?'' ''हाँ, भन्ते! बड़े-बड़े शिल्पियों को अपनी कला में आनन्द आता है।'' ''महाराज! क्या वह सुख दुःखसम्पृक्त होता है?'' ''नहीं, भन्ते!'' ''महाराज! तो क्यों वे अपनी गुरु की सेवा में उठ कर स्वागत करते हैं? क्यों जल लाना, घर में झाड़ू लगाना, दतुवन लाना, मुँह धोने के लिये जल लाना इत्यादि सेवा करते हैं? क्यों उनका जूठा खाते हैं? क्यों उनका मलना, नहलाना और पैर रगड़ना करते हैं? अपनी इच्छा को छोड़ दूसरे की इच्छा से क्यों सब कार्य करते हैं? कठोर बिस्तर पर क्यों सोते हैं? रूखा सूखा खा कर अपना गुजारा क्यों कर लेते हैं?'' ''भन्ते नागसेन! कला का आनन्द यह नहीं है, कला सीखने के लिये ही ऐसा किया जाता है। भन्ते! शिल्पी बहुत कठिनाई से कला सीख कर उसका आनन्द लेता है। कला अपने दुःख से सम्पृक्त नहीं है। कला दूसरी ही चीज है और दुःख दूसरी।''

''महाराज! वैसे ही, निर्वाण सुख ही सुख है। निर्वाण में दुःख का लेश भी नहीं हैं। जो उस निर्वाण की खोज करते हैं, उन्हें शरीर और मन का निग्रह करना ही होता है। उन्हें खड़े रहना, चंक्रमण

परियेसन्ति ते कायं च चित्तं च आतापेत्वा ठानचङ्कमनिसज्जासयनाहारं परिग्गहेत्वा मिद्धं उपरुन्धित्वा आयतनानि पटिपीळेत्वा कायं च जीवितं च परिच्चजित्वा दुक्खेन निब्बानं परियेसित्वा एकन्तसुखं निब्बानं अनुभवन्ति, आचरिया विय सिप्पसुखं। एवं, महाराज, एकन्तसुखं निब्बानं, न दुक्खेन मिस्सं, अञ्ञं दुक्खं, अञ्ञं निब्बानं'' ति।

''साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं सम्पटिच्छामी'' ति।

१०. निब्बानरूपसण्ठानपञ्हो

१९. ''भन्ते नागसेन, 'निब्बानं, निब्बानं' ति यं वदेसि, सक्का पन तस्स निब्बानस्स रूपं वा सण्ठानं वा वयं वा पमाणं वा ओपम्मेन वा कारणेन वा हेतुना वा नयेन वा उपदस्सयितुं'' ति? ''अप्पटिभागं, महाराज, निब्बानं, न सक्का निब्बानस्स रूपं वा सण्ठानं वा वयं वा पमाणं वा ओपम्मेन वा कारणेन वा हेतुना वा नयेन वा उपदस्सयितुं'' ति: ''एतम्पाहं, भन्ते नागसेन, न सम्पटिच्छामि। यं अत्थिधम्मस्स निब्बानस्स रूपं वा सण्ठानं वा वयं वा पमाणं वा ओपम्मेन वा कारणेन वा हेतुना वा नयेन वा अपञ्ञापनं, कारणेन मं सञ्ञापेही'' ति? ''होतु, महाराज, कारणेन तं सञ्ञापेस्सामि। अत्थि, महाराज, महासमुद्दो नामा'' ति? ''आम, भन्ते, अत्थेसो महासमुद्दो'' ति।

२०. ''सचे तं, महाराज, कोचि एवं पुच्छेय्य—'कित्तकं, महाराज, समुद्दस्स उदकं, कति पन ते सत्ता ये महासमुद्दे पटिवसन्ती' ति? एवं पुट्ठो त्वं, महाराज, किं ति तस्स व्याकरेय्यासी'' ति? ''सचे मं, भन्ते, कोचि एवं पुच्छेय्य—'कित्तकं, महाराज, महासमुद्दे उदकं, कति पन ते सत्ता ये महासमुद्दे पटिवसन्ती' ति, तमहं, भन्ते, एवं वदेय्यं—'अपुच्छितब्बं

करना, आसन लगाये बैठे रहना, पड़े रहना, भोजन में बहुत संयम रखना, नींद और इन्द्रियाँ दबा कर रखना तथा अपने धन–धान्य, प्रिय, बन्धु–बान्धव और मित्रों से सम्बन्ध विच्छेद कर लेना ही होता है। इतनी कठिनाई के बाद निर्वाण पा कर सुख ही सुख उठाते हैं, जैसे शिल्पी कला में आनन्द लेता है। महाराज! इस तरह, निर्वाण एकान्ततः सुख ही सुख है। उसमें दुःख का लेश भी नहीं है। दुःख दूसरी चीज है और निर्वाण दूसरी।

"ठीक है, भन्ते! अब मैं ठीक–ठीक समझ गया।"

१०. निर्वाण के रूप–संस्थानविषयकप्रश्न– १९. "भन्ते नागसेन! आप जो यह 'निर्वाण' 'निर्वाण' कहते रहते हैं, वह है क्या? उपमा, व्याख्या, तर्क और कारणों के साथ क्या आप समझा सकते हैं कि निर्वाण के रूप, स्थान, काल या आकार कैसे हैं?" "महाराज! निर्वाण में ऐसी कोई भी बात नहीं है। उपमा, व्याख्या, तर्क और कारणों के साथ निर्वाण के रूप, स्थान, काल या आकार नहीं दिखाये जा सकते।" "भन्ते नागसेन! मैं यह नहीं मानता कि निर्वाण वर्तमान तो है, किन्तु उसके रूप, स्थान, काल या आकार न उपमा, न व्याख्या, न तर्क और न कारणों के साथ समझाये जा सकते हों। कृपा कर मुझे यह बात समझावें?" "बहुत अच्छा, महाराज! इसे मैं समझाता हूँ–महासमुद्र नाम की कोई वस्तु है क्या?" "हाँ, भन्ते! है। भला महासमुद्र को कौन नहीं जानता!"

२०. "महाराज! यदि कोई आप से पूछे– महाराज! भला यह तो बतावें कि समुद्र में कितना जल है? उन जीवों की क्या गणना है जो महासमुद्र में रहते हैं?– तो आप उसको क्या उत्तर देंगे?" "भन्ते नागसेन! यदि कोई मुझसे यह पूछे तो मैं यही कहूँगा– 'अरे भाई! तू मुझसे ऐसा प्रश्न पूछ रहा

मं त्वं, अम्भो पुरिस, पुच्छसि, नेसा पुच्छा केनचि पुच्छितब्बा, ठपनीयो एसो पञ्हो, अविभत्तो लोकक्खायिकेहि महासमुद्दो, न सक्का महासमुद्दे उदकं परिमिनितुं, सत्ता वा ये तत्थ वासमुपगता' ति एवाहं, भन्ते, तस्स पटिवचनं ददेय्यं'' ति।

''किस्स पन त्वं, महाराज, अत्थिधम्मे महासमुद्दे एवं पटिवचनं ददेय्यासि, ननु विगणेत्वा तस्स आचिक्खितब्बं— 'एत्तकं महासमुद्दे उदकं, एत्तका च सत्ता महासमुद्दे पटिवसन्ती' '' ति। ''न सक्का, भन्ते; अविसयो एसो पञ्हो'' ति।

''यथा, महाराज, अत्थिधम्मे येव महासमुद्दे न सक्का उदकं परिगणेतुं, सत्ता वा ये तत्थ वासमुपगता; एवमेव खो, महाराज, अत्थिधम्मस्सेव निब्बानस्स न सक्का रूपं वा सण्ठानं वा वयं वा पमाणं वा ओपम्मेन वा कारणेन वा हेतुना वा नयेन वा उपदस्सयितुं। विगणेय्य, महाराज, इद्धिया चेतोवसिप्पत्तो महासमुद्दे उदकं तत्रासये च सत्ते, न त्वेव सो इद्धिमा चेतोवसिप्पत्तो सक्कुणेय्य निब्बानस्स रूपं वा सण्ठानं वा वयं वा पमाणं वा ओपम्मेन वा कारणेन वा हेतुना वा नयेन वा उपदस्सयितुं।

''अपरं पि, महाराज, उत्तरि कारणं सुणोहि— अत्थिधम्मस्सेव निब्बानस्स न सक्का रूपं वा सण्ठानं वा वयं वा पमाणं वा ओपम्मेन वा कारणेन वा हेतुना वा नयेन वा उपदस्सयितुं ति। अत्थि, महाराज, देवेसु अरूपकायिका नाम देवा'' ति? ''आम, भन्ते, सूयति— 'अत्थि देवेसु अरूपकायिका नाम देवा' '' ति। ''सक्का पन, महाराज, तेसं अरूपकायिकानं देवानं रूपं वा सण्ठानं वा वयं वा पमाणं वा ओपम्मेन वा कारणेन वा हेतुना वा नयेन वा उपदस्सयितुं'' ति? ''न हि, भन्ते ति। ''तेन हि, महाराज, नत्थि अरूपकायिका देवा'' ति? ''अत्थि, भन्ते, अरूपकायिका देवा, न च सक्का तेसं रूपं वा सण्ठानं वा वयं वा पमाणं वा ओपम्मेन वा

है जो पूछा ही नहीं जाना चाहिये, यह प्रश्न पूछने योग्य नहीं, इस प्रश्न को छोड़ देना चाहिये। भूशास्त्रवेत्ताओं ने भी इस पर विचार नहीं किया। महासमुद्र में कितना जल है, भला इसकी कौन गणना कर सकता है! भला यह कौन गिन सकता है कि उसमें कितने जीव रहते हैं'!"

"महाराज! समुद्र के वर्तमान रहने पर भी आप ऐसा उत्तर क्यों देंगे, आप को तो गणना कर ठीक-ठीक उसे बता देना चाहिये कि 'महासमुद्र में इतना जल है और इतने जीव रहते हैं'।" "भन्ते! यह असम्भव बात है। इस प्रश्न को उठाने का कोई प्रयोजन ही नहीं।"

"महाराज! जैसे समुद्र के रहने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि उसमें कितना जल है या कितने जीव रहते हैं; वैसे ही निर्वाण के होने पर भी उसके रूप, स्थान, काल या आकार उपमायें दिखाकर व्याख्या करके तर्क और कारण के साथ नहीं समझाये जा सकते। महाराज! चित्त वश में रखने वाला कोई ऋद्धिमान् पुरुष भले ही यह बता दे कि महासमुद्र में कितना जल है या जीव रहते हैं, किन्तु वह भी निर्वाण के रूप, स्थान, काल या आकार को.... नहीं समझा सकता।

"महाराज! एक और कारण सुनें, जिससे निर्वाण के होने पर भी उपमायें दिखा....उसके रूप, स्थान, काल या आकार नहीं समझाये जा सकते। महाराज! देवताओं में 'अरूपकायिक' नामक देवता हैं, या नहीं?" "हाँ भन्ते! ऐसा सुना जाता है कि 'अरूपकायिक' नामक देवता हैं।" "महाराज! क्या उन 'अरूपकायिक' देवताओं के रूप, स्थान, काल या आकार उपमायें दिखाकर व्याख्या कर, तर्क और कारण के साथ समझाये जा सकते हैं?" "नहीं, भन्ते! नहीं समझाये जा सकते?" "महाराज! तब

कारणेन वा हेतुना वा नयेन वा उपदस्सयितुं'' ति। ''यथा, महाराज, अत्थिसत्तानं येव अरूपकायिकानं देवानं न सक्का रूपं वा सण्ठानं वा वयं वा पमाणं वा ओपम्मेन वा कारणेन वा हेतुना वा नयेन वा उपदस्सयितुं; एवमेव खो, महाराज, अत्थिधम्मस्सेव निब्बानस्स न सक्का रूपं वा सण्ठानं वा वयं वा पमाणं वा ओपम्मेन वा करणेन वा हेतुना वा नयेन वा उपदस्सयितुं'' ति।

''भन्ते नागसेन, होतु एकन्तसुखं निब्बानं। न च सक्का तस्स रूपं वा सण्ठानं वा वयं वा पमाणं वा ओपम्मेन वा कारणेन वा हेतुना वा नयेन वा उपदस्सयितुं। अत्थि पन, भन्ते, निब्बानस्स गुणं अञ्ञेहि अनुपविट्ठं, किञ्चि ओपम्मनिदस्सनमत्तं'' ति? ''सरूपतो, महाराज, नत्थि; गुणतो पन, महाराज, सक्का किञ्चि ओपम्मनिदस्सनमत्तं उपदस्सयितुं'' ति।

''साधु, भन्ते नागसेन, यथाहं लभामि निब्बानस्स गुणतो पि एकदेसपरिदीपनमत्तं, तथा सीघं ब्रूहि, निब्बापेहि मे हदयपरिळाहं विनयसीतलमधुरवचनमालुतेना'' ति।

''पदुमस्स, महाराज, एको गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो, उदकस्स द्वे गुणा, अगदस्स तयो गुणा, महासमुद्दस्स चत्तारो गुणा, भोजनस्स पञ्च गुणा, आकासस्स दस गुणा, मणिरतनस्स तयो गुणा, लोहितचन्दनस्स तयो गुणा, सप्पिमण्डस्स तयो गुणा, गिरिसिखरस्स पञ्च गुणा निब्बानं अनुपविट्ठा'' ति।

''भन्ते नागसेन, 'पदुमस्स एको गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो' ति यं वदेसि, कतमो पदुमस्स एको गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो'' ति? ''यथा, महाराज, पदुमं अनुपलित्तं उदकेन;

अरूपकायिक देवता हैं ही नहीं।'' ''भन्ते! 'अरूपकायिक' देवता हैं तो अवश्य, किन्तु उनके रूप, स्थान, काल या आकार–प्रकार उपमायें दिखा, व्याख्या कर, तर्क और कारण के साथ नहीं समझाये जा सकते।'' ''महाराज! जैसे 'अरूपकायिक' देवताओं के रहने पर भी उनके रूप, स्थान, काल या आकार उपमा दिखा, व्याख्या कर, तर्क और कारण के साथ नहीं समझाये जा सकते; वैसे ही निर्वाण के होने पर भी उसके रूप, स्थान, काल या आकार उपमा दिखा, व्याख्या कर, तर्क और कारण के साथ नहीं समझाये जा सकते।''

''भन्ते नागसेन! ठीक है, मैं मान लेता हूँ कि निर्वाण सुख ही सुख है; और उसके रूप, स्थान, काल या आकार उपमा दिखाकर व्याख्या कर, तर्क और कारण के साथ नहीं समझाये जा सकते। भन्ते! क्या उपमा के सहारे निर्वाण के गुण की और किसी दूसरे ने कुछ संकेत भर भी किया है?'' ''महाराज! निर्वाण का रूप तो है ही नहीं, किन्तु उपमा के सहारे थोड़ा बहुत इस ओर संकेत किया जा सकता है कि वह कैसा है!''

''अच्छा भन्ते! 'निर्वाण कैसा है'— इसका ही कुछ संकेत मिल जाय! अतः शीघ्र ही अपने मन्द, शीतल एवं मधुरवचनरूपी मारुत से मेरे हृदय की उत्सुकतारूपी जलन मिटा दें।''

''महाराज! कमल का एक गुण निर्वाण में मिलता है; जल के दो गुण निर्वाण में मिलते हैं, अगद के तीन गुण मिलते हैं; समुद्र के चार गुण मिलते हैं; भोजन के पाँच गुण मिलते हैं; आकाश के दश गुण मिलते हैं; मणि–रत्न के तीन गुण मिलते हैं; लाल चन्दन के तीन गुण मिलते हैं, घी (नवनीत) के तीन गुण और पहाड़ की चोटी के पाँच गुण निर्वाण में मिलते हैं।''

''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि कमल का एक गुण निर्वाण में मिलता है वह कौन सा

एवमेव खो, महाराज, निब्बानं सब्बकिलेसेहि अनुपलित्तं। अयं, महाराज, पदुमस्स एको गुणो निब्बानं अनुप्पविट्ठो'' ति। (१)

''भन्ते नागसेन, 'उदकस्स द्वे गुणा निब्बानं अनुपविट्ठा' ति वदेसि, कतमे उदकस्स द्वे गुणा निब्बानं अनुप्पविट्ठा'' ति? ''यथा, महाराज, उदकं सीतलं परिळाहनिब्बापनं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं सीतलं सब्बकिलेसपरिळाहनिब्बापनं, अयं महाराज, उदकस्स पठमो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। पुन च परं, महाराज, उदकं किलन्ततसितपिपासित-घम्माभितत्तानं जनपसुपजानं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं कामतण्हाभवतण्हाविभव-तण्हापिपासाविनयनं। अयं, महाराज, उदकस्स दुतियो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। इमे खो, महाराज, उदकस्स द्वे गुणा निब्बानं अनुपविट्ठा'' ति। (२)

''भन्ते नागसेन, 'अगदस्स तयो गुणा निब्बानं अनुपविट्ठा' ति यं वदेसि, कतमे अगदस्स तयो गुणा निब्बानं अनुपविट्ठा'' ति? ''यथा, महाराज, अगदो विसपीळितानं सत्तानं पटिसरणं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं किलेसविसपीळितानं सत्तानं पटिसरणं। अयं, महाराज, अगदस्स पठमो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। पुन च परं, महाराज, अगदो रोगानं अन्तकरो; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं सब्बदुक्खानं अन्तकरं। अयं, महाराज, अगदस्स दुतियो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। पुन च परं, महाराज, अगदो अमतं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं अमतं। अयं, महाराज, अगदस्स ततियो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। इमे खो, महाराज, अगदस्स तयो गुणा निब्बानं अनुपविट्ठा'' ति। (३)

''भन्ते नागसेन, 'महासमुद्दस्स चत्तारो गुणा निब्बानं अनुपविट्ठा' ति यं वदेसि, कतमे महासमुद्दस्स चत्तारो गुणा निब्बानं अनुप्पविट्ठा'' ति? ''यथा, महाराज, महासमुद्दो सुञ्ञो

गुण है?'' ''महाराज! जिस तरह कमल जल से सर्वथा अलिप्त रहता है; उसी तरह निर्वाण सभी क्लेशों से अलिप्त रहता है। महाराज! कमल का यह एक गुण निर्वाण में मिलता है।'' (१)

''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि जल के दो गुण निर्वाण में मिलते हैं, वे कौन से दो गुण हैं?'' ''महाराज! १. जैसे जल शीतल होता है और गर्मी दूर करता है; वैसे ही निर्वाण भी शीतल है, जो सभी क्लेशों का ताप शान्त कर देता है। महाराज! यह जल का पहला गुण है, जो निर्वाण में पाया जाता है। २. और फिर, जैसे जल थके, माँदे, प्यासे और धूप से पीड़ित आदमी या पशु को, उनकी प्यास बुझाकर, शान्त कर देता है; वैसे ही निर्वाण भी लोगों की कामतृष्णा, भवतृष्णा और विभवतृष्णा की प्यास को दूर कर देता है। महाराज! यह जल का दूसरा गुण है, जो निर्वाण में पाया जाता है।'' (२)

''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि औषध (अगद) के तीन गुण निर्वाण में मिलते हैं, वे तीन गुण कौन से हैं?'' ''महाराज! १. जैसे विष से पीड़ित लोगों के लिये औषध ही बचने का रास्ता है; वैसे ही क्लेशरूपी विष से पीड़ित लोगों के लिये निर्वाण ही एकमात्र बचने का रास्ता है। महाराज! औषध का यह पहला गुण है, जो निर्वाण में मिलता है। २. और जैसे अगद सभी रोगों का अन्त कर देती है; वैसे ही निर्वाण सभी दुःखों का अन्त कर देता है। महाराज! औषध का यह दूसरा गुण भी निर्वाण में मिलता है। ३. फिर जैसे यह औषध अमृत है; वैसे ही निर्वाण भी अमृत है। महाराज! औषध का यह तीसरा गुण है जो निर्वाण में मिलता है। महाराज! औषध के ये तीन गुण निर्वाण में मिलते हैं।'' (३)

''भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि महासमुद्र के चार गुण निर्वाण में मिलते हैं, वे चार गुण कौन

सब्बकुणपेहि; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं सुञ्ञं सब्बकिलेसकुणपेहि। अयं, महाराज, महासमुद्दस्स पठमो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो ति। पुन च परं, महाराज, महासमुद्दो महन्तो अनोरपारो, न पूरति सब्बसवन्तीहि; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं महन्तं अनोरपारं, न पूरति सब्बसत्तेहि। अयं, महाराज, महासमुद्दस्स दुतियो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। पुन च परं, महाराज, महासमुद्दो महन्तानं भूतानं आवासो; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं महन्तानं अरहन्तानं विमलखीणासवबलप्पत्तवसीभूतमहाभूतानं आवासो। अयं, महाराज, महासमुद्दस्स ततियो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। पुन च परं, महाराज, महासमुद्दो अपरिमितविविधविपुलवीचि-पुप्फसङ्कुसुमितो; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं अपरिमितविविधविपुलपरिसुद्धविज्जा-विमुत्तिपुप्फसङ्कुसुमितं। अयं, महाराज, महासमुद्दस्स चतुत्थो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। इमे खो, महाराज, महासमुद्दस्स चत्तारो गुणा निब्बानं अनुपविट्ठा'' ति। (४)

''भन्ते नागसेन, 'भोजनस्स पञ्च गुणा निब्बानं अनुपविट्ठा' ति यं वदेसि, कतमे भोजनस्स पञ्च गुणा निब्बानं अनुपविट्ठा'' ति?''यथा, महाराज, भोजनं सब्बसत्तानं आयुधारणं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं सच्छिकतं जरामरणनासनतो आयुधारणं। अयं, महाराज, भोजनस्स पठमो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। पुन च परं, महाराज, भोजनं सब्बसत्तानं बलवड्ढनं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं सच्छिकतं सब्बसत्तानं इद्धिबलवड्ढनं। अयं, महाराज, भोजनस्स दुतियो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। पुन च परं, महाराज, भोजनं सब्बसत्तानं वण्णजननं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं सच्छिकतं सब्बसत्तानं गुणवण्णजननं। अयं, महाराज, भोजनस्स ततियो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। पुन च परं, महाराज, भोजनं सब्बसत्तानं दरथवूपसमनं;

से हैं?'' ''महाराज! १. जैसे महासमुद्र अपने में किसी मृत शरीर को नहीं रहने देता; वैसे ही निर्वाण में भी कोई क्लेश रह नहीं पाते। महाराज! महासमुद्र का यह पहला गुण है जो निर्वाण में मिलता है। २. जैसे महासमुद्र महान् और अपरम्पार है, सब नदियों के गिरने से भी नहीं भरता; वैसे ही निर्वाण भी महान् और अपरम्पार है, सब जीवों केआने पर भी नहीं भरता। महाराज! महासमुद्र का यह दूसरा गुण है, जो निर्वाण में मिलता है। ३. जैसे महासमुद्र में बड़े-बड़े जीव रहते हैं; वैसे ही निर्वाण में बड़े-बड़े क्षीणास्रव, शुद्ध, बली और आत्मसंयमी अर्हत् रहते हैं। महाराज! महासमुद्र का यह तीसरा गुण भी निर्वाण में मिलता है। ४. जैसे महासमुद्र नाना प्रकार के अनन्त बड़े-बड़े तरङ्ग रूपी फूलों से भरा रहता है; वैसे ही निर्वाण भी नाना प्रकार के अनन्त बड़े-बड़े शुद्ध विद्या और विमुक्ति के फूलों से भरा रहता है। महाराज! महासमुद्र का यह चौथा गुण निर्वाण में भी मिलता है। महाराज! महासमुद्र के ये चार गुण निर्वाण में मिलते हैं।'' (४)

''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भोजन के पाँच गुण निर्वाण में मिलते हैं, वे पाँच गुण कौन से हैं?'' ''महाराज! १. जैसे भोजन सभी जीवों की प्राणरक्षा करता है; वैसे ही साक्षात्कृत निर्वाण जरा-मरण से रक्षा करता है। महाराज! भोजन का यह पहला गुण है, जो निर्वाण में मिलता है। २. जैसे भोजन सभी जीवों के बल की वृद्धि करता है; वैसे ही निर्वाण साक्षात् करने से दिव्यबल की वृद्धि होती है। महाराज! भोजन का यह दूसरा गुण है, जो निर्वाण में मिलता है। ३. जैसे भोजन सभी जीवों का सौन्दर्य बनाये रखता है; वैसे ही साक्षात् किया गया निर्वाण जीवों में सद्गुण का सौन्दर्य बनाये रखता है! महाराज! भोजन का यह तीसरा गुण निर्वाण में भी मिलता है। ४. जैसे भोजन सभी जीवों का कष्ट दूर कर देता है; वैसे ही निर्वाण सभी जीवों का क्लेश रूपी कष्ट दूर कर देता है। महाराज! भोजन का यह

एवमेव खो, महाराज, निब्बानं सच्छिकतं सब्बसत्तानं सब्बकिलेसदरथवूपसमनं। अयं, महाराज, भोजनस्स चतुत्थो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। पुन च परं, महाराज, भोजनं सब्बसत्तानं जिघच्छा-दुब्बल्यपटिविनोदनं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं सच्छिकतं सब्बसत्तानं सब्बदुक्खजिघच्छा-दुब्बल्यपटिविनोदनं। अयं, महाराज, भोजनस्स पञ्चमो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। इमे खो, महाराज, भोजनस्स पञ्च गुणा निब्बानं अनुपविट्ठा'' ति (५)

''भन्ते नागसेन, 'आकासस्स दस गुणा निब्बानं अनुपविट्ठा' ति यं वदेसि, कतमे आकासस्स दस गुणा निब्बानं अनुपविट्ठा'' ति? ''यथा, महाराज, आकासो न जायति, न जीयति, न मीयति, न चवति, न उप्पज्जति, दुप्पसहो, अचोराहरणो, अनिस्सितो, विहगगमनो, निरावरणो, अनन्तो; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं न जायति न जीयति न मीयति न चवति न उप्पज्जति, दुप्पसहं अचोराहरणं अनिस्सितं अरियगमनं निरावरणं अनन्तं। इमे खो, महाराज, आकासस्स दस गुणा निब्बानं अनुपविट्ठा'' ति। (६)

''भन्ते नागसेन, 'मणिरतनस्स तयो गुणा निब्बानं अनुपविट्ठा' ति यं वदेसि, कतमे मणिरतनस्स तयो गुणा निब्बानं अनुपविट्ठा'' ति? ''यथा, महाराज, मणिरतनं कामददं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं कामददं। अयं, महाराज, मणिरतनस्स पठमो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। पुन च, महाराज, मणिरतनं हासकरं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं हासकरं। अयं, महाराज, मणिरतनस्स दुतियो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। पुन च परं, महाराज, मणिरतनं उज्जोतत्थकरं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं उज्जोतत्थकरं। अयं, महाराज, मणिरतनस्स ततियो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। इमे खो, महाराज, मणिरतनस्स तयो गुणा निब्बानं अनुपविट्ठा'' ति। (७)

चौथा गुण है, जो निर्वाण में मिलता है। ५. जैसे भोजन सभी जीवों की भूख, दुर्बलता हटा देता है; वैसे ही निर्वाण जीवों के सारे दुःख, भूख और दुर्बलता आदि दूर कर देता है। महाराज! भोजन का यह पाँचवाँ गुण निर्वाण में भी मिलता है। महाराज! भोजन के ये पाँच गुण निर्वाण में मिलते हैं।'' (५)

''भन्ते! आप जो कहते हैं कि आकाश के दश गुण निर्वाण में मिलते हैं, वे दश गुण कौन से हैं?'' ''महाराज! जैसे आकाश १. न पैदा होता है, २. न पुराना होता है, ३. न मरता है, ४. न आवागमन करता है, ५. दुर्ज्ञेय है, ६. चोरों से नहीं चुराया जा सकता, ७. किसी दूसरे पर निर्भर नहीं रहता, ८. स्वच्छन्द गति है, ९. खुला और १०. अनन्त है; वैसे ही निर्वाण भी न पैदा होता, न पुराना होता, न मरता, न आवागमन करता है, दुर्ज्ञेय है, चोरों से भी नहीं चुराया जा सकता, किसी दूसरे पर निर्भर नहीं रहता, स्वच्छन्द, खुला और अनन्त है। महाराज! आकाश के ये दश गुण निर्वाण में मिलते हैं।'' (६)

''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि मणिरत्न के तीन गुण निर्वाण में मिलते हैं, वे कौन से तीन गुण हैं?'' ''महाराज! १. जैसे मणिरत्न समग्र इच्छाएँ पूर्ण कर देता है; वैसे ही निर्वाण भी समग्र इच्छाएँ पूर्ण कर देता है। महाराज! मणिरत्न का यह पहला गुण है, जो निर्वाण में मिलता है। २. मणिरत्न की तरह निर्वाण भी अत्यन्त मनोहर होता है। महाराज! मणिरत्न का यह दूसरा गुण निर्वाण में मिलता है। ३. जैसे मणिरत्न प्रकाशवान् और अत्यन्त उपयोगी होता है; वैसे ही निर्वाण भी अत्यन्त प्रकाशवान् और उपयोगी होता है। महाराज! मणिरत्न का यह तीसरा गुण है, जो निर्वाण में मिलता है। महाराज! मणिरत्न के ये तीन गुण निर्वाण में भी मिलते हैं।'' (७)

"भन्ते नागसेन, 'लोहितचन्दनस्स तयो गुणा निब्बानं अनुपविट्ठा' ति यं वदेसि, कतमे लोहितचन्दनस्स तयो गुणा निब्बानं अनुपविट्ठा" ति? "यथा, महाराज, लोहितचन्दनं दुल्लभं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं दुल्लभं। अयं, महाराज, लोहितचन्दनस्स पठमो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। पुन च परं, महाराज, लोहितचन्दनं असमसुगन्धं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं असमसुगन्धं। अयं, महाराज, लोहितचन्दनस्स दुतियो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। पुन च परं, महाराज, लोहितचन्दनं सज्जनपसत्थं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं अरियसज्जनपसत्थं। अयं, महाराज, लोहितचन्दनस्स ततियो गुणो निब्बानमनुपविट्ठो। इमे खो, महाराज, लोहितचन्दस्स तयो गुणा निब्बानममनुपविट्ठा" ति। (८)

"भन्ते नागसेन, 'सप्पिमण्डस्स तयो गुणा निब्बानमनुपविट्ठा' ति यं वदेसि, कतमे सप्पिमण्डस्स तयो गुणा निब्बानमनुपविट्ठा" ति? "यथा, महाराज, सप्पिमण्डो वण्णसम्पन्नो; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं गुणवण्णसम्पन्नं। अयं, महाराज, सप्पिमण्डस्स पठमो गुणो निब्बानमनुपविट्ठो ति। पुन च परं, महाराज, सप्पिमण्डो गन्धसम्पन्नो; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं सीलगन्धसम्पन्नं। अयं, महाराज, सप्पिमण्डस्स दुतियो गुणो निब्बानमनुपविट्ठो। पुन च परं, महाराज, सप्पिमण्डो रससम्पन्नो; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं रससम्पन्नं। अयं, महाराज, सप्पिमण्डस्स ततियो गुणो निब्बानमनुपविट्ठो। इमे खो, महाराज, सप्पिमण्डस्स तयो गुणा निब्बानमनुपविट्ठा" ति। (९)

"भन्ते नागसेन, 'गिरिसिखरस्स पञ्च गुणा निब्बानमनुपविट्ठा' ति यं वदेसि, कतमे गिरिसिखरस्स पञ्च गुणा निब्बानमनुपविट्ठा" ति? "यथा, महाराज, गिरिसिखरं अच्चुग्गतं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं अच्चुग्गतं। अयं, महाराज, गिरिसिखरस्स पठमो गुणो

"भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि लाल चन्दन के तीन गुण निर्वाण में मिलते हैं, वे तीन गुण कौन से हैं?" "महाराज! १. जैसे लाल चन्दन दुर्लभ होता है; वैसे ही निर्वाण का पाना भी बहुत कठिन है। महाराज! लाल चन्दन का यह पहला गुण है, जो निर्वाण में मिलता है। २. जैसे लाल चन्दन की सुगन्ध अपनी निराली होती है; वैसे ही निर्वाण की सुगन्ध भी निराली होती है। महाराज! लाल चन्दन का यह दूसरा गुण है, जो निर्वाण में मिलता है। ३. लाल चन्दन की तरह निर्वाण भी सज्जनों द्वारा अत्यन्त प्रशंसित है। महाराज! लाल चन्दन का यह तीसरा गुण निर्वाण में मिलता है। महाराज! लाल चन्दन के ये तीन गुण निर्वाण में मिलते हैं।" (८)

"भन्ते! आप कहते हैं कि मक्खन के तीन गुण निर्वाण में मिलते हैं, वे तीन गुण कौन से हैं?" "महाराज! १. मक्खन की तरह निर्वाण भी सद्गुणों से विभूषित होता है। महाराज! मक्खन का यह पहला गुण निर्वाण में भी मिलता है। २. जैसे मक्खन की गन्ध बहुत अच्छी होती है; वैसे ही निर्वाण भी शीलगन्धयुक्त होता है। महाराज! मक्खन का यह दूसरा गुण निर्वाण में मिलता है। ३. जैसे मक्खन का स्वाद अत्यन्त स्वादिष्ठ होता है; वैसे ही निर्वाण भी अत्यन्त स्वादिष्ठ होता है। महाराज! मक्खन का यह तीसरा गुण है, जो निर्वाण में मिलता है। महाराज! मक्खन के ये तीन गुण निर्वाण में मिलते हैं।" (९)

"भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि पर्वत-शिखर (पहाड़ की चोटी) के पाँच गुण निर्वाण में मिलते हैं, वे पाँच गुण कौन से हैं?" "महाराज! १. जैसे पहाड़ की चोटी बहुत ऊँची होती है; वैसे ही निर्वाण भी बहुत ऊँचा है। महाराज! पहाड़ की चोटी का यह पहला गुण है, जो निर्वाण में मिलता है। २.

निब्बानमनुपविट्ठो। पुन च परं, महाराज, गिरिसिखरं अचलं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं अचलं। अयं, महाराज, गिरिसिखरस्स दुतियो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। पुन च परं, महाराज, गिरिसिखरं दुरधिरोहं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं दुरधिरोहं सब्बकिलेसानं। अयं, महाराज, गिरिसिखरस्स ततियो गुणो निब्बानमनुपविट्ठो। पुन च परं, महाराज, गिरिसिखरं सब्बबीजानं अविरूहनं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं सब्बकिलेसानं अविरूहनं। अयं, महाराज, गिरिसिखरस्स चतुत्थो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। पुन च परं, महाराज, गिरिसिखरं अनुनयप्पटिघविप्पमुत्तं; एवमेव खो, महाराज, निब्बानं अनुनयपटिघविप्पमुत्तं। अयं, महाराज, गिरिसिखरस्स पञ्चमो गुणो निब्बानं अनुपविट्ठो। इमे खो, महाराज, गिरिसिखरस्स पञ्च गुणा निब्बानमनुपविट्ठा'' ति। (१०)

''साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी'' ति।

११. निब्बानसच्छिकरणपञ्हो

२१. ''भन्ते नागसेन, तुम्हे भणथ— 'निब्बानं न अतीतं न अनागतं न पच्चुप्पन्नं न उप्पन्नं न अनुप्पन्नं न उप्पादनीयं' ति। इध, भन्ते नागसेन, यो कोचि सम्मापटिपन्नो निब्बानं सच्छिकरोति सो उप्पन्नं सच्छिकरोति, उदाहु उप्पादेत्वा सच्छिकरोती'' ति? ''यो कोचि, महाराज, सम्मापटिपन्नो निब्बानं सच्छिकरोति, सो न उप्पन्नं सच्छिकरोति, न उप्पादेत्वा सच्छिकरोति। अपि च, महाराज, अत्थेसा निब्बानधातु यं सो सम्मापटिपन्नो सच्छिकरोती'' ति।

''मा, भन्ते नागसेन, इमं पञ्हं पटिच्छन्नं कत्वा दीपेहि, विवटं पाकटं कत्वा दीपेहि छन्दजातो उस्साहजातो, यं ते सिक्खितं तं सब्बं एत्थेवाकिराहि, एत्थायं जनो सम्मूळ्हो विमतिजातो संसयपक्खन्नो, भिन्देतं अन्तोदोससल्लं'' ति?

पहाड़ की चोटी की तरह निर्वाण भी अचल होता है। महाराज! पहाड़ की चोटी का यह दूसरा गुण निर्वाण में भी मिलता है। ३. जैसे पहाड़ की चोटी पर चढ़ना बहुत कठिन है; वैसे ही निर्वाण पाना बहुत कठिन है। महाराज! पहाड़ की चोटी का यह तीसरा गुण निर्वाण में मिलता है। ४. और जैसे पहाड़ की चोटी पर कोई बीज नहीं जम सकता; वैसे ही निर्वाण में कोई क्लेश नहीं पैदा सकते। महाराज! पहाड़ की चोटी का यह चौथा गुण है जो निर्वाण में मिलता है। ५. पहाड़ की चोटी की तरह ही निर्वाण में भी किसी के प्रति न राग रहता है और न द्वेष। महाराज! पहाड़ की चोटी का यह पाँचवाँ गुण है जो निर्वाण में मिलता है। महाराज! पहाड़ की चोटी के ये पाँच गुण हैं, जो निर्वाण में मिलते हैं।" (१०)

"ठीक है, भन्ते नागसेन! यह बात मैं मान लेता हूँ।"

११. निर्वाण–साक्षात्कारविषयकप्रश्न— २१. "भन्ते नागसेन! आप लोग कहते हैं— 'निर्वाण भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों कालों से आगे की चीज है। निर्वाण न तो उत्पन्न होता है, न नहीं उत्पन्न होता है और न उत्पन्न किया जा सकता है।' भन्ते नागसेन! तब जो कोई सन्मार्ग पर चलकर निर्वाण को साक्षात् करता है; क्या वह उत्पन्न हुए निर्वाण को साक्षात् करता है?" "महाराज! जो कोई सन्मार्ग पर चल कर निर्वाण साक्षात् करता है, वह न तो उत्पन्न हुए निर्वाण का साक्षात् और न अपने नये सिरे से निर्वाण को उत्पन्न कर उसे साक्षात् करता है। महाराज! इस पर भी निर्वाण यथार्थतः है, जिसे कोई सन्मार्ग पर चल कर साक्षात्कार कर सकता है।"

"भन्ते नागसेन! इस प्रश्न को और भी धुँधला बना कर उत्तर न दें। इसे अच्छी तरह खोल कर

२२. "अत्थेसा, महाराज, निब्बानधातु सन्ता सुखा पणीता, तं सम्मापटिपन्नो जिनानुसिट्ठिया सङ्खारे सम्मसन्तो पञ्ञाय सच्छिकरोति। यथा, महाराज, अन्तेवासिको आचरियानुसिट्ठिया विज्जं पञ्ञाय निब्बानं सच्छिकरोति; एवमेव खो, महाराज, सम्मापटिपन्नो जिनानुसिट्ठिया पञ्ञाय निब्बानं सच्छिकरोति। कथं पन तं निब्बानं दट्ठब्बं ति? अनीतितो निरुपद्दवतो अभयतो खेमतो सन्ततो सुखतो साततो पणीततो सुचितो सीतलतो दट्ठब्बं।

"यथा, महाराज, पुरिसो बहुकट्ठपुञ्जेन जलितकट्ठितेन अग्गिना डय्हमानो वायामेन ततो मुञ्चित्वा निरग्गिकोकासं पविसित्वा तत्थ परमसुखं लभेय्य; एवमेव खो, महाराज, यो सम्मापटिपन्नो सो योनिसो मनसिकारेन व्यपगततिविधग्गिसन्तापं परमसुखं निब्बानं सच्छिकरोति। यथा, महाराज, अग्गि एवं तिविधग्गि दट्ठब्बो, यथा अग्गिगतो पुरिसो एवं सम्मापटिपन्नो दट्ठब्बो, यथा निरग्गिकोकासो एवं निब्बानं दट्ठब्बं। (क)

"यथा वा पन, महाराज, पुरिसो अहिकुक्कुरमनुस्सकुणपसरीरवळञ्जकोट्ठासरासिगतो कुणपजटाजटितन्तरमनुपविट्ठो वायामेन ततो मुञ्चित्वा निक्कुणपोकासं पविसित्वा तत्थ परमसुखं लभेय्य; एवमेव खो, महाराज, यो सम्मापटिपन्नो सो योनिसो मनसिकारेन ब्यपगतकिलेसकुणपं परमसुखं निब्बानं सच्छिकरोति। यथा, महाराज, कुणपं एवं पञ्च कामगुणा दट्ठब्बा, यथा कुणपगतो पुरिसो एवं सम्मापटिपन्नो दट्ठब्बो, यथा निक्कुणपोकासो एवं निब्बानं दट्ठब्बं। (ख)

स्पष्ट कर दें। विना किसी सङ्कोच के उत्साहपूर्वक आपने जो सीखा है, सब बता दें। इस विषय में मैं सर्वथा मूढ़ हूँ, भटका हुआ हूँ, सन्देह में पड़ गया हूँ, भीतर ही भीतर चुभने वाले मेरे इस कण्टक (दोष) को दूर करें?"

२२. "महाराज! यह निर्वाण शान्त, सुखमय और प्रणीत है। सन्मार्ग पर चलकर बुद्धोपदेश के अनुसार संसार के सभी संस्कारों को (अनित्य, दुःख और अनात्म की दृष्टि से) देखते हुए कोई प्रज्ञा से निर्वाण का साक्षात्कार करता है। महाराज! जैसे शिष्य गुरु से शिक्षा लेकर अपनी समझ से विद्या का साक्षात्कार कर लेता है; वैसे ही कोई भी सन्मार्ग पर चलकर बुद्धोपदेशानुसार संसार के सभी संस्कारों को (अनित्य, दुःख और अनात्म की दृष्टि से) देखते हुए प्रज्ञा से निर्वाण का साक्षात्कार करता है। निर्वाण का दर्शन कैसे हो सकता है? विघ्नों से रहित होने से, निरुपद्रव होने से, अभय, कुशल, शान्त, सुखमय, प्रसन्न, नम्र एवं शुद्ध होने से तथा शीलपालन करने से निर्वाण का दर्शन हो सकता है।

"महाराज! जैसे कोई मनुष्य किसी बड़े अग्निकुण्ड में पड़ जाने पर जैसे-तैसे कूद-फाँद कर बाहर निकल आता है और तब उसे बहुत सुख मिलता है; वैसे ही कोई सन्मार्ग पर चल, मन को सही लक्ष्य पर लगा, तीन प्रकार की अग्नि के सन्ताप से छूटकर परमसुख निर्वाण साक्षात् करता है। महाराज! जो यहाँ अग्नि है, उसे तीन प्रकार की अग्नि (राग, द्वेष, और मोह) समझना चाहिये। जो यहाँ अग्नि में पड़ गया मनुष्य है, उसे सन्मार्ग पर चलने वाला समझना चाहिये। जो अग्नि के बाहर आ जाना है उसे निर्वाण पा लेना समझना चाहिये। (क)

"महाराज! जैसे मरे हुये साँप, कुत्ते और मनुष्यों से भरा कोई गढ़ा हो, जिसकी गन्दगी से अत्यन्त दुर्गन्ध आ रही हो। उन मुर्दों के बीच में दबा हुआ कोई जीवित आदमी हाथ पैर चलाकर अत्यन्त प्रयास के बाद बाहर निकल आवे, और तब उसे बड़ा सुख मिले; महाराज! वैसे ही कोई सन्मार्ग पर चलकर, मन को लक्ष्य पर लगाकर क्लेशरूपी मृत-समूह से बाहर परमसुख निर्वाण का साक्षात्कार करता है। महाराज! जो यहाँ मृत हैं उन्हें पाँच काम-वासनाएँ और जो यहाँ मुर्दों के बीच में दबा जीवित

"यथा वा पन, महाराज, पुरिसो भीतो तसितो कुपितो विपरीतविब्भन्तचित्तो वायामेन ततो मुञ्चित्वा दळ्हं थिरं अचलं अभयट्ठानं पविसित्वा तत्थ परमसुखं लभेय्य; एवमेव खो, महाराज, यो सम्मापटिपन्नो सो योनिसो मनसिकारेन व्यपगतभयसन्तासं परमसुखं निब्बानं सच्छिकरोति। यथा, महाराज, भयं एवं जातिजराव्याधिमरणं पटिच्च अपरापरं पवत्तभयं दट्ठब्बं, यथा भीतो पुरिसो एवं सम्मापटिपन्नो दट्ठब्बो, यथा अभयट्ठानं एवं निब्बानं दट्ठब्बं।(ग)

"यथा वा पन, महाराज, किलिट्ठमलिनकललकद्दमदेसे पतितो वायामेन तं कललकद्दमं अपवाहेत्वा परिसुद्धविमलदेसमुपगन्त्वा तत्थ परमसुखं लभेय्य; एवमेव खो, महाराज, यो सम्मापटिपन्नो सो योनिसो मनसिकारेन व्यपगतकिलेसमलकद्दमं परमसुखं निब्बानं सच्छिकरोति। यथा, महाराज, कललं एवं लाभसक्कारसिलोको दट्ठब्बो, यथा कललगतो पुरिसो एवं सम्मापटिपन्नो दट्ठब्बो, यथा परिसुद्धविमलदेसो एवं निब्बानं दट्ठब्बं। (घ)

"तं च पन निब्बानं सम्मापटिपन्नो किं ति सच्छिकरोति? यो सो, महाराज, सम्मापटिपन्नो सो सङ्खारानं पवत्तं सम्मसति, पवत्तं सम्मसमानो तत्थ जातिं पस्सति जरं पस्सति ब्याधिं पस्सति मरणं पस्सति, न तत्थ किञ्चि सुखं सातं पस्सति, आदितो पि मज्झतो पि परियोसानतो पि, सो तत्थ न किञ्चि गय्हूपगं पस्सति। (ङ)

"यथा, महाराज, पुरिसो दिवससन्तत्ते अयोगुले जलिते तत्ते कठिते आदितो पि मज्झतो पि परियोसानतो पि न किञ्चि गय्हूपगं पदेसं पस्सति; एवमेव खो, महाराज, यो

आदमी है, उसे सन्मार्ग पर चलने वाला समझना चाहिये। जो यहाँ मुर्दों के बीच से बाहर आ जाना है, उसे निर्वाण पा लेना समझना चाहिये। (ख)

"महाराज! जैसे कोई पुरुष किसी संकट में पड़कर बहुत डर गया हो, घबरा गया हो, काँप रहा हो, भ्रान्त हो गया, पागल हो गया हो। वह अपने प्रयास से उस संकट से बाहर निकल आवे जहाँ पूरी स्थिरता हो, भय का कोई अवसर न हो, वहाँ उसे अत्यन्त सुख मिले; महाराज! वैसे ही, कोई सन्मार्ग पर चल मन को ठीक ओर लगा, डर या भय से रहित परमसुख निर्वाण का साक्षात्कार करता है। महाराज! जो यहाँ संकट का भय है उसे जन्म लेना, बूढ़ा होना, बीमार पड़ना, मर जाना इत्यादि के कारण होने वाले संसार के इस अपार भय को समझना चाहिये। जो यहाँ भयभीत पुरुष है, उसे सन्मार्ग पर चलने वाला समझना चाहिये। जो यहाँ संकट से निकलकर स्थिरता और निर्भयता की जगह पर आना है, उसे निर्वाण पा लेना समझना चाहिये। (ग)

"महाराज! जैसे मैले और गन्दे कीचड़ में पड़ा हुआ कोई आदमी उद्योग कर पवित्र स्थान में चला जाय और सुख पावे; वैसे ही कोई सन्मार्ग पर चलकर मन को ठीक तरफ लगा कर क्लेशरूपी गन्दगी से निकल परमसुख निर्वाण का साक्षात्कार करता है। महाराज! जो यहाँ कीचड़ है, उसे संसार का लाभ, सत्कार और प्रशंसा समझना चाहिये। जो यहाँ कीचड़ में पड़ा मनुष्य है, उसे सन्मार्ग पर चलने वाला समझना चाहिये। जो यहाँ पवित्र स्थान है, उसे निर्वाण समझना चाहिये। (घ)

"सन्मार्ग पर चलकर कोई कैसे निर्वाण का साक्षात्कार करता है?" "महाराज! जो सन्मार्ग पर चलता है, वह संसार के सभी संस्कारों की अनित्य, अनात्म और दुःखमय देखभाल कर उस पर विचार करता है। विचार करते हुये वहाँ पैदा होना, पुराना होना, रोग और मरण देखता है। यों, वहाँ कुछ भी सुख नहीं देखता। आदि मध्य और अन्त से भी किसी वस्तु को ग्राह्य नहीं पाता। (ङ)

"महाराज! जैसे कोई पुरुष दिन भर अग्नि में गर्म किये फिर बाहर निकाल कर रखे, लपलपाते

सङ्खारानं पवत्तं सम्मसति सो पवत्तं सम्मसमानो तत्थ जातिं पस्सति जरं पस्सति ब्याधिं पस्सति मरणं पस्सति, न तत्थ किञ्चि सुखं सातं पस्सति, आदितो पि मज्झतो पि परिसोयानतो पि, सो तत्थ न गय्हूपगं पस्सति। तस्स गय्हूपगं अपस्सन्तस्स चित्ते अरति सण्ठाति, कायस्मिं डाहो ओक्कमति, सो अत्ताणो असरणो असरणीभूतो भवेसु निब्बिन्दति। (च)

''यथा, महाराज, पुरिसो ज़लितजालं महन्तं अग्गिक्खन्धं पविसेय्य, सो तत्थ असरणो असरणीभूतो अग्गिम्हि निब्बिन्देय्य; एवमेव खो, महाराज, तस्स गय्हूपगं अपस्सन्तस्स चित्ते अरति सण्ठाति, कायस्मिं डाहो ओक्कमति, सो अत्ताणो असरणो असरणीभूतो भवेसु निब्बिन्दति।

''तस्स पवत्ते भयदस्साविस्स एवं चित्तं उप्पज्जति—'सन्तत्तं खो पनेतं पवत्तं सम्पज्जलितं बहुदुक्खं बहुपायासं। यदि कोचि लभेथ अपवत्तं एतं सन्तं एतं पणीतं, यदिदं सब्बसङ्खारसमथो सब्बूपधिपटिनिस्सग्गो तण्हक्खयो विरागो निरोधो निब्बानं' ति। इति हिदं तस्स अपवत्ते चित्तं पक्खन्दति पसीदति पहंसीयति कुहीयति—'पटिलद्धं खो मे निस्सरणं' ति।(छ)

''यथा, महाराज, पुरिसो विप्पनट्ठो विदेसपक्खन्नो निब्बाहनमग्गं दिस्वा तत्थ पक्खन्दति पसीदति पहंसीयति कुहीयति—'पटिलद्धो मे निब्बाहनमग्गो' ति; एवमेव खो, महाराज, पवत्ते भयदस्साविस्स अप्पवत्ते चित्तं पक्खन्दति पसीदति पहंसीयति कुहीयति—'पटिलद्धं खो मे निस्सरणं' ति।

`हुये जलते लोहे के गोले को चारों ओर से देखते हुये उसका कोई भी भाग पकड़ने योग्य नहीं समझता; वैसे ही महाराज! जो संसार के सभी संस्कारों की प्रवृत्ति को देख-भाल कर उस पर विचार करता है, वह वहाँ पैदा होना, पुराना होना, रोग और मरण देखता है। वहाँ कुछ भी सुख नहीं देखता। आदि, मध्य और अन्त से किसी वस्तु को ग्राह्य नहीं समझता। इससे उसका चित्त संसार की ओर से उचट जाता है। उसके शरीर में एक प्रकार की उद्विग्नता समा जाती है। वह जन्म में कोई सार या त्राण नहीं पाता। आवागमन के चक्र से थक जाता है। (च)

''महाराज! जैसे कोई आदमी किसी ज्वालायुक्त अग्नि की बड़ी राशि में पड़ जाय, वहाँ अपने को असहाय और अशरण पावे; महाराज! इसी तरह, सांसरिक विषयों से उसका मन उचट जाता है। उसके शरीर में एक प्रकार की उद्विग्नता समा जाती है। वह जन्म में कोई सार या त्राण नहीं पाता। आवागमन के चक्र से थक जाता है।

''वह सब तरफ केवल भय ही देखता है और उसके मन में यह बात आती है—'अरे! यह सारा संसार जल रहा है! धधक रहा है! दुःख से भरा है, केवल परेशानी है! यदि कोई इस जञ्जाल से छूटना चाहता है तो उसके लिये परमशान्त और प्रणीत निर्वाण ही एकमात्र शरण है, जहाँ सारे संस्कार सदा के लिये रुक जाते हैं, सारी उपाधियाँ मिट जाती हैं, तृष्णा का नाम भी नहीं रह जाता, राग का अन्त हो जाता है और आवागमन का निरोध हो जाता है।' इस तरह, आवागमन से छूटने में ही और उसका चित्त लगता है, इधर ही श्रद्धा और विश्वास बढ़ते हैं। वह आनन्द से बोल उठता है—'अहो! मुझे सहारा मिल गया।' (छ)

''महाराज! जैसे अज्ञात जंगल में भटका कोई यात्री ठीक रास्ता पाकर आनन्दमग्न हो जाता है और बोल उठता है—'अरे! सही रास्ता मिल गया', वैसे ही संसार के प्रपञ्च में भय ही देखने वाला आवागमन से छूटने ही की तरफ चित्त लगाता है, उधर उसके श्रद्धा, विश्वास बढ़ते हैं। तब वह आनन्द से बोल उठता है—'अरे! मुझे सहारा मिल गया।'

"सो अप्पवत्ताय मग्गं आयूहति गवेसति भावेति बहुलीकरोति, तस्स तदत्थं सति सन्तिट्ठति, तदत्थं विरियं सन्तिट्ठति, तदत्थं पीति सन्तिट्ठति, तस्स तं चित्तं अपरापरं मनसिकरोतो पवत्तं समतिक्कमित्वा अप्पवत्तं ओक्कमति। अप्पवत्तमनुप्पत्तो, महाराज, सम्मापटिपन्नो 'निब्बानं सच्छिकरोती' ति वुच्चती" ति। (ज)

"साधु, भन्ते नागसेन, एवमेतं तथा सम्पटिच्छामी" ति।

१२. निब्बानसन्निहितपञ्हो

२३. "भन्ते नागसेन, अत्थि सो पदेसो पुरत्थिमाय वा दिसाय दक्खिणाय वा दिसाय पच्छिमाय वा दिसाय उत्तराय वा दिसाय, उद्धं वा अधो वा तिरियं वा यत्थ निब्बानं सन्निहितं" ति? "नत्थि, महाराज; सो पदेसो पुरत्थिमाय वा दिसाय दक्खिणाय वा दिसाय पच्छिमाय वा दिसाय उत्तराय वा दिसाय, उद्धं वा अधो वा तिरियं वा यत्थ निब्बानं सन्निहितं" ति।

"यदि, भन्ते नागसेन, नत्थि निब्बानस्स सन्निहितोकासो, तेन हि नत्थि निब्बानं, येसं च तं निब्बानं सच्छिकतं तेसं पि सच्छिकिरिया मिच्छा। कारणं तत्थ वक्खामि—यथा, भन्ते नागसेन, महिया धञ्ञुट्ठानं खेत्तं अत्थि, गन्धुट्ठानं गुम्बो अत्थि, फलुट्ठानं रुक्खो अत्थि, रतनुट्ठानं आकरो अत्थि; तत्थ यो कोचि यं यं इच्छति सो तत्थ गन्त्वा तं तं हरति; एवमेव खो, भन्ते नागसेन, यदि निब्बानं अत्थि, तस्स निब्बानस्स उट्ठानोकासो पि इच्छितब्बो। यस्मा च खो, भन्ते नागेसन, निब्बानस्सुट्ठानोकासो नत्थि, तस्मा 'नत्थि निब्बानं' ति ब्रूमि, 'येसं च निब्बानं सच्छिकतं, तेसं सच्छिकिरिया मिच्छा" ति।

२४. "नत्थि, महाराज, निब्बानस्स सन्निहितोकासो, अत्थि चेतं निब्बानं; सम्मापटिपन्नो

"वह निर्वाण पाने का रास्ता ढूँढता है, उसी की भावना करता है और उसी को मनन द्वारा दृढ़ करता है। अपना ध्यान, प्रयास और उत्साह उसी ओर लगा देता है। उसी का बराबर ध्यान करने से उसका चित्त सांसारिक विषयों से हट कर वैराग्य की ओर झुक जाता है। महाराज! वैराग्य को पूर्ण कर सन्मार्ग पर चलते हुए निर्वाण का साक्षात्कार करता है।" (ज)

"ठीक है, भन्ते नागसेन! मैं सर्वथा समझ गया।"

१२. निर्वाणसन्निहितप्रश्न—२३. "भन्ते नागसेन! क्या वह स्थान पूर्व दिशा की तरफ है, या पश्चिम या उत्तर दिशा या दक्षिण दिशा की तरफ या ऊपर या नीचे या तिरछे जहाँ निर्वाण छिपा हो?" "महाराज! वह जगह न तो पूर्व दिशा की तरफ है, न पश्चिम, उत्तर, दक्षिण दिशा की तरफ, न ऊपर, न नीचे और न तिरछे जहाँ निर्वाण छिपा हो।"

"भन्ते! यदि निर्वाण कहीं भी नहीं है तो वह हुआ ही नहीं। निर्वाण नाम की कोई चीज नहीं है। निर्वाण का साक्षात्कार करना सर्वथा झूठी बात है। इसके लिए मेरा तर्क यह है—भन्ते नागसेन! जैसे संसार में खेती उगाने के लिये खेत हैं, गन्ध निकालने के लिये फूल हैं, फूल उगाने के लिये पुष्पवाटिका है, फल खाने के लिये वृक्ष हैं और रत्न निकालने के लिये खान (आकर) है। जिस आदमी को जिस चीज की आवश्यकता होती है, वह वहाँ जा कर उसे पैदा कर सकता है; भन्ते नागसेन! इसी तरह यदि निर्वाण है तो उसका कोई उत्पादक स्थान भी होना चाहिये। भन्ते! यदि ऐसी बात नहीं हैं तो मैं यही समझूँगा कि 'निर्वाण' नाम की कोई चीज है ही नहीं। निर्वाण का साक्षात्कार सर्वथा झूठी बात है?"

२४. "महाराज! निर्वाण के पाये जाने का कोई स्थान नहीं हैं तो भी निर्वाण है और सन्मार्ग पर

योनिसो मनसिकारेन निब्बानं सच्छिकरोति। यथा पन, महाराज, अत्थि अग्गि नाम, नत्थि तस्स सन्निहितोकासो, द्वे कट्ठानि सङ्घट्टेन्तो अग्गिं अधिगच्छति; एवमेव खो, महाराज, अत्थि निब्बानं नत्थि तस्स सन्निहितोकासो, सम्मापटिपन्नो योनिसो मनसिकारेन निब्बानं सच्छिकरोति।

"यथा वा पन, महाराज, अत्थि सत्त रतनानि नाम, सेय्यथीदं— चक्करतनं, हत्थिरतनं, अस्सरतनं, मणिरतनं, इत्थिरतनं, गहपतिरतनं, परिणायकरतनं। *(दी० नि०, चक्कवत्तिसुत्तं)*। न च तेसं रतनानं सन्निहितोकासो अत्थि, खत्तियस्स पन सम्मापटिपन्नस्स पटिपत्तिबलेन तानि रतनानि उपगच्छन्ति; एवमेव खो, महाराज, अत्थि निब्बानं, नत्थि तस्स सन्निहितोकासो, सम्मापटिपन्नो योनिसो मनसिकारेन निब्बानं सच्छिकरोती" ति।

"भन्ते नागसेन, निब्बानस्स सन्निहितोकासो मा होतु; अत्थि पन तं ठानं यत्थ ठितो सम्मापटिपन्नो निब्बानं सच्छिकरोती" ति? "आम, महाराज, अत्थि तं ठानं यत्थ ठितो सम्मापटिपन्नो निब्बानं सच्छिकरोती" ति। "कतमं पन, भन्ते, तं ठानं यत्थ ठितो सम्मापटिपन्नो निब्बानं सच्छिकरोती" ति? "सीलं, महाराज, ठानं, सीले पतिट्ठहित्वा योनिसो मनसिकरोन्तो सक्कयवने पि चीनविलाते पि अलसन्दे पि निकुम्बे पि कासिकोसले पि कस्मीरे पि गन्धारे पि नगमुद्धनि पि ब्रह्मलोके पि यत्थ कत्थचि पि ठितो सम्मापटिपन्नो निब्बानं सच्छिकरोति। यथा, महाराज, यो कोचि चक्खुमा पुरिसो सक्कयवने पि चीनविलाते पि अलसन्दे पि निगुम्बे पि कासिकोसले पि कस्मीरे पि गन्धारे पि नगमुद्धनि पि ब्रह्मलोके पि यत्थ कत्थचि पि ठितो आकासं पस्सति; एवमेव खो, महाराज, सीले पतिट्ठितो योनिसो मनसिकरोन्तो सक्कयवने पि....पे०....यत्थ कत्थचि पि ठितो सम्मापटिपन्नो निब्बानं सच्छिकरोति।

चल कर, मन को सम्यक्प्रतिपन्न कर निर्वाण का साक्षात्कार किया जा सकता है। महाराज! जैसे अग्नि है तो सही, किन्तु उसके ठहरने का कोई स्थान नहीं है। काठ के दो टुकड़े घिस देने से ही अग्नि निकल आती है; महाराज! वैसे ही निर्वाण है तो सही, किन्तु उसके ठहरने का कोई स्थान नहीं है। सन्मार्ग पर चल मन को सम्यक्प्रतिपन्न कर निर्वाण का साक्षात्कार किया जाता है।

"महाराज! जैसे १. चक्ररत्न, २. हस्तिरत्न, ३. अश्वरत्न, ४. मणिरत्न, ५. स्त्रीरत्न, ६. गृहपतिरत्न, ७. परिणायकरत्न (चक्रवर्ती राजा के) ये सात रत्न है। किन्तु इन रत्नों के पाये जाने का कोई विशेष स्थान नहीं है। उनका व्रत पालन करने से ही राजा को ये रत्न प्राप्त होते हैं; महाराज! वैसे ही निर्वाण है तो अवश्य, किन्तु उसके ठहरने की कोई जगह नहीं है। सन्मार्ग पर चल कर, मन को स्थिर कर निर्वाण साक्षात् किया जाता है।"

"भन्ते नागसेन! निर्वाण के पाये जाने का स्थान भले ही न हो, परन्तु क्या कोई ऐसा स्थान भी है, जहाँ खड़े हो कर सन्मार्ग पर चल कर निर्वाण का साक्षात्कार किया जा सकता है?" "महाराज! ऐसा स्थान है जहाँ खड़े होकर.... ....निर्वाण का साक्षात्कार किया जा सकता है।" "भन्ते! वह कौन सा स्थान हैं जहाँ खड़े होकर....निर्वाण का साक्षात्कार किया जा सकता है?" "महाराज! मनुष्य निर्वाण का साक्षात्कार कर सकता है। शक या यवन के देशों में रह कर भी, चीन या विलायत (विदेश) में रह कर भी, अलसन्द या निकुम्ब में रह कर भी, काशी या कोसल में रह कर भी, काश्मीर या गान्धार में रह कर भी, पहाड़ की चोटी या ब्रह्मलोक में रह कर भी इस तरह कहीं भी रह कर शील पर प्रतिष्ठित हो मन को वश में करते हुए मनुष्य निर्वाण का साक्षात्कार कर सकता है। महाराज! जैसे आँख वाला आदमी शक या यवन, चीन या विलायत, अलसन्द, निकुम्ब, काशी, कोसल, काश्मीर या गान्धार में, पहाड़ की

"यथा वा पन, महाराज, सक्कयवने पि.... पे० .... यत्थ कत्थचि पि ठितस्स पुब्बदिसा अत्थि; एवमेव खो, महाराज, सीले पतिट्ठितस्स योनिसो मनसिकरोन्तस्स सक्कयवने पि.... पे०.... यत्थकत्थचि ठितस्स सम्मापटिपन्नस्स अत्थि निब्बानसच्छिकिरिया" ति।

"साधु, भन्ते नागसेन, देसितं तया निब्बानं, देसिका निब्बानसच्छिकिरिया, परिक्खिता सीलगुणा, दस्सिता सम्मापटिपत्ति; उस्सापितो धम्मद्धजो, सण्ठापिता धम्मनेत्ति, अवञ्झो सुप्पयुत्तानं सम्मापयोगो। एवमेतं गणिवरपवर, तथा सम्पटिच्छामी" ति॥

ततियो वेस्सन्तरवग्गो निट्ठितो॥

(इमस्मिं वग्गे द्वादस पञ्हा)

४. अनुमानवग्गो

१. अनुमानपञ्हो

१. अथ खो मिलिन्दो राजा येनायस्मा नागसेनो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं नागसेनं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो मिलिन्दो राजा ञातुकामो सोतुकामो धारेतुकामो, ञाणालोकं दट्ठुकामो, अञ्ञाणं भिन्दितुकामो, ञाणालोकं उप्पादेतुकामो, अविज्जन्धकारं नासेतुकामो, अधिमत्तं धितिं च उस्साहं च सतिं च सम्पजञ्ञं च उपट्ठपेत्वा आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच—

२. "भन्ते नागसेन, किं पन बुद्धो तया दिट्ठो" ति? "न हि, महाराजा" ति। "किं पन ते आचरियेहि बुद्धो दिट्ठो" ति? "न हि, महाराजा" ति। "भन्ते नागसेन, न किर तया

चोटी पर, ब्रह्मलोक में या चाहे कहीं भी रह कर आकाश को देख सकता है; वैसे ही शील पर प्रतिष्ठित हो मन को वश में करते हुए .... कहीं भी रह कर मनुष्य निर्वाण का साक्षात्कार कर सकता है।"

"महाराज! जैसे .... कहीं भी रहने से मनुष्य के लिये पूर्व दिशा रहती ही है; वैसे ही शील पर प्रतिष्ठत हो मन को वश में करते हुए .... कही भी यथेच्छ रह कर मनुष्य निर्वाण का साक्षात्कार कर सकता है।"

"ठीक है, भन्ते नागसेन! आप ने निर्वाण को बहुत अच्छा समझाया, निर्वाण का साक्षात्कार कैसे होता है— इसे बता दिया, शील के गुणों का आप ने प्रदर्शन कर दिया, सन्मार्ग दिखा दिया, धर्मध्वज फहरा दिया, धर्मस्तम्भ गाड़ दिया। शुद्ध (सच्चे) हृदय से साधना करने वालों का प्रयास कभी निष्फल नहीं जाता। इस बात को हे गणाचार्यप्रवर! मैं समझ गया।"

तृतीय वेस्सन्तरवर्ग समाप्त॥

(इस वर्ग में बारह प्रश्न हैं।)

४. अनुमानवर्ग

१. अनुमानप्रश्न—१. तब राजा मिलिन्द जहाँ आयुष्मान् नागसेन थे, वहाँ गया और उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। उस समय उसके मन में कुछ और बातों को जानने की उत्सुकता हो रही थी। नागसेन की बातें सुन कर उन्हें स्पष्टतः समझने की इच्छा हो रही थी। ज्ञान का प्रकाश देखने की चाह हो रही थी। वह अपना अज्ञान दूर कर ज्ञान पाने के लिये अत्यन्त व्याकुल हो रहा था। अतः वह बहुत धैर्य और उत्साह के साथ अपने मन को स्थिर कर शान्त भाव से भदन्त नागसेन के पास गया और यह पूछा—

२. "भन्ते नागसेन! आप ने क्या भगवान् को देखा है?" "नहीं, महाराज!" "क्या आप के आचार्यों ने भगवान् को देखा है?" "नहीं, महाराज!" "भन्ते नागसेन! न तो आप ने भगवान् को देखा

बुद्धो दिट्ठो, नापि किर ते आचरियेहि बुद्धो दिट्ठो, तेन हि, भन्ते नागसेन, नत्थि बुद्धो, न हेत्थ बुद्धो पञ्ञायती'' ति।

''अत्थि पन ते, महाराज, पुब्बका खत्तिया ये ते तव खत्तियवंसस्स पुब्बङ्गमा'' ति? ''आम, भन्ते, को संसयो! अत्थि पुब्बका खत्तिया ये मम खत्तियवंसस्स पुब्बङ्गमा'' ति। ''दिट्ठपुब्बा तया, महाराज, पुब्बका खत्तिया'' ति। ''न हि, भन्ते'' ति। ''ये पन तं, महाराज, अनुसासन्ति, पुरोहिता सेनापतिनो अक्खदस्सा महामत्ता, तेहि पुब्बका खत्तिया दिट्ठपुब्बा'' ति? ''न हि, भन्ते'' ति। ''यदि पन ते, महाराज, पुब्बका खत्तिया न दिट्ठा, नापि किर ते अनुसासकेहि पुब्बका खत्तिया दिट्ठा, कत्थ पुब्बका खत्तिया? न हेत्थ पुब्बका खत्तिया पञ्ञायन्ती'' ति?

३. ''दिस्सन्ति, भन्ते नागसेन, पुब्बकानं खत्तियानं अनुभूतानि परिभोगसण्डानि, सेय्यथीदं—सेतच्छत्तं, उण्हीसं, पादुका, वालबीजनी, खग्गरतनं, महारहानि च सयनानि, येहि मयं जानेय्याम सद्दहेय्याम—'अत्थि पुब्बका खत्तिया'' ति। ''एवमेव खो, महाराज, मयं पेतं भगवन्तं जानेय्याम सद्दहेय्याम, अत्थि तं कारणं येन मयं कारणेन जानेय्याम सद्दहेय्याम—'अत्थि सो भगवा' ति।

४. ''कतमं तं कारणं? अत्थि खो, महाराज, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन अनुभूतानि परिभोगसण्डानि, सेय्यथीदं—चत्तारो सतिपट्ठाना, चत्तारो सम्मप्पधाना, चत्तारो इद्धिपादा, पञ्चिन्द्रियानि, पञ्च बलानि, सत्त बोज्झङ्गा, अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो, येहि सदेवको लोको जानाति सद्दहति—'अत्थि सो भगवा' ति। इमिना, महाराज, कारणेन, इमिना हेतुना, इमिना नयेन, इमिना अनुमानेन ञातब्बं—'अत्थि सो भगवा' ति।

और न आप के आचार्यों ने, तो क्यों न मान लिया जाय कि भगवान् हुए ही नहीं; क्योंकि उन के होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता ?"

"महाराज! क्या पहले के वे राजा हुए हैं, जो आप के पूर्वज थे?" "हाँ भन्ते! इसमें क्या सन्देह है! पहले के राजा अवश्य हो चुके हैं जो मेरे पूर्वज थे।" "क्या, महाराज! आपने उनको देखा है?" "नहीं भन्ते!" "महाराज! क्या आप को परामर्श देने वाले इन पुरोहित, सेनापति, अधिकारी या राजमन्त्रियों ने उन पहले के राजाओं को देखा है?" "नहीं, भन्ते!" "महाराज! यदि न तो स्वयं आपने और न आप के इन परामर्शदाताओं ने ही पहले के राजाओं को देखा है, तो क्या पता वे हुए हैं कि नहीं? क्योंकि उनके होने का कोई भी प्रमाण नहीं।"

३. "भन्ते! किन्तु आज भी वे वस्तुएँ देखी जाती हैं, जिनका पहले के राजाओं ने उपयोग किया था। जैसे उनके श्वेत–छत्र, राजमुकुट, जूते, चँवर, तलवार, महार्घ पलङ्ग आदि; जिससे हम लोग जान सकते हैं और विश्वास कर सकते हैं कि वे राजा अवश्य हुए होंगे।" "महाराज! इसी तरह, हम लोग भी भगवान् बुद्ध के विषय में जान सकते हैं और विश्वास कर सकते हैं। इसका प्रमाण भी है, जिसके बल पर हम लोग जान सकते हैं और विश्वास कर सकते हैं कि भगवान् अवश्य हुए हैं।"

४. "वह कौन सा प्रमाण है?" "महाराज! वे चीजें अभी तक वर्तमान हैं, जिनको उन्होंने अपने उपयोग में लिया था। उन सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, अर्हत् और सम्यक्सम्बुद्ध द्वारा प्रयुक्त चीजें ये हैं—१. चार स्मृतिप्रस्थान, २. चार सम्यक्प्रधान, ३. चार ऋद्धिपाद, ४. पाँच इन्द्रियाँ, ५. पाँच बल, ६. सात बोध्यङ्ग

"बहू जने तारयित्वा, निब्बुतो उपधिक्खये।
अनुमानेन ञातब्बं—'अत्थि सो दिपदुत्तमो' " ति॥

"भन्ते नागसेन, ओपम्मं करोही" ति। "यथा, महाराज, नगरवड्ढकी नगरं मापेतुकामो पठमं ताव समं अनुन्नतं अनोणतं असक्खरपासाणं निरुपद्दवमनवज्जं रमणीयं भूमिभागं अनुविलोकेत्वा यं तत्थ विसमं तं समं कारापेत्वा खाणुकण्टकं विसोधापेत्वा तत्थ नगरं मापेय्य सोभनं विभत्तं भागसो मितं उक्किण्णपरिखपाकारं दळ्हगोपुरट्टालकोट्टकं पुथुचच्चरचतुक्कसन्धिसिङ्घाटकं सुचिसमतलराजमग्गं सुविभत्तअन्तरापणं आरामुय्यानतळाकपोक्खरणीउदपानसम्पन्नं बहुविधदेवट्ठानपटिमण्डितं सब्बदोसविरहितं, सो तस्मिं नगरे सब्बथा वेपुल्लतं पत्ते अञ्ञं देसं उपगच्छेय्य; अथ तं नगरं अपरेन समयेन इद्धं भवेय्य फीतं सुभिक्खं खेमं समिद्धं सिवं अनीतिकं निरुपद्दवं नानाजनसमाकुलं, पुथू खत्तिया ब्राह्मणा वेस्सा सुद्दा हत्थारोहा अस्सारोहा रथिका पत्तिका धनुग्गहा थरुग्गहा चेलका चलका, पिण्डदायका उग्गा राजपुत्ता पक्खन्दिनो महानगा सूरा वम्मिनो योधिनो दासिकपुत्ता भट्टिपुत्ता मल्लका गणका आलारिका, सूदा कप्पका नहापका चुन्दा मालाकारा सुवण्णकारा सज्झुकारा सीसकारा तिपुराकारा लोहकारा वट्टकारा अयोकारा मणिकारा पेसकारा कुम्भकारा वेणुकारा लोणकारा चम्मकारा रथकारा दन्तकारा रज्जुकारा कोच्छकारा सुत्तकारा विलीवकारा धनुकारा जियकारा उसुकारा चित्तकारा

और ७. आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग। इनको देख कर कोई भी जान सकता है कि भगवान् अवश्य हुए हैं। महाराज! इस कारण इस हेतु तथा इस तर्क और इस अनुमान से जान सकते हैं कि भगवान् हुए हैं—

'बहुत जनों को पार कराते हुए मानसिक उपाधि मिट जाने से वे निर्वाण प्राप्त कर चुके—इस अनुमान से जान लेना चाहिये कि वे पुरुषश्रेष्ठ हुए हैं॥'

"भन्ते नागसेन! कृपया इस बात को उपमा देकर समझावें।" "महाराज! जैसे नया नगर बसाने की इच्छा से कोई अभियन्ता (इंजीनियर = नगरवड्ढकी) पहले ऐसा स्थान ढूँढ़ता है, जो असम (ऊबड़-खाबड़), न कंकरीला या पथरीला न हो, जहाँ किसी उपद्रव (बाढ़, अग्नि, चोर, या शत्रु के आक्रमण इत्यादि) का भय न हो, जो अन्य सब दोषों से भी बचा हो और जो अत्यन्त रमणीय हो। इसके बाद उस ऊँचे-नीचे स्थान को समतल करवाता है और ठूँठ-झाड़ी कटवा कर साफ कर देता है। तब नगर का मानचित्र तैयार करता है—सुन्दरतया नाप-जोख कर उसे कई भागों में बाँट कर चारों ओर खाई और हाता, मजबूत द्वार, चौकस अटारियाँ, किलाबन्दी, बीच-बीच में खुले उद्यान, चौराहें, दोराहे, चौक, साफ-सुथरे और समतल राजमार्ग, बीच-बीच में दुकानों की पंक्तियाँ, आराम, बगीचे, बावड़ी, कूएं, देवस्थान बनवाता है। यों सुन्दर और सभी दोषों से रहित उस नगर के पूर्णतः बस जाने और अभ्युन्नत हो जाने पर वह किसी दूसरे देश में चला जाय। बाद में समय पा कर वह नगर बहुत बढ़ जाय, शोभासम्पन्न हो जाय, धनाढ्य हो जाय, निर्भय, समृद्ध, शिवमय और विघ्न-बाधारहित हो जाय, वहाँ किसी उपद्रव का भय न रहे, जनता भी बहुत बढ़ जाय, क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, महावत, घुड़सवार, गाड़ी, रथ, पैदल चलने वाले, तीरन्दाज, तलवार चलाने वाले, साधु-सन्त, दान देने वाले, युद्धप्रिय उग्र राजपुत्र, बड़े बड़े शूरवीर, कवच धारण करने वाले योद्धा, नौकर-चाकर, मजदूर, पहलवानों के समूह, रसोइये, नाई, नहलाने वाले, लोहार, माली, सोनार, सीसा पीतल या किसी अन्य धातु का काम करने वाले, जौहरी, दूत, कुम्हार, नमक तैयार करने वाले, चर्मकार, गाड़ी बनाने वाले, हाथी दाँत के कारीगर, रस्सी बँटने वाले, कंघी बनाने वाले, सूत कातने वाले, सूप, डाली, धनुष, ताँत, तीर, चित्र

रङ्गकारा रजका तन्तवाया तुन्नवाया हेरञ्ञिका दुस्सिका गन्धिका, तिणहारका कट्ठहारका भतका पण्णिका फलिका मूलिका ओदनिका पूविका मच्छिका मंसिका मज्जिका नटका नच्चका लङ्घका, इन्दजालिका वेतालिका मल्ला छवडाहका पुप्फछड्डका, वेना नेसादा गणिका लासिका कुम्भदासियो, सक्क-यवन-चीनविलाता उज्जेनका भारुकच्छका कासिकोसला परन्तका, मागधका, साकेता, सोरेय्यका, पावेय्यका, कोटुम्बरमाधुरका अलसन्दकस्मीर-गन्धारा तं नगरं वासाय उपगता नानाविसयिनो जना नवं सुविभत्तं अदोसमनवज्जं रमणीयं तं नगरं पस्सित्वा अनुमानेन जानन्ति—'छेको वत, भो, सो नगरवड्ढकी यो इमस्स नगरस्स मापेता' ति; एवमेव खो, महाराज, सो भगवा असमो असमसमो अप्पटिसमो असदिसो अतुलो असङ्ख्येय्यो अप्पमेय्यो अपरिमेय्यो अमितगुणो गुणपारमिप्पत्तो अनन्तधिति अनन्ततेजो अनन्तविरियो अनन्तबलो, बुद्धबलपारमिं गतो ससेनं मारं पराजेत्वा दिट्ठिजालं पदालेत्वा अविज्जं खेपेत्वा विज्जं उप्पादेत्वा धम्मुक्कं धारयित्वा सब्बञ्ञुतं पापुणित्वा विजितसङ्गामो धम्मनगरं मापेसि।

धम्मनगरं— ५. "भगवतो खो, महाराज, धम्मनगरं सीलपाकारं हिरिपरिखं ञाणद्वार-कोट्ठकं, विरियअट्टालकं सद्धाएसिकं सतिदोवारिकं, पञ्ञापासादं सुत्तन्तचच्चरं अभिधम्म-सिङ्घाटकं विनयविनिच्छयं सतिपट्ठानवीथिकं। तस्स खो पन, महाराज, सतिपट्ठानवीथियं एवरूपा आपणा पसारिता होन्ति। सेय्यथीदं—'पुप्फापणं गन्धापणं फलापणं अगदापणं ओसधापणं अमतापणं रतनापणं सब्बापणं' ति।

और रंग बनाने वाले, रंगरेज, जुलाहे, दर्जी, सोने के व्यापारी, बजाज, गन्धी, घसियारे, लकड़हारे, श्रमिक, फल के व्यापारी, जड़ी-बूटी या भात और पूआ बेचने वाले, मछुये, कसाई, मद्यदार, नाटक करने वाले, नाच दिखाने वाले, नट, मदारी, भाट, पहलवान, मुर्दा जलाने वाले, निषाद; रण्डी, वेश्या, रास रचने वाली, पनिहारिन, शक, चीन, यवन विलायत, उज्जैन, भरुकच्छ, काशी, कोसल, सीमान्त, मगध, साकेत (अयोध्या), सौराष्ट्र, पावा, औदुम्बर, मथुरा, अलसन्द, काश्मीर और गान्धार के लोग उस शहर में आकर बस जाँय। वे सभी उस शहर को उतना अच्छा बसा देख कर कहें—'अरे! वह अभियन्ता बहुत कुशल होगा जिसने इतना अच्छा नगर बसयाया'। महाराज! वैसे ही भगवान् अनुपम.... अतुल्य, अनन्त गुण वाले अप्रमेय, अपरिमेय..... सभी गुणों की पराकाष्ठा तक पहुँचे, सर्वज्ञ, अनन्त तेज वाले, अनन्त वीर्य, अनन्त बल तथा बुद्धि-बल की चरम सीमा तक पहुँचे हुए हैं। उन्होंने मार को उसकी सारी सेना के साथ हरा कर मिथ्या सिद्धान्तों को छिन्न भिन्न कर, अविद्या को हटा कर, विद्या उत्पन्न कर धर्मरूपी ज्योति को दिखा कर सर्वज्ञता पा कर विजितसंग्राम होकर यह धर्मनगर बसाया है।"

धर्मनगर—५. "महाराज! भगवान् के बसाये धर्मनगर के चारों ओर शील का प्राकार बना है; ही (पाप कर्म करने से हिचक) की परिखा (खाई) खुदी है, उसके फाटक पर 'ज्ञान' की सुरक्षा (चौकसी) है; वीर्य की अटारियाँ बनी है; श्रद्धा की नींव दी गयी है; स्मति का द्वारपाल खड़ा है; प्रज्ञा के बड़े बड़े भवन बने है; उनके धर्मोपदेश के सूत्र उद्यान है; धर्म की चौक, विनय की कचहरी और स्मृतिप्रस्थान की सड़कें बनी हैं। महाराज! स्मृतिप्रस्थान की उन सड़कों के दोनों तरफ दुकानें लगी हैं—१. फूल की, २. गन्ध की, ३. फल की, ४. विषनाशक औषधियों की, ५. जड़ी-बूटियों की, ६. अमृत की, ७. रत्न की एवं ८. अन्य सभी चीजों की।"

६. "भन्ते नागसेन, कतमं बुद्धस्स भगवतो पुप्फापणं" ति? "अत्थि खो पन, महाराज, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन आरम्मणविभत्तियो अक्खाता, सेय्यथीदं—अनिच्चसञ्ञा दुक्खसञ्ञा अनत्तसञ्ञा असुभसञ्ञा आदीनवसञ्ञा पहानसञ्ञा विरागसञ्ञा निरोधसञ्ञा सब्बलोके अनभिरतसञ्ञा, सब्बसङ्खारेसु अनिच्चसञ्ञा, आनापानसति, उद्धुमातकसञ्ञा, विनीलकसञ्ञा, विपुब्बकसञ्ञा, विच्छिद्दकसञ्ञा, विक्खायतिकसञ्ञा, विक्खित्तकसञ्ञा, लोहितकसञ्ञा, पुळवकसञ्ञा, अट्ठिकसञ्ञा, मेत्तासञ्ञा, करुणासञ्ञा, मुदितासञ्ञा, उपेक्खासञ्ञा, मरणानुस्सति, कायगतासति। इमा खो, महाराज, बुद्धेन भगवता आरम्मणविभत्तियो अक्खाता। तत्थ यो कोचि जरामरणा मुच्चितुकामो, सो तेसु अञ्ञतरं आरम्मणं गण्हाति, तेन आरम्मणेन रागा विमुच्चति, दोसा ... मोहा... मानतो .... दिट्ठितो विमुच्चति, संसारं तरति, तण्हासोतं निवारेति; तिविधं मलं विसोधेति, सब्बकिलेसे उपहन्त्वा अमलं विरजं सुद्धं पण्डरं अजातिं अमरं सुखं सीतिभूतं अभयं नगरुत्तमं निब्बाननगरं पविसित्वा अरहत्ते चित्तं विमोचेति। इदं वुच्चति, महाराज, भगवतो *पुप्फापणं* ति।

"कम्ममूलं गहेत्वान, आपणं उपगच्छथ।
आरम्मणं किणित्वान, ततो मुच्चथ मुत्तिया" ति॥

७. "भन्ते नागसेन, कतमं बुद्धस्स भगवतो गन्धापणं" ति? "अत्थि खो पन, महाराज, तेन भगवता सीलविभत्तियो अक्खाता, येन सीलगन्धेन अनुलित्ता भगवतो पुत्ता सदेवकं लोकं सीलगन्धेन धूपेन्ति, सम्पधूपेन्ति, दिसं पि अनुदिसं पि अनुवातं पि पटिवातं पि

---

६. "भन्ते नागसेन! यह 'फूल की दुकान' क्या है?" "महाराज! सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, अर्हत्, सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् ने ध्यान भावना करने के योग्य ये विषय बतायें हैं—अनित्य–संज्ञा, अनात्म–संज्ञा, अशुभ–संज्ञा, आदीनव–संज्ञा, प्रहाण–संज्ञा, विराग–संज्ञा, निरोध–संज्ञा, सांसारिक विषयों में रत न होने की संज्ञा, सभी संस्कारों में अनित्य–संज्ञा, आनापानस्मृति, उद्धुमात–संज्ञा, विनीलक–संज्ञा, विपुब्बक–संज्ञा, विच्छिद्दक–संज्ञा, विक्खायित–संज्ञा, विक्खित्तक–संज्ञा, हितविक्खित्तक–संज्ञा, लोहितक–संज्ञा, पुळवक–संज्ञा, अस्थि–संज्ञा, मैत्री–संज्ञा, करुणा–संज्ञा, मुदिता–संज्ञा, मरणानुस्मृति, कायगतास्मृति। महाराज! भगवान् ने ध्यान भावना करने योग्य इन्हीं विषयों को बताया है। जो कोई जरा–मरण से छूटना चाहता है, वह इन विषयों में से किसी को अपने अभ्यास के लिये चुन लेता है। उसका अभ्यास कर राग, द्वेष, मोह, अभिमान और झूठे सिद्धान्तों से मुक्त हो जाता है। वह संसारसागर से पार चला जाता है; तृष्णा की धारा रोक देता है; तीन प्रकार के मल धो डालता है; और सभी क्लेशों का नाश कर मलरहित, रागरहित, शुद्ध, साफ, आवागमन से मुक्त एवं वृद्धावस्था से मुक्त सुख, शीतल और अभय, नगरों में श्रेष्ठ निर्वाणनगर में प्रवेश करता है। अर्हत् हो अपने चित्त को शुद्ध कर लेता है। — महाराज! भगवान् की यही 'फूल की दुकान' है। (१)

"कर्म रूपी धन ले कर (इस धर्म की दुकान में जा कर) अभ्यास के लिये एक योग्य विषय को खरीद कर लावे और उससे मुक्त हो जाय।।"

७. "भन्ते नागसेन! इस धर्मनगर में 'गन्ध की दुकान' क्या है?" "महाराज! भगवान् ने पालन करने के लिये कुछ शील बताये हैं। भगवान् के पुत्र (बौद्ध भिक्षु) अपने शील की गन्ध से देवताओं और

वायन्ति, अतिवायन्ति, फरित्वा तिट्ठन्ति। कतमा ता सीलविभत्तियो? सरणसीलं, पञ्चसीलं, अट्ठङ्गसीलं, दसङ्गसीलं, पच्चुद्देसपरियापन्नं पातिमोक्खसंवरसीलं। इदं वुच्चति, महाराज, भगवतो *गन्धापणं* ति।

"भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन—

'न पुप्फगन्धो पटिवातमेति, न चन्दनं, तग्गरमल्लिका वा।
सतं च गन्धो पटिवातमेति, सब्बा दिसा सप्पुरिसो पवाति॥
चन्दनं तगरं वा पि, उप्पलं अथ वस्सिकी।
एतेसं गन्धजातानं, सीलगन्धो अनुत्तरो॥
अप्पमत्तो अयं गन्धो, स्वायं तगरचन्दनं।
यो च सीलवतं गन्धो, वाति देवेसु उत्तमो' ति॥ *(ध० प०, पु० व०)*

८. "भन्ते नागसेन, कतमं बुद्धस्स भगवतो फलापणं" ति? "फलानि खो, महाराज, भगवता अक्खातानि, सेय्यथीदं—सोतापत्तिफलं, सकदागामिफलं, अनागामिफलं, अरहत्तफलं, सुञ्ञतफलसमापत्ति, अनिमित्तफलसमापत्ति, अप्पणिहितफलसमापत्ती ति। तत्थ यो कोचि यं फलं इच्छति, सो कम्ममूलं दत्वा पत्थितं फलं किणाति—यदि सोतापत्तिफलं, यदि सकदागामिफलं, यदि अनागामिफलं, यदि अप्पणिहितफलसमापत्तिं। यथा, महाराज, कस्सचि पुरिसस्स धुवफलो अम्बो भवेय्य, सो न ताव ततो फलानि पातेति याव कयिका न आगच्छन्ति, अनुप्पत्ते पन कयिके मूलं गहेत्वा एवं आचिक्खति—'अम्भो पुरिसो, एसो खो धुवफलो अम्बो, ततो यं इच्छसि एत्तकं फलं गण्हाहि, सलाटुकं वा दोविलं वा केसिकं वा आमं वा

मनुष्यों के साथ समग्र लोक को सुगन्धित कर देते हैं। उनके शील की गन्ध दिशाओं, अनुदिशाओं में वायु के वेग के साथ और उसके प्रतिकूल भी उड़कर फैल जाती है।' वे शील कौन से हैं? महाराज! १. शरण–शील, २. पञ्च–शील, ३. अष्टाङ्ग–शील, ४. दशाङ्ग–शील, ५. प्रत्युद्देश में आने वाले प्रातिमोक्षसंवर शील। महाराज! भगवान् की यही 'गन्ध की दुकान' है।

"महाराज! देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है–

'फूल की गन्ध वायु से प्रतिकूल नहीं बहती, न चन्दन की न तगर की या मल्लिका–फूल की; (परन्तु) सज्जनों की गन्ध वायु के विपरीत भी बहती है। सत्पुरुष सभी दिशाओं में उड़ कर पहुँच जाते हैं।।'

'चन्दन, तगर या कमल और जूही इनकी गन्ध से शील की गन्ध अलौकिक ही है; क्योंकि तगर और चन्दन की गन्ध साधारण है; परन्तु शीलवानों की उत्तम गन्ध देवताओं तक भी पहुँच जाती है।।' (२)

८. "भन्ते नागसेन! वह भगवान् की 'फल की दुकान' कौन सी है?" "महाराज! भगवान् ने ये फल बताये हैं–स्रोतआपत्तिफल, सकृदागामिफल, अनागामिफल, अर्हत्फल, शून्यताफल (निर्वाण) समापत्ति, अनिमित्तफल समापत्ति, अप्रणिहितफल समापत्ति। इनमें से जिस फल को कोई पाना चाहता है, उसे वह अपने कर्मरूपी धन से खरीद सकता है। महाराज! जैसे किसी पुरुष का एक बारहमासी आम का वृक्ष हो। जब तक क्रेता नहीं आते तब तक वह फलों को नहीं तोड़ता। क्रेता के आने पर मूल्य लेकर उनसे कहता है–'सुनो! यह बारहमासी वृक्ष है। इसमें से जैसे फल चाहते हो ले लो–छोटे, बड़े, कसिआये,

पक्कं वा' ति। सो तेन अत्तना दिन्नमूलेन यदि सलाटुकमिच्छति सलाटुकं गण्हाति, यदि दोविलं इच्छति दोविलं गण्हाति, यदि केसिकमिच्छति केसिकं गण्हाति, यदि आमकं इच्छति आमकं गण्हाति, यदि पक्कं इच्छति पक्कं गण्हाति; एवमेव खो, महाराज, यो यं फलमिच्छति सो कम्ममूलं दत्वा पत्थितं फलं गण्हाति, यदि सोतापत्तिफलं .... पे० .... यदि अप्पणिहित-फलसमापत्तिं। इदं वुच्चति, महाराज, भगवतो *फलापणं* ति।

"कम्ममूलं जना दत्वा, गण्हन्ति अमतप्फलं।
तेन ते सुखिता होन्ति, ये कीता अमतप्फलं ति॥

९. "भन्ते नागसेन, कतमं बुद्धस्स भगवतो अगदापणं" ति? "अगदानि खो, महाराज, भगवता अक्खातानि, येहि अगदेहि सो भगवा सदेवकं लोकं किलेसविसतो परिमोचेति। कतमानि पन तानि अगदानि? यानिमानि, महाराज, भगवता चत्तारि अरियसच्चानि अक्खातानि, सेय्यथीदं—दुक्खं अरियसच्चं, दुक्खसमुदयं अरियसच्चं, दुक्खनिरोधं अरियसच्चं, दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा अरियसच्चं। तत्थ केचि अञ्ञापेक्खा चतुसच्चं धम्मं सुणन्ति ते जातिया परिमुच्चन्ति, जराय परिमुच्चन्ति, मरणा परिमुच्चन्ति, सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासेहि परिमुच्चन्ति। इदं वुच्चति, महाराज, भगवतो *अगदापणं* ति।

"ये केचि अगदा लोके, विसानं पटिबाहका।
धम्मागदसमं नत्थि, एतं पिवथ, भिक्खवो" ति॥

१०. "भन्ते नागसेन, कतमं बुद्धस्स भगवतो ओसधापणं" ति? "ओसधानि खो, महाराज, भगवता अक्खातानि येहि ओसधेहि सो भगवा देवमनुस्से तिकिच्छति, सेय्यथीदं—

कच्चे या पके। क्रेता अपने दिये मूल्य के हिसाब से यदि छोटे चाहता है तो छोटे ही लेता है, यदि बड़े फल चाहता है तो बड़े ही लेता है, यदि कसैले फल चाहता है तो कसैले ही लेता है, यदि कच्चे चाहता है तो कच्चे ही लेता है और यदि पके चाहता है तो पके ही लेता है। महाराज! इस तरह, जो जैसा फल चाहता है, वह कर्मरूपी मूल्य से वैसा ही खरीदता है— चाहे स्रोतआपत्तिफल....। महाराज बुद्ध की यही 'फल की दुकान' है। (३)

'कर्मरूपी मूल्य देकर लोग अमृतफल (अर्हत्पद) खरीदते हैं। उससे वे सुखी होते हैं, जो अमृतफल खरीदते हैं।'

९. "भन्ते नागसेन! भगवान् की 'अगद (विषनाशक औषध) की दुकान' क्या है?" "महाराज! भगवान् ने वे विषनाशक औषध बतायी हैं, जिनसे उन्होंने देवताओं और मनुष्यों के साथ सारे संसार को क्लेश–विष से मुक्त कर दिया था। वे औषध कौन सी हैं? महाराज! भगवान् ने जो ये चार आर्यसत्य बताये हैं— १. दुःख आर्यसत्य, २. दुःखसमुदय आर्यसत्य, ३. दुःखनिरोध आर्यसत्य और ४. दुःख–निरोधगामी मार्ग आर्यसत्य। जो मुमुक्षु इन चार आर्यसत्यों से युक्त बुद्धधर्म को सुनता है, वह जन्म, जरा और मरण से छूट जाता है, शोक, रोने–पीटने, दुःख, चिन्ता और उद्विग्नता से छूट जाता है। महाराज! यही भगवान् की 'औषध की दुकान' है।" (४)

'संसार में विषनाशक जितनी औषधियाँ हैं, उनमें धर्मरूपी औषध के समान कोई नहीं हैं। भिक्षुओ! इसे पीओ।।'

१०. "भन्ते नागसेन! उनकी 'जड़ी–बूटी की दूकान' कौन सी है?" "महाराज! भगवान् ने ये

चत्तारो सतिपट्ठाना, चत्तारो सम्मप्पधाना, चत्तारो इद्धिपादा, पञ्चिन्द्रियानि, पञ्च बलानि, सत्त बोज्झङ्गा, अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो। एतेहि ओसधेहि भगवा मिच्छादिट्ठिं विरेचेति, मिच्छासङ्कप्पं विरेचेति, मिच्छावाचं विरेचेति, मिच्छाकम्मन्तं विरेचेति, मिच्छाआजीवं विरेचेति, मिच्छावायामं विरेचेति, मिच्छासतिं विरेचेति, मिच्छासमाधिं विरेचेति; लोभवमनं कारेति, दोसवमनं कारेति, मानवमनं कारेति, दिट्ठिवमनं कारेति, विचिकिच्छावमनं कारेति, उद्धच्चवमनं कारेति, थीनमिद्धवमनं कारेति, अहिरिकानोत्तप्पवमनं कारेति, सब्बकिलेसवमनं कारेति। इदं वुच्चति, महाराज, भगवतो *ओसधापणं* ति।

"ये केचि ओसधा लोके, विज्जन्ति विविधा बहू।
धम्मोसधसमं नत्थि, एतं पिवथ भिक्खवो॥
धम्मोसधं पिवित्वान, अजरामरणा सियुं।
भावयित्वा च पस्सित्वा, निब्बुता उपधिक्खये" ति॥

११. "भन्ते नागसेन, कतमं बुद्धस्स भगवतो अमतापणं" ति? "अमतं खो, महाराज, भगवता, अक्खातं येन अमतेन सो भगवा सदेवकं लोकं अभिसिञ्चि, येन अमतेन अभिसत्ता देवमनुस्सा जातिजराब्याधिमरणसोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासेहि परिमुच्चिंसु। कतमं तं अमतं? यदिदं कायगता सति। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन—'अमतं ते, भिक्खवे, परिभुञ्जन्ति ये कायगतासतिं परिभुञ्जन्ती' *(दी० नि०, म० स० प० सु०)* ति। इदं वुच्चति, महाराज, भगवतो *अमतापणं* ति।

"ब्याधितं जनतं दिस्वा अमतापणं पसारयि।
कम्मेन तं किणित्वान, अमतं आदेथ, भिक्खवो" ति॥

जड़ी–बूटियाँ बतायी हैं, जिन से उन्होंने देवताओं और मनुष्यों की चिकित्सा की थी– चार स्मृतिप्रस्थान, चार सम्यक्प्रधान, चार ऋद्धिपाद, पाँच इन्द्रियाँ, पाँच बल, सात बोध्यङ्ग, आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग– इन बूटियों से भगवान् विरेचन देकर मिथ्यादृष्टि (झूठे सिद्धान्त), मिथ्यासङ्कल्प, मिथ्यावचन, मिथ्याकर्मान्त, मिथ्याजीविका, मिथ्याव्यायाम, मिथ्यास्मृति और मिथ्यासमाधि को हटा देते हैं; लोभ, द्वेष, मोह, अभिमान, आत्मदृष्टि, विचिकित्सा, औद्धत्य, आलस्य, निर्लज्जता, अनवत्राप्य एवं सभी क्लेशों का वमन करा देते हैं। महाराज! यही बुद्ध की 'जड़ी–बूटी की दुकान' है। (५)

"संसार में जो नाना प्रकार की जड़ी–बूटियाँ हैं, इस धर्मरूपी बूटी के समान कोई नहीं है। भिक्षुओ! इन्हें पीओ।।"

"धर्म की बूटी को पी कर अजर–अमर हो जाओ। भावना करते हुए परम–ज्ञान को साक्षात् कर सभी उपधियों के मिट जाने पर निर्वाण पा लो।।"

११. "भन्ते नागसेन! उनकी 'अमृत की दुकान' कौन सी है?" "महाराज! भगवान् ने वह अमृत भी बतलाया है, जिस अमृत से भगवान् ने देवताओं और मनुष्यों से युक्त समग्र संसार को भर दिया, जिससे सभी देवता और मनुष्य जन्म, जरा, व्याधि, मरण, शोक, रोने–पीटने, दुःख, चिन्ता और परेशानी से मुक्त हो गये। वह अमृत कौन सा है? वह कायगतास्मृति है। महाराज! देवातिदेव भगवान् ने कहा भी है– 'भिक्षुओ! जो कायगता स्मृति का अभ्यास करते हैं, वे मानों अमृत ही पीते हैं।' महाराज! भगवान् की यह 'अमृत की दुकान है'। (६)

१२. "भन्ते नागसेन, कतमं बुद्धस्स भगवतो रतनापणं" ति? "रतनानि खो, महाराज, भगवता अक्खातानि येहि रतनेहि भूसिता भगवतो पुत्ता सदेवकं लोकं विरोचेन्ति ओभासेन्ति पभासेन्ति जलन्ति पज्जलन्ति, उद्धं अधो तिरियं आलोकं दस्सेन्ति। कतमानि तानि रतनानि? १. सीलरतनं, २. समाधिरतनं, ३. पञ्ञारतनं, ४. विमुत्तिरतनं, ५. विमुत्तिञाणदस्सनरतनं, ६.पटिसम्भिदारतनं, ७.बोज्झङ्गरतनं।

"कतमं, महाराज, भगवतो सीलरतनं? पातिमोक्खसंवरसीलं इन्द्रियसंवरसीलं आजीवपारिसुद्धिसीलं पच्चयसन्निस्सितसीलं चूळसीलं मज्झिमसीलं महासीलं मग्गसीलं फलसीलं। सीलरतनेन खो, महाराज, विभूसितस्स पुग्गलस्स सदेवको लोको समारको सब्रह्मको सस्समणब्राह्मणी पजा पिहयति पत्थेति। सीलरतनपिलन्धो खो, महाराज, भिक्खु दिसं पि अनुदिसं पि उद्धं पि अधो पि तिरियं पि विरोचति अतिविरोचति। हेट्ठतो अवीचिं, उपरितो भवग्गं उपादाय एत्थन्तरे सब्बरतनानि अतिक्कमित्वा अतिसयित्वा अज्झोत्थरित्वा तिट्ठति। एवरूपानि खो, महाराज, सीलरतनानि भगवतो रतनापणे पसारितानि। इदं वुच्चति, महाराज, भगवतो *सीलरतनं* ति।

"एवरूपानि सीलानि, सन्ति बुद्धस्स आपणे।
कम्मेन तं किणित्वान, रतनं वो पिलन्धथा ति॥

१३. "कतमं, महाराज, भगवतो समाधिरतनं? सवितक्कसविचारो समाधि, अवितक्क-विचारमत्तो समाधि, अवितक्कअविचारो समाधि, सुञ्ञतो समाधि, अनिमित्तो समाधि,

---

"रोगग्रस्त जनता को देख कर उन्होंने अमृत की दुकान खोल दी है। कर्मरूपी मूल्य दे कर, भिक्षुओ! वह अमृत ले लो॥"

१२. "भन्ते नागसेन! उनकी 'रत्न की दूकान' कौन सी है?" "महाराज! भगवान् ने उन रत्नों को भी बताया है, जिनसे अलंकृत कर उनके पुत्र (बौद्ध-भिक्षु) देवताओं और मनुष्यों के साथ समग्र संसार को जगमगा देते हैं, चमका देते हैं, ऊपर-नीचे, टेढ़े सभी जगह प्रज्वलित होकर प्रकाश कर देते हैं। वे कौन से रत्न हैं? १. शील, २. समाधि, ३. प्रज्ञा, ४. विमुक्ति, ५. विमुक्तिज्ञानदर्शन, ६. प्रतिसंविद् और ७. बोध्यङ्ग।

"भगवान् का यह शीलरत्न क्या है? १. प्रातिमोक्षसंवरशील, २. इन्द्रियसंवरशील, ३. आजीवपारिशुद्धिशील, ४. प्रत्ययसन्निःसृतशील, ५. लघुशील, ६. मध्यमशील, ७. महाशील, ८. मार्गशील और ९. फलशील। महाराज! जो लोग शीलरत्न से विभूषित हैं, उन्हें देखकर देवता, मनुष्य, मार, ब्रह्मा, श्रमण, ब्राह्मण सभी की कांक्षा और इच्छा हो जाती है। महाराज! भिक्षु शीलरत्न से सुसज्जित होकर अपनी शोभा से दिशाओं, अनुदिशाओं को, ऊपर नीचे और टेढ़े भी भर देता है। सबसे नीचे अवीचि नरक से लेकर सब से ऊपर स्वर्गलोक तक जितने दूसरे रत्न हैं सभी से यह शीलरत्न बढ़ जाता है, आगे हो जाता है, सभी को पराजित कर देता है। महाराज! भगवान् की रत्न की दुकान में इस प्रकार का शील-रत्न है। महाराज! यही भगवान् का 'शीलरत्न' कहा जाता है।

'ऐसे शीलरत्न बुद्ध की दूकान में मिलते हैं। कर्मरूपी मूल्य से खरीद कर वह इन रत्नों को धारण करे।' (१)

१३. "भगवान् का 'समाधिरत्न' क्या है? १. सवितर्क सविचार, २. अवितर्क विचारमात्र, ३.

अप्पणिहितो समाधि। समाधिरतनं खो, महाराज, पिलन्धस्स भिक्खुनो ये ते कामवितक्का ब्यापादवितक्का विहिंसावितक्का मानुद्धच्चदिट्ठिविचिकिच्छाकिलेसवत्थूनि विविधानि च कुवितक्कानि, ते सब्बे समाधिं आसज्ज विकिरन्ति विधमन्ति विद्धंसन्ति, न सण्ठन्ति न उपलिम्पन्ति। यथा, महाराज, वारि पोक्खरपत्ते विकिरति विधमति विद्धंसति, न सण्ठति न, उपलिम्पति, तं किस्स हेतु? परिसुद्धत्ता पदुमस्स; एवमेव खो, महाराज, समाधिरतनं पिलन्धस्स भिक्खुनो ये ते कामवितक्कब्यापादवितक्कविहिंसावितक्कमानुद्धच्चदिट्ठिविचिकिच्छाकिलेस-वत्थूनि विविधानि च कुवितक्कानि ते सब्बे समाधिं आसज्ज विकरन्ति विधमन्ति विद्धंसन्ति, न सण्ठन्ति न उपलिम्पन्ति। तं किस्स हेतु? परिसुद्धता समाधिस्स। इदं वुच्चति, महाराज, भगवतो *समाधिरतनं* ति। एवमेव खो, महाराज, समाधिरतनानि भगवतो रतनापणे पसारितानि।

"समाधिरतनमालस्स, कुवितक्का न जायरे।
न च विक्खिपते चित्तं, एतं तुम्हे पिलन्धथा ति॥

१४. "कतमं, महाराज, भगवतो पञ्ञारतनं? याय, महाराज, पञ्ञाय अरियसावको 'इदं कुसलं' ति यथाभूतं पजानाति, 'इदं अकुसलं' ति यथाभूतं पजानाति, 'इदं सावज्जं', 'इदं अनवज्जं', 'इदं सेवितब्बं', 'इदं न सेवितब्बं', 'इदं हीनं', 'इदं पणीतं', 'इदं कण्हं' 'इदं सुक्कं', 'इदं कण्हसुक्कसप्पटिभागं' ति यथाभूतं पजानाति, 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खसमुदयो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खनिरोधो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति। इदं वुच्चति, महाराज, भगवतो *पञ्ञारतनं* ति।

"पञ्ञारतनमालस्स, न चिरं वत्तते भवो।
खिप्पं फस्सेति अमतं, न च सो रोचते भवे ति॥

अवितर्क अविचार, ४. शून्यता, ५. अनिमित्त और ६. अप्रणिहित समाधि। महाराज! समाधिरत्न से सुसज्जित भिक्षु के कामवितर्क, व्यापादवितर्क, विहिंसावितर्क, मान, औद्धत्य, आत्मदृष्टि, विचिकित्सा, क्लेश, पाप तथा नाना कुतर्क— सभी समाधि के लगते ही विलीन हो जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं, उन में कुछ भी बचे नहीं रह सकते। महाराज! जैसे जल पद्म के पत्र पर नहीं ठहर सकता, वह गिर जाता है। ऐसा क्यों होता है? क्योंकि पद्म का पत्र बहुत शुद्ध और चिकना है; महाराज! इसी तरह, समाधि से सुसज्जित भिक्षु के कामवितर्क, व्यापादवितर्क, विहिसाविलर्क, मान, औद्धत्य, आत्मदृष्टि, विचिकित्सा, क्लेश, पाप तथा नाना कुतर्क—सभी समाधि पाते ही विलीन हो जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं। सो क्यों? क्योंकि समाधि अत्यन्त शुद्ध है। महाराज! इसी को भगवान् का 'समाधिरत्न' कहते हैं। महाराज! ऐसे समाधिरत्न भगवान् की 'रत्न की दूकान' में हैं।

"जिसने अपने मुकुट में यह समाधिरत्न जड़ लिया, उसे कुतर्क नहीं सता सकते, उसका चित्त कभी भी चञ्चल नहीं हो सकता, उसे आप भी पहनें।। (२)

१४. "भगवान् का 'प्रज्ञारत्न' क्या है? महाराज!.... जिस प्रज्ञा से अच्छे भिक्षु 'यह पुण्य है, यह पाप है'— ऐसा ठीक—ठीक जान सकते हैं। 'यह बुरा है, यह भला है, यह करने योग्य है, यह न करने योग्य है, यह हीन है, यह सुन्दर है, यह काला है, यह उजला है, यह काला और उजला दोनों हैं'— ऐसा ठीक—ठीक जानते हैं। 'यह दुःख है, यह दुःखसमुदय है, यह दुःखनिरोध है, यह दुःखनिरोधगामी मार्ग है'— ऐसा ठीक ठीक जान सकता है। महाराज! इसी को भगवान् का 'प्रज्ञारत्न' कहते हैं।

१५. "कतमं, महाराज, भगवतो विमुत्तिरतनं? विमुत्तिरतनं खो, महाराज, अरहत्तं वुच्चति, अरहत्तं पत्तो खो, महाराज, भिक्खु विमुत्तिरतनं पिलन्धो ति वुच्चति। यथा, महाराज, पुरिसो मुत्ताकलाप-मणिकलाप-पवालकलापाभरणप्पटिमण्डितो अगलुतालीसकलोहित-चन्दनानुलित्तगत्तो नागपुन्नागसालसलळचम्पकयूथिकातिमुत्तकपाटलुप्पलवस्सिकमल्लिका-विचित्तो सेसजने अतिक्कमित्वा विरोचति अतिरोचति ओभासति पभासति सम्पभासति जलति पज्जलति अभिभवति अज्झोत्थरति मालागन्धरतनाभरणेहि; एवमेव खो, महाराज, अरहत्तं पत्तो खीणासवो विमुत्तिरतनपिलन्धो उपादायुपादाय विमुत्तानं भिक्खूनं अतिक्कमित्वा समतिक्कमित्वा विरोचति अतिरोचति ओभासति पभासति सम्पभासति जलति पज्जलति अभिभवति अज्झोत्थरति विमुत्तिया। तं किस्स हेतु? अग्गं, महाराज, एतं पिळन्धनं सब्बपिळन्धानं यदिदं विमुत्तिपिळन्धनं। इदं वुच्चति, महाराज, भगवतो *विमुत्तिरतनं* ति।

"मणिमालाधरं गेहजनो सामिं उदिक्खति।
विमुत्तिरतनमालं तु, उदिक्खन्ति सदेवका" ति॥

१६. "कतमं, महाराज, भगवतो विमुत्तिञाणदस्सनरतनं? पच्चवेक्खणञाणं, महाराज, भगवतो विमुत्तिञाणदस्सनरतनं ति वुच्चति, येन ञाणेन अरियसावको मग्गफल-निब्बानानि पहीनकिलेसावसिट्ठकिलेसे च पच्चवेक्खति।

"येन ञाणेन बुज्झन्ति, अरिया कतकिच्चतं।
तं ञाणरतनं लद्धं, वायमेथ जिनोरसा ति॥

"जिसने प्रज्ञारत्न अपने शिर पर लगा लिया, वह आवागमन के प्रपञ्च में बहुत समय नहीं रहता। वह शीघ्र ही अमृतमद पा लेता है, क्योंकि बार-बार जन्म लेने में उसे आनन्द नहीं आता। (३)

१५. "भगवान् का 'विमुक्तिरत्न' क्या है? महाराज अर्हत्पद ही विमुक्तिरत्न कहलाता है। अर्हत् होकर भिक्षु विमुक्तिरत्न से शोभित हो जाता है। महाराज! जैसे कोई पुरुष मोती, माला, मणि, सोने और मूँगे के आभूषणों से विभूषित होकर अगर, तगर, तालीस, लाल चन्दन इत्यादि के लेप से अपने गात्र को सुगन्धित बना ले; नाग, पुन्नाग, साल, सलल, चम्पक, जूही, अतिमुक्तक, गुलाब, कमल, मालती, मल्लिका इत्यादि फूलों के हारों से अपने को सजा ले तो वह पुरुष दूसरे लोगों से कितना अधिक (बढ़-चढ़ कर) शोभित होगा, अच्छा लगेगा, चमकेगा और मनोहर लगेगा; महाराज! इसी तरह, अर्हत् पद पा कर क्षीणास्रव भिक्षु विमुक्तिरत्न से सजकर दूसरे भिक्षुओं से बहुत बढ़-चढ़ कर लगता है, चमकता है और सुहावना लगता है। वह क्यों? क्योंकि यह विमुक्तिरत्न सभी आभूषणों में ही सर्वोच्च आभूषण है। महाराज! इसी को भगवान् का 'विमुक्तिरत्न' कहते हैं।

"जैसे शिर पर मणि धारण करने से घर के सभी लोग स्वामी की ही ओर देखने लगते हैं; वैसे ही विमुक्तिरत्न शिर पर लगा लेने से देवता लोग भी उसी की ओर देखने लगते हैं।। (४)

१६. "महाराज! भगवान् का कौन सा 'विमुक्तिज्ञानदर्शनरत्न' है? महाराज! प्रत्यवेक्षण-ज्ञान ही भगवान् का विमुक्तिज्ञानदर्शन रत्न कहा जाता है, जिस ज्ञानदर्शन से अच्छे भिक्षु मार्ग फल, निर्वाण पाते हैं। सभी क्लेशों के क्षीण हो जाने पर अपने कुछ बचे हुए क्लेशों का प्रत्यवेक्षण करते हैं।

"जिस ज्ञान से वे समझ लेते हैं कि उन्हें जो कुछ करना था सो पूरा कर लिया, भिक्षुओ! उस ज्ञान-रत्न को पाने के लिये उद्योग करो।" (५)

१७. ''कतमं, महाराज, भगवतो पटिसम्भिदारतनं? चतस्सो खो, महाराज, पटिसम्भिदायो— (क) अत्थपटिसम्भिदा, (ख) धम्मपटिसम्भिदा, (ग) निरुत्तिपटिसम्भिदा, (घ) पटिभानपटिसम्भिदा ति। इमेहि, खो महाराज, चतूहि पटिसम्भिदारतनेहि समलङ्कतो भिक्खु यं यं परिसं उपसङ्कमति, यदि खत्तियपरिसं यदि ब्राह्मणपरिसं यदि गहपतिपरिसं यदि समणपरिसं, विसारदो उपसङ्कमति, अमङ्कुभूतो अभीरु अच्छम्भी अनुत्रासी विगतलोमहंसो परिसं उपसङ्कमति।

''यथा, महाराज, योधो सङ्गामसूरो सन्नद्धपञ्चावुधो अच्छम्भितो सङ्गामं ओतरति— 'सचे अमित्ता दूरे भविस्सन्ति उसुना पाययिस्सामि, ततो ओरतो भविस्सन्ति सत्तिया पहरिस्सामि, ततो ओरतो भविस्सन्ति कणयेन पहरिस्सामि, उपगतं सन्तं मण्डलग्गेन द्विधा छिन्दिस्सामि, कायूपगतं छुरिकाय विनिविज्झिस्सामी' ति; एवमेव खो, महाराज, चतुपटिसम्भिदारतनमण्डितो भिक्खु अच्छम्भितो परिसं उपसङ्कमति— 'यो कोचि मं अत्थपटिसम्भिदे पञ्हं पुच्छिस्सति, तस्स अत्थं कथयिस्सामि, कारणेन कारणं कथयिस्सामि, हेतुना हेतुं कथयिस्सामि, नयेन नयं कथयिस्सामि, निस्संसयं करिस्सामि, विमतिं विवेचेस्सामि, तोसयिस्सामि पञ्हावेय्याकरणेन'। (क)

''यो कोचि मं धम्मपटिसम्भिदे पञ्हं पुच्छिस्सति, तस्स धम्मेन धम्मं कथयिस्सामि, अमतेन अमतं कथयिस्सामि, असङ्खतेन असङ्खतं कथयिस्सामि, निब्बानेन निब्बानं कथयिस्सामि, सुञ्ञताय सुञ्ञतं कथयिस्सामि, अनिमित्तेन अनिमित्तं कथयिस्सामि, अप्पणिहितेन अप्पणिहितं कथयिस्सामि, अनेजेन अनेजं कथयिस्सामि, निस्संसयं करिस्सामि, विमतिं विवेचेस्सामि, तोसयिस्सामि पञ्हावेय्याकरणेन। (ख)

---

१७. ''महाराज! भगवान् का 'प्रतिसंविद्‌रत्न' कौन सा है? महाराज! चार प्रतिसंविद् हैं— १. अर्थप्रतिसंविद्, २. धर्मप्रतिसंविद्, ३. निरुक्तिप्रतिसंविद् और ४. प्रतिभानप्रतिसंविद्। महाराज! इन्हीं चार प्रतिसंविद् रत्नों से सज्जित होकर भिक्षु जिस किसी सभा में जाता है, चाहे क्षत्रियसभा हो या ब्राह्मणसभा या वैश्यसभा या भिक्षुसभा, वहाँ वह विना किसी संकोच के निर्भय हो कर जाता है; गूंगा हो कर, डर कर, घबरा कर या चौकन्ना होकर नहीं जाता और न कहीं जाने से उसे रोमाञ्च होता है।

''महाराज! जैसे कोई वीर योद्धा पाँच आयुधों से सन्नद्ध हो कर युद्धक्षेत्र में भयरहित उतरता है। वह मन में विचार करता है— 'यदि शत्रु दूर होंगे तो उन्हें तीर चला कर मारूँगा, यदि कुछ पास में होंगे तो भाला चला कर मारूँगा, यदि कुछ और पास में होंगे तो उन्हें बर्छी चला कर मारूँगा, यदि और भी निकट चले आवेंगे तो मैं उन्हें तलवार से दो टुकड़े कर दूँगा, यदि वे सर्वथा शरीर के पास आ जायेंगे तो फरसे से काट दूँगा'; महाराज! इसी तरह, चार प्रतिसंविद् से सज्जित भिक्षु अभय होकर किसी सभा में प्रवेश करता है। उसे स्वयं में पूरा विश्वास रहता है। वह समझता है—'जो मुझे अर्थप्रतिसंविद् के विषय में पूछेगा, उसको अर्थ से कह कर उत्तर दे दूँगा, हेतु से हेतु दिखा दूँगा, तर्क से तर्क कहूँगा, उसके सभी संशय दूर कर दूँगा, उसका भ्रम मिटा दूँगा, प्रश्न का सही उत्तर देकर उसे सन्तुष्ट कर दूँगा'। (क)

''जो कोई मुझसे धर्मप्रतिसंविद् के विषय में प्रश्न पूछेगा उसको धर्म से धर्म, अमृत से अमृत,

"यो कोचि मं निरुत्तिपटिसम्भिदे पञ्हं पुच्छिस्सति, तस्स निरुत्तिया निरुत्तिं कथयिस्सामि, पदेन पदं कथयिस्सामि, अनुपदेन अनुपदं कथयिस्सामि, अक्खरेन अक्खरं कथयिस्सामि, सन्धिया सन्धिं कथयिस्सामि, ब्यञ्जनेन ब्यञ्जनं कथयिस्सामि, अनुब्यञ्जनेन अनुब्यञ्जनं कथयिस्सामि, वण्णेन वण्णं कथयिस्सामि, सरेन सरं कथयिस्सामि, पञ्ञत्तिया पञ्ञत्तिं कथयिस्सामि, वोहारेन वोहारं कथयिस्सामि, निस्संसयं करिस्सामि, विमतिं विवेचेस्सामि, तोसयिस्सामि पञ्हावेय्याकरणेन। (ग)

"यो कोचि मं पटिभानपटिसम्भिदे पञ्हं पुच्छिस्सति, तस्स पटिभानेन पटिभानं कथयिस्सामि, ओपम्मेन ओपम्मं कथयिस्सामि लक्खणेन लक्खणं कथयिस्सामि, रसेन रसं कथयिस्सामि, निस्संसयं करिस्समि, विमतिं विवेचेस्सामि, तोसयिस्सामि पञ्हावेय्याकरणेना ति। (घ)

"इदं वुच्चति, महाराज, भगवतो *पटिसम्भिदारतनं*। (६)

"पटिसम्भिदा किणित्वान, ञाणेन फस्सयेय्य यो।
अच्छम्भितो अनुब्बिग्गो, अतिरोचति सदेवके ति॥

१८. "कतमं, महाराज, भगवतो बोज्झङ्गरतनं? सत्तिमे, महाराज, बोज्झङ्गा— सतिसम्बोज्झङ्गो, धम्मविचयसम्बोज्झङ्गो, विरियसम्बोज्झङ्गो, पीतिसम्बोज्झङ्गो, पस्सद्धिसम्बोज्झङ्गो, समाधिसम्बोज्झङ्गो, उपेक्खासम्बोज्झङ्गो। इमेहि खो, महाराज, सत्तहि बोज्झङ्गेहि पटिमण्डितो भिक्खु सब्बं तमं अभिभुय्य सदेवकं लोकं ओभासेति पभासेति आलोकं जनेति। इदं वुच्चति, महाराज, भगवतो *बोज्झङ्गरतनं* ति।

अनिर्वचनीय से अनिर्वचनीय, निर्वाण से निर्वाण, शून्यता से शून्यता, अनिमित्त से अनिमित्त, अप्रणिहित से अप्रणिहित और शान्त से शान्त को कहूँगा, उसके सभी सन्देह दूर कर दूँगा, सारी शङ्काएँ मिटा दूँगा, उसके प्रश्नों का उचित उत्तर दे कर उसे सन्तुष्ट कर दूँगा। (ख)

"जो कोई मुझसे निरुक्ति–प्रतिसंविद् के विषय में पूछेगा उसको निरुक्ति से निरुक्ति, पद से पद, अनुपद से अनुपद, अक्षर से अक्षर, सन्धि से सन्धि, व्यञ्जन से व्यञ्जन, अनुव्यञ्जन से अनुव्यञ्जन, वर्ण से वर्ण, स्वर से स्वर, प्रज्ञप्ति से प्रज्ञप्ति, व्यवहार से व्यवहार बता दूँगा, उसके सभी सन्देह, सभी शङ्का मिटा दूँगा, उसके प्रश्नों का उत्तर दे कर उसे सन्तुष्ट कर दूँगा। (ग)

"जो कोई मुझसे प्रतिभान–प्रतिसंविद् के विषय में प्रश्न पूछेगा उसे प्रतिभान से प्रतिभान, उपमा से उपमा, लक्षण से लक्षण, रस से रस बताकर उसके सभी सन्देह, सभी शङ्काएँ मिटा दूँगा, उसके प्रश्नों का उत्तर दे कर उसे सन्तुष्ट कर दूँगा। (घ)

"महाराज! इसी को भगवान् का 'प्रतिसंविद्रत्न' कहते हैं।

"जो ज्ञान से प्रतिसंविद् को पा लेता है, वह देवताओं और मनुष्यों के साथ इस समग्र संसार में निर्भय और अनुद्विग्न होकर रहता है।। (६)

१८. "भगवान् के 'बोध्यङ्गरत्न' कौन से हैं? महाराज! बोध्यङ्ग सात हैं—१. स्मृतिसम्बोध्यङ्ग, २. धर्मविचयसम्बोध्यङ्ग, ३. वीर्यसम्बोध्यङ्ग, ४. प्रीतिसम्बोध्यङ्ग, ५. प्रश्रब्धिसम्बोध्यङ्ग, ६. समाधिसम्बोध्यङ्ग, और ७. उपेक्षासम्बोध्यङ्ग। महाराज! इन सात सम्बोध्यङ्गों से अलंकृत हो कर भिक्षु समग्र अंधकार को दूर हटा कर लोक को अपनी चमक से चमका कर प्रकाशित कर देता है। महाराज! इसी को भगवान् का 'बोध्यङ्गरत्न' कहते हैं।

"बोज्झङ्गरतनभालस्स, उट्ठहन्ति सदेवका।
कम्मेन तं किणित्वान, रतनं वो पिलन्धथा" ति॥ (७)

१९. "भन्ते नागसेन, कतमं बुद्धस्स भगवतो सब्बापणं" ति? "सब्बापणं खो, महाराज, भगवतो नवङ्गं बुद्धवचनं, सारीरिकानि पारिभोगिकानि चेतियानि, सङ्घरतनं च। सब्बापणे, महाराज, भगवता जातिसम्पत्ति पसारिता, भोगसम्पत्ति पसारिता, आयुसम्पत्ति पसारिता, आरोग्यसम्पत्ति पसारिता, वण्णसम्पत्ति पसारिता, पञ्ञासम्पत्ति पसारिता, मानुसिकसम्पत्ति पसारिता, दिब्बसम्पत्ति पसारिता, निब्बानसम्पत्ति पसारिता। तत्थ ये तं तं सम्पत्तिं इच्छन्ति ते कम्ममूलं दत्वा पत्थितपत्थितं सम्पत्तिं किणन्ति— केचि सीलसमादानेन किणन्ति, केचि उपोसथकम्मेन कीणन्ति! अप्पमत्तकेन पि कम्ममूलेन उपादायुपादाय सम्पत्तियो पटिलभन्ति। यथा, महाराज, आपणिकस्स आपणे तिलमुग्गमासे परित्तकेन पि तण्डुलमुग्गमासेन अप्पकेन पि मूलेन उपादायुपादाय गण्हन्ति; एवमेव खो, महाराज, भगवतो सब्बापणे अप्पमत्तकेन पि कम्ममूलेन उपादायुपादाय सम्पत्तियो पटिलभन्ति। इदं वुच्चति, महाराज, भगवतो *सब्बापणं* ति।

"आयु अरोगता वण्णं सग्गं उच्चाकुलीनता।
असङ्खतं च अमतं, अत्थि सब्बापणे जिने॥
"अप्पेन बहुकेनापि, कम्ममूलेन गय्हति।
किणित्वा सद्धामूलेन, समिद्धा होथ, भिक्खवो ति॥

धम्मनगरवासिनो—२०. "भगवतो खो, महाराज, धम्मनगरे एवरूपा जना

"जिसने अपने ललाट पर बोध्यङ्गरत्न लगा दिये हैं (बोज्झङ्गरतनमालस्स—पाठ मानने पर जिसने बोध्यङ्गरत्नमाला धारण कर ली है) उसकी प्रतिष्ठा में देवता और मनुष्य सभी उठ खड़े होते हैं। स्व–कर्म मूल्य द्वारा खरीद कर आप उस रत्न को पहनें।। " (७)

१९. "भगवान् की कौन 'सब वस्तुओं की दुकान' हैं, जहाँ सभी चीजें मिलती हैं? महाराज! भगवान् की यह दुकान है—१. नव अङ्गों से युक्त बुद्ध के वचन, २. शरीरधातु (भगवान् के शरीर की भस्म), ३. बची हुई वे वस्तुएँ जिनका भगवान् स्वयं उपयोग करते थे, ४. चैत्य एवं ५. सङ्घरत्न। महाराज! इस दुकान में जातिसम्पत्ति, भोगसम्पत्ति, आयुसम्पत्ति, आरोग्यसम्पत्ति, सौन्दर्यसम्पत्ति, प्रज्ञासम्पत्ति, सांसारिकसम्पत्ति, दिव्यसम्पत्ति और निर्वाणसम्पत्ति फैली हुई है, यहाँ जिसको जो रुचिकर हो कर्म का मूल्य दे उस सम्पत्ति को खरीद सकता है। कितने लोग शील का पालन कर, कितने उपोसथव्रत रख कर और थोड़ा–थोड़ा पुण्य कर के ही उसके अनुसार सम्पत्ति खरीदते हैं। महाराज! जैसे अनाज वाले की दूकान में उलट–फेर कर अल्प मूल्य से भी थोड़ा–बहुत खरीदा जा सकता है, वैसे ही भगवान् की इस दूकान में अल्प पुण्य से भी उसी मूल्य के समान वस्तुओं की सम्पत्ति खरीदी जा सकती है। महाराज! यही भगवान् की सब वस्तुओं की दूकान' है, जहाँ सभी चीजें मिलती हैं। (८)

"आयु, आरोग्य, सौन्दर्य, स्वर्ग, उच्च कुल में जन्म होना, अनिर्वचनीय, अमृत, निर्वाण—सभी कुछ भगवान् की इस दुकान मे मिलता है। कर्म का थोड़ा या बहुत मूल्य दे कर वैसा ही लोग खरीदते हैं। भिक्षुओ! श्रद्धा के मूल्य से इन्हें खरीद कर धनी समृद्ध हो जाओ।।

धर्मनगरवासी—२०. "महाराज! भगवान् के इस धर्मनगर में ऐसे लोग निवास करते हैं— सूत्र,

पटिवसन्ति—सुत्तन्तिका वेनयिका आभिधम्मिका, धम्मकथिका जातकभाणका दीघभाणका मज्झिमभाणका संयुत्तभाणका अङ्गुत्तरभाणका खुद्दकभाणका, सीलसम्पन्ना समाधिसम्पन्ना पञ्ञासम्पन्ना बोज्झङ्गभावनारता विपस्सका सदत्थमनुयुत्ता, आरञ्ञिका रुक्खमूलिका अब्भोकासिका पलालपुञ्जका सोसानिका नेसज्जिका पटिपन्नका फलट्ठा सेक्खा फलसमङ्गिनो, सोतापन्ना सकदागामिनो अनागामिनो अरहन्तो, तेविज्जा छळभिञ्ञा इद्धिमन्तो पञ्ञाय पारमिं गता सतिपट्ठानसम्मप्पधानइद्धिपादइन्द्रियबलबोज्झङ्गमग्गवरझानविमोक्खरूपारूपसन्तसुख-समापत्तिकुसला। तेहि अरहन्तेहि आकुलं समाकुलं आकिण्णं समाकिण्णं नळवनसरवनमिव *धम्मनगरं* अहोसि। भवतीह—

१. "वीतरागा वीतदोसा, वीतमोहा अनासवा।
वीततण्हा अनादाना, धम्मनगरे वसन्ति ते॥

२. "आरञ्ञिका धुतधरा, झायिनो लूखचीवरा।
विवेकाभिरता धीरा, धम्मनगरे वसन्ति ते॥

३. "नेसज्जिका सन्थतिका, अथो पि ठानचङ्कमा।
पंसुकूलधरा सब्बे, धम्मनगरे वसन्ति ते॥

४. "तिचीवरधरा सन्ता, चम्मखण्डचतुत्थका।
रत्ता एकासने विञ्ञू, धम्मनगरे वसन्ति ते॥

५. "अप्पिच्छा निपका धीरा, अप्पाहारा अलोलुपा।
लाभा लाभेन सन्तुट्ठा, धम्मनगरे वसन्ति ते॥

विनय, अभिधर्म के जानने वाले, धर्मोपदेशक, जातक–कथाओं के वाचक, दीघनिकाय, मज्झिमनिकाय, संयुक्तनिकाय, अंगुत्तरनिकाय, खुद्दकनिकाय पढ़ने वाले, शीलसम्पन्न, समाधिसम्पन्न, प्रज्ञासम्पन्न, बोध्यङ्गभावना में रत रहने वाले, विपश्यना वाले, अच्छे कर्मों में संलग्न, ध्यानसाधना के लिये जंगल वासी, वृक्ष के नीचे खुले स्थान में, पुआल के ढेर पर और श्मशान में रहने वाले, (आर्य) मार्ग पर आरूढ़ चार फ़लों में से किसी का साक्षात्कार करने वाले शैक्ष (निर्वाण पाने के लिये जिन्हें अभी सीखना अवशिष्ट है), स्रोतआपन्न, सकृदागामी, अनागामी, अर्हत्, तीन विद्याओं को जानने वाले, छह अभिज्ञा धारण करने वाले, ऋद्धिमान्, प्रज्ञा की चरम सीमा तक पहुँचे हुए तथा स्मृतिप्रस्थान, सम्यक्प्रधान, ऋद्धिपाद, इन्द्रिय, बल, बोध्यङ्ग, मार्ग, ध्यान, विमोक्ष, रूप, अरूप, शान्त सुखसमापत्ति में कुशल। वह धर्मनगर बाँस या सरकण्डों के झुण्ड के समान अर्हतों से भरा रहता था। कहा भी है—

(१) "राग, द्वेष, मोह से रहित, क्षीणास्रव, तृष्णारहित तथा उपादाननाशक भिक्षु धर्मनगर में रहते हैं।

(२) "जंगल में रहने वाले, धुताङ्गधारी, ध्यान करने वाले, रूक्ष चीवरों वाले, विवेकरत, धीर लोग धर्मनगर में रहते हैं।।

(३) "आसन लगाये रहने वाले, केवल कभी–कभी सोने वाले और बराबर–चंक्रमण कर ध्यान करने वाले, गुदड़ी (पंसुकूल) धारण करने वाले— ये सभी धर्मनगर में वास करते हैं।।

(४) "तीन चीवर धारण करने वाले, शान्त चर्मखण्डधारक केवल एक बार भोजन करके प्रसन्न रहने वाले विद्वान् ही धर्मनगर में रहते हैं।।

(५) "कम इच्छा वाले, ज्ञानी, धीर, अल्पाहारी, निर्लोभ, जो कुछ मिले उसी से सन्तुष्ट रहने वाले धर्मनगर में रहते हैं।।

६. "झायी झानरता धीरा, सन्तचित्ता समाहिता।
आकिञ्चञ्ञं पत्थयाना, धम्मनगरे वसन्ति ते॥
७. "पटिपन्ना फलट्ठा च, सेट्ठा फलसमङ्गिनो।
आसिंसका उत्तमत्थं, धम्मनगरे वसन्ति ते॥
८. "सोतापन्ना च विमला, सकदागामिनो च ये।
अनागामी च अरहन्तो, धम्मनगरे वसन्ति ते॥
९. "सतिपट्ठानकुसला, बोज्झङ्गभावनारता।
विपस्सका धम्मधरा, धम्मनगरे वसन्ति ते॥
१०. "इद्धिपादेसु कुसला, समाधिभावनारता।
सम्मप्पधानमनुयुत्ता, धम्मनगरे वसन्ति ते॥
११. "अभिञ्ञापारमिप्पत्ता, पेत्तिके गोचरे रता।
अन्तलिक्खम्हि चरणा, धम्मनगरे वसन्ति ते॥
१२. "ओक्खित्तचक्खू मितभाणी, गुत्तद्वारा सुसंवुता।
सुदन्ता उत्तमे दम्मे, धम्मनगरे वसन्ति ते॥
१३. "तेविज्जा छळभिञ्ञा च, इद्धिया पारमिं गता।
पञ्ञाय पारमिप्पत्ता, धम्मनगरे वसन्ति ते ति॥

२१. "ये खो ते, महाराज, भिक्खू अपरिमितञाणवरधरा असङ्गा अतुलगुणा अतुलयसा अतुलबला अतुलतेजा धम्मचक्कानुपवत्तका पञ्ञापारमिङ्गता, एवरूपा खो, महाराज, भिक्खू भगवतो धम्मनगरे 'धम्मसेनापतिनो' ति वुच्चन्ति।

---

(६) "ध्यान करने वाले, ध्यान में रत रहने वाले, धीर, शान्तचित्त और समाधि लगाने वाले, निर्वाण की इच्छा रखने वाले धर्मनगर में रहते हैं।।

(७) "सन्मार्ग पर आ जाने वाले (प्रतिपन्न) फल पाकर रहने वाले, शैक्ष, निर्वाण पद पा लेने वाले, उत्तम पदप्राप्ति में निरत भिक्षु ही धर्मनगर में रहते हैं।।

(८) "मलरहित स्रोतआपन्न, सकृदागामी, अनागामी और अर्हत् ही धर्मनगर में बसते हैं।।

(९) "स्मृतिप्रस्थान में कुशल, बोध्यङ्ग की भावना में रत, ज्ञानी, धर्मात्मा, धर्मनगर में रहते हैं।।

(१०) "ऋद्धिपाद में कुशल, समाधि और भावना में रत, सम्यक्प्रधान में लगे भिक्षु धर्मनगर में रहते हैं।।

(११) "अभिज्ञा की चरम सीमा तक पहुँचे हुए, अपनी पैतृक सम्पत्ति में आनन्द लूटने वाले, आकाश में भ्रमण करने वाले धर्मनगर में रहते हैं।।

(१२) "नीची दृष्टि रखने वाले (नम्र), कम बोलने वाले, इन्द्रियों को वश में रखने वाले, संयमी, इस उत्तम धर्म में आकर विनम्र हुए लोग ही इस धर्मनगर में रहते हैं।।

(१३) "तीन विद्याओं और छह अभिज्ञाओं के धारक और ऋद्धि, प्रज्ञा की सीमा पार कर लेने वाले इस धर्मनगर में रहते हैं।।

२१. "महाराज! जो भिक्षु अनन्तज्ञानी, सांसारिक वस्तुओं में न फँसने वाले, अतुल्य गुण एवं अतुल्य यश वाले, बल वाले, अतुल्य तेज वाले, धर्मचक्र घुमाने वाले और प्रज्ञा की सीमा तक पहुँचे हैं, महाराज! भगवान् के धर्मनगर में इस प्रकार के भिक्षु 'धर्मसेनापति' कहे जाते हैं।

२२. "ये पन ते, महाराज, भिक्खू इद्धिमन्तो अधिगतपटिसम्भिदा पत्तवेसारज्जा गगनचरा दुरासदा दुप्पसहा अनालम्बचरा ससागरमहीधरपथविकम्पका चन्दसुरियपरिमज्जका विकुब्बनाधिट्ठाना-भिनीहारकुसला इद्धिया पारमिङ्गता, एवरूपा खो, महाराज, भिक्खू भगवतो धम्मनगरे 'पुरोहिता' ति वुच्चन्ति।

२३. "ये पन ते, महाराज, भिक्खू धुतङ्गमनुगता अप्पिच्छा सन्तुट्ठा विञ्ञत्ति-मनेसनजिगुच्छका पिण्डाय सपदानचारिनो भमरा व गन्धमनुघायित्वा पविसन्ति विवित्तकाननं, काये च जीविते च निरपेक्खा अरहत्तमनुप्पता धुतङ्गगुणे अग्गनिक्खित्ता; एवरूपा खो, महाराज, भिक्खू भगवतो धम्मनगरे 'अक्खदस्सा' ति वुच्चन्ति।

२४. "ये पन ते, महाराज, भिक्खू परिसुद्धा विमला निक्किलेसा चुतूपपातकुसला दिब्बचक्खुम्हि पारमिङ्गता, एवरूपा खो, महाराज, भिक्खू भगवतो धम्मनगरे 'नगरजोतका' ति वुच्चन्ति।

२५. "ये पन ते, महाराज, भिक्खू बहुस्सुता आगतागमा धम्मधरा विनयधरा मातिकाधरा सिथिलधनितदीघरस्सगरुकलहुकक्खरपरिच्छेदकुसला नवङ्गसासनधरा, एवरूपा खो, महाराज, भिक्खू भगवतो धम्मनगरे 'धम्मरक्खा' ति वुच्चन्ति।

२६. "ये पन ते, महाराज, भिक्खू विनयञ्ञू विनयकोविदा ठानाठानकुसला आपत्ति-अनापत्तिगरुकलहुकसतेकिच्छअतेकिच्छवुट्ठानदेसनाविग्गहनिग्गहपटिकम्मओसारण-निस्सारणपटिसारणकुसला विनये पारमिङ्गता, एवरूपा खो, महाराज, भिक्खू भगवतो धम्मनगरे 'रूपदक्खा' ति वुच्चन्ति।

---

२२. "महाराज! जो भिक्षु ऋद्धिमान् हैं, प्रतिसंविद् ग्रहण कर चुके हैं, वैशारद्य पा चुके हैं, आकाश में घूमते हैं, परास्त नहीं किये जा सकते, जिनके समान कोई नहीं है, किसी दूसरे पर आलम्बित नहीं रहते, समुद्र और पहाड़ के साथ समग्र पृथ्वी कँपा सकते हैं, चाँद सूरज को भी छू सकते हैं, अपना रूप बदल सकते हैं, दृढ़ सङ्कल्प और ऊँचे उद्देश्य पूर्ण कर सकते हैं और जो ऋद्धि में पूर्ण हैं, वैसे भिक्षु ही इस धर्मनगर में 'पुरोहित' कहे जाते हैं।

२३. "महाराज! जो भिक्षु धुताङ्गधारक हैं, अल्पेच्छ हैं, सन्तुष्ट हैं, दूसरों से कुछ माँगने या स्वयं किसी चीज के पीछे भटकना घृणित समझते हैं, विना कोई घर छोड़े पिण्डपात करते हैं, जैसे भौरा फूल-फूल पर बैठ कर रस लेता है, और उसके बाद एकान्त में चला जाता है, अपने जीवन और शरीर के प्रति निरपेक्ष, अर्हत्-पद जिन्होंने पा लिया है, और जो धुताङ्ग पालन को ही सबसे अच्छा मानते हैं, वे भिक्षु भगवान् के इस धर्मनगर में 'अधिकारी' कहे जाते हैं।

२४. "महाराज! जो भिक्षु परिशुद्ध, निर्मल, क्लेशरहित और सबसे अन्तिम दिव्य ज्ञान को पा चुके हैं, वे भगवान् के धर्मनगर में 'प्रकाशक' कहे जाते हैं।

२५. "महाराज! जो भिक्षु बड़े विद्वान् हैं, आगम के पण्डित हैं, धर्म को पूरा जानते हैं, विनय को समझते हैं, मातृकाओं को स्मरण रखते हैं, उच्चारण में कुशल हैं, इस नवाङ्ग शासन को जानते हैं, वे भगवान् के धर्मनगर में 'चौकीदार' (धर्मरक्षक) कहे जाते हैं।

२६. "महाराज! जो भिक्षु विनय जानते हैं, विनय की गूढ़ से गूढ़ बातों तक पहुँचे हुए हैं, निदान में कुशल हैं, विनय के सारे कर्म अच्छी तरह कर सकते हैं, और विनय में जो कुछ भी जानने योग्य है उसके ज्ञाता हैं, वे भगवान् के इस धर्मनगर में 'रूपदर्शक' कहे जाते हैं।

२७. "ये पन ते, महाराज, भिक्खू विमुत्तिवरकुसुममालबद्धा वरप्पवरमहग्घसेट्ठ-भावमनुप्पत्ता बहुजनकन्तमभिपत्थिता; एवरूपा खो, महाराज, भिक्खू भगवतो धम्मनगरे 'पुप्फापणिका' ति वुच्चन्ति।

२८. "ये पन ते, महाराज, भिक्खू चतुसच्चाभिसमयप्पटिविद्धा दिट्ठसच्चा विञ्ञात-सासना चतूसु सामञ्ञफलेसु तिण्णविचिकिच्छा पटिलद्धफलसुखा अञ्ञेसं पि पटिपन्नानं ते फले संविभजन्ति; एवरूपा खो, महाराज, भिक्खू भगवतो धम्मनगरे 'फलापणिका' ति वुच्चन्ति।

२९. "ये पन ते, महाराज, भिक्खू सीलवरगन्धमनुलित्ता अनेकविधबहुगुणधरा किलेसमलदुग्गन्धविधमका; एवरूपा खो, महाराज, भिक्खू भगवतो धम्मनगरे 'गन्धापणिका' ति वुच्चन्ति।

३०. "ये पन ते, महाराज, भिक्खू धम्मकामा पियसमुदाहारा अभिधम्मे अभिविनये उळारपामोज्जा अरञ्ञगता पि रुक्खमूलगता पि सुञ्ञागारगता पि धम्मवररसं पिवन्ति, कायेन वाचाय मनसा धम्मवररसमोगाळ्हा अधिमत्तपटिभाना धम्मेसु धम्मेसनप्पटिपन्ना इतो वा ततो वा यत्थ यत्थ अप्पिच्छकथा सन्तुट्ठिकथा पविवेककथा असंसग्गकथा विरियारम्भकथा सीलकथा समाधिकथा पञ्ञाकथा विमुत्तिकथा विमुत्तिञाणदस्सनकथा तत्थ तत्थ गन्त्वा तं तं कथारसं पिवन्ति; एवरूपा खो, महाराज, भिक्खू भगवतो धम्मनगरे 'सोण्डापिपासा' ति वुच्चन्ति।

---

२७ "महाराज! जो भिक्षु विमुक्ति के पुष्पगुच्छ अपने सिर पर बाँधे हैं, जो उत्तम, अमूल्य और श्रेष्ठ अवस्था पा चुके हैं तथा लोगों के प्रिय और आदरणीय हैं, वे भगवान् के इस धर्मनगर में फूल बेचने वाले 'माली' कहे जाते हैं।

२८. "महाराज! जो भिक्षु चार आर्यसत्यों के रहस्य के ज्ञाता हैं, सत्य-ज्ञान का साक्षात्कार कर चुके हैं, जिन्होंने बुद्ध धर्म को पूर्णतः समझ लिया है, जो चारों श्रामण्य फलों में सन्देहरहित हो गये हैं, उन फलों का सुख पा चुके हैं, तथा दूसरे सच्चे मार्ग पर आये लोगों के बीच भी फल का उपदेश करते हैं, वे भगवान् के धर्मनगर में फल बेचने वाले 'फलापणिक' हैं।

२९. "महाराज! जो भिक्षु शील की श्रेष्ठ सुगन्ध से लिप्त हो कर अनेक प्रकार के सद्गुणों के धारक तथा क्लेशरूपी मलिन दुर्गन्ध का नाश कर देने वाले हैं, भगवान् के इस धर्मनगर में वे गन्ध बेचने वाले 'गंधी' कहे जाते हैं।

३०. "महाराज! जो भिक्षु धर्म को ही चाहने वाले हैं, मीठी बातें करने वाले हैं, अभिधर्म और विनय में अत्यन्त आनन्द लेते हैं, जंगल में रह या वृक्ष के नीचे आसन लगा या एकान्त प्रकोष्ठ में बैठ केवल धर्म का ही मीठा रस पीते हैं, शरीर, मन और वचन से एक धर्म के रस में ही डूबे रहते हैं, धर्म में अत्यधिक प्रतिभा रखते हैं, धर्म की खोज में सदा लगे रहते हैं, सर्वत्र अल्पेच्छता की प्रशंसा करते हैं, सन्तोष और विवेक की प्रशंसा करते हैं, सांसारिक जाल से दूर रहने का उपदेश देते हैं, अच्छे काम के प्रयास में सदा लगे रहने को कहते हैं, शील, समाधि, प्रज्ञा, विमुक्ति एवं विमुक्ति-ज्ञानदर्शन का उपदेश करते हैं, जिनके पास लोग जाकर विविध प्रकार का उपदेश ग्रहण करते हैं; वे भगवान् के धर्मनगर में 'मद्यपायी' हैं।

३१. ''ये पन ते, महाराज, भिक्खू पुब्बरत्तापररत्तं जागरियानुयोगमनुयुत्ता निसज्जट्ठान-चङ्कमेहि रत्तिन्दिवं वीतिनामेन्ति, भावनानुयोगमनुयुत्ता किलेसपटिबाहनाय सदत्थप्पसुता; एवरूपा खो, महाराज, भिक्खू भगवतो धम्मनगरे 'नगरगुत्तिका' ति वुच्चन्ति।

३२. ''ये पन ते, महाराज, भिक्खू नवङ्गं बुद्धवचनं अत्थतो च ब्यञ्जनतो च नयतो च कारणतो च हेतुतो च उदाहरणतो च वाचेन्ति अनुवाचेन्ति भासन्ति अनुभासन्ति; एवरूपा खो, महाराज, भिक्खू भगवतो धम्मनगरे 'धम्मापणिका' ति वुच्चन्ति।

३३. ''ये पन ते, महाराज, भिक्खू धम्मरतनभोगेन आगमपरियत्तिसुतभोगेन भोगिनो धनिनो निद्दिट्ठसरब्यञ्जनलक्खणपटिवेधा विञ्ञू फरणा; एवरूपा खो, महाराज, भिक्खू भगवतो धम्मनगरे 'धम्मसेट्ठिनो' ति वुच्चन्ति।

३४. ''ये पन ते, महाराज, भिक्खू उळारदेसनापटिवेधा परिचिण्णारम्मणविभत्तिनिद्देसा सिक्खागुणपारमिप्पत्ता; एवरूपा खो, महाराज, भिक्खू भगवतो धम्मनगरे 'विस्सुतधम्मिका' ति वुच्चन्ति।

३५. ''एवं सुविभत्तं खो, महाराज, भगवतो धम्मनगरं, एवं सुमापितं, एवं सुविहितं, एवं सुपरिपूरितं, एवं सुववत्थापितं, एवं सुरक्खितं, एवं सुगोपितं, एवं दुप्पसय्हं पच्चत्थिकेहि पच्चामित्तेहि। इमिना, महाराज, कारणेन इमिना हेतुना इमिना नयेन इमिना अनुमानेन ञातब्बं— 'अत्थि सो भगवा' ति।

''यथापि नगरं दिस्वा, सुविभत्तं मनोरमं।
अनुमानेन जानन्ति, वड्ढकिस्स महत्तनं॥

---

३१. ''महाराज! जो भिक्षु पहली रात्रि से अन्तिम रात्रि तक जागे ही जागे, बैठे ही बैठे, खड़े ही खड़े या टहलते ही टहलते दिन रात ध्यान–भावना करते हैं, भावना करने में सदा लगे रहते हैं, अपने क्लेश को दूर करने में सदा प्रयत्नशील रहते हैं, वे भगवान् के इस धर्मनगर में 'पहरेदार' कहे जाते हैं।

३२. ''महाराज! जो भिक्षु भगवान् के नव–अङ्गों वाले धर्म को अर्थ, व्यञ्जन, तर्क, कारण, हेतु और उदाहरण से समझ कर पढ़ते हैं, वे भगवान् के धर्मनगर के 'अधिवक्ता' कहे जाते हैं।

३३. ''महाराज! जो भिक्षु धर्मरत्न से धनी हैं, पुरानी परम्परा का धन रखते हैं, विद्या से धनाढ्य हैं और धर्म के निर्देश, स्वर, व्यञ्जन, लक्षण तथा गूढ़ तत्त्व के ज्ञान से परिपूर्ण हैं; वे भगवान् के इस धर्मनगर में 'नगरसेठ' कहे जाते हैं।

३४. ''महाराज! जो भिक्षु देशना के रहस्य तक पहुँच गये हैं, ध्यान के अभ्यास के लिये जो विषय बताये गये हैं उनके विभाग और तात्पर्य को समझ गये हैं, सूक्ष्म से सूक्ष्म शिक्षायें पा चुके हैं, वे भगवान् के इस धर्मनगर में बड़े विख्यात न्यायविद् कहे जाते हैं।

३५. ''महाराज! भगवान् का धर्मनगर इतना अच्छा बसा हुआ है, इतना अच्छा नाप–जोख कर तैयार किया गया है, उसमें ऐसी विशेषता दिखायी गयी है, सभी बातें पूरी की गयी हैं, ऐसी अच्छी व्यवस्था बना दी गयी है, वह इतना रक्षित बना हुआ है कि शत्रु किसी तरफ से भी उस पर आक्रमण नहीं कर सकते। महाराज! इन सभी को देख कर यह समझना चाहिये कि 'भगवान् अवश्य हुए हैं'।

(१) ''जैसे अच्छी तरह विभाजित सुन्दर नगर देख कर लोग उसके निर्माता की निपुणता का ज्ञान कर लेते हैं।।

"तथेव लोकनाथस्स, दिस्वा धम्मपुरं वरं।
अनुमानेन जानन्ति-'अत्थि सो भगवा' इति॥
"अनुमानेन जानन्ति, ऊमी दिस्वान सागरे।
यथायं दिस्सते ऊमी, महन्तो सो भविस्सति॥
"तथा बुद्धं सोकनुदं, सब्बत्थमपराजितं।
तण्हक्खयमनुप्पत्तं, भवसंसारमोचनं॥
"अनुमानेन ञातब्बं, ऊमी दिस्वा सदेवके।
यथा धम्मूमिविप्फारो, अग्गो बुद्धो भविस्सति॥
"अनुमानेन जानन्ति, दिस्वा अच्चुग्गतं गिरिं।
यथा अच्चुग्गतो एसो, हिमवा सो भविस्सति॥
"तथा दिस्वा धम्मगिरिं, सीतिभूतं निरूपधिं।
अच्चुग्गतं भगवतो, अचलं सुप्पतिट्ठितं॥
"अनुमानेन ञातब्बं, दिस्वान धम्मपब्बतं।
तथा हि सो महावीरो, अग्गो बुद्धो भविस्सति॥
"यथा पि गजराजस्स, पदं दिस्वान मानुसा।
अनुमानेन जानन्ति—'महा एसो गजो' इति॥
"तथेव बुद्धनागस्स, पदं दिस्वा विभाविनो।
अनुमानेन जानन्ति-उळारो सो भविस्सति॥
"अनुमानेन जानन्ति, भीते दिस्वान कुम्मिगे।
'मिगराजस्स सद्देन, भीतामे कुम्मिगा' इति॥

---

(२) "वैसे ही लोकनाथ (बुद्ध) के इस धर्मपुर को देख कर वे भगवान् कैसे थे?— लोग इसका अनुमान लगा लेते हैं।।

(३) "समुद्र की तरङ्गों को देख कर लोग अनुमान लगा लेते हैं कि जैसी ये तरङ्गें हैं, वैसा ही बड़ा समुद्र होगा।।

(४–५) "वैसे ही शोक दूर करने वाले तृष्णा नष्ट कर देने वाले और भवसागर से पार लगा देने वाले अपराजेय बुद्ध केबारे में देवताओं और मनुष्यों में तरङ्गों को देख कर अनुमान लगा लेना चाहिये, जैसे ये धर्म की तरङ्गें उठ रही हैं; वैसे ही वे बुद्ध भी महान् होंगे। जैसे बड़ी ऊँची चोटी को देख कर लोग अनुमान लगा लेते हैं कि इतनी ऊँची चोटी नीला पर्वत हिमालय ही होगा।।

(६) "वैसे ही धर्म की चोटी को देख जो (तृष्णा की ज्वाला से) ठंडी और उपाधिरहित हो गयी है, भगवान् के इस ऊँचे, भव्य और महान् धर्मपर्वत को देख कर अनुमान लगा लेना चाहिये कि वे श्रेष्ठ महावीर बुद्ध कैसे होंगे।।

(७) "जैसे गजराज के पैर देख कर मनुष्य अनुमान लगा लेते हैं कि यह हाथी बहुत विशालकाय होगा।।

(८) "वैसे ही बुद्ध गजराज के चरणों को देख कर बुद्धिमान् लोग अनुमान लगा लेते हैं कि वे कैसे महान् होंगे।।

"तथेव तित्थिये दिस्वा, वित्थते भीतमानसे।
अनुमानेन ञातब्बं, धम्मराजेन गज्जितं॥
"निब्बुतं पठविं दिस्वा, हरितपत्तं महोदिकं।
अनुमानेन जानन्ति, महामेघेन निब्बुतं॥
"तथेविमं जनं दिस्वा, आमोदितपमोदितं।
अनुमानेन ञातब्बं, धम्ममेघेन तप्पितं॥
"लग्गं दिस्वा भुसं पङ्कं, कललद्दगतं महिं।
अनुमानेन जानन्ति, वारिक्खन्धो महग्गतो॥
"तथेविमं जनं दिस्वा, रजपङ्कसमोहितं।
वहितं धम्मनदिया, विसट्ठं धम्मसागरे॥
"धम्मामतगतं दिस्वा, सदेवकमिमं महिं।
अनुमानेन ञातब्बं—धम्मक्खन्धो महग्गतो॥
अनुमानेन जानन्ति, घायित्वा गन्धमुत्तमं।
यथायं वायते गन्धो, हेस्सन्ति पुप्फिता दुमा।
तथेवायं सीलगन्धो, पवायति सदेवके।
अनुमानेन ञातब्बं-'अत्थि बुद्धो अनुत्तरो' ति॥

३६. "एवरूपेन खो, महाराज, कारणसतेन कारणसहस्सेन हेतुसतेन हेतुसहस्सेन

---

(९) "जंगल के छोटे मोटे जानवरों को डरा देखकर लोग अनुमान लगा लेते हैं कि सिंह की गर्जना को सुन कर ही ये जंगल के छोटे बड़े पशु डर गये हैं।।

(१०) "वैसे ही दूसरे मत वालों को डर कर भागते देख अनुमान लगा लिया जा सकता है कि यह धर्मराज (बुद्ध) की गर्जना है।।

(११) "पृथ्वी को जल से गीली और हरे पत्तों से शोभित देख कर अनुमान लगा लिया जाता है कि यहाँ भारी वृष्टि हुई होगी।।

(१२) "वैसे ही संसार के लोगों को आमोद-प्रमोदयुक्त देख कर अनुमान लगा लेना चाहिये कि धर्ममेघ (बुद्धोपदेश) बरसा होगा।।

(१३) "जल और कीचड़ से सनी हुई भूमि को देख कर अनुमान लगाया जाता है कि अवश्य यहाँ से बड़ी जलधारा बही होगी।।

(१४) "वैसे ही पापरज पापपङ्क-त्यागी जनों को देख कर धर्मनदी, धर्मसमुद्र में बही होगी- यह अनुमान लगाया जा सकता है।।

(१५) "संसार के देवताओं और मनुष्यों को धर्मामृत पाया हुआ देख कर अनुमान लगा लेना चाहिये कि यहाँ धर्म की बड़ी धारा बही होगी।।

(१६) "जैसे उत्तम गन्ध को पा कर लोग अनुमान लगा लेते हैं कि जैसी गन्ध बह रही है उस से ज्ञात होता है- ये वृक्ष फूलों से लदे हुए होंगे।।

(१७) "वैसे ही यह शील की गन्ध देवताओं और मनुष्यों में बहती है, इसी से समझ लेना चाहिये कि अलौकिक बुद्ध हुए होंगे।।

३६. "महाराज! इसी प्रकार के सैकड़ों हजारों कारण, तर्क तथा उपमाओं से बुद्धबल का

नयसतेन नयसहस्सेन ओपम्मसतेन ओपम्मसहस्सेन सक्का बुद्धबलं उपदस्सयितुं। यथा, महाराज, दक्खो मालाकारो नानापुप्फरासिम्हा आचरियानुसिट्ठिया पच्चत्तपुरिसकारेन विचित्तं मालागुणरासिं करेय्य; एवमेव खो, महाराज, सो भगवा विचित्तपुप्फरासि विय अनन्तगुणो अप्पमेय्यगुणो, अहमेतरहि जिनसासने मालाकारो विय पुप्फगन्धको पुब्बकानं आचरियानं मग्गेन पि मय्हं बुद्धिबलेन पि असङ्ख्येय्येन पि कारणेन अनुमानेन बुद्धबलं दीपयिस्सामि, त्वं पनेत्थ छन्दं जनेहि सवणाया'' ति।

''दुक्करं, भन्ते नागसेन, अञ्ञेसं एवरूपेन कारणेन अनुमानेन बुद्धबलं उपदस्सयितुं, निब्बुतोम्हि, भन्ते नागसेन, तुम्हाकं परमविचित्तेन पञ्हावेय्याकरणेना'' ति।

२. धुतङ्गपञ्हो

१. पस्सतारञ्ञिके भिक्खू, अज्झोगाळ्हे धुते गुणे।
पुन पस्सति गिही राजा, अनागामिफले ठिते॥
उभो पि ते विलोकेत्वा, उप्पज्जि संसयो महा।
बुज्झेय्य चे गिही धम्मे, धुतङ्गं निप्फलं सिया॥
परवादिवादमथनं, निपुणं पिटकत्तये।
हन्द पुच्छे कथिं सेट्ठं, सो मे कङ्खं विनेस्सती ति॥

२. अथ खो मिलिन्दो राजा येनायस्मा नागसेनो तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं नागसेनं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो मिलिन्दो राजा आयस्मन्तं नागसेनं एतदवोच—''भन्ते नागसेन, अत्थि कोचि गिही अगारिको कामभोगी पुत्तदार-सम्बाधसयनं अज्झावसन्तो कासिकचन्दनं पच्चनुभोन्तो मालागन्धविलेपनं धारेन्तो जातरूपरजतं सादियन्तो मणिमुत्ताकञ्चनविचित्तमोळिबन्धो, येन सन्तं परत्तं निब्बानं सच्छिकतं'' ति ?

अनुमान लगाया जा सकता है। महाराज! जैसे कोई चतुर माली अपने गुरु से निर्देश के अनुसार अपनी बुद्धि लगा कर नाना प्रकार के फूलों से माला गूँथ कर सुन्दर सजा देता है, वैसे ही मानों मैं बुद्धमन्दिर में उन के अनन्त सद्‌गुणों के फूल की माला गूँथ रहा हूँ—अपने आचार्यों के बतलाने के अनुसार भी और अपनी बुद्धि लगा कर भी। अतः मैं हजारों उपमाओं से बुद्धबल दिखा सकता हूँ, यदि आप सुनना चाहें!''

''भन्ते नागसेन! सम्भवतः दूसरे लोग इस प्रकार के कारण तथा अनुमान को भी सुन कर बुद्धबल का पता न लगा सकें; किन्तु मुझे तो पूरा-पूरा विश्वास हो गया, मैं शान्त हो गया; क्योंकि आप के उत्तर बहुत ही अद्भुत एवं विचित्र हैं।''

२. धुताङ्गप्रश्न—१. राजा ने भिक्षुओं को घने जङ्गल में पैठ कर धुताङ्ग व्रत पालन करते देखा, फिर उन गृहस्थों को देखा जो अनागामि-फल पर प्रतिष्ठित हो चुके थे।।

उन दोनों को देख राजा के मन में बड़ा संशय उत्पन्न हुआ, यदि गृहस्थ रह कर ही ज्ञान प्राप्त हो जाता है तो (भिक्षुओं द्वारा अनुष्ठित) धुताङ्ग निष्फल ठहरते हैं।।

अच्छा हो कि मैं दूसरों के तर्क का खण्डन करने वाले, त्रिपिटक-पण्डित उन श्रेष्ठ वक्ता से चल कर पूछूँ; वे अवश्य मेरा सन्देह दूर कर देंगे।।

२. तब, राजा मिलिन्द जहाँ आयुष्मान् नागसेन थे, वहाँ गया और उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उसने आयुष्मान् नागसेन से कहा—''भन्ते नागसेन! क्यों कोई गृहस्थ है, जिसने

"न, महाराज, एकञ्ञेव सतं न द्वे सतानि न तीणि चत्तारि पञ्च सतानि न सहस्सं न सतसहस्सं न कोटिसतं न कोटिसहस्सं न कोटिसतसहस्सं। तिट्ठतु, महाराज, दसन्नं वीसतिया सतस्स सहस्सस्स अभिसमयो, कतमेन ते परियायेन अनुयोगं दम्मी" ति।

"त्वमेवेतं ब्रूही" ति। "तेन हि ते, महाराज, कथयिस्सामि सतेन वा सहस्सेन वा सतसहस्सेन वा कोटिया वा कोटिसहस्सेन वा कोटिसतसहस्सेन वा, या काचि नवङ्गे बुद्धवचने सल्लेखिताचारपटिपत्तिधुतगुणवरङ्गनिस्सिता कथा, ता सब्बा इध समोसरिस्सन्ति।

"यथा, महाराज, निन्नुन्नतसमविसमथलाथलदेसभागे अभिवुट्ठं उदकं, सब्बं तं ततो विनिगळित्वा महोदधिं सागरं समोसरति; एवमेव खो, महाराज, सम्पादके सति या काचि नवङ्गबुद्धवचने सल्लेखिताचारपटिपत्तिधुतगुणवरङ्गनिस्सिता कथा, ता सब्बा इध समोसरिस्सन्ति।

"मय्हं पेत्थ, महाराज, परिब्यत्तताय बुद्धिया कारणपरिदीपनं समोसरिस्सति, तेनेसो अत्थो सुविभत्तो विचित्तो परिपुण्णो परिसुद्धो समानीतो भविस्सति। यथा, महाराज, कुसलो लेखाचरियो अनुसिट्ठो लेखं ओसारेन्तो अत्तनो ब्यत्तताय बुद्धिया कारणपरिदीपनेन लेखं परिपूरेति, एवं सा लेखा समत्ता परिपुण्णा अनूनिका भविस्सति; एवमेव मय्हं पेत्थ परिब्यत्तताय बुद्धिया कारणपरिदीपनं समोसरिस्सति, तेनेसो अत्थो सुविभत्तो विचित्तो परिपुण्णो परिसुद्धो समानीतो भविस्सति।

३. "नगरे, महाराज, सावत्थिया पञ्चकोटिमत्ता अरियसावका भगवतो उपासक-

---

अपने घर पर सभी कामगुणों का उपभोग करते, स्त्री और बाल–बच्चों के साथ रहते, काशी का चन्दन लगाते, माला, गन्ध और उबटन का प्रयोग करते, रुपये पैसे के व्यामोह में रहते और मणि–मोती–सोने के आभूषण को पहनते हुए भी परम शान्तपद निर्वाण को साक्षात् कर लिया हो?"

"महाराज! न एक सौ, न दो सौ, न तीन, चार, पाँच सौ, न एक हजार, न एक लाख, न सौ करोड़, न लाख; अपितु करोड़ों ऐसे गृहस्थ हो चुके हैं, जिन्होंने निर्वाण साक्षात् किया है। महाराज! दश, बीस, सौ या हजार की गणना तो छोड़ दें; मैं किस तरह आप को समझाऊँ!"

"हाँ, उसे आप ही समझावें।" "अच्छा तो मैं समझाता हूँ—महाराज! नवाङ्ग बुद्धवचन में जो पवित्र सदाचार, सच्चे मार्ग पर आना और धुताङ्ग के अच्छे–अच्छे गुण हैं, वे सभी सैकड़ों हजारों बातें इस प्रकरण में आ जाती हैं।

"महाराज! जैसे नीचे–ऊपर, समतल, गड़हा, जल–थल सभी स्थानों में जल बरस कर बहते–बहते अन्त में समुद्र में ही जाकर गिरता है; महाराज! वैसे ही इस प्रकरण को विस्तृत करने में नवाङ्ग बुद्धवचन में जो पवित्र सदाचार, सन्मार्ग पर आना तथा धुताङ्ग के सद्गुण हैं, सभी की बातें समाविष्ट हो जाती है।

"महाराज! यहाँ मुझे अपनी बुद्धि से भी कुछ बातें बतानी होंगी। इस प्रकार, यह बात अच्छी तरह बोधगम्य, विचित्र, परिपूर्ण और प्रतिष्ठित हो जायगी। महाराज! जैसे कुशल लेखक अपनी बुद्धि से किसी लेख को परिपुष्ट कर देते हैं, इस प्रकार वह लेख सुन्दर, पूर्ण और दोषरहित होता है; महाराज! वैसे ही इस प्रकरण में मुझे भी अपनी बुद्धि से कुछ बातें समझानी होंगी। तब यह बात अच्छी तरह बोधगम्य, विचित्र, परिपूर्ण एवं प्रतिष्ठित हो जायगी।

३. "महाराज! श्रावस्ती नगरी में भगवान् के पाँच करोड़ आर्यश्रावक उपासक और उपासिकाएँ

उपासिकायो सत्तपण्णाससहस्सानि तीणि च सतसहस्सानि अनागामिफले पतिट्ठिता, ते सब्बे पि गिही येव, न पब्बजिता। पुन तत्थेव गण्डम्बमूले यमकपाटिहारिये वीसति पाणकोटियो अभिसमिंसु। पुन महाराहुलोवादे, महामङ्गलसुत्तन्ते, समचित्तपरियाये, पराभवसुत्तन्ते, पुराभेदसुत्तन्ते, कलहविवादसुत्तन्ते, चूळब्यूहसुत्तन्ते, महाब्यूहसुत्तन्ते, तुवटकसुत्तन्ते, सारिपुत्तसुत्तन्ते गणनपथमतीतानं देवतानं धम्माभिसमयो अहोसि।

"नगरे राजगहे पञ्ञाससहस्सानि तीणि च सतसहस्सानि अरियसावका भगवतो उपासकउपासिकायो, पुन तत्थेव धनपालहत्थिनागदमने नवुति पाणकोटियो, पारायनसमागमे पासाणकचेतिये चुद्दस पाणकोटियो, इन्दसालगुहायं असीति देवताकोटियो, पुन बाराणसियं इसिपतने मिगदाये पठमे धम्मदेसने अट्ठारस ब्रह्मकोटियो अपरिमाणा च देवतायो, पुन तावतिंसभवने पण्डुकम्बलसिलायं अभिधम्मदेसनाय असीति देवताकोटियो, देवोरोहणे सङ्कस्सनगरद्वारे लोकविवरणपाटिहारिये पसन्नानं नरमरूनं तिंस कोटियो अभिसमिंसु।

"पुन सक्केसु कपिलवत्थुस्मिं निग्रोधारामे बुद्धवंसदेसनाय, महासमयसुत्तन्तदेसनाय च गणनपथमतीतानं देवतानं धम्माभिसमयो अहोसि। पुन सुमनमालाकारसमागमे, गरहदिन्न-समागमे, आनन्दसेट्ठिसमागमे, जम्बुकाजीवकसमागमे, मण्डूकदेवपुत्तसमागमे, मट्ठकुण्डलि-देवपुत्तसमागमे, सुलसानगरसोभनिसमागमे, सिरिमानगरसोभिनिसमागमे, पेसकारधीतुसमागमे, चूळसुभद्दासमागमे, साकेतब्राह्मणस्स आळाहनदस्सनसमागमे, सूनापरन्तकसमागमे, सक्कपञ्ह-समागमे, तिरोकुड्डसमागमे, रतनसुत्तसमागमे पच्चेकं चतुरासीतिया पाणसहस्सानं धम्माभिसमयो अहोसि। यावता, महाराज, भगवा लोके अट्ठासि ताव तीसु मण्डलेसु सोळससु महाजनपदेसु

रहती थीं। उनमें एक लाख सत्तावन हजार अनागामिफल पर प्रतिष्ठित हो चुके थे। वे सभी गृहस्थ ही थे, प्रव्रजित नहीं। फिर गण्डकवृक्ष के नीचे यमक प्रतिहार्य (ऋद्धिबल) दिखाये जाने पर बीस करोड़ (देवता और मनुष्य) प्राणियों को सत्यज्ञान हो गया था। फिर महाराहुलोवाद, महामङ्गलसूत्र, समचित्तपरियाय, पराभवसूत्र, पुराभेदसूत्र, कलहविवादसूत्र, चूळब्यूहसूत्र, महाव्यूहसूत्र, तुवटकसूत्र, सारिपुत्रसूत्र के कहे जाने पर अनन्त देवताओं को धर्मज्ञान हो गया था।

"राजगृह नगर में भगवान् के तीन लाख पचास हजार उपासक और उपासिकायें आर्यश्रावक थीं। फिर वहाँ धनपाल नामक हाथी का दमन करने पर नब्बे करोड़ देवता; पथरीले चैत्य पर पारायणसूत्र कहने के बाद चौदह करोड़ देवता धर्म का साक्षात्कार कर चुके थे। इन्द्रसालगुहा वाराणसी में अस्सी करोड़ देवता; ऋषिपतन मृगदाव में सर्वप्रथम देशना करने पर अट्ठारह करोड़ ब्रह्मा और असङ्ख्य देवता; फिर त्रायस्त्रिंश भवन में पण्डुकम्बलशिला पर अभिधर्म-देशना करने के बाद अस्सी करोड़ देवता; और देवभवन से उतरने के समय साङ्काश्यनगर के फाटक पर लोकविवरणप्रातिहार्य (ऋद्धि) से प्रसन्न हो कर तीस करोड़ मनुष्य और देवता ज्ञानचक्षु प्राप्त कर सके थे।

"फिर, शाक्यों के कपिलवस्तुनगरस्थ न्यग्रोधाराम में बुद्धवंस-देशना और महासमयसूत्र-देशना करने के बाद अगणित देवों को धर्मज्ञान हो गया था। फिर, सुमन नामक माली, गरहदिन्न, आनन्द सेठ, जम्बुकाजीवक, मण्डूक देवपुत्र, मट्ठकुण्डलि देवपुत्र, सुलसा नामक वेश्या, सिरिमा नामक वेश्या, जुलाहे की लड़की, छोटी सुभद्दा, साकेत ब्राह्मण की अन्त्येष्टि क्रिया देखने आये लोग, सूनापरन्तक, शक्रप्रश्न, तिरोकुड्ड और रत्नसूत्र की देशना करने पर चौरासी-हजार प्राणियों को धर्मज्ञान करा दिया

यत्थ यत्थ भगवा विहासि तत्थ तत्थ येभुय्येन द्वे तयो चत्तारो पञ्च सतं सहस्सं सतसहस्सं देवा च मनुस्सा च सन्तं परमत्थं निब्बानं सच्छिकरिंसु। ये ते, महाराज, देवा गिही येव, न ते पब्बजिता। एतानि चेव, महाराज, अञ्ञानि च अनेकानि देवताकोटिसतसहस्सानि गिही अगारिका कामभोगिनो सन्तं परमत्थं निब्बानं सच्छिकरिंसू'' ति।

४. ''यदि, भन्ते नागसेन, गिही अगारिका कामभोगिनो सन्तं परमत्थं निब्बानं सच्छिकरोन्ति, अथ इमानि धुतङ्गानि किमत्थं साधेन्ति? तेन कारणेन धुतङ्गानि अकिच्चकरानि होन्ति! यदि, भन्ते नागसेन, विना मन्तोसधेहि ब्याधयो वूपसमन्ति, किं वमनविरेचनादिना सरीरदुब्बलकरणेन! यदि मुट्ठीहि पटिसत्तुनिग्गहो भवति, किं असिसत्तिसरधनुकोदण्ड-लगुळमुग्गरेहि? यदि गण्ठिकुटिलसुसिरकण्टकलतासाखा आलम्बित्वा रुक्खमभिरूहनं भवति, किं दीघदळ्हनिस्सेणिपरियेसनेन! यदि थण्डिलसेय्याय धातुसमता भवति, किं सुखसम्फस्स-महतिमहासिरिसयनपरियेसनेन! यदि एकको सासङ्कसभयविसमकन्तारतरणसमत्थो भवति, किं सन्नद्धसज्जमहतिमहासत्थपरियेसनेन! यदि नदीसरं बाहुना तरितुं समत्थो भवति, किं धुवसेतुनावापरियेसनेन! यदि सकसन्तकेन घासच्छादनं कातुं पहोति, किं परूपसेवनपिय-समुल्लापपच्छापुरेधावनेन! यदि अखाततळाके उदकं लभति, किं उदपानतळाकपोक्खरणि-खणनेन! एवमेव खो, भन्ते नागसेन, यदि गिही अगारिका कामभोगिनो सन्तं परमत्थं निब्बानं सच्छिकरोन्ति, किं धुतगुणवरसमादियनेना'' ति?

५. ''अट्ठवीसति खो पनिमे, महाराज, धुतङ्गगुणा यथाभुच्चगुणा, येहि गुणेहि धुतङ्गानि

था। महाराज! भगवान् अपने जीते-जी तीन मण्डलों में और सोलह महाजनपदों में जहाँ-जहाँ गये, वहाँ वहाँ अनेक देवता और मनुष्यों को निर्वाण तक पहुँचाया। महाराज! ये सभी देवता गृहस्थ ही थे, प्रव्रजित नहीं। महाराज! ये करोड़ों अगणित देवता सभी गृहस्थ के कामसुख भोगते हुए ही निर्वाण पा चुके थे।

४. "भन्ते नागसेन! यदि संसार के कामभोगों को भोगने वाले गृहस्थ भी शान्त परम निर्वाण का साक्षात् कर लेते हैं तो भिक्षु लोग धुताङ्ग-साधन करने के फेर में क्यों पड़े रहते हैं? वैसा होने से धुताङ्ग क्या निरर्थक नहीं ठहरते? भन्ते नागसेन! यदि झाड़-फूँक और औषध के विना ही रोग दूर हो जाते हों तो वमन और विरेचन दे कर शरीर को दुर्बल बनाने से क्या लाभ! यदि मुक्का और घूँसा चला कर ही शत्रु परास्त किया जा सकता है तो तलवार, भाला, तीर-धनुष, लाठी और गदा का क्या कार्य! यदि गाँठ, टेढ़ी-मेढ़ी शाखाएँ, कोटर, काँटे और लता के सहारे ही वृक्ष पर चढ़ा जा सकता हो तो बड़ी सीढ़ी खोजते फिरने से क्या लाभ! यदि कड़ी जमीन पर पड़े रहने से ही अच्छी नींद आ जाती हो ता मसनद-तकिये का क्या लाभ! यदि किसी संकटमय और बीहड़ मार्ग को कोई अकेला पार कर सकता हो तो सजे-धजे सशस्त्र किसी बड़े रक्षकसमूह का क्या प्रयोजन! यदि बहती हुई नदी को कोई तैर कर ही पार कर सकता हो तो नाव या पुल की क्या आवश्यकता! यदि कोई अपने पास के धन से ही सुखपूर्वक अपना भरण-पोषण कर सकता हो तो दूसरे की सेवा में इधर-उधर फिरने से क्या लाभ! यदि प्राकृतिक झरने से ही जल मिल जाता हो तो तालाब, कूए और पुष्करिणी खुदवाने की क्या आवश्यकता! भन्ते नागसेन! इसी तरह, यदि संसार के कामभोगी गृहस्थ भी शान्त परम निर्वाण का साक्षात्कार कर लेते हैं तो कठोर धुताङ्ग साधन करने की उन्हें क्या आवश्यकता है?"

५. "महाराज! धुताङ्ग के यथार्थ में अट्ठाईस गुण हैं, जिन के कारण ये सभी बुद्धों द्वारा अच्छे

सब्बबुद्धानं पिहयितानि पत्थितानि। कतमे अट्ठवीसति? इध, महाराज, धुतङ्गं सुद्धाजीवं सुखफलं अनवज्जं न परदुक्खापनं अभयं असम्पीळनं एकन्तवड्ढितं अपरिहानियं अमायं आरक्खा पत्थितददं सब्बसत्तदमनं संवरहितं पतिरूपं अनिस्सितं विप्पमुत्तं रागक्खयं दोसक्खयं मोहक्खयं मानप्पहानं कुवितक्कच्छेदनं कङ्खावितरणं कोसज्जविद्धंसनं अरतिप्पहानं खमनं अतुलं अप्पमाणं सब्बदुक्खक्खयगमनं। इमे खो, महाराज, अट्ठवीसति धुतङ्गगुणा यथाभुच्चगुणा, येहि गुणेहि धुतङ्गानि सब्बबुद्धानं पिहयितानि पत्थितानि।

"ये खो ते, महाराज, धुतगुणा सम्मा उपसेवन्ति ते अट्ठारसहि गुणेहि समुपेता भवन्ति। कतमेहि अट्ठारसहि? आचारो तेसं सुविसुद्धो होति, पटिपदा सुपूरिता होति, कायिकं वाचिकं सुरक्खितं होति, मनोसमाचारो सुविसुद्धो होति, विरियं सुपग्गहितं होति, भयं वूपसम्मति, अत्तानुदिट्ठि व्यपगता होति, आघातो उपरतो होति, मेत्ता उपट्ठिता होति, आहारो परिञ्ञातो होति, सब्बसत्तानं गरुकतो होति, भोजने मत्तञ्ञू होति, जागरियमनुयुत्तो होति, अनिकेतो होति, यत्थ फासु तत्थ विहारी होति, पापजेगुच्छी होति, विवेकारामो होति, सततं अप्पमत्तो होति। ये ते, महाराज, धुतगुणे सम्मा उपसेवन्ति, ते इमेहि अट्ठारसहि गुणेहि समुपेता भवन्ति।

६. "दस इमे, महाराज, पुग्गला धुतगुणारहा। कतमे दस? सद्धा होति हिरिमा

कहे गये हैं। कौन से अट्ठाईस गुण? महाराज! १. धुताङ्ग पालन करने वाले की जीविका शुद्ध होती है, २. उसका फल सुखद होता है, ३. उसमें कोई बुराई नहीं रहती, ४. वह किसी दूसरे को कष्ट नहीं देता, ५. वह अभय रहता है, ६. उसके द्वारा कोई सताया नहीं जाता, ७. वह धर्म की ओर ही बढ़ता है, ८. वह नीचे नहीं गिर सकता, ९. वह कभी धोखा नहीं देता, १०. वह रक्षा करता है, ११. उससे जो चाहे उसी का लाभ हो सकता है, १२. वह सभी प्राणियों को अपने वश में कर सकता है, १३. वह आत्मसंयम करना सीख सकता है, १४. धुताङ्ग का जीवन भिक्षु के सर्वथा अनुकूल है, १५. वह किसी पर भार नहीं रहता, १६. वह खुला और स्वच्छन्द रहता है, १७. धुताङ्ग सांसारिक राग काट देता है, १८. द्वेष दूर करता है, १९. मोह मिटा देता है, २०. उसमें अभिमान नहीं रह पाता, २१. इससे पाप विचार हट जाता है, २२. शङ्काएँ दूर हो जाती हैं, २३. अकर्मण्यता नहीं रह पाती, २४. असन्तोष नहीं रहता, २५. सहनशक्ति आती है, २६. इसके पुण्य अतुल्य हैं, २७. इसके पुण्य अनन्त हैं, और २८. धुताङ्ग सभी सुखों का अन्त करके निर्वाण तक पहुँचा देता है। महाराज! यही धुताङ्ग के यथार्थ में अट्ठाईस गुण हैं, जिनके कारण वे सभी बुद्धों द्वारा स्पृहणीय (अच्छे) कहे गये हैं।

"महाराज! जो धुताङ्ग का ठीक से पालन करते हैं, वे अठारह गुणों से युक्त हो जाते हैं। किन अठारह गुणों से? महाराज! १. उसका आचार पवित्र और शुद्ध होता है, २. वह मार्ग पार कर लेता है, ३. उसके शरीर और वचन वश में होते हैं, ४. उसका मन पवित्र रहता है, ५. उसका उत्साह बना रहता है, ६. वह निर्भय होता है, ७. उसकी आत्मदृष्टि दूर हो जाती है, ८. उसमें हिंसा का भाव शान्त हुआ रहता है, ९. उसमें मैत्री–भावना सदा बनी रहती है, १०. उसका आहार समझ–बूझ कर होता है, ११. वह सभी जीवों से प्रतिष्ठा पाता है, १२, भोजन उचित मात्रा में करता है, १३. सदा जागरूक रहता है, १४. विना घर–द्वार का होता है, १५. जहाँ अच्छा (सुविधा) देखता है वहीं साधना करता है, १६. पाप से घृणा करता है, १७. विवेक में आनन्दित रहता है, और १८. सतत सावधान रहता है। महाराज! जो धुताङ्ग को ठीक से पालन करते हैं, वे इन्हीं अठारह गुणों से युक्त हो जाते हैं।

धितिमा अकुहो अत्थवसी अलालो सिक्खाकामो दळ्हसमादानो अनुज्झानबहुलो मेत्ताविहारी। इमे खो, महाराज, दस पुग्गला धुतगुणारहा।

७. "ये ते, महाराज, गिही अगारिका कामभोगिनो सन्तं परमत्थं निब्बानं सच्छिकरोन्ति, सब्बे ते पुरिमासु जातीसु तेरससु धुतगुणेसु कतूपासना कतभूमिकम्मा। ते तत्थ चारं च पटिपत्तिं च सोधयित्वा अज्जेतरहि गिही येव सन्ता सन्तं परमत्थं निब्बानं सच्छिकरोन्ति।

८. "यथा, महाराज, कुसलो इस्सासो अन्तेवासिके पठमं ताव उपासनासालायं चापभेदचापारोपनगहणमुट्ठिपटिपीळनअङ्गुलिविनामनपादठपनसरगहणसन्दनआकड्ढनसन्धारण-लक्खनियमनखिपने तिणपुरिसकछकणतिणपलालमत्तिकापुञ्जफलकलक्खवेधे अनुसिक्खा-पेत्वा रञ्ञो सन्तिके उपासनं आराधयित्वा आजञ्ञरथगजतुरङ्गधनधञ्ञहिरञ्ञसुवण्ण-दासिदासभरियगामवरं लभति; एवमेव खो, महाराज, ये ते गिही अगारिका कामभोगिनो सन्तं परमत्थं निब्बानं सच्छिकरोन्ति, ते सब्बे पुरिमासु जातीसु तेरससु धुतगुणेसु कतूपासना कतभूमिकम्मा। ते तत्थेव चारं च पटिपत्तिं च सोधयित्वा अज्जेतरहि गिही येव सन्ता सन्तं परमत्थं निब्बानं सच्छिकरोन्ति। न, महाराज, धुतगुणेसु पुब्बासेवनं विना एकिस्सा येव जातिया अरहत्तं सच्छिकिरिया होति, उत्तमेन पन विरियेन उत्तमाय पटिपत्तिया तथारूपेन आचरियेन कल्याणमित्तेन अरहत्तं सच्छिकिरिया होति।

९. "यथा वा पन, महाराज, भिसक्को सल्लकत्तो आचरियं धनेन वा वत्तप्पटिपत्तिया

---

६. "महाराज! दश प्रकार के लोग धुताङ्ग पालन के योग्य होते हैं। किन दश प्रकार के? जो १. श्रद्धालु, २. पाप करने में सङ्कोची, ३. धैर्यवान्, ४. झूठा दिखावा न करने वाले, ५. अपने उद्देश्य में लगे रहने वाले, ६. निर्लोभ, ७. सीखने के इच्छुक, ८. दृढ़सङ्कल्प, ९. किसी बात से न चिढ़ने वाले और १०. मैत्री भाव रखने वाले होते हैं। महाराज! ये दश प्रकार के लोग धुताङ्ग पालन के योग्य होते हैं।

७. "महाराज! जो कामभोगी गृहस्थ परम शान्त निर्वाणपद पाते हैं, उनने अवश्य अपने पहले जन्मों में तेरह प्रकार के धुताङ्गों का पालन किया होगा। वे अपने पहले जन्मों में आचार और मार्ग शुद्ध करके आज यहाँ गृहस्थ रहते हुए परमार्थ निर्वाणपद साक्षात् कर लेते हैं।

८. "महाराज! जैसे चतुर धनुर्धर पहले अपने शिष्यों को अभ्यास के मैदान में सिखाता है कि कितने प्रकार के धनुष् होते हैं, धनुष् कैसे चढ़ाया जाता है, कैसे पकड़ा जाता है, मुट्ठी कैसे बाँधी जाती है, अङ्गुलियाँ कैसे नवाई जाती हैं, पैर का पैंतरा कैसा होता है, तीर कैसे चढ़ाया जाता है, तीर चढ़ाकर कैसे खींचा जाता है, उसे कैसे संभालना होता है और कैसे लक्ष्य-वेधन होता है। पहले घास के बने हुए मनुष्य या पुआल की गठरी या मिट्टी, या पटरे के बने लक्ष्य का वेध करना सिखाता है। जब वे शिष्य सीख कर तैयार हो जाते हैं, तब उन्हें राजा के सामने उपस्थित करता है। राजा प्रसन्न हो उसे पुरस्कार में अच्छे घोड़े, रथ, हाथी, धन, धान्य, सोना, मौहर, दास, दासी, स्त्री और खेत देता है। महाराज! इसी तरह, जो कामभोगी गृहस्थ परमशान्त निर्वाणपद पाते देखे जाते हैं, उनने अवश्य अपने पहले जन्मों में तेरह धुताङ्गों का पालन किया होगा। वे अपने पूर्वजन्म में आचार और मार्ग शुद्ध कर आज यहाँ गृहस्थ रहते हुए भी परमार्थयुक्त निर्वाण पद साक्षात् कर लेते हैं। महाराज! जिनने अपने पूर्वजन्म में धुताङ्ग का पालन नहीं किया, वे यहाँ केवल एक ही जन्म में अर्हत् नहीं बन सकते। महाराज! सच्ची लगन और मार्ग पर चलने से, वैसे ही योग्य गुरु के मिलने से और वैसे ही मित्रों की सङ्गति होने से निर्वाण मिलता है।

९. "महाराज! जैसे कोई वैद्य या शल्यचिकित्सक पहले किसी गुरु को खोज उसके पास जाता

वा आराधेत्वा सत्थगहणछेदनलेखनवेधनसल्लुद्धरणवणधोवनसोसनभेसज्जानुलिम्पनवमन-विरेचनानुवासनकिरियमनुसिक्खित्वा विज्जासु कतसिक्खो कतूपासनो कतहत्थो आतुरे उपसङ्कमति तिकिच्छाय; एवमेव खो, महाराज, ये ते गिही अगारिका कामभोगिनो सन्तं परमत्थं निब्बानं सच्छिकरोन्ति, ते सब्बे पुरिमासु जातीसु तेरससु धुतगुणेसु कतूपासना कतभूमिकम्मा। ते तत्थेव चारं च पटिपत्तिं च सोधयित्वा अज्जेतरहि गिही येव सन्ता सन्तं परमत्थं निब्बानं सच्छिकरोन्ति। न, महाराज, धुतगुणेहि अविसुद्धानं धम्माभिसमयो होति।

"यथा, महाराज, उदकस्स आसेचनेन बीजानं अविरूहनं होति; एवमेव खो, महाराज, धुतगुणेहि अविसुद्धानं धम्माभिसयो न होति।

"यथा वा पन, महाराज, अकतकुसलानं अकतकल्याणानं सुगतिगमनं न होति; एवमेव खो, महाराज, धुतगुणेहि अविसुद्धानं धम्माभिसमयो न होति।

१०. "पथविसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं पतिट्ठानट्ठेन। आपोसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं सब्बकिलेसमलधोवनट्ठेन। तेजोसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं सब्बकिलेसवनज्झापनट्ठेन। वायोसमं, महाराज, धुतगुणं, विसुद्धिकामानं सब्बकिलेसमल-रजोपवाहनट्ठेन।

"अगदसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं सब्बकिलेसब्याधिवूपसमनट्ठेन। अमत-समं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं सब्बकिलेसविसनासनट्ठेन। खेत्तसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं सब्बसामञ्ञगुणसस्सविरूहनट्ठेन। मनोहरसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं

है। फिर उसे वेतन या अपनी सेवा दे कर सारी विद्या सीखता है— छुरी कैसे पकड़ी जाती है, कैसे चीरा जाता है, कैसे निशान लगाया जाता है, कैसे छुरी भोंकी जाती है, चुभे हुए को कैसे खींच लेना चाहिये, व्रण कैसे धोना चाहिये, उसे कैसे सुखाना चाहिये, उस पर कैसे लेप लगाना चाहिये, रोगी को कैसे वमन या विरेचन कराना चाहिये, कैसे रसायन खिलाना चाहिये! उसके शिष्यत्व में सभी बातें सीखने के बाद ही वह स्वतन्त्र रूप से किसी रोगी की चिकित्सा अपने हाथ में लेता है। महाराज! इसी तरह, जो कामभोगी गृहस्थ परमशान्त निर्वाण-पद पाते देखे जाते हैं, उन्होंने अवश्य अपने पूर्वजन्मों में तेरह धुताङ्गों का पालन किया होगा। वे अपने पूर्वजन्म में आचार और मार्ग शुद्ध कर आज यहाँ गृहस्थ रहते परमार्थ निर्वाण पद साक्षात् कर लेते हैं। महाराज! जिस ने अपने को धुतगुणों से शुद्ध नहीं कर लिया है, उसे धर्म में प्रवेश नहीं मिलता।

"महाराज! जैसे जल मे सींचे विना बीज नहीं जम सकते; वैसे ही धुतगुणों से आत्मशुद्धि किये विना धर्मदर्शन नहीं हो सकता।"

"महाराज! जैसे विना पुण्य किये अच्छी गति नहीं होती; वैसे ही धुतगुणों से आत्मशुद्धि किये विना धर्मदर्शन नहीं हो सकता।

१०. "महाराज! धुताङ्ग मुमुक्षुओं के लिये महापृथ्वी के समान आधार है। धुताङ्ग मुमुक्षुओं के लिये जल के समान क्लेशरूपी मल धोने के काम का है; क्लेश की झाड़ी को जला कर भस्म कर देने वाली अग्नि की तरह है; क्लेश रूपी धूली को उड़ा देने वाली हवा के समान है।

"ये क्लेशरूपी विष को दूर करने वाली औषध के समान है; क्लेशरूपी विष को नाश करने वाले अमृत के समान है; भिक्षु के उपयुक्त गुणों की खेती तैयार करने के लिये खेत के समान है; सभी

पत्थितिच्छितसब्बसम्पत्तिवरददट्ठेन। नावासमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं संसारमहण्णव-पारगमनट्ठेन। भीरुत्ताणसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं जरामरणभीतानं अस्सासकरणट्ठेन।

"मातुसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं किलेसदुक्खप्पटिपीळितानं अनुग्गाहकट्ठेन। पितुसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं कुसलवड्ढिकामानं सब्बसामञ्ञगुणजनकट्ठेन। मित्तसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं सब्बसामञ्ञगुणपरियेसनअविसंवादकट्ठेन।

"पदुमसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं सब्बकिलेसमलेहि अनुपलित्तट्ठेन। चतुज्जातियवरगन्धसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं किलेसदुग्गन्धपटिविनोदनट्ठेन। गिरिराजवरसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं अट्ठलोकधम्मवातेहि अकम्पियट्ठेन। आकाससमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं गहणापगतउरुविसटवित्थतमहन्तट्ठेन। नदीसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं किलेसमलपवाहनट्ठेन। सुदेसकसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं जातिकन्तारकिलेसवनगहननित्थरणट्ठेन।

"महासत्थवाहसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं सब्बभयसुञ्ञखेमअभयवरपवर-निब्बाननगरसम्पापनट्ठेन। सुमज्जितविमलादाससमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं सङ्खारानं सभावदस्सनट्ठेन। फलकसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं किलेसलगुळसरसत्ति-पटिबाहनट्ठेन। छत्तसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं किलेसवस्सतिविधग्गिसन्तापात-पपटिबाहनट्ठेन।

"चन्दसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं पियहितपत्थितट्ठेन। सुरियसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं मोहतमतिमिरनासनट्ठेन। सागरसमं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं अनेकविधसामञ्ञगुणवररतनुट्ठानट्ठेन, अपरिमितमसङ्खेय्यअप्पमेय्यट्ठेन च।

लाभ देने वाली मणि के समान है; भवसागर को पार करने के लिये नाव के समान है; जरा–मरण से डरे हुये लागों के लिये शरणस्थल के समान है।

"ये क्लेशपीड़ित लोगों को बचाने वाली माता के समान है; पुण्य कमाने वालों के लिये सभी भिक्षु–गुणों को पैदा करने वाले पिता के समान है; भिक्षु के उपयुक्त गुणों को खोज कर ला देने वाले मित्र के समान हैं।

"ये क्लेशमलों से लिप्त न होने वाले कमल के समान है; क्लेश की दुर्गन्ध को दूर करने वाले इत्र गुलाब की तरह है; आठ प्रकार की सांसारिक वायु से न हिलने वाले पर्वतराज के समान है; सर्वथा स्वच्छन्द और स्वतन्त्र बना देने वाले आकाश के समान है; क्लेश–मल को बहा कर ले जाने वाली नदी के समान है; क्लेश के जङ्गल और आवागमन की मरुभूमि से बाहर निकलने योग्य मार्ग बताने वाले (पथप्रदर्शक) है।

"निर्वाण नगर तक पहुँचा देने वाले निर्भय और साथ देने वाले समूह के समान है; संस्कारों के सच्चे स्वभाव को दिखा देने वाले साफ दर्पण के समान है; क्लेश की तलवार और लाठी के प्रहार को रोकने के लिये ढाल के समान है।

"त्रिविध ताप को ठण्ढा करने वाले चन्द्र के समान है; मोहरूपी अन्धकार को नाश करने वाले सूर्य के समान है; श्रामण्यगुण रूपी रत्नों के लिये महासागर के समान है; क्योंकि वह इतना अनन्त गम्भीर और महान् है।

११. "एवं, महाराज, धुतगुणं विसुद्धिकामानं बहूपकारं सब्बदरथपरिळाहनुदं अरतिनुदं भयनुदं भवनुदं खीलनुदं मलनुदं सोकनुदं दुक्खनुदं रागनुदं दोसनुदं मोहनुदं माननुदं दिट्ठिनुदं सब्बाकुसलधम्मनुदं यसावहं हितावहं सुखावहं फासुकरं पीतिकरं योगक्खेमकरं, अनवज्जं इट्ठसुखविपाकं गुणरासिगुणपुञ्जअपरिमितमप्पमेय्यगुणं वरं पवरं अग्गं।

१२. "यथा, महाराज, मनुस्सा उपत्थम्भवसेन भोजनं उपसेवन्ति, हितवसेन भेसज्जमुपसेवन्ति, उपकारवसेन मित्तं उपसेवन्ति, तारणवसेन नावं उपसेवन्ति, सुगन्धवसेन मालागन्धं उपसेवन्ति, अभयवसेन भीरुत्ताणं उपसेवन्ति, पतिट्ठानवसेन पठविं उपसेवन्ति, सिप्पवसेन आचरियं उपसेवन्ति, यसवसेन राजानं उपसेवन्ति, कामददवसेन मणिरतनं उपसेवन्ति; एवमेव खो, महाराज, सब्बसामञ्ञगुणददवसेन अरिया धुतगुणं उपसेवन्ति।

१३. "यथा वा पन, महाराज, उदकं बीजविरूहनाय, अग्गि झापनाय, आहारो बलाहरणाय, लता बन्धनाय, सत्थं छेदनाय, पानीयं पिपासविनयनाय, निधि अस्सासकरणाय, नावा तीरसम्पापनाय, भेसज्जं ब्याधिवूपसमनाय, यानं सुखगमनाय, भीरुत्ताणं भयविनोदनाय, राजा आरक्खत्थाय, फलकं दण्डलेड्डुलगुळसरसत्तिपटिबाहनाय, आचरियो अनुसासनाय, माता पोसनाय, आदासो ओलोकनाय, अलङ्कारो सोभनाय, वत्थं पटिच्छादनाय, निस्सेणी आरोहणाय, तुला विसमविक्खेपनाय, मन्तं परिजपनाय, आवुधं तज्जनियपटिबाहनाय, पदीपो अन्धकारविधमनाय, वातो परिळाहनिब्बापनाय, सिप्पं वुत्तिनिप्फादनाय, अगदं जीवितरक्खणाय, आकरो रतनुप्पादनाय, रतनं अलङ्काराय, आणा अनतिक्कमनाय, इस्सरियं वसवत्तनाय; एवमेव

---

११. "महाराज! इस तरह, विशुद्धि (निर्वाण) के इच्छुक साधक के लिये धुताङ्ग–व्रत बहुत उपकारक होता है; सभी कष्ट, सन्ताप, असन्तोष और भय दूर कर देता है; भव (संसार में बने रहना) मिटा देता है; मन के सभी मल हटा देता है; शोक, दुःख, राग, द्वेष, मोह, अभिमान, आत्मदृष्टि और सभी पापों को नष्ट कर देता है। धुताङ्ग यश बढ़ाता है, हित करता है, सुख देता है, आराम देता है, प्रीति उत्पन्न करता है, कुशल–मङ्गल लाता है; और निर्दोष, अच्छे फल वाले सद्गुणों का समूह, अनन्त और अगाध श्रेष्ठ गुण देता है।"

१२. "महाराज! जैसे मनुष्य शरीर–धारण के लिये भोजन करते हैं, स्वस्थ होने के लिये औषध का सेवन करते हैं, उपकार पाने के लिये मित्र का साथ लेते हैं, पार जाने के लिये नाव पर सवार होते हैं, सुगन्ध के लिये माला और इत्र लगाते हैं, भय से बचने के लिये किसी शरणस्थल पर जाते हैं, यश के लिये राजा की सेवा करते हैं, यथेच्छ वर पाने के लिये मणिरत्न धारण करते हैं; वैसे ही अच्छे लोग भिक्षुजीवन सार्थक बनाने के लिये धुताङ्गव्रत का पालन करते हैं।

१३. "महाराज! जैसे जल बीज जमाने के लिये, अग्नि जलाने के लिये, भोजन शरीर में बल लाने के लिये, लता बाँधने के लिये, शस्त्र काटने के लिये, जल प्यास बुझाने के लिये, कोश उत्साह देने के लिये, नाव उस पार ले जाने के लिये, औषध रोग की चिकित्सा के लिये, सवारी सुखपूर्वक रास्ता पार करने के लिये, शरणस्थल भय से बचाने के लिये, राजा रक्षा करने के लिये, ढाल लाठी, ढेला, तीर, भाला की चोट को रोकने के लिये, गुरु पढ़ाने के लिये, माता पालन–पोषण के लिये, दर्पण मुख देखने के लिये, अलङ्कार शोभा के लिये, वस्त्र शरीर ढँकने के लिये, सीढ़ी छत पर चढ़ने के लिये, तराजू तौलने के लिये, मन्त्र जप करने के लिये, शस्त्र दूसरे की धमकी से बचने, दीपक अन्धकार दूर करने, वायु गर्मी को दूर करने, कला जीविका कमाने, औषध जीवन बचाने, खान रत्न पैदा करने, रत्न शोभा

खो, महाराज, धुतगुणं सामञ्ञबीजविरूहनाय, किलेसमलझापनाय, इद्धिबलाहरणाय, सतिसंवरनिबन्धनाय, विमतिविचिकिच्छासमुच्छेदनाय, तण्हापिपासाविनयनाय, अभिसमय-अस्सासकरणाय, चतुरोघनित्थरणाय, किलेसब्याधिवूपसमाय, निब्बानसुखप्पटिलाभाय, जातिजराब्याधिमरणसोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासभयविनोदनाय, सामञ्ञगुणपरिरक्खणाय, अरतिकुवितक्कपटिबाहनाय, सकलसामञ्ञत्थानुसासनाय, सब्बसामञ्ञगुणपोसनाय, समथविपस्सनामग्गफलनिब्बानदस्सनाय, सकललोकथुतथोमितमहतिमहासोभनकरणाय, सब्बापायपिदहनाय, सामञ्ञत्थसेलसिखरमुद्धनि अभिरूहनाय, वङ्ककुटिलविसमचित्त-निक्खेपनाय, सेवितब्बासेवितब्बधम्मे साधु सज्झायकरणाय, सब्बकिलेसपटिसत्तुतज्जनाय, अविज्जन्धकारविधमनाय, तिविधग्गिसन्तापपरिळाहनिब्बापनाय, सण्हसुखुमसन्तसमापत्ति-निप्फादनाय, सकलसामञ्ञगुणपरिरक्खणाय, बोज्झङ्गवररतनुप्पादनाय, योगिजनालङ्करणाय, अनवज्जनिपुणसुखमसन्तिसुखुमनतिक्कमनाय, सकलसामञ्ञअरियधम्मवसवत्तनाय। इति, महाराज, इमेसं गुणानं अधिगमाय यदिदं एकमेकं धुतगुणं; एवं, महाराज, अतुलियं धुतगुणं अप्पमेय्यं असमं अप्पटिभागं अप्पटिसेट्ठं उत्तरं सेट्ठं विसिट्ठं अधिकं आयतं पुथुलं विसटं वित्थतं गरुकं भारियं महन्तं।

१४. "यो खो, महाराज, पुग्गलो पापिच्छो इच्छापकतो कुहको लुद्धो ओदरिको लाभकामो यसकामो कित्तिकामो अयुत्तो अप्पत्तो अननुच्छविको अनरहो अप्पतिरूपो धुतङ्गं समादियति, सो दिगुणं दण्डमापज्जति सब्बगुणघातमापज्जति, दिट्ठधम्मिकं हीळनं खीळनं गरहनं उप्पण्डनं खिपनं असम्भोगं निस्सारणं निच्छुभनं पवाहनं पब्बाजनं पटिलभति, सम्पराये

देने, आज्ञा पालन करने और ऐश्वर्य दूसरों को वश में करने के लिये है; वैसे ही धुताङ्ग-व्रत श्रामण्यरूपी बीज को जमाने, क्लेशरूपी मल को जला देने, ऋद्धिबल पाने, स्मृति और संयम को बाँधने, भ्रम और शंका को काटने, तृष्णा की प्यास बुझाने, ज्ञान का साक्षात्कार करने, पक्का विश्वस्त स्थान, चार गहरी धार को पार कर जाने, क्लेश रूपी रोग शान्त करने, निर्वाण-सुख पाने, जन्म-लेना, बूढ़ा होने, रोगी हो जाना, मर जाना, शोक, रोना-पीटना, दुःख, बेचैनी और परेशानी के भय से बचने, श्रामण्य-गुणों की रक्षा करने, असन्तोष और अशुभ विचार को रोकने, श्रमण-जीवन की सभी बातों को सीखने, उनका पालन करने, शमथ, विपश्यना, मार्गफल और निर्वाण को देखने, सारे संसार में अच्छी सुन्दर शोभा करने, सभी नरकों को ढँक देने, श्रामण्यफलरूपी पर्वतशिखर पर चढ़ने, टेढ़े और नीच चित्त को तोलने, कुशल धर्मों की चिन्ता में लगे रहने, क्लेश रूपी शत्रुओं को दूर हटाने, अविद्यान्धकार को मिटाने, त्रिविध अग्नि के सन्ताप को ठण्डा करने, ऊँचे सूक्ष्म और शान्त समापत्ति, सभी श्रामण्य-गुणों की रक्षा करने, बोध्यङ्गरूपी श्रेष्ठ रत्न पैदा करने, योगि-जनों के अलङ्कार, निदोर्ष निपुण सूक्ष्म शान्ति-पद पाने तथा श्रामण्यभाव और आर्यधर्म वश में करने के लिये है। महाराज! एक एक धुताङ्ग इन सभी गुणों की प्राप्ति के लिये है। महाराज! इस तरह धुताङ्ग के गुण अतुल्य हैं, अनन्त हैं, अनुपम हैं,..... गम्भीर, श्रेष्ठ और महान् हैं।

१४. "महाराज! जो पापेच्छु, अपनी इच्छाओं के अधीन, कृत्रिमता रखने वाला, लोभी, पेटू, संसार की चीजों के पाने का इच्छुक, यश पाने के लिये व्याकुल रहने वाला, नाम बढ़ाने के भ्रम में रहने वाला, अयोग्य, जो कुछ भी अच्छा फल नहीं पा सकता, अनुचित व्यवहार वाला, अयोग्य और बेढंगा

पि सतयोजनिके अवीचिमहानिरये उण्हकठिततत्तसन्तत्तअच्चिजालामालके अनेकवस्सकोटिसतसहस्सानि उद्धमधो तिरियं फेणुदेहकं सम्परिवत्तकं पच्चति, ततो मुच्चित्वा किसफरुसकाळङ्गपच्चङ्गो सूनुद्धुमातसुसिरुत्तमङ्गो छातो पिपासितो विसमभीरूपवण्णो भग्गकण्णसोतो उम्मीलितनिमीलितनेत्तनयनो अरुगत्तपक्कगत्तो पुलवाकिण्णसब्बकायो, वातमुखे जलमानो विय अग्गिक्खन्धो अन्तो जलमानो पज्जलमानो, अत्ताणो असरणो आरुण्णरुण्णकारुञ्ञरवं परिदेवमानो निज्झामतण्हिको समणमहापेतो हुत्वा आहिण्डमानो महिया अट्टस्सरं करोति।

१५. "यथा, महाराज, कोचि अयुत्तो अप्पत्तो अननुच्छविको अनरहो अप्पतिरूपो हीनो कुजातिको खत्तियाभिसेकेन अभिसिञ्चति, सो लभति हत्थच्छेदं पादच्छेदं हत्थपादच्छेदं कण्णछेदं नासच्छेदं कण्णनासच्छेदं बिलङ्गथालिकं, सङ्खमुण्डिकं राहुमुखं जोतिमालिकं हत्थपज्जोतितं एरकवत्तिकं, चीरकवासिकं एणेय्यकं बळिसमंसिकं कहापणकं खारापतच्छिकं पळिघपरिवत्तिकं पलालपीठकं, तत्तेन तेलेन ओसिञ्चनं, सुनखेहि खादितं, जीवसूलारोपनं, असिना सीसच्छेदनं, अनेकविहितं पि कम्मकारणं अनुभवति। किं कारणं? अयुत्तो अप्पत्तो अननुच्छविको अनरहो अप्पतिरूपो हीनो कुजातिको महन्ते इस्सरिये ठाने अत्तानं ठपेसि, वेलं घातेसि; एवमेव खो, महाराज, यो कोचि पुग्गलो पापिच्छा.... पे०.... महिया अट्टस्सरं करोति।

मनुष्य यदि धुताङ्ग व्रत ले लेता है, वह दुगुना दण्ड पाता है और अपने जो पहले के अच्छे गुण रहते हैं, उन्हें भी नष्ट कर देता है। तब लोग उसकी अप्रतिष्ठा (अपमान) करते हैं, खिल्ली उड़ाते हैं, निन्दा करते हैं, उसे रोक देते हैं, निकाल बाहर करते हैं,....हटा देते हैं, भगा देते हैं, दुरदुरा देते हैं। वह दूसरे जन्म में भी सौ योजन तक फैले अवीचि नरक की गर्म तपी हुई अग्नि की लपटों में पड़ा हुआ लाखों, करोड़ों वर्षों तक ऊपर–नीचे और टेढ़े–मेढ़े फेन की तरह उठ–उठ कर पचता रहता है। जब वहाँ से छूटता है तो एक बड़े प्रेत के समान– ऊपर से देखने में भिक्षु के समान, शरीर और अङ्ग–प्रत्यङ्ग से काला और दुबला–पतला, शिर फूला हुआ, सूजा हुआ और नानाछिद्रयुक्त– उत्पन्न होकर भूख–प्यास से सदा व्याकुल रहता है। देखने में वह बड़ा कुरूप और डरावना होता है; उसके कान फटे होते हैं, उसकी आँखें मिचमिचाती रहती हैं; उसका सारा शरीर विकृत रक्त से भर कर पक जाता है; व्रण पड़ जाते हैं; हवा में धधकती हुई अग्नि के समान उसका पेट जलता रहता है, और उसका मुँह सूई की नोक के बराबर होता है, जिससे उसकी प्यास कभी नहीं बुझ सकती। वह किसी शरणस्थल पर भी भाग कर नहीं जा सकता। उसको बचाने वाला कोई भी सहायक नहीं मिलता। करुणापूर्वक रोता है और क्रन्दन करता है। इस तरह, वह श्रमण महाप्रेत हो कर संसार में रोते–कलपते भटकता रहता है।

१५. "महाराज! यदि कोई निष्कर्म, बेकार, बुरा, अयोग्य और नीच जाति का छोटा आदमी राजगद्दी पर बैठ जाय तो वह दण्ड भोगेगा– उसका हाथ काट लिया जायगा; पैर, हाथ या हाथ–पैर दोनों, कान, नाक या नाक–कान दोनों काट लिये जायेंगे; बिलङ्गथालिक, शङ्खमुण्डिक, राहुमुख, ज्योतिर्मालिका, हस्तप्रद्योतिका, एरकवर्तिका, चीरकवासिका, एणेय्यक, बड़िसमंसिक, कहापणक, खारापतच्छिक, पलिघपलिवर्तिक, पलालपीठक इत्यादि राजदण्ड दिये जायेंगे; गर्म तैल भी उस पर छिड़का जायगा; कुत्तों से भी नुचवा दिया जायगा; सूली पर भी चढ़ा दिया जायगा; तलवार से उसका शिर उड़ा दिया जायगा; और भी तरह–तरह के दुःख भोगेगा। इसका क्या कारण है? इसका कारण यही है कि वह इतना निकम्मा, बेकार, बुरा, अयोग्य और नीच जाति का छोटा आदमी हो कर भी इतने बड़े

''यो पन, महाराज, पुग्गलो युत्तो पत्तो अनुच्छविको अरहो पतिरूपो अप्पिच्छो सन्तुट्ठो पविवित्तो असंसट्ठो आरद्धविरियो पहितत्तो असठो अमायो अनोदरिको अलाभकामो अयसकामो अकित्तिकामो सद्धो सद्धापब्बजितो जरामरणमुञ्चितुकामो 'सासनं पग्गण्हिस्सामी' ति धुतङ्गं समादियति, सो दिगुणं पूजं अरहति, देवानं च मनुस्सानं च पियो होति, मनापो पिहयितो पत्थितो, जातिसुमनमल्लिकादीनं विय पुप्फं नहातानुलित्तस्स, जिघच्छितस्स विय पणीतभोजनं, पिपासितस्स विय सीतलविमलसुरभिपानीयं, विसगतस्स विय ओसधवरं, सीघगमनकामस्स आजञ्ञरथवरुत्तमं, अत्थकामस्स विय मनोहरमणिरतनं, अभिसिञ्चितुकामस्स विय पण्डरविमलसेतच्छत्तं, धम्मकामस्स विय अरहत्तफलादिगमनमनुत्तरं। तस्स चत्तारो सतिपट्ठाना भावनापारिपूरिं गच्छन्ति, चत्तारो सम्मप्पधाना, चत्तारो इद्धिपादा, पञ्चिन्द्रियानि पञ्चबलानि, सत्त बोज्झङ्गा, अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो भावनापारिपूरिं गच्छति, समथविपस्सना अधिगच्छति, अधिगमपटिपत्तिं परिणमति, चत्तारि सामञ्ञफलानि चतस्सो पटिसम्भिदा तिस्सो विज्जा छळभिञ्ञा केवलो च समणधम्मो सब्बे तस्साधेय्या होन्ति, विमुत्तिपण्डर-विमलसेतच्छत्तेन अभिसिञ्चति।

''यथा, महाराज, रञ्ञो खत्तियस्स अभिजातकुलीनस्स खत्तियाभिसेकेन अभिसित्तस्स परिचरन्ति नगरङ्गनेगमजानपदभटबला, अट्ठतिंसा च राजपरिसा नटनच्चका मुखमङ्गलिका सोत्थिवाचका समणब्राह्मणसब्बपासण्डगणा अभिगच्छन्ति, यं किञ्चि पथविया पट्टनरतनाकर-

---

ऊँचे राजपद पर पहुँच गया था। उसने सीमा का उल्लङ्घन कर दिया था। महाराज! इसी तरह, जो पापेच्छु, अपनी इच्छाओं के अधीन....पूर्ववत्....इस तरह, वह संसार में रोते-कलपते भटका करता है।

"महाराज! और, इसके विपरीत जो पुरुष योग्य, भला, अच्छा, कुशल अच्छे आचार वाला, अल्पेच्छ, सन्तुष्ट, एकान्त में समय बिताने वाला, सांसारिक भोगों में लिप्त न रहने वाला, उत्साहयुक्त, आत्मसंयमी, दुष्टता और ठगी से दूर, जो पेटू नहीं है, लाभ के ही फेर में न पड़ा रहने वाला, नाम के पीछे न दौड़ने वाला, श्रद्धालु, सच्ची लगन से प्रव्रजित होने वाला, जरामरण से मुक्त होने का इच्छुक, शासन में दृढ़ बने रहने के संकल्प से धुताङ्ग व्रत का पालन करता है– वह द्विगुण पूजा का भागी होता है, देवताओं और मनुष्यों का प्रिय होता है, उनसे सम्मान और प्रतिष्ठा पाता है, नहाये धोये आदमी के लिये मल्लिका के फूल के समान होता है, भूखे के लिये स्वादिष्ठ भोजन के समान होता है, प्यासे के लिये निर्मल और सुगन्धित शीतल जल के समान होता है, विष खाये आदमी के लिये अगद समान होता है, शीघ्र जाने को इच्छा रखने वाले के लिये तेज घोड़ों वाले रथ के समान होता है, धन चाहने वाले के लिये यथेच्छ वर देने वाले मणिरत्न के समान है, अभिषेक पाने वाले के लिये निर्मल श्वेत-छत्र के समान होता है, धर्म की इच्छा रखने वाले के लिये अनुत्तर अर्हत्फल की प्राप्ति के समान है, उसे चारों स्मृतिप्रस्थानों की साधनायें सिद्ध हो जाती हैं, चारों सम्यक्प्रधान, चारों ऋद्धिपाद, पाँच इन्द्रियाँ, पाँच बल, सात बोध्यङ्ग, आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग सभी पूरे हो जाते हैं, शमथ और विपश्यना भी प्राप्त हो जाती है, स्वाध्याय सफल हो जाता है। चार श्रामण्यफल, चार प्रतिसंविदायें, तीन विद्यायें, छह अभिज्ञायें और श्रमण के सभी धर्म उसके अपने हो जाते हैं। विमुक्ति के निर्मल श्वेत छत्र के नीचे मानों उसका अभिषेक हो जाता है।

"महाराज! जैसे ऊँचे कुल के क्षत्रिय का राज्याभिषेक हो जाने के बाद नगर और ग्राम की प्रजा, सिपाही और चपरासी सभी उसकी सेवा में लगे रहते हैं। अड़तीस अधिकारियों की सभा, नट और नर्तक, मङ्गलवाचक, स्वस्ति-पाठ करने वाले, श्रमण, ब्राह्मण और तरह-तरह के लोग, उसके पास

नगरसुङ्कट्ठानवेरज्जकछेज्जभोज्जजनमनुसासनं सब्बत्थ सामिको भवति; एवमेव खो, महाराज, यो कोचि पुग्गलो युत्तो पत्तो....पे०.... विमुत्तिपण्डरविमलसेतच्छत्तेन अभिसिञ्चति।

१६. तेरसिमानि, महाराज, धुतङ्गानि येहि सुद्धिकतो निब्बानमहासमुद्दं पविसित्वा बहुविधं धम्मकीळमभिकीळति, रूपारूपअट्ठसमापत्तियो वळञ्जेति, इद्धिविधं दिब्बसोतधातुं परचित्तविजाननं पुब्बेनिवासानुस्सतिं दिब्बचक्खुं सब्बासवक्खयं च पापुणाति। कतमे तेरस ? पंसुकूलिकङ्गं, तेचीवरिकङ्गं, पिण्डपातिकङ्गं, सपदानचारिकङ्गं, एकासनिकङ्गं, पत्तपिण्डिकङ्गं, खलुपच्छाभत्तिकङ्गं, आरञ्ञिकङ्गं, रुक्खमूलिकङ्गं, अब्भोकासिकङ्गं, सोसनिकङ्गं,

---

उपस्थित रहते हैं। पृथ्वी में जितने बन्दरगाह, रत्न की खान, नगर और चुंगी उगाहने के स्थान हैं, सभी का वह स्वामी तथा परदेशी और अपराधी लोगों का एकमात्र भाग्यविधाता हो जाता है। महाराज! इसी तरह, जो पुरुष योग्य, भला, अच्छा.... विमुक्ति के निर्मल श्वेत छत्र के नीचे मानों उसका अभिषेक हो जाता है।

१६. "महाराज! तेरह प्रकार के धुताङ्ग हैं जिनसे शुद्ध हो कर भिक्षु निर्वाणरूपी महासमुद्र में अनेक प्रकार से धर्म के हिलोरे ले कर आनन्द मानता है; रूप और अरूप आठ प्रकार की समाधियों का लाभ करता है; सभी ऋद्धियाँ प्राप्त कर लेता है, सुनने की दिव्य शक्ति आ जाती है, दूसरों के चित्त की बात भी जान लेता है, पूर्वजन्म की बातें स्मरण हो जाती हैं, दिव्य चक्षु प्राप्त हो जाता है, और सभी आस्रव क्षीण हो जाते हैं। वे तेरह धुताङ्ग कौन से हैं? १. पंसुकूलिकङ्ग[1] (पांशुकूलिकाङ्ग), २. तेचीवरिकङ्ग[2] (त्रैचीवरिकाङ्ग), ३. पिण्डपातिकङ्ग[3] (पिण्डपातिकाङ्ग), ४. सपदानचारिकङ्ग[4] (सापदानचारिकाङ्ग), ५. एकासनिकङ्ग[5] (ऐकाशनिकाङ्ग), ६.पत्तपिण्डिकङ्ग[6] (पात्रपिण्डिकाङ्ग), ७. खलुपच्छाभत्तिकङ्ग[7] (खलुपश्चाद्भक्तिकाङ्ग), ८. आरञ्ञिकङ्ग[8] (आरण्यकाङ्ग), ९.रुक्खमूलिकङ्ग[9] (वृक्षमूलिकाङ्ग),

---

१. पांशु का अर्थ है धूल। सड़क, श्मशान या कूड़ा-कर्कट के ढेर पर जहाँ-तहाँ धूल में पड़े वस्त्र 'पांशकूल' कहलाते हैं, उन्हें धारण करने वाला 'पांशुकूलिक' कहलाता है। इसका अंग (नियम) 'पांशुकूलिकाङ्ग' कहलाता है।

(जो भिक्षु पांशुकूलिकाङ्ग धारण करता है, उसे १. 'गृहस्थों द्वारा दिये गये चीवर को त्यागता हूँ', या २. 'पांशुकूलिकाङ्ग ग्रहण करता हूँ'— इन दोनों में से एक का अधिष्ठान करना चाहिये)

२. भिक्षु के तीन वस्त्र (चीवर)होते हैं— (क) सङ्घाटि, (ख) उत्तरासङ्ग, (ग) अन्तर्वासक। जो भिक्षु इन तीन वस्त्रों से अधिक ग्रहण नहीं करता, उसे 'त्रैचीवरिक' कहते हैं। उसका यह धुताङ्ग 'त्रैचीवरिकाङ्ग' कहलाता है।

३. भिक्षा के रूप में प्राप्त अन्न या दूसरों के द्वारा दिया हुआ अन्न 'पिण्डपात' कहलाता है। जो पिण्डपात के लिये घर-घर घूमता है उसे, 'पैण्डपातिक' कहते हैं। उसका यह धुताङ्ग 'पैण्डपातिकाङ्ग' कहलाता है।

४. ग्राम में विना अन्तर डाले प्रत्येक घर से भिक्षा ग्रहण करने वाला 'सापदानचारिक' कहलाता है। इसका यह अङ्ग 'सापदानचारिकाङ्ग' कहलाता है।

५. एक आसन पर बैठ कर भोजन करने वाला (अर्थात् दिन रात में एक बार भोजन करने वाला) भिक्षु 'ऐकासनिक' कहलाता है। उसका यह व्रत 'ऐकासनिकाङ्ग' कहलाता है।

६. भिक्षार्थ गृहीत पात्र में पड़ा हुआ अन्न 'पात्रपिण्ड' कहलाता है। उस पात्रपिण्ड को ही ग्रहण करने वाले भिक्षु के इस व्रत को 'पात्रपिण्डिकाङ्ग' कहते हैं।

७. 'खलु' इस निपात का प्रयोग यहाँ निषेध अर्थ में है, एक बार भोजन करने के बाद मिले भोजन का निषेध करना 'खलुपश्चाद्भक' और इस नियम का पालन 'खलुपश्चाद्भक्तिकाङ्ग' कहलाता है।

८. आरण्यकाङ्ग का अर्थ है— अरण्य (जंगल) में रहने वाला। जो भिक्षु ग्राम या नगर में शयनासन छोड़कर जंगल में रहने का ही नियम धारण करता है, उसका यह नियम 'आरण्यकाङ्ग' कहलाता है।

९. ईंट, पत्थर, तृण आदि से बने गृह, कुटी आदि को छोड़कर केवल वृक्ष के नीचे रहना 'वृक्षमूल' कहलाता है। इस नियम को धारण करने वाला भिक्षु 'वृक्षमूलिक' कहलाता है। इसके इस धुताङ्ग को 'वृक्षमूलिकाङ्ग' कहते हैं।

यथासन्थतिकङ्गं, नेसज्जिकङ्गं। इमेहि खो, महाराज, तेरसहि धुतगुणेहि पुब्बे आसेवितेहि निसेवितेहि चिण्णेहि परिचिण्णेहि चरितेहि उपचरितेहि परिपूरितेहि केवलं सामञ्ञं पटिलभति, तस्साधेय्या होन्ति केवला सन्ता सुखा समापत्तियो।

"यथा, महाराज, सधनो नाविको पट्टने सुट्ठु कतसुङ्को महासमुद्दं पविसित्वा वङ्गं तक्कोलं चीनं सोवीरं सुरट्ठं अलसन्दं कोलपट्टनं सुवण्णभूमिं गच्छति, अञ्ञं पि यं किञ्चि नावासञ्चरणं; एवमेव खो, महाराज, इमेहि तेरसहि धुतगुणेहि पुब्बे आसेवितेहि निसेवितेहि चिण्णेहि परिचिण्णेहि चरितेहि उपचरितेहि परिपूरितेहि केवलं सामञ्ञं पटिलभति, तस्साधेय्या होन्ति केवला सन्ता सुखा समापत्तियो।

१७. "यथा, महाराज, कस्सको पठमं खेत्तदोसं तिणकट्ठपासाणं अपनेत्वा कसित्वा वपित्वा सम्मा उदकं पवेसेत्वा रक्खित्वा गोपेत्वा लवनमद्दनेन बहुधञ्ञको होति, तस्साधेय्या भवन्ति ये केचि अधना कपणा दलिद्दा दुग्गतजना; एवमेव खो, महाराज, इमेहि तेरसहि धुतगणेहि पुब्बेहि आसेवितेहि.... पे०.... केवला सन्ता सुखा समापत्तियो।

१८. "यथा वा पन, महाराज, खत्तिया मुद्धावसित्तो अभिजातकुलकुलीनो छेज्जभेज्जजनमनुसासने इस्सरो होति वसवत्ती सामिको इच्छाकरणो, केवला च महापठवी तस्साधेय्या होति; एवमेव खो, महाराज, इमेहि तेरसहि धुतगुणेहि पुब्बे आसेवितेहि निसेवितेहि

---

१०. अब्भोकसिकङ्ग[1] (आभ्यवकाशिकाङ्ग), ११. सोसनिकङ्ग[2] (श्मशानिकाङ्ग), १२. यथासन्थरिकङ्ग[3] (यथासंस्तरिकाङ्ग), १३. नेसज्जिकङ्ग[4] (नैपद्यकाङ्ग) महाराज! इन तेरह धुताङ्ग–व्रतों का पालन करने से श्रमण फल मिल जाता है। शान्तसुखसमापत्ति निर्वाण उसका अपना हो जाता है।

"महाराज! जैसे यात्रियों से शुल्क (किराया) ले ले कर धनी बना कोई बन्दरगाह का जहाजी व्यापारी महासमुद्र में पैठ कर वङ्ग, तक्कोल, चीन, सौवीर, सुराष्ट्र, अलसन्द, कोलपट्टन, या सुवर्णभूमि कहीं भी चला जाता है; वैसे ही श्रमण इन तेरह धुताङ्ग व्रतों का पालन करके फल पा लेता है, और शान्तसुखसमापत्ति निर्वाण पर उसका अधिकार हो जाता है।

१७. "महाराज! जैसे किसान पहले कंकड़–पत्थर और घास–फूस (कूड़ा) दूर करता है, फिर जोत कर, बोकर, पटा कर, रखवाली कर, कटनी और दौनी कर बहुत धान इकट्ठा कर लेता है, और तब सभी निर्धन, दरिद्र और दुर्गत पुरुष उसके अधीन हो जाते हैं; वैसे ही इन तेरह धुताङ्ग व्रतों का पालन कर वह श्रमण सभी फल पा लेता है, और शान्त, सुखसमापत्ति निर्वाण का अधिकारी हो जाता है।

१८. "महाराज! जैसे राजपरिवार का क्षत्रिय राज्याभिषेक पाने के बाद अपराधियों को कैसा भी दण्ड देने में समर्थ होता है, अपनी इच्छा के अनुसार दूसरों पर शासन करता है और तब सारी पृथ्वी

---

१. छाये हुए गृह, कुटी या वृक्षमूल को छोड़ खुले आकाश में नीचे रहने के व्रत को 'आभ्यवकाशिकाङ्ग' कहते हैं।

२. इसी तरह उपर्युक्त वासयोग्य स्थानों को छोड़कर एकमात्र श्मशान में रहने के व्रत को 'श्मशानिकाङ्ग' कहते हैं।

३. 'यह आसन आपके लिये है'— यह कहकर पहले से बिछाये आसन को ही ग्रहण करने वाला भिक्षु 'यथासंस्तरिक' कहलाता है। इसके इस नियम को 'यथासंस्तरिकाङ्ग' कहते हैं।

४. सोना, टहलना, खड़ा होना और बैठना–भिक्षु के ये चार 'ईर्यापथ' कहे गये हैं। इनमें से सोना छोड़कर सर्वदा (दिन–रात) बैठा रहने वाला भिक्षु 'नैपद्यक' और इस व्रत का पालन करना 'नैपद्यकाङ्ग' कहलाता है।

(विस्तार के लिये द्र०–विसु० म०, द्वि० प०)

चिण्णेहि परिचिण्णेहि चरितेहि उपचरितेहि परिपूरितेहि जिनसासनवरे इस्सरो होति वसवत्ती सामिको इच्छाकरणो, केवला च समणगुणा तस्साधेय्या होन्ति।

१९. "ननु, महाराज, थेरो उपसेनो वङ्गन्तपुत्तो सल्लेखधुतगुणे परिपूरिकारिताय अनादियित्वा सावत्थिया सङ्घस्स कतिकं सपरिसो नरदम्मसारथिं पटिसल्लानगतं उपसङ्कमित्वा भगवतो पादे सिरसा वन्दित्वा एकमन्तं निसीदि। भगवा च तं सुनिवनीतं परिसं ओलोकेत्वा हट्ठतुट्ठो पमुदितो उदग्गो परिसाय सद्धिं सल्लापं सल्लपित्वा असम्भिन्नेन ब्रह्मस्सरेण एतदवोच— 'पासादिका खो पन त्यायं, उपसेन, परिसा, कथं त्वं, उपसेन, परिसं विनेसी' ति? सोपि सब्बञ्ञुना दसबलेन देवातिदेवेन पुट्ठो यथाभूतसभावगुणवसेन भगवन्तं एतदवोच—'यो कोचि मं, भन्ते, उपसङ्कमित्वा पब्बज्जं वा निस्सयं वा याचति, तमहं एवं वदामि—अहं खो, आवुसो, आरञ्ञिको पिण्डपातिको पंसुकूलिको तेचीवरिको, सचे त्वं पि आरञ्ञिको भविस्ससि पिण्डपातिको पंसूकूलिको तेचीवरिको, एवाहं पब्बाजेस्सामि निस्सयं दस्सामी ति। सचे सो मे, भन्ते, पटिस्सुणित्वा नन्दति ओरमति, एवाहं तं पब्बाजेमिनिस्सयं देमि। सचे न नन्दति न ओरमति, न तं पब्बाजेमि न निस्सयं देमि। एवाहं, भन्ते, परिसं विनेमी' ति। एवं पि, महाराज, धुतगुणवरसमादिण्णो जिनसासनवरं इस्सरो होति वसवत्ती सामिको इच्छाकरणो, तस्साधेय्या होन्ति केवला सन्ता सुखा समापत्तियो।

२०. "यथा, महाराज, पदुमं अभिवुद्धपरिसुद्धउदिच्चजातिप्पभवं सिनिद्धं मुदु लोभनीयं सुगन्धं पियं पत्थितं पसत्थं जलकद्दममनुपलित्तं अणुपत्तकेसरकण्णिकाभिमण्डितं भमरगणसेवितं सीतलसलिलसम्बद्धं; एवमेव खो, महाराज, इमेहि तेरसहि धुतगुणेहि पुब्बे आसेवितेहि निसेवितेहि चिण्णेहि परिचिण्णेहि चरितेहि उपचरितेहि परिपूरितेहि अरियसावको तिंसगुणवरेहि समुपेतो होति।

उसके अधीन हो जाती है; वैसे ही इन तेरह धुताङ्ग व्रतों का पालन कर श्रमण सभी फल पा लेता है, और शान्तसुखसमापत्ति निर्वाण उसका अपना हो जाता है।

१९. "महाराज! क्या आपको ज्ञात नहीं है कि वङ्गन्तपुत्र स्थविर उपसेन धुताङ्ग व्रत से पवित्र हो श्रावस्ती के भिक्षुओं के समझौते की अपेक्षा न कर भगवान् (पुरुषों को दमन करने वालों) के पास अपने भिक्षुओं के साथ पहुँच गया था, जो उस समय एकान्तवास कर रहे थे, और प्रणाम कर एक ओर बैठ गया था। भगवान् उन भिक्षुओं को वैसा शिक्षित देख बहुत प्रसन्न हुए थे और बहुत हर्ष के साथ इन सुन्दर शब्दों में उनसे कहा था—"उपसेन! तुम्हारे भिक्षु बहुत शिक्षित ज्ञात होते हैं, तुमने इन्हें कैसे विनीत किया है?' "देवातिदेव सर्वज्ञ भगवान् के इस प्रश्न को सुन सत्य बात बताते हुये उसने कहा था—'भन्ते ! जो कोई मेरे पास भिक्षु या मेरा शिष्य बनने आता है उसे मैं पहले कहता हूँ—'सुनो! मैं जंगल में रहा करता हूँ, पिण्डपात (भिक्षा) कर के खाता हूँ, गुदड़ी चीवर धारण करता हूँ। यदि तुम भी मेरा साथ देने के लिये सन्तुष्ट हो तो शिष्य बन सकते हो।' इस पर यदि वह स्वेच्छया सन्नद्ध हो जाता है तो मैं उसे अपना शिष्य बना लेता हूँ। यदि वह इस पर सन्नद्ध नहीं होता तो मैं उसे विदा कर देता हूँ। भन्ते ! मैं उन्हें इसी तरह सिखाता हूँ।' महाराज! इस तरह श्रमण इन तेरह धुताङ्ग व्रतों का पालन कर सभी फल पा लेता है, और शान्त, सुखसमापत्ति निर्वाण का अधिकारी हो जाता है।

२०. "महाराज! जैसे कमल की जाति बहुत शुद्ध और ऊँची है। वह सुन्दर, कोमल,

"कतमेहि तिंसगुणवरेहि ? सिनिद्धमुदुमद्दवमेत्तचित्तो होति, घातितहतविहतकिलेसो होति, हतनिहतमानदप्पो होति, अचलदळ्हनिविट्ठनिब्बेमतिकसद्धो होति, परिपुण्णपीणितपहट्ठलोभनीयसन्तसुखसमापत्तिलाभी होति, सीलवरपवरअसमसुचिगन्धपरिभावितो होति, देवमनुस्सानं पियो होति मनापो, खीणासवअरियवरपुग्गलपत्थितो, देवमनुस्सानं वन्दितपूजितो, बुधविबुधपण्डितजनानं थुतथवितथोमितपसत्थो, इध वा हुरं वा लोकेन अनुपलित्तो, अप्पथोकवज्जे पि भयदस्सावी, विपुलवरसम्पत्तिकामानं मग्गफलवरत्थसाधनो, आयाचितविपुलपणीतपच्चयभागी, अनिकेतसयनो, झानज्झोसिततप्पवरविहारी, विजटितकिलेसजालवत्थु, भिन्नभग्गसङ्कुटितसच्छिन्नगतिनीवरणो, अकुप्पधम्मो, अभिनीतवासो अनवज्जभोगी, गतिविमुत्तो, उत्तिण्णसब्बविचिकिच्छो, विमुत्तिज्झासितत्तो, दिट्ठधम्मो, अचलदळ्हभीरुत्ताणमुपगतो, समुच्छिन्नानुसयो, सब्बासवक्खयं पत्तो, सन्तसुखसमापत्तिविहारबहुलो, सब्बसमणगुणसमुपेतो। इमेहि तिंसगुणवरेहि समुपेतो होति।

२१. "ननु, महाराज, थेरो सारिपुत्तो दससहस्सिलोकधातुया अग्गपुरिसो, ठपेत्वा दसबलं लोकाचरियं। सो पि अपरिमितमसङ्खेय्यकप्पे समाचितकुसलमूलो ब्राह्मणकुलकुलीनो मनापिकं कामरतिं अनेकसतसङ्खधनवरं च ओहाय जिनसासने पब्बजित्वा इमेहि तेरसहि धुतगुणेहि कायवचीचित्तं दमयित्वा अज्जेतरहि अनन्तगुणसमन्नागतो गोतमस्स भगवतो सासनवरे

मनमोहक, सुगन्धित, प्रिय, प्रार्थित, प्रशस्त, जल और कीचड़ से न लगा हुआ, जिसके हर एक दल केसर से भरे रहते हैं, भ्रमरों से घिरा हुआ और शीतल जल में उत्पन्न होता है; महाराज! इसी तरह, इन तेरह धुताङ्ग व्रतों का पालन कर उन्हें साथ लेने से आर्यश्रावक तीस गुणों से युक्त होता है।

"किन तीस गुणों से?" १. उसका चित्त कोमल, स्निग्ध और मैत्री भाव से पूर्ण होता है, २. उसके क्लेश सर्वथा नष्ट हो गये रहते हैं, ३–४. उसका अभिमान और दर्प चला जाता है, ५–९. उसकी श्रद्धा दृढ़, सबल, प्रतिष्ठित और अचल होती है, १०. पूर्ण प्रीतियुक्त शान्तसुख समापत्ति का लाभ करता है, ११. शील की उत्तम गन्ध फैलाने वाला होता है, १२–१३. देवताओं और मनुष्यों का प्रिय और मनाप होता है, १४. क्षीणाश्रव और सन्तों से चाहा जाता है, १५–१६. देवताओं और मनुष्यों से प्रार्थनीय और वन्दनीय होता है, १७. बुद्धिमान् और पण्डित लोगों से भूरि–भूरि प्रशंसा पाता है, १८. संसार या स्वर्ग के भोगों से अलिप्त रहता है, १९. थोड़ी सी भी निन्दा से डरता है, २०. निर्वाण पाने की इच्छा से लोग जिस मार्ग–फल की खोज करते हैं, उसके धन से धनी होता है, २१. सभी प्रत्ययों को पाने वाला होता है, २२. विना किसी घर–द्वार का होता है जो ध्यान के अभ्यास के लिये सब से बड़ी बात होती है, २३. क्लेश की जटा से सुलझा रहता है, आवागमन से सर्वथा मुक्त रहता है, २४. उसे धर्म में पूरा प्रवेश मिल जाता है, २५. मुक्ति की ओर पूरा झुक जाता है, २६–२८. इसी जन्म में अचल और दृढ़ शरणस्थल पा लेता है, मृत्यु का भय सर्वथा दूर हो जाता है, २९. सभी आश्रव क्षीण हो जाते हैं और शान्त, सुखमय ध्यान का लाभ कर लेता है, और ३०. श्रमण के समग्र गुणों को पा लेता है–इन तीस गुणों से वह युक्त होता है।

२१. "महाराज! स्थविर सारिपुत्र दशबल लोकगुरु (बुद्ध) को छोड़ दश हजार लोकधातुओं में अग्रपुरुष थे। अनन्त कल्पों से उन्होंने बहुत पुण्य एकत्र कर लिया था। उच्च ब्राह्मण कुल में उनका जन्म हुआ था। उन्होंने धन और ऐश्वर्य को लात मार कर बुद्ध–शासन में प्रव्रज्या की थी। प्रव्रजित होकर इन्हीं तेरह धुताङ्ग व्रतों का पालन कर आत्मसंयम किया था, जिस से आज वे भिक्षुओं में श्रेष्ठ और भगवान्

धम्मचक्कमनुपवत्तको जातो। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन एक*ङ्गुत्तरनिकाय*-वरलञ्छके—'नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकपुग्गलं पि समनुपस्सामि, यो एवं तथागतेन अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तितं सम्मदेव अनुप्पवत्तेति; यथयिदं, भिक्खवे, सारिपुत्तो। सारिपुत्तो, भिक्खवे, तथागतेन अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तितं सम्मदेव अनुपवत्तेती' " ति।

"साधु, भन्ते नागसेन, यं किञ्चि नवङ्गं बुद्धवचनं, या च लोकुत्तरा किरिया, या च लोके अधिगमविपुलवरसम्पत्तियो सब्बं तं तेरसु गुणेसु समोधानोपगतं" ति॥

(इमस्मिं वग्गे द्वे पञ्हा) *चतुत्थो अनुमानवग्गो निट्ठितो॥*

॥ अनुमानपञ्हो निट्ठितो ॥

बुद्ध के धर्मचक्रप्रवर्त्तक माने जाते हैं। *अङ्गुत्तरनिकाय* में देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—'भिक्षुओ! सारिपुत्र को छोड़ कर मैं किसी भी दूसरे भिक्षु को ऐसा नहीं पाता, जो मेरे द्वारा चलाये गये धर्मचक्र को फिर चलावे। भिक्षुओ! सारिपुत्र ही मेरे द्वारा प्रवर्तित धर्मचक्र को भलीभाँति चला सकता है'।"

"ठीक है, भन्ते नागसेन! नौ अङ्गों वाले बुद्धवचन, लोकोत्तर क्रिया, संसार में अच्छी से अच्छी पाने योग्य वस्तु—ये सभी धुताङ्गव्रत पालन करने से प्राप्त हो सकते हैं।"

(इस वर्ग में दो प्रश्न हैं) *चतुर्थ अनुमानवर्ग समाप्त॥*

॥ अनुमानप्रश्न समाप्त ॥

६. ओपम्मकथापञ्हो

मातिका

"भन्ते नागसेन, कतिहि अङ्गेहि समन्नागतो भिक्खु अरहत्तं सच्छिकरोती" ति?

"इध, महाराज, अरहत्तं सच्छिकातुकामेन भिक्खुना—

१. गद्रभवग्गो

१. गद्रभस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं। २. कुक्कुटस्स पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानि। ३. कलन्दकस्स एकं[१] ....। ४. दीपिनिया एकं....। ५. दीपिकस्स द्वे ....। ६. कुम्मस्स पञ्च ....। ७. वंसस्स एकं....। ८. चापस्स एकं....। ९. वायसस्सस द्वे ....। १०. मक्कटस्स द्वे अङ्गानि गहेतब्बानि।

२. समुद्दवग्गो

११. "लाबुलताय एकं....। १२. पदुमस्स तीणि ....। १३. बीजस्स द्वे ....। १४. सालकल्याणिकाय एकं ....। १५. नावाय तीणि ....। १६. नावा-लग्गनकस्स द्वे ....। १७. कूपस्स एकं ....। १८. नियामकस्स तीणि ....। १९. कम्मकरस्स एकं....। २० समुद्दस्स पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानि।

३. पठविवग्गो

२१. पठविया पञ्च ....। २२. आपस्स पञ्च ....। २३. तेजस्स पञ्च ....। २४. वायुस्स

---

६. औपम्यकथाप्रश्न

मातृका

"भन्ते नागसेन! किन गुणों को पाकर भिक्षु अर्हत्-पद का साक्षात्कार करता है?"

"महाराज! अर्हत्-पद पाने के लिये भिक्षु में ये गुण होने चाहिये—

१. गर्दभवर्ग

१. गदहे का एक गुण	२. मुर्गे के पाँच गुण
३. गिलहरी का एक गुण	४. मादा चीता का एक गुण
५. नर चीते के दो गुण	६. कछुए के पाँच गुण
७. बाँस का एक गुण	८. धनुष का एक गुण
९. कौवे के दो गुण	१०. वानर के दो गुण

२. समुद्रवर्ग

११. लौकी का एक गुण	१२. कमल के तीन गुण
१३. बीज के दो गुण	१४. शालवृक्ष का एक गुण
१५. नाव के तीन गुण	१६. लङ्गर के दो गुण
१७. पतवार का एक गुण	१८. कर्णधार के तीन गुण
१९. केवट का एक गुण	२०. समुद्र के पाँच गुण

---

१. एत्थ उपरि च सब्बत्थ 'अङ्गं गहेतब्बं', 'अङ्गानि गहेतब्बानि' इति वा पसङ्गानुसारं पठित्वा मातिका पूरेतब्बा।

पञ्च ....। २५. पब्बतस्स पञ्च ....। २६. आकासस्स पञ्च ....। २७. चन्दस्स पञ्च ....। २८. सुरियस्स सत्त। .... २९. सक्कस्स तीणि ....। ३०. चक्कवत्तिस्स चत्तारि अङ्गानि गहेतब्बानि।

४. उपचिकावग्गो

३१. उपचिकाय एकं....। ३२. बिळारस्स द्वे ....। ३३. उन्दुरस्स एकं....। ३४. विच्छिकस्स एकं....। ३५. नकुलस्स एकं ....। ३६. जरसिङ्गालस्स द्वे ....। ३७. मिगस्स तीणि....। ३८. गोरूपस्स चत्तारि ....। ३९. वराहस्स द्वे ....। ४०. हत्थिस्स पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानि।

५. सीहवग्गो

४१. सीहस्स सत्त ....। ४२. चक्कवाकस्स तीणि ....। ४३. पेणाहिकाय द्वे ....। ४४. घरकपोतस्स एकं ....। ४५. उलूकस्स द्वे ....। ४६. सतपत्तस्स एकं....। ४७. वग्गुलिस्स द्वे ....। ४८. जलूकाय एकं ....। ४९. सप्पस्स तीणि....। ५०. अजगरस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं।

६. मक्कटवग्गो

५१. "पन्थमक्कटकस्स एकं ....। ५२. थनसितदारकस्स एकं....। ५३. चित्तकधर-कुम्मस्स एकं....। ५४. पवनस्स पञ्च....। ५५. रुक्खस्स तीणि ....। ५६. मेघस्स पञ्च....।

---

३. पृथ्वीवर्ग

२१. पृथ्वी के पाँच गुण	२२. जल के पाँच गुण
२३. अग्नि (तेज) के पाँच गुण	२४. वायु के पाँच गुण
२५. पर्वत (हाड़) के पाँच गुण	२६. आकाश के पाँच गुण
२७. चन्द्रमा के पाँच गुण	२८. सूर्य के सात गुण
२९. इन्द्र के तीन गुण	३०. चक्रवर्ती राजा के चार गुण

४. उपचिकावर्ग

३१. दीमक(उपचिका) का एक गुण	३२. बिल्ली के दो गुण
३३. चूहे का एक गुण	३४. बिच्छू का एक गुण
३५. नेवले का एक गुण	३६. बूढे सियार के दो गुण
३७. हरिण के तीन गुण	३८. बैल के चार गुण
३९. सूअर के दो गुण	४०. हाथी के पाँच गुण

५. सिंहवर्ग

४१. सिंह के सात गुण.	४२. चकवा के तीन गुण
४३. पेणाहिका पक्षी के दो गुण	४४. गृह–कपोत का एक गुण
४५. उल्लू के दो गुण	४६. सारस का एक गुण
४७. बागुर के दो गुण	४८. जोंक का एक गुण
४९. साँप के तीन गुण	५०. अजगर का एक गुण

६. मर्कटवर्ग

५१. मकड़े का एक गुण	५२. दूध–पीते बच्चे का एक गुण
५३. स्थल–कछुये का एक गुण	५४. जंगल के पाँच गुण
५५. वृक्ष के तीन गुण	५६. मेघ के पाँच गुण

५७. मणिरतनस्स तीणि.... । ५८. मागविकस्स चत्तारि.... । ५९. बाळिसिकस्स द्वे .... । ६०. तच्छकस्स द्वे गहेतब्बानि ।

७. कुम्भवग्गो

६१. ''कुम्भस्स एकं.... । ६२. काळायसस्स द्वे .... । ६३. छत्तस्स तीणि .... । ६४. खेत्तस्स तीणि .... । ६५. अगदस्स द्वे.... । ६६. भोजनस्स तीणि .... । ६७. इस्सासस्स चत्तारि अङ्गानि गहेतब्बानि ।

८. राजङ्गवग्गो

६८. ''रञ्ञो चत्तारि .... । ६९. दोवारिकस्स द्वे.... । ७०. निसदाय एकं.... । ७१. पदीपस्स द्वे .... । ७२. मयूरस्स द्वे .... । ७३. तुरङ्गस्स द्वे .... । ७४. सोण्डिकस्स द्वे .... । ७५. इन्दखीलस्स द्वे.... । ७६. तुलाय एकं .... । ७७. खग्गस्स द्वे .... । ७८. मच्छस्स द्वे .... । ७९. इणगाहकस्स एकं.... । ८०. ब्याधितस्स द्वे .... । ८१. मतस्स द्वे .... । ८२. नदिया द्वे .... । ८३. उसभस्स एकं .... । ८४. मग्गस्स द्वे .... । ८५. सुङ्कसायिकस्स एकं.... । ८६. चोरस्स तीणि.... । ८७. सकुणग्घिया एकं.... । ८८. सुनखस्स एकं.... । ८९. तिकिच्छकस्स तीणि.... । ९०. गब्भिनिया द्वे .... । ९१. चमरिया एकं .... । ९२. किकिया द्वे .... । ९३. कपोतिकाय तीणि .... । ९४. एकनयनस्स द्वे .... । ९५. कस्सकस्स तीणि .... । ९६. जम्बुकसिङ्गालिया

---

५७. मणि के तीन गुण	५८. शिकारी के चार गुण*
५९. मछुआरे के तीन गुण	६०. तक्षक (बढ़ई) के दो गुण

७. कुम्भवर्ग

६१. जल के घड़े का एक गुण	६२. लोहे के दो गुण
६३. छाते के तीन गुण	६४. (धान के) खेत के तीन गुण
६५. औषध के दो गुण	६६. भोजन के तीन गुण
६७. धनुर्धर(तीरन्दाज) के चार गुण	

८. राजाङ्गवर्ग

६८. राजा के चार गुण	६९. द्वारपाल के दो गुण
७०. चक्की का एक गुण	७१. दीपक के दो गुण
७२. मोर के दो गुण	७३. घोड़े के दो गुण
७४. शौण्डिक(मतवाले) के दो गुण	७५. स्तम्भ के दो गुण
७६. तराजू का एक गुण	७७. तलवार के दो गुण
७८. मछली के दो गुण	७९. ऋण लेने वाले का एक गुण
८०. रोगी के दो गुण	८१. मुर्दे के दो गुण
८२. नदी के दो गुण	८३. भैंसे का एक गुण
८४. मार्ग के दो गुण	८५. कर उगाहने वाले का एक गुण
८६. चोर के तीन गुण	८७. बाज पक्षी का एक गुण
८८. कुत्ते का एक गुण	८९. वैद्य के तीन गुण
९०. गर्भिणी स्त्री के दो गुण	९१. चमरी गाय का एक गुण
९२. कृकी पक्षी के दो गुण	९३. कबूतरी के तीन गुण

....। ९७. चङ्गवारकस्स द्वे ....। ९८. दब्बिया एकं....। ९९. इणसाधकस्स तीणि ....। १००. अनुविचिनकस्स एकं ....। १०१. सारथिस्स द्वे ....। १०२. भोजकस्स द्वे ....। १०३. तुन्नवायस्स एकं....। १०४. नाविकस्स एकं ....। १०५. भमरस्स द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति।

मातिकायो निट्ठिता॥

१. गद्रभवग्गो

१. गद्रभपञ्हो

१. ''भन्ते नागसेन, 'गद्रभस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं एकं अङ्गं गहेतब्बं'' ति? ''यथा, महाराज, गद्रभो नाम सङ्कारकूटे पि चतुक्के पि सिङ्घाटके पि गामद्वारे पि थुसरासिम्हि पि यत्थ कत्थचि पि सयति, न सयनबहुलो होति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन तिणसन्थारे पि पण्णसन्थारे पि कट्ठमञ्चके पि छमाय पि यत्थ कत्थचि चम्मखण्डं पत्थरित्वा यत्थ कत्थचि सयितब्बं, न सयनबहुलेन भवितब्बं। इदं, महाराज, गद्रभस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं।

''भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन—'कलिङ्गरूपधाना, भिक्खवे, एतरहि, मम सावका विहरन्ति अप्पमत्ता आतापिनो पधानस्मिं' ति। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *सारिपुत्तेन* धम्मसेनापतिना पि—

'पल्लङ्केन निसिन्नस्स, जण्णुकेनाभिवस्सति।
अलं फासुविहाराय, पहितत्तस्स भिक्खुनो''' ति॥ *(थेरगाथा, ९८५)*

---

९४. काने के दो गुण	९५. कृषक (गृहस्थ) के तीन गुण
९६. शृगाली का एक गुण	९७. पिटारी के दो गुण
९८. करछुल(दर्वी) का एक गुण	९९. महाजन के तीन गुण
१००. (परीक्षक) का एकगुण	१०१. कोचवान के दो गुण
१०२. ग्रामप्रधान का एक गुण	१०३. दर्जी का एक गुण
१०४. नाविक का एक गुण	१०५. भौंरे के दो गुण

मातृका समाप्त॥

१. गर्दभवर्ग

१. गर्दभाङ्गप्रश्न—१.''भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में गदहे का भी एक गुण होता है, कृपया बताइये वह कौन सा गुण है?'' (१) ''महाराज! जैसे गदहा जहाँ कहीं कूड़े करकट पर, या चौक चौराहे पर, या गाँव के दरवाजे पर, या भूसे के ढेर पर लेटता है वहाँ निश्चिन्त हो कर सो नहीं जाता; वैसे ही योग–साधना करने वाले योगी को कहीं भी, चाहे चटाई, पत्ते की चटाई, काठ की चौकी या धरती पर लेट कर निश्चिन्त हो, सो नहीं जाना चाहिये। महाराज! गदहे का यह एक गुण उस भिक्षु में होना चाहिये।

''महाराज! देवातिदेव भगवान् ने कहा भी है– ''भिक्षुओ! मेरे श्रावक लकड़ी सिरहाने रख उससे तकिये का उपयोग कर लेते हैं। वे अप्रमत्त और संयमशील होकर अपने कार्य में उत्साह से लगे रहते हैं। महाराज! धर्मसेनापति *सारिपुत्र* ने भी कहा है–

२. कुक्कुटङ्गपञ्हो

२. "भन्ते नागसेन, 'कुक्कुटस्स पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानि' ति यं वदेसि, कतमानि तानि पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी" ति ?

(१) "यथा, महाराज, कुक्कुटो कालेन पटिसल्लीयति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन कालेन समयेनेव चेतियङ्गणं सम्मज्जित्वा पानीयं परिभोजनीयं उपट्ठपेत्वा सरीरं पटिजग्गित्वा नहायित्वा चेतियं वन्दित्वा वुड्ढानं भिक्खूनं दस्सनाय गन्त्वा कालेन समयेन सुञ्ञागारं पविसितब्बं। इदं, महाराज, कुक्कुटस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) "पुन च परं, महाराज, कुक्कुटो कालेन समयेनेव वुट्ठाति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन कालेन समयेनेव वुट्ठहित्वा चेतियङ्गणं सम्मज्जित्वा परिभोजनीयं उपट्ठपेत्वा सरीरं पटिजग्गित्वा चेतियं वन्दित्वा पुनदेव सुञ्ञागारं पविसितब्बं। इदं, महाराज, कुक्कुटस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) "पुन च परं, महाराज, कुक्कुटो पठविं खणित्वा खणित्वा अज्झोहारं अज्झोहरति; एवमेव खो,महाराज, योगिना योगावचरेन पच्चवेक्खित्वा पच्चवेक्खित्वा अज्झोहारं अज्झोहरितब्बं 'नेव दवाय न मदाय न मण्डनाय न विभूसनाय, यावदेव इमस्स कायस्स ठितिया यापनाय विहिंसूपरतिया ब्रह्मचरियानुग्गहाय। इति पुराणं च वेदनं पटिहङ्खामि नवं च वेदनं न उप्पादेस्सामि, यात्रा च मे भविस्सति। अनवज्जता च फासु विहारो चा' ति। इदं, महाराज, कुक्कुटस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता, देवातिदेवेन—

आसन मारकर बैठे हुए भिक्षु पर जल बरस कर घुटने तक भी क्यों न लग जाय, उससे ध्यान में लीन भिक्षु को क्या चिन्ता!

२. कुक्कुटाङ्गप्रश्न— २. "भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में मुर्गे के पाँच गुण होने चाहियें, वे पाँच गुण कौन से हैं?"

(१) "महाराज! जैसे मुर्गा ठीक समय पर सोता है; वैसे ही, योगसाधक भिक्षु को ठीक समय पर चैत्य के चारों ओर झाड़ू लगाना चाहिये; जल और भोजन रख देना चाहिये; अपना शरीर-कृत्य करना चाहिये; स्नान कर चैत्य की वन्दना करनी चाहिये और वृद्ध भिक्षुओं से मिलजुल कर अपने एकान्त प्रकोष्ठ में ध्यान करने के लिये बैठ जाना चाहिये। भिक्षु में मुर्गे का यह पहला गुण होना चाहिये।

(२) "महाराज! मुर्गा अपने ठीक समय पर उठ जाता है; वैसे ही, योगसाधक भिक्षु को भी ठीक समय पर उठ जाना चाहिए चैत्य के चारों ओर झाड़ू लगाना चाहिये, जल और भोजन रख देना चाहिये, शरीर के कृत्य करने चाहिये, चैत्य की वन्दना करने के लिये जाना चाहिये, और फिर अपने एकान्त प्रकोष्ठ में ध्यान करने के लिये बैठ जाना चाहिये। मुर्गे का यह दूसरा गुण भिक्षु में होना चाहिये।

(३) "महाराज! मुर्गा जमीन को पैरों से कुरेद कर दाना चुगता है। वैसे ही, योग-साधन करने वाले भिक्षु को भी स्मृति के सहारे सावधान होकर कुछ खाना चाहिये—'मैं इस भोजन को ग्रहण करता हूँ, परन्तु न स्वाद लेने के लिये, न प्रमाद के लिये, न अपने शरीर को सुन्दर बनाने के लिये, किन्तु केवल अपने शरीर को बनाये रखने के लिये, अपने जीवनयापन के लिये, पेट की अग्नि को बुझाने के लिये और ब्रह्मचर्यव्रत-पालन करने के लिये'। इस प्रकार, मैं अपनी पुरानी वेदनाओं को दूर करता हूँ, और नई पैदा होने का अवसर नहीं देता। इससे मेरी लोकयात्रा भी निभ जायगी— निर्दोष और आराम से। महाराज! भिक्षु में मुर्गे का यह तीसरा गुण होना चाहिये। देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'कन्तारे पुत्तमंसं व, अक्खस्सब्भञ्जनं यथा।
एवं आहरि आहारं, यापनत्थममुच्छितो' ति॥ *(पच्चवेक्खणगाथा)*

(४) ''पुन च परं, महाराज, कुक्कुटो सचक्खुको पि रत्तिं अन्धो होति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन अनन्धेनेव अन्धेन विय भवितब्बं, अरञ्ञे पि गोचरगामे पिण्डाय चरन्तेनापि रजनीयेसु रूपसद्दगन्धरसफोट्ठब्बधम्मेसु अन्धेन बधिरेन मूगेन विय भवितब्बं, न निमित्तं गहेतब्बं, नानुब्यञ्जनं गहेतब्बं। इदं, महाराज, कुक्कुटस्स चतुत्थं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन महाकच्चानेन—

'चक्खुमास्स यथा अन्धो, सोतवा बधिरो यथा।
पञ्ञवास्स यथा मूगो, बलवा दुब्बलोरिव।
अत्थअत्थे समुप्पन्ने, सयेत मतसायिकं' ति॥ *(थे०गा० ५.१)*

(५) ''पुन च परं, महाराज, कुक्कुटो लेड्डुदण्डलगुळमुग्गरेहि परिपातियन्तो पि सकं गेहं न विजहाति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन चीवरकम्मं करोन्तेन पि नवकम्मं करोन्तेन पि वत्तपटिवत्तं करोन्तेन पि उद्दिसन्तेन पि उद्दिसापेन्तेन पि योनिसो मनसिकारो न विजहितब्बो। सकं खो पनेतं, महाराज, योगिनो गेहं यदिदं योनिसो मनसिकारो। इदं, महाराज, कुक्कुटस्स पञ्चमं अङ्गं गहेतब्बं।

''भासितं पेतं, महाराज, *भगवता* देवातिदेवेन— 'को च, भिक्खवे, भिक्खुनो गोचरो सको पेत्तिको विसयो, यदिदं चत्तारो सतिपट्ठाना' ति। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *सारिपुत्तेन* धम्मसेनापतिना पि—

'यथा सुदन्तो मातङ्गो, सकं सोण्डं न मद्दति।
भक्खाभक्खं विजानाति, अत्तनो वुत्तिकप्पनं॥

'निर्जन जंगल में अपने पुत्र के मांस के समान या गाड़ी के धुरे में लगी हुई चर्बी के समान जीवन बनाये रखने के लिये ही योगी उदर–ज्वाला से पीड़ित होकर आहार ग्रहण करते हैं।।'

(४) ''महाराज! मुर्गे को आँख रहने पर भी वह रात के समय अन्धा हो जाता है; वैसे ही, योगसाधक भिक्षु को अन्धा न होने पर भी अन्धा बन कर रहना चाहिये—जंगल में भी, गाँव में भी, भिक्षाटन करते समय भी मन को खींचने वाले रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श के प्रति अन्धा, बहरा और गूँगा बने रहना चाहिये, किसी में आसक्त नहीं होना चाहिये, किसी में स्वाद नहीं लेना चाहिये। महाराज! *महाकात्यायन स्थविर* ने भी कहा है—

'सांसारिक विषयों के सामने आने पर, आँख रहते अन्धा, कान रहते बहरा, जीभ रहते गूँगा और बलवान् रहते दुर्बल बन जाना चाहिये, मानों जैसे कोई सोया या मरा हुआ हो।।'

(५) ''महाराज! जैसे ढेले, डण्डे, लाठी या मुद्गर से खदेड़ दिये जाने पर भी मुर्गे अपना घर नहीं छोड़ते; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को चीवर धारण करते समय, विहार की मरम्मत करते समय, अपने दूसरे व्रतों को पूरा करते समय, उपदेश देते या सुनते समय— कभी भी अपनी मानसिक तत्परता नहीं छोड़नी चाहिये। महाराज! योगी का अपना घर तो मानसिक तत्परता है। भिक्षु में यह मुर्गे का पाँचवा गुण होना चाहिये।

''महाराज! देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है— 'भिक्षुओ! भिक्षुओं की अपनी पैतृक सम्पत्ति ये ही चार स्मृतिप्रस्थान हैं!' महाराज! धर्मसेनापति स्थविर *शारिपुत्र* ने भी कहा है—

तथेव बुद्धपुत्तेन, अप्पमत्तेन वा पन।
जिनवचनं न मद्दितब्बं, मनसिकारवरुत्तमं'' ति॥

३. कलन्दकङ्गपञ्हो

३. ''भन्ते नागसेन, 'कलन्दकस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं एकं अङ्गं गहेतब्बं'' ति? ''यथा, महाराज, कलन्दको पटिसत्तुम्हि ओपतन्ते नङ्गुट्ठं पप्फोटेत्वा महन्तं कत्वा तेनेव नङ्गुट्ठलगुळेन पटिसत्तुं पटिबाहति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन किलेससत्तुम्हि ओपतन्ते सतिपट्ठानलगुळं पप्फोटेत्वा महन्तं कत्वा तेनेव सतिपट्ठानलगुळेन सब्बकिलेसा पटिबाहितब्बा। इदं, महाराज, कलन्दकस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *चुल्लपन्थकेन*—

''यदा किलेसा ओपतन्ति, सामञ्ञगुणधंसना।
सतिपट्ठानलकुटेन, हन्तब्बा ते पुनप्पुनं'' ति॥

४. दीपिनियङ्गपञ्हो

४. ''भन्ते नागसेन, 'दीपिनिया एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं एकं अङ्गं गहेतब्बं'' ति? ''यथा, महाराज, दीपिनी सकिं येव गब्भं गण्हाति, न पुनप्पुनं पुरिसं उपेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन आयतिं पटिसन्धिं उप्पत्तिं गब्भसेय्यं चुतिं भेदं खयं विनासं संसारभयं दुग्गतिं विसमं सम्पीळितं दिस्वा 'पुनब्भवे नप्पटिसन्दहिस्सामी' ति योनिसो मनसिकारो करणीयो। इदं, महाराज, दीपिनिया एकं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *सुत्तनिपाते धनियगोपालकसुत्ते*—

'जैसे हाथी सोता हुआ भी अपनी सूड़ को दबने नहीं देता, अपने अनुकूल भक्ष्य–अभक्ष्य का तत्काल ज्ञान कर लेता है; उसी तरह, बुद्धपुत्रों को सदा सावधान रहकर बुद्धोपदेश को दबने नहीं देना चाहिये, जो कि मनन करने के लिये सर्वोत्तम है।।'

३. कलन्दकाङ्गप्रश्न— ३. ''भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में कलन्दक (गिलहरी) का एक गुण होना चाहिये, वह एक गुण क्या है?'' (१) ''महाराज! जैसे किसी शत्रु के आने पर गिलहरी अपनी पूँछ को पटक–पटक कर फुला लेती है और उसी से उसे भगा देती है। वैसे ही, योगसाधक भिक्षु को क्लेशरूपी शत्रु के निकट आने पर स्मृतिप्रस्थानरूपी लाठी पटक–पटक कर उसे भगा देना चाहिये। महाराज! योगसाधक भिक्षु में गिलहरी का यह एक गुण होना चाहिये। महाराज! स्थविर *चुल्लपन्थक* ने भी कहा है—

'जब श्रमण के गुणों को नष्ट करने वाले क्लेश–शत्रु चढ़ाई कर दें, तो स्मृतिप्रस्थानरूपी लाठी से उन्हें मार–मार कर भगा देना चाहिये।।'

४. द्वीपिनीविषयकप्रश्न— ४. ''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में द्वीपिनी (मादा चीते) का एक गुण होना चाहिये, वह एक गुण कौन सा है?'' (१) ''महाराज! जैसे मादा चीता एक ही बार गर्भ धारण करती है; दूसरी बार नर चीते के पास नहीं जाती। वैसे ही, योगसाधक भिक्षु को फिर प्रतिसन्धि (जन्म) लेना, गर्भ में आना, मर जाना, नष्ट होना, बूढ़ा होना और संसार की बुरी से बुरी दुर्गतियों का भय देख कर आवागमन से मुक्त हो जाने का सङ्कल्प कर लेना चाहिये। महाराज! भिक्षु में मादा चीते का यह एक गुण होना चाहिये। महाराज! *सुत्तनिपात* के धनियगोपसूत्र में देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'उसभोरिव मछेत्व बन्धनानि, नागो पूतिलतं व दालियित्वा।
नाहं पुन उपेस्सं गब्भसेय्यं, अथ चे पत्थयसी पवस्स देवा'' ति॥ (सु०नि०१.२.९२)

५. दीपिकङ्गपञ्हो

५. ''भन्ते नागसेन, 'दीपिकस्स द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, दीपिको अरञ्ञे तिणगहणं वा वनगहनं वा पब्बतगहनं वा निस्साय निलीयित्वा मिगे गण्हाति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन विवेकं सेवितब्बं। अरञ्ञं रुक्खमूलं पब्बतं कन्दरं गिरिगुहं सुसानं वनपत्थं अब्भोकासं पलालपुञ्जं अप्पसद्दं अप्पनिग्घोसं विजनवातं मनुस्सराहसेय्यकं पटिसल्लानसारुप्पं विवेकं सेवमानो हि, महाराज, योगी योगावचरो न चिरस्सेव छळभिञ्ञासु च वसीभावं पापुणाति। इदं, महाराज, दीपिकस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेहि *धम्मसङ्गाहकेहि*—

'यथा पि दीपिको नाम, निलीयत्वा गण्हते मिगे।
तथेवायं बुद्धपुत्तो, युत्तयोगो विपस्सको।
अरञ्ञं पविसित्वान, गण्हाति फलमुत्तमं' ति॥

(२) ''पुन च परं, महाराज, दीपिको यं कञ्चि पसुं वधित्वा वामेन पस्सेन पतितं न भक्खेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन वेळुदानेन वा पत्तदानेन वा पुप्फदानेन वा फलदानेन वा सिनानदानेन वा मत्तिकादानेन वा चुण्णदानेन वा दन्तकट्ठदानेन वा मुखोदक-दानेन वा चाटुकम्यताय वा मुग्गसुप्यताय वा पारिभट्टयकताय वा जङ्घपेसनीयेन वा वेज्जकम्मेन वा दूतकम्मेन वा पहिणगमनेन वा पिण्डपटिपिण्डेन वा दानानुप्पदानेन वा वत्थुविज्जाय वा

'साँड़ के समान रस्सी को तोड़, हाथी के समान सड़ी–गली बेल को नोच कर, मैं फिर गर्भ में नहीं आ सकता। मेघ! यदि चाहो तो खूब बरसो।।''

५. द्वीपिकाङ्गप्रश्न— ५. ''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में नर चीते के दो गुण होने चाहिये, वे दो गुण कौन से हैं?''

(१) ''महाराज! जैसे चीता जङ्गल के घास–पात में, घनी झाड़ी में या पहाड़ में छिप, जानवरों पर घात लगाकर उन्हें पकड़ लेता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को एकान्त में आसन लगा कर बैठना चाहिये— जंगल में, वृक्ष के नीचे, पहाड़ पर, खोह में, कन्दरा में, श्मशान में, निर्जन वन में, पुआल के ढेर पर, शान्त जगह में— जहाँ कोलाहल न हो, जहाँ तेज हवा न चलती हो, जहाँ मनुष्य आते जाते न हों और जहाँ सुखपूर्वक समाधि लग जाती हो। महाराज! योगसाधक योगी एकान्त स्थान में रह कर ही शीघ्रता से छह अभिज्ञाओं को वश में कर लेता है। महाराज! चीते का यह पहला गुण होना चाहिये। महाराज! संग्रहकार स्थविरों ने भी कहा है—

'जैसे चीता छिप कर जानवरों को पकड़ता है; वैसे ही योगसाधक ज्ञानी बुद्धपुत्र जंगल में रहकर उत्तम फल प्राप्त कर लेते हैं।।'

(२) ''महाराज! जैसे चीते का शिकार बायीं ओर गिर जाय तो वह उसे नहीं खाता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को घास, पत्ते, फूल, फल, स्नान, मिट्टी, चूने, दतुवन, मुँह धोने के लिये पानी, खुशामद या झूठ सच कह, या कुछ सेवाकर, या दूत का काम कर, कुछ ले दे कर, झाड़–फूँक, ग्रहों का फल

नक्खत्तविज्जाय वा अङ्गविज्जाय वा अञ्ञतरञ्ञतरेन वा बुद्धपटिकुट्ठेन मिच्छाजीवेन निप्फादितं भोजनं न भुञ्जितब्बं, वामेन पस्सेन पतितं पसुं विय दीपिको। इदं, महाराज, दीपिकस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *सारिपुत्तेन* धम्मसेनापतिना—

'वचीविञ्ञत्तिविप्फारा, उप्पन्नं मधुपायसं।
सचे भुत्तो भवेय्याहं, साजीवो गरहितो मम॥
यदि पि मे अन्तगुणं, निक्खमित्वा बही चरे।
नेव भिन्देय्यमाजीवं, चजमानो पि जीवितं' '' ति॥

६. कुम्मङ्गपञ्हो

६. ''भन्ते नागसेन, 'कुम्मस्स पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, कुम्मो उदकचरो उदके येव वासं कप्पेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सब्बपाणभूतपुग्गलानं हितायानुकम्पिना मेत्तासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्यापज्जेन सब्बावन्तं लोकं फरित्वा विहरितब्बं। इदं, महाराज, कुम्मस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) ''पुन च परं, महाराज, कुम्मो उदके उप्पिलवन्तो सीसं उक्खिपित्वा यदि कोचि पस्सति, तत्थेव निमुज्जति गाळ्हमोगाहति— 'मा मं सो पुन पस्सेय्यो' ति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन किलेसेसु ओपतन्तेसु आरम्मणसरे निमुज्जितब्बं, गाळ्हमोगाहितब्बं—'मा मं किलेसा पुन पस्सेय्युं' ति। इदं, महाराज, कुम्मस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) ''पुन च परं, महाराज, कुम्मो उदकतो निक्खमित्वा कायं ओतापेति; एवमेव

या अङ्गों के लक्षण बताकर या और किसी बुद्ध द्वारा निन्दित मिथ्या आजीविका से कमा कर भोजन नहीं करना चाहिये। जैसे कि वाम भाग में गिरे हुये शिकार को चीता नहीं खाता। महाराज! भिक्षु में चीते का यह दूसरा गुण होना चाहिये। महाराज! धर्मसेनापति स्थविर *शारिपुत्र* ने कहा है—

'यदि मुख से माँग कर कुछ मीठी खीर खा लूँ, तो उससे मेरी जीविका निन्दित समझी जायेगी। यदि मेरी अँतड़ियाँ भूख से निकल कर बाहर भी चली जाँय तो भी मैं अपने सम्यगाजीवव्रत को नहीं तोड़ सकता, प्राण भले ही निकल जाँय।'

६. कूर्माङ्गप्रश्न— ६. ''भन्ते! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में कछुए के पाँच गुण होने चाहिये, वे पाँच गुण कौन से हैं?''

(१) ''महाराज! कछुआ जल का जीव है, जल में ही रहता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को सभी प्राणियों, मनुष्यों का हित चाहते हुये, वैरभावरहित हो अनन्त और व्यापक मैत्रीभाव से सारे संसार को व्याप्त कर विहार करना चाहिये। महाराज! कछुए का यह पहला गुण है, जो भिक्षु में होना चाहिये।

(२) ''जैसे कछुआ अपना शिर निकाले जल में तैरता रहता है। यदि कोई उसकी ओर देखता है तो वह तुरन्त गहरे जल में डुबकी लगा कर छिप जाता है कि 'मुझे फिर देख न पावें; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को क्लेश के पास आने पर तुरन्त अपने ध्यान–सरोवर में गहरा गोता लगा लेना चाहिये कि 'मुझे ये क्लेश फिर देख न पावें'। महाराज! भिक्षु में कछुए का यह दूसरा गुण होना चाहिये।

(३) ''महाराज! फिर जैसे कछुआ कभी–कभी जल से बाहर निकल कर अपनी देह सुखाता

खो, महाराज, योगिना योगावचरेन निसज्जट्ठानसयनचङ्कमतो मानसं नीहरित्वा सम्मप्पधाने मानसं ओतापेतब्बं। इदं, महाराज, कुम्मस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं।

(४) "पुन च परं, महाराज, कुम्मो पठविं खणित्वा विवित्ते वासं कप्पेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन लाभसक्कारसिलोकं पजहित्वा सुञ्ञं विवित्तं काननं वनपत्थं पब्बतं कन्दरं गिरिगुहं अप्पसद्दं अप्पनिग्घोसं पविवित्तमोगाहित्वा विवत्ते येव वासं उपगन्तब्बं। इदं, महाराज, कुम्मस्स चतुत्थं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *उपसेनेन वङ्गन्तपुत्तेन*—

'विवित्तं अप्पनिग्घोसं, वाळमिगनिसेवितं।
सेवे सेनासनं भिक्खु, पटिसल्लानकारणा' ति॥ *(थे०गा० ५७७)*

(५) "पुन च परं, महाराज, कुम्मो चारिकं चरमानो यदि किञ्चि पस्सति वा सुणाति वा, सोण्डिपञ्चमानि अङ्गानि सके कपाले निदहित्वा अप्पोस्सुक्को तुण्हीभूतो तिट्ठति कायमनुरक्खन्तो; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सब्बत्थ रूपसद्दगन्धरसफोट्ठब्ब-धम्मेसु आपतन्तेसु छसु द्वारेसु संवरकवाटं अनुग्घाटेत्वा मानसं समोदहित्वा संवरं कत्वा सतेन सम्पजानेन विहातब्बं समणधम्मं अनुरक्खमानेन। इदं, महाराज, कुम्मस्स पञ्चमं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *संयुत्तनिकायवरे* कुम्मूपमसुत्तन्ते—

'कुम्मो व अङ्गानि सके कपाले, समोदहं भिक्खु मनोवितक्के।
अनिस्सितो अञ्ञमहेठयानो, परिनिब्बुतो नूपवदेय्य कञ्ची" ति॥

७. वंसङ्गपञ्हो

७. "भन्ते नागसेन, 'वंसस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं एकं अङ्गं गहेतब्बं" ति? (१) "यथा, महाराज, वंसो यत्थ वासो तत्थ अनुलोमेति, नाञ्ञत्थमनुधावति;

है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को बैठे, खड़े, सोते या टहलते हुए ध्यान तोड़ कर अपने मन को क्लेशों के दबाने के उत्साह में सुखाना चाहिये। महाराज! कछुए का यह गुण भिक्षु में होना चाहिये।

(४) "महाराज! जैसे कछुआ पृथ्वी पर एकान्त में घर बनाता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को लाभ, सत्कार तथा प्रशंसा से दूर शून्य एकान्त जङ्गल, पर्वत, कन्दरा, खोह, निःशब्द, निर्जन स्थान में वास करना चाहिये। महाराज! भिक्षु में कछुए का यह चौथा गुण होना चाहिये। महाराज! वङ्गन्तपुत्र स्थविर *उपसेन* ने भी कहा है—

'वनैले पशुओं के रहने वाले एकान्त, निःशब्द स्थान में भिक्षु समाधि लगाने के लिये रहे।।'

(५) "महाराज! फिर जैसे कछुआ बाहर चलते रहने पर जब किसी को देख लेता है या कोई भयजनक संकेत पाता है तो अपने सारे अंगों को अपने खप्पर (कपाल) में समेट कर अपनी रक्षा करने के लिये चुपचाप बैठ जाता है; वैसे ही, योगसाधक भिक्षु को सभी ओर से रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श के प्रलोभन आने पर अपनी छह इन्द्रियों के द्वारों पर संयम का आवरण (परदा) डाल देना चाहिये और अपने श्रमण-धर्म की रक्षा करने के लिये मन को ध्यान भावना में लगाकर सावधान हो जाना चाहिये। महाराज! भिक्षु में कछुए का यह पाँचवाँ गुण होना चाहिये। महाराज! *संयुक्तनिकाय* के कूर्मोपमसूत्र में देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'जैसे कछुआ अपने अंगों को अपनी खोपड़ी (कपाल) में छिपा लेता है; वैसे ही भिक्षु को भी

एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन यं बुद्धेन भगवता भासितं नवङ्गं सत्थुसासनं तं अनुलोमयित्वा कप्पिये अनवज्जे ठत्वा समणधम्मं येव परियेसितब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन राहुलेन—

'नवङ्गं बुद्धवचनं, अनुलोमेत्वान सब्बदा।
कप्पिये अनवज्जस्मिं, ठत्वापायं समुत्तरिं' '' ति॥

८. चापङ्गपञ्हो

८. ''भन्ते नागसेन, 'चापस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं एकं अङ्गं गहेतब्बं'' ति? (१) ''यथा, महाराज, चापो सुतच्छितो नमितो यावग्गमूलं समकमेव अनुनमति न पटित्थम्भति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन थेरनवमज्झिमसमकेसु अनुनमितब्बं न पटिप्फरितब्बं। इदं, महाराज, चापस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, *भगवता* देवातिदेवेन *विधु* (पुण्णक) *जातके*—

'चापो वूनुदरो धीरो, वंसो वापि पकम्पये।
पटिलोमं न वत्तेय्य, स राजवसतिं वसे'' ति॥

९. वायसङ्गपञ्हो

९. ''भन्ते नागसेन, 'वायसस्स द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, वायसो आसङ्कितपरिसङ्कितो यत्तप्पयत्तो चरति; एवमेव खो,

---

अपने मन के वितर्कों को दबा देना चाहिये। विना किसी दूसरे पर बोझ हुये, किसी को कष्ट न देते हुए, विना किसी को कटु शब्द कहे, इस संसार से मुक्त हो जाना चाहिये।।'

७. वंशाङ्गप्रश्न— ७. "भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में बाँस का एक गुण होना चाहिये, वह एक गुण क्या है?" (१) "महाराज! जैसे वायु जिस ओर बहती है उसी ओर बाँस झुक जाता है, किसी दूसरी ओर नहीं जाता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को नौ अङ्गों वाले बुद्ध–उपदेश के अनुसार ही व्यवहार करना चाहिये, प्रतिकूल नहीं; श्रमण के यही धर्म हैं। महाराज! भिक्षु में बाँस का यह एक गुण होना चाहिये। महाराज! स्थविर राहुल ने भी कहा है—

'बुद्ध के नौ अङ्गों वाले उपदेशानुसार सदा निर्दोष कार्य करते हुए, विघ्नों को मैं लाँघ गया।।'

८. चापाङ्गप्रश्न— ८. "भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में धनुष् का एक गुण होना चाहिये, वह एक गुण क्या है?"

(१) "महाराज! जैसे अच्छी तरह नाप–जोख कर छीला धनुष् खींचने पर दोनों छोर से नम जाता है, डण्डे की तरह कठोर नहीं होता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को स्थविर, नये, मध्यम और समान आयु के भिक्षुओं के प्रति नम्र हो कर रहना चाहिये, कठोर होकर नहीं। महाराज! भिक्षु में धनुष् का यही एक गुण होना चाहिये। महाराज! *विधुरपुण्णक जातक* में देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'जो धीर पुरुष धनुष के समान झुक जाय, बाँस के समान नम्रता से नम जाय, किसी के विरुद्ध खड़ा न हो वही सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है।।'

९. वायसाङ्गप्रश्न— ९. "भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में कौवे के दो गुण होने चाहिये, वे दो गुण कौन से हैं?"

महाराज, योगिना योगावचरेन आसङ्कितपरिसङ्कितेन यत्तप्पयत्तेन उपट्ठिताय सतिया संवुतेहि इन्द्रियेहि चरितब्बं। इदं, महाराज, वायसस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) "पुन च परं, महाराज, वायसो यं किञ्चि भोजनं दिस्वा ञातीहि संविभजित्वा भुञ्जति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन ये ते लाभा धम्मिका धम्मलद्धा अन्तमसो पत्तपरियापन्नमत्तं पि, तथारूपेहि लाभेहि पटिविभत्तभोगिना भवितब्बं सीलवन्तेहि सब्रह्मचारीहि। इदं, महाराज, वायसस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *सारिपुत्तेन* धम्मसेनापतिना—

"सचे मे उपनामेन्ति, यथालद्धं तपस्सिनो।
सब्बे ते विभजित्वान, ततो भुञ्जामि भोजनं" ति॥

१०. मक्कटपञ्हो

१०. "भन्ते नागसेन, 'मक्कटस्स द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी" ति?

(१) "यथा, महाराज, मक्कटो वासमुपगच्छन्तो तथारूपे ओकासे महतिमहारुक्खे पविवित्ते सब्बट्ठकसाखे भीरुत्ताणे वासमुपगच्छति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन लज्जिं पेसलं सीलवन्तं कल्याणधम्मं बहुस्सुतं धम्मधरं विनयधरं पियं गरुं भावनीयं वत्तारं वचनक्खमं ओवादकं विञ्ञापकं सन्दस्सकं समादपकं समुत्तेजकं एवरूपं कल्याणमित्तं आचरियं उपनिस्साय विहरितब्बं। इदं, महाराज, मक्कटस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) "पुन च परं, महाराज, मक्कटो रुक्खे येव चरति तिट्ठति निसीदति, यदि निद्दं

---

(१) "महाराज! जैसे कौआ सदा आशङ्कित और सावधान रहता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपनी इन्द्रियाँ वश में किये हुये, बहुत संयत हो, सदा शंकित, चकित और सावधान रहना चाहिये, कभी प्रमाद नहीं करना चाहिये। महाराज! भिक्षु में कौवे का यह पहला गुण होना चाहिये।

(२) "महाराज! फिर जैसे कुछ भोजन पाने पर कौआ अपनी जाति-बिरादरी को बुला कर ही खाता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपने सदाचारी गुरुभाइयों में विना किसी भेदभाव के धर्म से प्राप्त भोजन को, यहाँ तक कि पात्र में लगे हुये को भी, बाँट कर खाना चाहिये। महाराज! भिक्षु में कौवे का यह दूसरा गुण होना चाहिये। महाराज! धर्मसेनापति स्थविर *शारिपुत्र* ने भी कहा है—

'तपस्वी के पाने योग्य जिस भोजन को लोग मुझे भेंट करते हैं, मैं उसे आपस में बाँट कर ही स्वयं ग्रहण करता हूँ।'

१०. मर्कटाङ्गप्रश्न— १०. "भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में वानर के दो गुण होने चाहियें, वे दो गुण कौन से हैं?"

(१) "महाराज! जैसे वानर एकान्त स्थान में घनी शाखाओं वाले किसी सघन वृक्ष पर ही वास करता है जहाँ किसी प्रकार का डर-भय न हो; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को बहुत देख-भाल कर ऐसा गुरु करना चाहिये जो लज्जावान्, कोमलस्वभाव, शीलवान्, पुण्यात्मा, पण्डित, धर्मज्ञ, प्रिय, गम्भीर, आदरणीय, वक्ता, किसी भी बात को समझाने में पटु, अच्छे उपदेश देने वाला, अच्छी सीख देने वाला, सन्मार्ग दिखाने वाला हो तथा धर्मोपदेश द्वारा भावों को जगाकर एक उत्सुकता पैदा कर सके। महाराज! भिक्षु में वानर का यह पहला गुण होना चाहिये।

ओक्कमति तत्थेव रत्तिं वासमनुभवति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन पवनाभिमुखेन भवितब्बं, पवने येव ठानचङ्कमनिसज्जसयनं निद्दं ओक्कमितब्बं। तत्थेव सतिपट्ठानमनुभवितब्बं। इदं, महाराज, मक्कटस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *सारिपुत्तेन* धम्मसेनापतिना—

'चङ्कमन्तो पि तिट्ठन्तो, निसज्जसयनेन वा।
पवने सोभते भिक्खु, पवन्तं व वण्णितं'' ति॥

पठमो गद्रभवग्गो निट्ठितो।

तस्सुद्दानं

गद्रभो चेव कुक्कुटो, कलन्दो दीपिनि-दीपिको।
कुम्मो वंसो च चापो च, वायसो अथ मक्कटो ति॥

२. समुद्दवग्गो

१. लाबुलतङ्गपञ्हो

११. ''भन्ते नागसेन,'लाबुलताय एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं एकं अङ्गं गहेतब्बं'' ति? (१) ''यथा, महाराज, लाबुलता तिणे वा कट्ठे वा लताय वा सोण्डिकाहि आलम्बित्वा तस्सूपरि वड्ढति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन अरहत्ते अभिवड्ढितु-कामेन मनसा आरम्मणं आलम्बित्वा अरहत्ते अभिवड्ढितब्बं। इदं, महाराज, लाबुलताय एकं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *सारिपुत्तेन* धम्मसेनापतिना—

'यथा लाबुलता नाम, तिणे कट्ठे लताय वा।
आलम्बित्वा सोण्डिकाहि, ततो वड्ढति उप्परि॥

---

(२) ''महाराज! फिर जैसे वानर वृक्षों पर ही चलता है, रहता है और बैठता है, यदि नींद आती है तो वहीं रात भी बिता देता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को जंगल में ही रहना चाहिये! जंगल में ही घूमना, फिरना, रहना, बैठना और सोना चाहिये। वही (अशैक्ष-अवस्था, जिसमें कुछ सीखने के लिये अवशिष्ट नहीं रह जाता, अर्थात् 'अर्हत् की अवस्था') स्मृतिप्रस्थान का अभ्यास करना चाहिये। महाराज! भिक्षु में वानर का यही दूसरा गुण होना चाहिये। महाराज! धर्मसेनापति स्थविर शारिपुत्र ने भी कहा है—

'टहलते, खड़े होते, बैठते और सोते हुये भी भिक्षु अच्छे जंगल में ही रहे। बुद्धों ने इसी की प्रशंसा की है।।'

पहला गर्दभवर्ग समाप्त।।

उदान— इस वर्ग में— गर्दभ, कुक्कुट, कलन्दक, द्वीपिनी, द्वीपिक, कूर्म, वंश, चाप, वायस और मर्कट— ये दस प्रश्न संगृहीत हैं।।

२. समुद्रवर्ग

१. अलाबूलताङ्गप्रश्न— ११. ''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में अलाबू (लौकी) की लता का एक गुण होना चाहिए, वह एक गुण क्या है?'' (१) ''महाराज! जैसे लौकी की लता घास, लकड़ी या किसी दूसरी लता पर अपनी फुनगियाँ फेंक फैल कर बढ़ती जाती है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को ध्यान का आलम्बन कर अर्हत्-पद तक पहुँच जाना चाहिये। महाराज! भिक्षु में लौकी का यही एक गुण होना चाहिये। महाराज! धर्मसेनापति *शारिपुत्र* ने भी कहा है—

तथेव बुद्धपुत्तेन, अरहत्तफलकामिना।
आरम्मणं आलम्बित्वा, वड्डितब्बं असेक्खफले''' ति॥

२. पदुमङ्गपञ्हो

१२. ''भन्ते नागसेन, 'पदुमस्स तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, पदुमं उदके जातं उदके सम्बद्धं अनुपलित्तं उदकेन; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन कुले गणे लाभे यसे सक्कारे सम्माननाय परिभोगपच्चयेसु च सब्बत्थ अनुपलित्तेन भवितब्बं। इदं, महाराज, पदुमस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) ''पुन च परं, महाराज, पदुमं उदका अच्चुग्गम्म ठाति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सब्बलोकं अभिभवित्वा अच्चुग्गम्म लोकुत्तरधम्मे ठातब्बं। इदं, महाराज, पदुमस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) ''पुन च परं, महाराज, पदुमं अप्पमत्तकेन पि अनिलेन ईरितं चलति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन अप्पमत्तकेसु पि किलेसेसु संयमो करणीयो, भयदस्साविना विहरितब्बं। इदं, महाराज, पदुमस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन— 'अणुमत्तेसु वज्जेसु भयदस्सावी समादाय सिक्खति सिक्खापदेसू'' ति। *(म०नि०, १-३३; दी०नि०, २-४३)*.

३. बीजङ्गपञ्हो

१३. ''भन्ते नागसेन, 'बीजस्स द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, बीजं अप्पकं पि समानं भद्दके खेत्ते वुत्तं देवे सम्मा धारं

'जैसे लौकी की लता घास, लकड़ी या किसी दूसरी लता पर चढ़कर फुनगियों को बढ़ा कर फैल जाती है। वैसे ही, अर्हत्-पद की इच्छा रखने वाले बुद्धपुत्र को ध्यान का आलम्बन कर अशैक्ष-फल तक पहुँच जाना चाहिये।।'

२. पद्माङ्गप्रश्न– १२. ''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में कमल के तीन गुण होने चाहिये, वे तीन गुण कौन से हैं?''

(१) ''महाराज! जैसे कमल जल में पैदा होता है और जल में ही बढ़ता है, परन्तु वह जल से लिप्त नहीं होता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को किसी कुल, गण, लाभ, यश, सत्कार, सम्मान या किसी उपभोग्य पदार्थ से लिप्त नहीं होना चाहिये। महाराज! भिक्षु में कमल का यह पहला गुण होना चाहिये।

(२) ''महाराज! जैसे कमल जल से ऊपर उठ कर आकाश में खड़ा रहता है, वैसे ही योगसाधक भिक्षु को संसार छोड़कर लोकोत्तर-धर्म में खड़ा रहना चाहिये। महाराज! भिक्षु में कमल का यह दूसरा गुण होना चाहिये।

(३) ''महाराज! फिर जैसे थोड़ी हवा चलने पर भी कमलनाल हिलने लगता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को क्लेश से भी हट जाना चाहिये, उसमें बड़ा भय देखना चाहिये! महाराज! भिक्षु में कमल का यह तीसरा गुण होना चाहिये। महाराज! देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

''अणुमात्र दोष में भी भय देखने वाला शिक्षापदों को सीखता है।'

पवेच्छन्ते सुबहूनि फलानि अनुदस्सति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन यथा पटिपादितं सीलं केवलं सामञ्ञफलमनुदस्सति, एवं सम्मापटिपज्जितब्बं। इदं, महाराज, बीजस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) "पुन च परं, महाराज, बीजं सुपरिसोधिते खेत्ते रोपितं खिप्पमेव संविरूहति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन मानसं सुपरिग्गहितं सुञ्ञागारे परिसोधितं सतिपट्ठानखेत्तवरे खित्तं खिप्पमेव विरूहति। इदं, महाराज, बीजस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *अनुरुद्धेन*—

'यथा पि खेत्ते परिसुद्धं, बीजं चस्स पतिट्ठितं।
विपुलं तस्स फलं होति, अपि तोसेति कस्सकं॥
'तथेव योगिनो चित्तं, सुञ्ञागारे विसोधितं।
सतिपट्ठानखेत्तम्हि, खिप्पमेव विरूहती' " ति॥

४. सालकल्याणिकङ्गपञ्हो

१४. "भन्ते नागसेन, 'सालकल्याणिकाय एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि कतमं तं एकं अङ्गं गहेतब्बं" ति? (१) "यथा, महाराज, सालकल्याणिका नाम अन्तो पठवियं येव अभिवड्ढति हत्थसतं पि भिय्यो पि; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन चत्तारि सामञ्ञफलानि चतस्सो पटिसम्भिदा छळभिञ्ञायो केवलं च समणधम्मं सुञ्ञागारे येव परिपूरयितब्बं। इदं, महाराज, सालकल्याणिकाय एकं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *राहुलेन*—

'सालकल्याणिका नाम, पादपो धरणीरुहो।
अन्तोपठवियं येव, सतहत्थो पि वड्ढति॥

---

३. बीजाङ्गप्रश्न— १३. "भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में बीज के दो गुण होने चाहिये, वे दो गुण कौन से हैं?"

(१) "महाराज! जैसे केवल थोड़ा बीज अच्छे खेत में बोये जाने और पानी बरसने पर बहुत फल देता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को शील का भलीभाँति पालन करने से श्रमण के सभी फल मिल जाते हैं। इसलिये उसे उचित रीति से शील का पालन करना चाहिये। महाराज! भिक्षु में बीज का यह पहला गुण होना चाहिये।

(२) "महाराज! फिर जैसे अच्छी तरह शुद्ध किये गये खेत में बीज रोपे जाने से शीघ्र ही जम जाता है, वैसे ही योगसाधक भिक्षु का एकान्त में शुद्ध और संयत किया हुआ चित्त स्मृतिप्रस्थान के उत्तम खेत में रोपे जाने से शीघ्र ही स्थिर हो जाता है। महाराज! स्थविर *अनुरुद्ध* ने भी कहा है—

'जैसे अच्छे जोते गये खेत में रोपने पर बीज खूब फलता है और कृषक को सन्तुष्ट कर देता है; वैसे ही एकान्त में शुद्ध किया गया योगी का चित्त स्मृतिप्रस्थान के खेत में शीघ्र ही लग जाता है।।'

४. शालकल्याणिकाङ्गप्रश्न— १४. "भन्ते! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में शालवृक्ष का एक गुण होना चाहिये, वह एक गुण क्या है?" (१) "महाराज! जैसे शालवृक्ष पृथ्वी के नीचे सौ हाथ या उससे कुछ अधिक भी बढ़ता है, वैसे ही योगसाधक भिक्षु को चारों श्रामण्यफल, चार प्रतिसंविदाएँ, छह अभिज्ञाएँ, श्रमण के सभी धर्म शून्यागार (एकान्त) में ही पूर्ण करने चाहिये। महाराज! शालवृक्ष का यही एक गुण भिक्षु में होना चाहिये। महाराज! *स्थविर राहुल* ने भी कहा है—

'यथा कालम्हि सम्पत्ते, परिपाकेन सो दुमो।
उग्गञ्छित्वान एकाहं, सतहत्थो पि वड्ढति॥
'एवमेवाहं महावीरं, सालकल्याणिका विय।
अब्भन्तरे सुञ्ञागारे, धम्मतो अभिवड्ढयिं' '' तिं॥

५. नावङ्गपञ्हो

१५. ''भन्ते नागसेन, 'नावाय तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी'' ' ति?

(१) ''यथा, महाराज, नावा बहुविधदारुसङ्घाटसमवायेन बहुं पि जनं तारयति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन आचारसीलगुणवत्तपटिवत्तबहुविध-धम्मसङ्घाटसमवायेन सदेवको लोको तारयितब्बो। इदं, महाराज, नावाय पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) ''पुन च परं, महाराज, नावा बहुविधऊमित्थनितवेगविसटमावट्टवेगं सहति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन बहुविधकिलेसऊमिवेगं लाभसक्कारयससिलोक-पूजनवन्दना परकुलेसु निन्दापसंसासुखदुक्खसम्माननविमाननबहुविधदोसऊमिवेगं च सहितब्बं। इदं, महाराज, नावाय दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) ''पुन च परं, महाराज, नावा अपरिमितमनन्तमपारमक्खोभितगम्भीरे महतिमहा-घोसे तिमितिमिङ्गलमकरमच्छगणाकुले महतिमहासमुद्दे चरति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन तिपरिवट्टद्वादसाकारचतुसच्चाभिसमयप्पटिवेधे मानसं सञ्चारयितब्बं। इदं, महाराज, नावाय ततियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *संयुत्तनिकाय*वरे

'पृथ्वी पर पैदा होने वाला शालकल्याणिका नामक वृक्ष पृथ्वी के भीतर ही भीतर सौ हाथ बढ़ जाता है। वह वृक्ष बढ़ते-बढ़ते, समय पा कर, एक दिन सौ हाथ बड़ा हो जाता है। हे भगवन्! उसी शालवृक्ष के समान शून्यागार में रह कर मैं धर्म में उन्नति पा गया॥'

५. नौकाङ्गप्रश्न– १५. ''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में नाव के तीन गुण होने चाहियें, वे तीन गुण कौन से हैं?''

(१) ''महाराज! जैसे नाव अनेक प्रकार की लकड़ियों को जोड़कर निर्मित की जाती है, जो बहुत लोगों को किनारे लगा देती है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को आचार, शील, व्रत, नियम इत्यादि अनेक धर्मों को मिला कर यह भवसागर पार करना चाहिये। महाराज! भिक्षु में नाव का यह पहला गुण होना चाहिये।

(२) ''महाराज! फिर जैसे नाव गरजती हुई तरङ्गों और बड़े-बड़े भँवर के वेग सहती है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अनेक प्रकार के क्लेश, लाभ, सत्कार, यश, प्रशंसा, पूजा, वन्दना, दूसरे कुलों की निन्दा या प्रशंसा, सुख, दुःख, सम्मान, अपमान–यों और भी अनेक दोषों की तरङ्गों के वेग को सह लेना चाहिये। महाराज! भिक्षु में नाव का यह दूसरा गुण होना चाहिये।

(३) ''महाराज! फिर जैसे नाव अगाध समुद्र में तैरती है, जो अनन्त, अपार, गम्भीर, गहरा, जोरों से गजरता हुआ, तथा तिमि, तिमिङ्गिल, घड़ियाल और बड़ी-बड़ी मछलियों से भरा है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को चार आर्यसत्यों में, जो त्रिरावृत्त होने से बारह प्रकार के हो जाते हैं, मन लगाना चाहिये। महाराज! भिक्षु में नाव का यह तीसरा गुण होना चाहिये। महाराज! *संयुक्तनिकाय* के 'सत्यसंयुक्त'

सच्चसंयुत्ते—'वितक्केन्ता च खो तुम्हे, भिक्खवे, इदं दुक्खं ति वितक्केय्याथ, अयं दुक्खसमुदयो ति वितक्केय्याथ, अयं दुक्खनिरोधो ति वितक्केय्याथ अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा ति वितक्केय्याथा' '' ति। *(सं० नि०, स० सं०)*

६. नावालग्गनकङ्गपञ्हो

१६. ''भन्ते नागसेन, 'नावालग्गनकस्स द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, नावालग्गनकं बहुऊमिजालाकुलविक्खोभितसलिलतले महतिमहासमुद्दे नावं लग्गेति ठपेति, न देति दिसाविदिसं हरितुं; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन रागदोसमोहूमिजाले महतिमहावितक्कसम्पहारे चित्तं लग्गेतब्बं, न दातब्बं दिसाविदिसं हरितुं। इदं, महाराज, नावालग्गनकस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) ''पुन च परं, महाराज, नावालग्गनकं न प्लवति, विसीदति, हत्थसते पि उदके नावं लग्गेति, ठानमुपनेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन लाभयससक्कार-माननवन्दनपूजनअपचितीसु लाभग्गयसग्गे पि न प्लवितब्बं, सरीरयापनमत्तके येव चित्तं ठपेतब्बं। इदं, महाराज, नावालग्गनकस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *सारिपुत्तेन* धम्मसेनापतिना—

'यथा समुद्दे लग्गनकं न प्लवति, विसीदति।
तथेव लाभसक्कारे, मा प्लवथ, विसीदथा' '' ति॥

७. कूपङ्गपञ्हो

१७. ''भन्ते नागसेन, 'कूपस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं एकं अङ्गं

में देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है— 'भिक्षुओ! वितर्क करते हुए तुम्हें यही वितर्क करना चाहिये कि यह दुःख है, यह दुःख का कारण है, यह दुःख का निरोध है और यह दुःखनिरोध करने का मार्ग है।''

६. नौकालग्नकाङ्गप्रश्न— १६. ''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में नौकालग्नक (लंगर) के दो गुण होने चाहिये, वे दो गुण कौन से हैं?

(१) ''महाराज! जैसे महासमुद्र की चञ्चल तरङ्गों के नीचे लंगर बैठ जाता है, नाव को रोक देता है और इधर–उधर जाने नहीं देता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को राग, द्वेष, मोह, की बड़ी–बड़ी तरङ्गों में अपने चित्त का लंगर डाल, अपने को स्थिर कर विचलित नहीं होने देना चाहिये। महाराज! लङ्गर का यह पहला गुण भिक्षु में होने चाहिये।

(२) ''फिर महाराज! जैसे लङ्गर जल के ऊपर नहीं आता, किन्तु सौ हाथ गहरे पानी में भी डूब कर बैठ जाता है और नाव को वहीं लगा देता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को लाभ, सत्कार, यश, प्रतिष्ठा, पूजा, वन्दना, आदर, यहाँ तक कि स्वर्ग मिल जाने पर भी गर्व नहीं करना चाहिये; किन्तु शरीर–निर्वाह भर करने में चित्त को स्थिर रखना चाहिये। महाराज! भिक्षु में लङ्गर का यही दूसरा गुण होना चाहिये। महाराज! धर्मसेनापति *शारिपुत्र* ने भी कहा है—

'जैसे समुद्र में लङ्गर उतराता नहीं किन्तु बैठ जाता है; वैसे ही लाभ सत्कार से गर्व न करो, अपने को गम्भीर और स्थिर रखो।।'

७. कूपाङ्गप्रश्न— १७. ''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि पतवार का एक गुण होना चाहिये, वह एक

गहेतब्बं' ति?'' ''यथा, महाराज, कूपो रज्जुं च वरत्तं च लङ्कारं च धारेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सतिसम्पजञ्ञसमन्नागतेन भवितब्बं, अभिक्कन्ते पटिक्कन्ते आलोकिते विलोकिते सम्मिञ्जिते पसारिते सङ्घाटिपत्तचीवरधारणे असिते पीते खायिते सायिते उच्चारपस्सावकम्मे गते ठिते निसिन्ने सुत्ते जागरिते भासिते तुण्हीभावे सम्पजानकारिना भवितब्बं। इदं, महाराज, कूपस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन— 'सतो, भिक्खवे, भिक्खु विहरेय्य सम्पजानो। अयं वो अम्हाकं अनुसासनी' '' ति। *(दी० नि०, महापरि० सु०)*

८. नियामकङ्गपञ्हो

१८. '' भन्ते नागसेन, 'नियामकस्स तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, नियामको रत्तिन्दिवं सततं समितं अप्पमत्तो यत्तप्पयत्तो नावं सारेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन चित्तं नियामयमानेन रत्तिन्दिवं सततं समितं अप्पमत्तेन योनिसो मनसिकारेन चित्तं नियामेतब्बं। इदं, महाराज, नियामकस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *धम्मपदे*—

'अप्पमादरता होथ, सचित्तमनुरक्खथ।
दुग्गा उद्धरथत्तानं, पङ्के सन्नो व कुञ्जरो'' ति॥ *(ध० प० ३२७)*

(२) ''पुन च परं, महाराज, नियामकस्स यं किञ्चि महासमुद्दे कल्याणं वा पापकं वा सब्बं तं विदितं होति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन कुसलाकुसलं सावज्जानवज्जं हीनप्पणीतं कण्हसुक्कसप्पटिभागं विजानितब्बं। इदं, महाराज, नियामकस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

गुण क्या है? (१) ''महाराज! जैसे पतवार रस्सी, चमड़े का बन्धन और लङ्कार धारण करता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को सदा सचेत और सावधान रहना चाहिये— बाहर जाते, लौटते, देखते, भालते, समेटते, पसारते, सङ्घाटि, पात्र और चीवर धारण करते, खाते, पीते, चबाते, चखते, मल–विसर्जन करते, चलते, खड़ा रहते, बैठते, सोते, जागते, कहते या चुप रहते— कभी प्रमाद नहीं करना चाहिये। महाराज! पतवार का यह एक गुण भिक्षु में होना चाहिये। महाराज! देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'भिक्षुओ! साधक–भिक्षु सचेत और सावधान हो कर ही विहार करे! यही मेरा उपदेश है'।''

८. नियामकाङ्गप्रश्न— १८. ''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि कर्णधार के तीन गुण होने चाहिये, वे तीन गुण कौन से हैं?''

(१) ''महाराज! जैसे कर्णधार रात–दिन, हमेशा लगातार अप्रमत्त हो तत्परता से नाव को रास्ते पर ले जाता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को दिन–रात सदा, निरन्तर अप्रमत्त हो कर तत्परता से स्वचित्त को मार्ग पर ले चलना चाहिये। महाराज! भिक्षु में कर्णधार का यही पहला गुण होना चाहिये। महाराज! *धम्मपद* में देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'सदा अप्रमत्त रहो, अपने चित्त को वश में करो। कीचड़ में पड़े बलवान् हाथी के समान अपने को पाप से निकाल लो।।''

(२) ''महाराज! फिर जैसे कर्णधार को यह बात ज्ञात रहती है कि कहाँ संकट है और कहाँ नहीं; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को यह जानना चाहिये कि पाप क्या है और पुण्य क्या? सदोष क्या है और

(३) "पुन च परं, महाराज, नियामको यन्ते मुद्दिकं देति—'मा कोचि यन्तं आमसित्था' ति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन चित्ते संवरमुद्दिका दातब्बा—'मा किञ्चि पापकं अकुसलवितक्कं वितक्केसी' ति। इदं, महाराज, नियामकस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *संयुत्तनिकायवरे*—'मा, भिक्खवे, पापके अकुसले वितक्के वितक्केय्याथ। सेय्यथीदं कामवितक्कं, ब्यापादवितक्कं, विहिंसावितक्कं' " ति।

९. कम्मकारङ्गपञ्हो

१९. "भन्ते नागसेन, 'कम्मकारस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं एकं अङ्गं गहेतब्बं" ति? "यथा, महाराज, कम्मकारो एवं चिन्तयति—'भतको अहं, इमाय नावाय कम्मं करोमि, इमायाहं नावाय वाहसा भत्तवेतनं लभामि, न मे पमादो करणीयो, अप्पमादेन मे अयं नावा वाहेतब्बा' ति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन एवं चिन्तयितब्बं—'इमं खो अहं चातुम्महाभूतिकं कायं सम्मसन्तो सततं समितं अप्पमत्तो उपट्ठितसति सतो सम्पजानो समाहितो एकग्गचित्तो जातिजराब्याधिमरणसोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सूपायासेहि परिमुच्चिस्सामी ति अप्पमादो मे करणीयो' ति। इदं, महाराज, कम्मकारस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *सारिपुत्तेन* धम्मसेनापतिना—

'कायं इमं सम्मसथ, परिजानाथ पुनप्पुनं।
काये सभावं दिस्वान, दुक्खस्सन्तं करिस्सथा" ति। *(सं० नि०)*

१०. समुद्दङ्गपञ्हो

२०. "भन्ते नागसेन, 'समुद्दस्स पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी" ति?

(१) "यथा,महाराज, महासमुद्दो मतेन कुणपेन सद्धिं न संवसति; एवमेव खो,

---

निर्दोष क्या? बुरा क्या है और भला क्या? तथा कृष्ण क्या है और शुक्ल क्या? महाराज! भिक्षु में कर्णधार का यह दूसरा गुण होना चाहिये।"

(३) "महाराज! फिर जैसे कर्णधार अपने कल–पुर्जे को ताला लगा कर रखता है कि कहीं कोई छेड़छाड़ न करे। वैसे ही, योगसाधक भिक्षु को अपने चित्त में संयम का ताला लगाये रखना चाहिये—कहीं कोई पाप, बुरा विचार न चला आवे। महाराज! कर्णधार का यही तीसरा गुण होना चाहिये। महाराज! *संयुत्तनिकाय* में देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—"भिक्षुओ! पापमय विचारों को मन में न आने दो; जैसे, कामवितर्क, व्यापादवितर्क और विहिंसावितर्क'।"

९. कर्मकाराङ्गप्रश्न— १९. "भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में केवट का एक गुण होना चाहिये, वह एक गुण क्या है?" (१) "महाराज! जैसे केवट ऐसा विचारता है— 'मैं वेतन ले इस नाव पर काम करता हूँ। इसी नाव के सहारे मुझे खाना मिलता है। मुझे आलस्य व प्रमाद न कर नाव का काम सावधानी से करना चाहिये'; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को ऐसा चिन्तन करना चाहिये— 'अरे! मेरा शरीर तो चार महाभूतों से मिल कर बना है'—यही मनन करते हुये बराबर अप्रमत्त रहना चाहिये, चित्त को एकाग्र करना चाहिये। और, यह सोचकर कि मुझे जन्म लेने....उपायास से छुटकारा पाना है, कभी प्रमाद नहीं करना चाहिये'। महाराज! भिक्षु में केवट का यह एक गुण होना चाहिये। महाराज! धर्मसेनापति स्थविर शारिपुत्र ने भी कहा है—

महाराज, योगिना योगावचरेन रागदोसमोहमानदिट्ठिमक्खपळासइस्सासमच्छरियमायासठकुटिल-विसमदुच्चरितकिलेसमलेहि सद्धिं न संवसितब्बं। इदं, महाराज, समुद्दस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) "पुन च परं, महाराज, महासमुद्दो मुत्तामणिवेळुरियसङ्खसिलापवाळफळिक-मणिविविधरतननिचयं धारेन्तो पिदहति, न बहि विकिरति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन मग्गफलझानविमोक्खसमाधिसमापत्तिविपस्सनाभिञ्ञाविविधगुणरतनानि अधि-गन्त्वा पिदहितब्बानि, न बहि नीहरितब्बानि। इदं, महाराज, समुद्दस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) "पुन च परं, महाराज, महासमुद्दो महन्तेहि महाभूतेहि सद्धिं संवसति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन अप्पिच्छं सन्तुट्ठं धुतवादं सल्लेखवुत्तिं आचारसम्पन्नं लज्जिं पेसलं गरुं भावनीयं वत्तारं वचनक्खमं चोदकं पापगरहिं ओवादकं अनुसासकं विञ्ञापकं सन्दस्सकं समादपकं समुत्तेजकं सम्पहंसकं कल्याणमित्तं सब्रह्मचारिं उपनिस्साय वसितब्बं। इदं, महाराज, समुद्दस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं।

(४) "पुन च परं, महाराज, महासमुद्दो नवसलिलसम्पुण्णाहि गङ्गा-यमुना-अचिरवती-सरभू-महीआदीहि नदीसतसहस्सेहि अन्तलिक्खे सलिलधाराहि च पूरितो पि सकं वेलं नातिवत्तति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन लाभसक्कारसिलोकवन्दनमाननपूजन-कारणा जीवितहेतु पि सञ्चिच्च सिक्खापदवीतिक्कमो न करणीयो। इदं, महाराज, समुद्दस्स

'अपने शरीर का ही मनन करो, बार-बार जानो कि यह कैसा मलिन है। अपने शरीर की वास्तविकता जानकर ही दुःख का अन्त कर सकोगे।।"

१०. समुद्राङ्गप्रश्न— २०. "भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में समुद्र के पाँच गुण होने चाहियें, वे पाँच गुण कौन से हैं?"

(१) "महाराज! जैसे समुद्र अपने में मृत शव नहीं रहने देता, वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपने में राग, द्वेष, मोह, अभिमान, आत्मदृष्टि, डींग, ईर्ष्या, डाह, मात्सर्य, ठगी, कुटिलता, रूक्षता, दुराचार, और क्लेशमल नहीं रहने देने चाहिये। महाराज! भिक्षु में समुद्र का यही पहला गुण होना चाहिये।

(२) "महाराज! फिर जैसे समुद्र अपने में मोती, मणि, वैदूर्य, शङ्ख, शिला, मूँगा, स्फटिक इत्यादि नाना प्रकार के रत्न धारण करता है, उन्हें छिपाये रहता है, बाहर फैला नहीं देता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपने में मार्ग, फल, ध्यान, विमोक्ष, समाधि, समापत्ति, विपश्यना, अभिज्ञा इत्यादि विविध गुण–रत्नों को प्राप्त कर गुप्त रखना चाहिये, प्रकट नहीं होने देना चाहिये। महाराज! समुद्र का यही दूसरा गुण भिक्षु में होना चाहिये।

(३) "महाराज! फिर जैसे समुद्र बड़े–बड़े जीवों के साथ रहता है; वैसे ही, योगसाधक भिक्षु को अल्पेच्छ, सन्तुष्ट, स्थिरभाषी, पवित्र आचरणों वाले, लज्जावान्, कोमल स्वभाव वाले, आदरणीय, वक्ता, बोलने में समर्थ, उत्साही, पाप की निन्दा करने वाले, दूसरे की सीख सुनने वाले, दूसरों को उपदेश देने वाले, अच्छी बातें बताने वाले सन्मार्ग दिखाने वाले, और धर्म का उपदेश देकर दूसरों में भाव पैदा कर उत्सुकता बढ़ा देने वाले उपकारक भिक्षु के साथ ही रहना चाहिये। महाराज! समुद्र का यह तीसरा गुण भिक्षु में होना चाहिये।

(४) "महाराज! फिर जैसे समुद्र गङ्गा, यमुना, अचिरवती, सरयू, मही आदि अनेकानेक हजारों नदियों के गिरने तथा आकाश से गिरने वाली जलधाराओं से भर कर भी अपनी सीमा नहीं लाँघता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को लाभ, सत्कार, प्रशंसा, वन्दना, प्रतिष्ठा और पूजा मिलने या प्राण निकल जाने

चतुत्थं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन—'सेय्यथापि, महाराज, महासमुद्दो ठितधम्मो वेलं नातिक्कमति; एवमेव खो, महाराज, यं मया सावकानं सिक्खापदं पञ्ञत्तं, तं मम सावका जीवितहेतु पि नातिक्कमन्ती' ति।

(५) "पुन च परं, महाराज, महासमुद्दो सब्बसवन्तीहि गंगायमुनाअचिरवतीसरभूमहीहि अन्तलिक्खे उदकधाराहि पि न परिपूरति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन उद्देसपरिपुच्छासवणधारणविनिच्छयअभिधम्मविनयगाळ्हसुत्तन्तविग्गहपदनिक्खेपपदसन्धि-पदविभत्तिनवङ्गजिनसासनवरं सुणन्तेनापि न तप्पितब्बं। इदं, महाराज, समुद्दस्स पञ्चमं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *सुतसोमजातके*—

'अग्गि यथा तिणकट्ठं डहन्तो, न तप्पति सागरो वा नदीहि।
एवं पि चे पण्डिता राजसेट्ठ, सुत्वा न तप्पन्ति सुभासितेना' " ति॥

दुतियो समुद्दवग्गो निट्ठितो॥

तस्सुद्दानं

लाबुलता च पदुमं, बीजं सालकल्याणिका।
नावा च नावालग्गनं, कूपो नियामको तथा॥
कम्मकारो समुद्दो च, वग्गो तेन पवुच्चती ति॥

३. पथविवग्गो

१. पथविअङ्गपञ्हो

२१. "भन्ते नागसेन, 'पथविया पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी" ति?

पर भी जानबूझकर शिक्षापदों को नहीं तोड़ना चाहिये। महाराज! समुद्र का यह चौथा गुण भिक्षु में होना चाहिये। महाराज! देवातिदेव *भगवान्* ने भी कहा है—महाराज! जैसे समुद्र स्थिर स्वभाव का होकर अपनी सीमा नहीं लाँघता; वैसे ही मेरे भिक्षु मुझसे कहे गये शिक्षापदों को प्राणसङ्कट के समय भी नहीं तोड़ते।

(५) "महाराज! फिर जैसे समुद्र गङ्गा, यमुना, अचिरवती, सरयू, मही, आदि सभी नदियों के गिरने तथा आकाश से गिरने वाली जलधाराओं से भी पूरा-पूरा भर नहीं जाता; वैसे ही, योगसाधक भिक्षु को कभी भी सीखने, धार्मिक चर्चा करने, दूसरों की शिक्षा सुनने, उसका मनन करने, उसकी परीक्षा करने, अभिधर्म, विनय और सूत्र की गम्भीर बातों का अध्ययन करने, विग्रह, वाक्यविन्यास, सन्धि, पदविभक्ति और नौ अंगों वाले बुद्ध के वचन को सुनने से तृप्त (अघा जाना) नहीं होना चाहिये। महाराज! भिक्षु में समुद्र का यही पाँचवाँ गुण होना चाहिये। महाराज! *सुतसोम-जातक* में देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'अग्नि जैसे घास और लकड़ियों को जलाती हुई नहीं अघाती; समुद्र नदियों के जल से नहीं अघाता। हे राजश्रेष्ठ! वैसे ही, पण्डित लोग अच्छी बातों को सुनने से नहीं ऊबते'।।"

दूसरा समुद्रवर्ग समाप्त॥

उदान

इस वर्ग में— लौकी की लता, पद्म, बीज, शालकल्याणिका, नौका, नौकालग्नक, कूप, नियामक, कर्मकार तथा समुद्र— ये इतने प्रश्न व्याख्यात हैं।।

(१) "यथा, महाराज, पठवी इट्ठानिट्ठानि कप्पूरागरु-तगरचन्दनकुङ्कुमादीनि आकिरन्ते पि, पित्तसेम्हपुब्बरुधिरसेदमेदखेळसिङ्घाणिकलसिकमुत्तकरीसादीनि आकिरन्ते पि तादिसा येव; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन इट्ठानिट्ठे लाभालाभे यसायसे निन्दापसंसाय सुखदुक्खे सब्बत्थ तादिना येव भवितब्बं। इदं, महाराज, पठविया पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) "पुन च परं, महाराज, पठवी मण्डनविभूसनापगता सकगन्धपरिभाविता; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन विभूसनापगतेन सकसीलगन्धपरिभावितेन भवितब्बं। इदं, महाराज, पठविया दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) "पुन च परं, महाराज, पठवी निरन्तरमखण्डच्छिद्दा असुसिरा बहला घना वित्थिण्णा; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन निरन्तरमखण्डच्छिद्दमसुसिरबहलघन-वित्थिण्णसीलेन भवितब्बं। इदं, महाराज, पठविया ततियं अङ्गं गहेतब्बं।

(४) "पुन च परं, महाराज, पठवी गामनिगमनगरजनपदरुक्खपब्बतनदीतळाक-पोक्खरणीमिगपक्खिमनुजनरनारीगणं धारेन्तो पि अकिलासु होति; एवमेव, खो, महाराज, योगिना योगावचरेन ओवदन्तेन पि अनुसासन्तेन पि विञ्ञापेन्तेन पि सन्दस्सेन्तेन पि समादपेन्तेन पि समुत्तेजेन्तेन पि सम्पहंसेन्तेन पि धम्मदेसनासु अकिलासुना भवितब्बं। इदं, महाराज, पठविया चतुत्थं अङ्गं गहेतब्बं।

(५) "पुन च परं, महाराज, पठवी अनुनयप्पटिघविप्पमुत्ता; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन अनुनयप्पटिघविप्पमुत्तेन पठवीसमेन चेतसा विहरितब्बं। इदं, महाराज,

---

३ : पृथ्वीवर्ग

१. पृथिव्यङ्गप्रश्न— २१. "भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में पृथ्वी के पाँच गुण होने चाहिये, वे पाँच गुण कौन से हैं?"

(१) "महाराज! जैसे पृथ्वी अच्छे या बुरे कपूर, अगर, तगर, चन्दन, कुङ्कुम या पित्त, कफ, पूय, रुधिर, पसीना, चरबी, थूक, सिंघाणक, लसीका, मल, मूत्र आदि पड़ने पर भी एक ही समान रहती है; वैसे ही, योगसाधक भिक्षु को इष्ट, अनिष्ट, लाभ, अलाभ, यश, अपयश, निन्दा, प्रशंसा, सुख—दुःख सभी अवस्थाओं में समान रहना चाहिये। महाराज! पृथ्वी का यह पहला गुण भिक्षु में होना चाहिये।

(२) "महाराज! जैसे पृथ्वी कोई साज—सज्जा न रख, अपने प्राकृतिक स्वभाव में ही बनी रहती है; वैसे ही, योगसाधक भिक्षु को कोई ठाट—बाट न कर अपने शील—स्वभाव में ही बने रहना चाहिये! महाराज! पृथ्वी का यह दूसरा गुण भिक्षु में होना चाहिये।

(३) "महाराज! फिर जैसे पृथ्वी निरन्तर बिना कहीं टूटे—कटे घनी होकर फैली रहती है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को निरन्तर अखण्ड, पुष्ट और गहन शील वाला होना चाहिये, जिससे कहीं भी कोई कमी न निकाल सके। महाराज! पृथ्वी का यह तीसरा गुण....।

(४) "महाराज! फिर जैसे पृथ्वी गाँव, कस्बा, शहर, जिला, वृक्ष, पहाड़, नदी, तालाब, बावड़ी और मृग, पक्षी, मनुष्य, नर—नारी सभी को धारण करती हुई भी नहीं थकती। वैसे ही, योगसाधक भिक्षु को उपदेश करते, सिखाते, धर्म की बातें बताते, सन्मार्ग दिखाते और दूसरों में भाव पैदा कर उत्सुकता जगाते हुए कभी नहीं थकना चाहिये। महाराज! भिक्षु में पृथ्वी का यह चौथा गुण होना चाहिये।

(५) "महाराज! फिर जैसे पृथ्वी न तो किसी से अनुनय करती है और न किसी से द्वेष। वैसे

पठविया पञ्चमं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, उपासिकाय *चूळसुभद्दाय* सकसमणे परिकित्तयमानाय—

'एकं चे बाहं वासिया, तच्छे कुपितमानसा।
एकं चे बाहं गन्धेन, आलिम्पेय्य पमोदिता॥
अमुस्मिं पटिघो नत्थि, रागो अस्मिं न विज्जति।
पठवीसमचित्ता ते, तादिसा समणा ममा' ''ति॥

२. आपङ्गपञ्हो

२२. ''भन्ते नागसेन, 'आपस्स पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, आपो सुसण्ठितमकम्पितमलुळितसभावपरिसुद्धो; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन कुहनलपननेमित्तकनिप्पेसिकतं अपनेत्वा सुसण्ठितमकम्पित-मलुळितसभावपरिसुद्धाचारेन भवितब्बं। इदं, महाराज, आपस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) ''पुन च परं, महाराज, आपो सीतलसभावसण्ठितो; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सब्बसत्तेसु खन्तिमेत्तानुद्दयसम्पन्नेन हितेसिना अनुकम्पकेन भवितब्बं। इदं, महाराज, आपस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) ''पुन च परं, महाराज, आपो असुचिं सुचिं करोति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन गामे वा अरञ्ञे वा उपज्झाये उपज्झायमत्तेसु आचरिये आचिरयमत्तेसु सब्बत्थ अनधिकरणेन भवितब्बं अनवकासकारिना। इदं, महाराज, आपस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं।

ही, योगसाधक भिक्षु को न किसी की अनुनय (चापलूसी) करनी चाहिये और न किसी से द्वेष रखना चाहिये, उसका चित्त सौम्य होना चाहिये। महाराज! पृथ्वी का यही पाँचवाँ गुण भिक्षु में होना चाहिये। महाराज! अपने भिक्षुओं की प्रशंसा करती हुई छोटी *सुभद्रा* ने कहा था—

'कोई क्रुद्ध हो उनकी एक बाँह को वासी (कुल्हाड़े), बसुले से काट दे या कोई प्रसन्न हो उनकी एक बाँह में चन्दन का लेप करे। तो भी, न वे उससे द्वेष करेंगे और न इससे प्रेम; उन भिक्षुओं का चित्त तो मानो पृथ्वी के समान है'।।''

२. आपङ्ग(जलाङ्ग)प्रश्न— २२. ''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि एक भिक्षु में जल के पाँच गुण होने चाहिये, वे पाँच गुण कौन से हैं?''

(१) ''महाराज! जैसे किसी पात्र में रखा गया जल निश्चल शान्त और शुद्ध होता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को कुहन, लपन, नैमित्तिक और निप्पेसिकता से रहित हो, स्थिर और शान्त स्वभाव का शुद्ध आचरण वाला होना चाहिये। महाराज! जल का यह पहला गुण....।

(२) ''महाराज! फिर जैसे जल शीतल स्वभाव होता है; वैसे ही, योगसाधक भिक्षु को सभी जीवों के प्रति क्षमाशील, मैत्रीभाव वाला, दयालु, हितैषी और कृपापूर्ण होना चाहिये। महाराज! जल का यह दूसरा गुण....।

(३) ''महाराज! फिर जैसे जल किसी भी अपवित्र वस्तु को निर्मल कर देता है; वैसे ही, योग-साधक भिक्षु को गाँव, जंगल या और कहीं भी अपने उपाध्याय, आचार्य या गुरुजन से कभी कुछ कलह नहीं करना चाहिये, उनके प्रति कोई प्रमाद नहीं करना चाहिये। महाराज! जल का यही तीसरा गुण....।

(४) "पुन च परं, महाराज, आपो बहुजनपत्थितो; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन अप्पिच्छसन्तुट्ठपविवित्तपटिसल्लानेन सततं सब्बालोकमभिपत्थितेन भवितब्बं। इदं, महाराज, आपस्स चतुत्थं अङ्गं गहेतब्बं।

(५) "पुन च परं, महाराज, आपो न कस्सचि अहितमुपदहति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन परभण्डनकलहविग्गहविवादरित्तज्झानअरतिजननं कायवचीचित्तेहि पापकं न करणीयं। इदं, महाराज, आपस्स पञ्चमं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *कण्डजातके*—

'वरं चे मे अदो सक्क, सब्बभूतानमिस्सर।
न मनो वा सरीरं वा, मं कते सक्क कस्सचि॥
कदाचि उपहञ्ञेथ, एतं सक्क वरं वरे' " ति॥

३. तेजङ्गपञ्हो

२३. "भन्ते नागसेन, 'तेजस्स पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी" ति?

(१) "यथा, महाराज, तेजो तिणकट्ठसाखापलासं डहति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन ये ते अब्भन्तरा वा बाहिरा वा किलेसा इट्ठानिट्ठारम्मणानुभवना सब्बे ते ञाणग्गिना डहितब्बा। इदं, महाराज, तेजस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) "पुन च परं, महाराज, तेजो निद्दयो अकारुणिको; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सब्बकिलेसेसु कारुञ्ञानुद्दया न कातब्बा। इदं, महाराज, तेजस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

---

(४) "महाराज! फिर जैसे जल को सभी लोग चाहते हैं; वैसे ही, योगसाधक भिक्षु को अल्पेच्छ, सन्तुष्ट, एकान्तप्रिय और ध्यान करने का अभ्यासी बन, सदा सभी लोगों का प्रिय हो कर रहना चाहिये। महाराज! जल का यही चौथा गुण....।

(५) "महाराज! जैसे जल किसी का भी अहित नहीं करता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को दूसरे से झगड़ा, कलह, विवाद या बहस नहीं करनी चाहिये, किसी को छोटा और तुच्छ नहीं समझना चाहिये। किसी के प्रति असन्तोष या क्रोध नहीं करना चाहिये। शरीर, वचन और मन से कोई पाप नहीं करना चाहिये। महाराज! जल का यही पाँचवाँ गुण....। महाराज! *कण्हजातक* में देवातिदेव भगवान् ने कहा है—

'सभी भूतों के ईश्वर हे शक्र! यदि मुझे वर देना चाहते हो, तो हे शक्र! मैं आप से 'मन और कर्म से कोई किसी को कहीं भी दुःख न दे' यही एक श्रेष्ठ वर माँगता हूँ'।"

३. अग्निअङ्गप्रश्न— २३. "भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में अग्नि के पाँच गुण होने चाहिये, वे कौन से पाँच गुण हैं?"

(१) "महाराज! जैसे अग्नि घास, लकड़ी, डाल और पत्ते जला देती है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को भीतर और बाहर के विषयों पर होने वाले इष्ट और अनिष्ट सभी क्लेशों को ज्ञान की अग्नि में जला देना चाहिये। महाराज! अग्नि का यह पहला गुण....।

(२) "महाराज! फिर जैसे अग्नि निर्दय और कठोर होती है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को क्लेश दूर करने में कोई दया या करुणा नहीं दिखानी चाहिये। महाराज! अग्नि का यह दूसरा गुण....।

(३) "पुन च परं, महाराज, तेजो सीतं पटिहनति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन विरियसन्तापतेजं अभिजनेत्वा किलेसा पटिहन्तब्बा। इदं, महाराज, तेजस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं।

(४) "पुन च परं, महाराज, तेजो अनुनयप्पटिघविप्पमुत्तो उण्हमभिजनेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन अनुनयप्पटिघविप्पमुत्तेन तेजोसमेन चेतसा विहरितब्बं। इदं, महाराज, तेजस्स चतुत्थं अङ्गं गहेतब्बं।

(५) "पुन च परं, महाराज, तेजो अन्धकारं विधमति आलोकं दस्सयति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन अविज्जन्धकारं विधमित्वा ञाणालोकं दस्सयितब्बं। इदं, महाराज, तेजस्स पञ्चमं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, *भगवता* देवातिदेवेन सकं पुत्तं राहुलं ओवदन्तेन— 'तेजोसमं, राहुलं, भावनं भावेहि; तेजोसमं हि ते, राहुल, भावनं भावयतो अनुप्पन्ना चेव अकुसला धम्मा पुप्पज्जन्ति, उप्पन्ना च अकुसला धम्मा चित्तं न परियादाय ठस्सन्ती' " ति।

४. वायुङ्गपञ्हो

२४. "भन्ते नागसेन, 'वायुस्स पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी" ति?

(१) "यथा, महाराज, वायु सुपुप्फितवनसण्डन्तरं अभिवायति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन विमुत्तिवरकुसुमपुप्फितारम्मणवनन्तरे रमितब्बं। इदं, महाराज, वायुस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) "पुन च परं, महाराज, वायु धरणीरुहपादपगणे मथयति; एवमेव खो, महाराज,

---

(३) "महाराज! फिर जैसे अग्नि ठण्ढ दूर करती है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपने उत्साह की अग्नि से क्लेश दूर कर देना चाहिये। महाराज! अग्नि का यही तीसरा गुण....।

(४) "महाराज! जैसे अग्नि न तो किसी की चापलूसी करती है और न किसी से द्वेष, सभी को समान रूप से गर्मी देती है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अग्नि के समान तेजस्वी हो कर रहना चाहिये— किसी की न तो अनुनय करनी चाहिये और न किसी से द्वेष। महाराज! अग्नि का यही चौथा गुण....।

(५) "फिर जैसे अग्नि अन्धकार को दूर करती है और प्रकाश फैलाती है। वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अज्ञान दूर कर ज्ञान का प्रकाश फैलाना चाहिये। महाराज! अग्नि का यही पाँचवा गुण....। महाराज! अपने पुत्र राहुल को शिक्षा देते हुए देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'राहुल! तेज (=अग्नि) के समान भावना का अभ्यास कर। इस के समान भावना करने से अनुत्पन्न अकुशल धर्म उत्पन्न नहीं होते और उत्पन्न अकुशल चित्त में ठहर नहीं पाते'।"

४. वायु–अङ्गप्रश्न— "भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में वायु के पाँच गुण होने चाहियें, वे कौन से पाँच गुण हैं?"

(१) "महाराज! जैसे वायु पुष्पित–पल्लवित प्रदेश (षण्ड) के जङ्गल–झाड़ से हो कर बहती है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को विमुक्ति के पुष्पित–पल्लवित ध्यान के झाड़–जंगल में रमण करना चाहिये। महाराज! वायु का यह पहला गुण....।

(२) "महाराज! फिर जैसे वायु पृथ्वी पर उगने वाले सभी वृक्षों को धुनती रहती है; वैसे ही

योगिना योगावचरेन वनन्तरगतेन सङ्खारे विचिनन्तेन किलेसा मथयितब्बा। इदं, महाराज, वायुस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) "पुन च परं, महाराज, वायु आकासे चरति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन लोकुत्तरधम्मेसु मानसं सञ्चारयितब्बं। इदं, महाराज, वायुस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं।

(४) "पुन च परं, महाराज, वायु गन्धं अनुभवति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन अत्तनो सीलसुरभिगन्धो अनुभवितब्बो। इदं, महाराज, वायुस्स चतुत्थं अङ्गं गहेतब्बं।

(५) "पुन च परं, महाराज, वायु निरालयो अनिकेतवासी; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन निरालयमनिकेतमसन्थवेन सब्बत्थ विमुत्तेन भवितब्बं। इदं, महाराज, वायुस्स पञ्चमं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *सुत्तनिपाते*—

'सन्थवतो भयं जातं, निकेता जायती रजो।
अनिकेतमसन्थवं, एतं वे मुनिदस्सनं' " ति॥ *(सु० नि०, १.१२.१)*

५. पब्बतङ्गपञ्हो

२५. "भन्ते नागसेन, 'पब्बतस्स पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी" ति?

(१) "यथा, महाराज, पब्बतो अचलो अकम्पितो असम्पवेधी; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सम्मानने विमानने सक्कारे असक्कारे गरुकारे अगरुकारे यसे अयसे निन्दाय पसंसाय सुखे दुक्खे इट्ठानिट्ठेसु सब्बत्थ रूपसद्दगन्धरसफोट्ठब्बधम्मेसु रजनीयेसु न मुय्हितब्बं; न कम्पितब्बं न चलितब्बं, पब्बतेन विय अचलेन भवितब्बं। इदं, महाराज, पब्बतस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन—

योगी भिक्षु को जंगल में रह संसार की अनित्यता का मनन करते हुये क्लेश धुन–धुन कर झाड़ देने चाहियें।

(३) "महाराज! फिर जैसे वायु आकाश में चलती है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को लोकात्तर धर्मों में ही लगा रहना चाहिये। महाराज! वायु का यह तीसरा गुण....।

(४) "महाराज! फिर जैसे वायु अपने गन्ध को उड़ा कर ले जाती है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपने शील की गन्ध उड़ानी चाहिये। महाराज! वायु का यह चौथा गुण....।

(५) "महाराज! फिर जैसे वायु विना किसी घर–द्वार की होती है, कहीं एक जगह घर नहीं बनाती; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को घर–द्वार छोड़, विना किसी बन्धु–बान्धव के स्वच्छन्द रहना चाहिये। महाराज! वायु का यह पाँचवाँ गुण....। महाराज! *सुत्तनिपात* में देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'आत्मस्तुति सुनने से चिन्ता होती है, गृहस्थ में राग उत्पन्न होता है। अतः न आत्मस्तुति सुने और न घर में रहे। साधुजनों की यही परम्परा है'।।"

५. पर्वताङ्गप्रश्न— २५. "भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु को पर्वत के पाँच गुण ग्रहण करना चाहिये, वे कौन से हैं?"

(१) "महाराज! जैसे पहाड़ अचल, अकम्प्य और स्थिर होता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को सम्मान, अपमान, सत्कार, तिरस्कार, प्रतिष्ठा, अप्रतिष्ठा, यश, अपयश, निन्दा, प्रशंसा, सुख–दुःख, इष्ट, अनिष्ट और सभी रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श के लुभाने वाले धर्मों में, राग, द्वेष पैदा करने वाले धर्मों

'सेलो यथा एकघनो, वातेन न समीरति।
एवं निन्दापसंसासु, न समिञ्जन्ति पण्डिता' ति॥ *(ध०प०, ८१)*

(२) ''पुन च परं, महाराज, पब्बतो थद्धो न केनचि संसट्ठो; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन थद्धेन असंसट्ठेन भवितब्बं। न केनचि संसग्गो करणीयो। इदं, महाराज, पब्बतस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन—

'असंसट्ठं गहट्ठेहि, अनागारेहि चूभयं।
अनोकसारिमप्पिच्छं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं' ति॥ *(सु०नि०, ३.९.१५)*

(३) ''पुन च परं, महाराज, पब्बते बीजं न विरूहति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सकमानसे किलेसा न विरूहापेतब्बा। इदं, महाराज, पब्बतस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, *थेरेन सुभूतिना*—

'रागूपसंहितं चित्तं, यदा उप्पज्जते मम।
सयमेव पच्चवेक्खित्वा, एकग्गो तं दमेमहं॥
'रज्जसे रजनीयेसु, दुस्सनीयेसु दुस्ससे।
मुय्हसे मोहनीयेसु, निक्खमस्सु वनातुरं॥
'विसुद्धानं अयं वासो, निम्मलानं तपस्सिनं।
मा खो विसुद्धं दूसेसि, निक्खमस्सु वनातुरं' ति॥

(४) ''पुन च परं, महाराज, पब्बतो अच्चुग्गतो ति; एवमेव खो, महाराज, योगिना

में द्वेष और मोह पैदा करने वाले धर्मों में मोह नहीं करना चाहिये। उनसे कभी भी विचलित नहीं होना चाहिये। पर्वत के समान अचल और स्थिर होना चाहिये। महाराज! भिक्षु में पर्वत का यह पहला गुण होना चाहिये। महाराज! देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'सर्वथा घना पर्वत वायु से हिल नहीं सकता; वैसे ही, निन्दा और प्रशंसा के पण्डित विचलित नहीं होते'।।''

(२) ''महाराज! फिर जैसे कठोर पर्वत किसी से संसर्ग नहीं रखता, अकेला रहता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को कठोर होकर बहुत मिलना जुलना नहीं चाहिये, किसी से संसर्ग नहीं रखना चाहिये। महाराज! पर्वत का यही दूसरा गुण....। महाराज! देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'गृहस्थ और प्रव्रजित दोनों से संसर्गरहित अकेले चलने वाले अल्पेच्छ प्रव्रजित को मैं ब्राह्मण कहता हूँ'।''

(३) ''महाराज! फिर जैसे पर्वत पर बीज नहीं जम पाता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपने मन में क्लेश जमने नहीं देना चाहिये। महाराज! भिक्षु में पर्वत का यही तीसरा गुण होना चाहिये। महाराज! *स्थविर सुभूति* ने भी यही कहा है—

'मेरे चित्त में जब राग उत्पन्न होता है, स्वयं उसे देख कर अकेला ही दबा देता हूँ।।

'यदि राग करने वाले धर्मों में तुम राग करते हो, द्वेष करने वाले धर्मों में द्वेष और मोहने वाले धर्मों से मूढ़ हो जाते हो तो इस वन से निकल जाओ।।

'यह स्थान निर्मल एवं विशुद्ध तपस्वियों का है, इस पवित्र स्थान को दूषित न करो, इस वन से निकल जाओ।।'

योगावचरेन आणच्चुग्गतेन भवितब्बं। इदं, महाराज, पब्बतस्स चतुत्थं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन—

'पमादं अप्पमादेन, यदा नुदति पण्डितो।
पञ्ञापासादमारुय्ह, असोको सोकिनिं पजं।
पब्बतट्ठो व भुम्मट्ठे, धीरो बाले अवेक्खती'' 'ति॥ *(ध०प०,२८)*

(५) ''पुन च परं, महाराज, पब्बतो अनुन्नतो अनोनतो; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन उन्नतावनति न करणीया। इदं, महाराज, पब्बतस्स पञ्चमं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, उपासिकाय *चूळसुभद्दाय* सकसमणे परिकित्तयमानाय—

'लाभेन उन्नतो लोको, अलाभेन च ओनतो।
लाभालाभेन एकट्ठा, तादिसा समणा ममा' '' ति॥

६. आकासङ्गपञ्हो

२६. '' भन्ते नागसेन, 'आकासस्स पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, आकासो सब्बसो अगय्हो; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सब्बसो किलेसेहि अगय्हेन भवितब्बं। इदं, महाराज, आकासस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) ''पुन च परं, महाराज, आकासो इसितापसभूतदिजगणानुसञ्चरितो; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन 'अनिच्चं, दुक्खं, अनत्ता' ति सङ्खारेसु मानसं सञ्चारयितब्बं। इदं, महाराज, आकासस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

---

(४) ''महाराज! फिर जैसे पर्वत की चोटी ऊपर उठी रहती है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को ज्ञान से ऊँचा उठे रहना चाहिये। महाराज! पर्वत का यही चौथा गुण....। महाराज! देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'जब पण्डित प्रमाद को अप्रमाद से दूर कर देता है, तब प्रज्ञा की अटारी (प्रासाद) पर चढ़, अपने शोक से रहित हो पर्वत पर चढ़ा जैसे नीचे के लोगों को देखता है; वैसे ही वह विज्ञ संसार में शोकमग्न पड़े अज्ञ लोगों को देखता है।'

(५) ''महाराज! जैसे पर्वत न तो उठाया जा सकता है और न झुकाया; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को दूसरों की अपेक्षा न चढ़ जाना चाहिये और न गिर जाना। महाराज! पर्वत का यही पाँचवाँ गुण भिक्षु में होना चाहिये। महाराज! भगवान् ने अपने श्रमणों की प्रशंसा करती हुई छोटी भिक्षुणी *सुभद्रा* को कहा था—

'संसार लाभ से उठ जाता है और अलाभ से गिर जाता है, किन्तु मेरे श्रमण लाभ और अलाभ दोनों में समान रहते हैं'।।''

६. आकाशाङ्गप्रश्न— २६. ''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में आकाश के पाँच गुण होने चाहियें, वे पाँच गुण कौन से हैं?''

(१) ''महाराज! जैसे आकाश किसी तरह पकड़ा नहीं जा सकता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को क्लेशों से किसी तरह भी बँधना नहीं चाहिये। महाराज! आकाश का यह पहला गुण....।

(२) ''महाराज! फिर जैसे आकाश में ऋषि, तपस्वी, देव और पक्षी विचरण करते हैं; वैसे ही

(३) "पुन च परं, महाराज, आकासो सन्तासनीयो; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सब्बभवपटिसन्धिसु मानसं उब्बेजयितब्बं। अस्सादो न कातब्बो। इदं, महाराज, आकासस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं।

(४) "पुन च परं, महाराज, आकासो अनन्तो अप्पमाणो अपरिमेय्यो; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन अनन्तसीलेन अपरिमितञाणेन भवितब्बं। इदं, महाराज, आकासस्स चतुत्थं अङ्गं गहेतब्बं।

(५) "पुन च परं, महाराज, आकासो अलग्गो असत्तो अपतिट्ठितो अपलिबुद्धो; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन कुले गणे लाभे आवासे पलिबोधे पच्चये सब्बकिलेसेसु च सब्बत्थ अलग्गेन भवितब्बं, अनासत्तेन अपतिट्ठितेन अपलिबुद्धेन भवितब्बं। इदं, महाराज, आकासस्स पञ्चमं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन सकपुत्तं *राहुलं* ओवदन्तेन— 'सेय्यथापि, राहुल, आकासो न कत्थचि पतिट्ठितो, एवमेव खो त्वं, राहुल, आकाससमं भावनं भावेहि। आकाससमं हि ते, राहुल, भावनं भावयतो उप्पन्नुपन्ना मनापामनापा फस्सा चित्तं न परियादाय ठस्सन्ती' " ति। *(म०नि०)*

७. चन्दङ्गपञ्हो

२७. "भन्ते नागसेन, 'चन्दस्स पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी" ति?

(१) "यथा, महाराज, चन्दो सुक्कपक्खे उदयन्तो उत्तरुत्तरिं वड्ढति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन आचारसीलगुणवत्तपटिपत्तिया आगमाधिगमे पटिसल्लाने सतिपट्ठाने

योगसाधक भिक्षु को संस्कारों के प्रति अनित्य, दुःख और अनात्म भाव ही मन में बनाये रखना चाहिये। महाराज! आकाश का यह दूसरा गुण....।

(३) "महाराज! फिर जैसे खुला आकाश भयानक लगता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को संसार में पुनर्जन्म से डरना चाहिये, संसार की स्थिति में कोई स्वाद नहीं लेना चाहिये। महाराज! आकाश का यह तीसरा गुण....।

(४) "महाराज! फिर जैसे आकाश अनन्त, अप्रमाण और अपरिमेय है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अनन्त, शीलवान् और अपरिमित ज्ञानी होना चाहिये। महाराज! भिक्षु में आकाश का यह चौथा गुण....।

(५) "महाराज! फिर जैसे आकाश किसी के सहारे लटका नहीं होता, किसी से जुटा नहीं होता, किसी पर ठहरा नहीं होता और न किसी से रुका होता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को गृहस्थ कुल, गण, लाभ, आवास, किसी बाधा, प्रत्यय या सभी क्लेशों में अलग्न, अनासक्त, अप्रतिष्ठित और अलिप्त हो कर रहना चाहिये। महाराज! आकाश का यही पाँचवा गुण....। महाराज! अपने पुत्र *राहुल* को उपदेश देते हुये देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है— 'राहुल! जैसे आकाश कहीं भी प्रतिष्ठि तनहीं होता; वैसे ही तुम भी भावना करो। आकाश के समान भावना करने से आये-गये, अच्छे बुरे स्पर्श चित्त में नहीं लगते'।"

७. चन्द्राङ्गप्रश्न— २७. "भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में चन्द्रमा के पाँच गुण होने चाहियें, ये पाँच गुण कौन से हैं?"

(१) "महाराज! जैसे शुक्लपक्ष का चन्द्रमा धीरे-धीरे बढ़ता ही जाता है; वैसे ही योगसाधक

इन्द्रियेसु गुत्तद्वारताय भोजने मत्तञ्ञुताय जागरियानुयोगे उत्तरुत्तरिं वड्ढितब्बं। इदं, महाराज, चन्दस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) "पुन च परं, महाराज, चन्दो उळाराधिपति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन उळारच्छन्दाधिपतिना भवितब्बं। इदं, महाराज, चन्दस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) "पुन च परं, महाराज, चन्दो निसाय चरति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन पविवित्तेन भवितब्बं। इदं, महाराज, चन्दस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं।

(४) "पुन च परं, महाराज, चन्दो विमानकेतु; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सीलकेतुना भवितब्बं। इदं, महाराज, चन्दस्स चतुत्थं अङ्गं गहेतब्बं।

(५) "पुन च परं, महाराज, चन्दो आयाचितपत्थियो उदेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन आयाचितपत्थितेन कुलानि उपसङ्कमितब्बानि। इदं, महाराज, चन्दस्स पञ्चमं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *संयुत्तनिकायवरे*— 'चन्दूपमा, भिक्खवे, कुलानि उपसङ्कमथ। अपकस्सेव कायं अपकस्स चित्तं निच्चनवता कुलेसु अप्पगब्भा' " ति।

८. सुरियङ्गपञ्हो

२८. "भन्ते नागसेन, 'सुरियस्स सत्त अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि सत्त अङ्गानि गहेतब्बानी" ति?

(१) "यथा, महाराज, सुरियो सब्बं उदकं परिसोसेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सब्बकिलेसा अनवसेसं परिसोसेतब्बा। इदं, महाराज, सुरियस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

भिक्षु को अचार, शील, गुण, व्रतपरायणता, धर्म–ग्रन्थों के अध्ययन, ध्यान, स्मृतिप्रस्थान, इन्द्रियसंयम, भोजन में मात्रज्ञता और जागरूकता में बढ़ते जाना चाहिये। महाराज! चन्द्रमा का यह पहला गुण....।

(२) "महाराज! फिर जैसे चन्द्रमा बड़ा भारी उदार अधिपति है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपनी इच्छाओं का समर्थ अधिपति होना चाहिये। महाराज! चन्द्रमा का यह दूसरा गुण....।

(३) "महाराज! फिर जैसे चन्द्रमा रात्रि में चलता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को एकान्त में अभ्यास करना चाहिये। महाराज! चन्द्रमा का यह तीसरा गुण....।

(४) "महाराज! जैसे चन्द्रमा विमान के ध्वज पर अङ्कित रहता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को शील का ध्वज गाड़ देना चाहिये। महाराज! चन्द्रमा का चौथा गुण....।

(५) "महाराज! जैसे चन्द्रमा विना किसी के प्रार्थना करने पर उगता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को किसी की प्रार्थना के विना ही गृहस्थों के कुल में जाना चाहिये। महाराज! चन्द्रमा का यही पाँचवाँ गुण....। महाराज! संयुक्तनिकाय में भगवान् ने भी कहा है–'भिक्षुओ! चन्द्रमा के समान गृहस्थों के घर जाओ, अपरिचित के समान शरीर और मन से सङ्कोच करते हुए जाओ और चले आओ'।"

८. सूर्याङ्गप्रश्न– २८. "भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु के सात गुण होने चाहियें, वे सात गुण कौन से हैं?"

(१) "महाराज! जैसे सूर्य जल को सुखा देता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को भी अपने सभी क्लेश सुखा देने चाहिये। महाराज! सूर्य का यह पहला गुण भिक्षु में होना चाहिये।

(२) "पुन च परं, महाराज, सुरियो तमन्धकारं विधमति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सब्बं रागतमं दोसतमं मोहतमं मानतमं दिट्ठितमं किलेसतमं सब्बं दुच्चरिततमं विधमयितब्बं। इदं, महाराज, सुरियस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) पुन च परं, महाराज, सुरियो अभिक्खणं चरति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन अभिक्खणं योनिसोमनसिकारो कातब्बो। इदं, महाराज, सुरियस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं।

(४) "पुन च परं, महाराज, सुरियो रंसिमाली; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन आरम्मणमालिना भवितब्बं। इदं, महाराज, सुरियस्स चतुत्थं अङ्गं गहेतब्बं।

(५) "पुन च परं, महाराज, सुरियो महाजनकायं सन्तापेन्तो चरति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन आचारसीलगुणवत्तपटिपत्तिया झानविमोक्खसमाधिसमापत्ति-इन्द्रियबलबोज्झङ्गसतिपट्ठानसम्मप्पधानइद्धिपादेहि सदेवको लोको सन्तापयितब्बो। इदं, महाराज, सुरियस्स पञ्चमं अङ्गं वेदितब्बं।

(६) "पुन च परं, महाराज, सुरियो राहुभया भीतो होति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन दुच्चरितदुग्गतिविसमकन्तारविपाकविनिपातकिलेसजालजटिते दिट्ठिसङ्घात-पटिमुत्ते कुपथपक्खन्दे कुम्मग्गपटिपन्ने सत्ते दिस्वा महता संवेगभयेन मानसं संवेजेतब्बं। इदं, महाराज, सुरियस्स छट्ठं अङ्गं गहेतब्बं।

(७) "पुन च परं, महाराज, सुरियो कल्याणपापके दस्सेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन इन्द्रिय-बल-बोज्झङ्ग-सतिपट्ठान-सम्मप्पधान-इद्धिपाद-लोकियलोकुत्तर-

---

(२) "महाराज! फिर जैसे सूर्य घने अन्धकार को दूर कर देता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को राग, द्वेष, मोह, मान, आत्मदृष्टि, क्लेश और सभी अकुशल आचरणों का अन्धकार दूर कर देना चाहिये। महाराज! सूर्य का यह दूसरा गुण....।

(३) "महाराज! फिर जैसे सूर्य बराबर चलता रहता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को सदा मन को संयत करते रहना चाहिये। महाराज! सूर्य का यही तीसरा गुण....।

(४) "महाराज! फिर जैसे सूर्य किरणों वाला है; वैसे ही, योगसाधक भिक्षु को ध्यानभावना वाला होना चाहिये। महाराज! सूर्य का यह चौथा गुण....।

(५) महाराज! फिर जैसे, सूर्य संसार के सभी प्राणियों को तपाता हुआ चलता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को आचार, शील, गुण, व्रतचर्या, ध्यान, विमोक्ष, समाधि, समापत्ति, इन्द्रियबल, बोध्यङ्ग, स्मृतिप्रस्थान, सम्यक्प्रधान और ऋद्धिपाद से देवताओं तथा मनुष्यों के साथ समग्र संसार को तपाते रहना चाहिये। महाराज! सूर्य का यह पाँचवाँ गुण....।

(६) "महाराज! फिर जैसे, सूर्य सदा केतु से डरते हुए चलता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपने कर्मों के बुरे फल, नरक और क्लेश की घनी झाड़ियों से भरे दुराचार और दुर्गति के बीहड़ जंगल में आत्मदृष्टि के बहकावे में पड़, बुरे रास्ते पर लोगों को चलते हुए देख कर अपने मन में संवेग उत्पन्न करना चाहिये और सदा डरते रहना चाहिये। महाराज! सूर्य का यह छठा गुण....।

(७) "महाराज! जैसे सूर्य (अपने प्रकाश में) अच्छे और बुरे को दिखा देता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को इन्द्रिय बल, बोध्यङ्ग, स्मृतिप्रस्थान, सम्यक्प्रधान, ऋद्धिपाद, लौकिक और लोकोत्तर

धम्मा दस्सेतब्बा। इदं, महाराज, सुरियस्स सत्तमं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, *थेरेन वङ्गसेनेन*—

'यथापि सुरियो उदयन्तो, रूपं दस्सेति पाणिनं।
सुचिं च असुचिं चापि, कल्याणं चापि पापकं॥
तथा भिक्खु धम्मधरो, अविज्जापिहितं जनं।
पथं दस्सेति विविधं, आदिच्चोवुदयं यथा' '' ति॥

९. सक्कङ्गपञ्हो

२९. ''भन्ते नागसेन, 'सक्कस्स तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, सक्को एकन्तसुखसमप्पितो; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन एकन्तपविवेकसुखाभिरतेन भवितब्बं। इदं, महाराज, सक्कस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) ''पुन च परं, महाराज, सक्को देवे दिस्वा पग्गण्हाति, हासमभिजनेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन कुसलेसु धम्मेसु अलीनमतन्दितं सन्तं मानसं पग्गहेतब्बं, हासमभिजनेतब्बं, उट्ठहितब्बं घटितब्बं वायमितब्बं। इदं, महाराज, सक्कस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) ''पुन च परं, महाराज, सक्कस्स अनभिरति नुप्पज्जति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सुञ्ञागारे अनभिरति न उप्पादेतब्बा। इदं, महाराज, सक्कस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन सुभूतिना—

'सासने ते महावीर, यतो पब्बजितो अहं।
नाभिजानामि उप्पन्नं, मानसं कामसंहितं' '' ति॥

१०. चक्कवत्तिङ्गपञ्हो

धर्म–सभी दिखा देना चाहिये। महाराज! सूर्य का यह सातवाँ गुण....। महाराज! स्थविर वङ्गीश ने भी कहा है–

'जैसे सूर्य उदय होकर प्राणियों को सभी पदार्थ दिखा देता है– शुचि और अशुचि को भी, अच्छे और बुरे को भी। वैसे ही, धर्म जानने वाला भिक्षु अविद्या से ढके संसार को सूर्योदय की तरह सभी मार्ग दिखा देता है'।''

९. शक्राङ्गप्रश्न– २९. ''भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में इन्द्र के तीन गुण होने चाहियें, वे तीन गुण कौन से हैं?''

(१) ''महाराज! जैसे इन्द्र केवल सुख ही सुख भोगता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को परम एकान्त का सुख भोगना चाहिये। महाराज! इन्द्र का यह पहला गुण भिक्षु में होना चाहिये।

(२) ''महाराज! फिर जैसे इन्द्र देवों को प्रसन्न कर अपने वश में रखता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को कुशल (पुण्य) धर्मों में अपने मन को शान्त, उत्साहशील और तत्पर बनाये रखना चाहिये, उन्हें पालन करने में प्रसन्न रहना चाहिये, उत्साह के साथ उनमें डटे और लगे रहना चाहिये। महाराज! इन्द्र का यह दूसरा गुण....।

(३) ''महाराज! फिर जैसे इन्द्र को कभी असन्तोष नहीं होता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को एकान्त से भी ऊबना नहीं चाहिये। महाराज! इन्द्र का तीसरा गुण....। महाराज! *स्थविर सुभूति* ने भी कहा है–

३०. "भन्ते नागसेन, 'चक्कवत्तिस्स चत्तारि अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि चत्तारि अङ्गानि गहेतब्बानी" ति?

(१) "यथा, महाराज, चक्कवत्ती बहूहि सङ्गहवत्थूहि जनं सङ्गण्हाति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन चतस्सन्नं परिसानं मानसं सङ्गहेतब्बं अनुग्गहेतब्बं सम्पहंसेतब्बं। इदं, महाराज, चक्कवत्तिस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) "पुन च परं, महाराज, चक्कवत्तिस्स विजिते चोरा न उट्ठहन्ति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन कामरागब्यापादविहिंसावितक्का न उप्पादेतब्बा। इदं, महाराज, चक्कवत्तिस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, *भगवता* देवातिदेवेन—

'वितक्कूपसमे च यो रतो, असुभं भावयते सदा सतो।
एस खो ब्यन्तिकाहिति, एस छेच्छति मारबन्धनं' ति॥ *(ध०प०, ३५०)*

(३) "पुन च परं, महाराज, चक्कवत्ती दिवसे समुद्दपरियन्तं महापठविं अनुयाति कल्याणपापकानि विचिनमानो; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन कायकम्मं वचीकम्मं मनोकम्मं दिवसे दिवसे पच्चवेक्खितब्बं— 'किन्नु खो मे इमेहि तीहि ठानेहि अनुपवज्जस्स दिवसो वीतिवत्तती' ति। इदं, महाराज, चक्कवत्तिस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *अङ्गुत्तरनिकायवरे*— 'कथम्भूतस्स मे रत्तिन्दिवा वीतिवत्तन्ती ति पब्बजितेन अभिण्हं पच्चवेक्खितब्बं' ति।

(४) "पुन च परं, महाराज, चक्कवत्तिस्स अब्भन्तरबाहिरा रक्खा सुसंविहिता होति;

'हे भगवान् बुद्ध! जब से आप के शासन में प्रव्रजित हुआ हूँ, मुझे ध्यान नहीं कि मेरे मन में कभी काम उत्पन्न हुआ हो'।।"

१०. चक्रवर्ती–अङ्गप्रश्न— ३०. "भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में चक्रवर्ती राजा के चार गुण होने चाहियें, वे कौन से चार गुण हैं?"

(१) "महाराज! जैसे चक्रवर्ती राजा चार संग्रहवस्तुओं से अपनी प्रजा को अपनी ओर किये रखता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को चार प्रकार के लोगों को अपनी ओर करके प्रसन्न रखना चाहिये। चक्रवर्ती राजा का यह पहला गुण भिक्षु में होना चाहिये।

(२) "महाराज! फिर जैसे, चक्रवर्ती राजा के राज्य में चोर–लुटेरे नहीं उठ पाते; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को मन में काम, राग, व्यापाद और विहिंसा के बुरे विचार नहीं उठने देने चाहिये। महाराज! चक्रवर्ती राजा का यही दूसरा गुण....। महाराज! देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'जो अपने अशुभ विचारों को दबाने में लगा रहता है, सावधान होकर सांसारिक पदार्थों में दोष देखता है, जिसे संसार सुन्दर समझता है, उसे दूर करता है, वही मार के बन्धनों को छिन्न–भिन्न करने में समर्थ होता है।।'

(३) "महाराज! फिर जैसे, चक्रवर्ती राजा सदा अच्छे बुरे की जाँच करते हुये समुद्रपर्यन्त महापृथ्वी पर चक्कर लगाता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को निरन्तर अपने मन, वचन और कर्म की जाँच करनी चाहिये— 'आज का दिन मैं तीनों प्रकार से निर्दोष कैसे बिताऊँ!' महाराज! चक्रवर्ती राजा का यह तीसरा गुण....। महाराज! *अङ्गुत्तरनिकाय* में देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है— 'मेरे दिन–रात कैसे बीतते हैं—यह बात प्रव्रजित को निरन्तर ध्यान रखनी चाहिये।"

एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन अब्भन्तरानं बाहिरानं किलेसानं आरक्खाय सतिदोवारिको ठपेतब्बो। इदं, महाराज, चक्कवत्तिस्स चतुत्थं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन— 'सतिदोवारिको, भिक्खवे, अरियसावको अकुसलं पजहति, कुसलं भावेति, सावज्जं पजहति, अनवज्जं भावेति, सुद्धमत्तानं परिहरती' '' ति॥

ततियो पथविवग्गो निट्ठितो॥

तस्सुद्दानं

पथवी आपो च तेजो च, वायो पब्बतेन च।
आकासो चन्दसुरियो च, सक्को च चक्कवत्तिना ति॥

४. उपचिकावग्गो

१. उपचिकङ्गपञ्हो

३१. ''भन्ते नागसेन, 'उपचिकाय एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं एकं अङ्गं गहेतब्बं'' ति? (१) ''यथा, महाराज, उपचिका उपरिच्छदनं कत्वा अत्तानं पिदहित्वा गोचराय चरति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सीलसंवरछदनं कत्वा मानसं पिदहित्वा पिण्डाय चरितब्बं। सीलसंवरच्छदनं कत्वा मानसं पिण्डाय चरितब्बं। सीलसंवरच्छदनेन खो, महाराज, योगी योगावचरो सब्बभयसमतिक्कन्तो होति। इदं, महाराज, उपचिकाय एकं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *उपसेनेन वङ्गन्तपुत्तेन*—

---

(४) "महाराज! फिर जैसे चक्रवर्ती राजा के यहाँ बाहर और भीतर कठोर व्यवस्था रहती है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को बाहर और भीतर के क्लेशों से रक्षा करने के लिये स्मृति का रक्षक (पहरेदार) बैठा देना चाहिये। महाराज! चक्रवर्ती राजा का यही चौथा गुण....। महाराज! देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'भिक्षुओ! आर्यश्रावक अकुशल (पाप) को स्वयं से दूर रखने के लिये स्मृति का रक्षक बैठा देता है। कुशल की भावना करता है। सदोष को छोड़ देता है, निर्दोष को बनाये रखता है। स्वयं को शुद्ध और पवित्र बनाता है'॥"

तीसरा पृथ्वीवर्ग समाप्त॥

उदान

इस वर्ग में—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, पर्वत, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य, इन्द्र, चक्रवर्ती राजा—ये दस प्रश्न हैं॥

४. उपचिकावर्ग

१. उपचिकाङ्गप्रश्न— ३१. "भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में उपचिका (दीमक) का एक गुण होना चाहिये, वह एक गुण क्या है?" (१) "महाराज! जैसे दीमक (उपचिका) अपने को ऊपर से ढक कर नीचे छिप कर रहती है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को शील और संयम से अपना मन ढक कर भिक्षाटन करना चाहिये। महाराज! इस तरह अपना मन शील और संवर से ढका रखने से भिक्षु सब प्रकार के भय से बचा रहता है। महाराज! दीमक का यही एक गुण...। महाराज! वङ्गन्तपुत्र *स्थविर उपसेन* ने भी कहा है—

'सीलसंवरछदनं, योगी कत्वान मानसं।
अनूपलित्तो लोकेन, भया च परिमुच्चती' '' ति॥

२. विळारङ्गपञ्हो

३२. ''भन्ते नागसेन, 'विळारस्स द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी' ति ति यं वदेसि, कतमानि तानि अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, बिळारो गुहागतो पि सुसिरगतो पि हम्मियन्तरगतो पि उन्दूरं येव परियेसति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन गामगतेनापि अरञ्ञगतेनापि रुक्खमूलगतेनापि सुञ्ञागारगतेनापि सततं समितं अप्पमत्तेन कायगतासतिभोजनं येव परियेसितब्बं। इदं, महाराज, विळारस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) ''पुन च परं, महाराज, बिळारो आसन्ने येव गोचरं परियेसति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन इमेसु येव पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु उदयब्बयानुपस्सिना विहरितब्बं— 'इति रूपं', 'इति रूपस्स समुदयो', 'इति रूपस्स अत्थङ्गमो'; 'इति वेदना', 'इति वेदनाय समुदयो', 'इति वेदनाय निरोधो'; 'इति सञ्ञा', 'इति सञ्ञाय समुदयो', 'इति सञ्ञाय अत्थङ्गमो'; 'इति सङ्खारा', 'इति सङ्खारानं समुदयो', 'इति सङ्खारानं अत्थङ्गमो'; 'इति विञ्ञाणं', 'इति विञ्ञाणस्स समुदयो', 'इति विञ्ञाणस्स अत्थङ्गमो' ति। इदं, महाराज, विळारस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन—

'न इतो दूरे भवितब्बं, भवग्गं किं करिस्सति।
पच्चुप्पन्नम्हि वोहारे, सके कायम्हि विन्दथा' '' ति॥

३. उन्दुरङ्गपञ्हो

३३. ''भन्ते नागसेन, 'उन्दुरस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं एकं अङ्गं गहेतब्बं'' ति? (१) ''यथा महाराज, उन्दुरो इतो चितो च विचरन्तो आहारूपसीसको येव

'योगी अपने मन को शील और संवर से ढक, संसार से लिप्त न हो, भय से छूट जाता है'।।''

२. विड़लाङ्गप्रश्न— ३२. ''भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में बिल्ली के दो गुण होने चाहिये, वे दो गुण कौन से हैं?''

(१) ''महाराज! जैसे बिल्ली गुहा, बिल या घर में कहीं भी रहकर सदा चूहे की ही खोज में रहती है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को गाँव, जंगल, वृक्षमूल या शून्यागार में कहीं भी जा कर निरन्तर 'कायगतास्मृति' रूपी भोजन की खोज में ही रहना चाहिये। महाराज! बिल्ली का यही पहला गुण....।

(२) ''महाराज! फिर जैसे बिल्ली आसपास में ही शिकार ढूँढ़ती है। वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपने इन्हीं पाँच उपादानस्कन्धों के उदय और नष्ट हो जाने के स्वभाव का मनन करना चाहिये— १. यह रूप है, यह रूप का उदय होना है, यह रूप का नाश हो जाना है; २. यह वेदना है...., ३. यह संज्ञा है...., ४. ये संस्कार हैं...., ५. यह विज्ञान है....। महाराज! बिल्ली का यही दूसरा गुण भिक्षु में होना चाहिये। महाराज! देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'यहाँ से दूर जाने की आवश्यकता नहीं, आगे की बातों को सोचने से क्या लाभ! वर्तमान काल के ही व्यवहार में देखो कि अपने शरीर में क्या है!'।।''

३. मूषकाङ्गप्रश्न— ३३. ''भन्ते! आप कहते हैं कि भिक्षु में चूहे का एक गुण होना चाहिये, वह एक गुण

चरति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन इतो चितो च विचरन्तेन योनिसो मनसिका-रूपसीसकेनेव भवितब्बं। इदं, महाराज, उन्दुरस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, *थेरेन उपसेनेन वङ्गन्तपुत्तेन*—

'धम्मासीसं करित्वान, विहरन्तो विपस्सको।
अनोलीनो विहरति, उपसन्तो सदा सतो' " ति॥

४. विच्छिकङ्गपञ्हो

३४. "भन्ते नागसेन, 'विच्छिकस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं एकं अङ्गं गहेतब्बं" ति? "यथा, महाराज, विच्छिको नङ्गुलावुधो, नङ्गुलं उस्सापेत्वा चरति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन ञाणावुधेन भवितब्बं, ञाणं उस्सापेत्वा विहरितब्बं। इदं, महाराज, विच्छिकस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, *थेरेन उपसेनेन वङ्गन्तपुत्तेन*—

'ञाणखग्गं गहेत्वान, विहरन्तो विपस्सको।
परिमुच्चति सब्बभया, दुप्पसहो च सो भवे' " ति॥

५. नकुलङ्गपञ्हो

३५. "भन्ते नागसेन, 'नकुलस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं एकं अङ्गं गहेतब्बं" ति? "यथा, महाराज, नकुलो उरगमुपगच्छन्तो भेसज्जेन कायं परिभावेत्वा उरग-मुपगच्छति गहेतुं; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन कोधाघातबहुलं कलहविग्गह-विवादविरोधाभिभूतं लोकमुपगच्छन्तेन मेत्ताभेसज्जेन मानसं अनुलिम्पितब्बं। इदं, महाराज, नकुलस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *सारिपुत्तेन* धम्मसेनापतिना—

क्या है?" (१) "महाराज! जैसे चूहा आहार की गन्ध लेने के लिये ही इधर-उधर दौड़ता है; वैसे ही, योगसाधक भिक्षु को सर्वत्र मन को वश में कर के ही जाना चाहिये। महाराज! चूहे का यह एक गुण भिक्षु में होना चाहिये। महाराज! वङ्गन्तपुत्र *स्थविर उपसेन* ने भी कहा है—

'ज्ञानी धर्म को लक्ष्य बना कर ही साधना करता है, वह शान्त चित्त से स्मृतिमान् और उत्साहशील हो विहार करता है।।'"

४. वृश्चिकाङ्गप्रश्न— ३४. "भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में बिच्छू का एक गुण होना चाहिये, वह एक गुण क्या है?"

(१) "महाराज! जैसे बिच्छू की पूँछ ही उसका हथियार है, इसलिये वह उसे उठा कर चलता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपना ज्ञानरूपी शस्त्र उठाये चलना चाहिये। महाराज! बिच्छू का यह एक गुण भिक्षु में होना चाहिये। महाराज! बङ्गपुत्र *स्थविर उपसेन* ने भी कहा है—

'ज्ञानी ज्ञान-तलवार उठाये विहार करता है, यों वह सभी भयों से छूट जाता है, उसे कोई परास्त नहीं कर सकता'।।"

५. नकुलाङ्गप्रश्न— ३५. "भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में नेवले का एक गुण चाहिये, वह एक गुण क्या है?" (१) "महाराज! जैसे नेवला एक विशेष जड़ी-बूटी पर लोट लेने के बाद ही सर्प पकड़ने जाता है। वैसे ही योगसाधक भिक्षु को क्रोध, वैर, कलह, झगड़ा-विवाद और विरोध में लिप्त

'तस्मा सकं परेसं पि, कातब्बा मेत्तभावना।
मेत्तचित्तेन फरितब्बं, एतं बुद्धानसासनं' '' ति॥

६. जरसिङ्गालपञ्हो

३६. ''भन्ते नागसेन, 'जरसिङ्गालस्स द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, जरसिङ्गालो भोजनं पटिलभित्वा अजिगुच्छमानो यावदत्थं आहरियति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन भोजनं पटिलभित्वा अजिगुच्छमानेन सरीरयापनमत्तमेव परिभुञ्जितब्बं। इदं, महाराज, जरसिङ्गालस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, *थेरेन महाकस्सपेन*—

'सेनासनम्हा ओरुय्ह, गामं पिण्डाय पाविसिं।
भुञ्जन्तं पुरिसं कुट्ठिं, सक्कच्च नं उपट्ठहिं॥
'सो मे पक्केन हत्थेन, आलोपं उपनामयि।
कुड्डमूलं च निस्साय, आलोपं तं अभुञ्जिसं।
भुञ्जमाने वा भुत्ते वा, जेगुच्छं मे न विज्जती' ति॥ (थे० गा० १०५४-५६)

(२) ''पुन च परं, महाराज, जरसिङ्गालो भोजनं पटिलभित्वा न विचिनाति लूखं वा पणीतं वा ति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन भोजनं पटिलभित्वा न विचिनितब्बं— लूखं वा पणीतं वा सम्पन्नं वा असम्पन्नं वा' ति। यथालद्धेन सन्तुस्सितब्बं। इदं, महाराज, जरसिङ्गालस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, *थेरेन उपसेनेन* वङ्गन्तपुत्तेन—

संसार के पास अपने मन को मैत्री की जड़ी-बूटी में लपेट कर ही जाना चाहिये। महाराज! भिक्षु में नेवले का यही गुण होना चाहिये। महाराज! धर्मसेनापति *स्थविर शारिपुत्र* ने भी कहा है—

'इसलिये, अपने और दूसरे लोगों के प्रति भी मैत्री-भावना करनी चाहिये। मैत्री-चित्त से संसार को भर देना चाहिये, यही बुद्धों का उपदेश है'।।"

६. वृद्धशृगालाङ्गप्रश्न—३६. "भन्ते नागसेन! आप जो कहते है कि भिक्षु में बूढ़े सियार के दो गुण होने चाहिये वे दो गुण कौन से हैं?"

(१) "महाराज! जैसे बूढ़ा सियार जो भी भोजन पाता है, विना घृणा किये मन भर खा लेता है। वैसे ही योगसाधक भिक्षु को जो भोजन मिले, विना उसमें दोष निकाले उतना खा लेना चाहिये, जितने से शरीर बना रहे। महाराज! बूढ़े सियार का यही पहला गुण भिक्षु में होना चाहिये। महाराज! *स्थविर महाकाश्यप* ने भी कहा है—

'अपने आश्रम से निकल कर भिक्षाटन के लिये गाँव में गया, भोजन करते हुए एक कोढ़ी के सामने यथाक्रम भिक्षा के लिये खड़ा हो गया। उसने अपने पके हाथ से कुछ भात ला कर दिया। किन्तु उसके भात देते समय उसकी अंगुली से बहता हुआ खून भी भात में गिर गया।।

'दीवाल के पास बैठ कर मैंने उस भिक्षा को भी खा लिया, खाते समय या बाद में मुझे कुछ भी घृणा नहीं हुई।।'

(२) "महाराज! फिर जैसे बूढ़ा सियार भोजन पाकर यह नहीं देखता कि भोजन रूखा है या स्वादिष्ठ; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को भोजन पा कर यह नहीं देखना चाहिये कि वह रूखा है या स्वादिष्ठ,

'लूखेन पि च सन्तुस्से, नाञ्ञं पत्थे रसं बहुं।
रसेसु अनुगिद्धस्स, झाने न रमते मनो॥
इतरीतरेन सन्तुट्ठे, सामञ्ञं परिपूरती' '' ति॥ *(थे० गा० ५८०)*

७. मिगङ्गपञ्हो

३७. ''भन्ते नागसेन, 'मिगस्स तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि अङ्गानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, मिगो दिवा अरञ्ञे चरति, रत्तिं अब्भोकासे; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन दिवा अरञ्ञे विहरितब्बं, रत्तिं अब्भोकासे। इदं, महाराज, मिगस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, *भगवता* देवातिदेवेन *लोमहंसनपरियाये*— 'सो खो अहं, सारिपुत्त, या ता रत्तियो सीता हेमन्तिका अन्तरट्ठके हिमपातसमये तथारूपासु रत्तिसु रत्तिं अब्भोकासे विहरामि, दिवा वनसण्डे। गिम्हानं पच्छिमे मासे दिवा अब्भोकासे विहरामि रत्तिं वनसण्डे' ति।

(२) ''पुन च परं, महाराज, मिगो सत्तिम्हि वा सरे वा ओपतन्ते वञ्चेति पलायति, न कायमुपनेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन किलेसेसु ओपतन्तेसु वञ्चयितब्बं पलायितब्बं, न चित्तमुपनेतब्बं। इदं, महाराज, मिगस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) ''पुन च परं, महाराज, मिगो मनुस्से दिस्वा येन वा तेन वा पलायति—'मा मे ते अद्दसंसू' ति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन भण्डनकलहविग्गहविवादसीले पुरिसे दुस्सीले कुसीते सङ्गणिकारामे दिस्वा येन वा तेन वा पलायितब्बं—'मा मं ते अद्दसंसु,

---

यह उसे सत्कार से दिया गया है या विना सत्कार के। जैसा भी भोजन मिले उसे सन्तुष्ट हो कर खा लेना चाहिये। महाराज! बूढ़े सियार का यही दूसरा गुण....। महाराज! वङ्गन्तपुत्र *स्थविर उपसेन* ने कहा है—

'रूखा–सूखा भोजन खा कर सन्तुष्ट रहना चाहिये, उससे स्वादिष्ट की खोज नहीं करनी चाहिये। जीभ के लालच में जो पड़ा रहता है, उसका मन ध्यान में नहीं लगता। जो कुछ मिले उसी में प्रसन्न रहने वाला भिक्षु ही श्रमण–व्रत पूरा कर सकता है।। '''

७. मृगाङ्गप्रश्न—३७. ''भन्ते! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में हरिण के तीन गुण होने चाहिये, वे तीन गुण कौन से हैं?''

(१) ''महाराज! जैसे हरिण दिन भर जङ्गल में घूमता रहता है और रात में किसी खुले जगह पर सो जाता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु का दिन भर जंगल में और रात में खुली जगह पर विहार करना चाहिये। महाराज! भिक्षु में हरिण का यह पहला गुण होना चाहिये। महाराज! *लोमहंसकपरियाय*-सूत्र में देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—'हे शारिपुत्र! जाड़े की उन ठण्ढी रातों में जब कड़ी सर्दी पड़ती थी, मैं खुली जगह में रहता था, दिन होने पर जंगल में चला जाता था, गर्मी के पिछले महीनों में दिन के समय खुली जगह में साधना करता था और रात होने पर जंगल में घुस जाता था।'

(२) ''महाराज! फिर जैसे हरिण भाला या तीर चलाये जाने पर देह संकुचित कर चौकड़ी मारते हुए भाग निकलता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को क्लेशों के आने पर मन बचा कर हट जाना चाहिये, दूर हो जाना चाहिये। महाराज! हरिण का यही दूसरा गुण भिक्षु में होना चाहिये।

(३) ''महाराज! जैसे हरिण मनुष्यों को देखते ही भाग खड़ा होता है कि 'वे मुझे देख न लें', वैसे ही योगसाधक भिक्षु को कलह और विवाद करने वाले और समूह में रहने वाले दुःशील लोगों को देख

अहं च ते मा अद्दसं' ति। इदं, महाराज, ततियं अङ्गं गहेतब्बं ति। भासितं पेतं, महाराज, *सारिपुत्तेन* धम्मसेनापतिना—

'मा मे कदाचि पापिच्छो, कुसीतो हीनवीरियो।
अप्पस्सुतो अनाचारो, समेतो कत्थची अहू' '' ति॥ *(थे० गा०, ९८७)*

८. गोरूपङ्गपञ्हो

३८. ''भन्ते नागसेन, 'गोरूपस्स चत्तारि अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि चत्तारि अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, गोरूपो सकं गेहं न विजहति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सको कायो न विजहितब्बो—'अनिच्चुच्छादनपरिमद्दनभेदनविकिरण-विद्धंसनधम्मो अयं कायो' ति। इदं, महाराज, गोरूपस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) ''पुन च परं, महाराज, गोरूपो आदिण्णधुरो सुखदुक्खेन धुरं वहति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन आदिण्णब्रह्मचरियेन सुखदुक्खेन याव जीवितपरियादाना आपाणकोटिकं ब्रह्मचरियं चरितब्बं। इदं, महाराज, गोरूपस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) ''पुन च परं, महाराज, गोरूपो छन्देन घायमानो पानीयं पिबति; एवमेव खो, महाराज, योगिनो योगावचरेन आचरियुपज्झायानं अनुसिट्ठि छन्देन पेमेन पसादेन घायमानेन पटिग्गहेतब्बा। इदं, महाराज, गोरूपस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं।

(४) ''पुन च परं, महाराज, गोरूपो येन केनचि वाहियमानो वहति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन थेरनवमज्झिमभिक्खूनं पि गिहिउपासकस्सापि ओवादानुसासनी सिरसा सम्पटिच्छितब्बा। इदं, महाराज, गोरूपस्स चतुत्थं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *सारिपुत्तेन* धम्मसेनापतिना—

कर हट जाना चाहिये—'वे मुझे न देखें और मैं उन्हें न देखूँ'। महाराज! हरिण का यही तीसरा गुण....। महाराज! धर्मसेनापति *स्थविर शारिपुत्र* ने भी कहा है—

'पापी, आलसी, उत्साहहीन, मूर्ख, और दुराचारी से मेरा कभी साथ न हो पावे'॥''

८. गोरूपाङ्गप्रश्न — ३८. ''भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में बैल के चार गुण होने चाहिये; वे चार गुण कौन से हैं?''

(१) ''महाराज! जैसे बैल अपना घर छोड़ कर कहीं नहीं जाता, वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपना शरीर नहीं छोड़ना चाहिये; क्योंकि वह अनित्य और .... नाशवान् है। महाराज! बैल का यह पहला गुण ....।

(२) ''महाराज! जैसे बैल एक बार गाड़ी में जुत जाता है तो सुख या दुःख से उसे ढोता ही है; वैसे ही योगसाधकभिक्षु को एक बार ब्रह्मचर्यव्रत लेने पर सुख या दुःख सहकर भी उसे जीवनपर्यन्त प्राणपण से निभाना ही चाहिये। महाराज ! बैल का यह दूसरा गुण....।

(३) ''महाराज! फिर जैसे बैल साँस ले ले कर पानी पीता है, वैसे ही योगसाधक भिक्षु को आचार्य और उपाध्याय का उपदेश मन लगा कर प्रेम से ग्रहण करना चाहिये। महाराज! बैल का यही तीसरा गुण....।

(४) ''महाराज! फिर जैसे बैल किसी के द्वारा जोतने से गाड़ी खींचता है; वैसे ही योगसाधक

'तदहु पब्बजितो सन्तो, जातिया सत्तवस्सिको।
सो पि मं अनुसासेय्य, सम्पटिच्छामि मत्थके॥
'तिब्बं छन्दं च पेमं च, तस्मिं दिस्वा उपट्ठपे।
ठपेय्याचरियट्ठाने, सक्कच्च नं पुनप्पुनं' '' ति॥

९. वराहङ्गपञ्हो

३९. ''भन्ते नागसेन, 'वराहस्स द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, वराहो सन्तत्तकठिने गिम्हसमये सम्पत्ते उदकं उपगच्छति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन दोसेन चित्ते आलुळितखलितविब्भन्तसन्तत्ते सीतलामतपणीतमेत्ताभावनं उपगन्तब्बं। इदं, महाराज, वराहस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) ''पुन च परं, महाराज, वराहो चिक्खल्लमुदकमुपगन्त्वा नासिकाय पठविं खणित्वा दोणिं कत्वा दोणिकाय सयति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन मानसे कायं निक्खिपित्वा आरम्मणन्तरगतेन सयितब्बं। इदं, महाराज, वराहस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *पिण्डोलभारद्वाजेन*—

'काये सभावं दिस्वान, विचिनित्वा विपस्सको।
एकाकियो अदुतियो, सेति आरम्मणन्तरे' '' ति॥

१०. हत्थिङ्गपञ्हो

४०. ''भन्ते नागसेन, 'हत्थिस्स पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

भिक्षु को स्थविर, मध्यम, नव भिक्षु और उपासकों का स्वागत और सत्कार भी शिर झुका कर स्वीकार कर लेना चाहिये। महाराज! बैल का यह चौथा गुण.... । धर्मसेनापति *स्थविर शारिपुत्र* ने भी कहा है—

'आज ही प्रव्रजित हुआ सात वर्ष का श्रामणेर, यदि वह भी मुझे कुछ सिखावे तो मैं सहर्ष स्वीकार करूँगा।।

'बड़े प्रेम और स्वागत (आवभगत) से उसे देखते हुए, उसका स्वागत करूँगा, बार–बार आचार्य के स्थान पर उसे सत्कारपूर्वक बैठाऊँगा'।"

९. वराहाङ्गप्रश्न—३९. "भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु सूअर के दो गुण होने चाहिये, वे दो गुण कौन से हैं?"

(१) "महाराज! जैसे सूअर गर्मी के दिनों में गर्मी पड़ने पर जल में पैठ जाता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को द्वेष से जल–भुन कर चित्त के तपते रहने पर शीतल, अमृत और प्रणीत मैत्रीभावना करने में लग जाना चाहिये। महाराज! सूअर का यही पहला गुण....।

(२) "महाराज! जैसे सूअर कीचड़ में अपनी थूथन घुसा–घुसा कर गड्ढा बनाता है और उसी में पड़ा रहता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपना मन संयत कर ध्यानमग्न रहना चाहिये। महाराज! सूअर का यही दूसरा गुण ....।

महाराज! स्थविर *पिण्डोल भारद्वाज* ने भी कहा है—

'ज्ञानी पुरुष शरीर के विनश्वर को देख उसका मनन करता है। एकान्त में अकेला रह ध्यान में डूबा रहता है'।"

(१) "यथा, महाराज, हत्थी नाम चरन्तो येव पठविं दालेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन कायं सम्मसमानेनेव सब्बे किलेसा दालेतब्बा। इदं, महाराज, हत्थिस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) "पुन च परं, महाराज, हत्थी सब्बकायेनेव अपलोकेति, उजुकं येव पेक्खति, न दिसाविदिसा विलोकेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सब्बकायेन अपलोकिना भवितब्बं, न दिसाविदिसा विलोकेतब्बा, न उद्धं उल्लोकेतब्बं न अधो ओलोकेतब्बं, युगमत्तं पेक्खिना भवितब्बं। इदं, महाराज, हत्थिस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) "पुन च परं, महाराज, हत्थी अनिबद्धसयनो गोचरायानुगन्त्वा न तमेव देसं वासत्थमुपगच्छति, न धुवपतिट्ठालयो; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन अनिबद्ध-सयनेन भवितब्बं, निरालयेन पिण्डाय गन्तब्बं। यदि पस्सति विपस्सको मनुञ्ञं पतिरूपं रुचिरदेसे भवं मण्डपं वा रुक्खमूलं वा गुहं वा पब्भारं वा, तत्थेव वासमुपगन्तब्बं, धुवप्पतिट्ठालयो न कातब्बो। इदं, महाराज, हत्थिस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं।

(४) "पुन च परं, महाराज, हत्थी उदकं ओगाहेत्वा सुचिविमलसीतलसलिलपरिपुण्णं कुमुदुप्पलपदुमपुण्डरीकसञ्छन्नं महतिमहन्तं पदुमसरं ओगाहित्वा कीळति गजवरकीळं; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सुचिविमलविप्पसन्नमनाविलधम्मवरवारिपुण्णं विमुत्ति-कुसुमसञ्छन्नं महासतिपट्ठानपोक्खरणिं ओगाहित्वा ञाणेन सङ्खारा ओधुनितब्बा विधुनितब्बा, योगावचरकीळा कीळितब्बा। इदं, महाराज, हत्थिस्स चतुत्थं अङ्गं गहतेब्बं।

(५) "पुन च परं, महाराज, हत्थी सतो पादं उद्धरति, सतो पादं निक्खपति; एवमेव

---

१०. हस्ति–अङ्गप्रश्न–४०. "भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में हाथी के पाँच गुण होने चाहियें, वे पाँच गुण कौन से हैं?"

(१) "महाराज! जैसे हाथी चलते हुए पृथ्वी का मानो विदारण कर देता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपने–अपने शरीर पर मनन करते हुए सभी क्लेशों को विदारित कर देना चाहिये। महाराज! हाथी का यह पहला गुण....।

(२) "महाराज! फिर जैसे हाथी शरीर को घुमाते हुए भी सीधा ही देखता है, इधर–उधर नहीं, वैसे ही योगसाधक भिक्षु को घूम कर देखते हुए भी अगल–बगल ऊपर–नीचे आँख नहीं चलानी चाहिये, केवल दो हाथ आगे तक देखना चाहिये। महाराज! हाथी का यह दूसरा गुण....।

(३) "महाराज! जैसे जंगली हाथी अपने वास के लिये कोई विशेष स्थान निश्चित नहीं करता, जहाँ अवसर पाता है वहीं रहता है और सोता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को बेघर होना चाहिये, अपना कोई स्थान नियत किये विना भिक्षाटन के लिये बाहर निकल जाना चाहिये। जहाँ कोई अच्छा, सुन्दर, रम्य और अनुकूल स्थान, मण्डप, वृक्षमूल, गुहा या पहाड़ का किनारा दीखे, वहीं कुछ समय के लिये टिक जाना चाहिये। महाराज! हाथी का यही तीसरा गुण....।

(४) "महाराज! जैसे हाथी कमल और कुमुद के फूल खिले हुए, निर्मल शीतल जल वाले सरोवर में पैठ कर आनन्द के साथ जलक्रीड़ा करता है; वैसे ही भिक्षु को पवित्र और निर्मल धर्मरूपी जल से भरे, विमुक्ति के खिले फूलों से युक्त, स्मृतिप्रस्थान के सरोवर में प्रविष्ट होकर, ज्ञान से संस्कारों को धुन–धुनकर तोड़ देना चाहिये। यही योगियों की योगक्रीड़ा है। महाराज! हाथी का यह चौथा गुण....।

खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सतेन सम्पजानेन पादं उद्धरितब्बं, सतेन सम्पजानेन पादं निक्खिपितब्बं, अभिक्कमपटिक्कमे सम्मिञ्जनपसारणे सब्बत्थ सतेन सम्पजानेन भवितब्बं। *(दी० नि०, महासति०)* इदं, महाराज, हत्थिस्स पञ्चमं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, *भगवता* देवातिदेवेन *संयुत्तनिकायवरे*—

'कायेन संवरो साधु, साधु वाचाय संवरो।
मनसा संवरो साधु, साधु सब्बत्थ सवंरो॥
सब्बत्थ संवुतो लज्जी, रक्खितो ति पवुच्चती' '' ति। *(ध० प० ३६१)*

चतुत्थो उपचिकावग्गो निट्ठितो॥

तस्सुद्दानं

उपचिका बिलारो च, उन्दुरो विच्छिकेन च।
नकुलो सिङ्गालो मिगो, गोरूपो वराहो हत्थिना दसा ति॥

५. सीहवग्गो

१. सीहङ्गपञ्हो

४१. "भन्ते नागसेन, 'सीहस्स सत्त अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि सत्त अङ्गानि गहेतब्बानी" ति?

(१) "यथा, महाराज, सीहो नाम सेतविमलपरिसुद्धपण्डरो; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सेतविमलपरिसुद्धपण्डरचित्तेन ब्यगतकुक्कुच्चेन भवितब्बं। इदं, महाराज, सीहस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

---

(५) "महाराज! फिर जैसे हाथी ध्यान करके ही पैर उठाता है और ध्यान करके ही पैर रखता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को ध्यान करके ही पैर उठाना और रखना चाहिये। जाने, लौटने, समेटने, पसारने सभी में ध्यान रखना चाहिये। महाराज! भिक्षु में हाथी का यह पाँचवाँ गुण होना चाहिये। महाराज! *संयुक्तनिकाय* में देवातिदेव भगवनान् ने भी कहा है—

'शरीर का संयम, वचन का संयम, मन का संयम, सभी का संयम करना अच्छा है। सब प्रकार से वही संयमशील होता हैऽ जो प्रज्ञावान् हो अपने को वश में रखता है'।।"

चतुर्थ उपचिकावर्ग समाप्त।।

उदान

इस वर्ग में—१. उपचिका, २. बिडाल, ३. उन्दुरक, ४. बिच्छू, ५. नकुल, ६. शृगाल, ७. मृग, ८. गोरूप, ९. वराह एवं १०. हाथी—ये दस प्रश्न हैं।।

५. सिंहवर्ग

१. सिंहाङ्गप्रश्न—४१. "भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में सिंह के सात गुण होने चाहियें, वे सात गुण कौन से हैं?"

(१) "महाराज! जैसे सिंह विना किसी दाग या धब्बे का साफ सुथरा भूरा होता है वैसे ही योगसाधक भिक्षु को निर्मल, पवित्र और स्थिर चित्त होना चाहिये। महाराज! सिंह का यह पहला गुण....।

(२) "पुन च परं, महाराज, सीहो चतुचरणो विक्कन्तचारी; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन चतुरिद्धिपादचरणेन भवितब्बं। इदं, महाराज, सीहस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) "पुन च परं, महाराज, सीहो अभिरूपरुचिरकेसरी; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन अभिरूपरुचिरसीलकेसरिना भवितब्बं। इदं, महाराज, सीहस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं।

(४) "पुन च परं, महाराज, सीहो जीवितपरियादाने पि न कस्सचि ओनमति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानपच्चयभेसज्ज-परिक्खारपरियादाने पि न कस्सचि ओनमितब्बं। इदं, महाराज, सीहस्स चतुत्थं अङ्गं गहेतब्बं।

(५) "पुन च परं, महाराज, सीहो सपदानभक्खो यस्मिं ओकासे निपतति, तत्थेव यावदत्थं भक्खयति, न वरमंसं विचिनाति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सपदानभक्खेन भवितब्बं, न कुलानि विचिनितब्बानि, न पुब्बगेहं हित्वा कुलानि उपसङ्कमितब्बानि, न भोजनं विचिनितब्बं, यस्मिं ओकासे कबळं आदियति तस्मिं येव ओकासे भुञ्जितब्बं सरीरयापनत्थं, न वरभोजनं विचिनितब्बं। इदं, महाराज, सीहस्स पञ्चमं अङ्गं गहेतब्बं।

(६) "पुन च परं, महाराज, सीहो असन्निधिभक्खो, सकिं गोचरं भक्खयित्वा न पुन तं उपगच्छति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन असन्निधिकारपरिभोगिना भवितब्बं। इदं, महाराज, सीहस्स छट्ठं अङ्गं गहतेब्बं।

(७) "पुन च परं, महाराज, सीहो भोजनं अलद्धा न परितस्सति, लद्धा पि भोजनं अगधितो अमुच्छितो अनज्झापन्नो परिभुञ्जति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन

---

(२) "महाराज! और जैसे सिंह अपने चार पैरों पर ही बड़ी तेजी से दौड़ता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को चार ऋद्धियों वाला होना चाहिये। महाराज! सिंह का यह दूसरा गुण.... ।

(३) "महाराज! फिर जैसे सिंह बड़े सुहावने केशर (जटा) वाला होता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को सुन्दर शीलरूपी केशर से युक्त होना चाहिये। महाराज! सिंह का यह तीसरा गुण....।

(४) "महाराज! फिर जैसे सिंह अपने प्राण निकल जाने पर भी किसी के आगे नहीं झुकता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को चीवर, पिण्डपात, शयनसान और ग्लानप्रत्यय प्राप्त न होने पर भी किसी के सामने झुकना नहीं चाहिये। महाराज! सिंह का यह चौथा गुण ....।

(५) "महाराज! जैसे जहाँ सिंह पञ्जा मारता है, वहीं का मांस खा लेता है, अच्छा मांस कहाँ मिलेगा इसकी चिन्ता नहीं करता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को विना घर छोड़े क्रमशः भिक्षा माँगते चला जाना चाहिये। कुलों में चुन-चुन कर नहीं जाना चाहिये। मिली हुई भिक्षा में जो ग्रास में आवे उसी को खाना चाहिये, न कि क्या स्वादिष्ठ है? इसकी खोज नहीं करनी चाहिये। शरीर-यात्रा करने भर खाना चाहिये, खूब ठूँसकर नहीं। महाराज! सिंह का यह पाँचवां गुण ....।

(६) "महाराज! फिर जैसे सिंह अपने शिकार में से कुछ बचा कर नहीं रखता। जिसे एक बार खाता है उसके पास दुबारा नहीं जाता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को परिग्रह नहीं करना चाहिये। महाराज! सिंह का यह छठा गुण....।

(७) "महाराज! फिर जैसे सिंह शिकार न मिलने पर भी त्रास नहीं करता और मिलने पर

भोजनं अलद्धा न परितस्सितब्बं, लद्धा पि भोजनं अगधितेन अमुच्छितेन अनज्झापन्नेन आदीनवदस्साविना निस्सरणपञ्ञेन परिभुञ्जितब्बं। इदं, महाराज, सीहस्स सत्तमं अङ्गं गहेतब्बं।

"भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *संयुत्तनिकायवरे थेरं महाकस्सपं* परिकित्तयमानेन—'सन्तुट्ठोयं, भिक्खवे, कस्सपो इतरीतरेन पिण्डपातेन, इतरीतरपिण्डपात-सन्तुट्ठिया च वण्णवादी, न च पिण्डपातहेतु अनेसनं अप्पतिरूपं आपज्जति, अलद्धा च पिण्डपातं न परितस्सति, लद्धा पिण्डपातं अगधितो अमुच्छितो अनज्झापन्नो आदीनवदस्सावी निस्सरणपञ्ञो परिभुञ्जती' " ति। *(सं० नि०, १६.१३)*

२. चक्कवाकङ्गपञ्हो

४२. "भन्ते नागसेन, 'चक्कवाकस्स तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी" ति?

(१) "यथा, महाराज, चक्कवाको याव जीवितपरियादाना दुतियिकं न विजहति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन याव जीवितपरियादाना योनिसो मनसिकारो न विजहितब्बो। इदं, महाराज, चक्कवाकस्स पठमं अङ्गं गहतेब्बं।

(२) "पुन च परं, महाराज, चक्कवाको सेवालपणकभक्खो, तेन च सन्तुट्ठिमापज्जति, ताय च सन्तुट्ठिया बलेन च वण्णेन च न परिहायति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन यथालाभसन्तोसो करणीयो। यथालाभसन्तुट्ठो खो, महाराज, योगी योगावचरो न परिहायति सीलेन, न परिहायति समाधिना, न परिहायति पञ्ञाय, न परिहायति विमुत्तिया, न परिहायति विमुत्तिञाणदस्सनेन, न परिहायति सब्बेहि कुसलेहि धम्मेहि। इदं, महाराज, चक्कवाकस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

अधिक नहीं खाता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को भोजन न मिलने पर त्रास नहीं करना चाहिये और मिलने पर बहुत सँभल कर, भोजन के दोषों का विचार करते हुये, शरीर-धारणमात्र खाना चाहिये। महाराज! सिंह का यही सातवाँ गुण....।

"महाराज! *स्थविर महाकाश्यप* की प्रशंसा करते हुये स्वयं देवातिदेव भगवान् ने कहा है—'भिक्षुओ! काश्यप जैसे तैसे प्राप्त पिण्डपात से सन्तुष्ट रहने वाला है। जैसे तैसे प्राप्त पिण्डपात से सन्तुष्ट रहने की प्रशंसा करता है। पिण्डपात करने में कोई दोष नहीं होने देता। कुछ भी भिक्षा न मिलने पर त्रास नहीं मानता। मिलने पर बहुत ढंग से, उसके आदीनवों (दोषों) का विचार करते हुये शरीर धारण-मात्र के लिये थोड़ा खा लेता है'।"

२. चक्रवाकाङ्गप्रश्न—४२. "भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में चकवा के तीन गुण होने चाहिये, वे तीन गुण कौन से हैं?

(१) "महाराज! जैसे चकवा जीवन भर मिथुन (जोड़े) को नहीं छोड़ता; वैसे ही योगसाधक को जीवन भर मनन का अभ्यास नहीं छोड़ना चाहिये। महाराज! चकवा का यह पहला गुण भिक्षु में....।

(२) "महाराज! फिर जैसे चकवा सेवाल और पानी के दूसरे पौधों को खाकर सन्तुष्ट रहता है, उस सन्तोष से उसका बल और सौन्दर्य कभी नहीं कम होता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को जो कुछ मिले उसी से सन्तुष्ट रहना चाहिये। जो कुछ मिले उसी से सन्तुष्ट रहने वाला भिक्षु शील, समाधि, प्रज्ञा, विमुक्ति, विमुक्तिज्ञानदर्शन और सभी पुण्य धर्मों से क्षीण नहीं होता। महाराज! चकवा का यह दूसरा गुण....।

(३) ''पुन च परं, महाराज, चक्कवाको पाणे न विहेठयति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन निहितदण्डेन निहितसत्थेन लज्जिना दयापन्नेन सब्बपाणभूतहितानुकम्पिना भवितब्बं। इदं, महाराज, चक्कवाकस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *चक्कवाकजातके*—

'यो न हन्ति न घातेति, न जिनाति, न जापये।
मेत्तंसो सब्बभूतेसु, वेरं तस्स न केनची' '' ति॥

३. पेणाहिकङ्गपञ्हो

४३. ''भन्ते नागसेन, 'पेणाहिकाय द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, पेणाहिका सकपतिम्हि उसूयाय छापके न पोसयति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सकमने किलेसे उप्पन्ने उसूयायितब्बं, सतिपट्ठानेन सम्मासंवरसुसिरे पक्खिपित्वा मनोद्वारे कायगतासति भावेतब्बा। इदं, महाराज, पेणाहिकाय पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) ''पुन च परं, महाराज, पेणाहिका पवने दिवसं गोचरं चरित्वा सायं पक्खिगणं उपेति अत्तनो गुत्तिया; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन एककेन पविवेकं सेवितब्बं संयोजनपरिमुत्तिया। तत्र रतिं अलभमानेन उपवादभयपरिरक्खणाय सङ्घं ओसरित्वा सङ्घरक्खितेन वसितब्बं। इदं, महाराज, पेणाहिकाय दुतियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, *ब्रह्मुना सहम्पतिना* भगवतो सन्तिके—

---

(३) "महाराज! फिर जैसे चकवा किसी जीव को नहीं सताता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को किसी को मारना-पीटना नहीं चाहिये। उसे लज्जावान्, दयालु और सभी प्राणियों के प्रति करुणाशील होना चाहिये। महाराज! चकवा का यह तीसरा गुण....। महाराज! *चक्रवाकजातक* में देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'जो न वध करता है और न करवाता है, न हराता है और न हरवाता है, सभी जीवों के प्रति अहिंसा रखता है; उसका किसी के साथ वैर नहीं रहता'।।"

३. पेणाहिकाङ्गप्रश्न— ४३. "भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में पेणाहिका (सारस?) पक्षी के दो गुण होने चाहिये, वे दो गुण कौन से हैं?" (१) "महाराज! जैसे पेणाहिका नाम की चिड़िया अपने पति की ईर्ष्या में अपने बच्चों तक को नहीं पोसती; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपने मन में उत्पन्न हुये क्लेशों के प्रति ईर्ष्या रखनी चाहिये। स्मृतिप्रस्थान से संयमरूपी बिल में उन्हें डाल कर मन के द्वार पर कायगतास्मृति की भावना करनी चाहिये। महाराज! पेणाहिका पक्षी का यह पहला गुण भिक्षु में होना चाहिये।

(२) "महाराज! फिर जैसे पेणाहिका पक्षी दिन भर जंगल में चारा खाकर सायङ्काल अपनी रक्षा के लिये झुण्ड में आ कर मिल जाती है; वैसे ही योगसाधक योगी को अपने भीतर की गाँठ सुलझाने के लिये अकेले एकान्त का सेवन करना चाहिये। यदि वहाँ मन न लगे तो अपयश से बचने के लिये सङ्घ में आकर मिल जाना चाहिये, सङ्घ के संरक्षण में रहना चाहिये। महाराज! पेणाहिका पक्षी का यही दूसरा गुण भिक्षु में होना चाहिये। महाराज! ब्रह्मा सहम्पति ने भगवान् के सामने कहा था—

'सेवेथ पन्तानि सेनासनानि, चरेय्य संयोजनविप्पमोक्खो।
सचे रतिं नाधिगच्छेय्य तत्थ, सङ्घे पसे रक्खितत्तो सतीमा' "ति। *(थे० गा०,१४२)*

४. घरकपोतकङ्गपञ्हो

४४. "भन्ते नागसेन, 'घरकपोतस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं एकं अङ्गं गहेतब्बं" ति? (१) "यथा, महाराज, घरकपोतो परगेहे वसमानो न तेसं किञ्चि भण्डस्स निमित्तं गण्हाति, मज्झत्तो वसति सञ्ञाबहुलो; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन परकुलं उपगतेन तस्मिं कुले इत्थीनं वा पुरिसानं वा मञ्चे वा पीठे वा वत्थे वा अलङ्कारे वा उपभोगे वा भोजनविकतीसु वा न निमित्तं गहेतब्बं, मज्झत्तेन भवितब्बं, समणसञ्ञा पच्चुपट्ठपेतब्बा। इदं, महाराज, घरकपोतस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *चुल्लनारदजातके*—

'पविसित्वा परकुलं, पानेसु भोजनेसु वा।
मितं खादे, मितं भुञ्जे, न च रूपे मनं करे' " ति॥

५. उलूकङ्गपञ्हो

४५. "भन्ते नागसेन, 'उलूकस्स द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि अङ्गानि गहेतब्बानी" ति?

(१) "यथा, महाराज, उलूको काकेहि पटिविरुद्धो रत्तिं काकसङ्घं गन्त्वा बहू पि काके हनति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन अञ्ञाणेन पटिविरोधो कातब्बो, एकेन रहो निसीदित्वा अञ्ञाणं सम्पमद्दितब्बं, मूलतो छिन्दितब्बं। इदं, महाराज, उलूकस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

"पुन च परं, महाराज, उलूको सुपटिसल्लीनो होति; एवमेव खो, महाराज, योगिना

'जंगल में दूर हट कर रहे, लोक–जंजाल से मुक्त हो कर रहे, यदि वहाँ मन न लगे तो वह स्मृतिमान् सङ्घ के संरक्षण में आ कर रहे'।। "

४. गृहकपोताङ्गप्रश्न—४४. "भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में कबूतर का एक गुण होना चाहिये, वह एक गुण क्या है?" (१) "महाराज! जैसे कबूतर दूसरे के घर में बसते हुये वहाँ की किसी चीज को देख ललच नहीं जाता, किन्तु उनके प्रति अनासक्त हो कर रहता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को गृहस्थों के घर जा परिवार के पुरुष–स्त्री, कुर्सी, खाट, कपड़े, अलङ्कार, भोजन या अन्य भोग–सामग्रियाँ देख कर ललच नहीं जाना चाना चाहिये, उनके प्रति अनासक्त और अन्यमनस्क हो कर रहना चाहिये। 'मैं भिक्षु हूँ'—इस बात का ध्यान रखना चाहिये। महाराज! भिक्षु में कबूतर का यही एक गुण होना चाहिये। महाराज! *चुल्लनारद–जातक* में देवातिदेव ने भगवान् ने भी कहा है—

'गृहस्थ–कुलों में जाकर खाना पीना मिलने पर मात्रा में खाये पीये, सौन्दर्य की ओर मन न दौड़ाये।।"

५. उलूकाङ्गप्रश्न— ४५. "भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में उल्लू के दो गुण होने चाहिये, वे दो गुण कौन से हैं?"

(१) "महाराज! जैसे उल्लू और कौवे में स्वाभाविक शत्रुता है, और उल्लू रात के समय कौओं के झुण्ड में जा कर बहुत से कौवों को मार देता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अज्ञान से शत्रुता कर

योगावचरेन पटिसल्लानारामेन भवितब्बं पटिसल्लानरतेन। इदं, महाराज, उलूकस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *संयुत्तनिकायवरे*—'इध, भिक्खवे, भिक्खु पटिसल्लानरतो—'इदं, दुक्खं' ति यथाभूतं पजानति, 'अयं दुक्खसमुदयो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खनिरोधो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाती' '' ति।

६. सतपत्तङ्गपञ्हो

४६. ''भन्ते नागसेन, 'सतपत्तस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं एकं अङ्गं गहेतब्बं'' ति? (१) ''यथा, महाराज, सतपत्तो रवित्वा परेसं खेमं वा भयं वा आचिक्खति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन परेसं धम्मं देसयमानेन विनिपातं भयतो दस्सयितब्बं, निब्बानं खेमतो दस्सयितब्बं। इदं, महाराज, सतपत्तस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, थेरेन *पिण्डोलभारद्वाजेन*—

'निरये भयसन्तासं, निब्बाने विपुलं सुखं।
उभयानेतानि अत्थानि, दस्सेतब्बानि योगिना' '' ति॥ *(दी०नि०, सिगा०सु०)*

७. वग्गुलिङ्गपञ्हो

४७. ''भन्ते नागसेन, 'वग्गुलिस्स द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि द्वे गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, वग्गुलिगेहं पविसित्वा विचरित्वा निक्खमति, न तत्थ पलिबुज्झति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन गामे पिण्डाय पविसित्वा सपदानं

अकेला बैठ, उसे सर्वथा नष्ट करने का प्रयत्न करना चाहिये। महाराज! उल्लू का यह पहला गुण भिक्षु में होना चाहिये।

(२) "महाराज! फिर जैसे उल्लू एकान्त में कहीं छिप कर झपकियाँ लेता रहता है; वैसे ही योगसाधन करने वाले भिक्षु को एकान्त में ध्यान लगा कर मग्न रहना चाहिये। महाराज! उल्लू का यही दूसरा गुण....। महाराज! *संयुत्तनिकाय* में देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है— 'भिक्षुओ! भिक्षु एकान्त में ध्यान लगा कर मनन करता है कि यह दुःख है, यह दुःख का हेतु है, यह दुःखनिरोध है और यह दुःखनिरोध की तरफ ले जाने वाला मार्ग है'।"

६. शतपत्राङ्गप्रश्न— ४६. "भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में सारस पक्षी का एक गुण होना चाहिये, वह एक गुण क्या है?" (१) "महाराज! जैसे सारस का शब्द बता देता है कि शुभ होगा या अशुभ; वैसे ही योगसाधक भिक्षु धर्म-देशना करते हुए लोगों में यह प्रकट कर दे कि नरक कितना भयावह है और निर्वाण कितना क्षेमङ्कर। महाराज! सारस का यही एक गुण भिक्षु में होना चाहिये। महाराज! *स्थविर पिण्डोलभारद्वाज* ने भी कहा है—

'नरक में भय और त्रास तथा निर्वाण में सुख ही सुख है— ये दोनों बातें योगी को साफ-साफ समझा देनी चाहिये'।।"

७. बागुरिकाङ्गप्रश्न— ४७. "भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में बागुर (पक्षी) के दो गुण होने चाहियें, वे दो गुण कौन से हैं?"

(१) "महाराज! जैसे बागुर घर के भीतर आकर इधर-उधर उड़ विना कहीं ठहरे निकल

विचरित्वा पटिलद्धलाभेन खिप्पमेव निक्खमितब्बं। न तत्थ पलिबुद्धेन भवितब्बं। इदं, महाराज, वग्गुलिस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) "पुन च परं, महाराज, वग्गुलि परगेहे वसमानो न तेसं परिहानिं करोति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन कुलानि उपसङ्कमित्वा अतियाचनाय विञ्ञत्तिबहुलताय वा कायदोसबहुलताय वा अतिभाणिताय वा समानसुखदुक्खताय वा न तेसं कोचि विप्पटिसारो करणीयो, न पि तेसं मूलकम्मं परिहापेतब्बं, सब्बथा वड्ढि येव इच्छितब्बा। इदं, महाराज, वग्गुलिस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *दीघनिकायवरे लक्खणसुत्तन्ते*—

'सद्धाय सीलेन बुद्धिया, चागेन धम्मेन बहूहि साधुहि।
धनेन धञ्ञेन च खेत्तवत्थुना, पुत्तेहि दारेहि चतुप्पदेहि च॥
ञातीहि मित्तेहि च बन्धवेहि, बलेन वण्णेन सुखेन चूभयं।
'कथं न हायेय्युं परे' ति इच्छति, अत्थस्समिद्धिं च पनाभिकङ्खती' " ति॥

(दी० नि० सु० ३१)

८. जलूकपञ्हो

४८. "भन्ते नागसेन, 'जलूकाय एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं एकं अङ्गं गहेतब्बं" ति? (१) "यथा, महाराज, जलूका यत्थ अल्लीयति तत्थेव दळ्हं अल्लीयित्वा रुधिरं पिवति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन यस्मिं आरम्मणे चित्तं अल्लीयति, तं आरम्मणं वण्णतो च सण्ठानतो च दिसतो च ओकासतो च परिच्छेदतो च लिङ्गतो च निमित्ततो च दळ्हं पतिट्ठापेत्वा तेनेवारम्मणेन विमुत्तरसमसेचनकं पातब्बं। इदं, महाराज, जलूकाय एकं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *अनुरुद्धेन*—

जाता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को भिक्षाटन के लिये गाँव में प्रवेश कर भिक्षा लेते हुये सीधे निकल जाना चाहिये, कहीं रुकना नहीं चाहिये। महाराज! भिक्षु में बागुर का यही पहला गुण होना चाहिये।

(२) "महाराज! फिर जैसे बागुर दूसरों के घर में रहते हुये उनकी कोई हानि नहीं करता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को गृहस्थों के घर जा उन्हें बार–बार याचना करके तंग नहीं करना चाहिये, कोई बुरा हाव–भाव नहीं दिखाना चाहिये, कुछ प्रलाप नहीं करना चाहिये, उनके साथ सुख–दुःख नहीं दिखाना चाहिये, उनका कोई पश्चात्ताप भी नहीं करना चाहिये और न उनके कार्य में विघ्न डालना चाहिये। किन्तु सदा उनकी वृद्धि की कामना करनी चाहिये। महाराज! बागुर का यही दूसरा गुण....। महाराज! *दीघनिकाय* के *लक्षणसूत्र* में देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'श्रद्धा, शील, विद्या, बुद्धि, त्याग, अनेक प्रकार के अच्छे धर्मों, धन–धान्य, खेत, पुत्र, स्त्री और पशु, जात–बिरादरी, मित्र, बान्धवों, बल, सौन्दर्य और सुख से लोग किसी भी तरह न घटें! —वह यही चाहता है सभी के लाभ और वृद्धि की शुभ इच्छा करता है'।।"

८. जलौकाङ्गप्रश्न— ४८. "भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में जोंक का एक गुण होना चाहिये, यह एक गुण क्या है?" (१) "महाराज! जैसे जोंक जहाँ पकड़ती है, वहीं अच्छी तरह रक्त पीती है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु जिस विषय पर ध्यान लगाता है, उसमें पूर्णतः तल्लीन हो जाता है—उसके रूप, रङ्ग, स्थान, फैलाव, घेराव, पहचान, चिह्न सभी को जानता है। इस तरह ध्यान लगाकर वह विमुक्तिरस का

'परिसुद्धेन चित्तेन, आरम्मणे पतिट्ठाय।
तेन चित्तेन पातब्बं, विमुत्तिरससेचनं''' ति॥ *(थे०गा० ५५, म० नि० ११४)*

९. सप्पङ्गपञ्हो

४९. ''भन्ते नागसेन, 'सप्पस्स तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, सप्पो उरेन गच्छति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन पञ्ञाय चरितब्बं। पञ्ञाय चरमानस्स खो, महाराज, योगिनो चित्तं ञाये चरति, विलक्खणं विवज्जेति, सलक्खणं भावेति। इदं, महाराज, सप्पस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) ''पुन च परं, महाराज, सप्पो चरमानो ओसधं परिवज्जेन्तो चरति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन दुच्चरितं परिवज्जन्तेन चरितब्बं। इदं, महाराज, सप्पस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) ''पुन च परं, महाराज, सप्पो मनुस्से दिस्वा तप्पति सोचति चिन्तयति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन कुवितक्के वितक्केत्वा अरतिं उप्पादयित्वा तप्पितब्बं सोचितब्बं चिन्तयितब्बं—'पमादेन मे दिवसो वीतिनामितो, न सो पुन सक्का लद्धुं' ति। इदं, महाराज, सप्पस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, *भल्लाटियजातके* द्विन्नं किन्नरानं—

'मयेकरत्तिं विप्पवसिम्ह लुद्द, अकामका अञ्ञमञ्ञं सरन्ता।
तमेकरत्तिं अनुतप्पमाना, सोचाम सा रत्ति पुनं न हेस्सती' '' ति॥

१०. अजगरङ्गपञ्हो

५०. ''भन्ते नागसेन, 'अजगरस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं एकं गहेतब्बं'' ति।

पान करता है। महाराज! जोंक का यही एक गुण भिक्षु में होना चाहिये। महाराज! *स्थविर अनुरुद्ध* ने भी कहा है—

'ध्यानस्थ होकर परिशुद्ध चित्त से विमुक्ति–रस पीना चाहिये'।"

९. सर्पाङ्गप्रश्न— ४९. "भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में साँप के तीन गुण होने चाहियें, वे तीन गुण कौन से हैं?"

(१) "महाराज! जैसे सर्प पेट के बल चलता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को प्रज्ञा के बल पर चलना चाहिये। महाराज! प्रज्ञा के बल पर चलने पर उसे सत्यज्ञान प्राप्त होता है। वह भिक्षु के अनुकूल चीजें ग्रहण करता है, प्रतिकूल चीजें छोड़ देता है। महाराज! भिक्षु में सर्प का यह पहला गुण होना चाहिये।

(२) "महाराज! फिर जैसे सर्प चलते हुये जड़ी–बूटी से बच कर चलता है; वैसे ही योगसाधक को दुराचार से बच कर चलना चाहिये। महाराज! सर्प का यही दूसरा गुण....।

(३) "महाराज! फिर जैसे सर्प मनुष्य को देखते ही डर जाता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को बुरे विचारों में पड़ अपने को ब्रह्मचर्य जीवन से ऊबते या डरते रहना चाहिये—'अरे! आज तो मैं धोखा खा गया, यह हानि पूरी नहीं की जा सकती'। महाराज! सर्प का यह तीसरा गुण....। महाराज! दो किन्नरों के विषय में *भल्लाटिय जातक* में कहा गया है—

(१) "यथा, महाराज, अजगरो महतिमहाकायो बहू पि दिवसे ऊनूदरो दीनतरो कुच्छिपूरं आहारं न लभति, अपरिपुण्णो येव यावदेव सरीरयापनमत्तकेन यापेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सिक्खाचरियप्पसुतस्स परपिण्डमुपगतस्स परदिन्न-पाटिकङ्खिस्स सयङ्गाहपटिविरतस्स दुल्लभं उदरपरिपूरं आहारं, अपि च अत्थवसिकेन कुलपुत्तेन चत्तारो पञ्च आलोपे अभुञ्जित्वा अवसेसं उदकेन परिपूरेतब्बं। इदं, महाराज, अजगरस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, *थेरेन सारिपुत्तेन* धम्मसेनापतिना—

'अल्लं सुक्खं च भुञ्जन्तो, न बाळ्हं सुहितो सिया।
ऊनूदरो मिताहारो, सतो भिक्खु परिब्बजे॥
'चत्तारो पञ्च आलोपे, अभुत्वा उदकं पिवे।
अलं फासुविहाराय, पहितत्तस्स भिक्खुनो' " ति॥ *(थे०गा० ९८२-८३)*

पञ्चमो सीहवग्गो निट्ठितो॥

तस्सुद्दानं

केसरी चक्कवाको च, पेणाहि घरकपोतको।
उलूको सतपत्तो च, वग्गुली च जलूपिका।
सप्पो अजगरो चेव, वग्गो तेन पवुच्चती ति॥

६. मक्कटवग्गो

१. पन्थमक्कटपञ्हो

५१. "भन्ते नागसेन, 'पन्थमक्कटकस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं

'हे शिकारी! जो हम दोनों ने एक रात बितायी अपनी इच्छा के विरुद्ध, एक दूसरे के ध्यान में, उसी एक रात का पश्चात्ताप करते हुए हम शोक करते हैं– वह रात फिर न आवे'।"

१०. अजगराङ्गप्रश्न– ५०. "भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में अजगर का एक गुण होना चाहिये, वह एक गुण क्या है?" (१) "महाराज! जैसे विशाल शरीर वाला बेचारा अजगर बहुत दिनों तक पेट भर आहार न मिलने से भूखा पड़ा रहता है, तो भी थोड़ा बहुत खाकर जीता रहता है; वैसे ही भिक्षाटन कर दूसरे के पिण्डपात से पेट पालने वाले, स्वयं कुछ भी न लेने वाले भिक्षु को बराबर पेट भर आहार मिलना दुर्लभ हो, अच्छे कुलपुत्र को तब चार पाँच कौर भोजन करके ही अवशिष्ट पेट को जल से भर लेना चाहिये। महाराज! भिक्षु में अजगर का एक यही गुण होना चाहिये। महाराज! धर्मसेनापति *स्थविर शारिपुत्र* ने भी कहा है–

'गीला या सूखा कुछ भी खाते हुये भर पेट नहीं खाना चाहिये। खाली पेट या थोड़ा खा कर रहने वाला बनकर भिक्षु प्रव्रजित होवे।।'

'चार पाँच कौर खाने के बाद कुछ न मिले तो पानी पी कर पेट भर ले, आत्मसंयत भिक्षु के लिये बस यही पर्याप्त है'।।"

पाँचवाँ सिंहवर्ग समाप्त।।

उदान

इस वर्ग में–सिंह, चक्रवाक, पेणाहिक, गृहकपोत, उलूक, शतपत्र, वागुरिका, जलौका, सर्प और अजगर के गुण– इन दश प्रश्नों का उत्तर दिया गया है।।

एकं अङ्गं गहेतब्बं'' ति? ''यथा, महाराज, पन्थमक्कटको पन्थे मक्कटकजालवितानं कत्वा यदि तत्थ जालके लग्गति—किमी वा मक्खिका वा पतङ्गो वा, तं गहेत्वा भक्खयति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन छसु द्वारेसु सतिपट्ठानजालवितानं कत्वा यदि तत्थ किलेसमक्खिका बज्झन्ति, तत्थेव घातेतब्बा। इदं, महाराज, पन्थमक्कटकस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *अनुरुद्धेन*—

'चित्तं नियमे छसु द्वारेसु, सतिपट्ठानवरुत्तमे।
किलेसा तत्थ लग्गा चे, हन्तब्बा ते विपस्सिना' '' ति॥

२. थनस्सितदारकङ्गपञ्हो

५२. ''भन्ते नागसेन, 'थनस्सितदारकस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं अङ्गं गहेतब्बं'' ति? ''यथा, महाराज, थनस्सितदारको सदत्थे लग्गति, खीरत्थिको रोदति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगाचरेन सदत्थे लग्गितब्बं, सब्बत्थ धम्मञाणेन भवितब्बं, उद्देसे परिपुच्छाय सम्मप्पयोगे पविवेके गरुसंवासे कल्याणमित्तसेवने। इदं, महाराज, थनस्सितदारकस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *दीघनिकायवरे परिनिब्बान-सुत्तन्ते*— 'इङ्घ तुम्हे, आनन्द, सदत्थे घटथ, सदत्थे अनुयुञ्जथ, सदत्थे अप्पमत्ता आतापिनो पहितत्ता विहरथा' '' ति।

३. चित्तकधरकुम्मङ्गपञ्हो

५३. ''भन्ते नागसेन, चित्तकधरकुम्मस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं

---

६. मर्कटकवर्ग

१. पथ–मर्कटकाङ्गप्रश्न— ५१. "भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में मकड़े का एक गुण होना चाहिये, वह एक क्या है?" (१) "महाराज! जैसे मकड़ा रास्ते में अपना जाल फैला कर बैठा रहता है। यदि कोई कीड़ा, मक्खी या पतङ्ग जाल में फँस जाता है तो वह उसे पकड़ कर खा जाता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को छह द्वारों में स्मृतिप्रस्थान का जाल फैला कर बैठे रहना चाहिये— यदि उसमें कोई क्लेश बँध जाय तो झट उसे पकड़ कर वहीं नष्ट कर देना चाहिये। महाराज! मकड़े का यही एक गुण भिक्षु में होना चाहिये। महाराज! *स्थविर अनुरुद्ध* ने भी कहा है—

'श्रेष्ठ और उत्तम स्मृतिप्रस्थान के द्वारा छह द्वारों से चित्त को रोके रखना चाहिये। यदि उसमें कोई क्लेश पड़ जाय तो ज्ञानी को उसे नष्ट कर देना चाहिये'।।"

२. स्तन्यपायिबालाङ्गप्रश्न— ५२. "भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में दूध पीते बच्चे का एक गुण होना चाहिये, वह एक गुण क्या है?" (१) "महाराज! जैसे दूध पीते बच्चे को बस केवल अपनी ही अपेक्षा (परवाह) रहती है, वह दूध पीने के लिये रोता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को केवल शुभ उद्देश्य का ही ध्यान होना चाहिये। उपदेश, धर्मचर्चा, चालचलन, एकान्तसेवन, गुरुजनों का सहवास, सत्सङ्ग आदि ऊँचा धर्म–ज्ञान प्राप्त करने का ही एक उद्देश्य रखना चाहिये। महाराज! भिक्षु में दूध पीते बच्चे का एक यही गुण होना चाहिये। महाराज! *दीघनिकाय* के *परिनिर्वाणसूत्र* में देवातिदेव भगवान् ने कहा है— 'आनन्द! सुनो, शुभ उद्देश्य के प्रति चेष्टा करो, उसी में लग जाओ! विना प्रमाद किये, संयत हो, अपने आप को वश में कर ऊँचे और अच्छे उद्देश्य की धुन में लगा रहना चाहिये'।"

३. चित्रकधरकूर्माङ्गप्रश्न— ५३. "भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में चित्रकधर (चित्तकबरे)

एकं अङ्गं गहेतब्बं'' ति? ''यथा, महाराज, चित्तकधरकुम्मो उदकभया उदकं परिवज्जेत्वा विचरति, ताय च पन उदकं परिवज्जनाय आयुना न परिहायति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन पमादे भयदस्साविना भवितब्बं, अप्पमादे गुणविसेसदस्साविना, ताय च पन भयदस्साविताय न परिहायति सामञ्ञा, निब्बानस्स सन्तिके उपेति। इदं, महाराज, चित्तकधरकुम्मस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं ति। भासितं पेतं, महाराज, देवातिदेवेन *धम्मपदे*—

'अप्पमादरतो भिक्खु, पमादे भयदस्सि वा।
अभब्बो परिहानाय, निब्बानस्सेव सन्तिके'' 'ति॥ *(ध०प०, अ०व० ३२)*

४. पवनङ्गपञ्हो

५४. ''भन्ते नागसेन, 'पवनस्स पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी' यं वदेसि, कतमानि तानि पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, पवनं नाम असुचिजनं पटिच्छादेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन परेसं अपरद्धं खलितं पटिच्छादेतब्बं, न विवरितब्बं। इदं, महाराज, पवनस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) ''पुन च परं, महाराज, पवनं सुञ्ञं पचुरजनेहि; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन रागदोससमोहमानदिट्ठिजालेहि सब्बेहि च किलेसेहि सुञ्ञेन भवितब्बं। इदं, महाराज, पवनस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) ''पुन च परं, महाराज, पवनं विवित्तं जनसम्बाधरहितं; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन पापकेहि अकुसलेहि धम्मेहि अनरियेहि पविवित्तेन भवितब्बं। इदं, महाराज, पवनस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं।

कछुये का एक गुण होना चाहिये, वह एक गुण क्या है?'' (१) ''महाराज! जैसे चित्रकधर कछुआ जल में होने वाले भय के कारण जल से बाहर निकल कर घूमता है, उससे उसकी आयु कम नहीं होती; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को प्रमाद में भय देखना चाहिये और अप्रमाद में गुण। उस तरह, वह अपने भिक्षुभाव में कम नहीं होता, वह निर्वाण के पास पहुँच जाता है। महाराज! भिक्षु में चित्रकधर कछुये का एक यही गुण होना चाहिये। महाराज! *धर्मपद* में देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'अप्रमाद से लगा हुआ भिक्षु प्रमाद में भय देखे तो वह पतित नहीं होता, निर्वाण तक पहुँच जाता है'।।''

४. उपवनाङ्गप्रश्न— ५४. ''भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में जंगल के पाँच गुण होने चाहियें, वे पाँच गुण कौन से हैं?''

(१) ''महाराज! जैसे जंगल दुष्टों के छिपने की जगह है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को दूसरों के अपराध या दोष को छिपा देना चाहिये, उसे प्रकट नहीं करना चाहिये। महाराज! भिक्षु में जंगल का यह पहला गुण होना चाहिये।

(२) ''महाराज! फिर जैसे जंगल निर्जन रहता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु का मन राग, द्वेष, मोह, क्लेश और आत्मदृष्टि के जंजाल से मुक्त होना चाहिये। महाराज! जंगल का यह दूसरा....।

(३) ''महाराज! फिर जैसे जंगल एकान्त स्थान होता है, लोगों के कोलाहल से रहित होता है। वैसे ही, योगसाधक भिक्षु को पाप, बुरे और नीच धर्मों से रहित होना चाहिये। महाराज! जंगल का यह तीसरा गुण....।

(४) "पुन च परं, महाराज, पवनं सन्तं परिसुद्धं; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सन्तेन परिसुद्धेन भवितब्बं, निब्बुतेन पहीनमानेन पहीनमक्खेन भवितब्बं। इदं, महाराज, पवनस्स चतुत्थं अङ्गं गहेतब्बं।

(५) "पुन च परं, महाराज, पवनं अरियजनसंसेवितं; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन अरियजनसंसेवितेन भवितब्बं। इदं, महाराज, पवनस्स पञ्चमं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, देवातिदेवेन *संयुत्तनिकायवरे*—

'पविवित्तेहि अरियेहि, पहितत्तेहि झायिहि।
निच्चं आरद्धविरियेहि, पण्डितेहि सहावसे' " ति॥

५. रुक्खङ्गपञ्हो

५५. "भन्ते नागसेन, 'रुक्खस्स तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि तीणि अङ्गानी' ति?

(१) "यथा, महाराज, रुक्खो नाम पुप्फफलधरो; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन विमुत्तिपुप्फसामञ्ञफलधारिना भवितब्बं। इदं, महाराज, रुक्खस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) "पुन च परं, महाराज रुक्खो उपगतानं अनुप्पविट्ठानं जनानं छायं देति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन उपगतानं अनुप्पविट्ठानं पुग्गलानं आमिसपटिसन्थारेन वा धम्मपटिसन्थारेन वा पटिसन्थरितब्बं। इदं, महाराज, रुक्खस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) "पुन च परं, महाराज, रुक्खो छायावेमत्तं न करोति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सब्बसत्तेसु वेमत्तता न कातब्बा, चोरवधकपच्चत्थिकेसु पि अत्तनि पि

---

(४) "महाराज! फिर जैसे जंगल शान्त और शुद्ध होता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को शान्त, शुद्ध, नम्र और अभिमानरहित होना चाहिये। महाराज! जंगल का यह चौथा गुण....।

(५) "महाराज! फिर जैसे जंगल साधु-मुनियों के रहने का स्थान है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को साधु-सन्तों की सङ्गति में रहना चाहिये। महाराज! जंगल का यही पाँचवाँ गुण....। महाराज! *संयुक्तनिकाय* में देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'एकान्त में रहने वाले सत्पुरुषों के साथ, जो संयमशील और ध्यान करने वाले उत्साही और पण्डित हों, सदा उनका सङ्ग करें'॥"

५. वृक्षाङ्गप्रश्न— ५५. "भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में वृक्ष के तीन गुण होने चाहिये, वे तीन गुण कौन से हैं?"

(१) "महाराज! जैसे वृक्ष में फूल और फल लगते हैं; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपने में विमुक्ति के फूल और श्रामण्य के फल लगाने चाहिये। महाराज! वृक्ष का यह पहला गुण भिक्षु में होना चाहिये।

(२) "महाराज! फिर जैसे वृक्ष अपने नीचे बैठे हुए लोगों को छाया देता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपने पास आये हुए लोगों को सत्कारपूर्वक उनके योग्य वस्तु देना और धर्म सुनाना चाहिये। महाराज! वृक्ष का यह दूसरा गुण....।

(३) "महाराज! जैसे वृक्ष अपनी छाया देने में कोई भेद-भाव नहीं रखता; वैसे ही योगसाधक

समसमा मेत्ताभावना कातब्बा— 'किन्ति इमे सत्ता अवेरा अब्यापज्जा अनीघा सुखी अत्तानं परिहरेय्युं' ति। इदं, महाराज, रुक्खस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *सारिपुत्तेन* धम्मसेनापतिना—

'वधके देवदत्तम्हि, चोरे अङ्गुलिमालके।
धनपाले राहुले च, सब्बत्थ समको मुनी' '' ति॥

६. मेघङ्गपञ्हो

५६. ''भन्ते नागसेन, मेघस्स पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि पञ्च अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, मेघो उप्पन्नं रजोजल्लं वूपसमेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन उप्पन्नं किलेसरजोजल्लं वूपसमेतब्बं। इदं, महाराज, मेघस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) ''पुन च परं, महाराज, मेघो पठविया उण्हं निब्बापेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन मेत्ताभावनाय सदेवको लोको निब्बापेतब्बो। इदं, महाराज, मेघस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) ''पुन च परं महाराज, मेघो सब्बबीजानि विरूहापेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सब्बसत्तानं सद्धं उप्पादेत्वा तं सद्धाबीजं तीसु सम्पत्तीसु रोपेतब्बं, दिब्बमानुसिकासु सुखसम्पत्तिसु याव परमत्थं निब्बानसुखसम्पत्ति। इदं, महाराज, मेघस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं।

(४) ''पुन च परं, महाराज, मेघो उतुतो समुट्ठहित्वा धरणितलरुहे तिणरुक्खलता-

---

भिक्षु को सभी लोगों के प्रति भेद–भाव के विना समान रूप से व्यवहार करना चाहिये। चोर, वधक, शत्रु और अपने लोगों के प्रति समान रूप से मैत्री–भावना करनी चाहिये कि 'ये लोग बैर, हिंसा, क्रोध और पापविचारों से छूट जाँय'। महाराज! वृक्ष का यह तीसरा गुण....। महाराज! धर्मसेनापति *स्थविर शारिपुत्र* ने भी कहा है–

'अपनी हत्या करने पर तुले देवदत्त, चोर, अंगुलिमाल, धनपाल हाथी तथा पुत्र राहुल–सभी के प्रति भगवान् समान थे'।।''

६. मेघाङ्गप्रश्न— ५६. ''भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में मेघ (बादल) के पाँच गुण होने चाहियें, वे पाँच गुण कौन से हैं?''

(१) ''महाराज! जैसे मेघ बरस कर धूल गर्द को बैठा देता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपने मन में उठे क्लेश दबा देने चाहिये। महाराज! मेघ का यही पहला गुण भिक्षु में होना चाहिये।

(२) ''महाराज! फिर जैसे मेघ बरस कर जमीन की गर्मी ठंढा कर देता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को मैत्री–भावना से देवताओं और मनुष्यों के साथ इस संसार को शीतल बनाये रखना चाहिये। महाराज! मेघ का यह दूसरा गुण....।

(३) ''महाराज! फिर जैसे मेघ बरस कर बीज उगा देता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को लोगों में श्रद्धा का बीज बोकर उस से तीन सम्पत्तियों को उगा देना चाहिये— दिव्यसम्पत्ति, मनुष्यसम्पत्ति और परमार्थयुक्त निर्वाणसम्पत्ति। महाराज! मेघ का यह तीसरा गुण....।

गुम्बओसधिवनप्पतयो परिरक्खति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन योनिसो मनसिकारं निब्बत्तेत्वा तेन योनिसो मनसिकारेन समणधम्मो परिरक्खितब्बो, योनिसो मनसिकारमूला सब्बे कुसला धम्मा। इदं, महाराज, मेघस्स चतुत्थं अङ्गं गहेतब्बं।

(५) "पुन च परं, महाराज, मेघो वस्समानो नदीतळाकपोक्खरणियो कन्दरपदरसरसोब्भउदपानानि च परिपूरेति उदकधाराहि; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन आगमपरियत्तिया धम्ममेघमभिवस्सयित्वा अधिगमकामानं मानसं परिपूरयितब्बं। इदं, महाराज, मेघस्स पञ्चमं अङ्गं गहेतब्बं।" भासितं पेतं, महाराज थेरेन *सारिपुत्तेन* धम्मसेनापतिना—

'बोधनेय्यं जनं दिस्वा, सतसहस्से पि योजने।
खणेन उपगन्त्वान, बोधेति तं महामुनी' " ति॥

७. मणिरतनङ्गपञ्हो

५७, "भन्ते नागसेन, 'मणिरतनस्स तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी" ति?

(१) "यथा, महाराज, मणिरतनं एकन्तपरिसुद्धं; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन एकन्तपरिसुद्धाजीवेन भवितब्बं। इदं, महाराज, मणिरतनस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) "पुन च परं, महाराज, मणिरतनं न केनचि सद्धिं मिस्सीयति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन पापेहि पापसहायेहि सद्धिं न मिस्सितब्बं। इदं, महाराज, मणिरतनस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) "पुन च परं, महाराज, मणिरतनं जातिरतनेहि योगीयति; एवमेव खो, महाराज,

---

(४) "महाराज! फिर जैसे मेघ अपने ठीक समय से उठकर जमीन पर होने वाले घास, वृक्ष, लता, झाड़, जड़ी–बूटी और वनस्पतियों की रक्षा करता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को मनन करते हुये भिक्षु–व्रत पालन करना चाहिये। मनन करने के अभ्यास पर ही सभी पुण्यधर्म टिके रहते हैं। महाराज! मेघ का यह चौथा गुण....।

(५) "महाराज! जैसे मेघ बरसने पर जलधारा चलने से नदी, तालाब, बावड़ी, कन्दरा, गर्त, सरोवर, बिल, कूए सभी पूर्णतः भर जाते हैं; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को धर्ममेघ बरसा कर जिज्ञासुओं के मन को पूरा भर देना चाहिये। महाराज! मेघ का यह पाँचवाँ गुण....। महाराज! धर्मसेनापति *शारिपुत्र* ने भी कहा है—

'सौ हजार योजन दूर भी किसी जिज्ञासुजन को देख उसी क्षण वहाँ जाकर महामुनि उसे धर्मोपदेश देते हैं'।"

७. मणिरत्नाङ्गप्रश्न— ५७. "भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में मणिरत्न के तीन गुण होने चाहियें, वे तीन गुण कौन से हैं?"

(१) "महाराज! मणिरत्न सर्वथा शुद्ध होता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु की जीविका शुद्ध होनी चाहिये। महाराज! भिक्षु में मणिरत्न का यह पहला गुण होना चाहिये।

(२) "महाराज! फिर जैसे मणिरत्न किसी दूसरे पदार्थ में नहीं मिलाया जा सकता; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को बुरे मित्रों में नहीं मिलना चाहिये। महाराज! मणिरत्न का यह दूसरा गुण....।

(३) "महाराज! फिर जैसे मणिरत्न दूसरे बहुमूल्य रत्नों के साथ ही रखा जाता है; वैसे ही

योगिना योगावचरेन उत्तमवरजातिमन्तेहि सद्धिं संवसितब्बं, पटिपन्नकफलट्ठसेखफलसमङ्गीहि, सोतापन्नसकदागामिअनागामिअरहन्ततेविज्जछळभिञ्ञसमणमणिरतनेहि सद्धिं संवसितब्बं। इदं, महाराज, मणिरतनस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन *सुत्तनिपाते*—

'सुद्धा सुद्धेहि संवासं, कप्पयव्हो पतिस्सता।
ततो समग्गा निपका, दुक्खस्सन्तं करिस्सथा' '' ति॥ *(सु०नि०, २८२)*

८. मागविकङ्गपञ्हो

५८. "भन्ते नागसेन, 'मागविकस्स चत्तारि अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि चत्तारि अङ्गानि गहेतब्बानी" ति?

(१) "यथा, महाराज, मागविको अप्पमिद्धो होति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन अप्पमिद्धेन भवितब्बं। इदं, महाराज, मागविकस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) "पुन च परं, महाराज, मागविको मिगेसु येव चित्तं उपनिबन्धति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन आरम्मणेसु येव चित्तं उपनिबन्धितब्बं। इदं, महाराज, मागविकस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) "पुन च परं, महाराज, मागविको कालं कम्मस्स जानाति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन पटिसल्लानस्स कालो जानितब्बो— 'अयं कालो पटिसल्लानस्स, अयं कालो निक्खमनाया' ति। इदं, महाराज, मागविकस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं।

(४) "पुन च परं, महाराज, मागविको मिगं दिस्वा हासमभिजनेति— 'इमं लच्छामी' ति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन आरम्मणे अभिरमितब्बं हासमभिजनेतब्बं—

योगसाधक भिक्षु को उत्तम और श्रेष्ठ पुरुषों के साथ वास करना चाहिये—जिन्होंने सन्मार्ग पकड़ लिया है, जो फल पर स्थिर हो गये हैं, जो शैक्ष हो चुके हैं, जो स्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी या अर्हत्पद पर पहुँच चुके हैं, जो तीनों विद्या, छह अभिज्ञा, भिक्षुभाव इत्यादि रत्नों से युक्त हैं। महाराज! मणिरत्न का यह तीसरा गुण....। महाराज! देवातिदेव भगवान् ने *सुत्तनिपात* में कहा है—

'सदा ध्यान बनाये रख शुद्ध पुरुषों को शुद्ध पुरुषों के साथ ही रहना चाहिये, वे ज्ञानी के साथ रह कर अपने दुःखों का अन्त कर लेंगे'।।"

८. मृगयु—अङ्गप्रश्न—५८. "भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में व्याध के चार गुण होने चाहियें, वे चार गुण कौन से हैं?"

(१) "महाराज! जैसे व्याध जल्दी थकता नहीं है, वैसे ही योगसाधक भिक्षु को थकना नहीं चाहिये। महाराज! भिक्षु में व्याध का यह पहला गुण होना चाहिये।

(२) "महाराज! फिर जैसे व्याध मृगों की ही ताक में अपने चित्त को लगाये रहता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपने ध्यान में ही चित्त लगाये रहना चाहिये। महाराज! व्याध का यह दूसरा गुण....।

(३) "महाराज! फिर जैसे व्याध अपने काम का उचित अवसर जानता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को एकान्त में आसन लगाने का उचित अवसर जानना चाहिये—यह आसन लगाने का अवसर है और यह आसन से उठ जाने का। महाराज! व्याध का यही तीसरा गुण....।

(४) "महाराज! फिर जैसे व्याध मृग को देख कर प्रसन्न हो जाता है—'इसे पकडूँगा'; वैसे ही

'उत्तरिं विसेसमभिगच्छामी' ति। इदं, महाराज, मागविकस्स चतुत्थं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *मोघराजेन*—

'आरम्मणे लभित्वान, पहितत्तेन भिक्खुना।
भिय्यो हासो जनेतब्बो अधिगच्छिस्सामि उत्तरिं' '' ति।

९. बाळिसिकङ्गपञ्हो

५९. ''भन्ते नागसेन, 'बाळिसिकस्स द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज, बाळिसिको बळिसेन मच्छे उद्धरति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन ञाणेन उत्तरिं सामञ्ञफलानि उद्धरितब्बानि। इदं, महाराज, बाळिसिकस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) ''पुन च परं, महाराज, बाळिसिको परित्तकं वधित्वा विपुलं लाभमधिगच्छति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन परित्तलोकामिसमत्तं परिच्चजितब्बं। लोकामिसमत्तं, महाराज, परिच्चजित्वा योगी योगावचरो विपुलं सामञ्ञफलं अधिगच्छति। इदं, महाराज, बाळिसिकस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *राहुलेन*—

'सुञ्ञतं चानिमित्तं च, विमोक्खं चाप्पणिहितं।
चतुरो फले छळभिञ्ञा, चजित्वा लोकामिसं लभे' '' ति॥

१०. तच्छकङ्गपञ्हो

६०. ''भन्ते नागसेन, 'तच्छकस्स द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

योगसाधक भिक्षु को ध्यान करने के आलम्बन को देख कर आध्यात्मिक प्रसन्नता होनी चाहिये—'इस पर अभ्यास कर मैं आगे की अवस्था प्राप्त करूँगा'। महाराज! व्याध का यह चौथा गुण....। महाराज! स्थविर मोघराज ने भी कहा है—

'आलम्बन पा कर ध्यानरत रहने वाला भिक्षु अत्यन्त प्रसन्न होता है कि इससे ऊपर की अवस्था प्राप्त करूँगा'।।"

९. बाड़िसिकाङ्गप्रश्न—५९. "भन्ते! आप कहते हैं कि भिक्षु में मछुये के दो गुण होने चाहिये, वे दो गुण कौन से हैं?"

(१) "महाराज! मछुआ बंसी फेंक कर मछली फाँस लेता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को ऊपर के श्रामण्य का फल अपने ज्ञान की बंसी से फाँस लेना चाहिये। महाराज! मछुये का यह पहला गुण....।

(२) "महाराज! जैसे मछुआ थोड़ा सा चारा फेंक कर बड़ी-बड़ी मछलियाँ पकड़ लेता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को निकृष्ट सांसारिक उपभोगों का त्याग कर देना चाहिये। इन निकृष्ट सांसारिक उपभोगों का त्याग कर वह उत्कृष्ट श्रामण्यफल पा लेता है। महाराज! मछुये का यह दूसरा गुण....। महाराज! *स्थविर राहुल* ने भी कहा है—

'संसार के उपभोगों को छोड़, वह चार फल और छह अभिज्ञा तथा निर्वाण भी पा लेता है, जो अनिमित्त, अप्रणिहित और शून्य है'।।"

१०. तक्षकाङ्गप्रश्न— ६०. "भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में बढ़ई (तक्षक) के दो गुण होने चाहिये, वे दो गुण कौन से हैं?"

(१) "यथा, महाराज, तच्छको कालसुत्तं अनुलोमेत्वा रुक्खं तच्छति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन जिनसासनमनुलोमयित्वा सीलपठवियं पतिट्ठहित्वा सद्धाहत्थेन पञ्ञावासिं गहेत्वा किलेसा तच्छेतब्बा। इदं, महाराज तच्छकस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) "पुन च परं, महाराज, तच्छको फेग्गुं अपहरित्वा सारमादियति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सस्सतं, उच्छेदं, तं जीवं तं सरीरं, अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं, तदुत्तमं अञ्ञदुत्तमं, अकतमभब्बं, अपुरिसकारं, अब्रह्मचरियवासं, सत्तविनासं, नवसत्तपादुभावं सङ्खारसस्सतभावं, यो करोति सो पटिसंवेदेति, अञ्ञो करोति अञ्ञो पटिसंवेदेति, कम्मफलदस्सना च किरियफलदिट्ठि च—इति एवरूपानि चेव अञ्ञानि च विवादपथानि अपनेत्वा सङ्खारानं सभावं परमसुञ्ञतं निरीहनिज्जीवतं अच्चन्तं सुञ्ञतं आदियितब्बं। इदं, महाराज, तच्छकस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन सुत्तनिपाते—

'कारण्डवं निद्धमथ, कसम्बुं चापकस्सथ।
ततो पलापे वाहेथ, अस्समणे समणमानिने॥
'निद्धमित्वान पापिच्छे, पापआचारगोचरे।
सुद्धा सुद्धेहि संवासं, कप्पयव्हो पतिस्सता॥
ततो समग्गा नियका, दुक्खस्सन्तं करिस्सथा' ति।"

छट्ठो मक्कटवग्गो निट्ठितो।

तस्सुद्दानं

मक्कटो दारको कुम्भो, वनं रुक्खो च पञ्चमो।
मेघो मणि मागविको, बालिसो तच्छकेन चा ति॥

---

(१) "महाराज! जैसे बढ़ई काले तागे से चिह्न दे कर लकड़ी काटता है, वैसे ही योगसाधक भिक्षु को बुद्ध के उपदेश का चिह्न दे, शेल की भूमि पर खड़े हो, श्रद्धा के हाथ में प्रज्ञा का बंसुला लेकर, क्लेश–वृक्ष काट देने चाहिये। महाराज! बढ़ई का यह पहला गुण....।

(२) "महाराज! जैसे बढ़ई वृक्ष के दुर्बल काठ को हटा कर दृढ़काठ ले लेता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को इन व्यर्थ विवादों में नहीं पड़ना चाहिये—'शाश्वतवाद ठीक है या उच्छेदवाद; या जो जीव है वही शरीर है, या जीव दूसरा और शरीर दूसरा है; यह अच्छा है या वह अच्छा है, बिना किसी से बना हुआ है, यह नहीं हो सकता, मनुष्य कुछ नहीं कर सकता, ब्रह्मचर्य व्रत का कोई लाभ नहीं हैं, जीव नष्ट हो जाता है, फिर नया जीव उत्पन्न होता है, संस्कार नित्य है, जो कर्ता है वही भोक्ता है, कर्ता दूसरा है और भोक्ता दूसरा, या कर्म के विषय में और भी दूसरी मिथ्या धारणायें' इत्यादि! ये और इसी प्रकार के दूसरे व्यर्थ विवादों को हटा कर संस्कारों के अत्यन्त शून्य और निःसार स्वभाव को पकड़ लेना चाहिये। महाराज! बढ़ई का यह दूसरा गुण...। महाराज! सुत्तनिपात में देवातिदेव भगवान ने भी कहा है—

'भूसी (तुष) को फटक कर निकाल दो, कंकर चुन–चुन कर बाहर कर दो। अपने को श्रमण बताने वाले ढोंगी साधु को, और व्यर्थ विवाद को दूर करो। पापी लोगों और बुरे विचारों का हटा, शुद्ध पुरुषों को स्मृतिमान् हो कर शुद्ध पुरुषों के साथ ही रहना चाहिये'।।"

छठा मर्कटवर्ग समाप्त।।

७. कुम्भवग्गो

१. कुम्भङ्गपञ्हो

६१. "भन्ते नागसेन, 'कुम्भस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं' ति यं वदेसि, कतमं तं कुम्भस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं" ति? "यथा, महाराज, कुम्भो सम्पुण्णो न सणति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन आगमे अधिगमे परियत्तियं सामञ्ञे पारमिं पत्वा न सणितब्बं, न तेन मानो करणीयो, न दप्पो दस्सेतब्बो, निहतमानेन निहतदप्पेन भवितब्बं, उजुकेन अमुखरेन अविकत्थिना। इदं, महाराज, कुम्भस्स एकं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन सुत्तनिपाते—

'यदूनकं तं सणति, यह पूरं सन्तमेव तं।
रित्तकुम्भूपमो बालो, रहदो पूरो व पण्डितो' " ति॥ (सु० नि० पृ०१३७)

२. कालायसङ्गपञ्हो

६२. "भन्ते नागसेन, 'कालायसस्स द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी" ति?

(१) "यथा, महाराज, कालायसो सुपीतो वमति, एवमेव खो महाराज, योगिनो योगावचरस्स मानसं योनिसो मनसिकारेन अपीतं वमति। इदं, महाराज कालायसस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।"

(२) "पुन च परं, महाराज, कालायसो सकिं पीतं उदकं न वमति; एवमेव खो,

---

उदान

इस वर्ग में—पथमर्कटक, स्तनपायिबाल, चित्रकधरकर्म, उपवन, वृक्ष, मेघ, मणिरत्न, मृगयु, वाड़िसिक, तक्षक—ये दश प्रश्न व्याख्यात हैं।

७. कुम्भवर्ग

१. कुम्भाङ्गप्रश्न—"भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में घड़े का एक गुण होना चाहिये, वह एक गुण क्या है?" (१) "महाराज! जैसे भरे रहने पर घड़ा शब्द नहीं करता, वैसे ही योगसाधक भिक्षु को श्रमणभाव की चरम सीमा तक पहुँच और धर्म का धुरन्धर विद्वान् बनकर भी गर्व नहीं करना चाहिये, उसे अभिमान नहीं करना चाहिये, डीगें नहीं मारनी चाहिये; किन्तु सरल, शान्त और कम बोलने वाला होना चाहिये। महाराज! घोड़े का यह गुण ....। महाराज! सुत्तनिपात में भगवान् ने भी कहा है—

'खाली घड़ा ही बजता है और भरा चुप। मूर्ख खाली घड़े के समान है और पण्डित भरे हुए सरोवर के समान॥' "

२. कालायसाङ्गप्रश्न—६२. "भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में कलहंस के दो गुण होने चाहिये, वे दो गुण कौन से हैं? "

(१) "महाराज! कलहंस सोने पर भी अपने शरीर को सम्हाले खड़ा रहता है, वैसे ही योगसाधक भिक्षु को सदा तत्परता से मनन करते रहना चाहिये। महाराज! कलहंस का यह पहला गुण भिक्षु में होना चाहिये।

(२) "महाराज! फिर जैसे कलहंस एक बार जो पानी पी लेता है उसे नहीं उगलता, वैसे

महाराज, योगिना योगावचरेन यो सकिं उप्पन्नो पसादो न पुन सो वमितब्बो—'उलारो सो भगवा सम्मासम्बुद्धो, स्वाक्खातो धम्मो, सुप्पटिन्नो सङ्घो' ति। रूपं अनिच्चं, वेदना अनिच्चा, सञ्ञा अनिच्चा, सङ्खारा अनिच्चा, विञ्ञाणं अनिच्चं ति यं सकिं उप्पन्नं ञाणं न पुन तं वमितब्बं। इदं, महाराज, कालायसस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, भगवता देवातिदेवेन—

'दस्सनम्हि परिसोधितो नरो अरियधम्मे नियतो विसगू।
नप्पवेधति अनेकभागसो, सब्बसो च मुखभावनमेव सो' '' ति॥

३. छत्तङ्गपञ्हो

६३. ''भन्ते नागसेन, छत्तस्स तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) ''यथा, महाराज छत्तं उपरिमुद्धनि चरति; एवमेव खो महाराज, योगिना योगावचरेन किलेसानं उपरिमुद्धनि चरणेन भवितब्बं। इदं, महाराज, दत्तस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) ''पुन च परं, महाराज, छत्तं मुद्धनुपत्थम्भं होति, एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन योनिसो मनसिकारुपत्थम्भेन भवितब्बं। इदं, महाराज, छत्तस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) ''पुन च परं महाराज, छत्तं वातातपमेघवुट्ठियो पटिहनति; एवमेव खो, महाराज, यागिना योगावचरेन नानाविधदिट्ठिपुथुसमणब्राह्मणानं मतवाततिविधिग्गिसन्तापकिलेसवुट्ठियो पटिहन्तब्बा। इदं, महाराज, छत्तस्सं ततियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, धम्मसेनापतिना थेरेन *सारिपुत्तेन*—

ही योगसाधक भिक्षु को एक बार जो श्रद्धा हो गयी उसे कभी नहीं जाने देना चाहिये—'वे सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् बड़े महान् हैं, धर्म स्वाख्यात हैं, सङ्घ अच्छे मार्ग पर आरूढ़ है;रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार विज्ञान अनित्य है'—ऐसा ज्ञान जो एक बार उत्पन्न हो गया, उसे फिर कभी नहीं छोड़ना चाहिये। महाराज! कलहंस का यह दूसरा गुण....। महाराज! देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'जो पुरुष ज्ञानदर्शन कर परिशुद्ध हो गया है, वह बुद्धधर्म के अनुसार चल कर जो लक्ष्य तक पहुँचा है परम पद का केवल एक बड़ा भाग नहीं, अपितु वह सर्वांशतः पा लेता है॥'

३. छत्राङ्गप्रश्न—६३. ''भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में छत्र के तीन गुण होने चाहिये, वे तीन गुण कौन से हैं?''

(१) ''महाराज! जैसे छत्र मस्तक पर रहता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को क्लेशों के ऊपर ही रहना चाहिये। महाराज! भिक्षु में छत्र का यह पला गुण होना चाहिये।

(२) ''महाराज! फिर जैसे छत्र दण्ड के सहारे मस्तक पर रुका रहता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को उचित रूप से मनन करते हुए अभ्यास से अपने को सम्हाले रहना चाहिये। महाराज! छत्र का यह दूसरा गुण .....।

(३) ''महाराज! फिर जैसे छत्र वायु, गर्मी और पानी को रोकता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को भिन्न भिन्न श्रमण और ब्राह्मणों के अनेकानेक सिद्धान्त की वायु को, तीन प्रकार (राग, द्वेष, मोह) की अग्नि के सन्ताप को और क्लेश की वर्षा को रोकना चाहिये। महाराज! छत्र का यह तीसरा गुण....। महाराज! धर्मसेनापति *स्थविर शारिपुत्र* ने भी कहा है—

'यथापि छत्तं विपुलं, अच्छिद्दं थिरसंहितं।
वातातपं निवारेति, महती मेघवुट्ठियो।
'तथेव बुद्धपुत्तो पि, सीलछत्तधरो सुचि।
किलेसवुट्ठिं वारेति, सन्तापतिविधग्गयो' '' ति॥

४. खेत्तङ्गपञ्हो

६४. ''भन्ते नागसेन, 'खेत्तस्स तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१)''यथा, महाराज, खेत्तं मातिकासम्पन्नं होति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सुचरितवत्तपटिवत्तमातिकासम्पन्नेन भवितब्बं। इदं, महाराज, खेत्तस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) ''पुन च परं, महाराज, खेत्तं मरियादासम्पन्नं होति, ताय च मरियादाय उदकं रक्खित्वा धञ्ञं परिपाचेन्ति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सीलहिरिमरियादासम्पन्ने भवितब्बं, ताय च सीलहिरिमरियादाय सामञ्ञं रक्खित्वा चत्तारि सामञ्ञफलानि गहेतब्बानि। इदं महाराज, खेत्तस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) ''पुन च परं, महाराज, खेत्तं उट्ठानसम्पन्नं होति, कस्सकस्स हासजनकं, अप्पं पि बीजं वुत्तं करोति, बहु वुत्तं बहुतरं होति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन उट्ठानसम्पन्नेन विपुलफलदायिना भवितब्बं, दायकानं हासजनकेन भवितब्बं, यथा अप्पं दिन्नं बहु होति, बहु दिन्नं बहुतरं होति। इदं महाराज, खेत्तस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *उपालिना* विनयधरेन—

'जैसे विना छिद्र वाला, दृढ स्तम्भयुक्त, बड़ा छत्र वायु, गर्मी और वर्षा रोकता है; वैसे ही पवित्रात्मा बुद्धपुत्र शील का छत्र धारण करता है, जो क्लेश की वर्षा को और तीन प्रकार के अग्नि के सन्ताप को रोकता है।।''

४. क्षेत्राङ्गप्रश्न—६४. ''भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में 'खेत के तीन गुण होने चाहिये', वे तीन गुण कौन हैं?''

(१) ''महाराज! जैसे खेत नालियों से युक्त होता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपने व्रतनियमों का पालन करते हुए मातृकारूपी नालियों से युक्त होना चाहिये।

(२) ''महाराज! फिर जैसे खेत में क्यारियाँ बँधी रहती हैं, उन क्यारियों से जल रोक कर धान पुष्ट किया जाता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को शील और लज्जा की मर्यादा से बँधा होना चाहिये। उस बाँध में भिक्षुभाव को रोक कर श्रामण्यफल पुष्ट कर लेना चाहिये। महाराज! खेत का यह दूसरा गुण है।

(३) ''महाराज! जैसे खेत धान की बालों से लद जाता है, उसे देख किसान आनन्द से घर जाता है—'थोड़ा बीज होने से बहुत धान होता है, बहुत बोने से भी बहुत'; वैसे ही योगसाधक भिक्षु का उत्साहपूर्वक अच्छे अच्छे गुण अपने में उत्पन्न कर लेने चाहिये, दायकों को प्रसन्न रखना चाहिये—'थोड़ा दिया बहुत होता है, बहुत दिया उससे भी अधिक होगा'। महाराज! खेत का यह तीसरा गुण है। महाराज! विनयपिटक के ज्ञाता आर्य स्थविर उपालि ने भी कहा है—

'खेत्तूपमेन भवितब्बं, उट्ठानविपुलदायिना ।
एस खेत्तवरो नाम, यो ददाति विपुलं फलं''' ति॥

५. अगदङ्गपञ्हो

६५. "भन्ते नागसेन, 'अगदस्स द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि द्वे अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) "यथा, महाराज, अगदे किमी न सण्ठहन्ति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन मानसे किलेसा न सण्ठपेतब्बा। इदं महाराज, अगदस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) "पुन च परं, महाराज, अगदो दट्ठफुट्ठदिट्ठअसितपीतखायितसायितं सब्बं विसं पटिहनति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन रागदोसमोहमानदिट्ठिविसं सब्बं पटिहनितब्बं। इदं, महाराज, अगदस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, देवातिदेवेन भगवता—

'सङ्खारानं सभावत्थं दट्ठुकामेन योगिना ।
अगदेनेव होतब्बं, किलेसविसनासने' '' ति॥

६. भोजनङ्गपञ्हो

६६. "भन्ते नागसेन, 'भोजनस्स तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि तीणि अङ्गानि गहेतब्बानी'' ति?

(१) "यथा, महाराज, भोजनं सब्बसत्तानं उपत्थम्भो; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सब्बसत्तानं मग्गुपत्थम्भेन भवितब्बं। इदं, महाराज, भोजनस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

(२) "पुन च परं, महाराज, भोजनं सब्बसत्तानं बलं वड्ढेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन पुञ्ञवड्ढिया वड्ढितब्बं। इदं, महाराज, भोजनस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

"भिक्षु को बहुत फल लगने वाले खेत के समान होना चाहिये। यही सब से उत्तम खेत है, थोड़ा बोने से बहुत फल देता है'॥"

५. अगदाङ्गप्रश्न—६५. "भन्ते नागसेन! आप कहते हैं कि भिक्षु में अगद (विषनाशक औषध) के दो गुण होने चाहियें, वे दो गुण कौन से हैं?"

(१) "महाराज! अगद में कीड़े नहीं पड़ते; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को मन में क्लेश नहीं पड़ने देना चाहिये। महाराज! अगद का यह पहला गुण भिक्षु में होना चाहिये।

(२) "फिर जैसे अगद डँसे गये, छू दिये, देखे, खाये, पीये, निगले या चाटे सभी तरह का विष दूर करता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को राग, द्वेष, मोह, अभिमान और आत्मदृष्टि—सभी का विष मार देना चाहिये। महाराज! अगद का यह दूसरा गुण है। महाराज! देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है—

'जो योगी संस्कारों के स्वभाव को देखने की इच्छा रखता हो, उसे क्लेश-विष को पहले नष्ट कर देना चाहिये'॥"

६. भोजनाङ्गप्रश्न—६६. "भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में भोजन के तीन गुण होने चाहिये, वे तीन गुण कौन से हैं?"

(१) "महाराज! जैसे भोजन सभी जीवों का आधार है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को सभी जीवों के निर्वाणमार्ग में आधार बनना चाहिये। महाराज! भोजन का यह पहला गुण भिक्षु को.....।

(३) "पुन च परं, महाराज, भोजनं सब्बसत्तानं अभिपत्थितं; एवमेव खो महाराज, योगिना योगावचरेन सब्बलोकाभिपत्थितेन भवितब्बं। इदं, महाराज, भोजनस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *मोग्गल्लानेन*—

'संयमेन नियमेन, सीलेन पटिपत्तिया।
पत्थितेन भवितब्बं, सब्बलोकस्य योगिना' " ति॥

७. इस्सासङ्गपञ्हो

६७. "भन्ते नागसेन, 'इस्सासस्स चत्तारि अङ्गानि गहेतब्बानी' ति यं वदेसि, कतमानि तानि चत्तारि अङ्गानि गहेतब्बानी" ति?

(१) "यथा, महाराज, इस्सासो सरे पातयन्तो उभो पादे पठवियं दळ्हं पतिट्ठापेति, जण्णु अवेकल्लं करोति, सरकलापं कटिसन्धिम्हि ठपेति, कायं उपत्थद्धं करोति, द्वे हत्थे सन्धिट्ठानं आरोपेति, मुट्ठिं पीळयति, अङ्गुलियो निरन्तरं करोति, गीवं पग्गण्हाति, चक्खूनि मुखं च पिदहति, निमित्तं उजुं करोति, हासमुप्पादेति—'विज्झिस्सामी' ति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सीलपठवियं विरियपादे पतिट्ठापेतब्बं, खन्तिसोरच्चं अवेकल्लं कातब्बं, संवरे चित्तं ठपेतब्बं, संयमनियमे अत्ता उपनेतब्बो, इच्छा मुच्छा पीळयितब्बा, योनिसो मनसिकारे चित्तं निरन्तरं कातब्बं, विरियं पग्गहेतब्बं, छ द्वारा पिदहितब्बा, सति उपट्ठापेतब्बा, हासमुप्पादेतब्बं—'सब्बकिलेसे ञाणनाराचेन विज्झिस्सामी' ति। इदं, महाराज, इस्सासस्स पठमं अङ्गं गहेतब्बं।

---

(२) "महाराज! फिर जैसे भोजन जीवों के बल की वृद्धि करता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को पुण्यवृद्धि करना चाहिये। महाराज! भोजन का यह दूसरा गुण है।

(३) "महाराज! फिर जैसे भोजन सभी लोगों को प्रिय होता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को सभी लोगों का प्रिय होना चाहिये। महाराज! भोजन का यह तीसरा गुण है। महाराज! *स्थविर महामोग्गल्लान* ने भी कहा है—

'संयम, नियम, शील और व्रत के पालन से योगी को सभी लोगों का प्रिय बन कर रहना चाहिये'॥"

७. इष्वासाङ्गप्रश्न—६७. "भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि भिक्षु में धनुर्धर के चार गुण होने चाहिये, वे चार गुण कौन से हैं?"

(१) "महाराज! जैसे धनुर्धर तीर चलाने के लिए अपने पैरों को भूमि पर ठीक से जमाता है, घुटनों को सीधा करता है, तूणीर को कमर से आड़ देकर स्थिर रखता है, स्थिर शरीर को कर लेता है, एक हाथ से धनुष पकड़ता है और दूसरे से तीर चढ़ाता है, मुट्ठी को कस कर दबाता है, अंगुलियों को सटा लेता है, गला खींच लेता है, मुँह बन्द कर लेता है, एक आँख लगा लक्ष्यसाधन करता है और विश्वास करता है कि 'वेध ही दूँगा'; महाराज! वैसे ही योगसाधक योगी शील की पृथ्वी पर वीर्य के पैरों को जमाता है, क्षमाशीलता और दया को सीधा करता है, संयम से चित्त को रोकता है, यम-नियमों से अपने को रोके रखता है, इच्छा और उत्कण्ठा दबा देता है, मनन करने के अभ्यास से चित्त लगा देता है, छह दरवाजे (इन्द्रियाँ) बन्द कर देता है, ध्यान जमा लेता है और विश्वास करता है कि 'ज्ञान के तीर से क्लेशों को बेध ही दूँगा'। महाराज! भिक्षु में धनुर्धर का यह पहला गुण होना चाहिये।

(२) "पुन च परं, महाराज, इस्सासो आळकं परिहरति वङ्कजिम्हकुटिनाराचस्स उजुकरणाय; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन इमस्मिं काये सतिपट्ठानआळकं परिहरितब्बं, वङ्कजिम्हकुटिलचित्तस्स उजुकरणाय। इदं, महाराज, इस्सत्थस्स दुतियं अङ्गं गहेतब्बं।

(३) "पुन च परं, महाराज, इस्सासो लक्खे उपासेति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन इमस्मिं काये उपासितब्बं। कथं, महाराज, योगिना योगावचरेन इमस्मिं काये उपासितब्बं? अनिच्चतो उपासितब्बं, दुक्खतो उपासितब्बं, अनत्ततो उपासितब्बं, रोगतो ....पे०.... गण्डतो, सल्लतो, अघतो, आबाधतो, परतो, पलोकतो, ईतितो, उपद्दवतो, भयतो, उपसग्गतो, चलतो, पभङ्गुतो, अद्धुवतो, अत्ताणतो, अलेणतो, असरणतो, असरणीभूततो, रित्ततो, तुच्छतो, सुञ्ञतो, आदीनवतो, विपरिणामधम्मतो, असारतो, अघमूलतो, वधकतो, विभवतो, सासवतो, सङ्खततो, मारामिसतो, जातिधम्मतो, जराधम्मतो, ब्याधिधम्मतो, मरणधम्मतो, सोकधम्मतो, परिदेवधम्मतो, उपायासधम्मतो, सङ्किलेसधम्मतो। एवं खो, महाराज, योगिना योगावचरेन इमस्मिं काये उपासितब्बं। इदं, महाराज, इस्सासस्स ततियं अङ्गं गहेतब्बं।

(४) "पुन च परं, महाराज, इस्सासो सायं पातं उपासति; एवमेव खो, महाराज, योगिना योगावचरेन सायम्पातं आरम्मणे उपासितब्बं। इदं, महाराज, इस्सत्थस्स चतुत्थं अङ्गं गहेतब्बं। भासितं पेतं, महाराज, थेरेन *सारिपुत्तेन धम्मसेनापतिना*—

'यथा इस्सासको नाम, सायम्पातं उपासति।
उपासनं अरिञ्चन्तो, लभते भत्तवेतनं॥

---

(२) "महाराज! फिर जैसे धनुर्धर अपने पास एक आलक रखता है, जिस से टेढ़े मेढ़े तीर को सीधा कर लेता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को अपने टेढ़े मेढ़े चित्त को सीधा करने के लिये, स्मृतिप्रस्थान का आलक साथ में बराबर रखना चाहिये। महाराज! धनुर्धर का यह दूसरा गुण होना चाहिये।

(३) "महाराज! जैसे धनुर्धर लक्ष्य बना कर उसी पर अभ्यास करता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु अपने शरीर पर मनन करने का अभ्यास करे। महाराज! शरीर पर मनन करने का अभ्यास कैसे करना चाहिये? यह शरीर अनित्य, दुःख, अनात्म है, रोग का घर है, कष्ट पीड़ाजनक, पापी, बाधाबहुल अपना बनकर रहने वाला नहीं है, विघ्नों से भरा है, इसमें बड़े बड़े उपद्रव होते हैं, इस में भय ही भय है, अशुभ है, चञ्चल है, क्षणभंगुर है, अध्रुव है, असहाय है, अशरण है, निःसार है, शून्य है, दोषों वाला है, असार है, मारने वाला है, संस्कार है, उत्पन्न होने वाला है, बूढ़ा होने वाला है बीमार पड़ने वाला है, मर जाने वाला है, शोक देने वाला है, परिदेव वाला है, केवल दुःख देने वाला है, क्लेश देने वाला है—ऐसा मनन करना चाहिये। महाराज! योगसाधक भिक्षु इसी तरह मनन करे। महाराज! धनुर्धर का यह तीसरा गुण है।

(४) "महाराज! जैसे धनुर्धर सायं और प्रातः अभ्यास करता है; वैसे ही योगसाधक भिक्षु को प्रातः सायं ध्यान का अभ्यास करना चाहिये। महाराज! धनुर्धर का यह चौथा गुण होना चाहिये। महाराज! धर्मसेनापति *स्थविर शारिपुत्र* ने भी कहा है—

'तथेव बुद्धपत्तो पि, करोति कायुपासनं।
कायुपासनं अरिञ्चन्तो, अरहत्तमधिगच्छती' ." ति[१] ॥

सत्तमो कुम्भवग्गतो निट्ठितो ॥

॥ ओपम्मकथापञ्हो समत्तो ॥

'जैसे धनुर्धर प्रातः सायं अभ्यास करता है, अभ्यास न छोड़ने से वेतन और भत्ता पाता है; वैसे ही बुद्धपुत्र भी अपने शरीर पर मनन करने का अभ्यास न छोड़ कर वह अर्हत्–पद पाता है ॥'

सातवाँ कुम्भवर्ग समाप्त ॥

॥ औपम्यकथाप्रश्न सम्पन्न ॥

---

१. इतो परं रापञ्हादिका (अट्ठतिसं) पञ्हा विनट्ठा। येहि ते कत्थपि दिट्ठा, तेहि ते अम्हे आरोचेतब्बा पुन मुद्दापनकाले इध पक्खिपनत्थाया ति निवेदनं सम्पादकस्स।

निगमनं

इति छसु कण्डेसु बीवीसतिवग्गपटिमण्डितेसु द्वासट्ठि-अधिका द्वे सत्ता इमस्मिं पोत्थके आगता मिलिन्दपञ्हा समत्ता। अनागता च पन द्वाचत्ताळीसा होन्ति, आगता च अनागता च सब्बा समोधानेत्वा चतूहि अधिका तिसतपञ्हा होन्ति, सब्बा व मिलिन्दपञ्हा ति सङ्खं गच्छन्ति।

१. रञ्ञो च थेरस्स च पुच्छाविस्सज्जानावसाने चतुरासीतिसतसहस्सयोजनबहला उदक-परियन्तं कत्वा अयं महापठवी छधा कम्पित्थ, विज्जुल्लता निच्छरिंसु, देवता दिब्बपुप्फवस्सं पवस्सिंसु, महाब्रह्मा साधुकारं अदासि। महासमुद्दकुच्छियं मेघत्थनितनिग्घोसो विय महाघोसो अहोसि। इति सो मिलिन्दो राजा ओरोधगणा च सिरसा अञ्जलिं पणामेत्वा वन्दिंसु।

२. मिलिन्दो राजा अतिविय पमुदितहदयो सुमथितमानहदयो बुद्धसासने सारमतिनो रतनत्तये सुनिक्कङ्खो निग्गुम्बो नित्थद्धो हुत्वा थेरस्स गुणेसु पब्बज्जासु पटिपदाइरियापथेसु च अतिविय पसन्नो विस्सत्थो निरालयो निहतमानदप्पो उद्धटदाठो विय भुजङ्गो एवमाह—"साधु, भन्ते नागसेन, बुद्धविसयो पञ्हो तया विस्सज्जितो, इमस्मिं बुद्धसासने ठपेत्वा धम्मसेनापतिं सारिपुत्तं अञ्ञो तया सदिसो पञ्हविस्सज्जने नत्थि। खमथ, भन्ते, नागसेन, मम अच्चयं। उपासकं मं, भन्ते नागसेन, धारेथ अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति।

(३) तदा राजा बलकायेहि नागसेनथेरं पयिरुपासित्वा मिलिन्दं नाम विहारं कारेत्वा थेरस्स

निगमन

इस ग्रन्थ के २२ वर्गों में विभक्त छह काण्डों में राजा मिलिन्द के दो सौ बासठ (२६२) प्रश्नों का उत्तर आया है। बयालीस (४२)— प्रश्न ऐसे हैं, जो लुप्त हो गये हैं। जो मिलते हैं तथा जो लुप्त हो गये हैं—दोनों को मिला देने से तीन सौ चार (२६२+४२=३०४) प्रश्न होते हैं। ये सभी 'मिलिन्दप्रश्न' के नाम से कहे जाते हैं।

१. राजा और स्थविर के प्रश्नोत्तर समाप्त हो जाने पर, चौरासी लाख योजन फैली हुई, समुद्र से घिरी हुई यह पृथ्वी छह बार काँप उठी, बिजली चमक उठी, देवताओं ने दिव्यपुष्प बरसाये, महाब्रह्मा साधुवाद देने लगे और महासमुद्र के उदर में बादल गरजने की सी गड़गड़ाहट आने लगी। यह कौतूहल देख कर राजा मिलिन्द ने अपने परिवार के साथ स्थविर नागसेन को हाथ जोड़ कर और शिर झुका कर प्रणाम किया।

२. राजा मिलिन्द का हृदय अन्तर्विभोर हो गया, उसका सम्पूर्ण अभिमान चूर चूर हो गया, 'बुद्धधर्म कितना उच्च है और सत्य है'—इसका ज्ञान हो गया। त्रिरत्न (बुद्ध-धर्म-सङ्घ) के विषय में जितनी शङ्काएं थी, सभी मिट गयीं, सब उलझनें सुलझ गयीं, त्रिरत्न पर पूर्ण विश्वास हो गया। स्थविर के गुण, प्रवज्या और आधार-विचार देख गद्‌गद हो गया। उसके हृदय में श्रद्धा उत्पन्न हो गयी और अतीव नम्रता आ गयी। दाँत टूटे साँप की तरह राजा बोला—"साधु साधु, भन्ते नागसेन! स्वयं बुद्ध के पूछे जाने योग्य प्रश्नों का भी आपने उत्तर दे दिया। इस बुद्ध-शासन में धर्मसेनापति शारिपुत्र को छोड़ कर दूसरा कोई भी आपकी तरह धर्म के विषय में पूछे जाने वाले प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकता हो। भन्ते नागसेन! मेरा अपराध क्षमा कर दें। भन्ते नागसेन! आज से मेरे प्राण रहने तक मुझे अपना उपासक स्वीकार करें।"

निय्यादेत्वा चतूहि पच्चयेहि नागसेनं कोटिसतसहस्सभिक्खूहि सद्धिं परिचरि। पुन पि थेरस्स पञ्ञाय पसीदित्वा पुत्तस्स रज्जं निय्यादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजित्वा विपस्सनं बड्ढेत्वा अरहत्तं पापुणि। तेन वुत्तं—

'पञ्ञा पसत्था लोकस्मिं, कथा सद्धम्मट्ठितिया।
पञ्ञाय विमतिं हन्त्वा, सन्ति पप्पोन्ति पण्डिता॥
'यस्मिं खन्धे ठिता पञ्ञा, सति तत्थ अनूनका।
पूजा विसेसस्सधारो, अग्गो सेट्ठो अनुत्तरो॥
'तस्मा हि पण्डितो पोसो, सम्पस्सं हितमत्तनो।
पञ्ञवन्तं हि पूजेय्य, चेतियं विय सादरो' '' ति॥

★ ★ ★

लङ्कायं दोणिनगरे, वसता दोणिनामिना।
महाथेरेन लेखित्वा, सुट्ठपितं यथासुतं॥
मिलिन्दराजपञ्हो च, नागसेनविसज्जनं।
मिलिन्दो हि महापञ्ञो, नागसेना सुपण्डितो॥
इमिना पञ्हकम्मेन, इतो गच्छामि तुस्सितं।
मेत्तेयं नागते पस्से, सुणेय्यं धम्ममुत्तमं ति॥

मिलिन्दपञ्हो निट्ठितो॥

✿ ✿ ✿

---

३. तब राजा ने अपने अमात्यों के साथ नागसेन की अत्यधिक पूजा–प्रतिष्ठा की। 'मिलिन्द' नाम का वहाँ एक विहार बनवा दिया। उसे स्थविर नागसेन को भेंट कर उसमें करोड़ों क्षीणाश्रवों को ठहरा, उनकी चारों प्रत्ययों से सेवा करने लगा। इसके बाद, स्थविर की प्रज्ञा में उस की श्रद्धा और भी बढ़ गयी। अन्त में राज्य का भार अपने पुत्र को सौंप कर, राजा मिलिन्द घर से बेघर हो, प्रव्रजित हो गया और उसने विपश्यना बढ़ाते हुए अर्हत्पद पा लिया। इसलिये कहा गया है—

'संसार में प्रज्ञा ही प्रशस्त है और धर्म में स्थिर कर देने वाला उपदेश भी प्रशस्त। प्रज्ञा से समग्र-सन्देह मिट जाते हैं, उससे सभी बुद्धिमान् शान्तपद पा लेते हैं।

'जिस पुद्गल में प्रज्ञा अंकुरित हो गयी और स्मृति भी कम नहीं है, वह विशेष पूजा पाने योग्य है, वह श्रेष्ठ और अलौकिक है।

'इसलिये अपना हित दृष्टि में रख कर पण्डित की सेवा करनी चाहिये। देवमन्दिर की तरह प्रशस्त मान कर ही ज्ञानी की पूजा और सेवा करनी चाहिये।।

राजा मिलिन्द और स्थविर नागसेन के प्रश्नोत्तर सम्पन्न।।

✿ ✿ ✿

गाथा-सूची

मिलिन्दपञ्हगन्थम्हि या या गाथा इधुद्धटा।
सका वा परका वा थ तासं सूची पतायति॥

✿

मिलिन्दपञ्हट्ठ-

सञ्ञासद्दसूची

बुद्धानमथं थेरानं राजूनं सहचारिनं।
गन्थानं देस-गामानं सञ्ञानं गणना अयं॥







नाम : स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

(महामहिमराष्ट्रपति द्वारा सम्मानित)

जन्मतिथि : 9.9.1922 ई.

जन्मस्थान : राजपुरा, भिवानी (हरियाणा)

शिक्षा : व्याकरण, पालि, बौद्धदर्शन एवं आयुर्वेद आचार्य

भाषाज्ञान : हिन्दी, संस्कृत, पालि, प्राकृत एवं सान्ध्यभाष

अध्यापन : सं. सं. वि. वि., तिब्बती उच्च शिक्षासंस्थ साधुवेला सं. महाविद्यालय, वाराणसी।

संस्कृत ग्रन्थों का सम्पादन : काशिकावृत्ति, माधव धातुवृत्ति, भाषावृत्ति, महाभाष्य, तत्त्वसंग्रह, अभि धर्मकोष, प्रमाणवार्त्तिक, श्लोकवार्त्तिक, मध्यमक शास्त्र, गुह्यसमाजतन्त्र, अपोहवाद, महायानसूत्रालङ्का, सम्बन्धपरीक्षा, तत्त्वोपप्लवसिंह, 28 उपनिष सांख्यसूत्रवृत्ति।

संस्कृत ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद : न्यायबिन्दु, विग्रह व्यावर्तनी, मध्यान्तविभाग, सुहृल्लेख, बोधिचर्यावत वादन्याय, न्यायदर्शन, बुद्धचरित।

पालि ग्रन्थों का सम्पादन : त्रिपिटक के 41 ग्रन् कच्चायन व्याकरण, समन्तपासादिका, पञ्चप्पक अट्ठकथा, अभिधम्मत्थसंगहो।

पालि ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद : भिक्खुपातिमोक्खसु मिलिन्दपञ्ह, विसुद्धिमग्ग, बालावतार, अभिधानप दीपिका, महावग्ग, चुल्लवग्ग, दीघनिकाय, मज्झिम निकाय, संयुत्तनिकाय, अङ्गुत्तरनिकाय, खुद्दकपा उदान, इतिवुत्तक, चरियापिटक, थेरगाथा, थेरीगाथ विमानवत्थु, पेतवत्थु, बुद्धवंस, महावंस, दीपवं धम्मपद अट्ठकथा, सुत्तनिपात, धम्मपद।

पालिग्रन्थ : अनुवादक्रम में : खुद्दकनिकाय के अवशि ग्रन्थ तथा अभिधम्मपिटक के समस्त ग्रन्थ।

संस्कृत ग्रन्थ : सम्पादनक्रम में : बौद्ध संस्कृत वैपुल्यसू

बौद्धभारती

मकबूल आलम रोड (जिला जेल के सामने), वाराणसी-

बौद्धभारती

बौद्धभारती ग्रन्थमाला में प्रकाशित

पालि-साहित्य के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ

1. पालिव्याकरण (बालावतार) [हिन्दी अनुवाद सहित]
2. मिलिन्दपञ्हपालि (हिन्दी अनुवाद, विस्तृत भूमिका सहित)
3. अभिधानप्पदीपिका (हिन्दी-संस्कृत अर्थ सहित) पालिशब्द कोष
4. विसुद्धिमग्ग (हिन्दी अनुवाद एवं विस्तृत भूमिका सहित) 1-3 भाग
5. पातिमोक्खसुत्त (भिक्षु प्रातिमोक्ष) हिन्दी अनुवाद सहित
6. मज्झिमनिकायपालि (सुत्तपिटक) (हिन्दी अनुवाद सहित)
   (सम्पूर्ण, 3 जिल्दों में) 1-5 भाग
7. दीघनिकायपालि (सुत्तपिटक) (हिन्दी अनुवाद सहित)
   सम्पूर्ण, 1-3 भाग
8. महावग्गपालि (विनयपिटक) (हिन्दी अनुवाद सहित) सम्पूर्ण
9. संयुत्तनिकायपालि (सुत्तपिटक) (हिन्दी अनुवाद सहित)
   सम्पूर्ण, 1-4 भाग
10. धम्मपदपालि (सुत्तपिटक) (हिन्दी-संस्कृत अनुवाद,
    विस्तृत भूमिका एवं अनेक परिशिष्ट) सम्पूर्ण
11. अङ्गुत्तरनिकायपालि (सुत्तपिटक) (हिन्दी अनुवाद, विस्तृत शब्दसूची)
    सम्पूर्ण, 1-4 भाग
12. खुद्दकपाठपालि, उदानपालि, इतिवुत्तकपालि, चरियापिटकपालि
    [खुद्दकनिकाय](सुत्तपिटक) (हिन्दी अनुवाद सहित)
13. थेरगाथापालि, थेरीगाथापालि [खुद्दकनिकाय](सुत्तपिटक)
    (हिन्दी अनुवाद सहित)
14. सुत्तनिपातपालि [खुद्दकनिकाय](सुत्तपिटक)
    (हिन्दी अनुवाद सहित)

Printed by : Sadhana Press, Vns. 9336912547

बौद्धभारती

पञ्चशील, एस. 10/6 ए-2ए, मकबूल आलम रोड (जिला जेल के सामने), वाराणसी-221 002

E-mail : bauddhabhrti@satyam.net.in. फोन : 0542-3298044, 09336912547

••••••••••••

पोस्ट बाक्स नं. : 1049, वाराणसी-221 001. (भारत)